



# हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रथम खण्ड  
आदिकाल और भक्तिकाल

डा० कृष्णमण्ड श्रीवास्तव

एम० ए० हिन्दी ( प्रयाग )

एम० ए० छठनात्मक भाषा विज्ञान ( कलकत्ता )

बी० ए० ( कलकत्ता )

प्राध्यापक हिन्दी विभाग

कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता



अग्रिम प्रकाशन

१९५५ - कलकत्ता

१५ - १ - १९५५

५९ - ५९ - १९५५

कलकत्ता

(C) डा० दयानन्द ग्रीवास्थ



प्रकाशक

अमितान प्रकाशन

२० बाल मुकुन्द मार्ग रोड

कलकत्ता-७

फोन ३४ १६३६

दीपावली

सन् २०२१

प्रकाशन वर्ष १९६३

आवरण :

सन् ७२

मुद्रण :

रेफ्ल भाट प्रेस

३१ वरुतावा स्ट्रीट

कलकत्ता-७

मुद्रण :

पद्म प्रेस

पूज्य गुरु प्रोफेसर सुकुमार सेन  
एम० ए० पी एच० डी०

और

पूज्य पिता श्रीबेणोमाथय कासबो

को



(C) डा० दयानन्द श्रीवास्तव



प्रकाशक :

अमिताभ प्रकाशन

२० बाल मुकुन्द मल्ल रोड

कलकत्ता-९

फोन : ३४ १४३४

दीपावली

सन् २०२१

प्रकाशन सं० १६६३

आयतन :

सन् १९८१

सूत्रक :

रेफल चार्ट प्रिंट

४१ बङ्गाल स्ट्रीट

कलकत्ता-९

सूत्रक :

पद्म कपरी

प्रणम्य गुरु प्रोफेसर सुकुमार सेन

एम० ए० पी एच० डी०

और

प्रणम्य पिता श्रीबेनीमाधव कालखी

को



## विषय-सूची

### १—आदि काल

आदि काल का स्वरूप विस्तरेण १ हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन और आदि काल १, आदि काल की काव्य विधाओं के स्वरूप विकास का इतिहास १३, सिद्ध साहित्य २७ सिद्ध साहित्य का दर्शन और भाव पक्ष ४१ काव्य रूप और अभिव्यञ्जना प्रणाली १४० भाषा ५६ ।

(१) आदि काल का काव्यस्वरूप—राघो काव्य धारा ६२ रासक काव्य कृतियों का परिचय ६६ ।

(२) नाम पत्नी काव्य धारा—नाम पत्नी का स्वरूप विस्तरेण १५६ नाम पत्नी का प्रागुक्त काल १६७, नाम पत्नी के सावकों की परम्परा १६९ दर्शन और भाव पक्ष १८६ काव्य उत्पत्ति और अभिव्यञ्जना प्रणाली १६४ भाषा २०२ । विद्यापति २०६ विद्यापति की रचनायें २१६ विद्यापति के पदों का भाव पक्ष २२४ विद्यापति की भाषा २४६ अमीर खुसरो २४४ और काव्य २४७ मुल्हा बाळ २४६ ।

### २—भक्ति ( काव्य ) काल -

#### ( क ) सन्त साहित्य

सन्त साहित्य का स्वरूप विस्तरेण २१३ सन्तों की परम्परा २१६ हिन्दी में सन्त परम्परा २६३ पन्थ-निर्माण ३३२, सन्त साहित्य का दर्शन और भाव पक्ष ३३६ अभिव्यञ्जना प्रणाली और भाषा ३५२ ।

#### ( ख ) सूफी प्रेमाख्यानक काव्य धारा

प्रेमाख्यानक काव्य का स्वरूप विस्तरेण ३५७ नबि और काव्य-परिचय ३६० बक्सिनी हिन्दी की प्रेमाख्यानक रचनायें ४०७ सूफी का अर्थ ४०९ सूफी मत और तत्सम्बन्ध ४१ सूफी मत का इतिहास ४११ प्रेमाख्यानक काव्य में दर्शन ४१५ सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में योगसाधना ४२२ प्रेममार्गीय

छावना ४२१ भुकी प्रेमास्पानक काव्यो का काव्य पत्र ४३६ भुकी प्रेमास्पान  
काव्यो का काव्य रूप ४३१ वन्योक्ति या समासोक्ति ४३३ भुकी प्रेमास्पानक  
काव्यो में कथानक स्त्रियों ४३८ प्रबन्ध कल्पना और महाकाव्यतत्त्व ४३९  
रहस्यवाद ४३० ।

### ( ग ) कृष्ण भक्ति काव्यधारा

कृष्ण भक्ति तथा काव्य का स्वस्व विस्तरेण ४३३ कृष्ण भावना का  
विकास ४३५ कृष्ण काव्य की परम्परा ४३८ राधा का क्रम विकास ४८६  
प्रेम ललाटा और माधुर्य भाव ४८६ वैष्णव धर्म के प्रमुख आचार्य ४८८ द्विती  
के कृष्ण भक्ति कवि—जीव और रत्नार्यो ४९५ भक्ति और दर्शन काव्य तत्त्व  
धर्मर पीठ ५१८, काव्य रूप ५३६ सत्य-योगिता ५३६ बलद्वार विधान और  
सक्ति बलिष्ठा ५८० भाषा ५८३ भीरो बाई ५८४ सुखाद्य सबनमोहन ५८६  
नरोत्तम दास ५९० रसवान ५९० ।

### ( घ ) राम भक्ति काव्यधारा

राम भक्ति काव्य का स्वस्व विस्तरेण ६०० सीता का क्रम विकास ६०१  
कवि और काव्य परिवर्त ६०४ दर्शन ६१७ भक्ति ६१९ काव्य पत्र ६१९  
मानस का महाकाव्यतत्त्व ६३० गोस्वामी जी के काव्य में युव-सापेक्षता ६३४  
बका ६३५ गोस्वामी तुलसी दास की भाषा ६८४ रत्नार्यो ६८५ ।

## निवेदन

इस ग्रन्थ में मैंने हिन्दी साहित्य की विविध शाखाओं का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अपने अध्ययन में मैंने नवीनतम खोजों और विश्लेषणों से पर्याप्त लाभ उठाया है। इस अर्थ में केवल भाषि कालीन और मक्ति कालीन साहित्य के स्वरूप विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में रीति अथवा शृंगार काव्य तथा भाषुक्त साहित्य का अध्ययन किया गया है। द्वितीय खण्ड की परिधिष्टियों में हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के संक्षिप्त इतिहास के अतिरिक्त भाषिकालीन और मक्ति कालीन साहित्य की राजनैतिक सामाजिक भाषिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमियाँ दी गयी हैं तथा हिन्दी साहित्य की विविध शाखाओं का अध्ययन भारतीय साहित्य शाखाओं के सन्दर्भ में किया गया है।

अपने अध्ययन के लिए मैंने काव्य-रूप वर्णन भाव-पद्य अनिव्यक्तता प्रजाप्ति तथा भाषा—इन जायारों का अवलम्ब ग्रहण किया है। प्रत्येक शाखा के सामूहिक अध्ययन के अतिरिक्त उस शाखा की विशेष काव्य-कृति अथवा उस शाखा के विशेष कवि का विशेष अध्ययन भी किया गया है। अपने अध्ययन की पूर्णता हेतु जिन विद्वानों की कृतियों और विचारों का उपयोग मैंने किया है, उन्हें मैं यहाँ से प्रणाम करता हूँ।

साहित्य के इतिहास-लेखन की वैज्ञानिक विधा मुझ अपने पुण्य पुत्र डॉक्टर मुकुमार सेन से मिली है। यह ग्रन्थ उनके आशीर्वाद की ही उपलब्धि है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरे मित्र और सहयोगी श्री प्रबोधनारायण सिंह, श्री रघुनन्दन मिश्र और श्री विष्णुकान्त शास्त्री के सहयोग मेरे लिए मार्ग-दर्शक रहे हैं। परम भारतीय श्री सीताराम श्री मिश्र की उदार भाषी से मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ है। इन सभी महानुभावों के प्रति मैं भझा-भक्त हूँ।

मेरे विभाग के अध्यक्ष श्री कल्याणमल श्री सोडा ने इस ग्रन्थ की मूद्रिका तैयार कर मुझ पर जो हुपा की है उसके लिए केवल शिष्टाचार की शब्दावली

से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ। सोझा भी पी बिहता,  
सम्झ और जाणीबाँव का मैं नहीं हूँ।

अमिताभ प्रकाशन ॥ अम्भस की मासिक वृत्तिकात एम० ए० मेरे सिप्य  
और मित्र है। व एक वृत्तिकात और कुदस सिप्यी है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन  
उन्होंने जिस निष्ठा और विश्वास के साथ किया है उसके लिए उन्हें  
धन्यवाद देकर उनके महत्त्व को कम नहीं करना चाहता। छेठ सूरजमल जाकाग  
पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष की बड़ीप्रचार पाण्ड्य तथा वहीं के अन्य कर्मचारियों  
ने मुझे सब प्रकार की सुविधायें दी हैं। मैं इन सब का आभारी हूँ। मेरी  
जीवन-मंजिली कीमती मुमीका कीबालव ने इस रचना के स्वल्प-मिमीजन में  
निरन्तर सहयोग प्रदान किया है। इस हेतु उन्हें धन्यवाद देकर आत्मस्तुति  
नहीं करना चाहता।

हिन्दी विभाग

कसकटा विश्वविद्यालय

दीपावली

१११-१९५४

—इयानन्द श्रीवास्तव

# भूमिका

साहित्य के इतिहास एवं उसके इतिहास-वर्णन पर विचार करने के पूर्व सबसे पहला यह दखना चाहिए कि वस्तुतः इतिहास है क्या ? क्या साहित्य से हमारा साक्ष्य साहित्य के 'पुरातत्त्व' या उसके अतीत का इतिवृत्तात्मक विवरण कमबख्त कमिबूत और मारा निरूपण ही है या इसके अतिरिक्त कुछ और भी ? यही हमें इन प्रश्न पर विचार करना होगा कि क्या साहित्य का इतिहास-स्तन अपने सही अर्थ में सम्भव है और यदि हाँ तो किस अर्थ और स्वरूप में । उसकी सीमा और सामर्थ्य क्या है ?

आज इतिहास अंग्रेजी के हिस्ट्री का पर्याय बन गया है । 'हिस्ट्री' का साक्ष्य अपने मूल ग्रीक अर्थ में 'खोज' और 'अनुसन्धान' या एक इसका सर्वप्रथम प्रयोग हिरोडोटस ने किया । हिरोडोटस ही पश्चिम के सर्वप्रथम इतिहास-लेखक थे जिन्होंने इतिहास को वैज्ञानिक मानवीय तर्क-सत्य और विज्ञानप्रद विद्या के रूप में स्वीकार किया । हिरोडोटस ने इतिहास को गति और प्रवाह-मयक्त ज्ञान विज्ञान और अतः अनुसंधित का हेतु माना । हिस्ट्री शब्द के आधुनिक रूप और अर्थ को विकसित करने में इसका दूसरा महत्वपूर्ण योगदान जर्मन शब्द Geschichte ने दिया जिसका अर्थ 'होना' 'बढ़ित होना' है । १९वीं शताब्दी तक आते-आते हिस्ट्री शब्द का अर्थ मानवीय घटनाओं का 'संघटन' और 'विकास' हो गया । प्राचीन ग्रीक-जर्मन शब्दों के मूल में हिस्ट्री शब्द के दो अर्थों की भी दो मूल विचारधाराएँ परिलक्षित होती हैं — (१) अनुसन्धान की वैयक्तिक प्रवृत्ति ( २ ) घटनाओं का इतिवृत्तात्मक और क्रमबद्ध विवरण और निरूपण । इन्हीं दो मूल विचारधाराओं के आधार पर हिस्ट्री शब्द के बहुमुखी प्रयोग में भी उसके दो ही मूल अर्थ प्रमुख हैं — ( १ ) संकुचित अर्थ में यह मानवीय घटनाओं का सङ्ग्रह है जिसका श्रेष्ठ मानवीय विकास को स्पष्ट कर एक अन्तरङ्ग प्रवृत्तिमानता स्थापित करना है । ( २ ) व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन के साध-साध प्राकृतिक घटनाओं और परिवर्तनों का भी क्रमबद्ध निरूपण है । आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि संसार



यं पुनः मां तस्मै नमः । यथा यथा वक्ष्यामि तथैव । अथ च । यथा त्वत्तत्, वैश्वानर आदि गति का लेखा-जोखा भी इतिहास का ही क्षेत्र है । इसलिये भौतिकी विज्ञान भी इतिहास का ही एक अङ्ग है ।

भाष्यीय दृष्टि से इतिहास का अर्थ इतिह् आस्तेऽस्मिन् । इति+ह्+भास् अर्थात् पूर्व कृतान्त प्राधान्य कहा होता है । इतिहास को अष्टादश शास्त्रों के अन्तर्गत रखा जाता है । आचार्य कोटिष्य ने इसे 'प्रथम वैव' कहा है । अर्थ सात्य के अनुसार —

पुराणमिति पुराणमात्माभिकावाहृत्य

धर्मसात्त्वं अर्थसात्त्वं चेतिहासः ।

इतिहास पुराण<sup>१</sup> भाष्यीय वाक्य का अर्थान्त प्रसिद्ध और निश्चित प्रयोग है । रामायण महाभारत, अष्टादश पुराण—इतिहास पुराण के अन्तर्गत ही रखे गए हैं । शङ्कराचार्य ने इतिहास का एक प्रमाण माना है । वह इतिहास धर्म अर्थ, काम भोज के साधनों से सम्बन्धित पूर्व कृत कथा ही है । आचार्य श्रीवर दासजी ने —

आमोदि बहुष्याम्यन्तं वैवदि चरित्तामयम्

इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुत् धर्मभुक् ।

कह कर इनका महत्त्व प्रतिपादित किया है । अतएव भाष्यीय विचार-दृष्टि में इतिहास मानवीय विज्ञान की हो नहीं जोक वस्तुतः से भी संयुक्त और सम्बन्धित दृष्टि है—पुराण-व्यापिका ।

अब प्रश्न उठता है कि इतिहास राज्य के इस अर्थ और सम्बन्ध में साहित्य के इतिहास की उपयोगिता और सार्वभौमता क्या है ?

साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में सबसे पहला और विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या साहित्य का इतिहास केवल सम्भव है ? अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Theory of Literature में अंग्रेजी साहित्य के इतिहास सम्बन्ध की सी० बेंटेन ने इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के मत उद्धृत किये हैं जिन्होंने साहित्य के इतिहास की असम्भाव्यता ( निरर्थकता ) कहाई है । श्री रन्स्यू० पी० बर का मत है 'हमें साहित्य के इतिहास की कोई आवश्यकता नहीं । कारण, उगते उद्भव सर्व विद्यमान रहते हैं वे सनातन हैं और हम माने अतीत

के अभाव में उनका कोई इतिहास हो ही नहीं सकता। सापेनहायर ने भी कला-सम्बन्धी अपनी विवेचनाओं में कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है। रॉके ने सापेनहायर के मत की विवेचना करते हुए साहित्य के इतिहास को इतिहास के अन्तर्गत ही नहीं रखा। कुछ ऐसा ही मत टी० एस० इन्सिड का भी है जिसने साहित्य के प्रबलमान अस्तित्व और उसकी गत्यात्मक व्यवस्था में साहित्य के इतिहास-क्रम को स्वीकार नहीं किया।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में भी कुछ ऐसी धारणा प्रचलन रूप से बिछाई पड़ती है। निम्न बन्धुओं ने विनोद को इतिहास न कहकर भाषा के उत्तमोत्तम शत मनीन और प्राचीन कवियों की कविता पर समालोचना' ग्रन्थ के रूप में प्रचलन रूप से ही स्वीकार है और उन्हीं के सहारे इतिहास ग्रन्थ लिखने की इच्छा प्रकट की है।

आलोचकों का एक दूसरा बर्ग भी है जो इस बात को स्वीकारता है कि साहित्य का इतिहास-लेखन सम्भव ही नहीं। साहित्य का इतिहास या तो सामाजिक इतिहास हो जाता है या साहित्य में अभिव्यक्त विचारों का क्रमबद्ध निरूपण। यही कारण है कि टॉमस बास्टन हेनरी मॉर्गे आदि इतिहास लेखकों ने अपने अंग्रेजी साहित्य के इतिहासों को 'ब्रिटिश मस्तिष्क की कहानी' या 'राष्ट्र की जीवनी' ही कहा है। मेस्सी स्टीफेन ने साहित्य को बृहत् सामाजिक संकलन का ही एक विशेष व्यापार (Function) मिला है और उसके अनुसार पर अंग्रेजी काव्य के प्रसिद्ध इतिहासकार कोर्ट होप ने काव्य सम्बन्धी अध्ययन को राष्ट्रीय संस्थानों का अनवरत विकास माना है। जिस प्रकार इन आलोचकों की दृष्टि में साहित्य और साहित्य का इतिहास एक साधनमात्र है ठीक इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों के अनुसार साहित्य का अध्ययन वस्तुतः कला के विकास का अध्ययन है और इस माते इस बर्ग के इतिहासकारों की दृष्टि प्रमुख और अभिव्यक्त दृष्टि से प्रसिद्ध कवियों और साहित्यकारों के आलोचनात्मक अध्ययन की ओर रही है। राष्ट्रीय केंद्रना या मस्तिष्क के गत्यात्मक विकास की ओर नहीं। एडमंड प्रास ने इसी सम्बन्ध में अपने इतिहास को 'अंग्रेजी साहित्य की गति' कहा है जिसमें अंग्रेजी साहित्य के विकास की मायना पराक्षिप्त की गई है। इन इतिहासकारों ने भी अपने ग्रन्थों को भी

प्रत्यक्ष इतिहास न कहकर समीक्षा या आलोचना ही कहा है। अंग्रेजी आलोचना के इतिहासकार जार्ज सेन्ड्सबरी जिसका सिद्धांत वाल्टर पेटर के सिद्धान्तों के निकट या वस्तुतः एक परिचाया ही है। साहित्य के इतिहास की सबसे बड़ी कठिनाई अतएव उसकी कार्य-कारण गति है जो साहित्य के सम्पूर्ण विकास के साथ उसके अध्ययन की मूलभूत कठिनाइयों भी उपस्थित करती है। बेल्क न अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इन कठिनाइयों की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि साहित्य का इतिहास अपनी मुख्य प्रवृत्तियों और अपने जटिल विकास में एक ऐसी असुविधा लड़ी कर देता है जो संगीत या चित्रकला के इतिहास में दृष्टिगत नहीं होती। चित्रकला का इतिहास चित्रकारों का इतिहास नहीं होता ठीक उसी प्रकार संगीत का इतिहास संगीतकारों का इतिहास नहीं होता। वह वस्तुतः चित्र या संगीत के रूपों का इतिहास होता है जिसकी क्रमबद्धता स्वतन्त्र रूप से पठनीय और दृश्य है। इसके विपरीत साहित्यिक सिद्धान्तों में अभी तक ऐसी कोई प्रणाली विकसित नहीं हुई है जो विज्ञान की विद्युत् पद्धति को समेटे साहित्य-जगत् के इतिहास को स्पष्ट कर सके। अतएव साहित्य के इतिहास-लेखन की तीन असुविधायें हैं — (१) सामाजिक इतिहास से पूरक विद्युत् जगत् के इतिहास रूप में प्रस्तुत करना (२) केवल कृतकों या कवियों का जीवन-परिचय होने से बचना, (३) प्रमुख ग्रन्थों की परिचाया समीक्षा या प्रत्यक्ष आलोचना ही न रखना। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के समान भी प्रायः प्रारम्भ से ही ये असुविधायें थीं। हिन्दी साहित्य का तासी-कृत प्रथम इतिहास कविवृत्त होते हुए भी कालक्रमानुसार नहीं है और न इसमें साहित्यिक प्रवृत्तियों का निरूपण है। तासी ने स्वयं भूमिका में लिखा है कि वे व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण क्रम निर्धारण में असमर्थ हैं। तासी न विभाजन की सम्भावना साहित्य रूप के आधार पर बताई है। तासी के आधार पर लिखे गये केल्ल और करीमुद्दीन की पुस्तक *A History of Hindi Poets* में भी हिन्दी कवियों के विवरण मात्र उपस्थित हैं। व्यक्ति विवरण की यह परम्परा मध्यकाल में बनी जा चुकी थी। 'महामान्द' और 'बैष्णवों की बाताये' इसका प्रमाण हैं। 'तिर्नामिह हत 'सरोज' भी एक ऐसा ही कवि-कृत ग्रन्थ है जिसमें कवियों की रचनाओं के परिचय और उदाहरण दिये गये हैं। महेश्वरत

शुरू और मातापीन मिथ के कवित्त खाकर' भी इसी कोटि में आते हैं। बाबू स्वामसुन्दर दास द्वारा प्रकाशित हिन्दी कोविद् रत्नाकर' के दोनों भाग, जिनमें अस्सी लेखकों के जीवन-चरित्र इतिवृत्तों ने गिर्ण के साथ दिये गये हैं में इतिहास का कोई सूत्र विद्यमान नहीं है। रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता-कौमुदी' भी एक प्रकार से कवि-वृत्त संग्रह ही है। प्रारम्भ के प्रथम दोनों भागों में एक सौ अड़तीस कवियों का विवरण दिया गया था। इस जीवन चरित्र परम्परा या कवि-वृत्त संग्रह के विपरीत सर्व प्रथम आर्मे ग्रियर्सन ने अपन 'मार्गर्न बर्न' क्यूसर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' को प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ पूर्ववर्ती इतिहास ग्रन्थों पर बलसम्बित है तथापि हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का प्रथम वैज्ञानिक रूप इसीमें दृष्टिगत हुआ है। डॉ० लक्ष्मीसागर बाप्येय के शब्दों में 'यह हिन्दी साहित्य की नींव का वह परवर है, जिसने परवर्ती इतिहास ग्रन्थों को कूट प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल-विभाग भी इसमें दिये गये हैं। स्व० नलिन बिलोचन शर्मा ने ग्रियर्सन को हिन्दी के विधेयवादी साहित्येतिहास के सूत्रपात का श्रेय दिया है। निम्न बन्धुओं और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कास-विभाजन भी मुख्य ग्रियर्सन पर आधारित है। ग्रियर्सन के पश्चात् 'निम्न बन्धु बिनोद' ने हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन की एक पुष्ट परम्परा स्थापित की। डॉ० रामकृष्ण शर्मा ने निम्न बन्धुओं का ही इतिहास के इतिहासात्मक लेखन का प्रथम श्रेय देते हुए लिखा है कि "हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास की विस्तार पूर्वक लिखने का श्रेय निम्न बन्धुओं को है।" इन ग्रन्थों में यद्यपि हिन्दी साहित्य के क्रमबद्ध विकास की सामग्री उपलब्ध होती है परन्तु इसमें इतिहास-लेखन की वैज्ञानिकता का निरान्त अभाव है। 'सरोज' और ग्रियर्सन के उपर्युक्त इतिहास की टीका करते हुए श्री एम।एच.ए.ए. शुक्ल रत्नाकर ने लिखा है कि "सरोज वास्तव में इतिहास ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें वह सामग्री नहीं जिसका साहित्य के इतिहास में होना अनिवार्य है।" उसी प्रकार ग्रियर्सन का ग्रन्थ भी डॉ० रत्नाकर के शब्दों में 'एक कविनामावली ग्रन्थ है जो हिन्दी साहित्य के इतिहास की ओर संकेत करता हुआ सहायक मात्र ठहरता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना-विधि और प्रवृत्ति में विदेशी विद्वानों

का योगदान भी कम नहीं है। एंगसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में विश्व को सामरस के क्षेत्र तथा ग्रीष्म ऋषि विदेशी विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना बिबि को पुष्ट किया है। इन सब में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रियदर्शन का इतिहास है जो यद्यपि 'सरोज' पर आधारित है फिर भी अपनी ब्रह्मनिष्ठता में विशिष्टता ही नहीं गनीमता भी रखता है।

हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम मुख्यमन्त्रित इतिहास 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रस्तुत किया। इस भूमिका में उन्होंने साहित्य के इतिहास-वर्णन की दृष्टि स्थापित करते हुए लिखा 'जन्ता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता जाता है। आदि से अन्त तक इसी चित्तवृत्तियों की परम्परा के साथ उनका सामञ्जस्य विद्याना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। अपने इतिहास में आचार्य शुक्ल ने इसी सामञ्जस्य को प्रदानता दी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह दृष्टि एक प्रकार से ऊपर विधित उन अनेक इतिहासकारों की दृष्टि की त्रिकला उत्प्रेष हमने मार्ले, स्टीफेन और कोर्ट होफ के अन्तगत किया है। शुक्ल जी की इस दृष्टि को स्वर्गीय मल्लि विद्योत्तम शर्मा ने साहित्य के इतिहास की विवेकात्मक दृष्टि कहा है। डॉ० रमाधर शुक्ल 'प्याल' ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (जिसे उन्होंने हिन्दी साहित्य का एकमात्र सांगोपांग विवेचनात्मक और ऐतिहासिक बिकासालोचनात्मक ग्रन्थ कहा है।) में लिखा है 'साहित्य के इतिहास से हमारा यही तात्पर्य है कि इतिहास के समान जिसमें साहित्य की निम्न निम्न समय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं या अब स्वामीका मुख्यस्थिति वर्तमान हो उसे साहित्य का इतिहास समझना चाहिये। साहित्य के इतिहास का अर्थ यह है कि यह साहित्य के मूलकार से प्रारम्भ करके मौलिक क्रम के साथ वर्तमान काल तक जो कुछ भी उसमें विकास हुआ है उसका एक सघा बिबि विवित करके पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दे। डॉ० रमाधर जी की दृष्टि अतएव जहाँ एक ओर साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले निम्न निम्न विषयों की वस्तुओं, उनके कारणों और परिणामों पर पड़ी है वहीं दूसरी ओर महाकवियों के साहित्यिक कार्यों पर प्रकाश डालने की भी। पन्ना विवेकविद्यालय में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दिव

गये व्याख्यानों में—जो पीछे 'हिन्दी भाषा और उसका इतिहास' के नाम से प्रकाशित हुआ - हरिऔध जी ने प्रारम्भ में जहाँ साहित्य का विवेचन किया है, वहीं साहित्य के क्षेत्र और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की विशेषता का निरूपण भी किया है। यद्यपि हरिऔध जी ने साहित्य के इतिहास-दर्शन पर कुछ भी नहीं लिखा फिर भी उनके प्रारम्भिक विवेचन में साहित्य के इतिहास सम्बन्धी उनकी मान्यतायें स्पष्ट हैं। सं० १९८७ में प्रकाशित भूमिकान्त शास्त्री के 'हिन्दी साहित्य का विवेचनारम्भक इतिहास' और जी चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' वास्ति भी इसी दृष्टि से प्रभावित हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में प्रकाशक की ओर से यद्यपि यह विवेचन कर दिया गया है कि यह हिन्दी साहित्य का इतिहास नहीं है परन्तु यह उसकी भूमिका को स्पष्ट करने वाली भूमिका है। आधुनिक इतिहासों को यह अधिक स्पष्ट करती है और अभिप्राय में लिखे जाने वाले इतिहास ग्रन्थों की विद्या निर्देशिका है परन्तु इसके साथ उनका यह भी वादा है कि "जिन विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास पर कलम उठाई है उन्होंने नवीन दृष्टिकोण का सर्वथा विचार नहीं किया। नहीं बहुत कुछ किया है। पर, इन पुस्तक में उस दृष्टिकोण को जिस स्पष्टता और योज्यता से व्यक्त किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जो भी हो यह भी एक प्रकार से अहिन्दी भाषी साहित्यिकों को हिन्दी साहित्य का परिचय कराने के बहाने से ही लिखी गई थी और इस नाते हममें हिन्दी साहित्य को सम्पूर्ण भारतीय साहित्य से अविच्छिन्न देखने की चेष्टा साहित्य के इतिहास-क्रम और उसके विकास पर ही की गई है। इन समस्त इतिहासकारों की दृष्टि इतिहास के सम्बन्ध में उसे सांस्कृतिक परम्पराओं में जोड़ प्रोत्साहित करने की रही है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की यह परम्परा इस प्रकार सम्पुष्ट होती रही। विभिन्न विश्वविद्यालयों और साहित्य-संस्थानों और अनेक विद्वानों द्वारा किए जाने वाले शोध-कार्यों और अनुसन्धानों ने जहाँ हमारे सम्मुख अपरिमेय सामग्री रखी वहाँ दूसरी ओर साहित्य के इतिहास-लेखन को और भी व्यापक और दुरुह बना दिया है। हिन्दी साहित्य की महान् परम्परा वस्तुतः सांस्कृतिक और अनेक सन्दर्भों में समसामयिक इतिहास से प्रभावित रही है।

में तो यह प्रत्येक साहित्य के लिए सत्य है पर हिन्दी साहित्य के लिए और भी सत्य है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तावित कुछ वर्षों में प्रकाशित वृहत् हिन्दी साहित्य के इतिहास की योजना सांस्कृतिक धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठ भूमि को भी उतना ही महत्व देती है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित कुछ ऐसे मूलमूल सत्य हैं, जो हर इतिहासकार के कार्य को सुझाकर बना कर उसके सम्मुख एक प्रत्यक्षचक चिह्न बन कर खड़े रहते हैं। इनमें सर्वप्रथम है कालनिर्धारण और उससे नामकरण की समस्या। बरिष्ठ इतिहासकारों ने प्रत्येक काल के सम्बन्ध में वहाँ विभिन्न नाम दिये हैं वहाँ इनके निर्धारण के सम्बन्ध में भी विविधता दिखाई है। आचार्य ध्रुव के परवर्ती इतिहासकारों ने प्रायः उन्हीं की पद्धति का अनुकरण या अनुसरण किया है। आचार्य हमारी प्रसार द्विपदी ने अपने इतिहास 'हिन्दी साहित्य' में वहाँ एक छोर उसके प्रारम्भिक काल को आदि काल कहा है वहाँ मक्ति काव्य प्रेममयीय काव्य एवं रीति काव्य के सम्बन्ध में 'काव्य' शब्दको नहीं रखा। यहाँतक कि तृतीय अध्याय 'मक्ति साहित्यका आभिर्भाव' के अन्तर्गत उन्होंने 'वास्तविक हिन्दी साहित्य का आरम्भ' और 'आधुनिक काल' दीपक देते हुए उसके अन्तर्गत परिभाषित भाषा और 'साहित्य का आरम्भ' आदि शीर्षक दिये हैं। एक ओर दृष्टान्त दृष्टव्य है। डॉ० वल्लभति बन्धु गुप्त ने सद्यः प्रकाशित अपने हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास में लोकाभिध वर्गीकृत और समानाभिध आदि पद्धति से हिन्दी साहित्य के विभिन्न काल-पञ्चों का वर्गीकरण किया है। बन्धुन हम कटिनाई का मूल कारण उसकी प्रबलमानता की बहुमुखी गत्यात्मकता है। लोक साहित्य के अध्ययन ने साहित्य के इतिहास-संश्लेष को और अधिक कठिन बना दिया है। उदाहरणार्थ हमारे सामने फिर वही कटिनाई आगर उपस्थित होती है कि यदि हम प्रमुख प्रवृत्ति के अनुसार निरूपण करते हैं तो प्रमुख प्रवृत्तियाँ में इतर भेद कवि और सनकी रचनायें भी साहित्य के इतिहास में गण्य रह जाती हैं। हम आधुनिक साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में अपने हम मज की पुष्टि कर सकते हैं। आधुनिक काल का ध्यायावारी युग—जिसे टिल्ने का रोमैण्टिक युग कहा जाता है—कई सन्तर्भों में 'कलासिक्ल' भी था। राम और हृष्य काव्य सम्बन्धी रचनायें हम युग में प्रचुर परिमाण में ही मही,

बेह काम्य के कलाओं से संयुक्त भी मिली गई परन्तु उन रचनाओं का न तो मूल्यांकन हो सका है और न अध्ययन ही। इस सम्बन्ध में एक और बात भी विचारणीय है और वह है लोकानुसंधि के परिवर्तन की। साहित्य और साहित्यकार ने मूल्यांकन में तो लोक-रुचि का महत्त्व भी कम नहीं है। साहित्य का इतिहासकार इस लोक-रुचि का निरन्तर बहिष्कार नहीं कर सकता है। आज यदि कोई चाह कर भी कन्नडवाड या कन्नडवाड को सम्योष्ठ कवि प्रोत्थित करने का भरसक प्रयास भी करे तो वह एक ठोस वैज्ञानिक विवेचन *Pure Academic discourse* भरे ही रहे लोक-प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ पर सोचना गम्भीर होगा कि साहित्य के इतिहास के अध्ययन की सीमा केन्द्र छात्राचार्य या *Academicians* तक ही सीमित हो जाती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सम्मुख एक और कठिनाई है और वह है प्रामाणिकता की। आज भी हम अपने प्राचीन साहित्यकार के बारे में अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। अनुसन्धान और प्रवेष्टन जारी है। साहित्य का प्रबुद्ध अध्येता और विचारक उत्सव्यन्वी समग्र सामग्री का निरूपण (संकेत मात्र ही सही) इतिहास में खोजता है। किसी भी इतिहासकार के लिए यह असम्भव है कि वह अपनी भरसक मेधा से भी इसे पूर्ण बना सके। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की चौथी कठिनाई है कवि-भूत और उनके काम्य निरूपण की। किस कवि को किम्ता और किस अनुपात में स्थान मिलना चाहिए यह समस्या सरलता से नहीं सुलझाई जा सकती है। आचार्य दूध के इतिहास पर इस दृष्टि से आशेष किया गया है। अंग्रेजी इतिहासकार भी इस कठिनाई का संकल्पना से समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाये। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की पाँचवीं बड़ी समस्या है भाषा और साहित्य के सम्बन्ध की। हिन्दी विभिन्न बोम्बियों का समूह है। प्रश्न उठता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन विभिन्न बोम्बियों का साहित्य और साहित्यकारों का किम्ता स्थान होना चाहिए। वर्तमान समय में यह प्रश्न और भी बढिक हो जाता है। इसका कारण है कि इन बोम्बियों के साहित्य की प्रचुर सामग्री प्रकाश में आ रही है। अंग्रेजी में बिसे *सिफिन्ट* या *'सिफिन्ट'* कहते हैं, वह हिन्दी में सरलता से नहीं किया जा सकता।



विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ हो लेकर अन्त तक साहित्य का इतिहास पाठ्यक्रम में रहता ही है। पाठ्यक्रम की दृष्टि से अनेक इतिहास सिद्धे भये हैं। इन इतिहासों में जहाँ एक ओर पाठ्यक्रम के अनुसार परीक्षोपयोगी होने का ध्यान रखा जाता है वहीं दूसरी ओर यह भी चेष्टा की जाती है कि यह इतिहास हिन्दी साहित्य की महान् परम्पराओं का उसकी प्रवृत्तियों का और उसकी सांस्कृतिक चेतना का सम्यक प्रतिबिम्बित भी कर सके।

डॉ० दयानन्द धीबास्तव मेरे सहयोगी और परम मित्र हैं। वे एक सफल शिक्षक ही नहीं साहित्य-अध्येता विचारक और आलोचक भी हैं। प्राचीन साहित्य उनका शेष है। तो मध्ययुगीन और आधुनिक साहित्य उनकी सम्पत्ति। भाषा विज्ञान के गहन अध्ययन ने उनकी विचारधारा को गभीर सूत्र दिये हैं। डॉ० धीबास्तव कुछ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' विभिन्न इतिहासों की एक नई मात्र नहीं है। यह इतिहास दो छप्पों में प्रकाशित हो रहा है। इस इतिहास की विशेषता है कि यह जहाँ एक ओर विभिन्न धाराओं और प्रवृत्तियों का सम्यक विस्तारण करता है, वहीं दूसरी ओर प्रत्येक युग की मूलभूत प्रवृत्तियों का भी विवेचन करता हुआ हमारे साहित्यकारों और कवियों की कृतियों का संक्षिप्त और प्रौढ़ आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। स्पष्ट कहूँ कि डॉ० धीबास्तव का 'इतिहास आचार्य गुरु के इतिहास का अनुकरण नहीं है। जहाँ उन्होंने गरीब लोगों और अनुसन्धानों का आचार्य व अवलम्ब ग्रहण किया है वहीं साहित्य के अध्ययन के गरीब माप-दण्डों का आश्रय भी ग्रहण किया है। इतिहासकार की दृष्टि अनीयकी दृष्टि होती है और इस दृष्टि से वह केवल विस्तारणात्मक ही नहीं होनी संश्लेषणात्मक भी होती है। साहित्य का इतिहास एक विज्ञान है तो कला और दर्शन भी। बास्तोवर ने सर्वप्रथम इस इतिहास-वर्णन की ओर संकेत किया था और आज विविध पाश्चात्य आलोचक भी इतिहास (History) और इतिहास विज्ञान (Historiography) का मूलभूत अन्तर स्वीकार करते हैं वहीं साहित्यिक इतिहास और साहित्य के इतिहास (History of Literature) का भी। डॉ० धीबास्तव ने जो दृष्टि अपनाई है वह समन्वयात्मक दृष्टि है। अर्थात् साहित्यिक इतिहास-अंगन की दृष्टि और साहित्य के इतिहास-विस्तार की दृष्टि भी। साहित्यिक इतिहास समाज-सांस्कृतिक राजनीतिक आर्थिक आदि

भावि आचार्यों में साहित्य की गतिविधिका निरूपण करता है। डॉ० श्रीवास्तव के इतिहास की एक और विशेषता यह है कि वह केवल पाठ्य प्रामाणिक और परीक्षोपयोगी ही नहीं है परन्तु हिन्दी साहित्य का संश्लिष्ट और सम्यक् अध्ययन भी प्रस्तुत करता है। इस नाते यह अध्येता और अध्यापक तथा विचारकों के लिए समान रूप से उपादेय है। मैं स्वीकार करता हूँ कि डॉ० श्रीवास्तव के इतिहास में कुछ ऐसी बातें हैं जो सन्दिग्ध और मेरी दृष्टि से कुछ बांछों में पुनर्विचार चाहती हैं। मैं उनका उत्सुक और विवेचन करना इसलिये निरर्थक और अनावश्यक समझता हूँ कि वे अपेक्षाकृत अत्यन्त पीछे हैं। डॉ० श्रीवास्तव ने उनके ही छात्रों में हिन्दी साहित्य की विभिन्न धाराओं का समीक्षात्मक अध्ययन किया है। निस्सन्देह उन्होंने प्रायः समस्त उपलब्ध सामग्री का समावेश करने का सफल प्रयास भी किया है। यह उनकी जासोचना-दृष्टि उनकी चिन्तना और उनकी सूझ-बूझ का प्रमाण है। इस दृष्टि में न तो पूर्व-ग्रह है और न प्रचलित भावों का विचलना। हिन्दी साहित्य के सद्भव और विकास पर लेखक ने साधिकार मूलन दृष्टिकोण भी उपस्थित किया है। मैं डॉ० श्रीवास्तव को बधाई ही नहीं देता, उनसे यह निवेदन भी करता हूँ कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार अपने अध्ययन अपनी चिन्तना और अपनी रचनाओं से साहित्य के अध्ययन की मूल्य दिशा उपस्थित करते रहें।

हिन्दी विभाग

कन्नड़ता विश्वविद्यालय

कन्नड़ता

कन्यापमसठ कोट्टा

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

कन्नड़ता विश्वविद्यालय

कन्नड़ता



## आदिकाल

### आदिकाल का स्वरूप विश्लेषण

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल की सर्जना अनेक आन्तरिक भाव-संघर्षों एवं बाह्य प्रक्रियाओं के माध्यम से हुई है। भाव-मग्न तथा शिथिल विधि की दृष्टि से प्रत्येक साहित्य अपनी पूर्ण परम्पराओं का विकसित रूप होता है। भाषा के विकास के समान साहित्यिक वृत्तियों और विषयों का विकास घुमती चिन्तन विधियों का प्रतिफल होता है। जीवन की विकसित करनेवासी अनुप्रेरणाएँ या बिखटनशील दृष्टियाँ भाव-बोध के स्तरों का संघासन एवं नियमन करती हैं। जीवन की अन्य विषयों के समान साहित्यिक विषयों घुम-बीजन की प्रत्येक दृष्टियों के अनुक्रम ही निर्मित होती हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास-केन्द्रक इस सत्य की अवहेलना कर गए हैं। साहित्य-सर्जना बाधित अनुभूतना का प्रतिफल है। इसके आधार पर ही साहित्यिक विषयों की रचना होती है।

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के उद्भव और विकास की कोई निश्चित तिथि प्रस्तावित नहीं की जा सकती। परन्तु अन्य आधुनिक भारतीय भाषा भाषाओं के समान हिन्दी के आदिकाल का स्वरूप-संस्थापन महाभारत के पश्चात् की साहित्यिक विषयों द्वारा होता है। जिस कृतियों का अवलम्ब ग्रहण कर हम आदिकाल की कल्पना करते हैं उनमें अनेक भाव वृत्तियाँ चिन्तन धाराएँ प्रतिबिम्बित हैं। जिस काल की हम वर्णन कर रहे हैं उसमें संस्कृत की असंख्य रचनाएँ हुईं साथ ही साथ अपभ्रंस की रचनाएँ अपनी व्यापक परम्परा लेकर सम्मूल आईं। अपभ्रंस की रचना विधा के साथ हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं का ऐतिहासिक

सम्बन्ध है। स्पष्टता और लक्ष्यता की सुविधा की दृष्टि से अपभ्रंश काव्य विधा की प्रस्तुत वर्णों में विभक्त करते हैं—१. जैन अपभ्रंश साहित्य २—जैनतर अपभ्रंश साहित्य। साहित्यिक विधाओं की दृष्टि से इस वर्गीकरण का पुनः प्रस्तुत रूप में विभाजन किया गया है—(क) जैन प्रबन्धकाव्य—(१) पुराण (२) चरित (३) कथा साहित्य (क) जैन आध्यात्मिक काव्य (ग) बौद्ध बोधा एवं कर्माभ (घ) अपभ्रंश के शीर्ष एवं प्रथम सम्बन्धी मुक्तककाव्य। [ देखिए : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास प्रथम भाग पृ० ३३० ]। जैन प्रबन्धसाहित्य की व्यापक अनुवचना पुराण-साहित्य में पद्धति हुई है इसके अन्तर्गत स्वयंभू का 'पद्मचरित' (पद्मचरित) 'हरिवंशपुराण' पुष्करत (पुष्करत) इत्यादि 'महापुराण' हैं।

स्वयंभू का समय वि० सं० ८३७-८३९ के मध्य माना जाता है। 'पद्मचरित' ६० सर्गों की रचना है जिसकी भाव भूमि-राम कथा पर आधारित है। 'हरिवंश पुराण' में वृष्णकथा का आधार ग्रहण किया गया है। पुष्करत की कृति 'महापुराण' है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं 'जसहरचरित' 'नामकुमार' चरित। 'महापुराण' १२० सर्गों की रचना है—सर्गियाँ पुनः कड़वकों में विभक्त हैं। इनमें १३ महापुरुषों की जीवन-चारा संकलित है।

इस सम्बन्ध की दूसरी विधा है चरित और कथा साहित्य। पुष्करत की कृतियाँ—'नामकुमारचरित' (नामकुमारचरित) और 'जसहरचरित' (जसहरचरित) विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विधा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है 'करकंडचरित'। इनके केवल हैं मुनिग्रन्थालय। इनका समय है वि० सं० ११२२। प्रस्तुत कृति में कथानकश्रियों का स्वस्फुटिबोधन विशेष महत्वपूर्ण है। कथानकश्रियों की इन परम्परा का विकास 'पृथ्वीराज राव राघो' में देखने को मिलता है। यह १० परिच्छेद (परिच्छेद) की रचना है जो पुनः कड़वकों में विभक्त है। हर्षिप्र भूरि ( १२१६ वि० सं० ) का 'नेमिनाह चरित' इस विधा की एक अन्य कृति है। निमयचरित भूरि की रचना 'नेमिनाह चरित' की उत्पत्ति की कृति है। नेमिनाह के नेरायण ग्रहण करने पर राजकनी का जीवन विपन्न की भूमिका में कवि द्वारा प्रस्तुत है। उद्दीप्त विधा के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण इस काव्य का मुख्य चेतन है। इसीके अन्तर्गत 'बाण्ड सासा' की उद्भासना मिलती है विमला विद्याम पायसी के 'पद्मचरित' में हुआ है।

उदा०—बससाहू निहसिय बणराइ । मयममितु मसमासि बह ॥

कृष्टिरि हिमडा मासि बसत । निसपइ राजस पिककसाउ कनु ।

ससी दुक्त बीसरिवा भवइ । संमसि भमरउ किम रमभुणइ ॥

दीस पंच पिइ ओबणु होइ । छाउ पियउ निससउ सहु कोइ ॥

बणरास ( वनपरास ) की कृति 'मनिसयतकहा' ( मनिसयतकमा ) इस परमरा की एक और महत्वपूर्ण काव्य-रचना है । प्रस्तुत कृति लोक-गाथाओं की काव्यात्मक अनुभूतना के आधार पर पद्धति है ।

अपभ्रंश काव्य विद्या का दूसरा रूप 'परमात्मकाद्य', 'योगासार' और 'सावयमम्म दोहा' में मिलता है । इनके रचनाकार हैं जोईदु ( ११वीं शताब्दी ) । रामसिंह की कृति 'पाहुइ दोहा' इस चरम की एक अन्य कृति है ।

अपभ्रंश काव्य-बारा का तीसरा रूप बीहूदोहा एवं 'पर्यापरी' में मिलता है, (हिन्दी साहित्य पृ० ६० पृ० ३४८) । इस प्रकार 'सरह' 'कष्ट', 'कुइपा' इत्यादि की कृतियों इस काव्य-बारा के अन्तर्गत आती हैं परन्तु उनकी रचना में परवर्ती अपभ्रंश की हैं जिनका विस्तारण आगे के पृष्ठों में किया गया है ।

अपभ्रंश में मुक्तक काव्यस्वरूपों की भी व्यापकता मिलती है । विषय की दृष्टि से उन्हें 'बीर' और 'प्रथम' मुक्तक रूपों में विभाजित करते हैं । हेमचन्द्र के व्याकरण में संकलित दोहों में इन दोनों रूपों की उपस्थिति हो जाती है । उनमें लोक-जीवन की उदात्त और अनुभूतना और शृंगार-संवेगना प्रतिबिम्बित मिलती है । इन दोहों का संकलन हेमचन्द्र ने लोकजीवन से किया है ।

उदा०—

हरि मयावित पैमनइ निहूइ पावित ओउ ।

एवहि राहपमोहरई न भावइ त होउ ॥

'हरि को प्राणन में मृत्य करती है लोग निश्चय में पड़े इस प्रकार राधा के पयापरी की जो अनिजाया हो वह हो' प्रणय की कुहेतिकाओं की सीन्दूरपूर्ण अनिर्व्यञ्जना प्रस्तुत चरम की विशेषता है ।

बह केवैइ पाबीसु पित बकिमा नुह करीसु ।

पावित मवइ सराजि जिबे सधने पइ सीसु ॥

'बहि सीमाय से मैं अपने प्रिय को पा जाऊँ तो अपूर्ण कार्य करूँगी बस

जिस प्रकार लकील यन् में प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार मैं उसके हृदय में सघरीर प्रवेश कर जाऊँगी। प्रणय की आकृष्टता उत्प्रेरणा और मिलन की उत्कण्ठा शृंगार की अनुप्रेरणा की बलवती प्रेरणा बन कर इन अवस्थियों में उपस्थित हुई है। प्रणय-मुक्तकों का कलात्मक सौन्दर्य इन बोहों की विभूति है। प्रणय भावनाओं के अतिरिक्त इन बोहों में वीर या शीर्ष भावना का अति उल्लासपूर्ण रूप भी मिलता है। उल्लास का यह स्वरूप लोक-संस्पर्शों की बाधित भाव-अनुप्रेरणा को मुखरित करता है —

एह ति पोहा एह पकि एह ति निहिजा खण ।

एतु मुनीसिय जाणिअह जो न नि बालह बण ।

‘बल्ल यहाँ है युद्ध-भूमि यहाँ है और तीव्र खड्ग यहाँ है यहाँ वीरों का पोष्य समी परीक्षित होता है जब (वह युद्ध भूमि से) बल्ल-बल्ला नहीं फेरता है।

बल्ल भग्ना पाछड़ा तो सहि मझु पिण ।

वह भग्ना भझुह तजा तोरें मारि मरेय ।

‘ऐ सखी यदि शत्रु पराजित हुए तो निश्चय ही मेरे प्रिय द्वारा यदि हमारी सेना पराजित हुई है तो निश्चय ही मेरा प्रिय मारा गया है।

अपभ्रंश काव्य-परम्परा की अनुप्रेरणा आधिकासीन हिन्दी काव्य-भारा की रचना-प्रवृत्ति में विशेष सहस्रसिद्धि रही है। अपभ्रंश के ब्रह्म वीरानिक विषयों की भावधारा का बहुमूल्य हिन्दी में नहीं हो सका।<sup>१</sup> अपभ्रंश की मुख्य और तथा शृंगार पूर्ण परम्परा का विकास हिन्दी में हुआ है। ‘छोटा माक रा दोहा’

१—इसके दो कारण हैं प्रथम तो भार के ब्रह्म कवियों ने परिनिष्ठित अपभ्रंश में ही काव्य-रचना करते रहना अपना आदर्श समझा क्योंकि अपभ्रंश उनके लिए आर्थिक और पुण्य भाषा थी और हिन्दी में वीरानिक प्रबन्ध काव्यों की रचना करना उन्होंने ठीक नहीं समझा। दूसरा इसका कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दी का विकास आधिकासीन आंदोलन से अपभ्रंश प्रभावित रहा है जो आधिकासीन का आन्दोलन था और जिसका ब्रह्म कवियों पर प्रभाव नहीं पड़ा तीसरे हिन्दी के प्रबन्ध कवियों ने भी जिनमें राजकवि मूठी या सगुणभक्त से इस परम्परा को नहीं अपनाया—हि० वृ० ६० पृ० ३२५

में शुभार-परम्परा का स्वल्प मिलता है। कतिपय आलोचकों ने बिहारी के दोहों को इसी परम्परा में देखने का प्रयास किया है। भाव की दृष्टि से बिहारी 'गाथा सम शती' और 'आया सम शती' के वर्ग में आते हैं। अमिष्यञ्जना प्रजापती की दृष्टि से बिहारी अपभ्रंश-शैली का संरक्षण करते मिलते हैं।

हिन्दी के आदिकावीन साहित्य में कतिपय कथामकान्तियों का नियमित प्रयोग मिलता है। 'करकडपरित' में बिजदरम गुणद्वय से प्रणय उद्भाषना की विधि का प्रयोग मिलता है। मुए का इस सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' और 'पद्मावत' में इस विधा का प्रयोग किया गया है।

काव्य-रूपों के साथ-साथ अपभ्रंश छन्दों का विकास हिन्दी में पूर्ण रूप से हुआ है। संस्कृत महाकाव्यों के स्वरूप-गठन का अपभ्रंश ने स्वीकार नहीं किया। अपभ्रंश के महाकाव्य रूपों की अपेक्षा सन्धियों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक सन्धि पुनः कवचकों में विभक्त होती है। कवचक के अन्त में 'वत्ता' का नियोजन मिलता है। जायसी तथा अन्य सूफी प्रबन्धों तथा तुलसी के 'मानस' में यह परम्परा ही ग्रहण की गई है। रासक-काव्य द्वारा में इस अमिष्यञ्जना चिह्न के प्रति आग्रह मिलता है। इस प्रकार हिन्दी के आदिकावीन साहित्य के काव्य रूपों तथा छन्द विभागा के अध्ययनके ऐतिहासिक संदर्भों की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य का स्वल्प विस्तारण महत्वपूर्ण है।

### हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन और आदिकाव्य

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा का चिन्ताम्यास फ्रांसीसी विद्वान मासी-द-लासी के इतिहास ग्रन्थ *Historie de la Literature Hindoui Hindustanee* ( इस्त्वार-द-ला लिजेरात्यूर ऐं दुई-एँ-ऐन्नुस्तानी ) नामक ग्रन्थ से हुआ। इस कृति के प्रथम भाग के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् १८३८ में, तथा दूसरे भागका प्रकाशन १८७०-७१ में हुआ। साहित्य के इतिहास लेखन में दोनों प्रमुख तत्त्व विरोध अपेक्षित हैं। प्रथम—काल-क्रम का निरूपण, द्वितीय-साहित्य प्रवृत्तियों का विस्मरण। इन दो दृष्टियों का आधार प्रस्तुत कृति में ग्रहण नहीं किया गया है। लासी ने अपनी पुस्तक में कवियों का संग्रह वर्ण-क्रम के अनुसार किया है। परन्तु उनकी रचना के विस्तारण में यह



स्पष्ट होता है कि साहित्य की विविध प्रवृत्तियों से वे परिचित थे। हिन्दी-रचनाओं के प्रस्तुत स्मृत वर्गीकरण से इस कथन की पुष्टि होती है। हिन्दी की रचनाओं को वे चार भागों में विभाजित करते हैं—

(क) भाष्यान (ख) आदिकाम्य (ग) इतिहास (घ) काव्य। पद्य रूपों के आधार पर उन्होंने प्रस्तुत वर्गीकरण किया है—अमंग आस्था कवित्त या कवित्त कहलौ मसाल, कीर्तन गान गानी मीत गुजरी, फगुरंग बरन बरबा कुल सख चौपीई, धयकरो धन्य हरयासि<sup>१</sup>।

इस परम्परा की दूसरी कृति है निबन्धिहें सेगर का 'शिब सिंह सरोज'। यह कृति सन् १८८३ में प्रकाशित हुई। इस कृति में एक सहस्र कवियों का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी रचनाओं के उदाहरण हैं<sup>२</sup>। इस सन्दर्भ की तृतीय उल्लेखनीय कृति है प्रियर्सन का इतिहास 'बी मार्ग्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ मार्टन हिन्दुस्तान (Modern Vernacular Literature of Northern Hindustan) प्रस्तुत-ग्रन्थ में सामग्री को काल के अनुसार विभाजित करने का प्रयास किया गया है। प्रियर्सन ने प्रस्तुत रूप में विभाजन किया है। (क) बारन काल (ख) पन्द्रहवीं सदी का बार्मिक पुनर्जागरण।

१ डॉ० जमनी सागर बाल्लभ ने इसके हिन्दुई नाम भाग का अनुवाद किया है। अनुवादक का यह कथन है 'प्रस्तुत पुस्तक उनके (तासी के) ग्रन्थ में से हिन्दुई से सम्बन्धित अंश का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद है। इनके इस ग्रन्थ का पूर्ण या आंशिक अनुवाद न तो अंग्रेजी में है न तो किसी अन्य भारतीय भाषा में है। परन्तु डॉ० महादेव साहा और श्री नारायण पाण्डेय ने एक महीन ग्रन्थ का अनुवाद किया है। इनके अनुसार कैम्ब्रिज और करीमुद्दीन ने १८४८ में ही तासी के प्रथम संस्करण का उर्दू में अनुवाद किया था। तासी इस अनुवाद से परिचित थे। दूसरे संस्करण में उन्होंने इस अनुवाद का सम्मुख भी किया है। २ 'शिब सिंह सरोज' के पूर्व की दो अन्य कृतियों का उल्लेख मिलता है—

(१) काव्य-संग्रह गणेश दत्त।

(२) कवित्त-रत्नाकर-मातादीनमिश्र (डॉ०—रामभुजार बर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ११, मृ० संस्करण)।

( ग ) मलिक मुहम्मद जायसी और उनकी कविता ।

( घ ) ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय ।

( ङ ) मुगल दरबार ।

( च ) तुलसीदास ।

( छ ) रीति काव्य ।

( ज ) तुलसीदास के अन्य परवर्ती ।

( झ ) अठाखूबी छताखूबी ।

( ञ ) कम्पनी के घासुन में हिन्दुस्तान ।

( ट ) महाराणी विक्टोरिया के घासुन में हिन्दुस्तान ।

प्रियर्सन के पश्चात् इतिहास-काल की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास है मिश्रबन्धुओं का 'मिश्रबन्धुविनोद'। इसके प्रथम तीन भाग संवत् १९७० में प्रकाशित हुए। चौथा भाग ( आधुनिक काल ) संवत् १९९१ में प्रकाशित हुआ। इनके प्रणय की प्रमुख विशेषता है साहित्यिक विभागों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। उनके वर्गीकरण की रूप-योजना इस प्रकार है—

( क ) पूर्वाभिन्निक काल — सं० ७०० — १३४३

( ख ) उत्तराभिन्निक काल — सं० १३४४ — १४४४

( ग ) पूर्वमाध्यमिक काल — सं० १४४३ — १५६०

( घ ) मीड माध्यमिक काल — सं० १५६१ — १६६०

( ङ ) पूर्वाह्निक काल — सं० १६६१ — १७८९

( च ) अज्ञात काल — ( प्रायः उत्तराह्निक एवं परिवर्तन काल के । )

( छ ) परिवर्तन काल — सं० १८९० — १९२३

( ज ) वर्तमान काल — सं० १९२३

मिश्रबन्धुओं ने साहित्यिक प्रवृत्तियोंके प्रति जाग्रह प्रकट किया है परन्तु समय के स्पष्ट विभाजन से वे अपन का ऊपर नहीं उठा सके हैं। 'वास्तव में 'मिश्रबन्धु विनोद' में काल विभाजन के आधारों का संकर है। आदि प्रकरण में बीरगाथा काल के साथ और समी प्रकार की रचनाएँ रख दी हैं जिनमें कुछ पीछे की भी हैं इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है

‘ओ बीर की पुरानी परिपाटी के अनुसार कहीं कहीं का छिन्न बैखर ही प्राकृत भाषा और कहीं औपाई बैखर ही अबधी या बैसबाड़ी समझते हैं’ ओ भाव को ‘घाट’ और बिचार को ‘फीसिंग’ कहते हैं वे यदि उन्मुख पद्यों के संवत् १००० के क्या संवत् २०० के भी बतायें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं<sup>१</sup> । इस प्रकार आचार्य शुक्ल प्रवृत्तियों के प्रति अधिक आग्रहीता लभते हैं ।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की सर्वप्रथम प्रवृत्ति और सुस्पष्ट योजना आचार्य शुक्ल द्वारा हिन्दी शहरसागर की भूमिका में प्रस्तावित हुई थी । आचार्यने इतिहास लेखन की सर्वनात्मक अनुकूलता की प्रस्तावना प्रस्तुत करने में की है—‘जबकि प्रत्येक देशका साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियोंका स्थायी प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है । यदि ये अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ-साथ उनका सामंजस्य बिठाना ही ‘साहित्य का इतिहास’ कहलाता है । जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक सामाजिक साम्प्रदायिक तथा आर्थिक परिस्थिति के अनुसार होती है अतः कारण-स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी आवश्यक होता है । इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य का विवेचन करने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि किसी विशेष समय में लोगों में कवि विरोध का संचार और पोषण कियर से और किस प्रकार हुआ । कप्युक्त व्यवस्था के अनुसार हम हिन्दी साहित्य के १०० वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर लेंगे—

(क) आदि काल ( बीलाया काल सं० १०५० १३७५ )

(ख) पूर्व मध्यकाल ( अदि काल सं० १३७५ १७०० )

(ग) उत्तर मध्यकाल ( तृति काल सं० १७०० १८०० )

(घ) आधुनिक काल ( गय काल सं० १८०० १९७५ )

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने अपने वर्गीकरण में चोहरे नामों का प्रयोग किया है । हिन्दी शहरसागर की भूमिका में प्रस्तावित इस स्वरूप का विस्तार ‘हिन्दी साहित्य के इतिहास’ में दिखा गया है । आचार्य ने यह विभाजन प्रवृत्तियों

के अनुसार किया है परन्तु वे स्वतन्त्र विभाजन के समर्थक नहीं थे । उन्होंने इस ओर संकेत करते हुए कहा है, 'यद्यपि इन काव्यों की रचनाओं की विशेष प्रशंसा के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काव्य में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थी । ब्रह्मा भक्ति काव्य या रीतिकाल को सँ तो उसमें भीरु रस के अनेक काव्य मिलते जिनमें भीरु रागाओं की प्रशंसा उसी ढंग से होगी जिस ढंग की भीरु गाना काव्य में हुआ करती थी । शुक्ल भी ने आदिकाल के लिए 'भीरु गाना काव्य की संज्ञा दी है । आलोच्य काव्य की प्रमुख कृतियों को दो वर्गों में आचार्य ने विभक्त किया है । प्रथम—अपभ्रंश की रचनाएँ—(क) किरणवास रासो (ख) हम्मीररासो । (ग) कीर्तिकथा (घ) कीर्तिपताका ।

द्वितीय—वैश्याभाषा की कृतियाँ—(च) सुमानरासो ।

(ज) बीसछदेवरसो ।

(झ) पूष्पीरागरासो ।

(ञ) जयचंदप्रकाश ।

(ट) जयमर्क-वसन्तिका ।

(ड) परमाकरासो (आस्था का मूलकम्) ।

(ण) सुसरो की पहेलियाँ ।

(त) विद्यापति-पदावली

इन्हीं बारह ग्रन्थों का समावेश आचार्य आदि काव्य के अन्तर्गत करते हैं । आचार्य का यह स्पष्ट संकेत है कि 'बीसछदेवरसो' 'सुसरो की पहेलियाँ' और 'विद्यापति की पदावली' के अतिरिक्त अन्य प्रस्तावित कृतियाँ भीरवाभात्मक हैं । इस दृष्टि के आधार पर ही शुक्ल भी 'आदिकाल' के लिए 'भीरुगानाकाव्य' की संज्ञा उचित मानते हैं ।

इस वर्ग में मिथवाण्डुओं ने आदिकाल के निर्धारण हेतु निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है —

१ मगध नीता ।

२ पूर्य नवकार ।

३ चरमास

४ मंत्रसार ।

५ पतलि ।

६ अनन्य योग ।

७ जम्बूस्वामीरासा ।

८ रेवंतविरासा ।

९ नेमिनाथ चतुर्पद ।

१० उपएसमासा ( उपवेद्यमासा ) ।

मुक्त जी के अनुसार प्रथम पीछे की रचना है। पुस्तक से एक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए आचार्य ने यह निष्कर्ष प्रदान किया है—

तेहि दिन क्या कील मगसाई। हरि के नाम गीत बित साई।

मुमिरीं गुह गोविन्द के पाऊ। बगम अपार है जाकर मार्ग ।

‘वृद्ध मन्कार’ ‘जम्बूस्वामी रासा’ ‘नेमिनाथ चतुर्पद’ ‘उपएस मासा’ जैन धर्म के उत्कृष्ट निरूपण पर हैं। ‘वर्तमान’ ‘संमत सार’ मोटिसमात्र हैं।

‘इस प्रकार केवल दो साहित्यिक पुस्तकें बचीं जो वर्णनात्मक ( डेस्क्रिप्टिव ) हैं—एक में मन्द के ज्योत्नार का वर्णन है घूमरी में बुजरात के रैक्टर पर्वत का। अतः इन पुस्तकों की नामावली से मेरे निश्चय में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ सकता। यदि ये निम्न निम्न प्रकार की हैं, पुस्तकें साहित्यिक भी होतीं तो भी मेरे नामकरण में कोई बाधा नहीं डाल सकती थी क्योंकि मैंने १ प्रसिद्ध बीरमायात्मक पुस्तकों का उल्लेख किया है।’ इस प्रकार मुक्तजी का स्पष्ट निर्णय है कि इस काल की अधिकांश इतियाँ बीरमायात्मक हैं अतः हमें बीरमायाकाल के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए। इस काल को निम्न जम्बुजी के समान केवल ‘आधिकार’ कहना उपयुक्त नहीं है।

परन्तु मुक्तजी ने जिन कृतियों को ‘बीरकाव्य’ माना है उनमें से अधिकांश बीरमायात्मक नहीं हैं। उनमें ‘राग’ ‘काव’ जादि शृंगार मूल्या रचनाएँ भी हैं। पार्थिक अनुप्रेणाओं के साथ-साथ उनमें काव्य-सौन्दर्य भी पवीत भाषा में है। बरनी रचना हिन्दी साहित्य के ‘आधिकार’ के प्रथम

व्याख्या में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्लजी की संस्थापना का सङ्केत करते हुए मिश्रबन्धुओं के नामकरण का समर्थन किया है। अपने प्रथम व्याख्यान में द्विवेदीजी ने प्रस्तुत शर्कों का अवसम्भ ग्रहण करते हुए शुक्लजी का सङ्केत किया है। शुक्लजी द्वारा प्रस्तावित रचनाओं में कुछ पीछे की रचनाएँ हैं कई नोटिस मान हैं कई के सम्बन्ध में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है कि उनका मूल रूप क्या था ? अतः—

(क) कुमाररासो विजयपासरसो बीसछदेव रासो—बहुव पीछे की रचनाएँ हैं।

(ख) हमीररासो जयचन्द्रप्रकाश-जयचन्द्रिका परमात्मरासो—नोटिस मान हैं।

(ग) पृथ्वीराज रासो का मूल रूप क्या था इसका आज भी पता नहीं।

इस सन्दर्भ में यह विशेष उल्लेखनीय है कि द्विवेदीजी ने 'प्राकृत पैगसम्' के पद्य 'नाम सिद्धों की रचनाओं' 'होछा मारू-रा दोहा' जैन कविओं के 'रास काव्य' आदि काव्य, 'उक्ति व्यक्तिप्रकरण' एवं 'वर्णरत्नाकर' तथा 'सन्देशरासक' की भी आदि कास के अन्तर्गत माना है। परन्तु आचार्य द्विवेदी का यह मोह हिन्दी के आधिकासीन साहित्य की कास-अवधि और काव्य-अवधि को अधिक विस्तार देने के कारण ही है। आधिकासीन की रूप-सोचना को द्विवेदीजी ने अधिक व्यापक बनाया है।

आचार्य शुक्ल इस प्रस्तावना के भावी रूप से परिचित थे जगते हैं। उनकी व्यापक दृष्टि इस सत्य को स्पष्ट देख सकी थी कि भावीयुग के आलोचक इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न कर सकते हैं। कम्बत समस्या के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रस्तुत समाधान की भी प्रस्तावना की है—(१) इन रचनाओं को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत नहीं स्वीकार कर सकते थे अपभ्रंश की रचनाएँ हैं। यही कारण है कि 'बीरमाया' के पूर्व द्वितीय प्रकरण में आचार्य ने 'आदिनाम' शीर्षक के अन्तर्गत उन रचनाओं की विवेचना की है जिन्हें वे अपभ्रंश के अन्तर्गत मानते हैं। अतः 'भावकाचार' (संस्कृत ६६० देवसेन) 'भारविपुराण' (पुष्करान्त सं० १०२६) 'असह्य चरित' शिष्ट-नामों की रचनाएँ हेमचन्द्र के संकलित दोहे 'कुमारपास प्रतिबोध (सोमप्रममूरि सं० १२६१) 'प्रबन्ध चिन्तामणि (बीनाचार्य

मैलुंग सं० १३६१) 'शाङ्ग'पर्य्ययति' ( शाङ्ग'वर ) आदि कृतियों का विवरण उन्होंने 'अपभ्रंश काव्य' के अन्तर्गत दिया है। शुक्लजी का दूसरा दावह यह है कि ये रचनायें धार्मिक संवेदना पर आधारित हैं अतः इनको विवेचना साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत नहीं होनी चाहिए। शुक्लजी का प्रथम निर्णय यथार्थ और वैज्ञानिक है। अपभ्रंश-कृतियों का अध्ययन हिन्दी के सन्दर्भ में एक विशेष दृष्टि से ही अपेक्षित है। आधिकांश हिन्दी साहित्य की पूर्ण वीर्यता और उसके स्वयं विकास के ऐतिहासिक सन्दर्भों के स्पष्टीकरण की दृष्टि से यह अध्ययन अनिवार्य-सा कथ्यता है।

आचार्य का द्वितीय आरोप उचित नहीं लगता है क्योंकि इनमें धार्मिक अनुचरता के साथ-साथ साहित्यिक सौन्दर्य भी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है 'बर्म वहाँ कवि को केवल प्रेरणा दे रहा है। जिस साहित्य में केवल धार्मिक उपदेश हों उससे यह साहित्य निश्चितरूप से भिन्न है जिसमें बर्म भावना प्रेरक शक्ति के रूप में काम कर रही हो जो हमारी सामान्य मनुष्यता को मजबूत और प्रभावित कर रही हो'।<sup>१</sup> जैन-बर्म एवं बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में अपने युगों को बड़ मजबूत करनेवासी शक्तियों का प्रस्तावन स्वात्मक बराबर पर हुआ है। अतः इनमें हम केवल धार्मिक रचनाओं की संज्ञा देकर इनकी अवहेलना नहीं कर सकते। इस दृष्टि के अनुसार अहिंसा-भाव धारा के अन्तर्गत रचित कृतियाँ कबीर मानस 'मुरदावर' 'पद्मवत' भी साहित्यिक के क्षेत्र से बाहर ही रहें।

राहुल साँहस्यायन ने आधिकांश काव्य-धारा के लिए सिद्ध-सामन्त युग की प्रस्तावना की है और ७६० ई०—१३०० ई० तक की अवधि को उन्होंने 'सिद्धसामन्त' युग की सीमा मानी है।<sup>२</sup> इस प्रकार राहुल साँहस्यायन और हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रस्तावना में विशेष अन्तर नहीं है। अर्थात्, राहुलजी के वर्गीकरण के अन्तर्गत वे सभी कृतियाँ आयी हैं जिनकी प्रस्तावना द्विवेदीजी ने की है। इसके अनुसार गुणरत्न स्वयंभू, जोईरु, कजरामा ईशचन्द्र सरहूदा कच्छपा इत्यादि हिन्दी के आधिकांश कवियों के रूप में आते हैं।<sup>३</sup> अवधि में दो प्रकार की रचनायें मिलती हैं—[१] बौद्धमिथो-जैन साधुओं की रचनायें [२] रामान्दी और रसात्मक या गृहगरी रचनायें।

१ आलोचना इतिहास सं०, पृ० ७६।

२ हिन्दी काव्य धारा—राहुल साँहस्यायन : अथर्वविद्या।

डॉ० रामकुमारबर्मा ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का आलोचक इतिहास' में आधिकासीन साहित्य को दो धाराओं के अन्तर्गत विभाजित किया है। प्रथम—सन्धिकासीन साहित्य (सं० ७००-१२००) इस प्रस्तावना को बेपुन दो भागों में विभक्त करते हैं (क) पूर्वार्ध—इसने अन्तर्गत सिद्धसाहित्य जनसाहित्य की विधायें आती हैं। इस प्रकार सरहपा-सबरपा लहपा-कन्हपा आदि सिद्धों की तथा स्वयंमु, पुष्पान्त बनपास रामसिंह कमकामर जिनदलमुरि, हेम चन्द्र शालिमह मेछुग राजसेखरमुरि आदि की रचनायें प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। (ख) सन्धिकास के उत्तरार्ध के अन्तर्गत नायसम्प्रदाय की रचनायें 'सन्देश रासक' बमीर कुसरो की रचनायें मुक्तावाक्य की रचनाओं को डॉ० बर्मा ने स्वीकार किया है। द्वितीय धारा के लिए डॉ० बर्मा ने धारणाकास की संज्ञा दी है। डॉ० बर्मा की यह धारणा आचार्य मुक्त की धारणा के समान ही है। उनकी धारणा है कि रासक या बीर पीतों के सेवक चारण थे। परन्तु यह धारणा भ्रान्तिक नहीं है। समग्रता की दृष्टि से हिन्दी के आरम्भिक काव्य को हम आधिकाव्य या आधिकाल ही कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत प्रस्तुत धारायें प्रमुख हैं। (१) रासककाव्य (२) नाय साहित्य-काव्य-धारा (३) बीर काव्य-धारा।

*आदि काल की काव्य विधाओं के स्वल्प विकास का इतिहास*

हिन्दी की आधिकासीन काव्य विधाओं की सर्जना अपनी पूर्व परम्परा (अपभ्रंश ब्रह्म) की पीठिका पर हुई है। काव्य-स्वरूप छन्द-योजना और भाव-संविदा की दृष्टियों से अपभ्रंश और ब्रह्म की काव्य विधाओं ने हिन्दी की सर्जनात्मक अनुभूतना का संघासन और नियमन किया है। जिस वास्तविक में हिन्दी की आदि कालीन रचनायें पस्त्रित हो कर स्वरूप धारणकर रही थीं उनमें अपभ्रंश ब्रह्म की रचनायें भी निश्चयनशील थीं। ये रचनायें बाष्प अनुभूतना पर अवलम्बित थीं। भाव और स्थि, इन दोनों ही दृष्टियों से इनमें रचनात्मक प्रतिभा का स्वल्प और शृंगार संस्थापित हो चुका था। ये रचनायें अपभ्रंश तथा ब्रह्म के अधिक निकट थीं परन्तु इनसे मुक्त होने का प्रयास भी कर रही थीं। ये नवीन सृजनात्मक शक्तियों का संघनन कर रही थीं। पश्चात् साहि



निरंक विकास की गमीन अनुवर्तनाओं का संस्पर्श गमीन साहित्यिक सर्वनाओं को अपनी गरिमा प्रदान कर रहा था। भाषा स्वतंत्र रूप चारण कर रही थी साथ साथ साहित्य भी स्वतंत्र संस्पर्शों पर बाधित हो रहा था। इस दृष्टि से हिन्दी की रचनाओं के समानान्तर अपभ्रंश रचनायें भी विद्यमान थीं। यही कारण है कि काव्य-स्वल्प और विरल विधियों की दृष्टि से अपभ्रंश तथा भारि काशीन रचनाओं में समता है। यह नसर्गिक भी है।

अगर इस ओर संकेत किया गया है कि हिन्दी की भारिकाशीन रचनायें गमीन भूमिकाओं का संस्पर्श नहीं कर सकी थीं। जिस राष्ट्रीय सामाजिक और सांस्कृतिक सापेक्षता में अपभ्रंश की रचनायें निर्मित हुईं वह सापेक्षता हिन्दी के उद्भवकाल में भी बनी रही परंतु गमीन काव्यात्मक सम्मा कनाओं के उन्मूलन का प्रकट ही नहीं उत्पन्न होता है। अपभ्रंश काव्य निर्माण में जैन किन्तु विद्या मूल अनुप्रेषण बनी रही। इस अनुप्रेषण को कवियों ने अति उदात्त उदार एवम् संवित्त शील दृष्टियों में ग्रहण किया। उनकी रक्षात्मक प्रक्रिया में लोक संवेदनाओं को विधेय स्थान दिया गया है। जैन अनुप्रेषणों पर आधारित होने के कारण यहाँ चरित्रकाव्यों के प्रति कवियों का विधेय बाधित रहा है। इनकी के समानान्तर कथाकाव्यों की रचना प्रस्तावित की गई। काल क्रम से चरित्र-काव्य तथा कथा-काव्य भावकल्प तथा विरलविधि इन दोनों ही दृष्टियों से एक दूसरे में समीकृत होत सके थे। अपनी दृष्टियों के नामकरण कवि अनेक दृष्टियों से करते मिलते हैं। काव्य का नामकरण वे कथा दृष्टि में काव्य रूप की दृष्टि से साथ ही साथ धर्म के अनुसार भी करते मिलते हैं। इन सभी दृष्टियों में अपभ्रंश काव्यों के वर्गीकरण की कल्पना की गयी है। समझता की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख विधा अब-सम्भावना हो सकती है—

(क) जैन प्रवर्णनात्मक रचनायें—ब्रह्मवादी-नीति सम्बन्धी।

(ग) बौद्ध अपभ्रंश रचनायें।

(घ) पार्थिक अनुप्रेषण में युक्त प्रवर्णनात्मक तथा युक्त रचनायें।

जैन प्रवर्णनात्मक को प्रमुख रूप में विभाजित करने का प्रयत्न किया गया है—(क) पौराणिक प्रवर्णनात्मक (ख) चरित्रकाव्य (ग) कथाकाव्य। परन्तु

यह वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक नहीं लगता है । इन समस्त रचनाओं में क्या तत्त्व के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण प्रबन्धात्मकता है । साम ही साध किसी विशेष व्यक्ति के चरित-उद्भावन का प्रयास भी मिलता है । इन सन्दर्भ में बहुत स्थिति का सापेक्षीकरण प्रस्तुत बलव्य से हो जाता है 'स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के पौराणिक काव्यों और चरितकाव्यों में बहुत अन्तर नहीं है । पौराणिक काव्यों में विषय का विस्तार अधिक होने से सन्धियों की संख्या पचास से सवा सौ तक होती है । जब कि चरित काव्यों में विषय विस्तार मर्यादित रहता है । इसमें सन्धि संख्या अधिक नहीं होती । वेप दातें जैसे सन्धि कड़क तुक पंक्ति युक्त आदि में दोनों में कोई भेद नहीं होता'—'पञ्चसिंहरचरित'-भूमिका हरिवंशम मिमांसी विद्या भवन, चम्बाई, हिन्दी महाकाव्य स्वरूप विकास, पृ० १७१ से प्रस्तुत ) । इन कृतियों की सामूहिक विशेषतायें प्रस्तुत हैं ' (क) इनके चरित नायक पौराणिक हैं या जन धर्म के निष्ठावान अनुयायी । (ख) आकार की दृष्टि से इन में विभिन्नता है । (ग) कुछ में अनेक महापुरुषों की कथा कही गयी है, किसी किसी में केवल एक व्यक्ति की कथा प्रस्तुत की गई है ।

१—डॉ० टपारे ने अपभ्रंश भाषा और साहित्य का प्रस्तुत वर्गीकरण किया है—(क) पूर्वी अपभ्रंश—सह तथा कच्छ के 'बोहाकोश' और 'चर्मापव' की भाषा (ख) वशिष्ठी अपभ्रंश—गुणरत्न 'महापुराण' 'गमिष्णुमारचरित' 'असुरचरित' 'करकंठचरित' की भाषा—(ग) पश्चिमी अपभ्रंश—काशिकास बोर्दु, रामसिंह, धनपात हेमचन्द्र ( 'विक्रमोर्वशीय' सायबन्धन बोहा ) 'पाहुड़ बोहा' 'मविषयत कहा' हेमचन्द्र के व्याकरण में प्रस्तावित अपभ्रंशों की भाषा ) । Historical Grammar of Apbhramsa परन्तु अपभ्रंश के भेदों के आधार पर अपभ्रंश साहित्य की विवेचना सम्भव नहीं है । भावभारा तथा काव्यों-वर्णों की दृष्टि से इसके साहित्य का अध्ययन अधिक वैज्ञानिक होगा ।

(ग) ये कृतियाँ सन्धियों में विभक्त मिलती हैं । सन्धियों कड़कों में विभक्त मिलती हैं ।

(ख) सन्धि के आरम्भ में कथा के निर्वहन की दृष्टि से एक पद रहता है जिसे प्रत्येक कहते हैं ।

अब कथा निबोधन की दृष्टि में 'चरित' 'कथा' 'पुराण' में अन्तर नहीं मिलता है। 'पुराण' को अन्य विषयों से अलग रखने का एक अर्थ कारण लगता है। जिन में से महापुराण की परिभाषा बैठे हुए कहा है 'महं ग्रन्थ महापुराण इत्यस्मिन्' कि इसमें तीर्थीकरणों चरित्रावतियों बलदेवों बानुदेवों प्रतिबानुदेवों प्रभृत प्राचीन महापुरुषों का चरित वर्णित है ( वासिष्ठ पुराण )। पुण्यनृत के अनुसार पुराणे कवियों को मूल रचना को पुराण कहते हैं। परंपर्या काल में विषय की अपेक्षा काव्य या छन्दस्यों के साथ से चरित या कथा काव्य लिखने की प्रथा मिलती है। 'रासक' 'चर्चरी' 'अता' 'बेति' 'रमावन', 'कौमुदी' 'संकीर्तन' 'प्रकाश' 'विहास' 'विशय' 'अभ्युदय' दीपक में भी रचनाएँ प्रस्तुत हुई हैं।

अब अग्रतः काव्य विधाओं की साथ विभिन्नता में आन्तरिक एकता मिलती है। हिन्दी की आधिकांसीन रचनाओं में इन तरहों के प्रति विशेष आग्रह मिलता है। अग्रतः का अन्वित्य कृतियों का आरम्भ एक निश्चित रूप से होता है। आरम्भ में तीर्थीकरणों की मूर्ति पूर्वाकृतियों की प्रशंसा दुर्जन निन्दा की विधा मिलती है। आर्थिक मान-संबिधना पर आधारित होते हुए भी इनमें श्रु या और यज्ञ की उद्भासना काव्यात्मक तरहों को संयोजित करती है और कतिपय कृतियों में प्रमाद्वान्त काव्यों का आसक्त्योष मिलता है। कथानक-संयोजन में अन्वीर्य काव्यों का संग्रह भी इनमें किया गया है। इनमें कथानककृतियों का व्यापक प्रयोग मिलता है। कुमारीदर्शन गुणमयन, चित्रदर्शन से प्रेम की उद्भासना की कवि का प्रयोग इन रचनाओं में मिलता है। इन कृतियों का प्रयोग हिन्दी की आधिकांसीन कृतियों में ही नहीं बलितु 'पानम' 'पद्मावत' तथा इन रूपों की अन्य कृतियों में भी किया गया है।

इस विनियोग का प्रमुख मन्त्र में एक विशेष महत्त्व है। आधिकांसीन हिन्दी साहित्य की प्राचीनता इन्हीं मन्त्रों में निहित हुई है। 'अमृत' ग्रन्थ काव्य-रूप काव्यगत कृतियों और अमृत की दृष्टि में समीप में औरही घटावरी एक का लोभसाहित्य परिमिश्रित अग्रतः में प्राप्त साहित्य का ही ब्रह्म है, यद्यपि उसकी भाषा उच्च आमुग में योकी निम्न है। (हिन्दी साहित्य प्रथम संस्करण १९५०)।

ऊपर यह संक्षेप किया गया है कि अपभ्रंश काव्य में प्रबन्ध-काव्य तथा भाष्यायिका-काव्य चर्म-काव्य में विशेष अन्तर नहीं मिलता। 'पठमचरित' के कवि स्वयंभूने इस कृति को कथा की संज्ञा दी है। वे इसे 'राम कहा' कहते हैं—

बढमाण मुह कुहर विणिमय

राम कहा गइ एह कमाणय—[ पठमचरित ] ।

बगपाल ने भी इसी प्रकार अपनी कृति की कथात्मकता की ओर संकेत करते हुए कहा है।— 'णिम्मस पुण पविच-कहा'। इसी परम्परा में 'कीर्तिलता' 'पृष्णीराज रासो' 'मानस' आदि कृतियाँ जाती हैं।

अपभ्रंश की कतिपय कृतियों में कथा की प्रस्तावना ब्रह्मा-ब्रह्मा के माध्यम से होती जाती है। इसकी दो शैलियाँ मिलती हैं।

(क) दो व्यक्तियों के मध्य।

(ख) पुरु पत्नियों के मध्य।

'सीतावई कहा' में कवि-कविपत्नी की वार्ता के माध्यम से कथा प्रस्तावित है। हिन्दी की आधिकांशिक कृतियों में 'कीर्तिलता' 'पृष्णीराजरासो' इत्यादि में इस रुढ़ि का प्रयोग मिलता है। 'कीर्तिलता' में भृगु-भृषी की सम्वाद योजना की गई है। प्रत्येक पल्लव में भृषी भृम से प्रश्न करती है और उत्तर रूप में भृम कथा कहता है। इसी प्रकार 'पृष्णीराजरासो' में गुरु-गुकी के संवाद की योजना मिलती है। उदाहरण :—

'गुकी कहै गुरु संभरी कहा कथा प्रिय प्राग

पुपु भोरा भीषण पतु, किन तुम नैर बितान ।

आरह्ये समय में गुकी इक्षिणी के विषय में प्रश्न करती है—

जसि गुकी गुरु प्रेम करि, बाणि अन्त जो बत

इक्षिणी निष्पह व्याह बिचि मुप्य मुमति वत ।

आरह्ये समय में

कहै गुकी गुरु संभली नीर न जाबै मोहि,

रय निरान्निम नैर करि नय एक पूछो तोहि ।

मुकी सरिस मुक उम्बरपौ बरपो नारि सिर बित  
 सयन संयोगिनि संभरे, मन में मंडप हित ।  
 पग छद्बी चासुनय संभो बंधो सेत पुरसारं  
 ईक्षिनि ब्याहि इच्छ करि, कहौ सुनहि है कान ।

‘पृथ्वीराज रासो’ में यन्-उत्त कवि-कविपत्नी के सम्बन्धों की भी योजना मिलती है—

सम्यं ह्येक निशि चंद । बाम बत वस्त्रि रम पाई ।

विस्ती ईस गुनेयं । किति कहो जानि अंठाई ॥

इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि ‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप पर विचार करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यह संकेत किया है कि ‘रासो’ का आदि रूप इन सम्बन्धों में ही प्रस्तावित रहा होगा ‘यह बात आप से छिपाता नहीं चाहता कि यह बात मेरे मन में समाई हुई है कि चंद का मूल प्रथम मुक-मुकी संवाद के रूप में लिखा गया था और बितना बंद इस संवाद रूप में है उतना ही वास्तविक है । विद्यापति की कीर्तिछता से समान रासो में भी प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में और कदाचित् अन्त में—मुक-मुकी की बात भीत बरस्य रही होगी ।

संवाद दोली को दोस्वामी लुम्बीराज ने ‘मानस’ में भी जल्ताया है । ‘अपमर्श’ में भी मुक-सम्भार की परिभूमिका ग्रहण की गई है । थोटा-बछा की बिबा की ओर बालकाण्ड में संकेत करते हुए कहा गया है—

बाग बलिक जो कथा मुहाई । भयानक मुनि बरहि सुनाई ॥

कहिहैं सोइ तांबाद बलागी । मुनहु सकल सम्जन मुखु मानी ॥

संभु कीन्ह यह बरित मुहाबा । बहुरि ह्वा करि उमहि मुनाबा ॥

सोइ त्रिब कायमुनूहिहि दीन्हा । राम भगत अधिकारी भीन्हा ॥

तेहि सन आबलिक मुनि पाबा । तिन्ह पुन भयानक प्रसिमाबा ॥

—बालकाण्ड

कवि सम्पादक दोली का पूर्ण निष्पन्न उत्तरकाण्ड में करता है—

( क ) जब से राम प्रजाप रागेया । जगित भयद अति प्रबल दिनेया ॥

पूरि प्रकास रहेउ तिहूँ सोका । बहुतेन्ह मुख बहुसन मन सोका ॥  
बिन्हहि सोक ते कहतें बरानी । प्रथम खमिया मिसा मिसानी ॥

—उत्तरकाण्ड

(क) गिरिजा कहेतें सो सब इतिहासा । मैं बेहि समय गयतें लग वासा ॥  
सब सो कथा सुनहु अहि हेतू । मयउ काग पहि लग-कुल केतू ॥  
बब रघुनाथ कीन्ह रन कीड़ा । समुझत भरति होति मोहि वीड़ा ॥  
इन्द्रजीत करि आप बचायो । तब नारद मुनि गरुड पठायो ॥  
बंधन काटि गयो उलावा । उपजा हृदय प्रबंध मियादा ॥  
प्रभु बंधन समुझत बहु मांती । कल बिचार उरग आरासी ॥  
ध्यापक बहू बिरज बासीसा । माया मोह पार परमीसा ॥  
सो जस्तार मुनेतें लग माहीं । देखेतें सो प्रमाद कछु नाहीं ॥

—उत्तरकाण्ड

जयसी ने 'पद्मावत' में इस परम्परा का अनुकरण किया है—

मुखा बानि कसि कहू कस सोना । सिख दीप तोर कस सोना ॥  
कौन बप तोरी स्मरनी । दुई हौं खोन किबै पदमिनी ॥

×

×

×

×

मुमिरि स्म पदमावति केरा । हंसा मुखा रानी मुख हेरा ॥  
बहि सरवर मेंह हंस न आबा । बमुखा तेहि सर हंस कहाबा ॥  
दई कीन्ह अब जगत अनूपा । एक-एक तें आगरि स्मा ॥

—पद्मावत नागस्ती मुखा—

संवाद अध्या ४ १२

अपभ्रंश-काव्यों में पूर्ब कवि प्रपंचा कवि की आरम्भ सप्तम का प्रकाशन सम्बन्ध प्रपंचा दुर्जन मित्रा, काव्य-आरम्भ करने की एक निश्चित विधा बन गई हैं । हिन्दी की आदि काशीन कृतियों में यह विधा संरक्षित मिलती है ।

उदा ०:—कउ हउ हेमि नियमयणु न मुनिम जक्कुणु छडु बेसिय मियायमि ।

जा बिरहस्य जय बंडहि मुनि रहि सा कह कोस समाबमि ॥

पुण्यवन्त —महापुराण

पुनश्चपाण भमो मुकर्मि य सहस्रस्य कुसलाय ।  
 त्रिय लोप मुच्यते बहि क्यं बहि मि छिट्ठं ।  
 बभ्रुवृथाय—सकय-माह्वमि पोसाह्वमि भासाए ।  
 सनसय धंर हरणे मुकइरा मूषियं बेहि ।

[ अन्येष रासक ]

धुरं सय्य कम्भी लहु बन्ध कम्भी । तिनै बसियं बेहि सा भंग सम्भी ॥  
 कम्भी किती किती उकती मुक्कली । तिनैकी उचिट्ठि कम्भी बन्धकम्भी ॥

— बन्ध बज्जाई

व्यास भावि कवि पुंयस नाभा । निम्ह साबर हरि सुजस बखाना ।  
 बरन कमल बंदते तिन्हु केरे । पुनहुं सकल म्मोरय मेरे ॥  
 कति के कमिन्हु करतें पलामा । निम्ह बरने लघुपति गुन ग्रामा ॥  
 ये प्राकृत कवि वाम सयाने । भाषी निम्ह हरि बरित बयाने ॥

सुखसी — वागस-बागकाव्य

सत्यम प्रज्ञंसा—दुर्जम मिन्द्या

इह सत्यम लोपहु विषय छिटठ । जा पुट्टि बग्नस्यु विविन्हु इट्ठ ॥  
 जो पुणु सनु पुनहु बइहु संय । सो कि बन्धारियत बेर बंनु ॥  
 परनिन्दस लएहि बाबाक जानु । गुण बन्नु कहि कि बन्धारियत बेर बंनु ॥  
 परनिन्दस लएहि बाबाक जानु । गुण बन्नु कहि मि कोरि तानु ।  
 बड एकहु बेगिमि पर होरिछि । बड सहउ छड सिंसहं गुण पसाई ॥

सुखसी —

बहुदि बन्धि लस्यन सति माए । जो निनु बाज दाहिनेहु बावें ॥  
 परहित हानि साम निम्ह कर । उजरे हुण निषाद बसेरे ॥  
 जो पारोप लगहि छह सायी । परहित पुन तिनके मन यासी ॥  
 बन्ने यल बस सैय मरीया । सहम बरन बरजइ पर दोषा ॥

काव्य में कथानक कर्तव्यों का प्रयोग अप्रमत्त वा काव्यों में मुक्त मानस रूप से हुआ है । इन कर्तव्यों के माध्यम से कवि लोक मन्थनों को काव्य में स्थापन बना है, साथ-साथ कदा को बहिरीकता भी प्रदान करता है । अप्रमत्त वा काव्य-कृतियों में

इसे विशेष स्थान दिया गया है। उदाहरण स्वल्प ह्रस्व 'मविषयत महा' को ले सकते हैं। मविषयत, वसुधैव कुटुम्बकम् का साथ तिस्रह द्वीप व्यापार के लिए जाता है। वसुधैव तिस्रह द्वीप में उसके साथ छस करता है। उसे वहीं छोड़कर बहाज लेकर चला जाता है और मविषयत के संघर्षों की उद्भावना करता है। इसी प्रकार 'करकण्ड चरित' में करकण्ड चियल की यात्रा करते हैं। वहाँ की राजकन्या रत्निका से विवाह करते हैं। प्रत्यावर्तन में समुद्र में उनपर मत्स्यका आक्रमण होता है। विद्याधरी करकण्ड का अपहरण करती है। विद्याधरी उससे विवाह करती है। उसके पश्चात् कन्या करकण्ड रत्निका की संयोग भूमि में विरोहित हो जाती है। इस कृति का प्रयोग बायसी के 'पपावत' में किया गया है। इस कृति के 'चिन्ता-यात्रा खण्ड' 'सखी-समुद्र खण्ड' में इस कृति का ही प्रयोजन मिलता है। पपावती से विवाह कर रत्निका चितौड़ छोड़ता है। 'करकण्ड चरित' में समान रत्निका के सम्मुख भी समुद्र में घटना पड़ती है—

सुहृद उठी समुद्र उल्लसना । भुजा पंथ सरग नियराना ।  
 बोहित भवहि नैवे लव पानी । नाचहि राक्स भास सुमानी ॥  
 बुद्धि हस्ती घोर मानवा । अहुँ दिसि आह पुरै मंस खरा ।  
 तत्कल राज-मोहि एक जाना । सिखर दूट जस डसन सोसाबा ॥  
 बोहित टूक-टूक खल भए । एहुँ न जाना कहै चलि गए ।  
 भए राजा रानी बुई पाटा । हुनी बहे बसे बुद्धि बाग ॥  
 सखी-समुद्र खण्ड में बोहित दुपटना के पश्चात् पपावती और रत्निका—

मिलन की योजना सेही संयोग पर उपस्थित है। यह प्रस्तावना भी 'करकण्ड चरित' के अनुरूप ही है। सुखा से सम्बन्धित कृति का प्रयोग भी 'करकण्ड चरित' में उपलब्ध है। इस कृति के आठवें परिच्छेद में एक भुए की भी कहानी है। वह विद्याधर था। सुखा के रूप में उम्मेद के निकट एक पर्वत पर रहता था। वह विद्याधर था। उसने सेठ की कुटुम्बिनी से मुक्त करामा और राज बरानार में राजा को उसने आसीर्वाद दिया। बायसी के 'पपावत' का सुखा भी इस प्रकार का है—

एहि बन रहत गर्ह हम्ह जाऊ । तखिर बखस न देखा काऊ ।  
 भाव लखो खर बल भसनाही । आबहु यह बन छाडि पराही ॥  
 ये दो उहे और बन ताका । पंडित सुखा भुक्ति मल जाका ॥



बिछोड़ का व्यापारी मुजा से उसके गुणों के प्रति विश्वास करता है ।  
उत्तर में वह कहता है—

हौ बान्हन जी पण्डित कहु आपन गुन सोई ।  
पड़े के आगे जो पड़े गुन काम तेहि होई ।  
तब गुन मोहि अहा हो बैबा जब पिपर हुन धूट परेबा ।  
अब गुन कीन जो अब बजमाना । बानि मंजुसा ने ने आना ।  
पंडित होई से हाट नह चड़ा । जहाँ बिकाय भूमिना पड़ा ।

बनिबाघ सप्त-पृ० ११

हिंदी में इन वृत्तियों का विकास आप्त भाव-संस्पर्शों पर हुआ है । लोक  
चेतना पर विकसित होते वाली रूढ़ियों में समय के अनुसार परिवर्तन होता है ।  
उत्ताहरण स्वरूप सिंहल द्वीप में सम्बन्धित कथानककवि पत्रित्तिकास में अनेक  
परिवर्तनों के साथ ग्रहण की गई । 'पृथ्वीराज रासो' में इस रूढ़ि का प्रयोग  
पद्मावती विवाह के संदर्भ में हुआ है । परन्तु वहीं वह 'उत्तर द्वीप' की कन्या  
है और वह समुद्र सिंघार की राजकुमारी है ।

उत्तर दिशि यद् गङ्गापति समुद्र तिर पर इह दुष्प ।

वहै सुमित्रय सुरराजपति जादू कुलह बभय ॥

यहाँ समुद्र सिंघार में सम्मिलित 'सिंहल-द्वीप' का भाव निहित छगता है ।  
[ हिन्दी साहित्य का आदिकाल -पृ० ८४ ] । डॉ० त्रिवेदी की यह धारणा है  
कि यह कहानी १९ वीं शताब्दी की है । सिंहल देश की कन्या का प्रयोग नाम  
सम्प्रदाय में मात्स्यत्र की जीवनौ में मिलता है । मत्स्येन्द्र नाम किसी 'मारी देश'  
में पहुँच कर साधना अरु होने हैं । योगि सम्प्रदाय विष्णुति में सिंहल देश को  
'विवादेय बहा कन्या है । इस ओर संकेत करते हुए त्रिवेदी भी ने कहा  
है 'यहाँ प्रामाणिक केवल इतना है कि परवर्ती काल में भाव अनुष्ठितियों में  
मिथुन देश विवादेय कन्याजन एक दूसरे से उलझा लिया गया है । पद्मावत  
के समय में भी विवादेय दक्षिण में सम्मिलित था परन्तु बाद में उत्तर में  
सम्मिलित जाने लगा ।' आदिकाल-(८३)।

अन्यत्र काव्य-रूपों में एक विधा उन शृंगारों की है जिसका नामकरण  
लोक प्रचलित अनुष्ठानों पर हुआ है उदाहरण 'बाणसाक्षात्काश' 'फाग (फागु)

काव्य' 'बीमाठा-काव्य' इत्यादि । भाव-योजना की दृष्टि से इस वर्ग की रचनायें भी भरितकाव्य ही हैं । अपभ्रंश-काव्य विषयों के अन्तर्गत 'फागुकाव्य' एक विशिष्ट काव्य विधा है । हिन्दी के आरम्भिक में 'फागु काव्य' की स्पष्ट रूप योजना मिलती है या नहीं यह विवादपूर्ण है । क्योंकि भाषा की दृष्टि से आरम्भिक हिन्दी की अपेक्षा ये अवहट्ठ के निकट हैं । परन्तु 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (प्रथम भाग) में प्रारम्भिक हिन्दी पर विचार करते हुए लेखक ने फागु-काव्य को हिन्दी की आरम्भिक कृतियों के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए कहा है 'इस काल की काव्य-कृतियों में दो कृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं—जिन परकृत 'भूस्मिद् फागु' ( १२७१ वि० ) राजसेनर सूरि कृत 'नेमि नाथ फागु' परन्तु इस निर्णय के लिए सबसे प्रमाणों की आवश्यकता है ।

'फागु-काव्य' का विकास लोक मानस की भाव भूमि पर हुआ है । 'रासक' काव्य के समान सम्भवतः यह अपने आदि रूप में उत्पत्ति परक रहा होगा । काल-वर्षा में यह साहित्यिक रूप धारण करता गया और इसकी संस्थापना असंख्य काव्य के रूप में हुई । इसमें वीरि तत्त्व की प्रधानता मिलती है, परन्तु कतिपय कृतियों में काव्य-तत्त्व का भी समावेश मिलता है । अतः इनमें प्रबन्धात्मकता भी अनिवार्य रूप में विद्यमान है । वैसे यह बसन्त ऋतु का काव्य है । यह 'माघों' में विभक्त मिलता है । इनकी समाप्ति शाल्य रसमें होती है । विप्रसन्न के अन्तर्गत विषय की रसों की उद्भावना इनकी प्रमुखता है । 'बसन्त' के अन्तर्गत इनमें वर्षा तथा अन्य ऋतुओं का भी रूप-विधान मिलता है । इनके गायक ब्रह्म-वर्म-पुरुष हैं । अतः फागु काव्य की दो स्पष्ट धारायें मिलती हैं । प्रथम धारा के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता है तथा 'भूस्मिद् फागु' और 'नेमि नाथ' फागु दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता का आग्रह नहीं मिलता है । इनमें बसन्त, मुख्यतः उसके उद्दीप्त-स्वरूप का उद्भावना ही प्रमुख है तथा—'मोहिनी फागु' 'भूपर्द फागु' 'बसन्त विनास फागु' आदि रचनायें ।

'भूस्मिद् फागु' में भूस्मिद् के तप रंग की वेला के वर्णन के अन्तर्गत शोभा (विष्णु) के सौन्दर्य निरूपण का संक्षिप्त रूप विधान मिलता है ।—

मयण खण्ड जिमि रूह लहूत जयु बेपी रंरो  
सरलर तरलर रमामलर रोमाबलि रंरो

बिचौड़ का व्यापारी मुझ से उसके मुँहों के प्रति बिजासा करता है ।  
उत्तर में वह कहता है—

हौं बागहन जी पण्डित कहु आपन गुन सोई ।  
पड़े के जाग जो पड़े हुन लाम तेहि होइ ।  
तब गुन मोहि नहा हो बैसा जब पिजर हुन छुट परेसा ।  
जब गुन कौन जो बंद बधयागा । घालि मँबुसा बे पै धाना ।  
पंडित होई से हाट नह चड़ा । बहौं बिकाय भूकिया पड़ा ।

बनिबारा लख-गु० ११

हिन्दी में इन कृतियों का विकास बागुल भाव-संस्पर्शों पर हुआ है । लोक-केतना पर विकसित होते वाली कृतियों में समय के अनुसार परिवर्तन होता है । उदाहरण स्वल्प सिंहस बीप से सम्बन्धित कबानककङ्कि परिवर्तिकात्म में अनेक परिवर्तनों के साथ ग्रहण की गई । 'पृथ्वीराज रासो' में इस कङ्कि का प्रयोग पद्यावली बिबाह के सन्दर्भ में हुआ है । परन्तु यहाँ वह 'उत्तर बीप' की कन्या है और वह 'समुद्र सिंघार' की राजकुमारी है ।

उत्तर बिसि बड़ गङ्गपति समुद्र छिपर एक हुन ।

बहौं सुबिजय सुरराजपति बाहु कुम्हद अमय ॥

यहाँ समुद्र छिपर में सम्मत् 'सिंघस-बीप' का नाम निहित लगता है । [ हिन्दी साहित्य का आदिकाल -गु० ८४ ] । डॉ० दिवेरी की यह चारणा है कि यह कहानी ११ वीं शताब्दी की है । सिंहस देस की कन्या का प्रयोग नाम सम्प्रदाय में मरस्यन्त्र की बीबनी में मिलता है । मरस्येन्द्र नाम किसी 'मारी देस' में पहुँच कर सामना प्रप्त होते हैं । योगि सम्प्रदाय किङ्कति में सिंहस देस को 'प्रियादेश' कहा गया है । इस ओर संकेत करते हुए दिवेरी जी ने कहा है 'यहाँ प्रासंगिक केवल इतना है कि परवर्ती काल में नाम अनुभूतियों में सिंघस देस प्रियादेश कबरीवन एक दूसरे से उलझा दिया गया है । पद्यावत क समय में भी सिंघस्येस दक्षिण में समझा जाता था परन्तु बाद में उत्तर में समझा जाने लगा ।' आदिकाल-(८१)।

अपभ्रंश काव्य-रूपों में एक बिबा उग कृतियों की है जिनका नामकरण लोक प्रचलित अनुओं पर हुआ है उदाहरण 'बाह्यमासाकाव्य' 'अम (फागु)

काव्य' 'बौमाठा-काव्य' इत्यादि । भाव-योजना की दृष्टि से इस वर्ग की रचनायें भी चरितकाव्य ही हैं । अथवा ध-काव्य विभाजों के अन्तर्गत कामकाव्य' एक निश्चित काव्य विधा है । हिन्दी के आदिकाल में 'फाग काव्य' की स्पष्ट रूप योजना मिलती है या नहीं यह विचारपूर्ण है क्योंकि भाषा की दृष्टि से आदि कासीय हिन्दी की अपरान्त ये अग्रहण के निष्कर्ष हैं । परन्तु 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (प्रथम भाग) में प्रारम्भिक हिन्दी पर विचार करते हुए केवल ने फागु-काव्य को हिन्दी की आदिकालीन कृतियों के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए कहा है 'इस काल की काव्य-कृतियों में दो कृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं— जिन पराहत 'पूजिमह फागु' ( १२७५ वि० ) राजसेसर मुरि कृत 'नेमि नाथ फागु' परन्तु इस निर्णय के लिए सबक प्रमाणों की आवश्यकता है ।

'फागु-काव्य' का विकास लोक मानस की भाव भूमि पर हुआ है । 'रासक' काव्य के समान सम्भवतः यह अपने आदि रूप में दूर-वीथ परक रहा होगा काल-अवधि में यह साहित्यिक रूप धारण करता गया और इसकी संस्थापना अर्द्धकृत काव्य के रूप में हुई । इसमें गीति तत्त्व की प्रधानता मिलती है, परन्तु कतिपय कृतियों में काव्य-तत्त्व का भी समावेश मिलता है । अतः इनमें प्रबन्धात्मकता भी अनिवार्य रूप में विद्यमान है । वैसे यह बसन्त ऋतु का काव्य है । यह 'मासों' में विभक्त मिलता है । इनकी समाप्ति शान्त रसमें होती है । निप्रकम्प के अन्तर्गत विषय की वधाओं की उद्भावना इनकी प्रमुखता है । 'बसन्त' के अन्तर्गत इनमें बड़ी तथा अन्य ऋतुओं का भी रूप विधान मिलता है । इनके मायक जन धर्म-मुख्य हैं । अतः फागु काव्य की दो स्पष्ट शाखाएँ मिलती हैं । प्रथम शाखा के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता है तथा 'पूजिमह फागु' और 'नेमि नाथ' फागु सुन्दर वर्ण के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता का आग्रह नहीं मिलता है । इनमें बसन्त, मुख्यतः उसके उपनि-स्वरूप का उद्भावना ही प्रमुख है, उदा०—'मोहिनी फागु' 'सुन्दर फागु', 'बसन्त बिलास फागु' आदि रचनायें ।

'पूजिमह फागु' में पूजिमह के तप-योग की चेष्टा के वर्णन के अन्तर्गत कोषा (विद्या) के मीन्द्रिय निरूपण का संक्षिप्त रूप विधान मिलता है ।—

मयम खण त्रिमि कह कहत जमु बेची दंडो

सरकत तरकत द्यामकत रोमाकति दंडो

तुंग पयोहर उल्लसह सिंगार वपकका  
 कुमुम बाणि निव जमिय कुम्भ किरपापणि भुम्भ ।  
 काजल जजिमि नपन ज्यु तिर संवत-काइई,  
 मोरियाबाइ कंचुसिय युव परमदिल ताइई ।

मदन के लड़क के समान बेनी सहृदयी है। तरल-सरल रोमाञ्चि गृहार  
 मुक्त है। उल्लुंग उल्लसित पयोहर गृहार की संस्थापना करते हैं। कुमुम बाण की  
 स्थापना से कामदेव ने अमृत के दो बट रख दिये हैं। नेत्र कम्बलमुक्त हैं। केय में  
 मोंग कर कंचुकि-जम्ब से छपने बधस्वली को मुसम्मित किया है। इस कृति  
 में बसन्त के अतिरिक्त जम्ब श्रुतियों के उद्दिष्ट निश्च भी निबोधित हैं। उदा०  
 प्रस्तुत अंश में वपौ का वप विधान विशेष दर्शनीय है—

मिर मिर मिर मिर मिर-मिर ए मेहा बरिसति ।  
 ललहल-ललहल जलहल-ए बाहला बहति ॥  
 मज मज मज मज ए बीबुबीह मजकुह ।  
 बर-बर-बर-बर ए बिरहिनि मन कम्पई ॥

‘मे मेह रिम रिम रिम बरस रहे हैं। मे माने कल-कल छज में प्रति  
 पन्नित हो रहे हैं। बिद्युत (मज मज मज) जमक रही है। बिरहिनी का मन  
 बर-बर कांप रहा है।

महु गम्भीर धरेन मेह जिविजिमि बाजले  
 पंचबाण निव कुमुम बाण सिमतिम धाजले  
 विम विम कैतलि महुमहुत परिमल विपसावह,  
 विम विमकामिय बरस बाणि निव रमनि मनाबह ।

‘जैसे जैसे मधुर’ स्वर-मैत्र गर्जन करते हैं। जैसे जैसे कामदेव अपने बाणों से  
 मुसम्मित हो रहा है। जैसे-जैसे केयकी अपनी सुरभि और जम्बा परिमल प्रसारित  
 कर रही है। त्यों-त्यों कामी अपनी रमयियों के चरणों पर मिर कर मना रहे हैं।  
 इस वर्ण की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है ‘नेमिनाथ काव’। यह राजमती तथा  
 नेमिनाथ की कथा-जंवेदना पर समित है। इस कृति में श्रुत-वर्णन नहीं मिलता  
 है। बसन्त सुर की ‘स्मृत महोद्या प्रेम विकास काव’ इस परम्परा की एक

हेमचन्द्र ने 'देवी नाम माला' में 'फामु' के स्वरूप की ओर प्रस्तुत पंक्तियों में संकेत किया है—

फम्पु महम्मणे फम्पुही नवणी फम्पुस फम्पुसा मुक्के ।

देवीनाम माला । १।८२ ।

वस्तुतः वस्तुतोत्पन्न के अर्थ में हेमचन्द्र ने 'फामु' की मूल अनुवृत्तता को स्वीकार किया है । 'विनपद्मसूरि' ने 'स्फुल्लमह फाम' में 'फामु' के स्वरूप की ओर संकेत करते हुए कहा है :—

अर तर गच्छि शिख पद्म सूरि किम फामु रसैवमु ।

सेवा नाचइ येन मामि रमिहि भावेवत ॥

—स्फुल्लमहफामु ।

'रत्नपुर मंडन भाविनाथ फाम' में 'फामु काव्य' की चर्चा प्रस्तुत पंक्तियों में की गई है —

वेधा मंस बमानइ ए, पाचइ पंचम रागु,

रंग भरिइक लेखइ, गोसिह विजवर फामु ।

इस प्रकार लोक-नृत्य की परिभूमि से पद्धति होकर फामु-काव्य ने एक विशिष्ट प्रकार के संस्कृत काव्य विधा का रूप धारण कर लिया ।

'फामु काव्य' की सामान्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

- (क) संस्कृत शैली में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अंकन ।
- (ख) विष्णु की उद्भाषना में लोकगीतों की भाव-संवेदना का अंकन ।
- (ग) काव्य का उपसंहार संयोग एवं शान्त रस में कथा प्रवाह कृतिमें में नायक-नायिका जैन धर्म में दीक्षित हो जाते हैं ।
- (ङ) 'फामुकाव्य' 'भासों में विभक्त हैं । इनमें 'फामु' 'रोला' तथा 'दूहा' छन्दों का प्रयोग मिलता है ।

'द्वितीय मेमिनाथफामु' 'अम्मुत्थामीफामु' 'पार्श्वनाथफामु' में 'दूहो' का प्रयोग मिलता है । सोसहवीं शताब्दी के फामु काव्यों में संस्कृत श्लोकों का प्रयोग किया गया है । अथा० 'नारी निरास फामु' में 'श्लोक' तथा 'दूहो' के अंश की योजना मिलती है । इस काल के 'फामुकाव्यों' में 'रासक' छन्द का भी

प्रयोग मिलता है। 'फामु शैली' के अन्तर्गत एक अन्य शैली का विकास मिलता है जिसे 'गीता शैली' की संज्ञा मिली है। इसी शैली की ओर संकेत करते हुए डॉ० बृहन्न धर्मा तथा बृहन्न बोम्बा ने कहा है 'जब काव्य की फामु शैली अग्निप्रेत के कारण जनप्रिय बनने लगी तो इसके अन्तर्गत भद्र भी लिखलाई पड़ने लगे फामु का एक विकसित रूप 'गीता' नाम से प्रचलित हुआ रास० रा० काव्य पृ० ७७ उदा० 'अमर गीता' (अमरुम्भ) 'नेमिनाथ अमर गीता' 'जम्बू स्वामी अमर गीता' इत्यादि।

प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त अपभ्रंस काव्य की दूसरी काव्य विधा मुक्तकों में मिलती है। इस वर्ग की रचनाओं की जैन-साधना से ही सम्बन्धित है। इस वर्ग में भाव व्यक्तता की दृष्टि से दो चारों मिलती हैं।

प्रथम वर्ग की रचनाओं में समाधि ज्ञान की चर्चा है। दूसरे वर्ग की रचनाओं में आश्रितों को उपदेश दिया गया है। (उपवास, तीर्थ व्रत-माछन आदि का उपदेश)। ये रचनाएँ काव्य के अन्तर्गत इसलिए स्वीकार की जा सकती हैं कि वे पद्य-बद्ध हैं।

प्रथम वर्ग की रचनाओं को साधारणतः रहस्यवादी रचनाओं की संज्ञा दी गई है। इनमें जोहन्नु (जोगीन्द्र १० की शवी) का 'परमात्म प्रकाश' और 'मोमासार' रामसिंह का 'पाहुड़ बोहा' हैं।

मुद्धि मुद्धि मुद्धि । सिद्ध मुद्धि चित्तमुद्धि ।

चित्तमुद्धि मुद्धि चित्तमुद्धि । संसारहं जहन्नु चित्तमुद्धि ।

ओ मुद्धि । चित्त मुद्धि चित्तमुद्धि । चित्त मुद्धि नहीं किया चित्तने चित्त मुद्धि किया उसने संसार को खण्डित कर दिया ।

जिमि छोन चित्तमुद्धि पावियहं तिमि जहन्नु चित्तमुद्धि

समस्त हूँ जीवका काहं चित्तमुद्धि करिज्य ॥ १७६ ॥

इस प्रकार जल पानी में विलीन हो जाता है उसी प्रकार चित्त परमात्मा में विलीन होकर समस्त हो जाता है।

इस सम्प्रदाय में विशेष उल्लेखनीय यह है कि जैनधर्म के सिद्धान्त निरूपण में

रामसिंह ने योग-मूलक शब्दों का प्रयोग किया है। 'अनाहतनाद' 'ब्रह्म रंघ' 'ईशा सिंहा' स्त्री-परक रूपों का प्रयोग मोक्ष-वर्णन के सम्बन्ध में किया गया है।<sup>१</sup>

सुप्रभाचार्य की कृति 'बैराग्यसार' इस सन्दर्भ की अन्य महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 'त्रिपरी', 'पद्मटिका' आदि का प्रयोग किया गया है। किन्तु दोहों की संख्या अति व्यापक है। विषय की दृष्टि से यह 'पाहुड़ दोहा' की भावधारा की कृति है। उदा०—गुरु-जिगमक गुरु सिद्ध सिद्ध गुरु एगलतय साध

सो हरिसाई अय्य आचरा, भवजल पावइ पाव।

'गुरु जिनकर है गुरु सिद्ध है सिद्ध और एगलतय (दर्शन ज्ञान चरित्र) के तत्त्व हैं। वह आत्म और पर-दर्शन कराता है उसकी कृपा से भवसागर पार जा सकते हैं। गुरु की महिमा का यह पद कबीर या उनके वर्ग के अन्य साधकों की भावनाओं के अनुरूप है।

### सिद्ध साहित्य

बौद्धधर्म से विकसित महावान सम्प्रदाय की विभिन्न अनुवर्तनाओं पर रचित साहित्य को 'सिद्ध साहित्य' की संज्ञा मिली है। इस वर्ग का साहित्य बंगाल के पासमचीय राजाओं के राजत्व काल में आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य लिखा गया है। अतः इस वर्ग के साहित्य में मगध प्रदेश में विकसित चार सौ वर्षों के मध्य की भाषा के विकसितस्वीकृत स्वरूप के भी दर्शन हो जाते हैं।<sup>२</sup> इस निविष्ट साहित्यिक धारा का सर्वप्रथम प्रकाशन

१ पाहुड़ दोहा मगध ग्रन्थ जैसा जमता है। विषय का क्रमबद्ध विवरण नहीं मिलता। कृति के कुछ पद्य हेमचन्द्र ने उद्धृत किए हैं (पा० दो-मू० पृ० २२ ३३)। अतः दोहों निविष्ट रूप से हेमचन्द्र के पूर्व के हैं। गोपीन्द्र और रामसिंह की कृतियों के पद्यों में बहुत मात्र-साध्य है।—हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड-पृ० ४११।

२ तिब्बती परम्परा के अनुसार सिद्धों की संख्या ८४ है। 'वर्ग एकाकर' (सम्पादक सुनील कुमार चटर्जी तथा बबुआ मिथ—एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल १९४०) में ८४ सिद्धों का उल्लेख किया गया है परन्तु नामावली के अन्तर्गत केवल ७५ सिद्धों के ही नाम दिए गए हैं। किन्तु केवल निम्नलिखित साधकों की रचनाएँ ही उल्लेख्य हो सकी हैं—सुरिपा (सूर्यपाद सुरीपाद सुरी



महामहोपाध्याय हज्जतार शास्त्री द्वारा हुआ । सन् १९१६ में उनकी प्रसिद्ध कृति 'हजार बत्तर पुराण भाषणा भाषाय बीड़ यान ओ दोहा ( हजार वर्ष प्राचीन वेदवा भाषा का बीड़ यान और दोहा ) प्रकाशित हुई । नेपाळ दरबार काइबरी में बार स्वातंत्र्य ग्रन्थ—'बर्वावर्धनविनिर्दिषय' सरोज राज का 'दोहा कोष' कुम्भाचार्य का 'दोहा कोष' तथा डाकार्जय-संकलित है । इन समस्त को एक ग्रन्थ में शास्त्री महोदय ने सम्मिश्रित किया । 'अर्था पीठ संघट्ट' का मुखनाम वा 'बर्वा पीठ कोष'। इसके लिखिकाक के अनेक काज फावात् मुनिरत्न ने इस पर एक कृति लिखी । इतिहास ने इसका नामकरण 'बर्वावर्धनविनिर्दिषय' किया वा । <sup>१</sup> मुनिरत्न

बाल), कुकुरीपा (कुकुरीपा), विष्वा (विष्वा), मुष्वा (मुष्वा) बाटिल ( बाटिल पाव ) मुकुस ( मुकुस पाव ) कान्हा ( कुम्भापाव ) कानसि ( कम्भ साम्बर पाव ) डोम्बी ( डोम्बी पाव ) घासि ( घासिपाव ) मक्षिवा ( मक्षिवा ) बीमा ( बीमापाव ) सरह ( सरहपाव ) बर ( बरपाव ) अजदेव ( अजदेव पाव ) टेन्तवा ( टेन्तवा ) दारिक ( दारिक पाव ) भारे ( भारपाव ) ताङक ( ताङक पाव ) जमन ( जमनपाव ), नाम ( नाम पाव ) ( तनी-विजयी परम्परा से प्राप्त ) ( काङ्गी डोम्बी ) ।-देखिए अर्थापीठ पदावली डॉ० सुकुमार सेन ( साहित्य समा वर्धमान ) । भी राहुकतां कृत्यात्म के अनुसार जिन शब्दों की रचनाये उपर्युक्त हैं उनकी नामावली इस प्रकार है—सहपा ( नाकवा मरी घती ) सवरपा ( किन्न सिखा ) ननुकपा ( नाकवा ) लुईपा ( मय ) विष्वा ( मय ) डोम्बी ( मय ) दारिकपा ( उड़ीवा ) , मुष्वा ( विष्वा ) कुकुरीपा ( कसिन्वस्तु ) कम्बपा ( उड़ीवा ) कान्हा ( बिहार-अज्ञात गोरखपा ( गोरखपुर दसवीं घती ) तंषिपा ( कसिन्वस्तु ) महीपा ( मय ) भारेपा ( दारिक ) नामपा ( किन्न मक्षिवा ) सिन्धोपा ( मय घावली घती ) घासिपा ( मय ) —देखिए—हिन्दी काव्य बाण ( राहुकतां कृत्यात्म ) । ( मिताव महत् इलाहाबाद १९४२ ) ।

नेपाळ दरबार के लिखिकों ने 'मुखग्रन्थ' और 'इति' इन दोनों की अल्प प्रत्यय प्रसिद्धियों की थीं । डॉ० सुकुमार सेन ने 'मुख ग्रन्थ-पाठ' और 'इति' में प्रस्तावित पाठों में प्रायः अक्षर का निर्वसन करते हुए इस धारणा की संस्थापना की है ।

ने 'अर्थाश्चर्यं विनिश्चय' की रचना जिस समय की इस सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से कुछ कहने में असमर्थ हैं। परन्तु भाषा-स्वरूप तथा अन्य इतिहास सम्मुख संकेतों का आचार ग्रहण कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि 'अर्थाश्चर्यविनिश्चय' की रचना चौदहवीं शताब्दी में हुई। अतः 'अर्थाशीत' और 'दोहों' की रचना इसके पूर्व ही हुई होगी। भाषा-स्वरूप का आचार ग्रहण कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इनकी रचना ६-१२ शताब्दी में के मध्य अवस्था हुई होगी। इस प्रकार यह भी संकेत मिलता है कि समस्त वीर और दोहा एक काल की रचना नहीं हैं। मिला मिला कालों में ये रचनाएँ हुई हैं। गुरु-शिष्य परम्परा में इनका मौखिक विकास भी होता रहा है।

महामहोपाध्याय श्री हृष्यप्रसाद शास्त्री ने कुरीपा को आदि सिद्धाचार्य माना है। कुरीने बौद्धरक्षण से सम्बन्धित 'अमिसमयविमर्ग' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह अनुमान किया जाता है कि कुरीपा बीपंकरजीज्ञान के समकालीन थे और 'अमिसमयविमर्ग' के रचनाकार के रूप में उन्होंने बीपंकर का सहयोग प्राप्त किया था। बीपंकर जीज्ञानने १०३८ ई० (कतिपय विद्वानों के अनुसार १०४२ ई०) में बिष्णुपरीक्ष से विन्यास की यात्रा की थी। पन्द्रह वर्षों तक उन्होंने वहाँ कर्म प्रचार किया। इस निष्कर्ष के अनुसार कुरी का समय प्यारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध था। परन्तु डा० सुकुमार सेन के अनुसार कुरी का समय बसबीं शताब्दी है। इनका यह निष्कर्ष है कि कुरी और बीज्ञान सामयिक नहीं थे। परन्तु काल में कुरी के अपूर्ण ग्रन्थ 'अमिसमय विमर्ग' को उन्होंने पूरा किया। डॉ० सेन ने एक

अर्था-संख्या	लिपिकार का मूक	वृत्ति-उद्धृत मूक
२६	अईसन अर्था कुरुकुरीपाएँ पाईक अईसनि	
६३	तिन न कुरुपई हरिता पिई न पानी	खन्तइ
८१	सोने भरिल्ली कइता नाबी	भरिल्ली
१३५	बलद बिभाएल गविआ बोल	बलदा गावी

डा० सुकुमार सेन ने एक अन्य दृष्टि से मूक लिपि तथा मुनिदत्त की वृत्ति में प्राप्त पाठ के लिपि-बाल में अन्तर होने का संकेत किया है। मूलपाठ के लिपिकार ने वीर के प्रत्येक चरण की द्रुमपद के रूप में स्वीकार किया है। मुनिदत्त न प्रायः समस्त अर्था के द्वितीय पद को द्रुमपद कहा है। यही पृ० ३४।

अन्य सम्मानना की प्रस्तावना की है। इनके अनुसार 'अमिसमय' सुई की भूस कृति थी। और इन कृति की परिधि की रचना श्रीमान ने 'विमंग' नाम से की थी। सिम्हली परम्परा से प्राप्त ग्रन्थों में सुई के तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। 'वी भगवदु मिसमय' 'अमिसमय विमंग' तथा 'तारनस्वभाव बोहा कोप गीतिका दृष्टि नाम। डॉ० मुकुमार सेन की यह चारणा है कि इस अमिसमय कृति में सुई के 'बोहा' और 'अपीगीत' का संग्रह है। तारानाथ के अनुसार सुई चारणा के सिम्ह से०।

सुई—सुईवा की रचना में अन्य अपीकारों से अधिक स्पष्टता है। तांत्रिक राजावली और 'संख्या भाषा' का आभास इनकी रचनाओं में नहीं मिलता है। आरम्भिक चक्र में चक्र-निमोजन की चेष्टा मिलती है परन्तु चक्र की पूर्णता पर ये ध्यान नहीं देने हैं। उदा०

कामा तस्मर पंच विदास ।

अचस चिए पईठो वास ॥ सु ॥

विह करिज महासूह परिवान ।

सुई भनई सुव पूम्बिज बानि ॥

सकस समाहिष काहि करीमद ।

सुख बुजेये निचित मरिबद ॥

'तन तस्मर है पौच सासामे ( इन्द्रियों ) है अचस चित में कास प्रवेश कर गया है महासूह को प्रमाण कर (चित) को दृढ़ करो। सुई का कथन है कि सुव से ज्ञान प्राप्त करो। समस्त उपलब्धियों से काय क्या ? सुख-सुख दोनों ही स्थितियों में मृत्यु निश्चित है। इस प्रकार अन्य अपीकारों के समान चक्र की सम्पूर्णता यहाँ नहीं मिलती है। इस कथन में स्पष्टता है साक्षरिता अथवा संख्या भाषा का नियोजन भी नहीं है। अपने दूसरे गीत में सुई ने साधारण स्तर पर यह कहा है कि योगधारण द्वारा ही आध्यात्मिक दृष्टि की उपलब्धि होती है ज्ञान-रूप से इसकी उपलब्धि नहीं साध्य वेद-पुस्तक द्वारा इस पथ का निर्देशन नहीं हो सकता।

१ अपीगीत राजावली भूमिका

२ *Mystic Tales of Taranath*—By Edolsteinminio  
इस कृतिका संस्कृत अनुवाद श्री भूपेन्द्र नाथ दत्तन किया है—पृष्ठ ११।

भाव न होइ अभाव न जाइ

अइस सवोहै को पतिजाइ ।

बाहिर बण-भिम्ह-बज न जाणी ।

सो कहसे आगम-जे ऐं यत्नाणी ।

‘अहाँ भाव की स्थिति नहीं है अभाव का प्रवेश नहीं है इस प्रकार की प्रस्तावना पर कौन विश्वास करेगा ? जिसके वर्ण-संज्ञान और रूप का परिचय नहीं उसका वर्णन वेद कैसे करते हैं ?

सरहपा—राहुल साँहरपायन ने सरहपा को भारि सिद्धाचार्य माना है । इनके अनुसार इनका काल ७६० ई०—८०६ ई० है । राहुल जी के अनुसार सरहपा की मुन्सरम्परा इस रूप में है ।

शान्ति रसित (वर्मपात्र के सामयिक ई० ७७०-८१५) हरिमन्त्र ।

|

सरहपाव ।

|

सबरपाव ।

|

सुईपाव ।

( गंगा-पुरावर्त्तांक ) १६३३-पृ० २२०

राहुल जी का निर्भय सारनाथ के आधार पर अवलम्बित है\* । इनका बौद्ध नाम ‘राहुलभद्र’ था । ये बन्ध्यानीसाधक भी थे । इनका बन्ध्यानी नाम ‘सरोजबन्ध’ भी था । राहुलसाँहरपायन द्वारा निर्धारित सरह का समय विवाद पूर्ण है । सरह का समय बसनी घाटाब्दी से पूर्व नहीं पड़ता है । ( देखिए मैथौर मिस्त्रीके पृ० ३१ ) । बायहनी घाटाब्दी तक सरह के अनेक दोहे सोक जीवन में प्रचलित हो चुके थे ।

१ ये वास्तविक विषयविचारण से सम्बन्धित थे । ऐसी किंवदन्ती है कि उन्होंने घर (बाघ) बनाने वाली निम्न जाति की स्त्री को साधना-मुद्रा के रूप में ग्रहण किया था । अतः उन्हें सरहस्त पाव (सरहपा) कहा गया है ।

पण्डित विद्याकरचन्द्र ने सरह के बोहो का संकलन किया था। इस संकलन के अन्त में कुछ बोहो विद्याकरचन्द्र लिखित हैं।

हरा०—सम-संविता तत्त फनु-सरह पाब अनन्ति।

जो भनगोजर पाठिबई सो परमत्त ॥ होन्ति ॥

सरह के अन्त में संग्रहकर्ता ने लिखा है—

बोहि विनट्ट पनट्ट-पक सोहिअ मन्थ बुन्त।

सरहपाब किम बोह सिऊ सो संविन्त एन्थ ॥

'विनट्ट' अथवा प्रनट्ट पर जो कुछ कर देने वर्ष स्पष्ट किया है। इस प्रकार सरह का बोहो संयोजित हुआ।

विद्याकरचन्द्र ई० सन् ११०१ के पूर्व हुए थे। सरह के बोहो को प्रनट्ट होवे यदि पचास वर्षों की अवधि लगी होनी तो सरह का समय प्याहड़ी सदाबरी का प्रथमार्ध निश्चित होता है।<sup>१</sup> सिम्बरी परम्परा में सरह के लिए 'महायोगी' 'बोमीस्वर' 'पद्माक्षर' 'महाचार्न' आदि उपाधियों का प्रयोग मिलता है। सिम्बरी परम्परा से इनकी जो कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें 'महा समुद्रोपदेश' 'उपदेशवीति' 'द्वारोपदेश' 'बमोपदेश' 'तत्त्वोपदेशसिद्धार' 'चर्मीवीति' 'माकना दृष्टि वीति' 'नितकोप-अवबन्ध गीति' 'दामिनी-मुह्य बन्ध गीति' इत्यादि प्रमुख हैं।

छायाभाष ने दो सरह का उल्लेख किया है। एक खरौपा के समकालीन थे द्वितीय ब्राह्म आचार्य सरोरह थे। वे पण्डित थे राज पुरोहित थे। शाहिनी का संम करने के कारण राजा ने उन्हें निर्वासित किया था। राजास साहुत्याकन ने इन दो स्वतन्त्र ब्राह्मणों में अन्तर नहीं माना है। राजास जी का ही अनुसरण अन्य इतिहास केवलों ने किया है। फलस्वरूप वे स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं कर सके हैं।

सरह के नाम के चार 'चरौपद' मिलने हैं। उनमें प्रथम है बाईसवों पर निवका बारम्भ इस प्रकार है—

१-देखिए चर्मीवीति पञ्चमली पृ० १७।

२-वही।

अपने रवि रवि भव निर्वाणा

मिछे कोम बन्नावए अपना । भर ।

इसमें साधक की यह भारणा है कि समुल्लभ अपनी वृत्तियों के कारण ही भव बन्धन में बद्ध है । अम-मरण के भाव से मुक्त होने के लिए अपनी वृत्तियों से ऊपर उठना होना । दूसरे 'चर्यागीत' (१२) में सरह सहजसमाधि की स्थिति का निरूपण करते हुए सहजपथ के स्वरूप की व्याख्या करते हैं ।

नाद न बिन्दु न रवि न छवि मच्छल ।

बीमराज सहाये भूकल । द्रु ।

उबू रे उबू छाड़ि मा केन्ह रे बंक ।

निबड़ि बोहि मा बान्ह रे कंक ॥

'जहाँ नाद है न बिन्दु है न रवि है न छविमच्छल है राज स्वभाव से भित्त जहाँ मुक्त है । सहज मार्ग का परिणाम कर तिर्यक मार्ग को मत ग्रहण करो । बोधितरु निरुद्ध है संका जाने की आवश्यकता नहीं ।" तीसरे 'चर्यापद' (१८) में साधक ने तन को मीका मन को नाभिक और गुह-उपदेस को पतवार के रूप में स्वीकार कर अब निर्वाण की विधि की चर्चा की है । चौथे 'चर्यापद' (१९) में साधक ने मन के अविद्यापूर्ण स्वरूप की चर्चा की है । अविद्या से मुक्तिहेतु गुह-उपदेस अपेक्षित है । इस प्रकार इन पदों में ध्यान-धारण और योग-स्वरूप निरूपण ही मिलता है । इनमें तांत्रिक साधनाओं की विधियों की ओर संकेत नहीं मिलता है ।

सद्य के बोहों में सिद्ध-बारा की चिन्तन विधि और बीजन-बारा-स्वरूप का व्यापक विस्तेरण मिलता है । इन दृष्टियों से इनका विशेष महत्त्व है ।

भावधारा के अनुसार इनके बोहों के वर्गीकरण का प्रयत्न किया गया है ।<sup>१</sup> बोहाकोप ॥ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

१—राहुक सांख्यध्याय ने हिन्दी काव्य बारा में इस प्रकार का विभाजन किया है —

(१) एह्यबाह (२) पाकण्ड-बाह्यन (३) मंत्र-देवता बेकार (४) योग में निर्वाण (५) काया-तीर्थ (६) गुह-महिमा (७) सहज-संयम (८) कमल-कुमिदा ।

पयस बहने लउ जो हस्तह । बलन जलने लउ सो डग्गह ॥

नन बरिसने लउ जो सिम्भह । न डग्गहहि लउ लजहि पहस्तह ॥

‘पयस की संभारबसीलता से जो अन्तममग नहीं होता है ज्वाला की जलन से जो पय नहीं होता है नन-जप से जो भीपता नहीं है न लो(उसकी) उत्पत्ति होती है, न उसका राग होता है ।’

विषम रमल न विषम विक्षिप्यह । उमर हरह न पाणी क्षिप्यह ॥

एमह बोह मूळ सरलतो । किसहि न बाहह विषम रमलतो ॥

‘विषम में रमल करते हुए विषम में विक्षीन न हो; उमरे गृह में पाणी नहीं क्षिप्य इस प्रकार इस मूल सरल को विषने ग्रहण कर किया वह विषम में रमल करते हुए भी विषम में प्रवाहित नहीं होता ।’

नरे लज्जई बाहिरे पुच्छह । पद देखह पड़िबेसी पुच्छह ॥

चरह नमह बड़ । बाबउ जप्पा । लउ सो बेय न बारन जप्पा ॥

—दोहा कीय

‘गृह में रहते हुए बाहर जोकता है पति को देखती है परन्तु पड़ोसी से पूछती है । चरह कहते हैं मुर्ख । अपने को बागो ध्यान-बारन-अप से उसकी अपलम्बि नहीं होती है ।’

विख्या विख्या-भिन्निष्ठ केवल एक यही उपलब्ध है । सिद्धांती अनुवाद ॥ ‘महायोगी’ ‘योगीश्वर’ आचार्य विद्या की प्रस्तुत कृतियाँ प्राप्त हुई हैं । ‘कर्मचण्डालिका’ ‘मामगीति’, ‘दोहाकीध’, तथा ‘विख्या पद चतुर्वीति’ । तारा नाम ने यह उल्लेख किया है कि कान्हू का ही दुख नाम विख्या था । कान्हू के नाम से प्रचलित एक यही में तारागान के अंशों का आभास मिलता है ।

केहो केहो लोहोरे विद्या बोलई,

विद्वज्जन लीज तोरे कण्ठ न देखई । नह ।

कान्हू यादत काम बगडाली,

दोहि नत मायकि गाहि भिदनाली । पद ।

'कोई-कोई तुम्हें 'विष्णा' भी कहते हैं। विद्वान लोग तुम्हें कण्ठ से मुक्त नहीं करते। काण्ह ने माग माया तुम बाण्डासी हो। डोम्बी से अधिक पप भ्रष्टा अन्य कोई नहीं है। परन्तु इस सन्दर्भ में 'विष्णा' का अर्थ कुम्प से है। काण्ह ने विष्णा के नाम से कुछ लिखा है इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

गुण्डरीपा का उल्लेख तिब्बती परम्परा में नहीं मिलता है। इनके नाम से केवल एक वर्षापर मिलता है (वर्षा संख्या ४) — उदा०

तिब्बटा चापि बोइनि दे बँकवासी ।  
 कुम्पिवा बाण्टे कण्ह विधासी । द्रव ।  
 बोइनि तँह बिनु लनहि न बीबमि  
 तो मुह पुमि कम्मल-रस पीबमि,  
 सेपहुँ बोइनि क्य न बाज  
 ममि कुले बहिमा उडिमान समान ॥

सासु परे धानि कोचा ताका ।

चौर-सूज बेणि पछा फाछ ॥

मणह कुण्डरी अम्हे कुनुर बीरा ।

नर न नारी मानो उमिल बीरा॥

'बंक' में से योगिनी (मुने) अस्मिन् प्रदान कर। कम्मल-बज्र की कीड़ा में निबस समाप्त हुआ। जो योगिनी। मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी बीबित नहीं छू सकता। तुम्हारे बज्रों को विचुम्बित कर मैं कम्मल-मधु का पान करता हूँ। मलिकूल से (यह) बोडियान तक पहुँचती है। द्वास बार ताका-मुंजी से बन्द है। चौर-सूर्य के दो पंख खुले हैं। कुण्डरी कहते हैं हम प्रेम-कीड़ा में डूबे हैं। भर-नारियों में (प्रेम) पलाका उत्तोलित हैं। प्रस्तुत वर्षा में बाम-नार्योप प्रतीको द्वारा काया-साधना की विधि की चर्चा की गई है। 'कम्मल' 'कुम्पि' 'बोइनि' उडियान 'चौर' 'भूरज' आदि प्रतीकार्थक शब्द हैं जिनका प्रयोग छिद्रसाहित्य में नियमित रूप से किया गया है। ये छिद्र साहित्य के पारिभाषिक शब्द हैं। डा० सेन की धारणा है कि गुण्डरीपा इनका छप (कवि नाम) था। सम्भवतः इनका नाम पुण्ड कवि या 'पुण्ड' था।



मुसुकपा के नाम से सम्बन्धित आठ जर्बोप्य मिले हैं। पर प्रचलित धारणा यह है कि 'बोधिष्मयितार' तथा 'सिद्धासमुज्जय' नामक छन्द मुसुकपा-रक्षित हैं। इनका नाम धातिवेच था। परन्तु वास्तविकता यह है कि धातिवेच मुसुक के अनेक जर्बो पहले हो चुके थे। वे मञ्जुषी के उपासक थे। मुसुक सहजभागी साबक थे। मुसुक का समय था सन् १२१५। इस वर्ष में इन्होंने 'अनुसामान' नामक छन्द की रचना की। इस छन्द में बौद्धसाधक की साधना विधा और उसकी विनियमों से सम्बन्धित निबन्ध हैं। इस कृति में मज्झिम् ( Proto New Indo Aryan ) के उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कतिपय दोहे भी संकलित हैं।

उदाहरण—

अम्बु पसरतु जलन बारह बरकः ।  
 हेठेठ कमल करि ध्यान बरक ॥  
 पूज जप्ति छठि समरस भाइ ।  
 राज्जु बोले बह-भरन नाइ ॥

[ जम्बीरीसि पवावली पृ० ११ ]

मुसुक ने अपने को राजत भी कहा है। डॉ० सुकुमार सेन ने इसकी जर्बो कटो हुए कहा हैं कि सम्भवतः मुसुक राजपूज या राजसेवी बखारोही थे। इस कारण ही इन्हें 'राजत' की उपाधि मिली थी। मुसुक ने बरक-सैली का विशेष प्रयोग किया है 'हरिज', 'जहेरी' के बरको और परिभाषिक छन्दों के द्वारा बिल निरोध फल निरोध की साधनात्मक भूमियों का निरूपण इसकी रचनाओं की प्रमुखता है।

अपन मासे हरिजा बहरी । अबह न सावज मुसुक जहेरी ।  
 ठिज न सुइ विवह न पाणी । हरिजा हरिणीर निरुज न बाणी ॥  
 हरिणी बोखज मुज हरिजा तों । ए वन छाड़ि होइ भाग्यो । (जम्बी ५।)

अपने मांस के कारण ही हरिजा अपना दाजु है। जब घर के लिए मुसुक बाखट का परिष्कार नहीं करता है। हरिज गृह नहीं छूता जब नहीं पीठा है। हरिज को हरिणी का निरूपण प्राप्त नहीं है। हरिणी हरिज से कहती है बह

बन छोड़ कर हम भाग जाते । 'इस सम्बन्ध' 'हरिण चञ्चल मन 'अहेरी' साधक और 'हरिजी' 'नैरात्म' के रूप में चित्रित हैं' ।

एक अन्य जगहों में 'मूसा' ( 'बूहे' ) की प्रतीक-योजना के द्वारा अविद्या तथा समय की क्षणभंगुरता एवं उसके विनाशकारी स्वभाव की ओर संकेत किया गया है ।

गिरि बंधारी मूसा करब बंधारा ।

अमिब मरब मूसा करब अहारा ।

मार रे जोइया ! मूसा पबना ।

जेण तुटइ अबजा-गबजा ।

मवबिब्वारब मूसा बनब गाती ।

चञ्चल मूसा कठिबों नासक पाती । कर्मा० २१

'निष्ठा अवधार पूर्ण है और मूसा ( 'बूहे' ) की क्रीड़ा आरम्भ हुई वह अमृत का आहार करता है । योगी पवन के बूहे को मारो, जिससे आबामन ( पवन के आबामन ) की क्रिया समाप्त हो ( या आबामन से तुम मुक्त हो ) । बूहे के कारण जन्म होता है और वह छिद्र कर देता है । इसका संचार जब टूटता है तब ( आबामन के ) बन्धन से मुक्ति मिलती है ।' संकेतपूर्ण और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है, उदा० 'सुसहर', 'अबबूई' 'कमल' 'विरमलन्द' 'महामुख' 'कहना' इत्यादि । इन शब्दों में निहित प्रतीकात्मकता का स्पष्टीकरण आगे किया गया है ।

१—इस प्रकार की आत्मयोजना आज भी लोक-जीवन में प्रचलित मिलती है—

उदा०

मैं ठाढ़ी ठाढ़ी बरब कर्क मेरे लव की प्राय बधाओ

हरिना हरिनी बुने जंमल में व्याधे सार्ई फांस,

कूर फांस के हरिनी निकली हिरण के लपि गए फांस

तब हरिनी हरिना से बोली गुन हरिने मेरी बात

गुम तो फंस गए जास में अब मेरा कौन हवाल —देविए Obscure Religious cult

कण्डूपा ( कण्डू )—अपौरुषों में से अधिकार्य पत्नी के रक्षिता कान्ह  
है। इन्होंने तरह अपौरुषों की रक्षा की है। 'कान्ह' 'कन्ह' 'कान्हि'  
'कान्हिल' 'कान्हिला' इत्यादि इसके नाम के अनेक रूपान्तर मिलते हैं। कान्ह  
ने अनेक सीतों में अपने को 'कापालिक योधी' 'योगी' अथवा 'कांग' कहा है।

कान्ह ने बालम्बरीपा को अपना गुरु या पुण्य माना है। १९ में अपौरुषों के  
अन्त में वे कहते हैं—

साक्षि करिब बालम्बरी-पाए ।

पाक्षि न राहुस मोरि पाक्षिभाषाय ॥<sup>१</sup>

'मैं अपने बालम्बरीपा ( गुरु ) को साक्षी कहूँगा। पक्षिभाषाय मेरे पक्ष में  
नहीं है।' <sup>१</sup> मित्राणों की यह धारणा है कि कान्ह 'हे बभ्रुपति' या 'योगरत्न  
मासा' ( हे बभ्रुपति की टीका ) के लेखक थे। इनका समय ११६६ ई० था।  
नाथ सम्प्रदाय में कान्हुपा ( कण्डूपा ? ) बालम्बरीपा ( हाड़ीपा ) के शिष्य  
माने गये हैं। 'नाथ सम्प्रदाय' की विवेचना के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में  
विचार किया गया है। धर्मीदुष्ट ने इनका समय ७०० ई० माना है।<sup>२</sup> परन्तु  
यह निर्णय उचित नहीं लगता। वस्तुस्थिति यह है कि कान्ह के नाम से  
जो रचनाएँ मिलती हैं वे दो व्यक्तियों ( कान्ह ) की रचनाएँ हैं। प्रथम कान्ह  
( कण्डू ) बालम्बरीपा के शिष्य थे। उनका नामान्तर विरपा था। उन्होंने  
अपने को 'कापालिक' कहा है। दूसरे कान्ह कापालिक नहीं थे।<sup>३</sup>

डा० मुकुन्दर सेन ने इस सम्बन्ध की ओर ध्यान दिया है कि अपौरुषों का  
१० ११ १८ १९ २६ ४२ के रक्षिता प्रथम कान्ह थे। उदा० —

१ राहुस साक्षिभावने ने इसका पाठान्तर दिया है—

साक्षी करहु गुरु बालम्बरी बाज

मोहि न ब्रूअ पण्डित भाज ।

डा० मुनील कुमार चटर्जी ने इसका अर्थ दिया है—मैं अपने गुरु बालम्बरी  
पाद को साक्षी कहूँगा मेरा पण्डितभाषाय ( मैं स्वयं एक पण्डित हूँ ) इसे स्वीकार  
नहीं करना। २ Chants Mistiques page 24

३ इसलिए अपौरुषों की पदावली पृ० १२

(१) मगार बाहिरे डोम्बी तोहर कुडिमा  
छर छोट बाइसि बाम्ह नाकिवा । [ यर्षी सं १० ]

(२) मय निबानि पड़ह-भाइछा  
मन पवन बेनि करल कसाछा । [ घुद० ]  
बज-बज इन्दुहि-साय उछसिवा  
कान्ह डोम्बी बिबाहे बसिवा । बव । [ यर्षी १८ ]

यर्षी संख्या ७ ९, १२ १३ २४ १० ४५ के रचयिता द्वितीय कान्ह बे ।

उदा०—(१) आसिए-कासिए बाट कयेला

ठा वेसि कान्ह विमन मइला । [ घु ]

कान्ह कहि गई कबि निवास

ओ मन पौजर सो उभास । [ घु ]

(२) एलंकार छड़ बासोड़ मेबिब,  
निबिह बिबापक बान्धन तोड़िब । [ घु ]

कान्ह बिससइ आसब माता

सहब लकिनी बन पइसि निबिवा । घुब । [ यर्षी ९ ]

पारिभाषिक छन्दों के प्रयोग की दृष्टि से भी ये रचनायें दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की लगती हैं। प्रथम की रचनाओं में 'डोम्बी' पद्य 'रवि-रसि' 'निबान' 'सहब' 'कान्ह' आदि छन्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है। द्वितीय की रचनाओं में 'आसि-कासि' 'एलंकार' 'टिपारल' 'कलना' 'बिन-रमन' 'यमन' आदि पारिभाषिक छन्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है। परन्तु इन समस्त विवेचनाओं से वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। यर्षीत प्रयोगों के आभाव में इस प्रकार के निर्णय में संकोच होता है।

अन्य रचनाकारों में 'कामसिमा' 'कुकरिपा' 'बीनापा' 'सबरपा', 'बारिकपा' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कामसिमा' के नाम से केवल एक यर्षीय उपलब्ध है।

उदा०—छोमे भरिली कलना नाबी

रपा खोइ नाहि के ठाबी ।

बाहुनु कामसिमा यमन उबेरों

गेली आम बन्हुइइ कहयें । यर्षी सं० ३

इसके गुरु अणभट्टापा थे। इन्होंने संस्कृत में भी रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं में इनका नाम कम्बलाचार्य मिलता है। सरह के बोहाकोश के टीकाकार अहमदशाह ने कम्बलाचार्य रचित चार श्लोकों को उद्धृत किया है।

चर्यापीठ के वृत्तिकार का यह अनुमान है कि चर्या संख्या १७ के रचयिता 'बीनापा' हैं। उदा०—

सुख जाउ सति कायेकि तान्ती  
अग्रा दान्ती चाकि निजत अचरुती ॥  
राजद जाओ सहि हेरक बीना  
मून तान्ति-बलि विरसद बना ॥

प्रस्तुत संस में रचयिता के रूप में 'हेरक बीना' के नाम का प्रयोग किया गया है। इसी परम्परा में 'डोम्बी हेरक' का भी उल्लेख मिलता है। अब यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि यह रचना 'डोम्बी हेरक' की है अथवा 'बीनापा' की। सिम्बरी परम्परा के अनुसार बीनापाव बीरपा के बंधरार थे। इन्होंने 'बय दान्तिनी निम्न अम' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। ताराताव के निस्तेयव से यह संकेत मिलता है कि बीनापाव और डोम्बी हेरक एक ही व्यक्ति थे।

चर्यापीठ सं० २८ और २९ के लेखक अचरपा हैं। चर्यापीठ में 'अचर' अचरी' का प्रयोग अनेक बार आया है। डा० सुकुमार सेन की यह धारणा है कि 'अचरपा' नाम के एक से अधिक आचार्य हुए हैं। 'चर्यापीठ पदावली' में संस्कृत चर्या किंतु अचरपा की है इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। इन पदों में अचर-अचरी के विरुद्ध मिलन-स्वल्प निरूपण के माध्यम से 'चैतन्योद्दिष्टि' के मिलन की प्रस्तावना की गई है। उदा०—

ऊना ऊँचा पावत वैहि नधर सचरी वाली  
मोरंगी निम्न परहिण सचरी पीवत गुजरी माकी।  
उपत सबरो पावत सबरो मा कर मुकी गुहार वो होरि,  
निध बलिनी नामे सहज सुचरी। अ०। चर्या २७।

सिम्बरी भाषा में 'सचरीधर' नाम से अनेक रचनाओं के अनुबाह मिलते हैं। 'सापननामा' में इनके नाम से, सितदुख कुम्भासावन, तथा 'बयबोधिनी

-आराधन बिम्ब' नामक रचनायें संकलित हैं। तारानाथ के अनुसार महासिद्ध धनरीता और सरह एक ही व्यक्ति थे। यं सुरक्षा के गुरु थे।

'अयौरवर्षबिनिस्त्रय' में चारिकपा का एक पं संकलित है (पद संख्या ३४)।

सुम कदनादि अमिल काष्ठ बाक धिअ  
बिस्मसह बारिक यमनत पारिम कूँ।  
अतस्त सख धिन्ता महा सुहे  
बिस्मसह बारिक गअनम परिम कूँ।—अर्था (३४)

सिम्बलि मापा में इनकी रचनाओं के अनुबाद सुरक्षित हैं।

### दर्शन और भाव पक्ष

यह सर्वविशित सत्य है कि सिद्ध साहित्य बौद्ध-धर्म से विकसित सहजवानी सम्प्रदाय की मूल चेतनाप्रतियों पर निर्मित है। सिद्धाचार्यों के नाम से जिनकी रचनायें हमें प्राप्त हैं वे पण्डित और अनेक विद्वानों के प्राचार्य थे। इन्होंने संस्कृत तथा सोर-भाषा इन दोनों में रचनायें की हैं। सिद्ध-साधना पर तंत्रों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय धर्म-साधना में तंत्रों की दो शाखायें मिलती हैं। प्रथम; वेद-सम्मत द्वितीय वेद विपरीत। ब्रह्मयान के विकास में इस द्वितीय धारा ने विशेष योग दिया है। द्वितीय धारा दो स्वतन्त्र उपधाराओं से निर्मित होती है—(क) धैवततंत्र (ख) शास्त्रतंत्र। सहजयान शास्त्रतंत्रों से अधिक प्रभावित हुआ है।<sup>१</sup> शास्त्रतंत्रों में 'पंच मकार' की भावना का विशेष प्रचलन था। इसका उत्कृष्ट 'कौलज्ञान निर्यय' में मिलता है। 'कौलज्ञान' में 'पंच मकार' का प्रयोग एक विधिष्टि धर्म में किया गया है। यहाँ प्रतीकात्मता के प्रति ही आग्रह है। धरा० मघ=मधु= सहस्र दश से अर्पित होने वाली सुधा।

मौस=ज्ञान से पाप-पुण्य के हनन की प्रक्रिया।

मत्स्य=ईश पिंगला (गंगा-ममुना) में प्रवाहित

१—ऐसी धारणा है कि इस सम्प्रदाय का सम्मुख्य आन्ध्र प्रदेश के भी पर्वत पर हुआ था। परन्तु यह धारणा आन्ति-मूर्ख है। इसका 'स्वस्वनिर्माण मगय विक्रमशील और नाकन्या के महाविहारों में हुआ था। भी पर्वत 'कापा सिन्धो का केन्द्र रहा है। सिद्ध साहित्य पर कापासिन्धो का भी प्रभाव मिथ्या है।

काव्य ।

मृदा=जलस्थ का परिव्याग । मृचुन=सहस्वार में स्थित शिव तथा कुण्डलिनी  
शक्ति का योग । ब्रह्मयानी साधना के माध्यम से सिद्ध-साहित्य में इन प्रतीकों  
का व्यापक प्रयोग हुआ है ।

जिस साधना से सम्बन्धित साहित्य की जर्नी हम कर रहे हैं उसमें 'हैबन'  
की साधना पर विशेष आस्था थी । 'है' का अर्थ होता है 'महाकल्पना' और 'बन'  
का प्रयोग 'प्रज्ञा' के अर्थ में किया गया है । इसी सम्बन्ध में बत्तीस भास्त्रियों<sup>१</sup>  
की जर्नी की गई है । वे बोधिविषय को बहल करती हैं । महासुख-स्वान की  
ओर ब्राह्मज्ञान की प्रवाहित करती हैं । इसी अनुभूतना और अनुभूति का वर्णन  
मुकुटपा के इस जर्नी पर में मिलता है—

अब रात्रि पर कमल विकसित  
बत्तिष जोड़नी तनु संघ जलसित ।  
बस्त्रिष ससहृष भावे अवबूई  
रत्न सहे कौंड [ सोई ] ।  
बस्त्रिष ससहृष यई निजाने  
कमलिनी कमल बहूई पनाके ।

'जर्नरात्रि को कमल विकसित हुआ बत्तीस बोधिविषयों उसके साथ जलसित  
हुई । बस्त्रमाने अवबूटी मार्ग में मग्न किया (वह) रात्रि में सहज-वर्धन करता  
है । बस्त्रिष निजाने में बहूईकता है प्रनाक में कमलिनी-कमल का प्रसूटन हुआ ।  
इनमें 'कलना', 'रत्ना' और 'अवबूटी' प्रमुख हैं । 'कलना' का स्वभाव प्रजापूर्ण है  
'रत्ना' 'उपायपूर्ण' है । अवबूटी इनके मध्य में स्थित है । वह ब्राह्म-साहक  
भाव से मुक्त है । 'कलना' को कल्प प्रज्ञा, और बाह्य शक्ति के प्रतीक के रूप में

१ ब्राह्मिष्ठ बोधिविषय महासुख स्वाने स्वयन्ते—अमेया सुखमय  
विष्णु बाबा, बाह्मिनी, कूर्मना भास्त्रिणी केका बोवा मिष्टा मावरी छवरी  
धीनबा बोरया कलना रत्ना अवबूटी, प्रवया कुम्भमर्नी, मुकुटिनी सामाया  
हेतुरासिका, विषोया प्रेमकी सिद्धा, पावकी, सुमना भीष्टा, काकिनी मेहा,  
बस्त्रिका, भारसिका ।

भिन्नित किया गया है। अबधूती शक्ति-मयीक है। इसके तीन स्वरूप हैं—  
(क) अबधूती (ख) आण्डाली (ग) बंगाली। प्रथम में द्वैत स्थिति द्वितीय में  
द्वैता-द्वैत स्थिति और तृतीय में अद्वैत स्थिति रहती है। मुसुकपा ने इसी स्थिति  
की ओर संकेत करते हुए कहा है, 'आज मुसुक बंगाली बदली।

सहजिया सिद्धों ने शून्य का उत्प्रेक्ष्य बनेक रूपों में किया है। सहजसाधना  
में 'शून्य' की विचारधारा का आग्रह माध्यमिक या शून्यवादी सम्प्रदाय से हुआ।  
इसके आचार्य नागार्जुन थे।<sup>१</sup> अमिनब मुस ने 'तन्त्रालोक' में काष्ठचक्रयान के  
सिद्धान्तों का व्यापक विस्तरेण किया है। 'शून्यता' को वे 'बन्' का पर्यायवाची  
मानते हैं। उनके विस्तरेण के आधार पर 'शून्यता' यह है अवेद्य और अविभाज्य  
है। यह अनन्तर और अव्यक्त-मुक्त है। उसे 'बन्' भी कहते हैं। बन्धुयान के  
सर्वोपरि देव हैं बन्धु सत्त्व। 'बन्' को शून्यता और 'सत्त्व' को शान्ति का प्रतीक  
माना गया है। यह विज्ञानवारियों की विद्वत्ति माधवा के समान है। बोधि  
सत्त्व की प्राप्ति के लिए 'कल्या' और 'शून्यता' के संयोग की कल्पना की गई है।  
महायान में 'शून्यता' को 'प्रज्ञा' 'कल्या' की उपाय का पर्यायवाची माना गया  
है। तथावादिन अश्वबोध एवं नागार्जुन ने भी शून्यता<sup>२</sup> को इन्हीं अर्थों में  
ग्रहण किया है। सिद्ध-साहित्य में शून्य का वर्णन इसी रूप में किया गया है।  
यहाँ शून्य का वर्णन निम्नलिखित चार रूपों में हुआ है—(क) शून्य (ख) अस्ति

१—अनुभूतिमयों के अनुसार ताराणाच योगाचार-मार्ग के प्रवर्तक थे।  
इन्होंने बौद्ध धर्म में तन्त्र-सत्त्व का समावेश किया था। इस मत के विपरीत  
कतिपय आचार्यों की यह धारणा है कि माध्यमिक शून्यवाद ने आवर्तक नागा  
धुन ने योगाचार-तन्त्र तथा ब्राम्हमार्गीय साधना का समावेश किया था।

२ इस सत्यम में वस्तु निरूपण के लिए चार विषयों का प्रयोग किया गया  
है अस्ति (है) नास्ति (नहीं है) नो भयं (न अस्ति न च नास्ति) नसत् मासत्  
सदसत्त आप्यनुमयारमकम्; चतुष्कोटि-विनिर्मुक्त तत्त्वं माध्यमिका विद्। अतः  
इन दृष्टियों से परम सत्त्व (स्वरूप) का निर्वारण सम्भव नहीं है। यह मन-वाची  
की परिधि के परे है। अतः यह अनिर्वचनीय है। माध्यमिकों ने परम सत्त्व को  
सत्-असत् के मध्य माना है।



शून्य (ग) सर्वशून्य (घ) महाशून्य । प्रथम मानसिक अवस्था का चोतक है । यह स्त्री का पर्यायवाची है । इसमें प्रवृत्तियाँ जाग्रत होती हैं । अतिशून्य असकामास होता है । यह अन्नमा के समान प्रकाशवन्त है । सर्वशून्य आसोक-उपसम्य का साधन है । महाशून्य साधना का परम ध्येय है ।

सिमोपा इसी महाशून्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—

सहज महातड करिअ सिमोए,

ख-सम स्वभावे रे बाजत का कोए ।

जिम जल पाणिउ टालिका भंड न जाऊ,

सिम गम रबना रे समरसे गगण समाऊ ।

‘सहज-तड’ तीनों शोक में प्रकाशवन्त है, मन की अवस्था आकाशवत् ( ख-सम ) है । जल और जल के संयोग से उनका ( जल का ) अन्तर समाप्त हो जाता है । मन आकाश में तिरोहित हो जाता है । मन और आकाश ( शून्य ) में अन्तर समाप्त हो जाता है । सहज अवस्था या शून्य-समाधि की व्युत्पत्ति उत्पत्तिस्थितियों द्वारा हुई है । उदाहरण स्वल्प शून्य में अवस्थिति की पूर्ण स्थिति का वर्णन प्रस्तुत अंश में विशेष रूप से दर्शनीय है ।

ठाकस मोर जर नाहि पकिवेसी

हाकित नाच नौहि निव जावेसी । १५ ।

बेचे संसार बहिष जाअ,

बुद्धि बूझ कि बेचे समाय । १६ ।

बळ्य विजाएल बविजा बाँजि

पिटो बुद्धि ए सिमो घॉसि । १७ ।

बो सो बूबी सोह निबूपी

बो सो बोर सोह बूसाबी । १८ ।

मिने मिने सिपास सिहें संय बूमज

टेहन-भाएर भीत बिरले बूमज । १९ ।

इस अंश में चर्चस्य वृत्तियों का स्वरूपनिरूपण है । इनसे अज्ञान का प्रसार होता है । वृत्तियों के निरोध से सम स्थिति उत्पन्न होती है । इस साहित्य की स विधय बिना प्रयोग सत्सहाहित्य में निबन्धित रूप से हुआ है । उदा

कैने अगर करौ कूटबारी ।

बैचस पुरिस बिचसण मारी ॥

बैल बिपाइ गाय मइ बौंछ ।

मकड़ो घर मांछी छसिहारी ॥

मास पसारि बिल्ह रसबारी ।

मूसा खेवट नाब बिलइया ॥

भीड़क सोबे सौं पंहरइया ।

मिठ उठी सिंह त्याक संव बूढे ।

कहै कबीर कोइ बिरला बूढे ॥—कबीर

शास्त्र साधना के अन्तर्गत यहाँ कुण्डलिनी-आगरण की साधनात्मक भूमि की निरन्तर चर्चा मिलती है। इस दृष्टि से यहाँ हिन्दू-संन-दर्शन का भी प्रभाव मिळता है।

‘देवव्यतन’ के अनुसार ‘बण्वाली’ नामि में प्रयुक्त है। ‘लोचना’ भी उक्त ही है। इसकी क्रिया प्रक्रिया के पश्चात् चन्द्रना से ‘हुम’<sup>१</sup> शब्द प्रतिष्ठित होता है। ‘बण्वाली’ के लिए ‘मिरासा’ ‘अव्युत्तिका’ तथा ‘प्रज्ञा’ बादि नामों का भी प्रयोग मिलता है। कामासाधना के सन्दर्भ में बण्वाली के बापट स्वप्न की चर्चा करते हुए साधक ने कहा है—

२—‘अस्तौति नास्तौति चमे वि-अन्ता

कुडो-अधुडी हमे वि-अन्ता,

तस्मादुमे अन्त विचर्चयित्वा

अग्रे हि स्वप्न प्रकरोति पण्डितः ।’ समाधिराज । शोबिए हिन्दी साहित्य का गृह्य इतिहास पृ० ४२४ । मामार्जुन ने शास्त्र को परम्परा-रूप में ग्रहण किया है।

यह भाव रूप है—अपर प्रत्यय सात प्रपञ्चेष्टितम्

निर्दिष्टम् नामार्थमित्त् तत्त्वस्य मदायम् ।

३—बण्वाली उच्यते मायी, बहति पञ्चवयामयान्,

बहति च लोचना निवि रग्ये ‘हुम’ अयं छति । हे अन्तर्गत ।

कमल कुल्लिह माओ मइस मिधाली

समता बोए जकिज कन्नाली । ध्रु ।

साह डोमि परे कापेकि मागि

सहहर कइ सिचहु पाणी । ध्रु ।

मउखर ज्वाला बूम न बीसइ

तिर सिहर कइ बयन पसइ । ध्रु ।

कमल-कुल्लिह के मध्य वह निर्बीज ( अक्रिय ) थी । समता से बधाही प्रत्यक्षित हुई । डोमि के दर भीषण अग्नि कपी है । कन्नामा से उस ( यह ) पर ( में ) पानी छोड़ रहा हूँ । बसती भोपकी से ज्वाला और बूम नहीं निकल रहा है । मेह-सिहर से वह जल में प्रविष्ट कर गई ।

ऊपर 'समता' शब्द का प्रयोग एक विधेय दृष्टि से किया गया है । 'कन्नामा' और सूर्य को 'प्राग-अपान' माना गया है । 'कन्नामा' से रस का स्वप्न होता है । सहस्रसमाधि में 'समता' या 'समपाद' की आवश्यकता रहती है । 'कन्नामा' में सोलह कलायें रहती हैं । 'सूर्य' में साढ़ कलायें । कन्नामा अपनी कला के माध्यम से उत्पत्ति और संछान करता है । सूर्य अपनी कला से सोपन और मिताष्ट करता है । कन्नामा की कला को यदि 'सूर्य' की कार कला विकार्य तो समस्तिष्ठि आ जाती है । यह स्थिति जी शून्य की स्थिति है । कन्नामा सहस्रत्र चक्र में और सूर्य मूलाकार चक्र में है । इस प्रक्रिया को अनेक 'कमको' के माध्यम से प्रकट किया गया है । 'चौद सुरुज बैलि पाबा भाबा' अथवा 'माद न बिनु न रवि सधि मण्डल' ऐसी जगहों में इसी सम स्थिति की कथा की गई है ।

बई यण पवन न संबरइ रवि सधि बाहि पवेस

तहि बड़ि भित बिसामकइ सारइ कहिय उवेस ॥

२—कन्नामा की कलायें—जहोला कल्लोमिनी जम्हालानि तरकिनी घोपिनी सम्पग प्रवृत्ति सहरी कोका लोमिहान, प्रसरणि प्रबाह, प्रसन्नत शीम्य कवमि ।

सूर्य की कलायें—ठापिनी सासिका बाकुरानी घोषणी प्रबोपिनी, स्मरा बाकुरिणी सुन्धि, बरिनी जमिरेता किरणवती, प्रभाती ।

‘जहाँ मन और पवन का संचरण नहीं हो सकता जहाँ रविपति का प्रवेश नहीं हो सकता, वहीं पर चित को विधाय देना चाहिए। स्रष्टा का यही उपदेश है।’

अस्य के ‘महायानसूत्रार्थकार’ में तांत्रिक बुद्धधर्म से सम्बन्धित पौष्टिक प्रक्रियाओं का उल्लेख मिलता है।<sup>२</sup> सिद्धसाहित्य में नारी के मुद्रा प्रतीकों का उल्लेख मिलता है। नारी के मुद्रा प्रतीकों की दृष्टि से इस वर्ग की साधना और साहित्य का मूल्यांकन दो दृष्टियों से किया जाता है। प्रथम के अनुसार इस वर्ग का साहित्य वाममार्गीय भावों को प्रस्तावित करता है। दूसरी दृष्टि के अनुसार वाममार्गीय सम्बाधकी केवल प्रतीक रूप में ही ग्रहण की गई है। अतः इस साधना-प्रवृत्ति और साहित्य की मूल अनुभूतिना आध्यात्मिक है। वस्तु स्थिति क्या भी इस सम्बन्ध में हम स्पष्ट निर्णय देने में असमर्थ हैं। इस सत्य को स्वीकार करते हुए हमें संकोच नहीं होता है। इन साधकों के समय में और इनके पश्चात् भी इनके प्रतीक अभिधा के रूप में ही ग्रहण किए गए। इनके जीवन-सापेक्ष रूप में ही स्वीकृति मिली।

यहाँ धूम को ‘शैरालय बेवो’ के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके प्रगाढ़ आग्निमान में बोधिवृत्त के बड़ रहने की कल्पना की गई है। इस धूम को धूम मन्त्र प्रतीक द्वारा स्पष्टीकरण मिला। ‘अथर्व वेद सग्रह’ में ‘धुमन्त्रप्रकाश’ के अन्तर्गत ‘धूम्रता’ को फली और ‘कल्या’ को पति-रूप में चित्रित किया गया है। रामायणधूम के प्रतीकात्मक स्वरूप के माध्यम से ‘सहज प्रेम’ का स्वस्व-निर्धारण किया गया है। ‘साधन मासा’ में ‘धूम्रता’ और ‘कल्या’ से समन्वित परम तत्त्व को ‘तनुसक’ या ‘धुमन्त्र’ कहा गया है और इस स्थिति को ‘समरस’ की स्थिति कहा गया है। इसे ‘सहज-मुख’ भी कहते हैं। इस विचार-मोक्षना का निमोक्षण सिद्धसाहित्य में नियमित रूप से किया गया है —

विमिश्रित विस्मिन्नाह पाणिपिहि

तिमि भरणी लह चित।

समरस जाह तनसणे ॥

बह धुनु हो सब चित।

‘सुम्प्रतीकों’ के माध्यम से काया-साधना की विभिन्न भूमियों का निरूपण इस साहित्य में निरोप रूप में मिलता है। उदाहरण—

भगर बहिरे डोम्बि तोहरि कुटिया  
 ओइ-ओइ बासि बाम्ह नाहिमा ।  
 बासो डोम्बि । तोए संग करज में संग  
 निबिज कम्ह कपासि ओइ काँब ।  
 एक सो परमा बउयठि पाबुकी  
 साहि बदि नाबज डोबी बापुकी ।

‘भगर के बाहर डोम्बी । तुम्हारी कुटिया है ब्राह्मण का पुत्र उसका स्वर्ग करण के बसा बाटा है । निर्पुण कापासिक काम्ह नज है । है डोम्बी । मैं तुम्हारा संग करूँगा । एक पक्ष और चौसठ पंक्तियों है । उस पर बढ़कर डोम्बिनी मृत्यु करती है’ । व्याख्याकारों का यह निर्देश है यहाँ ‘डोम्बी’ के द्वारा साधक कुण्डलिनी चामरण की प्रक्रिया का निरूपण करता है ‘कौसज्जान निर्वाय’ में ‘सह्या’ ‘कुन्ना’ और ‘अन्पजा’ का समीक्ष साधक की दृष्टिनी के रूप में हुआ है । ‘सह्या’ स्वकीया है वह साधक की दृष्टिनी है । इसके सहयोग से वह सहस्रमात्रि में रत होता है । इसी समर्थन में ‘मुद्रा-साधना’ के अर्थ में ‘दृष्टिनी’ तथा ‘तस्वी’ की भी बर्ण मिलती है । ‘दृष्टिनी’ और तस्वी के साथ केवि किमे बिना बुधत्त नहीं प्राप्त होता है ।

सिद्धों की दृष्टि उपनीयपूर्ण की इसका संकेत उनकी रचनाओं में पर्याप्त रूप से मिल जाता है । उनकी यह वारणा भी कि जैसे बिप सेवन से बिप मरता है वैसे ही संसार का उपनीय करने से आवागमन से मुक्ति मिलती है ।

बिसव रमन्त न बिसर्जे बिलिप्यइ, उमर हरइ न पागी क्षिप्यइ ॥

समए ओइ मूक सरन्तो बिसहि न बाहइ बिसव रमन्तो ॥

‘बिपय में रमण-करते हुए बिप में क्षिप्त न हो उमर-ग्रह में बल नहीं झूटता है । जो इस राज्य को समझने हैं वे बिपय में क्षिप्त रहते हुए भी बिप में प्रवाहित नहीं होते ।

काया-साधना की विधा सिद्धों की उपासना-प्रवृत्ति का प्रमुख अंग है । इस और ऊपर दिये विधा या युक्त हैं । काया-साधना के अन्तर्गत

साधना-पीठों का विशेष महत्व है। इन्हें सिद्ध पीठ कहते हैं। साधक अपनी गृहिणी के साथ साधना-पीठ में साधना-उपसमि का प्रयास करता है। इस सम्बन्ध में जादुम्वर कामरूप ओडियान और श्रीहृद् का उल्लेख मिलता है। निम्नलिखित अंश में इसी साधना-भूमि का उल्लेख है —

हुसि धूहि फिटो धरन न जाह  
 बसेर ऐन्तिस कृन्तीरे खाम ।  
 जौगल धर पन मून मो बिजाटी  
 कामेर चोर नित बचराटी ।  
 सधुरा मिह गेस बहुदी धामन  
 कामेर चोर नित कागइ धामन ।  
 बिमसइ बहुदी कामइ डरे धाम  
 रात भरै कामत धाम ।

अर्ध रात्रि के समय प्रज्ञा ज्ञानमयिक के समय सबकुत्ती बपी बधू से अभिसार के लिए कामरूप जाती है। इसी प्रकार एक अन्य अंश में मगिकृत से जायत होकर बन्धित के 'उडियान' या 'ऊर्ध्व महामुख' स्थान में समाहित होने की प्रक्रिया का वर्णन है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में कामरूप पीठ उडियान की स्थिति स्थापितकान्त कर में है। सिद्ध साहित्य में सिद्ध-पीठों का प्रयोग इस सिद्धान्त के अनुसार ही किया गया है।

ऊपर यह उक्ति किया गया है कि सिद्धों ने संसार में रहकर उससे निम्न रहने का उपदेश दिया है। प्रसन्न आनन्द-रसा और मिष्टता हैं ऊपर उठकर वेतना भूमि पर अवस्थित होने का भाव-सम्बोध इनकी रचनाओं से मिलता है। अत्यन्त चित्तवृत्तियों की क्रियात्मकता को वे 'छोड़कर' व्यापार विधानों द्वारा स्पष्ट करते हैं —

काहेरे बनि मेकि अण्डहु कीस  
 बेकिह हाक पड़म चौबीस (चतुर्विंश) ।  
 अपणा मांससे हरिणा बरी  
 सनह न छाड़म धुमुक बहेरी ।  
 तिण न छुवाई हरिणा पिवाई न पाबी

हरिना हरिनीर भिन्न न बानी ।

हरिनी बोसन्न गुण हरिना तो

ए बग छाड़ि होहु भाग्यो ।

मित्र के निकट मित्र के साथ किस विधि से मैं जीवन यापन कर रहा हूँ । समस्त विमात्रों में तुमका नाम हो रहा है । अपने मांस के कारण हरिण शत्रु का बेटी हो गया है । बचिष एक राज के लिए भी संन गह्री छोड़ता है । हरिण न तो लूना छूटा है न वाणी दीता है । हरिणा हरिनी का स्वान नहीं जानता है । हरिनी हरिण से कहती है मेरे कलन पर ध्यान दो । इस वन का परिपालन कर जन्मन कर्षे । इस अर्थ में 'वन' संसार का प्रमथुर्ष स्वल्प है । हरिण ब्रह्म मन का समीप बाणी है । ब्रह्मत्ता के कारण मन-हरिण ने अपने को दुःखी से मादृत कर लिया है । 'हरिणी' 'नैरात्मा' का प्रतीक है । वह मन को ब्रह्मत्ता में मुक्त कर उसे स्थिरता प्रदान करती है ।

राष्ट्रायनिक प्रक्रियाओं द्वारा कामा-साधना की विधि रक्षेस्वर सम्प्रदाय की प्रमुखता थी । नाय-साधना-कार्य में इस विधि का विकास हुआ है । पण्डितों ने एसात्मिक प्रक्रियाओं की अवहेलना की है । उनका यह विश्वास है कि सिद्ध अभिव्यक्ति योगी है न यह नहीं जानते कि जन्म-मरण कति होता है । उनके लिये जीवन-मरण समान होता है । एसाधन का प्रयोग वे करते हैं जो जन्म मरण से मदनहीन रहते हैं ।

अपने रवि रवि भव निर्वाणा

मिच्छे जोड मन्वावए जपाना ।

अम्हें न वाचहु अभिन्त जोड

वाम मरन नव कष्टन होइ ।

बहसो वाम मरन वि तहसो

जीवन्त नहने वाहि मिषेहो ।

जाणहु मरने मितका

सो करड एत एसावे न कहुना ।

जामें काम कि काम वाय ।

एत मन्वि अभिन्त सो वाम ।

अपने को अस्तित्व और निर्वाण में मानृत कर मनुष्य जन्म में बाँधता है । हम अचिन्त योमी यह नहीं जानते कि जन्म-मरण कैसा होता है । हमारे लिए जीवन-मरण समान है । जो जन्म-मरण से भयभीत हैं वे रस और रसायन का प्रयोग करते हैं । जो मन्दिरों ( ईश्वर ) को खोजते हैं वे मर नहीं हो पाते । यह कहा नहीं जा सकता कि कर्म से जन्म होता है या जन्म से कर्म । यह कहते हैं कि वह नाम अचिन्त्य है ।

इस सम्प्रदाय में परावृत्ति और उन्नी साधना का विशेष आधार ग्रहण किया गया है । साधारण स्थिति में कृष्णस्त्री-आमरण और प्राण-वायु के ऊर्ध्व-मग्न की प्रक्रिया को उल्टी साधना कहते हैं । सिद्ध सम्प्रदाय से लेकर कबीर तथा वैष्णव सहजिया तक उल्टी साधना का उल्लेख मिलता है । इस सन्दर्भ में सिद्धों ने दसवें द्वार का उल्लेख किया है जहाँ साधक बास्ती को बाँधता है । उदा०—

एक से मुक्तिमा दुइ करे सान्धन ।

बीज न बाँधता बास्ती बान्धन ॥

सहजे निर करी बास्ती बन्ध ।

बधनि दुआरत बिन्दु देखाइमा ॥

माइल गराहुक अपने बहिया ।

बउलठ पड़िए बेत पसारा ॥

पइल्ल मपहुक नाहि निचारा ।

एक बहुली सरद नाक ॥

मजमि बिह्या पिर करि बाक ॥

एक नाक दो पड़ों को बँध किए है सहज में स्थिर होकर बास्ती बाँधने में संलग्न है । ( उसे धाग करने वाला ) बज-बजर तथा दड़ स्थलों वाला बन जाता है । वह दसवें द्वार पर बिह्व ( प्रवेश-पत्र ) विलकाकर माया है । वह यह बाँधत पड़ी लुका रहता है । योय सम्बन्धी भावों को व्यञ्जित करने के लिए बस्तीक प्रतीकों का प्रयोग यहाँ निषिद्ध रूप से मिलता है । कृष्णस्त्री को मुपुम्ना के मार्ग से बहाराय तक ले जाने की विधि को भी उल्टी साधना कहा गया है । इस सन्दर्भ में ईश्वर विपत्ता को जसना-रसना या रंगा-यमुना भी कहा गया है ।



सिद्ध साहित्य में उसकी साधना प्रणाली दो कर्मों में व्यक्तित्व हुई है। एक विधा यह है जिसमें सामान्य जीवन को प्रभावित करने की चेष्टा निहित है। दूसरी विधा में मोक्ष-सम्बाधकी द्वारा सैद्धांतिक तत्त्वों के निरूपण का आग्रह है। प्रथम के अन्तर्गत साधक का यह आग्रह है कि साधना प्रणाली से परिचित होम के लिए धर्म में दीक्षित होना पड़ेगा। धर्म के साथ साक्षात्कर्म स्थापित करना होना जैसे ही जैसे सम्भव क्षण में विकसित हो जाता है। तब-कर्म वर्धन से क्षुधा की वृत्ति नहीं होती। जैसे को देखन मान से रोम दूर नहीं हो जाता है। इसी प्रकार बिना धर्म-साक्षात्कर्म के कुशल प्राप्ति सम्भव नहीं है।

सिद्धों ने गुरु-मध्यरा और गुरु-महत्त्व को सर्वत्र स्वीकार किया है। गुरु को सम्पूर्ण ज्ञान-पूर्ण होना चाहिए। इसका उल्लेख करते हुए सरह न कहा है—

जाव न जाव अनिजह ताव न तिस्र करह ।

अन्ना अन्न कड़ाव तिम भेनि कूब पड़ेह ॥

सरह बोहा ८

इनका स्पष्ट निर्देश है कि गुरु-वचनो से धर्म के कर्म को तोड़िए, जो मन्त्रों से न देखें उस पर विश्वास न करें—'संक-यास तोड़हु पुरुषजने। न मुगद सो गव बीसह जमके। साधन ज्ञान को उन्होंने गलत कहा है। इससे अज्ञान नहीं मिश्रता ज्ञान की सुधा तृप्त नहीं होती। इसके विपरीत गुरु-उपदेश समुदाय यह है

गुरु-उपदेशे अमिम रसु जाव न पीजह बेहि,

बहु-उत्पत्त्य-मरुत्पत्ति, तिसिए मरि अठेहि ।

इस प्रकार गुरु-उपदेश से ज्ञान की उपलब्धि होती है। प्राप्त-मुक्त की उपलब्धि होती है। यह अनिर्वचनीय है। इसका वर्णन करते हुए साधक ने कहा है—

'सो परमेष्ठ बापु कहिअह । गुरुन कुमारी जीम पढ़िअह'

( तुष्टि ) कुमारी के मुख की अनुमति होती है उसका वर्णन सम्भव नहीं है। इसी प्रकार 'परमेष्ठ' की अनुमति होती है। उस अनुमति का वर्णन संभव नहीं है। परम तत्त्व की उपलब्धि धरीर में ही होती है। बाह्य उपकरणों से उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। कुछ धरीरत्त्व हैं—

पठिअ सकल तत्त्व बख्खावह

देहिहि कुछ वस्तव न जायह ।

गुरु-उपदेश से ही मग आकाश-वत होता है इस ओर संकेत करते हुए सरह  
म कहा है—

सम्ब-रज तहि ज-सम करिअइ । ससुम सहामे मणवि धरिअइ ॥

सोबी मनु तहि अमनु करिअइ । सहज सहामे सो पन रअइ ।

सिद्ध सम्प्रदाय प्रवृत्तिमुक्त सम्प्रदाय का । अतः इसकी दृष्टि उपभोग-वादी  
की । साधना के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने विधि विधानों का लक्षण  
दिया है । काया में ही तीर्थ-स्थानों की स्थिति मानो गयी है—

एतु मे मुरसरि जमुणा एतु मे गंगा सागर ।

एतु पत्राग बनारसि, एतु से बन्द दिवाग्रद ।

खतु पीठ उपपीठ एतु मद ममद परिटनों ।

देवा सरिमब तित्व गर्ह मुख बज्र ब सिद्धजों ।

सिद्ध साहित्य के अन्तर्गत उपलब्ध रचनाओं में बाह्य एकता के साथ-साथ  
आन्तरिक विभिन्नता है । समस्त रचनायें बौद्ध रचनायें नहीं हैं । इनमें तांत्रिक  
साधना से सम्बन्धित रचनायें हैं सजह मार्ग की भावयोजना पर आधारित रच-  
नायें हैं मंत्रपात्र की भावना भी इनमें निहित है साथ ही साथ इनमें ब्रह्मायनी  
साधना का भी निर्दर्शन मिलता है । इन विभिन्न साधना-आचार्यों से सम्बन्धित  
विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग इस सम्प्रदाय की रचनाओं में व्यापक रूप में हुआ  
है । उदाहरण स्वरूप यहाँ इन विभिन्न साधनाओं से सम्बन्धित कुछ 'स्वयं'  
निर्बान' 'गगन' 'बन्ना' इत्यादि विशिष्ट शब्द प्रयुक्त मिलते हैं । अनेक स्थलों  
पर साधकों ने अपने का योगी भी कहा है । इन साधकों में से अनेक योगमार्गी  
भी थे । परन्तु एक श्रव्य की ओर विस्वास पूर्णक संकेत दिया जा सकता है ।  
इनमें तपस्चर्या की भावना नहीं मिलती है । इन्होंने इन्द्रियों के निरोध के प्रति  
आग्रह नहीं प्रकट किया है । इस सम्प्रदाय में एक ओर संकेत मिलता है जिस पर  
विद्वानों ने अभी तक ध्यान नहीं दिया था । सिद्धों की जो सूची हमें प्राप्त है  
उसमें धर्मकीर्ति और ब्रह्मगर्भ का उल्लेख नहीं मिलता है । ब्रह्मगर्भ ने 'हैबन्ध  
तंत्र' की टीका की है । 'हैबन्धतंत्र' की जनक वीरार्यो मिलती है । इनमें  
'ब्रह्मगर्भ' की टीका अधिक विस्तृत तथा महत्वपूर्ण है । ब्रह्मगर्भ हैबन्ध तंत्र

में प्रयुक्त शब्दों के प्रतीकों को स्पष्ट करते हैं। वे इन शब्दों के अभिवार्ध को ही सत्य मानते हैं। इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सिद्धों की क्रियायें अतामायिक हैं। इनके आचरण अनर्थापित हैं। ब्रह्मधर्म ने इन साधकों की निन्दा की है। तन-मन के आचरण में वे जीवन में कस्य का प्रचार करते थे। दूषित व्यापारों के आचरण में वे धन-अर्जन करते थे। अपने विकास की पूर्ति के लिए अपने निस्वासी मित्रों की भावनाओं का अनुचित लाभ उठाते थे। ब्रह्मधर्म के इस संकेतों से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है। वे सिद्धों की साधना विधि और उनके आचरण से समुद्र नहीं थे। बहुत सम्भव है इस कारण ही सिद्धों ने अपनी परम्परा में इनका उल्लेख नहीं किया है।

### सिद्ध साहित्य का काव्य रूप और अभिव्यञ्जना प्रणाली

सिद्ध साहित्य 'बोहों' 'बर्मा' 'ब्रह्मगीतों' और प्रहेलिकाओं में उपलब्ध है। 'बर्मा' 'गीति' के भावस्वरूप की ओर संकेत करते हुए कुकुरीया ने कहा है—

ब्रह्मसि बर्मा कूकुरीया ऐ गाह्य  
कोहि मर्ने एक हिमहि समाह्य।

'कुकुरीया' ऐसी बर्मा गाते हैं कि कोटि में से किसी एक के हृदय में उसका समावेश होता है। इस प्रकार 'बर्मा' 'गीति' में एक विशेष प्रकार का अर्थ निहित रहता है। 'बर्मा' शब्द का मूल अर्थ है आचरण या व्यवहार, अर्थात् साधक या तपस्वी का आचरण। बौद्ध साहित्य में भिक्षुक के आचरण के अर्थ में 'बर्मा' शब्द का व्यवहार मिलता है<sup>१</sup>। 'बर्मा' 'गीति' नेत्र हैं। नाम से स्पष्ट है कि इनमें गीति-रस का प्रधानता है। 'बर्मा' 'गीतों' की मूल विधि ब्रह्मदेव के पदों या ब्रह्मका की 'वैष्णव' गीति पदावली के समान ही है।<sup>२</sup>

'बर्मा' 'गीति' के समान ही 'ब्रह्म' 'गीति' हैं। सामूहिक अनुष्ठानों पर 'बर्मा' 'गीति' का गान होता था परन्तु गोपन यौगिक अनुष्ठानों पर 'ब्रह्म' 'गीति' का गान होता था। 'ब्रह्म' 'गीति' का एक उदाहरण दिया जा रहा है।

१—वेड्डिए-बर्मा गीति पदावली भूमि पृ० २१।

२—वही

किन्हे मिथ्य बिसाम - यउ  
 सोब निमन्तिम काई  
 तह बन्ता न बइ सन्तरसि  
 उठहि समल मिताई ।  
 कज अप्पान बि करिब बिम  
 मा कर भुन मिभित्त  
 मब मब पड़िमा समल बनू  
 उट्ठहि बो इनि मिन्त ।  
 पुण्ण—पइजइ सन्तरसि  
 मा कर काज—बिहार  
 तह-अप मिह्ठ समल बनू  
 पठिअठ अप अबसाठ ।  
 मिण्णें भाग बि मा करेहि पिम  
 उट्ठइ पुन सहाव  
 कामहि बोइनि निन्द तुई  
 किट्ठउ अइवा भाव ।<sup>१</sup>—साधन पाठा

प्रस्तुत अंश में चार योमिनिषों उदासीन प्रणयी ( प्रभु ) से अनुमत्त कर  
 रही हैं । वे कहती हैं प्रिय मिथ्या अभिमान न करो । योमिनिषों अनुमत्त कर  
 रही हैं । प्रिय तुम भूय स्वभाव हो । तुम उठो । योमिनिषों की कामना करो  
 जिससे अभाव का भाव दूर हो ।

अपनी अनुमृष्टियों विन्तन रेखाओं तथा साधना स्वल्प को व्यक्त करने के  
 लिए इस भाग के साधकों ने गुहा प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दों का व्यवहार  
 किया है । इस प्रकार उपमा उत्प्रेक्षा तथा रूपक के स्वल्प-विषयों के प्रति ये विवेक  
 आपह्वीत हैं । इनमें अर्थ की विधा निहित है । एक अर्थ सामान्य या साधारण  
 होता है जिसे अभिवेधात्मक कह सकते हैं । दूसरा अर्थ प्रतीकात्मक या लक्षणा  
 मूलक होता है । सरह के 'दोहा कोय' के पञ्जिकाकार अइयबख्त तथा 'बर्षी  
 पीठि' के वृत्तिकार मुनिन्द ने भाषा के इस विविध प्रयोग-स्वरूप को 'सम्प्रा

भाषा' कहा है। इसे 'सम्प्रा चरण' 'सम्प्रा संकेत' वा 'सम्प्रा' भी कहा गया है।<sup>१</sup> महामहोपाध्याय हृष्यसाय शास्त्री ने सम्प्रा भाषा का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि 'प्रकाश' और 'अन्धकार' की भाषा को सम्प्रा भाषा कहते हैं। इसमें कतिपय व्यक्त और कतिपय गोपन रहते हैं। अर्थ की स्पष्टता और अस्पष्टता यहाँ निरन्तर निघमान है।<sup>२</sup> परन्तु इस परिभाषा का स्पष्टीकरण में 'सम्प्रा भाषा' का स्वरूप व्यक्त नहीं हो पाता है। डा० सुकुमार सेन ने इस सम्बन्ध में अपना मन्तव्य देते हुए कहा है कि 'आलो' (आलोच) अर्थात् (अन्धकार) के साथ सम्प्रा भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनकी चारणा है कि जिस भाषा या शब्द में निहित अभीष्ट अर्थ को सर्वज्ञ होकर समझा जाय उसे सम्प्रा भाषा कहते हैं।<sup>३</sup> वस्तुतः इसमें दो अर्थों की सन्धि रहती है। इस कारण ही उसे सम्प्रा भाषा की संज्ञा मिली है। प्रस्तुत वक्तव्यों में सम्प्रा भाषा के कतिपय उदाहरण दिए जा रहे हैं :—

शब्द	सामान्य अर्थ	सम्प्रा अर्थ
आसि-कासि	'स्वर' 'व्यवर्ग'	प्रस्वाप्त निश्वास
उदा० आसिर् कासिर् वाट रुधेला (बर्षा—७)।		
बन्ध बाँध	बाँध	प्रज्ञा ज्ञान प्राप्ति
उदा० बान्ध नून्ध नून्ध बन्ध विधि स्तहार पुत्तिन्धा। (बर्षा १४)		
उदा० बान्ध नून्ध नून्ध बन्ध विधि स्तहार पुत्तिन्धा। (बर्षा २६)		
हरिण	हरिण	विद्य
उदा० अपने मोहि हरिण बरी। (९)		
हरिणी	हरिणी	नैरात्मा ज्ञान मुखा
उदा० हरिण हरिणीर निम्न न जानी। (बर्षा ९)		
गोका	गोका	महा गुप्त काय।
उदा० सोने भरली कला गावी। (बर्षा ८)।		

१—इसलिए बर्षा बीसि परावली: भूमिका—पृ० ७४

२—इसलिए बीसनाम भी बोझा—भूमिका।

३—इसलिए बर्षा बीसि परावली—पृ० २४

रूपक के माध्यम से साधना बिबि का प्रकाशन इस धारा के साहित्य की अमिष्यज्जना प्रणाली का एक मुख्य गुण है। समीप शृङ्गार-परक रूपक द्वारा 'गुन्य' या 'सहज' की उपलब्धि का चित्रण इनकी अमिष्यज्जना प्रणाली की सिद्धिपटता है। इस सन्दर्भ में लोकसापेक्ष विधानों का प्रयोग विशेष दर्शनीय है। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत अंश में प्रथमातुर प्रणयी के द्वारा साधक ने सहज समाधि की वर्षा की है —

ऊँचा ऊँचा पावत छाहि वसई सबरीबासा  
 भोरिण निष्य परिहिण सबरी पीबत मुंजरीमासा  
 उमठ शबरो पावत शबरो भा कर गुली-गुहाड़ा  
 सोहोरि निम भरिणी नामे सहज सुन्दरी  
 माना उम्बर भोँडसिस र जणत सागेसि वाली ।  
 एकेलि सबरी ए कण हिइइ कर्ण कुण्डल बस्यबारी  
 तिमबातु छाट पडिछा सवरो महामुहे सेवधाइली  
 सबर मुंजगम नैरामणि बारी पेकूँ रात पोहाई ॥

'ऊँचे-ऊँचे' पर्वत पर शबरी बासा रहती है। उसने भोर पञ्च धारण कर लिया है। उसने गले में गुन की माळा पहन ली है। उन्मत्त शबर पावत शबर बोलाहस नहीं करता है। निम ग्रहिणी सुन्दरा नाम सहज सुन्दरी है। अनेक वृक्ष मञ्जरि हैं। उनकी शाखायें पवन को स्पर्श कर रही हैं। कर्ण-कुण्डल और बस धारण किए शबरी अकेली बस रही है। निवातुओं की धव्या (महामुन की धव्या) है। शबर प्रेमी (मुंजगम) है। शबरी प्रेमिका है। प्रणय-केलि में रात्रि व्यतीत हुई। यहाँ सहज की 'सुन्दरी' या 'ग्रहिणी' के रूप में ग्रहण किया गया है। 'नैराम' से आदिपन की कल्पना की गई है। साधना-भूमि में रूप हो जाने की प्रक्रिया को काम-केलि के रूपक द्वारा व्यञ्जित किया गया है।

पञ्च इन्द्रियों को मारने की विधा को साधक ने आग्नेय के रूपक द्वारा व्यक्त किया है—

बह तुम्हें भुगुण भौरी बाइन

मजिस्ति पठ्य बणा ।

बसिन्दी बग परसन्ने होहिधि एनहु मणा ।

इसी प्रकार मौका के रूपक ( कर्मा १३ १४ ) का प्रयोग मिश्रता है, कई धुने का रूपक ( कर्मा २६ ) बीया का रूपक ( कर्मा १७ ) सावना प्रभासी की व्यञ्जना के लिए प्रयुक्त है ।

साहित्य में युग-जीवन की सापेक्षता विद्यमान रहती है । यह सापेक्षता सिद्धों की रचनाओं में भी विद्यमान है । अपने युग के सामाजिक स्वस्व को अप्रस्तुत विधान के रूप में सिद्ध-साहित्य के रचनाकारों ने ग्रहण किया है । इस सापेक्ष विधान के स्वस्व का उद्घाटन डॉ॰ सुकुमार सेन ने 'कर्मा गीति पदावली' की भूमिका में किया है । उनका यह निबोध है कि सिद्धों की रचनाओं में सम सामाजिक जीवन के विषय छलक कर आए हैं । अपने लिच्छर्य को अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं 'कर्मागीत में देवी-देवता की उपासना नहीं है । इसमें राजा मंत्री की अनुकृपा भी नहीं है । इनका साहित्य न तो किसी पूर्व-परम्परा पर अवलम्बित है और न यहाँ किसी रीतिरिद्ध बारा का स्वरूप ही निमोदित है । अपने युग का साधारण जीवन-स्वस्व और लोकजीवन की ऐनिक कर्मा यहाँ प्रतिबिम्बित है ।'<sup>१</sup> उदाहरणस्वरूप 'बास्नी बनाने की बिचा' में युग-जीवन की एक बारा का स्पष्ट परिचय मिश्रता है । सधिया की बति और उसके रूप-सौन्दर्य को साक्षक संमिश्रित रूप विधान के द्वारा निमोदित कराया है । कई धुने और कपड़ा धुने के रूपक में भी युग-जीवन का स्वस्व सापेक्ष रूप में विद्यमान है । पारिवारिक जीवन के संकलन-स्वरूप का सापेक्षविधान यहाँ विशेष द्रष्टव्य है । इस कथन की सत्यता सिद्धों द्वारा प्रयुक्त 'बसुर 'साधु' 'मनर' इत्यादि शब्दों द्वारा स्थापित होती है । विरोधमूलक अलंकार के द्वारा उलट बौद्धिधों की रचना यहाँ एक विशेष प्रकार की व्यभिच्यञ्जना प्रभासी है । इसके अन्तर्गत विपरीत धर्म ( युग ) वाले शब्दों का प्रयोग किया गया है । कर्मा संख्या २ ( कुम्हुरीया ) कर्मा संख्या ३३ ( टेटगपा ) में इस बिचा का प्रयोग मिश्रता है । उवा •

टाकत मोर जर नाहि पड़येयी

हाड़ीत भात नाहि मित जायेयी । ध्रुव ।

× × × ×

दुखिऊ डूब कि केले समाय

बल्लर बियाएल पनिका बाँसे

पिटो दुहिए-ए तीनो सोंसे ।

को सो दुबि सोइ निबूची

× × × ×

नित नित सिमाछ सिहे सभ बूमअ

टेलेनपाएर गीत बिरले बूढे । ध्रुव । वर्यी ३३ ।

भाषा

सिद्धों की रचनाओं की भाषा मामूली अवहट्ठ है। डॉ० मुनीसि कुमार चटर्जी ने इन रचनाकारों की भाषा को सौरसेनी अपभ्रंश से पूर्वत संस्पर्धित माना है। वस्तुतस्त्विति यह है कि मिन-मिन प्रादेशिक भाषाओं के भाषायों एवं भाषा वैज्ञानिकों ने यह संस्वामित करने का प्रयास किया है कि 'ज्याँ नीति' और 'दोहा कोश' उनकी भाषा की अपनी निजियाँ हैं। इस प्रकार हिन्दी बंयासी मैथिली उर्दू आसामी—इन समस्त भाषाओं के विद्वानों ने सिद्धों की रचनाओं की अपनी-अपनी भाषा के साहित्य के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु उनकी भारणा वैज्ञानिक और इतिहास-सम्मत नहीं है। सिद्धों की रचना जिस भाषा में हुई है उसमें संक्रान्तिकालीन आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के स्वस्व निहित हैं यही कारण है कि इसमें विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक स्वस्व के दर्शन सहज में ही हो जाते हैं। परन्तु ये रचनाएँ मागधी अवहट्ठ में ही हैं। इस सरपता का प्रतिपाद अवैज्ञानिक होगा। 'दोहा कोश' एवं 'ज्याँ नीति' की रचनाएँ जिस काल अवधि में हो रही थीं उसमें अवहट्ठ साहित्यिक भाषा के रूप में उत्तर भारत में गढ़ीत थी। कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि 'दोहा कोश' की भाषा सौरसेनी अपभ्रंश है और 'ज्याँ नीति' की भाषा मामूली अपभ्रंश। दोहा परिवर्तनी प्रवृत्त का प्रचलित छन्द है इसका प्रयोग



पूर्वी बचनों में व्यापकत्व से नहीं हुआ है परन्तु भाषा के आचार पर 'बोहा कोष' और 'बढ़ी-गीति' में अन्तर स्पष्ट नहीं किया जा सकता है ।

भाषा-स्वरूप पर विचार करते समय एक अन्य तत्त्व की अवहेलना कर दी जाती है । इन रचनाओं का विकास मौखिक रूप में होता रहा है । इसके अतिरिक्त इनके सिम्बल हो जाने के पश्चात् समय-समय पर इनकी प्रतिक्रियाएँ होती रही हैं । प्रतिक्रियाओं की असावधानी के कारण भाषा क मूल स्वरूप में यत्र-तत्र परिवर्तन होते रहे हैं उदाहरण स्वरूप 'अकारान्त' शब्दों को 'इकारान्त' या 'एकारान्त' कर देना उनके लिए साधारण बात थी ।

व्याकरण की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ अवलम्बनीय हैं—

(क) करण के लिए -त -ते निर्वाचन का प्रयोग । सतनी के लिए -ए-एट, -र पट्टी के लिए -रे, -रें चतुर्नी के लिए—दिया -दाँग अधिकरण कारक के लिए 'भासे' के प्रयोग विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं ।

(ख) अतीतकाल के लिए -क प्रत्यय का प्रयोग यहाँ निम्नलिखित रूप से होता है—उदा० 'पड़िल मिति' (बोहा) 'सोने भरिली कसना नाबी' 'ससि जामेसि तानी' ।

(ग) स्त्री प्रत्यय के रूप में -ई, -ई का प्रयोग विशेष रूप में मिलता है । पुल्लिंग प्रत्यय के रूप में जा का प्रयोग मिलता है । यह प्रयोग कर्ता और कर्म कारक के रूपों में विरुद्ध रूप से बोलने को मिलता है ।

(घ) भविष्यत् काल के लिए -इव्-(व) प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है । उदा०—'करिज्', 'जाइव्' 'होइव्' इत्यादि ।

(ङ) वर्तमान काल के अतिरिक्त अन्य कालों में किया भाव-कर्मवाच्य में प्रयुक्त हुई है ।

(च) संस्मावाचक शब्द; एक एक, दूई, बनि तनि चउ पञ्च पाञ्च बत्तीस तीसी चउसठी कोड़ि इत्यादि ।

सन्दर्भ—अधिकोस 'बपी गीति' 'पावकुम्ह' 'पञ्चमटिका' पञ्चड़ी चउपई शब्दों में रचित हैं । इनमें गीति-तरंग विद्यमान है और इनके रागों का भी

‘ब्रह्मगीति’ में मात्राओं का क्रम १३+१२ है। ‘नयी गीति’ में दो बिभायें मिलती हैं। प्रथम में मात्रा-क्रम ८+७ है। द्वितीय में ८+८+१० है। अधिकार्य नयी प्रथम बिधा में रचित हैं। इस छन्द बिधा ने ही परवर्तीकाल में ‘पयार छन्द’ का स्वरूप कारण कर लिया। द्वितीय छन्द बिधा से परवर्ती काल में ‘त्रिपदी’ छन्द का विकास हुआ।

प्रथम —

। । । १ २ । । । । । । । ।  
निधि निधि सित्राल विहे सम पुष्प ॥

। । । । । । । । १ । । । ।  
ढङ्गन पाएर गीत निरले बुझ ॥

द्वितीय —

। । । । । । । । । । । । । । २ । । । । ।  
मुसुक भजइ कठ राउत भणइ कठ सजला एह सहाब<sup>१</sup>

इस प्रकार अपभ्रंश-अबहट्ट की काव्य-परम्परा अधिभ्यन्वना प्रभासी और छन्द-सम्पत्ति ने हिन्दी के आधुनिकीय साहित्य की पीठिका निर्मित की है। हिन्दी की आधुनिकीयकाव्य बिभायें अपभ्रंश और अबहट्ट से ही प्रसफुटित हुई हैं। कठ हिन्दी ने आधुनिकीय साहित्य की आचारभित्ति के अध्ययन की दृष्टि से इन पृष्ठों में प्रस्तुत सामग्रियों का विशेष महत्त्व है। भावे के पृष्ठों में हिन्दी के आधुनिकीय साहित्य पर विचार किया जा रहा है।

## आविकास का काव्य स्वरूप

### (१) रासो काव्य धारा

रासो काव्य-धारा आविकासीन हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख काव्य विधा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास केन्द्रों ने निम्न निम्न दृष्टियों से 'रासो' शब्द और 'रासो'-काव्य-रूप का विश्लेषण और मूल्यांकन किया है। परन्तु मूल्यांकन में काव्य-स्वरूप के विकास और प्रसार के ऐतिहासिक तन्त्रों की अवहेलना की गई है। 'हिन्दी शब्द सागर' में इस शब्द का परिचय प्रस्तुत रूप में प्रस्तावित किया गया है— संज्ञा पु० ( 'रास्य' ) किसी राजा का पद्यमय जीवनचरित, विशेषतः वह जीवनचरित जिसमें उसके युद्धों और वीर्या आदि का वर्णन हो अथवा पृथ्वीराज रासो, कुमान रासो हुम्मीर रासो इत्यादि। कतिपय विद्वानों ने इसका सम्बन्ध 'रास्य' शब्द से स्थापित किया है परन्तु हिन्दी भाषानिर्माण के अन्तिम परिवर्तन की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार 'रास्य' शब्द से इसका विकास सम्भव नहीं है। आचार्य रामकृष्ण शुक्ल ने 'बीसखरेव रासो' का आधार ग्रहण करते हुए इस शब्द की व्युत्पत्ति प्रस्तावित की है। 'बीसखरेव रासो' के कवि ने अपने काव्य में 'रसावली' शब्द का प्रयोग किया है—

( १ ) नासू रसावली रस भर बाह,

तूठी अह सारखा निमुक्त भाह

( २ ) नासू रसावली आरम्भ,

कतिपय विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति राजारस शब्द से किया है—  
 राजारस > राजामनु > रावनु > रासो या रासमय > रासमयसो > राससो > रासो।  
 'रासो' ने इसकी व्युत्पत्ति के लिए 'रासमय' शब्द की प्रस्थापना की है। राजस्थान में 'रासा' या 'रासो' का अर्थ ज्यादा होता है। इस अनुश्रवण को ग्रहण करते हुए कतिपय आलोचकों की यह धारणा है कि 'रासो' वह निश्चित

---

१—संस्कृत रास्य > रास्यो > रससो > रासो कविराज स्वामय दास

काशी प्रसाद अवधनाथ तथा रामनारायण शुक्ल।

काव्य निष्ठा है जिसकी मूल संवेदना 'ममत्वे' या संघर्ष की भावना पर परिचायित  
है। इस सन्दर्भ में 'पृथ्वीराज रासो' का स्पष्टीकरण करते हुए यह संस्थापना  
की गई है कि 'पृथ्वीराज रासो' का अर्थ हुआ 'पृथ्वीराज की कीर्तियों' 'पृथ्वीराज  
का साहित्यिक कार्य' या उनका 'संघर्ष'।

'रासो' शब्द संस्कृत के 'रासक' शब्द से विकसित हुआ है। प्राचीन इतिवृत्ति  
की भी 'रास' कहने की प्रथा थी उदा० 'कुमारपाद रास' 'भीमाक्ष रास' इत्यादि।

साहित्य-स्वरूप की दृष्टि से 'रासक' एक नृत्य-काव्य या वेद रूपक है।  
'हरिवंश पुराण' में 'रास' का सांकेतिक उल्लेख मिलता है। 'मिथु पुष्प' में रास  
की बर्णना योषाओं के एक विशेष नृत्य के रूप में मिलती है। भास के  
'मालविकाग्निमित्र' नाटक में रास के सत्तासीव 'हस्तीसक' का उल्लेख मिलता है।  
डॉ० मन्मथ Types of Sanskrit Drama में 'रास' की विवेचना  
करते हुए इसका अर्थ 'विज्ञाना' देते हैं और इसका सम्बन्ध उस काल के प्रारम्भ  
नृत्य से जोड़ते हैं जब संगीत की भाषा और कलात्मक रीति व्यवस्थित नहीं हुई  
थी। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में इसके प्रमाण मिलते हैं कि इनके समय तक 'रास'  
में नृत्य की पूर्ण व्यवस्था हो चुकी थी। रासक-नृत्य का प्रचार जन-जीवन में  
हो चुका था। 'हर्षचरित' में 'अस्तीक रासक पदाणि' का उल्लेख मिलता है।  
'अस्तीक रासक पदाणि' का अन्विष्टाव स्थितियों द्वारा गाए जाने वाले गीत से है  
( डॉ० बासुदेव चरण अग्रवाल )। इस प्रसंग में कानों की अमृत के समान मधुर  
कल्पे वाले मधुर वाक्याप करने वाली स्त्रियों के अस्तीक रासक पद गाने का  
उल्लेख मिलता है।

सातवीं से दसवीं शताब्दी तक 'रासक' की व्यापक विधायी का  
प्रसिद्ध हो रहा था। इस सन्दर्भ में अप्रकाशित जन-ग्रंथ 'हरिवंश पञ्च पट्टावली'  
का उल्लेख विशेष महत्व रखता है। इस दृष्टि से एक विशिष्ट नृत्य का उद्घाटन  
होता है। इस समय तक बीज मन्दिरों में 'ममृक्ष रास' की प्रथा वर्जित थी  
परन्तु सामान्य जीवन में 'रासो' का व्यापक प्रचार था। अनेक संदर्भों से यह  
स्पष्ट प्रकट मिलता है कि आठवीं शताब्दी तक 'नृत्य रासकों' की भाव-भारा  
में सम्यक्त्व का समावेश हो चुका था अर्थात् 'नृत्य रास' के समानांतर

‘अभ्यरास-पारा’ का प्राथमिक हो चुका था। चौदहवीं शताब्दी की अवधि में जाने वाली कृति ‘उपदेश पञ्च पट्टावली’ में ‘इसीस’ ‘अगुह रास’ और ‘प्रेराजक’ का उल्लेख मिलता है। ‘रास’ के साथ-साथ ‘अचरी’ का भी प्रयोग मिलता है। जैन साधकों ने इस काम्य रूप को उपदेश-काव्य के रूप में अपनाया। फलतः ‘रासो’ काव्य विधा में गेय तथा सिद्धि होने लगा और उपदेशरूप की प्रभावता होने लगी।

डा. माता प्रसाद गुप्त ने ‘रासक-काव्य पारा’ के विकास का इतिहास प्रस्तुत करते हुए यह संस्थापना की है कि अपभ्रंश काल में ही ‘रासो’ की दो अलग अलग परम्पराएँ स्थापित हो चुकी थीं, (क) मुख्य-मीमांसा-भारत रासी (ख) छन्द वैशिष्ट्यपरक रासो। प्रथम परम्परा के अन्तर्गत उन कृतियों का विकास हुआ जिनका भाव-संवेदन जैन-धर्म की कृतियों पर अधिकतर है। इनका सम्बन्ध जैन महात्माओं संतपतियों तथा तीर्थंकारकर्मियों के चरित से है। इसी परम्परा के अन्तर्गत वे ‘श्रीसम्बेधरासो’ को भी स्वीकार करते हैं।

दूसरी पारा छन्दवैशिष्ट्यपरक ‘रासो’ की है—‘सम्बेध रासक’ तथा ‘पृथ्वीराज रासो’ ऐसी कृतियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। इस विभाजन के अनुसार प्रथम का विकास मुख्यमूलक रहा है। डॉ० गुप्त की यह धारणा धारणा समय के वर्गीकरण के आधार पर निर्मित है। धारणावलय की प्रसिद्ध कृति है ‘भाव प्रकाशन’। प्रस्तुत कृति में केवल न काव्य के प्रस्तुत रूपों का उल्लेख किया है—

[ क ] मृज्जका [ ख ] अता [ ग ] सिन्धी [ ङ ] मेरुवक । प्रचलित स्वरूपों की चर्चा करते हुए लेखक ने ‘अता’ के उपदेशों का उल्लेख किया है—

[ क ] वण्ड रासक [ ख ] मण्डल रासक [ ग ] मातृ रासक ।

तदनु कथा अता सिन्धी मेरुवके स्वाभ्यतुविचम् ।

अता रासक नामस्वातमेधा रासकं प्रवेत् ॥

वण्ड रासकमेकन्तु तथा मण्डल रासकम् ।

एकन्तु बोधिमियमात्मात्मा रासकमीरीतम् ॥

धारणा समय ने मातृ रासक को सप्त रूपक रासक रूप

१—भाव प्रकाशन भाष्यभाष्य बोधित्तल सीरीज पृ० २१७ हिन्दी साहित्य पृ० ११ से उद्धृत।

के अन्तर्गत माना है। डा० युस की यह धारणा है 'श्रेया प्रसीत होया है कि नाट्य रासक नाटकीय संकेतों और उसके कुछ अन्य तत्वों से विरहित होकर गीत-नृत्य-परक रासक-परम्परा में डल गया। इस परम्परा की अनेक रचनाओं में उनके गाए जाने और नृत्य-सम्बन्धित होने का जो उल्लेख मिलता है यह इस उद्भव की ओर संकेत करता है।' बसन्तक में रासक को भागवत कहा गया है—

डोम्पी थी परितं माजो  
भाणी प्रस्थान रासका  
काव्य च सप्त मृत्यस्य  
मेवा स्तुत्येऽपि भागवत् ।"

विरहार्क ने 'वृत्तत्राविसमुच्चय' में 'रासक' की प्रस्तावना छन्द-संवेदना पर की है। उदाहरण —

अडिगहि दुबहएहिम पत्ता रहुहि तह बडोसाहि  
बहुएहि जो रज्जई सो भणइ रासठ ॥४॥

जिस रचना में अडिगता हुआ, माया रहु और डोसा इत्यादि छन्द हों उसे रासक कहते हैं ( वृत्तत्राविसमुच्चय ४ ३१ )। 'वृत्तत्राविसमुच्चय' के अतिरिक्त स्वयंभू ने 'स्वयंभूचन्द्रस' में कल्पना की है —

पत्ता छड्जिजाहि पशुपडिया मु अण्यएहि ।  
रासा बनो कबो जगमग अहिरामो होइ प

जिस काव्य में पत्ता छड्ज पशुपडी तथा अन्य रूपकों के कारण बन-मन अमिराम होता है वह रासक है। 'रास' या 'रासक' की दो धारणें 'सन्देसरसक' के रचनाकाल तक अस्तित्व में हो चुकी थीं। 'रासक' का उल्लेख नृत्य के रूप में मिलता है साथ ही साथ येय रूपक के रूप में भी इसकी जगह मिलती है। उदा

बहु ब ठाई जउवेइहि बेत पयासियइ

कह बहुकमि निबडत रासठ भासियइ । सन्देस रामक ४३

डा० भोसा संकर व्यास ने यह संकेत किया है कि रासक का मूल नाटकों से सम्बन्ध स्थापित करना आसक है। डा० व्यास की यह धारणा है कि 'सन्देस

१—हिन्दी साहित्य—पृ० १०० ।

२—रास और रामायणी काव्य पृ० ३ ।

‘रासक’ हिन्दी का प्राचीनतम नाटक नहीं है। उनका कथन है। “ऐसा मत-प्रकाशन वैचारिक अपरिपक्वता का बोधक है। वस्तुतः इस भ्रांत धारणा का आधार सम्पूर्ण रासक के ४३ वें पद्य की ‘कह बहुबलि निबन्धन रासक भासिमई’ पंक्ति के ‘रासक भासिमई’ का वा. भयाणी द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी अनुवाद है जिसका अर्थ है— इस (सयोर नगर में) रासक बहुकवियों द्वारा अमिनीत होता है। संस्कृत टीकाकार भासिमई का संस्कृत व्याख्यान ‘भाष्यते’ लिखता है जो स्पष्ट ‘रासक’ कहा जाता है—इस मत की पुष्टि करता है। उपर्युक्त हिन्दी लेखकों की भ्रान्त धारणा भयाणी जी के अंग्रेजी अनुवाद के कारण है। वस्तुतः भाषों के द्वारा नीतिश्रियों में गाए जाने वाले मीलों के लिए ‘रासक’ शब्द प्रयुक्त हुआ है ठीक वैसे ही जैसे बनारस की कबली।<sup>१</sup> डॉ० व्यास की यह संस्थापना बेजानिह विस्मय की अपेक्षा रखती है। भाषों द्वारा नीतिश्रियों में गाए जाने वाले मीलों को रासक के रूप में डॉ० व्यास ने स्वीकार किया है। इस स्वीकृति के लिए उनके पास कोई आधार नहीं है। ‘रासक’ की एक मात्र-धारा का पट्टन येव स्मरण की भूमिका पर हुआ है। इसका स्पष्ट उल्लेख लिखता है। डॉ० बलराम जोशी ने उन प्रमाणों का संकलन और विस्लेषण किया है जिनके आधार पर ‘रासक’ को उपर्युक्त के अन्तर्गत स्थान मिला है। ‘उपदेश रसायन’ में यह स्पष्ट उल्लेख है कि रासक एक गेय काव्य है।<sup>२</sup> ‘उपदेश रसायन रास’ में ‘रास’ के अतिशय स्वरूप की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है।<sup>३</sup>

‘बीसछन्दे रासो’ में ऐसे सम्बन्ध मिलते हैं जिनके आधार पर ‘रासो’ या ‘रास’ के रूप-स्वरूप को स्वीकार करने में संकोच नहीं होना है—

सरसति सामणी करत हूँ पसार ।

रास प्रयासऊँ बीसछन्दे रास ॥

बोला पदसह मोंदनी ।

बाजार बाजार जागजे जोड़ि ॥

१—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास। प्रथम भाग अ० २

२—अपेक्षित रागेषु बीसते गीत कीवरे ।

— [रि निम्नलिखित ।

## अपना

पापण हार भौंडइ (न) र पाई ।

रास कह (सम) यह बैसली बाई ।

ताछ कह समपइ घुँघरी ।

मौंहिली माँझली सौँषणा ।

रास प्रवास ईषी निधि होई ।— सत्यजीवन वर्मा ।

‘रास’ माने वाले अपनी संकल्पियाँ बनाकर जब इसे बायें ठो उस समय बाँजुरी घाँटि वाले साथ-साथ बजते रहें । घुंघरू आदि के साथ तास बी बाय । मामकों की मण्डली के बीच में बैठने वाले कसाकार बोज़ हों और वे दूर-दूर बैठें और बाहर के वृत्त में बैठने वाले कसाकार सप्त होकर बैठें ।

इन सन्धियों से यह स्पष्ट होता है कि कथुकाय रास की मूल प्रेरणा अग्नि न्यात्मक थी । ऐसा समझा है कि रास की मूल अनुप्रेरणा नृत्यपरक थी । समय के साथ उसमें छन्द की योजना की गई होगी और नृत्य तथा छन्द की सामूहिकता के पश्चात् उसमें कथावस्तु का निबोधन किया गया होगा ।<sup>१</sup>

अनर डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त के उस विश्लेषणत्वक्य का उल्लेख किया गया है जिसमें उन्होंने ‘रासक काव्य’ का वर्गीकरण छन्दों के आधार पर किया है ।

१—रास-नृत्य के मेर के कारण इस मेर समक के दो प्रधान भाँ हो जाते हैं—(१) ताळारास (२) झुट्टारास । ताळारास में संख्याकार नूतने हुए ताळियों से ताळ डेकर संगीत और पद्यवाप से वर्तन किया जाता है । झुट्टा रास में दो छोटे-छोटे ढंडों को हाथ में लेकर परस्पर एक दूसरे के ढंडों पर ताळ बेंते हैं । स्त्रियों के ताळारास को ‘हमची’ कहते हैं और पुरुषों के ताळारास को ‘हीच’ कहते हैं । रास का मूल अर्थ है गर्जना । उसके बाद उसका अर्थ हुआ मानिक छन्द में विरचित रचना । उसके बाद एक दो छन्दों में विरचित रचना रास कहलाने लगी । तदुपरान्त इसने स्वतन्त्र मेर उपर्युक्त का रूप धारण किया । सामूहिक मेर समक होने के नाते इसमें रस अनिवार्य बन गया । इसलिए रास काव्य ‘रसात्मक’ कहें जाने लगे । रसपूर्ण होने के कारण ही यह रचना ‘रास’ कहलाई ऐसा भी एक मत है ।



परन्तु छन्दों की जपेता काव्य-रूपों के आधार पर 'रासक' का वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक होगा। 'काव्यानुशासन' के आठवें अध्याय में हेमचन्द्र ने काव्य के दो मुख्य भेदों का उल्लेख किया है।—(क) प्रेक्ष्य (ख) श्रव्य।

प्रेक्ष्य के अन्तर्गत पुनः उपवर्गों का उल्लेख करते हैं। (१) पाठ्य (२) गेय।

हेमचन्द्र ने गेय के प्रस्तुत रूपों के स्वल्प का निर्धारण किया है—

(१) बोधिका (२) मान (३) प्रस्ताव (४) सिंग (५) भाषिका (६) प्रेरण (७) रामाक्रीड (८) हस्तीरक (९) घोड़ी (१०) भीमविष्ट। ये गेय रूपक कोमल उद्भूत किये—इन तीन रूपों में मिलते हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह प्रस्तावित किया है—रासक आरम्भ में एक प्रकार के गेय-उद्भूत प्रयोग प्रधान रूपक को कहते थे जिसमें कोई मनुष्य प्रयोग भी मिलते हैं। सर्वप्रथम रास-रूप के साथ इसे पाती थीं। 'सन्धेय रासक' इसी प्रकार का वेग रूपक है। इसके अनुसार 'पृथ्वीराज रासों' का आधिक्य भी 'सन्धेय रासक' के समान ही रहा होगा। यह प्रधान रूप से उद्भूत प्रयोग प्रधान मनुष्य प्रयोग-युक्त गेय रूपक था। इस प्रकार द्विवेदी जी ने रास काव्य की तीन शैक्तियों की चर्चा की है—(१) लाप्य या मृदुल रास (२) उद्भूत रास (३) मिश्रित रास। प्रथम की मूल अनुवर्तना पूर्णग-मूलक होती है द्वितीय की चर्चणा और भावना पर अवलम्बित होती है तृतीय मृदु भाव-वीर मिश्रित होती है। 'संदिशरासक' तथा 'बीसकदेवरास' प्रथम परम्परा की कृतिवाँ हैं। 'बाहुबलीरास' (जैन काव्य) उद्भूत शैली पर निर्मित है और 'पृथ्वीराजरासों' मिश्रित शैली का 'रास काव्य' है।

काव्य विधा की अनुवर्तना एतदधीन होती है। एक निश्चित काव्य विधा का पालन होता है और वह साधा प्रसाधा का रूप धारण कर लेती है। रासक 'काव्य विधा' बाधत भाव-संवेदना पर विरहित हुई है। यही कारण है कि परवर्तीकाल में रासों का विकास 'चरित काव्य-शैली' में हुआ। इसमें कथा-रासों का समावेश किया गया। स्वप्न का काल में चरितकाव्यों के लिए विविध नामों का उपयोग मिलता है। इनमें निम्नलिखित और रूपक विशेष प्रचलित हुए। इसी भाव धारा के अनुसार 'रास' या 'रासक' संज्ञा लेकर भी चरित-काव्य अन्धे बने। इसके पश्चात् रासक 'काव्य-रूप' का पर्यायवाची बन जाता है। यही कारण है कि 'रास रासों' संज्ञा सिद्ध रासों 'बीसकदेव रासों', 'पृथ्वीराज रासों' को

विवेचना काव्य कर्मों की दृष्टि से होने लगी। आध्यात्मिका के गुणों के समावेश हो जाने के पश्चात् रासक का परम्परा प्रस्तुत चाराओं में हुआ—

(क) लौकिक पद-बद्ध कथा-काव्य के रूप में—‘सन्देश रासक’।

(ख) ऐतिहासिक चरित्र काव्य—‘पृथ्वीराज रासो’।

(ग) जैन मुनियों द्वारा—पुराण-साहित्य की कृति पर प्रस्तावित ‘चन्द्रनवाला रास’ ‘जम्बू स्वामी रासो’ इत्यादि।

(घ) ऐतिहासिक विवेचना पर आधारित परम्परा मुख्यतः लोक-धर्म-काव्य विवेचना पर आधारित—‘बीसछवे रासो’।

रासक-काव्य-कृतियों का परिचय।

मुँज रास —‘मुँज रास’ शीर्षक किसी स्वतंत्र ग्रन्थ की प्राप्ति अभी तक नहीं हो सकी है। ‘हेमचन्द्र’ प्रकल्प चिन्तामणि और ‘पुरातन प्रकल्प संग्रह’ में उपलब्ध कतिपय सांकेतिक संदर्भों के आधार पर इस कृति के आविस्वर की सम्झना की जाती है। हेमचन्द्र ने सिद्ध हेम (सन् ११४०) में दो दोहे संकलित किए हैं जिनमें मुँज की प्रणय-कथा की मूल घटना का परिचय मिलता है। उदा०

रक्तसह सा निहारिणी ने कर पुम्बिनि नीउ ।

पडिनिम्बिअ मुँजासु अऊ पेहि अडोहिअ पीउ ॥

बाहू निछोडिनि बाहु तुहु हउ तेवई को दोपु ।

हिमपट्टि अइ लीसरहि आनउ मुँज सरोसु ॥

प्राकृत व्याकरणम् ४३१, २, ३।

‘अन मरने वाली बाला मुँज के प्रतिनिम्ब के साथ अऊ पीने वाले करें

१—डा० माता प्रसाद गुप्त ने रासक-काव्य-चारा का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया है ( हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड १०१ ११६ )।

(क) जस्य रूपक निबद्ध परम्परा—‘सन्देश रासायन रास’ ‘भरतेस्वर बाहुवकी रास’ ‘बुद्धि रास’, ‘जीव दया रास’ ‘चैतन्यवाला रास’ ‘जम्बू स्वामी रास’ ‘नेमिचन्द्रदया रास’ ‘कच्छुली रास’ ‘समरा रास’ तथा ‘बीसछवे रास’।

(ख) छन्द-वैविध्य-युक्त-रासो परम्परा —‘मुँज रास’ ‘सन्देश रासक’ ‘पृथ्वीराज रासो’ ‘हम्मीर रासो’ ‘बुद्धि रासो’ ‘परमार रासो’ ‘विजयपाल रासो’ ‘रामा रासो’ ‘छन्द रासो’ ‘कायम रासो’ ‘छत्र साह रासो’ ‘मोक्ष रासो’ ‘समय सिद्ध रासो’ ‘हम्मीर रासो’।

का बुझन कर के बीबित है । २। ओ मुख । तुम मेरे मुख-बन्धन को छुड़ा कर  
 आ एगरो हो । यदि तुम मेरे हृदय से अपने जाओ तभी (मैं) तुम्हें अपने स हृद  
 (विमुख) समुन्द्री । ३ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' (मेरठेंग समय समय १३०४ ई०)  
 में श्री मुँज से सम्बन्धित कथा का उल्लेख किया गया है । पद्महरी-शोम्हरी  
 स्त्री के जैन प्रबन्धसंग्रहों की एक प्रतिलिपि का आधार ग्रहण करते हुए 'पुरातन  
 प्रबन्ध संग्रह' (संग्रहकर्ता-मुनि त्रिनक्षत्र) में मुँज से सम्बन्धित प्रबन्ध का  
 संकलन किया गया है । इन समस्त सन्दर्भों से 'मुँज रास' के मूल स्वस्व का  
 निर्धारण नहीं हो पाता । हेमचन्द्र के द्वारा संकलित दोहों के आधार पर यह निष्कर्ष  
 तो निकाला जा सकता है कि इनके व्याकरण की रचना-मर्यादा के पूर्व ही मुँज  
 से सम्बन्धित कथाएँ या किम्बदन्तियाँ लोक-जीवन में प्रचलित हो चुकी थीं और  
 इन किम्बदन्तियों का आधार मुँज से सम्बन्धित कोई काव्य-ग्रन्थ रहा हो । परन्तु  
 इसके आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि यह रासक-परम्परा  
 का काव्य-ग्रन्थ ही रहा होना और उसका नाम 'मुँज रास' या 'मुँज रासक'  
 रहा होना । ४ इस सम्बन्ध में आपत्ति यह है कि इसके रचनाकार  
 और इसकी रचना तिथि के विषय में हमें कुछ ज्ञान नहीं है । मुँज का समय  
 अनुमान से सं० १०००-१२८ माना गया है । सिद्धदेव का समय सं० ११४०  
 अनुमानित किया गया है । अतः यदि मुँजराज से सम्बन्धित किसी काव्य की  
 रचना हुई होनी तो उसकी रचना तिथि इन दोनों के मध्य रही होगी । 'पुरातन  
 प्रबन्ध संग्रह' में संकलित कतिपय अंशों को यहाँ दिया जा रहा है—

सायक बाद भक नृ गम्भइ एस सिर रास ।  
 मय्यणइ सो भजि गर मुँज म करसि बिसाठ ॥  
 आ मति पन्धइ सम्पन्न वा मति पहिली होइ ।  
 मुँज भवइ मुनासवइ निबन न बेडव कोइ ॥

१—सिद्ध हेम अनुशासन सम्पादक पी० एल बीस (पूना) पृष्ठ ७५ ।

२—प्रबन्ध चिन्तामणि (सिंधी जैन ग्रन्थालय) पृ० २१-२२ ।

३—पुरातनप्रबन्धसंग्रह (सिंधी जैन ग्रन्थालय) पृ० १३-१४ ।

४—वैनिष्—हिंदी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० ११३ ।

मेरी व्यक्तिगत चारणा यह है कि मे वंश सोक-जीवन में प्रचलित विविधतियों पर ही अधिक आधारित है, यह इसकी प्रामाणिकता के लिए अपेक्षित प्रमाणों की आवश्यकता है।

अपदेश रसायन शास्त्र—‘अपदेश रसायन शास्त्र’ के रचनाकार जिनदत्त सूरि हैं। इस कृति में इसकी रचना विधि का कोई उल्लेख नहीं है। जिनदत्त सूरि की एक अन्य रचना उपलब्ध हुई है जिसका नाम है, ‘काल स्वल्प भूतक’। इस ग्रन्थ की रचना विधि का उल्लेख प्रस्तुत अंश में मिलता है—

विदुष्यं सवर्णरि सप बोद्ध ।  
 हुयसह पण्डितं सुहृदं चार बोद्ध ॥  
 इस संसार सहानि भवतिहि ।  
 वतहि भुम्भह सुखं वनंतहि ॥<sup>१</sup>

यद्यपि इसकी रचना विधि सम्बत् १२०० वि० है। डॉ० नाटा प्रसाद मृत की यह चारणा है कि ‘अपदेश रसायन शास्त्र’ इस कृति की पूर्व की रचना है।

माया की दृष्टि से ‘अपदेश रसायन शास्त्र’ अपभ्रंश की रचना है। यह ३२ छंदों की कृति है और यह ‘अपदेश’ छंद में लिखी गई है। इस सन्दर्भ में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ग्रन्थ में इसके काव्य-रूप (‘रास’ या ‘रासक’ नामक) का उल्लेख नहीं किया गया है। जिनदत्त उपाध्याय ने इसकी टीका की है। टीकाकार ने इसे ‘रासक-परम्परा’ की कृति कहा है। उनके विस्मयन के आधार पर यह परम्परा-रूप काव्य है और अनेक रागों में गेय है।<sup>२</sup> इसकी मूल संरचना धार्मिक है और यह वेद-रूप में लिखित है। इसमें मनुष्य-जीवन के महत्त्व पर व्याख्या के साथ-साथ मनुष्य के उद्धार-मार्ग का भी वर्णन है।<sup>३</sup>

१—विशिष्ट बही पृ० १०१।

२—अपभ्रंश काव्य जयी-भाष्यभाष्य बोरिएण्टल सीरीज टीका ‘छंद’ २ ३ ४।

३—मुनि जिनदत्त सूरि की एक अन्य कृति ‘वर्चरी’ है। रचना ४७ वस्तु सन्दर्भों में समाप्त हुई है। ‘काव्यस्वरूप भूतक’ में अर्थकर कुट्टास का वर्णन है, साथ ही मनुष्यों के धर्मविरोधी आचरणों की निन्दा है। जिनदत्त सूरि त्रेत्राम्बर सम्प्रदाय के खरतर मन्थ के प्रतिनिधि आचार्य थे।

भरतेस्वर बाहुबली रासः— भरतेस्वर 'बाहुबली रास' के रचयिता शास्त्रिण सूरि हैं। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ की रचना त्रिणि का उल्लेख इस रूप में किया है—

सम्बत ए वारव एतासि फागुण पंचमिइ एत कीउ ए १२०३। मर्वात इसकी रचना त्रिणि से १२४१ ( सन् ११५४ ) है। इस काव्य का प्रथम रस बीर है। इसमें भरत तथा बाहुबलि ( भयवान् रूपम के पुत्रों ) के मध्य राजसत्ता के लिए संघर्ष का आचार ग्रहण किया गया है। इसकी रचना २०३ छन्दों में हुई है। यह 'रासक-काव्य-परम्परा' की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसकी भाषा अबल्लू है। कृतिकार ने इसके काव्य-रूप की ओर संकेत करते हुए कहा है—  
'हूँ हिब पमानि नु रासह खनिहि। इसमें वेप-उत्त भी पपीत भाषा में है। इस कृति से एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

पल पमाळ करिमाळ कुंत करतल की बंड  
भसमई छाबळ सुबळ-सैकहूळ मसुळ परांड (उ)।  
सिसिणि शुळ टंवार सखित भाणाबलि ताणई।  
परनु सळाई करि परइ भाळा उणाई ॥

सन्देशरासक— 'सन्देश रासक' अबल्लू की रचना है। भाषा की दृष्टि से यह हिन्दी की पूर्ववर्ती कृति है। परन्तु हिन्दी के 'रासक काव्य' स्वरूप के विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। साथ ही साथ भाषा के सन्धि वालीय स्वस्म ( अपभ्रंस और हिन्दी के मध्य की भाषा ) के अध्ययन के लिए भी इस रचना का विशेष महत्त्व है। इसी दृष्टियों को सम्मुख रखते हुए इस कृति पर यहाँ विचार किया जा रहा है।

'सन्देश रासक' के रचयिता अज्ञातमान ( अनुसूतमान ) हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में उन्होंने अपने परिचय के रूप में कहा है—

गयाएसि पाहूओ पुन पसिडो म मिच्छयेसो रिब।  
तह किए संगूओ माएओ मीरसेनस।  
एह तनओ कुसठमओ पाइय कन्नेमु बीबसियेमु।  
अहहमाण पसिडो सनेहयरासव रदय।

पश्चिम में प्राचीन काल से अत्यन्त प्रसिद्ध जो म्हेच्छ देव है उसी प्रदेश में मीर सेन तन्नुबाय ( भारद् ) उत्पन्न हुआ । उसके पुत्र बह्ममाण ने जो अपने कुछ का कमक था तथा प्राकृत-काव्य और योद्ध विषय में सुप्रसिद्ध था सन्देश रासक की रचना की है । कवि ने अपनी कृति को 'सनेह रासक' कहा है । विद्वानों ने 'सनेह रासक' का क्वांत्तर 'सन्देश रासक' किया है । परन्तु ध्वनि परिवर्तन की सामान्य प्रवृत्तियों के अनुसार इसका क्वांत्तर 'सनेह रासक' होना चाहिए ।<sup>१</sup> कवि ने अपने को 'भारद् बंश' का कहा है । 'भारद्' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता है । इस कृति के टीकाकार ने इस अंश की टीका करते हुए लिखा है 'प्रतीक्षां पश्चिम दिशि प्रभूत पूर्वं प्रसिद्धो म्हेच्छनामा देवोऽस्ति तत्र विपये भारद्वा देवीत्वात् तन्नुबायो मीर सेनाध्य' सम्मूत उत्पन्न ।'<sup>२</sup> 'अर्थात् पश्चिम में म्हेच्छ नामक देव है । यह पूर्व में अति प्रख्यात है । यहाँ मीरसेन नामक पुत्राहा ( भारद् ) उत्पन्न हुआ । 'भारद्' देवी राज्य सम्यक्ता है । परन्तु 'देवी नाम माता' में इसका उल्लेख नहीं मिलता है । बैसे इस शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में होता है—(क) प्रवृद्ध (ख) सत्पुत्र (ग) यह में बाया हुआ । परन्तु कस्मीरिय ने निम्नलिखित में इसका अर्थ 'पुत्राहा' ही किया है । निम्न लिखित अंश से भी इसका स्पष्टीकरण होता है—

विद्य कवित्तु विद्य माह्वु

पङ्क्ति पवित्रणु मनुय नमि कोत्तिय प्पासिड ।

कौत्तुत्तुत्तु भासिमत सरलमाह सनेहरासत ।

तं बापनि विमि सिद्धु सन्नुबुहमण करवि सयेहु ।

पामरं बण बूळुत्तरहिं भं रायत निमुगेहु ।

'अपनी काव्य विद्या के महाराम और पाण्डित्य को बढ़ाने वाले इस सन्देश रासक की रचना मनुष्य लोक ( जन्म ) में कौत्तिक ने कौतूहलसम्पन्न सरल भाव से की है । यह जान कर हे बुधबनो ! जाये बाण मर स्नेह कर पामर बण द्वारा स्फुल्ल अक्षरों में रचित इस काव्य को सुनो । सन्देश रासक पृ० ७

प्रस्तुत अंश में बह्ममाण ने अपने लिए 'कोत्तिय' शब्द का प्रयोग किया है जो पुत्राहा का पर्यायवाची है ।

१—सनेह रासक > सनेह रासय > सनेह रास्य

अहमदन अपने पूर्व की काव्य-परम्परा से परिचित थे। अत्यन्त विनयशील होकर अपने पूर्व के अपभ्रंश प्राकृत पेशाबी एवं संस्कृत के कवियों को नमन करते हैं उनके काव्य तथा छन्द-बैभव के प्रति सम्मानभाव व्यक्त करते हैं—

पुष्पज्योत्स्ना ययो मुकुटिण य सद्गत्वा कुसुमान् ।

रियसोए सुन्दर्यं जेहि कयं जेहि निहिट्ठ ॥

अहमदुय-सङ्गय-पाद्वमि पेशाह्वमि भासाए ।

कन्धवर्द्धराहरे सुकहतं मूसियं जेहि ॥

‘सम्ब्र’ शास्त्र में कुछ प्राचीन विद्वानों और कवियों को भी नमस्कार कराया है, जिनके द्वारा जिलोक के सुन्दर छन्द बनाए गए। जिन्होंने अपभ्रंश संस्कृत प्राकृत और पेशाबी भाषा में कविता की तथा सुन्दर काव्य को सज्जन छंद अलंकार से विनूषित किया। इसके पश्चात् कवि अपनी रचनाशक्ति और वक्तु प्रति आत्मा की व्यञ्जना करता है—

वागज्जु कईय जम्हारि साध सुसह सत्त रहियाव ।

कन्धवर्द्धपुनकं मुकुटित को पसविइ ॥

जहवा न इत्थ दोसो जह सद्यं सवहरेण निविसमए ।

ता कि न हु बोइअ मुज्जे एणीसु बोइअ ॥

जह पद्युगिणि रियं सरसं सुमनोहरं न तवसिहरे ।

ताकि मुवास्वा मा काया करकपर्वतु ॥

‘उन कवियों के सम्मुख हम जैसे श्रुति शास्त्र न जानने वालों की कठना पड़ता मुकुटित की प्रसंखा कौन करेगा? जबका इसमें कोई दोष नहीं क्योंकि यदि निशा में अश्रमा उचित होता है तो रात को घर में दीपक नहीं जलाये जाते हैं? यदि तब-विद्यारों पर बैठकर कोयसे सगस और मनोहर छन्द करती हैं तो क्या ( घर की मुहुरों ) पर बैठकर कौन कार्ब-कार्ब न करें?

सम्प्रेम दासक का रचना-काल —

पाठ्य स्थित जैन भण्डारों से मुनि विनविजयको सन् १९१२ में ‘सर्वेस रासक’ की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी। सन् १९१८ में ‘महाशरद-रिसर्च इन्स्टीट्यूट’ से इनमें इस कृति की एक अन्य प्रतिनिधि मिली थी। इसमें

मूल पाठ की संस्कृत छाया 'अवधूतिका' भी संलग्न थी। सन् १९१६ में सोहावठी ( मारवाड़ ) से उन्हें एक अन्य प्रतिलिपि मिली। इनके व्यापार पर डॉ० हरिवल्लभ मिश्राजी ने इसका सम्पादन किया<sup>१</sup>। अर्हमात्र में अपन समय अपना ग्रन्थ के रचनाकाल का कोई अन्तर्गत् नहीं किया है। अतः इस कृति की रचना तिथि का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है। अनेक ऐतिहासिक तत्त्वों का विस्तरेषण करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष प्रदान किया है कि 'सन्देश रासक' की रचना सिद्धाचल या कुमार पाल के समय में हुई थी। उनका समय बारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध या तेरहवीं शताब्दी पूर्वार्ध है। भाषा की दृष्टि से भी यह कृति इसी काल की रचना समझी है।<sup>२</sup> राहुलसाहस्रपादन इसे बारहवीं शताब्दी की कृति मानते हैं ( हिन्दी काव्य धारा )। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे बारहवीं तेरहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं। ( हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ० ६० )। श्री जगरन्नाथ नाहटा इसे पन्द्रहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं।

सन्देश रासक का काव्य-रूप --

सन्देश रासक रासक काव्य विधा की प्रतिनिधि रचना है। यह कृति तीन प्रक्रमों में विभक्त है। प्रथम प्रक्रम कवि-परिचय और काव्य-परिचय से संबंधित है। मूल कथा द्वितीय प्रक्रम से आरम्भ होती है। तृतीय प्रक्रम में विप्रलंब के अन्तर्गत ऋतु वर्णन की महती चेतना मिलती है। तथा संयोग में ग्रन्थ की समाप्ति होती है। द्वितीय प्रक्रम में कथा की संविदना कवि इस रूप में प्रस्तुतित किया है—

जलंघधिरधोरपनि विरहसक्ति धनच्छन्महुरि।

बीजाभाहि पशु पिहद अल पवाहपवहंति बीहुरि प्र

- १—सन्देश रासक—सम्पादक—श्री जिनविजय मुनि और हरिवल्लभ मिश्राजी।  
 सिन्धु जैन ग्रन्थमाला प्रकाशक भारतीय विद्याभवन सं० २००१। सन्देश  
 रासक—सम्पादक डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विष्णुनाथ त्रिपाठी—  
 प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर बम्बई ४। डॉ० भाग्य प्रसाद गुप्त भी  
 सन्देश रासक का सम्पादन कर रहे हैं। २ सन्देश रासक—भूमिका पृष्ठ ११।



विष्णुमि कर्णमग्नितु, तद् सामन्तिपवन्तु ।

नमः राहि विडम्बित ताराक्षिणः सन्तु ॥२७॥

—सन्देश रासक द्वितीय प्रक्रम ।

'विजयनगर की कोई सुन्दरी जो यौवन के सम्पूर्ण प्रस्फुटन में है, जिसकी कटि क्षीण है जो हंसगामिनी है—उसका मुख-मण्डल मन्त्रित हो गया है । अयु-प्रवाह के साथ ( प्रिय के ) एक देह रही है । उस रमणी का कंचन वर्ण धरीर विष्णुमि से क्यामल हो गया है । मागो राहु ने चन्द्रमा को उस दिया है ।' रमणी एक पत्निक को देखती है । पत्निक के माध्यम से कवि आठ पात्राओं में रमणी के स्व-सौम्य का वर्णन करता है—

कुमुद सराज्ज् कम्बुनिहि, बिद्धि निम्नविम परिटठ ।

तं निम्नविमपि पद्मिनिहि, बहा मविद्या अट्ठ ॥

'वह कामदेव के बाण के समान थी । कम्बुनिहि और रत्नाकार की मण्डल रचना उस रमणी को देखकर मस्तपूर्य पत्निक ने आठ पात्राओं पढ़ी ।

इन आठ 'पात्राओं' में से यहाँ कतिपय उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है —

रमणीतम विह्वलणो धमियंभरणो सुपुष्पसोमो य ।

अकलंक माह वयनं वासरणाहस्त पद्मिनि ॥३३॥

'निसा के अन्धकार को नष्ट करने वाले अमृतवर्षी पूर्ण चन्द्रमा के समान उस रमणी का मुख निष्कलंकता में सूर्य के प्रतिविम्ब के समान है ।

उत्कृष्ट सिरेविषु पद्मिनिहै अंगारै टीरनि सुचविरेष ।

को कविमलाल ब्रुसह सिट्ठं विह्विनामि पुनरपठ ॥

'चोख्वा ( पार्वती ) को अन्धकार ज्ञान ने उससे भी अधिक कुनो के साथ नायिका के अंगों का मल किया है । कवियों को कील बीप से चकता है जब ब्रह्मा ने स्वयं पुनरुक्ति की सृष्टि की है ।

इन पात्राओं को सुनकर वह राजनराजनामिनी अन्धित हो जाती है । पर-जगुठ से बरती जोरती हुई उस कंचन-वर्णी ने पत्निक से विनम्रता की 'हे पत्निक ! अब तुम कहाँ जा रहे हो और तुम कहाँ से जा रहे हो ? वह प्रिय के पास सन्देश भेजने की उत्कृष्टा प्रकट करती है । वह सन्देश कहती है जो

समाप्त नहीं होता । पम्बिक कहता है 'हे मृगमयने ! तपन तीर्थ समस्त विद्याओं में विख्यात है । सम्पूर्ण पृथ्वीपर वह मूल स्वाम के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ से गोप्स सन्तों को ग्रहणकर ( गोप्स सन्देश लेकर ) प्रभु के आदेश से सम्भात जा रहा हूँ ।' ( १५ ) । इस कथन की प्रतिक्रिया रमणी पर जिस रूप में हुई ( क्योंकि उसका प्रिय भी तो सम्भात ही में है । ) उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पठ मावसि निमि सिधु पक्षि यह बन् करहि,  
कहते किमि सबिसर पिय तुम्हकसपहि ।  
पहिल बगइ कर्मणि कहू कि सम्ममणि  
कि मित्रकहि रिग एणि उमिनिपमियम यणि ॥६८॥

'हे पम्बिक ! यदि आधेसाज (वैर) मोड़कर अर्थात् बैठकर क्या कहे तो प्रिय को थोड़ा दण्डों (मसलों) में कुछ सम्बोध कहूँ । पम्बिक कहता है हे कनकानिनि ! कहो रोने से क्या काम । उद्विग्न मृगमयने ! तुम दिन-रात कीमत क्यों होती जा रही हो ?'

इस प्रकार इस प्रक्रम में बिरहिणी की विकल बेवना अगणित मान-आवेगों में मुखातिब हुई है । निविध दण्डों में अपनी मनोव्यथा को पम्बिक के माध्यम से प्रिय के पास पहुँचाना चाहती है । उसके मन की आकुसुता प्रिय के नैकट्य की कामना, और भावों के आकुसुत संस्पर्शों की तरलता इस बंध में काव्य-बैभव का सूत्रार है ।

पम्बिक से अपनी व्यथा की व्यञ्जना में मायिका सज्जा का अनुभव करती है । परन्तु वह अपनी व्यथा से असमर्थ है, वह अनुभव करती है कि यदि सज्जा करके वह भीम रह जाय तो उसकी जीवन-भारा बलि बर्णनीय हो जायगी । वह सन्देश कहती है ( १६-८१ पद्य ) जो समाप्त नहीं होता । पम्बिक प्रस्थान की अमिताया व्यक्त करता है । बिरहिणी के निवेदन पर वह पुन एक बातें है । अनेक रूपों में अपनी मनोव्यथा को अंकित करण के परचातु अन्त में वह पम्बिक से कहती है—

विष्णुमि कण्ठमंगिताम्, तद्द सामन्निपयन्नु ।

पञ्चद राहि विवर्णिम, ताराहिन्द सज्जन् ॥२४॥

—सन्देश रासक द्वितीय प्रक्रम ।

विजयनगर की कोई सुन्दरी जो यौवन के सम्पूर्ण प्रस्फुटन में है  
मिस्करी कटि लीन है जो हंसपामिनी है—उसका मुख-मण्डल मस्ति हो गया  
है । अधु प्रवाह के साथ ( प्रिय के ) पल देख रही है । उस रमणी का कंचन  
वर्ण शरीर मिष्णमि से स्वामल हो गया है । मानो राहु ने चन्द्रमा को घस  
लिया है । रमणी एक पविक को देखती है । पविक के माध्यम से कवि आठ  
भाषाओं में रमणी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है—

कुसुम सराज्ज् क्यमिहि, मिहि जिम्ममिय गरिठ्ठ ।

तं सिन्धेविणु पक्षि पक्षि, महा भविषा अट्ठ ॥

‘वह कामदेव के बाण के समान थी । क्यमिहि और रचनाकार की  
महत्तम रचना उस रमणी को देखकर ममतापूर्ण पविक ने आठ भाषाओं में की ।

इन आठ भाषाओं में से यहाँ कतिपय उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है —

रमणीतम विह्वणो जमियंकरो सुपुण्यसोमो य ।

अकलंक माह वयं वासरणाहस्य पक्षिर्वि ॥३१॥

लिसा के अन्धकार को नष्ट करने वाले अमृतवर्षी पूर्ण चन्द्रमा के समान  
उस रमणी का मुख निष्कलंकता में सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान है ।

सयसज्ज सिरेविणु प्यमियाई अंयाई वीहवि सुवमिसेत्त ।

को कम्मिवाण कुसह सिट्ठं विहिवाभि पुचस्स ॥

‘सैख्या ( पार्वती ) को अन्धकार जघा ने उससे भी अधिक गुणों के साथ  
नामिका के अंशों का गठन किया है । कवियों को कौन बोध ले सकता है, जब  
ब्रह्मा ने स्वयं पुनर्वाच की सृष्टि की है ।

इन भाषाओं को सुनकर वह राजमराक्यामिनी सक्रिय हो जाती है ।  
पल-अंगूठे से धरती को छूती हुई उस कंचन-वर्णी ने पवित्र से जिज्ञासा की है  
पविक । अब तुम कहाँ जा रहे हो और तुम कहाँ से जा रहे हो ? वह प्रिय  
के पास सन्देश भेजने की उत्कण्ठा प्रकट करती है । वह सन्देश कहती है जो

समाप्त नहीं होता । पथिक कहता है 'हे भृगुमन्यवे ! तपस्य तोर्ध्वं समाप्त विद्यायां मे विख्यात है । सम्पूर्ण पृथ्वीपर यह मूस स्थान के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ से गोपम सन्नेह को ग्रहणकर ( गोपम सन्नेह लेकर ) प्रभु के आदेश से सम्भात जा रहा हूँ । ( १२ ) । इस कवन की प्रतिक्रिया रमणी पर जिस रूप में हुई ( क्योंकि उसका प्रिय भी तो सम्भात ही में है । ) उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पठ मोडवि निमि सिद्धु पहिय वह बय करहि,  
कहुते किमि सविस्त विम सुखकृषहि ।  
पहिय मगह कर्मणि कहु कि कर्मणि  
कि मिलनहि विम रमि उबिभिमियनि यनि ॥१८॥

हे पथिक ! यदि आधेक्षण (पैर) मोड़कर अर्धात् बैठकर बया करो तो प्रिय को बौद्ध सन्नेह (बसरो) में कुछ सन्नेह कहुँ ।' पथिक कहता है 'हे कनकांशुनि ! कहो रोने से क्या काम । उद्धिन्न भृगुमन्यवे ! तुम विम रास शीघ्र क्यों होती पाती हो ?'

इस प्रकार इस प्रक्रम में विरहिणी की विकल वेत्ना अव्यक्त भाव-आवेशों में मुखरित हुई है । विविध क्षणों में अपनी मनोव्यथा को पथिक के माध्यम से प्रिय के पास पहुँचाना चाहती है । उसके मन की आकुलता प्रिय के नेकदय की कामना, और भावों के आकुल संस्पर्शों की तरलता इस अंश में काव्य-बोध का सूँघार है ।

पथिक से अपनी व्यथा की व्यहना में नायिका कन्या का अनुमन्य करती है । परन्तु वह अपनी व्यथा से असमर्थ है वह अनुमन्य करती है कि यदि कन्या करके वह मीन यह नाम तो उसकी पीवन-धारा बलि अपनीय हो जायगी । वह सन्नेह कहती है ( १२ व १८ शब्द ) को समाप्त नहीं होता । पथिक प्रस्थान की समितापा व्यक्त करता है । विरहिणी के निवेदन पर वह पुनः रुक जाता है । अनेक रूपों में अपनी मनोव्यथा को व्यक्त करने के पश्चात् अन्त में वह पथिक से कहती है—

जल गयो सो मुहमो तहिह बम्ह बिबसाउ अणियसी ।  
 बिबसाउ हियए पयिन कासो कासुअ परिणमइ ॥१२८॥  
 मुहोअहं जल पिए इअउर बिम्हानसेन को मिम्ह ।  
 मळमगिरि सोसणेन य सोसिअउ सोसिया बण ॥१२९॥

‘बिब बिब’ से यह प्रिय (पुत्र) गया है, उस बिब से मुझ अग्निहृति (उद्दिष्टता) है। निश्चय ही समय हृदय में कास के समान छमता है। जिससे मैं प्रिय-रूपका हुई वह शीघ्र अपनी अग्नि (शीघ्रता) से जल जाये। जिसके द्वारा मैं सोसित हुई हूँ वह (शीघ्र) मळमगिरि समीर से बूझ जाए।

तृतीय प्रक्रम में कवि पद्मचतुर्वर्णन की योजना के द्वारा विरहिणी की अवस्था का चित्रण करता है। यह वर्णन उद्दीप्त के रूप में हुआ है। और यह शीघ्र से आरम्भ होता जिसका क्रम इस रूप में है—

शीघ्र वर्णनम्, बारी वर्णनम्, सरइ वर्णनम् हेमन्त वर्णनम् घिसिर वर्णनम्, तथा वसन्त वर्णनम्। ऋतुओं के संक्षिप्त व्यापार विधान की ओर कवि की दृष्टि यहाँ नहीं है। नायिका पक्षि से विभिन्न ऋतुओं में अपनी मनोबधामों के रूप ही प्रस्तुत करती है। और अपने भावों के नियोजन के लिए प्रकृति के भिन्न-व्यापारी को संकलित को करती है। शीघ्र की तत्त वामु विरहिणियों को तत्त करती है जातक मन्त्रन की कामना से पित पित करते हैं। स्रिता का बल शीघ्र हो जाता है। फल-भार से नम्र मुन्दर सङ्कार कन और मुन्दर समते हैं।

अइअउर नामयसि पईअनु न बहर,  
 तं मुअर बिबहिनिहि अंगु करिअउरइ ॥  
 पित आनइहि मजिअइ मन्त्रन करिअहि ।  
 ससिअ निवहु तुअअअउर सरइ तरमिणि हि ॥  
 फलहारिअ उलमिअउ अउअअअइ मुहि ।  
 मुअर रस अणउरिअ पइमिअर गंवरहि ॥

वर्षा के वर्णन में कवि अधिक जीवन्त है। नव मेघों के समानान्तर उड़ने वाली बक-पक्षियों का रूप विशेष मोहक लगता है। ममूर रूप करते हैं। पावस का उपमहार करती हुई यह कहती है—

नवमेघमास मास्मि बह्मि सुरभाष रसविशि पसरो ।  
 वनस्यन् धम्म इतोऽरहि पिय पावसं कुसहं ॥ ११३ ॥  
 राय द्ध कंठमि विठ्ठी बं विषमि  
 कह हुठ कह पिठ पत्परणि बु न मुस्य सणि ।  
 जइ जहु निम्पठ बीठ पावसंविहि बडिठ  
 हियठ न किम किरि पट्ट-उरं बजिहि बडिठ ।

‘नवमेघ मासों से मच्छित नम में इन्द्रजनुप और पृथ्वी ठल को सवन वाष्पा-  
 शित निय हुए इन्द्रियों से विद्याओं का प्रसार बारक हो गया है।’

‘प्रिय ! पावस कुसह है। अनुराग से रूठ-कण्ठा ( मैं ) जब स्वर्णों से बनी  
 तो कहाँ मैं और कहाँ प्रिय ! मेरे बंग प्रस्तर के बन हुए वे जो उची लज मर  
 नहीं गई यदि पाप-बन्ध से लटित बीज नहीं निकसा तो हृदय ही क्यों नहीं फूट  
 क्या मानो यह भी बन्ध का बना हुआ है। इसी प्रकार शरद हैमन्त ऋषिर  
 और वसन्त के वर्णन है। वसन्त के सम्प्राप्तपूर्ण प्रभाओं के अंकन के प्रसि कवि की  
 दृष्टि विशेष सजब है। ऋतुवर्णन के द्वारा कथा को विकसित करने की चेष्टा भी  
 की गई है।

इस प्रकार ‘सन्धेय रासक’ ‘वीण प्रबन्ध बर्मा’ मुक्तक काव्य है और इसकी मूल  
 अनुपेक्षा शृङ्गार मूलक है। इस कृति में युग के लोक-जीवन-स्वरूप का भी अंकन  
 मिलता है। और ऋतु वर्णन और नगर वर्णन से इस समय के भारत के पश्चिमोत्तर  
 प्रांत का पूरा परिचय मिलता है। कथवर्णन प्रकृतिवर्णन इत्यादि में कवि पूर्ण  
 परम्परा का ही अनुसरण करता है।

‘सन्धेय रासक’ २२५ छन्दों का काव्य है। सामूहिकता की दृष्टि से इसमें २२  
 प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। पिछले पृष्ठों में ‘वृत्तवाचिसमुच्चय’ और  
 ‘स्वर्णमूछन्दस’ का उल्लेख किया गया है। इन कृतिषो में ‘रासक’ के कवियों  
 की चर्चा मिलती है। ‘सन्धेय रासक’ में इनके द्वारा निर्धारित ‘रासक’ के सम्पूर्ण

समान उपनमन हैं। २२३ ध्वनों में ८४ ध्वन केवल रासों हैं। इसके अनिर्दिष्ट अन्य ध्वनों की संख्या इस प्रकार है—

ध्वन	संख्या
माहा	४०
अदिष्ठा	२४
पदधिया	२२
बोहा	१८
डेमिल्ल	१
कामिणीमोहण	२
भुविष्ठम	२
सहस्रद्वय	२
सामकम	१
कुवह	१
मन्दिनी	१
भमरावली	१
कन्दोदय	१
रमनिज	१

### सम्बन्ध रासक की भाषा

सम्बन्ध रासक परवर्ती अपभ्रंश अपभ्रंश की दृष्टि है। इसकी भाषा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(क) संवृत अक्षरों ( closed syllables ) में सामान्य स्थिति में व ध्वनि इ में परिवर्तित मिलती है। उदाहरण—सहस्रर > ससह्र, ससिह्र।

उदा. भावर बल संपुत्त ससिह्र वयनी (हे ससह्र वयने वह नगर कोष्ठ वनों से परिपूर्ण है।)। ससपुत्त सिरा > ससपिरगिरा सो भासन्न ससपिरगिर वयनि। सिरा ससुत्त ससिसासु कस्य बीह्र वयनि। ( फिर पत्रिक के पास पहुँचकर दीर्घ गूना विरहिणी कृष्ण वाणी से विकास पूर्वक बोली )।

(ख) बनेक सम्बन्धों में इ ध्वनि ज में परिवर्तित मिलती है।

उदा० विरहिनि > विरहनि विरहाण मह रउठ सुणहु विमुदठ रसियह रस संजी  
प्यरो (विरहिणियों के लिए मकरध्वज रसिकों के लिए विमुदठ रस संजीवक है)।

(ग) अकारान्त पुष्टिग प्रातिपदकों की उ विभक्ति स्वार्थ प्रत्यय के साथ संलग्न होने पर कृत हो जाती है—उदा० गेय सुगिय परबेयण निम्नेहु बरह

मसिनिमित्तु कहि म्वत प्रह्व तह करह ।

‘उस स्नेहहीन ने बळते हुए मेरी बेचना नहीं सुनी उस लज में एक मासिनी वृत्त कहना’ ।

(४) द्वितीय और तृतीय पर्व की मध्यकाळीन भारतीय आर्य भाषा में प्राचीन भाष्यीय आर्य भाषा के स्वर मध्य स्वर व्यञ्जनों का छेप होने लगा था फलस्वरूप सम्पर्कित स्वरों ( vowels in contact ) की प्रवृत्ति की उद्भावना हुई । अन्य प्रक्रियाओं के साथ-साथ आधुनिक भाष्यीय आर्य भाषा में सम्पर्कित स्वर समीकृत होने लगे थे । यह प्रवृत्ति ‘सन्देश रासक’ की भाषा में मिलती है ।

उदा० स्वर्णकार > सुनआर > सुनार ।

सुनारह निमि महहिमउ पिय उल्लिख करेह ( सुनार के समान मेरा हृदय सर्वप्रथम प्रिय की उत्कण्ठा उत्पन्न करता है ) ।

सहकार > सहआर > साहार ।

कह पछुन मुहूर्ति समुटिछ्य करय भूनि

हउ निमि निस्साहार पहिय साहार बनि ।

‘वे ( कीर ) पछुन के साथ भूलते हैं तो करय ध्वनि उठती है । पवित्र । सहकार बनने मुझे निस्साधार कर दिया ।

(१) सन्देश रासक की भाषा में ‘य’ ध्वनि ( y glide ) की प्रधानता मिलती है—

उदा० मय > मअ > मय ।

बह मयपहु मउ भरए कमल मउ भरए कमल दलख हलयाय बुपिच्छो ।

इसी प्रकार ‘य’ ध्वनि के भी व्यापक उदाहरण मिलते हैं ।

उदा० रसति > रअइ > रसइ ।

पूमर लोयन कइ दुवरवत ।



केतकी > केवइ > केवइ ।

केवइ वह कंदुहय अनुरता सयन ।

(१) द्वित व्यञ्जन के सरलीकरण (Simplification of double Consonants) के उदाहरण दो व्यंजनों में मिलते हैं—

(१) पूर्व की कषु स्वरध्वनि को बिना वीर्य किए हुए—

कषिकार > कन्निमार > कनयार

बुढ़ा + बल्ल > बुडिस्तल

(२) पूर्व की कषु स्वरध्वनि को वीर्य करके —

ऊा० उच्छ्वास > ऊसाव

मिस्सरति > नीसरत

(७) कर्तृवाचक संज्ञा रचना के लिए—यह प्रत्यय का प्रयोग 'सन्देश रासक' की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है—ऊा० वीक्यार (२२) संबीब्यार (२२) उच्छाक्यार (१७) । हिन्दी के कर्तृवाचक प्रत्यय-एत (कूटेरा बिनेरा) का विकास इसी प्रत्यय से हुआ है ।

(८) सम्बन्ध कारक के लिए—ह का सविमल्लिक प्रयोग किया गया है । पञ्चसंवत् (७) निर्यवत् ।

(९) सर्वनाम प्रथम पु० कर्ता एकवचन हट हटें, मध्यम पुंस्य तुह तू

कर्म ,, मह

करण मह तह

अधिकरण मह पद

सम्बन्ध मह

बहुवचन —करण अम्हहि, तुम्हेंहि, तुमहि

सम्बन्ध = अम्ह

(१०) संख्या वाचक —बल्ल, एत (१८) के दिल्ली (८५) विठय (त्रिमुना) बु धिय (११२ योगों) ति (१८) बरजनी (१५६) ।

(११) क्रिया—

(क) भागार्थ में क (१६) हि, इहि का प्रयोग मिलता है । ( मध्यम पु० एकवचन ) अमु = वहमु ( ८२ ) कह: वहह ( १८ ) अथ पुरय एकवचन

के लिए—अठ का प्रयोग ठिक्ता है—उदा० होठ, ( २ ) सिग्मन्त बयउ  
इत्यादि ।

मध्यम० बहु० के लिए—अनु का प्रयोग मिक्ता है—उदा० गुम्बु निमुण्ड ।

(ख) वर्तमान कासिक कृत्य के लिए—अन्त का प्रयोग निमित्त रूप से  
मिक्ता है—उदा० उमित्तो ( १०० ) मोस्य ( २२ ) ।

(ग) इन्द्रार्ध के लिए—इजठ ( उजिजठ ), इजयु ( पदिजयु, उदिजयु )  
आदि रूप मिक्ते हैं ।

(घ) मविण्य के लिए—उ वीर-हू का मिक्ते है ।

इयु ( प्रथम ) इति इहसि इहह, इत्यादि ।

(१२) कर्मवाच्य के लिए निम्नलिखित तीन रूप प्रयुक्त मिक्ते हैं—

(क) इय (स) इज, (ग) ईय । इनके अविरिक्त ह रूप भी मिक्ता है —  
मिजइ रिजइ मिजइ, यजइ ।

(१३) प्रेरणार्थ और नामवाच्य—प्रेरणार्थ के लिए 'आब प्रत्यय का प्रयोग  
मिक्ता है । 'व्याप्यान' से 'व्यापियइ, 'लिङ्ग' से 'लिङ्गिकि' ( १६८ )  
'वचिज' से 'वचिजइ' आदिनाम वाच्य हैं । य 'सन्नेस रासक' में व्यापक रूप में  
प्रयुक्त है ।

(१४) परस्मैय्य लेशवाच्यः—प्राचीन भारतीय भाष्य भाषा के कठिन  
संयोगात्मक रूपों के अन्तर्गत 'सन्नेस रासक' की भाषा में मिक्ते हैं । परन्तु  
समीन कारक बिहू के रूप में निम्नलिखित राज्य विषय रूप से महत्वपूर्ण हैं—

(क) सतिविहि (अधिकरण):—बिबिह बिबरबन-सतिविहि ब नवनिज ( ४३ ) ।

(ख) हुँठ डिम्पठ रेसि—उदा० हिमब डिठठ (हृय स) कुकविच रमि ।

(ग) छवि ( > छम ) उदा कइय छवि ।

(घ) छवि इय परस्य का प्रयोग सम्बन्ध कारक के अर्थ में होता है, उदा०  
महण, महण, इत्यादि ।

बीसठवेक रासो—'बीसठवेक रासो' के रचयिता नरपति नाहू हैं । प्रस्तुत  
इति की रचना निच के विषय में कलक न स्वयं लिखा है:—

बाहू से बहोतराही मेकारि ।

कैठ बनी मयमा बुपिबारि ॥

मास्ह रसाइण बारम्भई ।  
 छारबा ठूठी बहू कुमारि ॥  
 कासमीरा मुस मंडनी ।  
 रास प्रयासों बीसल दे राइ ॥

एक अन्य प्रतिक्रिया में इसकी रचना सिद्धि प्रस्तुत रूप में प्रस्तावित है—

संकत सहस्र सिद्धितराई जाणि ।  
 मास्ह कबीसरे कबी अमृत बाणि ॥  
 गुन गुण्यत चरहाण वी ।  
 मुकुल पल पंचमी पावन मास ॥  
 रोहिणी कलत्र सौहार्दपत्र ।  
 सो दिन सिद्धि जोइसी जोइह रास ॥

एक अन्य प्रति में इस कृति की रचना सिद्धि का निरूपण इस रूप में मिलता है—

संकत ठेर सरोसरह जाणि  
 सुक पञ्चमी बह भावन मास  
 हस्त कलत्र रविवार सुं ।

एक अन्य प्रति में रचना सिद्धि का कलत्र इस रूप में हुआ है—

संकत सहस्र सिद्धितराई जाणि  
 मास्ह कबीसरि सरसि बाणि ।

भाषा में रामचन्द्र मुक्त 'बाहू है बहोतराहा' का अर्थ संवत् १: से है।

१—बाहू है बहोतरा का स्पष्ट अर्थ—१२१२ है। 'बहोतर' 'बावसोत' का अपांतर है। अतः 'बाहू है बहोतरा' का अर्थ 'बावसोत बाव' से है। गणना करने पर विक्रम संवत् १२१२ में ज्येष्ठ कृती नवमी को बुधवार पड़ता है। कवि ने रासों में सर्वत्र वर्तमान काल का ही प्रयोग किया है जिससे यह बीसल दिन का समझावीन भाग पड़ता है—  
 शिन्धी० सा० इ० पृ० ३२ ३२ ।

डॉ० ठारक नाथ अग्रवाल ने संवत् १०६३ की तिथि को स्वीकार किया है। अमरचन्द नाहुटा ने विभिन्न प्राप्त प्रतियों के अनुसार प्रस्तुत तिथियों का निर्धारण किया है। सम्बत् १०७३ १०७३ १२१७ १३०७, १३७७। मिश्र बन्धुओं ने सं० १२२० साक्षा सीताराम ने १२७२ सम्य बीबन बर्मा ने १२१२ श्री संकर हीराचन्द ओझा ने इसे संवत् १०३० १०३६ क मध्य की रचना माना है। इन दृष्टियों से 'बीसलदेव रासो' की रचना बीसलदेव क १३६ वय परचात हुई।

श्रीसंकर हीराचन्द ओझा इसे चौदहवीं शती विक्रम की रचना मानते हैं।<sup>१</sup> डॉ० राम कुमार वर्मा इसे सं० १०७३ की रचना मानते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रतियों का आचार ग्रहण करते हुए डॉ माता प्रसाद गुप्त ने 'बीसलदेव रासो' के रचनाकाल से सम्बन्धित निम्नलिखित तिथियों की प्रस्तावना की है।

(१) सं० १०७७।

(२) सं० १०७९।

(३) सं० १३७७।

(४) " सं० १३०६।

{ 'तेर सनोतर' स म का भिन्न अर्थ  
सिद्ध हो सकते हैं।

(५) " सं० १२७७।

(६) " सं० १०१७।

{ 'बारह सौ बहोतराहा' स म बना

अर्थ सिद्ध हो सकते हैं। इस तालिका का प्रस्तुत करत हुए डॉ० गुप्त ने मान कहा है 'बीनादि और कार्तिकादि—दो प्रकार के वर्षों के अनुसार इन छ' का बारह तिथियाँ बन जाती हैं और यदि इन और वर्तमान संवत् मिल जायें तो उनमें से कुछ बीबीस तिथियाँ होती हैं।<sup>२</sup> प्रस्तुत 'न विभिन्न प्रतियों के आचार पर 'बीसलदेव रासो' की रचना तिथि का निणय सम्भव नहीं लगता है। बहुत सम्भव है इस काव्य का विकास लोक-जीवन में मौखिक परम्परा से

१—रामभूती का इतिहास भूमिका पृ० १६।

—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १४७।

२—बीसलदेव रास द्वितीय संस्करण पृ० ३६ ३७।

हुआ हो। और मूल रचना के पर्वोत्त समय बाद इसे पुनः संश्लिष्ट करने के अनेक प्रयत्न हुए हो। डॉ० माता प्रसाद भट्ट ने इस कृति के विकसनीय स्वभाव की कल्पना की है। 'बीसछदेव रास' के सम्पादन में उन्होंने नेबल एक सौ अठारह छन्दों का आचार ग्रहण किया है। उनकी यह धारणा है कि 'बीसछदेव रास' का मूल रूप इन्हीं छन्दों में रहा होगा। इस कृति के स्वस्थ विकास की चार अवस्थाओं की भी कल्पना उन्होंने की है। प्रत्येक अवस्था के लिए पचास वर्णों की अवधि के अन्तर की प्रस्तावना की गई है। अपने निर्धारित पाठ-परम्परा के अनुसार डॉ० गुप्त ने प्रथम प्रतिका काष्ठ सं० १३६६ १४३३ के मध्य माना है। तथा संस्कृ १४०० को 'बीसछदेव रास' का रचनाकाष्ठ स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में अपनी धारणा का अधिक व्यापक रूप में स्पष्टीकरण करते हुए डॉ० गुप्त ने लिखा है 'एक अन्य प्रकार से विचार करने पर ग्रन्थ की रचना १४ बीसताब्दी के उत्तरार्ध में होने का अनुमान होता है। इसके पाठ की एक प्राचीनतम विद्यमान प्रति सं० १६६६ (सन् १३७६) की है और एक दूसरी शाखा की सं० १६६६ (सन् १६१२ ई.) की। पाठ-परम्परा पर विचार करने पर दिखाई पड़ता है कि सं० १६३३ (सन् १३७६) की प्रति तक मूल से पाठ की कम से कम चार स्थितियाँ पड़ी होंगी और इसी प्रकार सं० १६६६ (सन् १६१० ई.) की प्रति तक मूल रचना से पाठ तक छ स्थितियाँ कम से कम पड़ी होंगी। यदि प्रत्येक स्थिति के लिए ३० वर्णों का समय रक्खा जाय तो मेरे विचार से अधिक नहीं है—तो एक शाखा के अनुसार मूल पाठ का समय सं० १४३३ (सन् १३७६ ई०) तथा दूसरी शाखा के अनुसार सं० १३६६ (सन् १३१२ ई०) के लगभग टकरता है। यह तो प्रातः प्रसिद्धों के आचार पर हुआ। अर्थात् नहीं कि और प्रसिद्धों प्राप्त होने पर बीच में एकाग्र स्थितियाँ और भी निकल आएँ। ऐसी रक्षा में दोनों तिथियों में से सं० १३६६ (सन् १३१२ ई०) के लगभग की तिथि अधिक मान्य प्रतीत होती है।'

श्री मोतीलाल मेनारिया ने 'बीससरेब रासो' के भाषा-स्वरूप का आभार प्रकट करते हुए कहा है कि यह कृति सोलहवीं शताब्दी की है।<sup>२</sup> श्री अमरपद माहटा ने भी इसी विश्वास का समर्थन किया है।<sup>३</sup> मेनारियाजी ने यह भी कहा है कि 'बीससरेब रासो' का रचयिता गुजरात का एक कवि है जिसने सं० १५६५ वि० ( सन् १४८८ ई० ) तथा सन् १५०३ ई० में दो अन्य ग्रन्थों की रचना की है। मेनारिया जी ने गुजराती कवि नरपति की कतिपय पंक्तियों को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत भी किया है।<sup>४</sup>

माहटा और मेनारिया का निष्कर्ष 'बीससरेब रासो' के नागरी प्रचारिणी वाले संस्करण पर आधारित है। यह संस्करण निम्नसंतीय नहीं है। इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। डॉ० माताप्रसाद<sup>५</sup> गुप्त ने 'बीससरेब रास' का सम्पादन किया है। डॉ० ठारकनाथ<sup>६</sup> अग्रवाल ने भी इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। ये सम्पादन अधिक वैज्ञानिक हैं। हमें भाषा का जो स्वरूप प्रस्तावित है, उसके आधार पर हम यह निर्णय ले सकते हैं कि यह कृति सोलहवीं शताब्दी में रचयी गई है।

'बीससरेब रास' के रचयिता नरपति नासू और गुजरात के नरपति क्या एक ही व्यक्ति हैं यह प्रश्न विचारणीय है। इस सम्बन्ध में निर्णय सरलता से नहीं दिया जा सकता। डॉ० गुप्त ने वस्तु स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उनका निष्कर्ष इस प्रकार है—

(क) गुजरात के कवि ने अपने लिए 'नासू' का प्रयोग नहीं किया है। 'बीससरेब रास' के कवि ने अपने को 'नरपति नासू' कहा है।

(ख) जो छान पंक्तियाँ दुकाना के लिए दोनों कवियों से ली गई हैं उनमें से आर तो 'बीससरेब रास' के निम्नलिखित श्लोक से प्रक्षिप्त हैं। दोष दोनों में

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ८७-८८।

३—राजस्थानी जगदी १९४०।

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ८८-८९।

५—बीससरेब रास हिन्दी परिपक्व निम्ननिष्ठात्म्य प्रकाश।

६—बीससरेब रासो हिन्दी प्रचारक पुरतनात्म—बाराभासी।

को साम्य है वह साधारण है उस प्रकार और उतना साम्य देता जाय हो मध्यम के किन्हीं भी दो कवियों मिल सकता है ।'

डॉ० गुप्त का द्वितीय लिपिकर्ष अविन वैज्ञानिक प्रमाणों की अपेक्षा रखता है । मुबरात के गरपति बिन धर्मावलम्बी थे । इनकी जिन रचनाओं का उल्लेख किया गया है वे बोन धर्म से सम्बन्धित हैं । 'बीसल्लेखरासो' का कवि बोन मतावलम्बी नहीं है और प्रस्तुत हृदि भृगार मुष्क रचना है । इन उक्तिों से वस्तु निवृत्ति का स्पष्टीकरण हो सकता है ।'

कवि कथा के जन्त में कहता है —

जिउं राजा राणी सु मिरया ।

सिम एव संसार मिलिन्वो सहुकोइ ॥

'सल्लेख रासक' के कवि ने भी कथा के जन्त में इसी प्रकार की भावना प्रकट की है—

जेम अविजित कज्जु तसु सिमु लचमि म्हुंतु ।

सिग पवत सुयंतयइ जयत जनाइ जर्तु ॥ २२३ ॥

बीसल्लेख रासो का काव्य-सौन्दर्य

'बीसल्लेख रासो' रासक-काव्य परम्परा की प्रतिनिधि रचना है । विरहाङ्क तथा स्वयंभू की रासक-विषयक जिन परिभाषाओं का उल्लेख किया जा चुका है उनके अनुसार 'बीसल्लेख रासो' का मूल्यांकन सम्भव नहीं सम्यता है । परन्तु

१—हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० १०२

२—राजस्थानी साहित्य के इतिहास की रूप रेखा (मोतीलाल नेनारिया १९३३) में लेखक ने लिखा है हिन्दी भाषा के बाबि स्वल्प और उसकी अविकसित अवस्था का बहुत कुछ आभास हमें इस ग्रन्थ द्वारा मिलता है । पुनः नाहटा ने 'बीसल्लेख रासो की हस्तलिखित प्रतियाँ' शीर्षक लेख (राजस्थानी जनदरी १९४०) में ग्रन्थ की औपेक्षिक ऐतिहासिक और भाषा-वर्णों का विश्लेषण करके ग्रन्थ की प्रामाणिकता का ज्ञान किया है । स्वर्गीय मोरीचंदर हीराचन्द बीष्ण ने नायरी प्रचारिणी पत्रिका-वर्ष ४० ४४ सं० १९९९ २००६ में 'बीसल्लेख रासो की व्यापक आलोचना की है । इसके नाहटा की की संकाओं का समाधान होता है । विशेष अध्ययन के लिए इन सम्बन्धों को देखो ।

‘रासक काव्य’ की प्रधान वृत्तियाँ इस वृत्ति में उपलब्ध हो जाती हैं। इस वृत्ति में छन्दों की विविधता नहीं है। इसमें केवल एक ही प्रकार का छन्द प्रयुक्त है। डॉ० माता प्रसाद गुप्त इसे अल्प रूपक निबद्ध परम्परा की वृत्ति मानते हैं। डॉ० गुप्त के वर्गीकरण के सिद्धान्त के प्रति विचार प्रकट किया जा चुका है। परन्तु यदि उनके वर्गीकरण की स्पष्टता के प्रति आप्रह ही प्रकट किया जाय तो इसे ‘अल्परूपक निबद्ध परम्परा’ की अपेक्षा ‘एक रूपक निबद्ध रासक-काव्य-वृत्ति’ की संज्ञा दी जानी चाहिए। वास्तविकता यह है कि ‘बीसछन्दे रासक’ का विकास ‘ये रासक काव्य’ के रूप में हुआ है और अपनी रचना के अनेक वर्षों पश्चात् यह वृत्ति चिह्नित हुई है।

‘बीसछन्दे रासो’ एक कोमलकामी ‘रासक काव्य’ है। अल्प मूलरूप में यह एक प्रसंगीत है जो विप्रलम्भ की संवेदना पर विकसित है। इस वृत्ति में बीसछन्दे तथा राजमसी वाम्पत्य-सूत्र को बटना के आधार सिद्धा-रूप में ग्रहण किया गया है। बीसछन्दे का राजमसी से बँटकर उड़ीसा जामा और बारह वर्षों के पश्चात् लौट जाना—यही इसकी कथा है। परन्तु इसमें कथा का विशेष महत्त्व नहीं है। निरहिणी नायिका का प्रवास में गए पति के पास किसी पवित्र या अन्य व्यक्ति द्वारा छन्देस भेजने की वृद्धि का प्रयोग भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विधा है। काश्मिर के ‘मिश्रवृत्त’ में भेष का प्रयोग वृत्त के रूप में हुआ है। ‘सन्देस रासक’ में इस वृद्धि का प्रयोग किया गया है। अतः बीसछन्दे रासो इसी प्रकार की वृत्ति है।

‘बीसछन्दे रासो’ का कवि भारतीय काव्य-वृद्धि का अनुसरण करते हुए आरम्भ में यकैस बन्दना करता है—

गठरिका नवन त्रिभुवन सार ।

गाव मेरुद बारह जहर भँवार ॥

एक पेंतठ मुनि भक्तहृत्सद ।

इस बन्दना के पश्चात् कवि वृत्ति की मुख्य गति-ला की ओर स्तब्ध करता है—



हस गमनि मृगलोचनी नारि ।

सीस समारद रिम मण्ड ॥

×

×

×

×

कोद सिरजी जलगावारी नारि ।

बाह विहाकठ रे मूर्छा ॥

बीसलदेव रास' का आग्निमय अंश केवल उपक्रम है । इति की मूल संविदा द्वितीय प्रक्रम से आरम्भ होती है । यह अनुकेतना पुष्प और नारी की सहज मनोवैज्ञानिक भाव अनुप्रेषणाओं पर अवलम्बित है । वह परिणीता के सम्मुख प्रभवव्यञ्जना की अपेक्षा बहु अपने वैभव का अभिमान प्रकट करता है । वह सामन्तवादी मनोगठन की विशेषता है । वैभव से राजमती को प्रभावित करने के प्रयत्न का वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है —

गरव करि बोलियत संदमारि बास ।

मो सारियऊ नाहि जबर मृजास ॥

महा नरि संदमारि उग्रहृद

बिहु रिछई बाजा रे बेसस पैर ।

लाज मुरीया पापर पड़इ,

गोरी राजकठ बरसजठ गइ अजमेरि ।

राजमती प्रत्युत्तर देती है 'हे सौमरबास कर्म न करो तुम्हारे समान अन्ध युवाक भी हैं एक [तो] जड़ीसा का स्वामी है । उसके घर हीरे की जाने हैं । जड़ीसा के राजा के वैभव का उल्लेख सुनते हैं बीसलदेव को आश्चर्य सक्त है । उसके पुष्प यन में शंका जाग्रत होती है । वह कहता है, 'हे गोरी पैरा जन्म जेसकमेर में हुआ विवाह अजमेर में हुआ । तू बाएँ बरस की छोरी है और कहीं जड़ीसा और जगन्नाथपुरी है । मैं जन्म छोड़ता हूँ और पानी नमता हूँ । तू अपने जन्म की बातें कह । इस सम्पर्क में कवि राजमती का स्ववर्णन करता है और लोक तत्त्वों का समावेश करता है । बीसलदेव के प्रत्युत्तर में राजमती अपने पूर्व जन्म की कथा कहती है । इस स्व-वर्णन में कवि पारम्पर्य गृहीत उपमाओं का प्रयोग करता है —

जनम मोगिते स्वामी मारु कह देखि ।  
 राज कुंवरि अगह रूप असेति ।  
 रूप निरूपम मेदिनी ।  
 पहिरअह जोबडी ग्रीवह रे लंकि ।  
 माछी गोरी बग पातसी ।  
 अहर प्रवालीय नह बाझिम बँत ।

राजमती नारी की नैसर्गिक अनुभूतियों से पूरित संस्पर्धित हो जाती है । वह अपने प्रिय की महाम्यता के सम्मुख अपने को नत कर लेती है, क्योंकि बाल्य जीवन की गरिमा के प्रति उसमें मोह है । वह यह अनुभव करती है कि अपने प्रत्युत्तर से उसने अपने पति को आघात पहुँचाया है । वीरसन्धेय प्रवास की प्रस्तावना करता है । राजमती उसे समझाती है । वह अपने पीछर स हीरो के लाने का प्रलोभन देती है । वीरसन्धेय का आहत अहं इससे खतुब नहीं होता । वह प्रवास क लिए तत्पर है । राजमती की नारी-वेदना आकृष्टता में परिवर्तित हो जाती है । विप्रसम्भ की आशंका से उद्विग्न राजमती का स्वरूप बिबान कवि अनुभूतियों की तीव्रता द्वारा व्यञ्जित करता है ।

आत्मियत उल्लभाणत भग जाण न देख ।  
 मो नह मारि कह सरिखीय केह ।  
 अंचल छहि बज हम कहह ।  
 दुइ दुप साजह हो सामीप सौंज ।  
 जोवन मुरखीय मारिखह ।  
 दोस कियत जह साधन बाज ।

प्रवासी जला परणु स्त्री उस जाने नहीं देती । वह कहती है, 'या तो मुझ मार डाल या तो साथ ले चल । उसका उत्तरीय पकड़ कर राजमती इस प्रकार कह रही है, 'हे स्वामी सम्पा समझ मुझ को कुछ पीड़ा पहुँचाते है । एक तो जीवन को मुझ मरोड़ कर मारता है । दूसरा संतान हीन होना ।

हम स्पष्ट देखते हैं कि इस सन्दर्भ में कवि ने बाल्य की सहज अपिकार अन्य मनुष्येष्टाभा के द्वारा प्रणयी-मूलक की गृहकारण के अंगुणियों

का चित्रण किया है। प्रणय की कुहेलिकाओं में वियोग की भावी सम्भावना का अंकन काव्य-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य की उद्भावना करता है। अति संयत शरावली में कवि ने संस्पर्श के प्रभावों का भी अंकन किया है। राजमती संस्पर्श से बीससरेख उन्मूलित हो उठता है। याचना तथा तर्क के मध्य उसकी स्थिति द्वन्द्वात्मक हो उठती है।

झोड़ि नइ गोरी तू रे मुझे जान ।  
बरस दिन रहै तउ बारही जान  
कठिन पयोहर निज किया ।  
हसि करि गोरी कहिमु बिचार ।  
एक दिन सुर नर हुनाछइ धार ।

‘गोरी तू मुझे झोड़ मुझे जाने दे। यदि मैं बरस दिन छूँ तो मेरी छपस तुमने अपने कठिन पयोहरों पर अग्नि रखा किया है। गोरी तू हँस कर अपने बिचार कह। यह दिव्य अग्नि तुने बड़ाकर रखा है। इस अग्नि में सुर-नर समी धार हो चुके हैं।’

राजमती सह-वर्णिनी है। वह मालिनी भी है। उसका मान अधिकार अन्य अधिमान पूर्ण है बीससरेख उसकी अवमानना करता है। राजमती का अधिमान बाह्य होता है। वह ममीह्य होकर कहती है—

आबी हो स्वामी महे बारी हो आच ।  
महसा हो बारब सिद्ध बेसास  
बाँधी करि अनि ननि विणी  
महाकी सगा सुनीमा माँहो पी नी भाम ।  
बीबत बी मूया बरह  
जातुं हो कपी कुम्हारका काम ।

इस प्रकार की वर्णन प्रणाली में कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों और ओकों छिम्पों का प्रयोग किया है। इन प्रयोगों से वचन अविना एवं भावसिक्त प्रति किया जा उद्घाटन कवि सफ़लतापूर्वक कर देता है। राजमती अपनी ही भाव नामों का मूल्यांकन कर पाती है। बीससरेख के बाह्य मन को वह समझने का

प्रयास नहीं करती। बीसल्लेख के आहत मन का परिचय उसके ही कथन से स्पष्ट हो जाता है।

कन्धुवा बोस न बोसि हे नारि  
मइ तुम्है मेल्हीय है भितह निसारि,  
धीम ममी महु मीकसइ  
दब का दाबा यो कूपस लेइ  
भीम का दाबा न पासहइ।

अग्नि-दग्ध (वृद्ध) तो पुनः पल्लवित होता है परन्तु अचन-दग्ध (व्यक्ति) पल्लवित नहीं होता।

बीसल्लेख ब्रूता जाता है। बियोबिनि राजमती को सात सहेलीयों समझा रही है। परन्तु उनकी बानी में सहानुभूति की अपेक्षा व्यंग्य ही अधिक प्रचुर है। वे कहती हैं 'यदि नारी में युग हों तो पुरुष विदेश क्यों जाय ? राजमती इस व्यंग्य को समझती है। वह अत्यन्त संममिता शब्दों में उत्तर देती है। 'बच्छे हूय मूम को मोहित कर लीजिए—पर स्वामी को अज्ञान में कैसे बाँध सें ? सखियों इस सफेद को ग्रहण नहीं कर पाती हैं। अतः उसे अति स्पष्ट शब्दों में कहना पड़ता है—

सात सहेलीय सुजउ म्हारीय बात  
कंचूउ बोसि बिबाइमा गाभी,  
बा बीठा मुनिबर कछइ  
मूकउ मूरस राजण बाणए सार  
भीमा भरित मइस रूप किया  
राउ नहीं सयी भई पीडार।

वह अति स्पष्ट शब्दों में अपने को व्यक्त कर देती है। सखियों ने उसका शम्भरदशम रूप काव्य और नारी प्रभोविज्ञान पर व्यंग्य किया था, अतः इस प्रकार का व्यंग्य उसके लिए अनिवार्य हो गया था।

इसके पश्चात् कवि प्रकृति वर्णन की योजना करछा है। 'बारइ मासा वर्णन प्रजापती के अत्यंत प्रकृति-वर्णन उत्प्रेम-रूप में किया गया है। यह पर

मरा अपभ्रंश में भिन्न होती है। इसका उत्कृष्ट पीछे हो चुका है। बीससठेव रास में प्रकृति वर्णन कार्तिक मास से आरम्भ होता है और आश्विन में समाप्त हो जाता है। वर्षा की बिना में प्रकृति का संक्षिप्त औरण रूप और उसके सौन्दर्य का गत्यात्मक रूप सम्मुख नहीं आ सका है। प्रकृति का सम्पूर्ण क्रियात्मक आवेय विरहिणी को तीव्रता के साथ संभावित नहीं कर पाता। इस कृति में परिवचना या इतिवृत्ति की प्रचाली ही विशेष रूप से ग्रहण की गई है। प्रकृति की भूमिका पर नाना ऋतुओं की उद्भावना 'सन्देश रासक' में मिलती है। इस ओर हम संकेत कर चुके हैं। परन्तु 'बीससठेव रासो' में इस सम्भावना का विकास नहीं हो सका है। प्रकृति के उन्मेष की ध्वेसा कवि नायिका की संवेदना पर ही अधिक केन्द्रित रहता है। परन्तु आरम्भिक चित्रों में वर्षा की नैसर्गिकता विशेष आकर्षण पूर्ण है। इनमें चित्रात्मकता का आग्रह भी है नायिका की विरक्तता की व्यञ्जना को चेष्टा भी है। उदा०—

फायुन फरहरवा कंविता रूप ।  
 किउइ कमकिमठ निशि नित न भूष ।  
 नित यमां ऋतु पाछटी ।  
 म्हाकठ मूरुप राउ बेपह आइ ।  
 बीबठ ठठ बोवन सही ।  
 फरहर चिहुं निसि नावइ छइ बाइ ।

इस संवर्ग में जावसी के 'पद्यावत' की प्रस्तुत पंक्तियाँ तुलनीय हैं—

फायुन पवन झरोका बहा ।  
 बीगुन सीठ जाइ नहिं सहा ॥  
 तन बस मिथर पाठ भा मोरा ।  
 तेहि पर विरह बेह झकझोरा ॥  
 छबर भरहि भरहि कन डाला ।  
 यह भोगत फूल फरि छाला ॥  
 फायु करहि सब आचरि बोरी ।  
 मोहि तन जाइ बीन्हा बस होरी ॥

बायसी के बर्णन की संक्षिप्तता तीव्रता और व्यापारों की गत्यात्मकता उपदिशास्त्र में लगी है।

प्रकृति की परिवर्तित भूमि में राजमती के भावों की परिवर्तित रेखाओं का बंजन कवि अधिक रूप में ही कर पाता है। राजमती अपनी सम्बेचना पर केन्द्रित और निप्रसन्न की सापेक्षता में बीबित है। उसकी पीड़ा उसकी असमर्थता में अधिक काष्णिक हो जाती है। कवि उसकी अनुमृतिपों के बर्णन का विधान रचनात्मक संस्पर्शों से ही करता है। इन निरूपण में शोक चेतना के प्रति कवि अधिक आग्रह प्रीक है। राजमती कहती है —

अस्वीय जनम काई दीचड महेस ।

अबर जनम पाछ धया रे नरेस ।

रानि न सिरबीय रोम्झी ।

यजह न सिरबीय बठलीय गाइ ।

बनपेड काली कौइली

हउ बइसती मंवा नइ कपा की डास ।

मपती दाप बीबोरही ।

इणि रुप मूरह अबसाबी बाक ।

इसके मर्याद राजमती पण्डित से प्रिय के पास सन्देश भेजती है। यह संदर्भ दूत काव्य की परम्परा में आता है। अतः 'बीसखेस रासो' 'सन्देशकाव्य' भी है। आन्तरिक सापेक्षता की दृष्टि से 'बीसखेस रासो' 'मेष दूत' तथा 'संदेश रासक' की परम्परा की कृति है। परन्तु 'बीसखेस रासो' की प्रस्तावना 'मेषदूत' के समान व्यापक परिपार्श्व पर नहीं है। 'सन्देश रासक' और 'बीसखेस रासो' इन दोनों में सन्देश नायिक भेजती है। परन्तु कथागत की दृष्टि से 'मेषदूत' 'सन्देश रासक' और 'बीसखेस रासो' में एक रूपता मिलती है। 'बीसखेस रासो' के बिरह-वर्णन से सम्बन्धित अन्य कथा सूत्र से स्वतंत्र होकर भी अपनी माधारमक संक्षिप्तता में पूर्ण लगने है। समस्त श्रुतियों में व्यतीत हो जाने पर भी प्रिय जब नहीं आया तो राजमती को सन्देश-वाहक का आभार ग्रहण करना पड़ता है। वह सन्देश के माध्यम से कहती है 'मिरा नववीजन दीन हो

रहा है। परन्तु मैंने जीवन पर मर्यादा का बन्धन लगा लिया है। इस बन्धन को अक्षित करने में राजन की पराजय हुई थी। गारी के कारण राम ने सैनु बन्ध बोधा बा। इस कर्म में राजमती अपनी व्याधा ही प्रस्तुत नहीं करती अफिनु बीमलदेव के विवेक की भी बाधत करती है। राजमती प्रिय को पत्र भिजती है। सखियों पत्र पढ़ने को उत्सुक हैं। वह पत्र में उन सन्दर्भों की खोज करती है जिनसे प्रिय की अनुमृत्तियों उद्गीत हों। सन्देश प्रदान करते समय राजमती उत्कण्ठित है और साथ ही साथ संकापूर्ण भी है। और वह सन्देश बाहक को सन्देश भी करती है। उससे विनम्र विष्टाचार एवं आग्रह प्रदर्शन करने का उपदेश देती है। सन्देशबाहक प्रिय का अभिज्ञान ( पहिचान ) पूछता है। अभिज्ञान बैठे हुए करती है—

झुंडा वेर नइ उभहारि।

एह गोरख प्रिय प्रीय सामकर।

सीस तिलक मिनु नवह रे विहल।

उरि नौकर कहि पावकठ।

अंकर रे जाकर कहि बमडाह।

सापो माहि पिछाबिजह।

पंछिया प्रीय छह एह सहिनाम।

सन्देश पाकर बीमलदेव बर झूटता है। राजमती श्रुतार करती है। वह अर्जुन के समाग श्रुतार करती। उसने धू थाप चड़ा किया है। नव पयो बरों को बाज के रूप में कर किया है। नाभ के उपसंहार में संयोग के विधों के उन्मादित वेमव के वर्धन होते हैं। राजमती का सम्पूर्ण श्रुतार और उसका उपासम्भ बीमलदेव को आकर्षण और उत्साह प्रदान करता है। संयोग-वमव की मादकता इस अंध का विशेष नियोजन है।

राजमती के श्रुतार और संयोग के अनुभवों की रचना से इस दृष्टि का उपसंहार होता है। वर्णन विनम्र का वेमव इस अंध में विशेष उत्सम्भ के रूप में प्रस्तुत है—

भूता बन्ध उलपट भूता तान ।  
 ठमकि ठमकि बणि मेस्तुतीय पाइ ।  
 मखिर चासिउ प्रीय कह ।  
 सुकउ भवन मरीम कबोल ।  
 संबत करि सेजइ बडी ।  
 ठठह मुगुषी सरिही कछ किओल ।

‘भूता का कुपट्टा है और भूता का ही ताव है । ठमक-ठमक कर वह पैर रक्ती है । वह प्रियतम के मन्दिर को आ रही है । उसने खेत बल्लभ कटोरे में भर किया है । सजा कर के वह शोभा पर आ गई—और वहाँ वह सद्गुणवती कस्तोर करने लगी ।

### बीसलदेव रासो की ऐतिहासिकता

भाषार्थ रामचन्द्र शुक्ल ने ‘बीसलदेव रासो’ को बीसलदेव की सामयिक रचना कहा है । गौरीसंकर हीराचन्द बोझा इसे बीसलदेव की समकालीन रचना नहीं मानते । बोझा जी इसे हुम्मीर के समय की रचना मानते हैं । ‘बीसलदेव रासो’ में प्रस्तुत ऐतिहासिक नाम जाये हैं—

- (क) बीसलदेव ।
- (ख) राजमती ।
- (ग) भोजराजपरमार ।

बीसलदेव को बिग्रहराज का पर्यायवाची माना गया है । बीसलदेव तृतीय का समय वि० सं० ११५० माना गया है । बिग्रह राज क्षत्रुर्ष का समय सं० १२१०-१२२० माना गया है । बिग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था । अतः यह अनुमान समायो जाता है कि गरपतिनासह ने राजदेवी को ही राजमती के रूप में स्वीकार किया है । भोजपरमार का समय वि० सं० १११२ ( सन् १०५५ ) ‘बीसलदेव रासो’ का सम्बन्ध बिग्रह राज तृतीय से कमता है ।<sup>१</sup> यदि इस निर्णय को स्वीकार कर लिया जाय तो कुछ अन्य समस्याय उत्पन्न होती हैं ।

१—गौरीसंकरहीराचन्द बोझा—भाषाप्रचारिणी पत्रिका अथ ४४ पृ० १६५



‘बीसछदेव रासो’ में आए हुए ऐतिहासिक स्थान बिग्रहराज तृतीय के परचातु मस्तिता में आए । उदा०—

कड़ बबमेर बसह रे गुमास ।

बहुभाषी कृति तिसक सिणवार ॥

बबमेर का निर्माण सन् ११०५ में बबयराज ने किया था । बिसछमेर ११५५ सन् ई० में मस्तिता में आया । ‘बीसछदेवरासो’ के अनुसार मड़ोवर सोरठ टोंक जाति बीसछदेव को बड़ेव के रूप में मिले थे । परन्तु वे स्थान भोज के अधिकार में नहीं थे । बीसछदेव की उड़ीसाभाषा भी ऐतिहासिक नहीं है । इतिहास के आधार पर इस कृति की प्रामाणिकता का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है ।

‘बीसछदेव रासो’ एक काव्यग्रन्थ है इतिहासग्रन्थ नहीं । इसकी सम्बन्धना ऐतिहासिक नहीं है । कवि ने प्रथमसम्बन्धना को ही अपना मुख्य उद्देश्य माना है । अपने इस काव्य को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से वह ऐतिहासिक व्यक्तियों से इसकी कथा का सम्बन्ध स्थापित किया है । इतिहास इसमें गौण है । अतः इतिहास की दृष्टि से इसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता पर विचार करना विशेष वैज्ञानिक और उपयोगी नहीं होगा ।

बीसछदेव रासो की भाषा

विभिन्न उपलब्धप्रतियों के आधार पर यह संकेत मिलता है कि ‘बीसछदेव रासो’ की भाषा परवर्ती मगध काल की है । मेरी धारणा है कि अन्य ‘रासो’ काव्यकृतियों के समान इस कृति का विकास मौखिक परम्परा से हुआ है । अतः इसमें भाषा की एककता के प्रति आशङ्क नहीं प्रकट किया जा सकता । कतिपय विद्वानों की धारणा है कि यह सोरठवासी कृष्णजी की रचना है । परन्तु यह निर्णय ‘बीसछदेव रासो’ के ‘काशी नागरीप्रचारिणी’ सभा के संस्करण के आधार पर किया गया है । यह प्रति सुसम्पादित नहीं है । डॉ० माता प्रसाद गुप्त एवं डॉ० तारक नाथ अग्रवाल के संस्करण अधिक सुसम्पादित हैं । अतः भाषा के अध्ययन के लिए इसी संस्करणों का आधार ग्रहण किया गया है । संक्षेप में ‘बीसछदेव रासो’ की भाषागत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ।

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की संयुक्तस्वर ध्वनियाँ मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में एक स्वर में परिवर्तित हो गईं । मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के द्वितीय पर्व में स्वर-मध्य स्पर्शव्यञ्जन ध्वनियों के मेल होने से उद्भूत स्वरों के कारण पुनः संयुक्त स्वर स्थापित होते हैं । अपभ्रंश बहुवचन प्रारम्भिक आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में इस प्रकार के मेल विकसित संयुक्त स्वर मिलते हैं । 'बिसछत्रन रासो' में भी इस प्रकार के रूप मिलते हैं । उदा०

छाह=नाह भेदह चारह उरर भंडार ।

छत=एक छन्त छ मुख छलमलह ।

(ख) कतिपय सन्धियों में आदि स्वर-ओप के उदाहरण भी मिलते हैं । उदा० भोज राज तणठ मिथ्यठ छह बिबाण बहु गर बैठा छह अगवाणि ।  
[ छह का विकास क्रम इस प्रकार है प्रा० धा० मध्यस्थि ७ अप० मध्यर ७ बीसल० छह ]

(घ) अनुस्वार और अनुनासिक में भेद नहीं माना गया है ।

(च) मध्यवर्ती अनुनासिक के स्थानपरिवर्तन के नियमित उदाहरण मिलते हैं । उदा —

ठाह=ठाव

मूह=मूव

(ङ) घग्-क्य विभक्तिपरक और प्रत्ययपरक इन दोनों रूपों में मिलते हैं ।

(च) कर्ता कर्म एक वचन पुष्टि स्वरान्त प्रातिपदिक-उदात्त होते हैं । यह अपभ्रंश की परम्परा का ही विकसित रूप है—उदा० राठ तणठ इत्यादि ।

(झ) बहुवचन प्रत्यय के क्रियेओं का प्रयोग किया गया है । इसका विकास प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के पट्टी बहुवचन—आनाम् से हुआ है ।

उदा०—सगुण सुमाधसौ सीपिम्पो रास ।

(झ) अपादान के लिए-वी-याही,-मु आदि परसर्गों का प्रयोग मिलता है ।

उदा० मुरण वी आदिपा मुरह विमाण ।

मह म्हाणू तूठन सिरजबहार ।

अधिकरण के लिए सविभक्तिक प्रयोग-अह मिळता है उवा० सुप्राह मोह  
वेकता । बेस मछावह भयत रे उछाह । परसर्गीय प्रयोग के अन्तर्गत माहें,  
मोहि के प्रयोग मिळते हैं उवा मग माहें हरपियत राखकुमारि । गोख  
माहि जिघत परिठिय मोबिब ।

अपभ्रंश और अबाहु में सम्प्रदान अपाबान सम्बन्ध और अधिकरण के  
लिए-अहु, -अई -इ के प्रयोग मिळते हैं । 'बीसछेव रासो' में भी इनका प्रयोग  
इन्हीं अपों में होता है । उवा -कानह कुम्बक भिगमियह, भायरे हिरणी मनह  
बिचार । जसह बिठुणा किम बिबह मास ।

सम्बन्ध के लिए लणत का प्रयोग मिळता है—उवा० राबमसी लणत रण  
यत बिबाह । अधिकरण के लिए-ए का सविभक्तिक प्रयोग भी मिळता है—उवा०  
वरमाहे मग माहें मस्तक माहें इत्यादि । करण कारक एक वचन के लिए हि  
के रूप भी मिळते हैं उवा० पवनहि वीरखत नाहि वसह ( पवन से वीरक नहीं  
बळता इसे अधिकरण के रूप में ग्रहण करते हुए प्रस्तुत अर्थ किया जा सकता  
है—पवन में वीरक नहीं बळता है) । करण के अर्थ में-इ रूप भी प्रयुक्त मिळता  
है—तह तूठी बसार पुङ्गह ।

कर्त्त-सम्प्रदान के लिए-नह रूप मिळता है—उवा०—कह अबमेरि नह बम  
करो । दीनही सोपारीम नह हरपियत राय बमाह नू बीबह छह बाइबह ।

संख्यावाचक—वे (शे) नासह अपाबह वे कर ओधि । बुबह, बीबह, इत्यादि ।  
सर्वनाम—मुम्, म्हा (म्हा परि संभरि उग्रहह) । मू, मो हत बम्ह  
अम्हारत, तबें तु, तूँब तुजम्, बारत ।

सहायक क्रिया—छह, बह गर बठा छह अन्वानि  
प्रथम पुरुष वर्तमान एक वचन में क्रिया-छह से निर्मित होती है ।  
उवा० बीनबठे सोधि सम्मोवर, बरबि करत तुम् पाबध ।

समास्य वर्तमान के रूप अपभ्रंश और पुरानी राबस्यानी के अनुसार ही हैं—  
उवा० करतें, भिबत करहें ।

करमहि, करसि करहु ।

करह भिह बोसह, करीहि ।

कर्मबाध्य के लिए—ईश ईश इश के रूप मिलते हैं। 'प्राहृतपैप्पम्' में इन रूपों के उदाहरण संकलित हैं। उदा०—यहकह फरह बीजह बाइजउ। मात्रार्थ के लिए यो इन्ही रूपों के प्रयोग मिलते हैं—नास्तु भयह सुभिम्पो सहु कोह।

परमास रासो—'धास्तुखण्ड' को ही 'परमासरासो' का पर्यायवाची माना गया है। इसे 'सोक वाया' या 'बीर गीत' भी कहा गया है।<sup>१</sup> आचार्य रामचन्द्रगुप्त इसे "बैलेड" (ballad) की कोष्ठि की रचना मानते हैं। 'परमास रासो' प्रामाणिक रचना के रूप में उल्लेख नहीं है। इस सम्बन्ध में अपने इतिहास में विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र गुप्त ने लिखा है 'ऐसा प्रसिद्ध है कि काश्मिर के राजा परमास के यहाँ जयनिक नाम के एक भाट थे जिन्होंने महोदे के दो देस प्रसिद्ध बीरों—आस्तु बीर उरल (उदयसिंह)—के बीर चरित्र का विस्तृत वर्णन एक बीर गीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था जो इतना सर्वप्रिय हुआ कि उसके बीर गीतों का प्रचार कश्मीर सारे उत्तरीय भाग में विघेपत उन प्रदेशों में जो कन्नौज साम्राज्य के अन्तर्गत थे हो गया। जयनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं। पर उसके आधार पर प्रचलित गीत हिन्दी भाषी प्रान्तों के गीत-गीत में सुनाई पड़ते हैं। ये गीत आस्तु के नाम से प्रसिद्ध हैं और बरखात में गाये जाते हैं।<sup>२</sup> आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निर्याण में गुप्त जी का ही आधार ग्रहण किया है 'इस काव्य में पृथ्वीराज रासो के समान ही जयनिक लिखित परमास रासो नामक एक ग्रन्थ का नाम मिलता है। कहते हैं कि काश्मिर के राजा परमास (पर नरि देव) के यहाँ जयनिक नाम के एक भाट थे जिन्होंने महोदे के दो देस प्रसिद्ध बीरों—आस्तु बीर उरल के चरित्र का एक बीर काव्य लिखा

१—'जयनिक' (सं० १२३०) का यह बीर रस प्रधान एक गीत काव्य माना जाता है।—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास The Lay of Alha Introduction (by Grierson) के अनुसार जयनिक परमास का गीत था। उनका यह निर्णय प्रस्तुत पंक्तियों पर आधारित है—

यह विचारत मस्तुनारानी तुल्य मोलि सींगह प्रतिहार।

तुल्य बुलावा जयनाथक का भने जीन जयदे केदार।

था ।<sup>१</sup> 'बीर काव्य संग्रह' की भूमिका में डॉ० उद्यम नारायण तिवारी ने संक्षेप किया है 'पृथ्वीराज रासो' में एक महोबा-काण्ड है । वह परमाज रासो के नाम से भी प्रसिद्ध है । वस्तु स्थिति यह है कि चार्ल्स इलियट ने मौखिक परम्परा के आधार पर इसका सम्पादन सन् १८६३ में कराया था । इसके पहले वहाँ तक मुक्त बात है, 'परमाज रासो' की कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिलती है । इसका अधिक बंध भी गद्य-अनुवाद सन् १८८३ में इण्डियन एंथिक्वेरी में भी प्रकाशित हुआ । (देखिए—Indian Antiquary Vol xiv 1885 page 209-235) । इसका प्रकाशन अंग्रेजी के बेंडेल काव्य-रूप में भी हुआ है । (देखिए—Calcutta Review Vol xii xli 1875 78) । वर्ष १९७६ में 'नामरी प्रचारिणी सभा' (काशी) ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया । डॉ० श्यामसुन्दर दास ने इसका सम्पादन किया है । सम्पादकीय भूमिका में श्याम सुन्दर दास जी ने लिखा है 'जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण सम्पादित हुआ है उनमें यह नाम नहीं है । उनमें 'अन्यत्र पृथ्वीराज रासो' का महोबा काण्ड लिखा हुआ है । किन्तु वास्तव में यह 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा काण्ड नहीं है—बल्कि उसमें वर्णित बटनाओं को लेकर—मुख्यतः 'पृथ्वीराज रासो' में दिए हुए एक वर्णन के आधार पर—लिखा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है । यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम मूल प्रतियों में 'पृथ्वीराज रासो' दिया हुआ है पर उसके नाम से प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना हुआ । अतएव मैंने इसे 'परमाज रासो' नाम देने का साहस किया है । देखिए—'परमाज रासो' भूमिका (पृ० ३४) । परन्तु अपने वर्तमान रूप में यह 'पृथ्वीराज रासो' के अन्त में संकलित महोबा काण्ड का व्यापार ही करता है । इस संदर्भ में 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'परमाज रासो' के अन्तिम श्लोकों की तुलना की जा सकती है । दोनों में साम्य है । डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इस साम्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है । (देखिए—हिन्दी साहित्य—द्वितीय खण्ड—पृष्ठ १२७) । इन समस्त विवेचनाओं से वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता ।

१—हिन्दी साहित्य १९१२।१३ देखिए—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास

सोकवीर्य में प्रचलित आत्मानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इसका विकास सोकमायाओं या लोकगीतों की परम्परा पर विकसितरीत काव्यपरम्परा का अनुसरण करके हुआ है। लोक नाट्यात्मक काव्यों की निम्नलिखित प्रमुखतायें 'परमास रासो' या 'बास्व जण' में मिल जाती हैं।

(१) यह गेय गाथा है। (२) इसमें चमत्कारप्रदर्शन पाण्डित्यप्रदर्शन और अङ्गरण का अभाव है। यद्यपि डॉ० सम्भू नाथ सिंह ने<sup>१</sup> यह कहा है कि इसका प्रभाव उद्देश्य मनोरंजन है नैतिक उपदेश चरित्र-मुचर राष्ट्रमित्रता आदि उसके उद्देश्य नहीं है। फिर भी बीरमायना को चापल और पुष्ट करना उसका अपरत्यस कर्तव्य है। परन्तु उसका यह निष्कर्ष उचित नहीं है। राष्ट्रीय संवेष्टा और बीरमायना की पीठिका पर ही इसका विकास हुआ है।

#### परमास रासो की वृत्ति

प्रस्तुत कृति में पृथ्वीराज और परमास के संघर्ष की कथा प्रमुख पीठिका के रूप में ग्रहण की गई है। परन्तु परमास की कथा इतिहास की अपेक्षा लोक जीवन से ही संश्लिष्ट है। 'प्रबन्ध किन्तामनि' और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में भी बचचन्द और परमास के संघर्षों का सैकितिक उल्लेख मिलता है। डॉ० सम्भूनाथ सिंह ने परमास से सम्बन्धित निर्मासिखित तथ्यों का निर्देशन किया है—

१—परमास (परमास) ऐतिहासिक व्यक्ति है जिसने दीर्घकाल तक शासन किया था।

२—बहु बचचन्द का स्वतन्त्र करवाता समर्थ नहीं अतिसु स्वतन्त्र साम्राज्य का अधिपति था। 'कोप कालासिख' 'अबन्ध कोप प्रसाद' आदि उसकी अनेक उपाधियाँ थीं।

३—बचचन्द ने उस पर एक बार आक्रमण किया था किन्तु बार में उसे उसका मैत्रीसम्बन्ध स्थापित हो गया था।

४—बहु सम्भवतः अधिक बीर नहीं था इसके विपरीत वह बिकामी और कायर था।

५—वह वीरों का सम्मान करता था और दूसरे राजाओं के वीर सामर्थ्यों को बुझाकर अपने यहाँ रखता था । सम्भवतः इसका कारण यह था कि वह स्वयं युद्ध से डरता था ।

६—वह काव्य प्रेमी था उसका महाकाव्य महादेव स्वयं कवि था ।

७—पृथ्वीराज से उसका युद्ध हुआ था जिसमें वह पराजित होकर नाम मया और अपनी राजधानी कास्मिन्गर में जाकर छिपा ।

८—हिता सैन्धों से इस बात की पुष्टि होती है कि पृथ्वीराज राज से उसका युद्ध सन् ११८२ में हुआ था जिसमें वह पराजित हुआ था । पर उसके बाद भी वह कास्मिन्गर में वास्तव करता रहा । सन् १२०१ में कास्मिन्गर पर मुसलमानी आक्रमण के समय उसकी मृत्यु हुई थी ।<sup>१</sup>

‘परमास रासो’ (बाल्लू बन्द) में इन बटनाओं का उल्लेख मिल जाता है । परन्तु लोक जीवन में विकसित होते रहने के कारण इसमें निम्नवरी कथाओं का भी निम्नम पर्याप्त मात्रा में होता रहा है ।

बाल्लोच्य कृति की कथानक्योबना पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना स्वायत्तगत न होता क्योंकि यह किसी एक कवि की कृति नहीं है और इसका संकलन और सम्पादन प्रति आधुनिक है । परन्तु अपने मूल रूप में यह कथुकथामूमि पर आधारित एक मेखकाव्य के रूप में विकसित हुआ है । वह एक नावाचक है जिसमें एक ही परिवार के कुछ व्यक्तियों—धासूहा ऊनक इन्वस मसञ्जान—को प्रधान पात्र बनाकर तथा अन्य वीरों—सैयद तासूहा, कानी राजा देवा बगनिक कला—वारी जाति को उनका सहायक बनाकर अनेक नायकों कोड़ दी गई हैं ।<sup>२</sup>

इस प्रकार इस रचना में विभू लक्षता और अव्यवस्थित विकास-सूत्र का उद्गता स्वभाविक है । इस कृति का मूल्यांकन महाकाव्य के उन्मर्ग में भी किया गया है । यह प्रयास अधिक ग्यायसंगत नहीं है । विकसगतीक महाकाव्य की अपेक्षा इसे विकसगतीक काव्य कहना ही अधिक उचित होगा । इसके रूप

१—वही पृ० १४७

२—देखिए हिन्दी महा काव्य-स्वरूपविकास पृ० १७५ ।

नियोजन में निम्नी जल-वृद्ध योजना का प्रयास नहीं मिलता है और न इसमें महाकाव्य की संक्षिप्तता ही मिलती है । डॉ० सम्भूतनाथ सिंह ने इसके विकास की चार अवस्थाओं की कल्पना की है जो विशेष महत्वपूर्ण है । इसका उल्लेख आवश्यक है—

(क) आरम्भ काल का मूलरूप — इस अवस्था में कुत्सेलखण्ड के साहित्यिक प्रवर्तक काव्य के रूप में इसकी रचना हुई ।

(ख) छोटायाया में रूपान्तर — साहित्यिक स्वरूप से लोक गानाओं में रूपान्तर ।

(ग) विकास की तीसरी अवस्था — साहित्यिक रूपान्तर ( १९००-१८०० ई० ) । 'महोत्सा समीची' और वृहत् साहित्यिक रूपान्तर 'परमात्मा रासी' ( महोत्सा खण्ड ) ।

(घ) विकास की चौथी अवस्था — आरम्भिक साहित्य द्वारा सन् १८६३ में इसका संग्रह और सम्पादन । इसमें वैदिक युद्धों का वर्णन है और आज यही मूल आरम्भिक के रूप में स्वीकृत है ।<sup>१</sup>

मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि 'आरम्भिक' या 'परमात्मा रासी' अपने मूल रूप में लोक-गाथा की मीठात्मक परम्परा में पल्लवित हुआ है और उसे साहित्यिक रूपान्तर देने की चेष्टा अति आधुनिक है ।

निम्नलिखित पृष्ठों में अवग्रह काव्य में प्रयुक्त कथानककर्मियों की चर्चा की गई है । अपनी पूर्व काव्यपरम्परा के समान 'परमात्मा रासी' में भी कथानक कर्मियों का उद्देश्यपूर्ण प्रयोग मिलता है । इनमें पूर्वजन्म की स्मृति रूप-भूत से प्रेम की उद्भावनता पशु-पक्षियों से उत्पन्न भेदने और रूप परिवर्तन से सम्बन्धित कथानककर्मियों के प्रयोग विशेष रूप में चर्चनीय हैं ।

भाषा की दृष्टि से इसे बेंसवाड़ी की रचना माना गया है । परन्तु अपने वर्तमान रूप में यह बेंसवाड़ी की रचना नहीं है । ग्रियस के समान इसके भाषा रूप में भी मान्यता परिवर्तन हो गया है । इसकी भाषा अति आधुनिक है । यह



‘बासू छन्द’ या ‘बीर छन्द’ की हति है। उदाहरण के लिए कतिपय पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

बने जुगुब्बी औ गुजराती उगा बसे बिबायत बमार ।  
 छट छट छट छट तेना बाजे बोले छपक-छपक तसमार ।  
 पैरछ के संघ पैरल गिरिले औ असवारन से असवार ।  
 होवा के संघ होवा गिरिले हाबिन बड़ी दौत से दौत ।  
 तेना बमकै बरबाण के कटि कटि गिरै सुबस्वा ज्ञान ।  
 सात कोस लो बसे सिरोहो बारो ओर होय बमसान ।

×

×

×

मज नर छाती पृथ्वीराज की अब नैनन में बरै मसाछ ।  
 सखि के पृथ्वीराज ठाढ़े भए, मानहु इन्ह असाहे बाय ।

×

×

×

सवा सरैया ना बन पूछे पाछे सवा न सावन होय ।  
 स्वर्ग मईया सब काहूँ को पारो सवा न बीरे कोय ।

हम्मीर रासो—‘हम्मीर रासो’ शीर्षक किसी स्वतंत्र ग्रन्थ की उपस्थिति अभी तक नहीं हुई है। ‘प्राकृतपैगलम्’ में हम्मीर सम्बन्धित आठ छन्द संकलित हैं। इन छन्दों में इनके रचयिता के नाम का कोई उल्लेख नहीं है। प्रचलित चारणा यह है कि इन छन्दों के रचयिता (और हम्मीर रासो के रचयिता) घागबर थे। घागबर के नाम से एक आमुर्ख ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। ‘शिव सिंह सरोज’ में इनके चन्द का बरगबर माना गया है। इसके अनुसार घागबर को हम्मीर काव्य और ‘हम्मीर रासक’ का कृतिकार भी माना गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ‘प्राकृतपैगलम्’ के पदों को ही ‘हम्मीर रासो’ का मूल रूप मानते हैं।<sup>१</sup> परन्तु सुक्ल भी ने इसके लिए प्रमाण नहीं दिया है। घागबर के पितामह का नाम राजन था। वे हम्मीर के आधय में थे। उनके कतिपय पद्य ‘घागबर पद्यति’ में संकलित हैं। यदि घागबर को हम्मीर का समकालीन माना जाय तो इन छन्दों की रचना वि० सं०

१३२० के निकट हुई होगी। 'प्राकृत पेंगळम्' के त्रिन छन्दों का उल्लेख किया गया है उनमें दो छन्दों में बज्जल का उल्लेख आया है। उदा०

पिंथर दिङ्ग सण्याह बाह् उपर पक्खर पइ ।  
 बंधु समधि रण बसठ सामि हम्मीर बज्जलणइ ।  
 उइइउ पणपइ पमठ समारिउ सीसह् डारउ ।  
 पक्खर पक्खर ठत्ति पक्खर अक्खरउ ।  
 हम्मीर कज्जु बज्जल मणह् कोणाहल मुह् महु बसठ ।  
 सुल्लाय सीस करवाल दइ तेजि कक्खेर बीज्जलसठ ।

'मुजाओं पर पक्खर देकर मैं दङ्ग सण्याह बारण कर लूँ। स्वामी हम्मीर का बधन लेकर, बन्धुओं से निरा लेकर युद्ध के अन्तराल में प्रवेश कर रहा हूँ। मैं नम में चुनड़ रहा हूँ। शत्रुओं के शीघ पर कहर डाल रहा हूँ। और पक्खरों के उपयोग से मैं पर्वत को गिरा रहा हूँ। बज्जल का कथन है कि हम्मीर के कार्य के लिए वह क्रीडानल में जा रहा है। सुल्लाय पर लहर डालकर क्रीडामि में जा रहा हूँ।

डोला माण्डि विट्ठि महु भुण्डिय मिण्ड सरीर ।  
 पुर बज्जला मंतिवर बण्डिय बीर हम्मीर ।  
 बण्डिय बीर हम्मीर पाजमर मेइजि कपइ ।  
 दिगमगजह् अंधार भुलि मूणह् रण मंडइ ।  
 विममगमह् अंधार भाणु सुल्लायक मोत्ता ।  
 बरमरि बमसि विपण्डि माण्डि विट्ठि महु डोला ॥

'डोल पर आघात कर हम्मीर ने विट्ठी में श्लेष्मों को मूर्च्छित किया है। पुर-रसा हेतु मंतिवर बज्जल को रखकर बसा। उसके प्रस्थान से मेडिमी कम्पित हो गई। विद्याओं में अन्धकार हो गया। रण से सूर्य छिप गया। विद्याओं और नम में अन्धकार छा गया। हम्मीर कुरखान का मोल ले आया। विपश्मियों का दहन कर हम्मीर ने विट्ठी में विजयोद्घास निरान्ति किया। इस चन्दर्न में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये पञ्च बज्जल के हैं या पाण्डुराधर के हैं। आचार्य रामकृष्ण गुप्त की यह धारणा है कि इनमें पञ्चजल ( चित्ती बीर विराट् ) की प्रशंसा है। परन्तु राहुल साहस्रायण की यह धारणा है कि ये बज्जल

कवि के हैं।<sup>१</sup> जिनमें ब्रम्हस का उल्लेख नहीं किया गया है उनके विषय में राहुल बी ने अपना सम्यह प्रकट किया है। पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में इस विषय में स्पष्ट निर्णय नहीं किया जा सकता है। यद्यपि डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के 'बाज या ब्रम्हस'<sup>२</sup> शीर्षक लेख का आधार ग्रहण करते हुए डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने यह कहने का प्रयास किया है कि ब्रम्हस हमीर का मंत्री या और इन दोनों में उसका ही सम्बन्ध है परन्तु इससे वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। 'बाज़' पर पद्यति की भाषा ब्रह्मिक व्यवस्थित नहीं है। जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं उनमें भाषावप सोछखी-सछखी छताखी का है। अतः भाषा की दृष्टि से इस रचना की प्राचीनता का समर्थन नहीं हो पाता।

सुमान रासो—'सुमान रासो' का प्रथम उल्लेख 'शिवसिंह सरोव' में मिलता है। इसके कवि हैं दत्तचित्तविजय। चितौड़ में तीन सुमान हो चुके हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह धारणा है कि विवेक कृति का सम्बन्ध द्वितीय सुमान से है ( वि० सं० ८७० १०० )। ऐसी धारणा है कि यह प्राचीन कृति है। परन्तु इसकी प्राचीनता का समर्थन नहीं किया जा सकता। इसकी जो प्रतिलिपियाँ प्राप्त हैं उनमें राजा संग्राम सिंह द्वितीय ( सन् १७१०-१७३३ ) तक के ऐतिहासिक सम्बन्ध वर्णित हैं। मेवाड़ के सुमान बंस की कथा के होते हुए भी ऐतिहासिक अनुकेतना और भाषा की दृष्टि से यह अठारहवीं-छतावीं की रचना है। भोलीकाष्ठ मेनारिया इस समस्या का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं 'वि ( दत्तच ) उपान्यासीय भेन साधु धान्तिविजय के शिष्य थे। इनका अचली नाम दत्त या, पर बीछा के बाबू बनकर शीतलविजय कर दिया गया था। हिन्दी के सिद्धांतों ने उन्हें मेवाड़ के राजा सुमान ( सं० ८७० ) का समकालीन होना अनुमानित किया है जो वस्तुतः है। वास्तव में इसका रचनाकाल सं० १७१० से लेकर १७६० के मध्य तक पड़ता है, <sup>३</sup> इस दृष्टि से एक अर्थ यहाँ दिया जा रहा है। भाषा की दृष्टि से इसकी प्राचीनता इस अर्थ द्वारा जर्जित हो जाती है।

१—हिन्दी काव्य धारा पृ० ४३२ ४३३।

२—हिन्दी अनुशीलन पीप चीथ सं० २०११ पृ० १।

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १०६।

मित्र मिलीह न भाविक सामण पहिली तीज ।  
 जबे बाट रति बिरहिणी छिण सिय बनबै सीज ॥  
 सहेछो पिय साहिबा पाछो छिरिय न बेह ।  
 पछी चात्या पीअरे छुरण रो सहेह ॥<sup>१</sup>

विजयपाल रासो—‘विजयपाल रासो’ के रचनाकार गल्लसिंह माट है ।  
 इनके विषय में हमें विशेष ज्ञान नहीं है । ऐसा अनुमान किया गया है कि ये विजय  
 पद के शासक विजयपाल के भावित भाट कवि थे । इतिहास की दृष्टि से यह  
 रचना सन् १०४३ की होनी चाहिए । परन्तु अपने वर्तमान स्वरूप में यह सोसहवीं  
 सताब्दी की रचना है । इस दृष्टि के केवल बपासीस सन्त उपसम्प हैं । उसकी  
 दृष्टि से यह बीरकाव्य के अन्तर्मत की रचना है । विभवन्धुओं ने इसे वि० सं०  
 १६३५ की कृति कहा है<sup>२</sup> । इस सम्बन्ध में समय-समय पर इसकी प्रामाणिकता  
 अप्रामाणिकता पर विचार किया गया है । हिन्दी साहित्य के दृष्ट इतिहास के  
 पाव एक सङ्ग हो; अर्थात् चार के लेखक ने यह कहने का प्रयास किया है कि  
 ‘विजयपाल रासो’ के जिस विजयपाल से हमारा परिचय है उसकी कृति कृति की  
 आधार पीठिका नहीं है । वह दूसरा विजयपाल है । इसने कोई नामक बीर को  
 पणवित किया था । इसके प्रपौत्र विजयसिंह के एक सिलालेख का संश्लेष डॉ  
 हबारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है । वह इस प्रकार है —

विसमिध गोत उत्तिम भरित विमल पवित्तोगाम ।  
 सरभङ्ग पङ्गो संसिद्धय हबडो भुवाध ॥  
 हबडो पीट परिछिन्न अतिम विजयपालु ।  
 बीने नाहउ रणि विविधित सह भुवध पालु ।  
 ×            +            ×            ×  
 खेनिम गुजर गीतहुइ की अ अविमं भारि ।  
 विजयसीह कित संहभुय पीरिस बह सीसारि ।<sup>३</sup>

१—इसिए नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० २००६ पृ० ३२६ ।

२—गल्लसिंह ने विजयपालसिंह तथा अंगराजा के संघर्षों का वर्णन इस काव्य  
 में किया है । परन्तु यह रचना वि० सं० १६३५ के लगभग की है ।  
 विभवन्धुविनोद भाग १ पृ० २०७।३ हिन्दी साहित्य का दृष्ट इतिहास पृ० ३२ ।

मुमुक्षु देवह पञ्च पञ्चि पञ्चि अक्षित समञ्ज ।

विजयसीह विजयितु करि भारमिज सुख सम्य ॥

इस बंध में 'विजयपाल' तथा 'विजयसीह' नाम आए हैं। इसकी भाषा उत्तरवर्ती अवहट्ठ तथा आरम्भिक हिन्दी के सन्धि काष्ठ की है। परन्तु इससे 'विजयपाल रासो' की रचनासिधि तथा ऊपरी प्रमाणिकता का स्वल्प स्पष्ट नहीं हो पाता है। अतः

बुरे जुद्ध बापन पंथ मरह । पछि कर सेव चर्यी रजमह ।

हंकारिय जुद्ध बुहं यल गूर । मनो गिरीसीध बसम्भरि पूर ॥

हलौ बिल हांक बबी दल मदि । मई बिल ऊकत कूक प्रसिद्धि ।

परस्पर तोष बहै निकराक । गबै सुर मुनि सरस्य पताक ॥

इस उद्धरण से आलोच्य कृति की प्राचीनता पर श्वेष्ट प्रकाश पड़ता है। निस्सन्देह यह पद्यहीन छतावरी के बाद की ही रचना है।

पृथ्वी राज रासो—हिन्दी के आदिकाव्यीन काव्य-ग्रन्थों में 'पृथ्वी राज रासो' एक विशिष्ट रचना है। 'रासक काव्य' परम्परा में प्रस्तुत अन्य काव्यरूप तथा छन्दबैभव की दृष्टि से आरम्भ से ही विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसके रचयिता चन्दबरदाई माने गए हैं। लोक बीजन में इस प्रकार की भाषना प्रचलित है कि चन्दबरदाई पृथ्वीराज के भिन और राज कवि थे। उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। इसमें शृङ्गार और वीररस की प्रधानता है। गोरी ने पृथ्वीराज को बन्दी बनाया। चन्द पृथ्वीराज के साथ मकनी पया। 'पृथ्वीराज रासो' की पुष्टि चन्द के पुत्र जलह्व ने की—

पुस्तक जलह्व हल्य है चकि पञ्चन रूप काज ।

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत मूपमीन उद्धरिय बिनि ।

प्रभिराज मुजस कवि चंयकृत चन्द मन्त्र उद्धरिय रिमि ।

इन बंधों की प्रमाणिकता स्थापित नहीं हो सकी है। अतः इन बंधों में सोक किन्दरन्तियों का ही विशेष आधार ग्रहण कर लिया गया है। चन्दबरदाई के छिए चन्द बतिय का प्रयोग भी मिलता है। इस चन्दर्ग में प्रसन्न गह उत्पन्न होता है कि क्या जलह्व चन्दबरदाई के पुत्र थे और उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की पुष्ट

लिया था। अब तक की उपलब्धियों के आधार पर हम इस प्रकार का निर्णय नहीं ले सकते। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में पृथ्वीराज और जयचन्द से सम्बन्धित चार छन्द्य संकलित हैं। इस छन्द्य के सम्पादक श्री मुनिविमलविजय ने चन्द्रबल्लिहय को इनका रचयिता माना है। और इन्हीं के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता की ओर 'प्रस्ताविक वक्तव्य' में संकेत करते हुए उन्होंने स्पष्ट निर्णय लिया है कि अपने मूल या आदि रूप में यह जयचन्द की रचना है। इस संदर्भ में आपसे विचार लिया गया है। यहाँ जस्रहण के सम्बन्ध में संकेत किया जा रहा है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के चिन चार छन्दों को मुनिविमलविजय ने चन्द्रकृत माना है उनमें दो जस्रहण के हैं। इसका निर्णय हममें प्रमुख 'जस्रह' नाम से ही हो जाता है। उदा०—

(क) विहिं कन्ध तुकार पाकरअन जसु हय ।  
 छऊ दसइन मयमत बलि गजलि महामय ।  
 बीस कन्ध पायक सकर ठाण्ड जमुदर ।  
 लुसहु अब जसुमान संख ॥ बाणह तौह पर ।  
 छरीस सनन नराहियह विहिं निनिजो हो किम मयउ ।  
 जयचन्द न जानउ 'जस्रह' कह गयउ कि भूड कि बरि गयउ ।

(ख) जस्रहनु जहजह देव तुह दुसह पयामउ ।  
 बरणि बसनि उदसह पड़ह रायह मगजमो ।  
 ऐसु मनिहिन संकियउ मुकहु ह्यककि सिरि सन्धिजो ।  
 लुट्यो सो हर धबलु धूलि जसु धिम तबि मनिदमो ।  
 सन्धसुहलित रेनु जसणि मम सुकनि जसहु सधसुउछवि ।  
 वय इनु जिनु भुयनु बलि सहस गमन किम परि मिहइ ।

'मागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण में इनमें से केवल एक छन्द मिलता है ( प्रथम )। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की अन्य प्रतियों में इनका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। परन्तु इन सन्दर्भों से यह संकेत मिलता है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में आए 'चन्द्रबल्लिहय' और 'जस्रह' समकालीन थे। परन्तु जस्रह चन्द्रबल्लिहय के पुत्र थे और उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' को जस्रह

बरबाई के पश्चात् पूरा किया इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाण की प्रस्तावना नहीं की जा सकती है ।

इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने वाले निम्नलिखित के मतों का यहाँ विवेचन किया जा रहा है । प्रथम वर्ण के अन्तर्गत वे रैसक आते हैं जिन्होंने इस कृति को प्रामाणिक माना है । इनमें पंक्ति मोहनलाल पंथ्या पं० मधुराप्रसाद दीक्षित ( इन्होंने जिस संस्करण का सम्पादन किया है उसे काहीर संस्करण कहते हैं ) तथा क्याम्पबुन्दर आते हैं ।

डॉ० ब्रूस्टर डॉ० मोरीसंकर हीराचन्द ओझा मुष्ठी देवीप्रसाद तथा कविराज क्याम्प आते द्वितीय वर्ण के अन्तर्गत आते हैं । इसी वर्ण में मोतीलाल मेमारिया भी आते हैं । इनके अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' अप्रामाणिक कृति है ।

तीसरा वर्ण 'रासो' की प्रामाणिकता पर विस्वास करने हुए उसके वर्तमान स्वल्प को निम्नलिखित मानता है । मुनि विनयिचय द्वारा सम्पादित 'पुरुषोत्तम प्रबन्ध संग्रह' में संकलित 'पृथ्वीराज और जयचन्द प्रबन्ध' से यह वर्ण प्रेरित है । 'पुरुषोत्तम प्रबन्ध संग्रह' में जो अल्प संकलित हैं वे अपभ्रंस की रचनाएँ हैं । इस वर्ण के अनुसार पृथ्वीराज 'रासो' अपने मूल रूप में अपभ्रंस की दृष्टि है । इसकी भाषा 'प्राकृतपगल्' की भाषा रही होगी । इस संदर्भ में आगे चर्चा की जावगी ।

**रासो के अमान्यत तथा इसकी प्रतियाँ**

तथा इसकी प्रतियाँ सम्पूर्ण स्थिति पर विचार करने के पूर्व यह अपेक्षित है कि 'पृथ्वीराज रासो' के वर्तमान आकार और उसकी विभिन्न प्रात प्रतियों का विवेचन यहाँ कर लें । अपने वर्तमान रूप में यह हिन्दी के आधिकारीक साहित्य का प्रथम बृहत् प्रबन्ध काव्य है और इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य भी माना गया है । 'रासो' के सम्बन्ध में अनेकी बारणाएँ प्रचलित हैं उनमें से ही दृष्टियाँ प्रमुख हैं । प्रथम के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' बाह्यही प्लताम्बी की रचना है । दूसरी दृष्टि के अनुसार यह सोमहरी-सगहरी प्लताम्बी की रचना है । इस पर हम आगे के पृष्ठों में विचार कर रहे हैं । यहाँ हम रासो की विभिन्न प्रतियों पर विचार करेंगे । उपर्युक्तप्रतियों की समष्टि की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' के निम्नलिखित अमान्यत मिलते हैं —

( क ) बृहत् अमान्यत—इसमें सम्पूर्ण संख्या ६६ ६६ तक है । इसमें समस्त सोमह हमार पद्य तथा अनुष्टुप छन्द हैं । असीस हजार स्तोक हैं जिन्हें

ग्रन्थ-ग्रन्थ भी कहा गया है। यह पाठ या अन्तर के आधार पर डॉ० स्वामिनुर बाब तथा श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने काशीनामरी प्रचारिणी सभा के संस्करण का सम्पादन १९१० में किया।

( ब ) मध्यम अन्तर—इसमें समस्त संख्या बालीस और मंतालीस के मध्य है। इनमें दोहजार पच और पैंतीस भी श्लोक हैं। अथुरा प्रमाण टीलिन का संस्करण इस अन्तर पर ही आधारित है।

( ग ) लघु अन्तर—इसमें लगभग उन्नीस समस्त, दो हजार पच और पैंतीस भी श्लोक हैं।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है इस अन्तर के आधार पर अभी तक किसी प्रति का सम्पादन नहीं हुआ है।

( द ) लघुतम अन्तर—इसमें समस्त ठेरह चौकसीक हैं दो हजार पच हैं।

‘राजस्थान भारती’ में इसका प्रकाशन हुआ है ( राजस्थान भारती अंक १ भाग ४ से इसका प्रकाशन आरम्भ हुआ है )<sup>१</sup> लघुतम के अन्य व्यापक रूप में लघु में उपलब्ध है। लघु और मध्य के दोनों में भी समता मिलती है। मध्य के अन्य ग्रन्थ में उपलब्ध है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि लघुतम अन्तर ही रातो का मूल रूप है<sup>२</sup> और इसके समानान्तर यह भी कहा जाता है कि परवर्ती काल में ग्रन्थ के अन्तर हैं। मध्य लघु और लघुतम रूप धारण करते गये।<sup>३</sup> डॉ० माया प्रसाद गुप्त की यह धारणा है कि लघु में दो हुई संख्याएँ ही मूल पाठ के अधिक निष्कर्ष हैं। यह निष्कर्ष उन्होंने बला बल संख्याओं के आधार पर किया है। उनकी प्रस्तावना है, ‘यदि ध्यान दिया जाए तो ज्ञात होगा कि प्रायः उन सभी प्रसंगों में जहाँ बलाबल सूचक संख्याओं

१—विशेष सूचना के लिये देना (क) प्रती अधिकतम ग्रन्थ-पुष्पीराज रातो की विविध बाचनाएँ पृ० १३० (ख) राजस्थान भारती भाग ३ अंक २ १९१९ पृ० ११। (ग) विशाल भाग—भाग ३८ अंक ६ दिनांक १९४६, पृ० ३९५।

२—जाहदा—राजस्थान भारती अंक १ भाग ४।

३—द्वितीय निष्कर्ष—द्वितीय प्रमाण टिप्पणी—६२।



के विषय में तीनों पाठों में मन्तर है। सधु पाठ की संख्याओं से एक मपबायों को छोड़कर जो अनेक कारणों से सम्भव है, सर्वत्र सधु है, मध्य की इसी प्रकार मध्य है और गृह्य की इसी प्रकार गृह्य है। मध्यम पाठ की संख्याओं वहीं वहीं पर तो सधु की है और कहीं कहीं पर गृह्य की है। उदाहरणों के लिए निम्न लिखित उल्लेखों को लिया जा सकता है —

१ गृह्य ४५ २०२ तीस मध्य सोमवार मध्य गेवर बस यज्यहि ।

मध्य १३१ ।

सधु ३ कवित्त १ सहस्र बीम ।

२ गृह्य ४५ २०२ वसह मध्य पयवसह पुरुष बस धन ति रज्यहि ।

मध्य १३१ सत्त मध्य पयवसमुक्त " ।

सधु ३ कवित्त १ ।

३ गृह्य ६१-७२३ आत्म रावन सध्व इति अमुत एक भट सध्व ।

मध्य ३२ ६५ ।

सधु ६ दोहा ३० " अस्मि सध्व ।

इतन्मि वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि सधु में वी हुई संख्याओं ही मूल पाठ के निकटतम हैं मध्य गृह्य की उत्तरोत्तर अधिकारिक प्रस्थित है। फलतः परिणाम यह निकलता है इन तीनों पाठों में सधु मूल के सबसे अधिक निकट है। 'रासो' के आरम्भ में एक दोहा मिलता है। इसका भी मूल्यांकन डॉ० बस ने किया है। सधु०

सहस सत्त नम सिल सरस आदि अन्त मुनि रेपु ।

बटि बलि अत्तहि को पड़े रूपन मोहि ॥ विसु ।

इस दोहे के आधार पर भी वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सधु अपान्तर ही मूल रासो के अधिक निकट है।

इस प्रकार प्रतियों के आधार निर्णय की दृष्टि से भी 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता की स्थापना के प्रयास हुए हैं। इस दृष्टि से 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित पृथ्वीराज और जयचन्द से सम्बन्धित प्रबन्धों का उल्लेख किया

मया है । इस में स तीन नामरी प्रचारिणी समा के 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण में मिल जाते हैं । तुलना के लिए उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जाता है ।—

इकठु बाणु पडुबीमु जु पई कई बासह मुषक्यों  
उर भीतरि लइहठिठ बीर कपल तिर बुकुकुठ ।  
धीअ करि संधीत भमह भूमेसर नंदन  
एहु गु गहि बाहिम्यों कणह कुरह संभरि वणु ।  
फुल छवि न बाई इह भूमिठ बारह पलकठ लख मुलह ।  
नै बाणत चंद बलहिठ कि न बि छुइ इह फलह ।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृष्ठ २७३ ।

एक बाण पडुमी नरेसु के कैमासह मुषयी ।  
उर अपर बहरयी बीर कपल तर बुकयी ॥  
बिनी बाण संधान इनी सोमेसर नंदन ।  
गाडी करि निघडी पनिब गडयी संभरि बन ।  
बल छोरि न बाइ अमागरी गडयी गुन गहि अगरी ॥  
इस अपे चंद बरहिया कहा निघट्टे इन प्रली ।

पृथ्वी राज रासो १४६१ २३६ ।

अगठु म गहि बाहिम्यों रिपुरावकप कल,  
कुहु मंनु मम टब्यों एहु अंशुय (य) मिनी कणक ।  
महनामा सिद्धबठ अइ सिमिलबठ भुगभाई ।  
अपह बरबलिह मगल परमवाकसर भुगभई ।  
पहु पडुविराज सई भरि बनी संभरि मज्जह संभरिमि ।  
कईबास बिआस बिमट्टुमिषु मणिबबिबठकों मारिसी ।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ २७६ ।

अगह मयह बाहिम्यों बब रिपुराई पयंक ।  
कूरमठ बिन करो मिले अंशु बी अंशु ॥  
बी सहनामा मुनी एहु परमारण भुगभ ।  
अपरी चंद बिरह बिषो बोई एहु न बुगडे ॥  
प्रविराज नुरवि संभरि बनी इह संजलि संभरि रिम ।  
ईमाग बलिष्ठ बनीठ बिन मगल अंशु अंशु सरनि ।

पृथ्वीराज रासो २०८० ७४४ ।

इस ख्य को सम्मुख रखते हुए ही मुनि जिनविजय ने जम्बरवादी को देख भाषा प्राकृत का कवि माना है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें हिन्दी परम्परा के आदि कवि की अपेक्षा अपभ्रंश-परम्परा का अन्तिम कवि माना है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के जो अंश उदाहरण में दिए गए हैं उनकी भाषा अवहट्ट है। इस प्रकार द्विवेदीजी की प्रस्तावना में मैं निगम संशोधन करना चाहूँगा। जम्बरवादी अवहट्ट-परम्परा के आदि कवि हैं। इस प्रकार इन्हें हिन्दी के आदिवास के कवि के रूप में स्वीकार करने में भी कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

अगर 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों में भाषा निम्नक अन्तर का उल्लेख किया गया है। और यह अन्तर उसके निम्नगतीक स्वल्प की ओर संकेत करता है। डॉ० मुनि ने स्वयं इन प्रश्नों के समाधान के द्वारा स्थिति का स्पष्टीकरण करना चाहा है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए उनका यह भाव है कि इन प्रबन्धों पर विश्वास करना उचित नहीं है। वे प्रबन्ध कल्पित हैं। इनके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि जंबू पृथ्वीराज का समकालीन या उसका राज कवि था। इस निमित्त में मेरा भाव यह है कि जंबू पृथ्वीराज का समकालीन उनके ही न रहा हो परन्तु इन प्रबन्धों की प्राचीनता पर शंका की सम्भावना नहीं होगी चाहिए। पृथ्वीराज से सम्बन्धित प्रबन्ध पृथ्वीराज के समय में अथवा उसके पश्चात् तत्काल ही अस्तित्व में आ चुके थे। द्वितीय प्रश्न का समाधान करते हुए उनका यह कथन है कि वे

१—प्रबन्धों में जंबू द्वारा पृथ्वीराज या जयचन्द को सम्बोधित करके कुछ कथन कहे गये हैं, क्या इसीलिए मान लिया जाए कि जंबू पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राज कवि था ?

२—क्या उद्धृत छंदों की भाषा का स्वल्प इतना निश्चयात्मक माना जा सकता है कि उसके आधार पर जंबू की अवसी रचना की प्रकृति से अन्त निकाला जा सकता है ? डॉ० मुनि ने स्वयं इन प्रश्नों के समाधान के द्वारा स्थिति का स्पष्टीकरण करना चाहा है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए उनका यह भाव है कि इन प्रबन्धों पर विश्वास करना उचित नहीं है। वे प्रबन्ध कल्पित हैं। इनके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि जंबू पृथ्वीराज का समकालीन या उसका राज कवि था। इस निमित्त में मेरा भाव यह है कि जंबू पृथ्वीराज का समकालीन उनके ही न रहा हो परन्तु इन प्रबन्धों की प्राचीनता पर शंका की सम्भावना नहीं होगी चाहिए। पृथ्वीराज से सम्बन्धित प्रबन्ध पृथ्वीराज के समय में अथवा उसके पश्चात् तत्काल ही अस्तित्व में आ चुके थे। द्वितीय प्रश्न का समाधान करते हुए उनका यह कथन है कि वे

प्राकृत में रचनायें पृथ्वीराज के अनेक वर्षों पश्चात् तक होती रही हैं। अतः इस प्राकृत में होने के कारण ही इसकी प्राचीनता प्रमाणित नहीं होती है। विचार करके दखें तो इस प्राकृत एक भ्रामक या भ्रान्तिजन्य है जिसकी मूल अनुप्रेषणा सम्भवतः डॉ० माता प्रसाद मुत्त ग्रहण नहीं कर सकें हैं। इस प्राकृत के विपरीत साहित्यिक प्राकृत का भी उत्पन्न मिस्रता है। अब हम यह कहते हैं कि इन प्रबन्धों की रचना इस प्राकृत में हुई है तो इसका तात्पर्य यह है कि ये रचनायें अपने मूल की साक्ष्यभाषा में हुई हैं। इस कथन का स्पष्टीकरण इस रूप में किया जा सकता है कि प्रत्येक वर्ष में भाषा के दो रूप मिलते हैं। प्रथम—जनभाषा का रूप द्वितीय—साहित्यिक भाषा का रूप। अपभ्रंश या मगध में भी भाषा-स्वरूप के दो रूप मिलते हैं। अतः अब हम वर्तमान सन्दर्भ में इस प्राकृत का उत्पन्न करते हैं तो हमारा तात्पर्य जनभाषा से ही है। अतः इन प्रबन्धों की रचना अपने मूल की साहित्यिक भाषा से विपरीत जन भाषा में हुई है।

डॉ० गुप्त ने यह कहा है कि इस प्राकृत में रचना हम्मीर और उसके पश्चात् भी होती रही है। 'प्राकृत वैयाकरण' की भाषा को वे अपने कथन के प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं। परन्तु 'प्राकृत वैयाकरण' जगन्नाथ सिंह हेम गण्डानुशासन' में भाषा की एक रूपता नहीं है। इनमें प्रस्तुत तीन साक्ष्योक्त से संकलित हैं। अतः इनमें भाषा का भिन्नतन्त्रीय स्वरूप ही मिलता है। अतः इनके आधार पर भाषा की एक रूपता के प्रति शङ्का नहीं प्रकट करना चाहिए। 'प्राकृत वैयाकरण' में संकलित हम्मीर सम्बन्धी छन्दों की भाषा भी इस प्राकृत इस अर्थ में है कि ये छन्द अपने रचनाकाल की जन भाषा में रचित हैं। हम्मीर सम्बन्धी छन्दों की भाषा और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' या 'अपभ्रंश प्रबन्ध' की भाषा में अन्तर है। अतः डॉ० गुप्त का यह सचेत कि इनमें भाषा का अन्तर नहीं है उचित नहीं है। इन दोनों की भाषा में काळ का अन्तर स्पष्ट है। हम्मीर सम्बन्धी छन्दों की भाषा 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के भाषात्मक परिवर्तन का परवर्ती काळ की भाषा है। दोनों छन्दों की भाषा के उदाहरण प्रमाण के लिए यही दिए जाते हैं।

डोहड़ा मारिअ छिह्रि मह मुनिअय मेअर सरीर ।  
 पुरअअता मंतिबर अलिअ वीर हम्मीर ।  
 अलिअ वीर हम्मीर पाअअर मेइनि कंअइ ।  
 शिअ भगअह अंअर अलिअ सुअह रअ अंअइ ।

प्राकृत पैगलम् ।

इसके अतिरिक्त 'हम्मीर रासो' नामक एक और रचना है जिसके कृतिकार  
 जोधराज हैं । यह सन् १७२८ की रचना है । अयकन्न सूरि ने भी 'हम्मीर  
 महाकाव्य' की रचना की है । यह कृति पन्द्रहवीं शताब्दी की मानी जाती है ।  
 इसमें छन्द संख्या एक हजार है । इसकी भाषा 'प्राकृत पैगलम्' में हम्मीर  
 सम्बन्धी छन्दों की भाषा से भी विकसितसील है । उदाहरण —

बड़े सील अंग परे पार होई ।  
 मनो कइ मैं नाय सम्यंत सोई ॥  
 कटारी छनै अंग बीसंत पार ।  
 भगो नारि मुखा कल्यो पा निवार ॥

हम्मीर रासो । छन्द १०३ ।

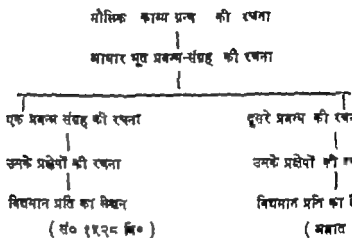
'धूम्योराज प्रबन्ध' की भाषा देखिए—

सह नामा सिखअवठ अइ सिमिलअवठ सुअइ ।  
 अंअइ अइ अलिअ मअर परअअर सुअइ ॥  
 पहु पहुअिराय अंअरि अनी अयअरि अठअइ अंअरि ।  
 अंअरि अंअरि अंअरि अंअरि अंअरि अंअरि ॥

प्राकृत प्रबन्ध संग्रह । २७६ ।

'धूम्योराज प्रबन्ध' को संग्रहों में मिलता है । बाह्य समानता होते हुए भी  
 अंशों और वाक्य नियोजन की दृष्टि से इन दोनों में सुदूर भेद भी है । इन  
 दृष्टि को ध्यान रखते हुए डॉ० माता प्रसाद अंत में इसके विकास-क्रम-स्वरूप

का संकेत किया है जो इस प्रकार है—



अतः डॉ० गुप्त की यह धारणा है कि मौखिक काव्य-ग्रन्थ की रचना विद्यमान प्रति के निखन के बीच बार पीढ़ियों का अन्तर है, और प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों के अन्तर को स्वीकार करते हुए उन्होंने सन् १२७१ 'पृथ्वीराज रासो' का रचनाकाल स्वीकार किया है। यह समय पृथ्वीराज की मृत्यु से १०० वर्ष परचाह पड़ता है।<sup>१</sup>

'पृथ्वीराज रासो' के जिस विकास क्रम की कल्पना डॉ० गुप्त ने की है, वह बोलना-बढ़ है। 'अजयपुर रासो' के विकास-क्रम के लिए भी हमी प्रस्तावित किया है। किसी भी काव्य विधा का विकास-क्रम या विविध काव्य की विकसनशीलता किसी पूर्वनिर्धारित अवधि तक नहीं होती। इस आधार से समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। भाषा की विकसनशीलता के विभिन्न स्तरों के क्रमनियोजन के आधार पर विकास-अवस्थाओं का निर्धारण ही संभव है। इस क्रम का मापन कर यदि 'पृथ्वीराज रासो' का सम्पादन हो सके तो असु स्थिति का निवारण संभव हो सकेगा।

‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप और उसकी प्रामाणिकता की कल्पना उसमें प्रयुक्त छन्दों के आधार पर भी की गई है। यह विश्वास प्रकट किया गया है कि चम्बरदाई ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में ही यह संकेत कर दिया है कि उनकी कृति कतिपय विविध छन्दों में ही लिखी गई है। उदा०—

छन्द प्रबंध कवित्त अति साटक गाह गुरुत्प ।

लुगु बुद मल्लिग लडियहि पिंगल अमर भरम्भ ॥

मधुरा प्रभाव बीडिल ने इस कवन का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—  
‘छन्द सर्वात् एक ही छन्द के समाना साराच क्युनागच इत्यादि छन्दों को प्रबंध पृथ्वीराजजी के चरित-संघटन को कवित्त—इत्यादि कवि-कल्पना को यति ( अति ) विश्राम तथा साटक वर्णवृत्त धातु’क विकीकृत आदि छन्दों को तथा पाबा आयौगीति उपवीति आदि तथा इत्यर्थ स्थायिक वर्णन को इस रासो में स्थान है।’<sup>१</sup> सम्भावक की यह चारणा है कि इन्हीं वृत्तों में ‘पृथ्वीराज रासो’ की रचना हुई है। परन्तु इस कवन का स्पष्ट अर्थ यह है कि ‘रासो’ की प्रबन्धात्मकता में ‘छन्द’ ‘कवित्त’ ‘साटक’ (घटुक) ‘पाबा’ और ‘होहा’ (गुरुत्प) आदि वृत्तों का प्रयोग है। इस अर्थ की ग्रहण करते हुए कविराज मोहनसिंह ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन्हीं छन्दों में मूल ‘पृथ्वीराज रासो’ की रचना हुई है।<sup>२</sup> इन निष्कर्षों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ‘पृथ्वीराज रासो’ में ‘साटक-काव्य विद्या’ के कुछ अति व्यापक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसके साथ ही साथ संस्कृत के छन्दों का भी प्रयोग इस कृति के वर्तमान रूप में मिलता है (पिंगल अमर भरम्भ)। अतः इन छन्दों के आधार पर ‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप की कल्पना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में आवश्यक तथ्यों की सभी पृथ्वीराज रासो की सन्दर्भ-भोजना के अन्तर्गत की गई है।

‘पृथ्वीराज रासो’ की प्रामाणिकता पर विचार करने की परम्परा इतिहास के संदर्भों तक ही सीमित रही है। इस दृष्टि से ‘पृथ्वीराज रासो’ की प्रामा

१—असली पृथ्वीराज रासो ( प्रथम भाग पृ १४ ) : बेनिए—हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास पृ० ३२१ ।

२—इस सूत्र की ग्रहण करके वे ‘पृथ्वीराज रासो’ का सम्पादन कर रहे हैं—  
राजस्थान विद्यापीठ ।

बिरता पर विचार करने वाले आलोचकों की दृष्टि इतिहास-सम्मत और इतिहास विपरीत तथ्यों तक ही सीमित रही है। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन साहित्य के अन्तर्गत हम काव्य-ग्रन्थ के रूप में करते हैं। अतः काव्यात्मक अनुभूति के स्वयं में इसकी प्रामाणिकता का विवेक्षण अपेक्षित है। इस स्वयं को ग्रहण करते हुए हम आगे के पृष्ठों में विचार करते हैं। अभी इतिहास के आधार को ग्रहण करने वाले आलोचकों की भावनाओं की कच्ची और विवेकपूर्ण किया जा रहा है।

स्यामसुन्दर दास 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक इति मानते हैं। इस विषय में उनका 'हिन्दी का आदि कवि' शीर्षक लेख विशेष महत्वपूर्ण है।<sup>१</sup> इस लेख में निम्नलिखित निष्कर्ष ध्यान देने योग्य हैं—

(क) जन्मवरदाई के अनुसार पृथ्वीराज का जन्मकाल संवत् १११५ ई। उनके पोट जाने का समय संवत् ११२२ ई।

(ख) संवत् ११५१ में उनका कलौज-गमन हुआ।

(ग) छद्मवर्णन ने सायं उनका अन्तिम युद्ध संवत् ११५८ में हुआ था। 'जय-काठ इ नसीरी' के अनुसार यह अन्तिम युद्ध हिबरी ५८८ (सं० १२९८) में हुआ था। इस प्रकार जन्मवरदाई की तिथि और 'नसीरी' की तिथि में १० वर्षों का अन्तर पड़ता है। इस अन्तर का समाधान उन्होंने 'आत्म्य संवत्' की कल्पना करके किया है।

हस्तलिखित पुस्तकों के अनुसंधान में मोहनकाल विष्णुछात्र पण्ड्या को भी प्राचीन 'पट्टे' तथा 'परवाने' उपलब्ध हुए हैं। इनमें स्थान-स्थान पर अष्टविक्रम नामक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है। वह जैध या और पृथा के विवाह में समर सिंह को दंडेय में दिया गया था। पृथाबाई ने उन चार व्यक्तियों का उल्लेख किया है जो इनके साथ चित्तौड़ आये थे। उनका उल्लेख 'पृथ्वीराजरासो' में भी मिलता है यथा—

धीपत साह सुजान देस जम्मह संग दिमो ।

अक प्रोहित गुप्तम ताहि अथा नृप किमो ॥

रिधिकेन दिए बहू ताहि धनन्तर पर सोहे ।

अन्य सुतन कमि जाहू अमुर मुर नर मन सोहे ॥



अगर 'आमन्द संवत्' का सम्मेलन किया गया है। इस सम्मेलन में विचारकों की यह धारणा है कि सम्मेलन पृथ्वीराज ने 'साम' संवत् चत्वारण की कल्पना की हो। 'आदि पर्व' में चण्डबरदाई ने लिखा भी है—

एकादश से पंचदह विग्रह त्रिभि नुम सुतः ।

पठिय साक प्रचिराज को लिख्यो विप्र पुन सुत ॥

इसी सम्मेलन में एक अन्य मत की चर्चा अपेक्षित है। चण्डबर के पूर्व से लेकर चण्डबर तक उनकी परम्परा में नब्बे वर्षों की अवधि जाती है। चण्डबर से कटुता होने के कारण इस अवधि की गणना सम्मेलन पृथ्वीराज के सम्मेलन में नहीं की गई है।

अतः स्वाम सुन्दरदास और मिश्र बन्धुओं ने 'पृथ्वीराज रासो' को पूर्ण प्रामाणिक माना है। इतिहास-सम्मत प्राप्तियों के लिए वे निम्नलिखित कारणों का उल्लेख करते हैं—

(क) सम्मेलन चण्ड ने अपने स्वामी का अतिशयोक्ति पूर्ण प्रताप-कथन किया हो। कवि के लिए यह स्वाभाविक भी था। (ख) जो प्राप्तियों विरहित होती हैं वे वास्तव में प्राप्तियों नहीं हैं क्योंकि 'नाबरी प्रचारिणी सम्रा' की ओर से प्रकाशित कुछ चालाकान्क परधानों पद्यों से उनकी पूर्ति हो जाती है। विधियों के अन्तर के लिए मिश्रबन्धुओं ने यह संकेत किया है कि रासो के सम्मेलन विग्रह सम्मेलन से नब्बे वर्ष कम हैं। यह अन्तर सभी प्रतियों में मिलता है। इसका कारण यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' में साधारण सम्मेलन का प्रयोग नहीं किया गया है। यह वह सम्मेलन है जो वर्तमान सम्मेलन से नब्बे वर्ष पीछे पड़ता है। यह प्रस्तावना अति धिक्कित अवीक्षणिक और सम्मेलनित है। यह इस वर्ग के सम्मेलनों को निखी भी रूप में शक्ति नहीं प्रदान कर पाता है।

(ग) 'पृथ्वीराज रासो' के वर्तमान स्वरूप में अरबी-फारसी की शब्दावली व्यापक रूप में प्रयुक्त है। इसके आधार पर भी आलोच्य कृति की प्रामाणिकता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस संकेत का निदान करते हुए उन्होंने यह कहने का प्रयास किया है कि योरी से लगभग पीने दो सी वर्ष पहले महम्मद गजनवी भारत में आया था। गजनवी से प्रायः तीन सौ वर्ष पहले ही सिन्ध-मुस्तान पर मुसलमानों का अधिकार हो चुका था। पंजाब भी मुसलमानी संस्कृति से प्रभावित हो चुका था। चण्ड काहीर का निवासी था अतः वास्तविकता से ही अरबी और फारसी के शब्द उनके अस्तित्व में आचुके थे।

यह निष्कर्ष भी सबल प्रमाणों के आधार पर स्पष्टीकरण की अपेक्षा रहता है। 'पृथ्वीराज रासो' में अरबी-फारसी के शब्दों की संख्या अति व्यापक है। और किसी एक निश्चित काल-अवधि में विदेशी भाषा के शब्दों की यह व्यापकता सम्भव नहीं है। यह कृति इन विद्वानों द्वारा जिस काल की रचना स्वीकृत है उस काल की भाषा में अरबी-फारसी का इतना जीवन्त प्रभाव सम्भव नहीं है। उस युग की अन्य कृतियों में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा का यह स्वरूप परिष्कृत नहीं होता है। किसी भाषा में विदेशी भाषाओं के शब्दों का पर्याप्त मात्रा में आगमन कालक्रम से होता है। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा का कौन सा शब्द किसी अन्य भाषा में किस समय आया इसका भी निर्णय भाषा-स्वरूप के अध्ययन के द्वारा हो जाता है। इस दृष्टि से भी यह स्पष्ट निर्णय हो जाता है कि 'पृथ्वीराज रासो' में अरबी-फारसी के शब्दों का व्यापक मात्रा में आगमन अनेक काल-स्तरीयों में हुआ है। इस दृष्टि से यह भी स्पष्ट होता है कि अपने वर्तमान स्वरूप में आलोच्य कृति किसी एक कवि अथवा किसी एक काल अवधि की रचना नहीं है।

'पृथ्वीराज रासो' की अप्रामाणिकता पर विचार करने वाले आलोचकों ने भी इतिहास की स्वरूपा का ही आधार ग्रहण किया है। बंयास से 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन हो रहा था। मुराटीबान और स्वामन्थान ने इस कृति की प्रामाणिकता पर संशेष्ट प्रकट किया। इनके संशेष्ट से अनुमोदित हो कर और जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' के विस्तारण से पूर्णतः निश्चित होकर बूस्टर ने भी इस निष्ठा का प्रतिपादन किया है कि 'पृथ्वीराज रासो' एक अप्रामाणिक रचना है। इनके निष्कर्षों से प्रभावित होने के कारण 'एशियाटिक सोसाइटी' ने इसका प्रकाशन स्थगित कर दिया।

काश्मीर के कवि जयानक की रचना 'पृथ्वीराज विजय' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अपने वर्तमान रूप में यह अपूर्ण है इसमें केवल बारह सर्ग हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह कृति संवत् १२४६ में लिखी गई है। इन ग्रन्थ के बारहवें सर्ग में यह संकेत मिलता है कि काश्मीर का एक कवि (सम्भवतः जयानक ?) पृथ्वीराज के दरबार में आता है। वहाँ उसको सम्मान मिलता है और उतका परिचय राजकवि तथा सामन्त पृथ्वी भट्ट से कराया जाता है। यह अनुमान किया जाता है कि यह बटना पृथ्वीराज की मृत्यु के कुछ ही समय (दो-एक वर्ष) पूर्व हुई होगी। इसके बारहवें सर्ग में पृथ्वीराज को राज का अवतार कहा

गया है। इसके अनुसार तिलोत्तमा ने गंगा तटवर्ती किसी विशेष स्थान पर राजकुमारी के रूप में अवतार लिया था। इस वर्णन के बाद प्रति खण्डित है।

डॉ० बूस्टर ने 'पृथ्वीराज विजय' का विश्लेषण किया। इस विश्लेषण के अनुसार जयानक पृथ्वीराज का सम्कासीन था। जयानक ने चौहानों का भी वर्णन प्रस्तुत किया है उसकी प्रामाणिकता इतिहासग्रन्थों और छिन्नालेखों से स्थापित हो जाती है। 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित घटनाएँ और तिथियाँ इतिहास विपरीत पड़ती हैं। इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कतिपय विचारकों ने 'पृथ्वीराज विजय' के आधार पर ही 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता का संस्थापन किया है। जयानक का परिचय पृथ्वीराज के राज कवि पृथ्वी भट्ट से कराया गया। जयानक ने इसका संस्केष किया है। इस वर्ष के आलोचकों की यह धारणा है कि पृथ्वीभट्ट जम्बरुबाई का ही नाम था। परन्तु इस निर्णय के लिए उनके पास कोई सापेक्ष प्रमाण नहीं है। इन आलोचकों की यह भी धारणा है कि 'पृथ्वीराज विजय' में जिस तिलोत्तमा की चर्चा मिलती है वह जयचन्द की पुत्री संयोजिता ही है। 'पृथ्वीराज विजय' की प्रति खण्डित है। अतः इन विचारकों का यह अनुमान है कि जादे तिलोत्तमा ( संयोजिता ) और पृथ्वीराज के विवाह का वर्णन रखा होगा और सहानुद्भूत के साथ पृथ्वीराज के संघर्षों का भी वर्णन उसमें अनिवार्य रूप से रखा होगा। यदि ये निष्कर्ष सत्य हैं तो 'पृथ्वीराज विजय' की तिलोत्तमा और पृथ्वीराज रासो की 'संयोजिता' एक ही व्यक्ति हैं। दोनों ग्रन्थों में नाविका की अप्सरा के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। इस संदर्भ में मेरा विचार जाग्रह यह है कि 'पृथ्वीराज विजय'

१—पृथ्वीराज विजय की हस्तलिखित खण्डित प्रति डॉ० बूस्टर को सन् १८७१ में शारमीर में प्राप्त हुई थी। इसमें जोगराज की टीका भी संलग्न है। डॉ० बूस्टर तथा जेम्स मारीसन् ने इसका अध्ययन लिया है। देखिए Proceedings of the Royal Asiatic Society of Bengal April 1893 Extract Number of the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society 1877

की सम्पूर्ण प्रति जब तक उपलब्ध न हो जाय तब तक इस प्रकार का कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

‘पृथ्वीराज विजय’ के बिलम्बण से ‘पृथ्वीराजरासा’ की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता की संस्थापना सम्भव नहीं है।

सन् १२०० के लगभग कास्मीर के कवि और व्यास जयरथ का उल्लेख मिलता है। इनके एक ग्रन्थ ‘विमर्शिना’ का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ में ‘पृथ्वीराज विजय’ का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अब ‘पृथ्वीराज विजय’ की रचना इस समय तक हो चुकी थी।<sup>१</sup>

प्रसिद्ध इतिहासकार और पुरातत्त्ववेत्ता श्री गोरीशंकर हीराचन्द्र शर्मा ने ‘पृथ्वीराज रासों’ की आन्तरिकता का मूल्यांकन इतिहास के सूक्ष्मम तत्त्वों के

१—देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १६१।

२—पृथ्वीराज विजय का विभाजन इस प्रकार है—प्रथम सर्ग—पूज कर्मियों—कास्मीकि व्यास आदि की श्रद्धा के पश्चात् पृथ्वीराज की गौरव गाथा का वर्णन। द्वितीय सर्ग—मृग मण्डल से बाह्यमान ( चौहानों के आदि पुरुष ) का अवतरण बामुदेव का जन्म वर्णन। तृतीय सर्ग—बामुदेव वर्णन (साकम्बरी भील की उत्पत्ति की कथा) बामुदेव का वहाँ प्रस्थान। चतुर्थ सर्ग—और पञ्चम सर्ग—बामुदेव का वध वर्णन जयचरण का वर्णन। षष्ठ सर्ग—जयराज के पुत्र अर्जुनराज का उल्लेख। अर्जुनराज की दो रानियों—सुषमा और कंचन देवी का उल्लेख। सुषमा के तीन पुत्रों में विजहराज की कीर्ति वर्णन। कंचन देवी के पुत्र सोमेश्वर का उल्लेख।

सप्तम सर्ग—कुमारपाद का वर्णन। सोमेश्वर और कर्पूरदेवी के विवाह की कथा। अष्टम सर्ग—पृथ्वीराज की जन्म कथा। नवम सर्ग—कपूरदेवी के शासन का वर्णन। कादम्बवास की प्रतिभा की वर्णन। दशम सर्ग—पृथ्वीराज के विवाह की कथा। पृथ्वीराज के युद्धों का वर्णन। एकादश सर्ग—गोरी और कादम्बवास के मध्य संघर्ष का वर्णन। भीमदेव द्वारा मोरी की पराजय की कथा। पृथ्वीराज की प्रणय-उद्भावनाओं में उरीपण के अन्तर्गत उसकी चित्रपाला का सौन्दर्य वर्णन। द्वादश सर्ग में जयचरण का परिचय इसके पश्चात् की प्रति वर्णित है—  
विशेष सूचना के लिए देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १६१।

गया है। इसके अनुसार तिलोत्तमा ने गंगा तटवर्ती किसी विशेष स्थान पर राजकुमारी के रूप में अवतार लिया था। इस वर्णन के माद प्रति सन्धित है।

डॉ० ब्रूस्टर ने 'पृष्णीराज विजय' का विश्लेषण किया। इस विश्लेषण के अनुसार जयानक 'पृष्णीराज' का समकालीन था। जयानक ने बौद्धानों का जो वर्णन प्रस्तुत किया है उसकी प्रामाणिकता इतिहासग्रन्थों और शिलालेखों से स्थापित हो जाती है। 'पृष्णीराज रासो' में वर्णित बट्टायों और तिवियों इतिहास विपरीत पड़ती हैं। इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कतिपय विचारकों ने 'पृष्णीराज विजय' के आधार पर ही 'पृष्णीराज रासो' की प्रामाणिकता का संस्थापन किया है। जयानक का परिचय पृष्णीराज के राज कवि पृष्णी मट्ट से कराया गया। जयानक ने इसका उल्लेख किया है। इस वर्ण के आलोचकों की यह धारणा है कि पृष्णीमट्ट जयनरदाई का ही नाम था। परन्तु इस निर्णय के लिए उनके पास कोई सापेक्ष प्रमाण नहीं है। इन आलोचकों की यह भी धारणा है कि 'पृष्णीराज विजय' में जिस तिलोत्तमा की बर्णन मिलती है वह जयचन्द की पुत्री संयोजिता ही है। 'पृष्णीराज विजय' की प्रति सन्धित है। अब इन विचारकों का यह अनुमान है कि जाने तिलोत्तमा ( संयोजिता ) और पृष्णीराज के विवाह का वर्णन रखा होगा और सहायुरीन के साथ पृष्णीराज के संघर्षों का भी वर्णन उसमें अनिवार्य रूप से रखा होगा। यदि ये निष्कर्ष सत्य हैं तो 'पृष्णीराज विजय' की तिलोत्तमा और पृष्णीराज रासो की 'संयोजिता' एक ही व्यक्ति हैं। दोनों ग्रन्थों में नायिका को अप्सरा के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। इस सन्दर्भ में मेरा विनम्र आग्रह यह है कि 'पृष्णीराज विजय'

१—पृष्णीराज विजय की हस्तलिखित सन्धित प्रति डॉ० ब्रूस्टर को सन् १८७५ में काश्मीर में प्राप्त हुई थी। इसमें बोलराज की टीका भी संलग्न है। डॉ० ब्रूस्टर तथा जेम्स मारीसन् ने इसका अध्ययन किया है। देखिए Proceedings of the Royal Asiatic Society of Bengal April 1893 Extract Number of the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society 1877

की सम्पूर्ण प्रति जब तक उपलब्ध न हो जाय तब तक इस प्रकार का कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है ।

‘पृथ्वीराज विजय’ के विनयम ज्ञा ‘पृथ्वीराजरासो’ की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता की संस्थापना सम्भव नहीं है ।

सन् १२०० के लगभग काश्मीर के कवि और आचार्य जयरथ का उत्पन्न मिश्रता है । इनके एक अन्य विमर्शना का उत्पन्न मिश्रता है । इस ग्रन्थ में ‘पृथ्वीराज विजय’ का स्पष्ट उल्लेख मिश्रता है । अतः ‘पृथ्वीराज विजय’ की रचना इस समय तक हो चुकी थी ।<sup>१</sup>

प्रसिद्ध इतिहासकार और पुरातत्त्ववेत्ता श्री श्रीरामचन्द्र हीराचन्द्र ओझा ने ‘पृथ्वीराज रासो’ की आन्तरिकता का मूल्यार्क इतिहास के सूक्ष्मतम तत्त्वों के

१—बैलिण्—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १६१ ।

२—पृथ्वीराज विजय का विभाजन इस प्रकार है—प्रथम सर्ग—पूर्व कवियों—बात्मीकि व्यास आदि की कल्पना के पश्चात् पृथ्वीराज की गौरव गाथा का वर्णन । द्वितीय सर्ग—सूय मण्डल से चाहमान ( चौहानों के आदि पुत्र ) का अवतरण बामुदेव का जन्म वर्णन । तृतीय सर्ग—बामुदेव वर्णन (दाक्षिण्यरी भीम की उत्पत्ति की कथा) बामुदेव का बहौ प्रस्थान । चतुर्थ सर्ग—और पञ्चम सर्ग—बामुदेव का वंश वर्णन जयचरण का वर्णन । षष्ठ सर्ग—जयराज के पुत्र अर्जुनराज का उत्पन्न । अर्जुनराज की दो रान्तियों—सुयका और कंचन देवी का उत्पन्न । सुयका के तीन पुत्रों में विजयराज की कीर्ति वर्णन । कंचन देवी के पुत्र सोमेश्वर का उत्पन्न ।

सप्तम सर्ग—कुमारपाल का वर्णन । सोमेश्वर और कर्पूरदेवी के विवाह की कथा । अष्टम सर्ग—पृथ्वीराज की जन्म कथा । नवम सर्ग—कर्पूरदेवी के पावन का वर्णन । दशम सर्ग—प्रतिमा की वर्णन । दशम सर्ग—पृथ्वीराज के विवाह की कथा । पृथ्वीराज के युद्धों का वर्णन । एकादश सर्ग—योगी और दशम सर्ग का मध्य संकर का वर्णन । भीमदेव द्वारा गोरी की पराजय की कथा । पृथ्वीराज की प्रणय-उद्वाकलाओं में उद्गीर्ण के अन्तर्गत उसकी चित्रपाला का सौन्दर्य वर्णन । द्वादश सर्ग में अयानक का परिचय इसके पश्चात् की प्रति छन्दित है—विशेष सूचना के लिए बैलिण्—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १६३ ।

मानव्य पर किया है। उनकी यह चारणा है कि वि० सं० १९४० में रचित 'हम्मीर काव्य' एक प्रामाणिक कृति है। प्रस्तुत कृति के स्वस्म पर हम विचार कर चुके हैं। इस रचना में चौहानों को अग्निबंधी नहीं माना गया है। 'पृथ्वीराज रासो' में उन्हें अग्निबंधी माना गया है। इस आधार के आधार पर अपना निष्कर्ष प्रबल करते हुए वे कहते हैं 'इससे सात होता है कि उस समय तक 'पृथ्वीराज रासो' प्रसिद्धि में नहीं आया। यदि 'रासो' की प्रसिद्धि हो गई होती तो 'हम्मीर महाकाव्य' का खेचक उसी के आधार पर चलता।

मोरीशकर हीराचन्द ओझा ने कुम्भलगढ़ किले का उल्लेख किया है। महाराजा कुम्भकर्ण ने वि० सं० १२१७ में इसका निर्माण किया। कुम्भ स्वामी के मन्दिर में पाँच शिलासेतों पर बलों में अपने समय तक के मेवाड़ के शासकों का विस्तृत वर्णन है। इस चन्दर्मा में इतिहासकार ने दो प्रमुख तथ्यों की ओर संकेत किया है—(क) समरसिंह न पृथा (पृथ्वीराज की बहन) के साथ विवाह किया था इसका यहाँ कोई उल्लेख नहीं मिलता। (ख) समरसिंह मोरी के साथ युद्ध में मारा गया इसकी स्वकृति इन शिलासेतों से नहीं होती है। इसके समानान्तर महाराजा राजसिंह के राजसमुद्र के तटस्थ के मोरी बाँध पर स्थापित पचीस शिलाओं पर उत्कीर्ण महाकाव्य को ओझाजी ने प्रस्तुत किया है। इसके तृतीय सर्ग में समरसिंह और पृथा के विवाह का उल्लेख है। समरसिंह का मोरी द्वारा बंध हुआ इस बटना का भी उल्लेख यहाँ मिलता है। इन दो बटनाओं की प्रामाणिकता के लिए इस महाकाव्य में 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित इन बटनाओं को सही रूप में ग्रहण किया गया है। अतः निष्कर्ष रूप में हमकी मान्यता है कि पृथ्वीराज रासो की रचना कुम्भलगढ़ किले की स्थापना ( वि० सं० १२१७ ) के पश्चात् और राजसमुद्र तटस्थ के निर्माण ( १७३२ ) के पूर्व होगी।<sup>१</sup>

इस प्रकार ओझा जी भी इतिहास के सन्दर्भ से ऊपर नहीं उठ पाते।

सं० १९३४ में सुर्जन हाड़ा की प्रसिद्धि में लिखित सुर्जन चरित महाकाव्य का उल्लेख पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता की स्थापना में किया जाता है। यह

बत्तीस सर्गों की कृति है। इसके अनुसार चाहुमान या बहमान ब्रह्मा के यत्नकृष्ट से प्रकट हुए हैं ( सर्ग सात )। इसके रसमें सर्ग में कान्यकुब्जेस्वरी के साथ पृष्णीराज की प्रेमकथा के साथ-साथ भक्तेश्वरों के इन्हीं सार पराजीत होने का उल्लेख है। अन्तिम संदर्भ में पृष्णीराज की पराजय के साथ-साथ उसका बन्दी होकर गबनी जाना भी वर्णित है। उसके नेत्रहीन होने की कथा भी यहाँ मिलती है। कन्द कवि के गबनी जाने के उल्लेख के साथ-साथ राजवेधी बाण द्वारा मोरी के बच का भी उल्लेख है। इस सुन्दर्य में इस सत्य की ओर संकेत दिया जा सकता है कि 'मुञ्ज बरि' में वर्णित ये कथानायें 'पृष्णीराज रासो' से ही ग्रहण की गई हैं अतः 'मुञ्ज बरि' के आधार पर प्रामाणिकता-संस्थापना की चेष्टा निम्न उपयोगी नहीं सिद्ध होगी। क्योंकि 'मुञ्ज बरि' महाकाव्य में वर्णित कथानायें बीकानेर कोर्ट में मुरसित 'पृष्णीराज रासो' की प्रति में उपलब्ध घटनाओं के अनुसार ही हैं।

मोती साक मेनारिया की यह संस्थापना है कि चण्ड नाम का कोई कवि पृष्णीराज का सामयिक या परन्तु उसने 'पृष्णीराज रासो' नाम की कोई कृति लिखी है इसमें संदिग्ध है। उन्होंने 'रामलल्ल कन्द' या 'पावनी रा कन्द' की तरह पृष्णीराज से सम्बंधित किसी लघु काव्य की रचना की या उसकी प्रशस्ति में कतिपय फुटकल पदों की रचना की। 'बाह-ने-बकवरी' में सुरदास की कृति 'साहित्य सवरी' का उल्लेख मिलता है। इसके एक पद में सुरदास ने अपने को चंद का बंराज कहा है। इस कथन पर किसी बजात कवि की टीका भी मिलती है।

प्रथम हौ पृथु यथ ते मे प्रकट अद्भुत कम ।  
ब्रह्म रास विचार ब्रह्मा राजु नाम अनुप ॥  
पान पय बैषी दियो सिव भादि सुर मुख पाय ।  
कह्यो दुर्गा पुन तेरो भयो बलि अधिकाय ।



पारि पायल सुरल के सुर संहित अस्तुति कीन ।

तामु बंस प्रसंस में भो बन्द बाव नवीन ॥

धूप पृथ्वी राज सीन्हों तिन्हें ज्वाला देस ।\*

इस में इस संकेत को ग्रहण किया जा सकता है कि बन्दबराई माट या भट्टबराई के थे । 'पुरातन प्रबंध' संग्रह में भी बंद को माट या भट्टबाति का कहा गया है । 'मविष्य पुराण' के प्रस्तुत अंश को बाजार मान कर भी सूरदास और बन्द को भट्ट बाति का कहा गया है—

सूरदास इति ज्ञेय कुम्भसीलाकार कवि

सम्भुने बन्द भट्टस्य कुले बातो हरि प्रिय ।

'साहित्य संहरी' की प्रामाणिकता पर निर्णय नहीं हो सका है । 'बन्द बन्द बर्णन की महिमा' का उल्लेख 'रासो' की प्रामाणिकता संस्थापना हेतु कतिपय संदर्भों में किया जाता है । परन्तु 'बन्द बन्द बर्णन की महिमा' की प्रामाणिकता पर हम निर्णय लेने में असमर्थ हैं । अतः आलोच्य संदर्भ में इसका उपयोग समस्या के निर्बंध में विशेष उपयोगी नहीं होगा ।<sup>१</sup> इन संदर्भों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि बन्दबराई के समय तक 'पृथ्वी राज रासो' और बन्दबराई का व्यापक प्रचार हो चुका था । परन्तु यह प्रचार छोटे-बहुमुद्रियों के माध्यम से ही जिस रूप में हुआ कम रहा है । 'रासो' की प्रामाणिकता या उसके मूल रूप का इन संदर्भों से कोई परिचय नहीं मिलता ।

इस प्रकार 'पृथ्वी राज रासो' का विस्तार इतिहास की पीछिका पर किया गया है । और किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की अपेक्षा समस्या और गुम्फित होती गई । 'रासो' की विवेचना हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्त

१—इसलिए—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २१२ । परन्तु लेखक ने इस उद्धरण के श्रोत का उल्लेख नहीं किया है, जिससे इसकी प्रामाणिकता का प्रश्न उत्पन्न होता है ।

२—बन्द बन्द बर्णन की महिमा की जिस प्रति का उपयोग किया गया वह पश्चिमांशिक सोसाइटी बंगाल में मुरसिठ है । यह किसी प्रतिलिपि की प्रतिलिपि है ।

जो इतिहास हम व हम में हानी गयी है। विद्वानों के लिए यह अस्मिता का कि राज्य-वृद्धि के रूप में इसकी सम्मानमन्त्रियों पर विचार करने। निम्न निम्न प्रतिष्ठों का माया-इन्द्र का इसकी जगह के विभिन्न लोगों के लक्षण का वर्णन करने। आपुनिक रूप में इनकी मन्त्रियों के माया पर 'पृथ्वी राज राजों' के स्वयं और उसकी आमादिकता पर विचार किया गया है। 'पुनः पृथ्वी' में इन सम्मान की चर्चा की जा रही है।

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' की भूमिका में मुनिजिनविषय में 'पृथ्वी राज राजों' के कार्य-जन सम्मान की वैधानिक विचार बागों की भूमिका रच-सोचना उल्लिखित की है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के ९ मन्त्रों ८६ ८८ ८९ का मन्त्र ग्रहण करने हुए उन्होंने कहा है कि चन्द्र एक ऐतिहासिक व्यक्ति व 'पृथ्वीराज' के समकालीन थे। उन पृथ्वी राज के नीति-न्याय-वर्गों के लिए ऐसी प्राकृत योगों में एक कार्य की रचना की थी जो 'पृथ्वी राज राजों' के नाम से विख्यात हुआ। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' 'प्रबन्ध कोश' तथा 'भूगणन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित प्रबन्धों द्वारा पृथ्वी राज में सम्बन्धित घटनाओं की पुष्टि होती है। मन्त्रों की इति 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के 'सुय मुमट' प्रबन्ध में पृथ्वी राज और गोरी के मध्य २२ युद्धों का उल्लेख है। इस मन्त्र में राजेश्वर सुरि रविन 'प्रबन्ध कोश' (पृ. १८५) विशेष उल्लेखनीय रचना है। इसके 'बन्धु वास प्रबन्ध' के अनुसार पृथ्वी राज ने गोरी को बीज बार बन्दी बनाया और उन्हें मुक्त कर दिया। अन्तिम बार गोरी ने पृथ्वी राज को पराजित कर उनका शत्रु किया—

'विवादि बार बह-बह' सुहाव रीत सुराज्य मोमदा पृथ्वी राज लिखत। इसमें जनक और पृथ्वी राज सम्बन्धित प्रबन्ध गी हैं। इन में पृथ्वी राज से सम्बन्धित इतिहास-सम्मान लोगों की पुष्टि ही होती है। परन्तु इन प्रबन्धों में उन लक्ष्य बार छात्रों का महत्त्व 'पृथ्वी राज राजों' के साथ रूप और उसकी माया के स्वयं निष्कर्ष में विशेष सहयोगी है। इन प्रबन्धों की ओर नरित करने हुए यह कहा गया है कि इनमें दो 'अन्धविह्व' के और दो 'अन्ध' के हैं। इसमें यह स्पष्ट है कि 'पृथ्वी राज राजों' अपने मूल रूप में इन्हीं छन्दों में रविन

अपभ्रंश-अवहट्ट की कृति है। 'चन्द्र बलिह्व' के अतिरिक्त बल्ह ने भी पृथ्वी राज से सम्बन्धित छन्दों की रचना की है। सं० १२२० तक पृथ्वी राज और धाहापुरीन के मध्य सात युद्धों ने होने की अनुभूति प्रचलित हो चुकी थी। राजसेखर पुरि ( सं० १४५ ) तक ये अनुभूतियाँ लगातार बार्हस तक हो गई। तद्वर्ष यह कि समय-समय में लोक अनुभूतियों के आधार पर इसका विकास हुआ है। अतः वर्तमान रूप में समग्रता की दृष्टि से यह एक काम अपना एक कवि की कृति नहीं है। अपने वर्तमान रूप में 'पृथ्वी राज रासो' एक विपुलायतन काव्य ग्रन्थ है। और इसके कवि चन्दबरबाई का व्यक्तित्व भी विपुलायतन ही है। डॉ० दधि भूषण दास गुप्त ने अपने 'बास्मीकि और कास्मिदास' शीर्षक निबन्ध में एक महत्त्वपूर्ण सत्य की ओर संकेत किया है। यद्यपि इनका यह संकेत 'रामायण' और 'महाभारत' के सन्दर्भ में है परन्तु 'पृथ्वी राज रासो' या किसी भी विक-समशील विपुलायतन काव्य के लिए यह बहस्य विषय महत्त्व रखता है। 'जैसे एक बीज बाल पत्थर को चेर कर स्फटिक के समी पत्थर पॉथे बाते हैं अपना जैसे एक बीजकोप को अवलम्बन कर असंख्य कोपों के समुदाय के फल स्वरूप बीज पैदा बनता है, उसी तरह उस काम में एक विशेष प्रतिभा को केंद्र में रख कर छोटी बड़ी सभी प्रतिभाएँ एक साथ गठित होती थी। बास्मीकि-रचित रामायण अपना व्यास रचित महाभारत का अध्ययन करने पर यह प्रतीत होता है कि कई दिनों या कई वर्षों में किसी एक विशेष कवि के द्वारा ये वृहत्काय काव्य नहीं रचे गये। जैसे लल की मूर्त प्रतिभा के जरिए विपुल बागर बाहिनी की कर्मनिष्पन्नता बलिम सागर पर विशाल छेदु बन्ध निर्माण में, सन्दर्भ हुई थी उसी प्रकार बास्मीकि तथा केदव्यास की प्रतिभा को अवलम्बन कर उस काम के छोटे-बड़े असंख्य कवियों की साक्षि-साक्ष्या लेकर रामायण-महाभारत का काव्य संकलन सड़ा हुआ। ऐसे छोटे-बड़े अनेक कवियों को आत्मसात् कर लेने के कारण विपुलायतन रामा यण और महाभारत के कवि भी विपुलायतन हैं।' <sup>१</sup> शैल विमल आग्रह है कि चन्द्रबलिह्व की प्रतियाँ का भी आधार ग्रहण कर अनेक कवियों की साक्षि-साधना

१—बास्मीकि और कास्मिदास—डॉ० दधिभूषण दास गुप्त—भारतीय साहित्य  
वर्ष ३, पृष्ठ ३१३

(त्रिपेक्षे सोरु-कवि की प्रतिभा भी सम्मिलित है) के फलस्वरूप ही 'पृथ्वीराज रासो' का वर्तमान स्वरूप सम्भव हो सका है। यही कारण है कि विपुलायतन 'पृथ्वीराज रासो' का कवि भी विपुलायतन है। इन कवियों में केवल बहू ही अपनी कविप्रतिभा का सफलता कर सके हैं। चन्द्रसिंह ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। परन्तु ऐसी कविप्रतिभा में इनके परिवर्ती कास में अनेक जलौकिक और अर्न्ततिहासिक तत्वों का समावेश होता रहा है। अतः 'पृथ्वीराज रासो' के वर्तमान स्वरूप में चम्बरदाई के कविस्वरूप के मूल अस्तित्व की संस्थापना सम्भव नहीं है। 'पुष्पतन प्रबन्ध संग्रह' में जो छप्पय मकबिह है वे निश्चय ही एक विशेष कवि की रचना हैं। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' को पढ़कर यह लगता है कि यह एक कवि अपना युग निरूप की रचना नहीं है। इस दृष्टिकोण काव्य में एक व्यापक-युग-जीवन की अन्तर्देवता का अंकन स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह युग जीवन जिस में उत्तरमाख के पश्चिमी प्रायद्वीप की समग्रता उद्भूत होकर जीवन के गरवात्मक पक्षपर पर नव अंकुर के लिए कालावधि दृष्टिगोचर होती प्रतीत होती है। आन्तरिक व्यक्तियों और बाह्य संघर्षों को ग्रहण करने वाली मानवता विरवास और आस्था के साथ आधी युग के मकल्पों में अपने अवचरण में ही सत्प्रतीति। एक विशाल जनजीवन का जीवन-इतिहास 'पृथ्वीराज रासो' में संकलित है। यही कारण है कि यह काव्य-कृति अपनी उदात्तरसिमा की दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण है। 'पृथ्वीराज रासो' का मूल्यवान् आधिकारिक साहित्य की काव्य प्रकृतियों और काव्य-रूपों के स्वयं में विशेष महत्त्वपूर्ण होमा। इन दो तत्वों का आचार ग्रहण कर हम इसके मूल रूप की कल्पना कर सकते हैं अथवा हमें मूल रूप के निकट पहुँच सकते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' से सम्बन्धित अध्ययन की इस विधा की ओर ध्यान आकर्षित करने का सर्वप्रथम प्रयास डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है।

सर्वप्रथम हमारा ध्यान कविराज मोहन सिंह की प्रस्तावना की ओर जाता है। उन्होंने 'रासो' की अभिव्यक्तता विधा का आचार ग्रहण करते हुए इसकी प्रमाणिकता-संस्थापना की कृष्णा की है। उन्होंने प्रस्तुत अंग उद्भूत करने हुए

कहा है कि इन्हीं छन्दों में 'पृथ्वीराज रासो' का मूल स्वरूप रचा गया होमा<sup>१</sup>—

सर्व प्रबन्ध कवित यति साटक माह पुहल्य

सबु मुठ मंथित कंठि यह, पिंगल जमर भरल्य ।

इसके अनुसार कवित ( पद्यी ) साटक ( साङ्गिक विक्रीडित ) गाहा ( माया ) और बोहा आदि छन्दों में ही मूल रासो की रचना हुई है । परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' रासक-काव्य-परम्परा की कृति है । 'रासक-काव्य विधा' में प्रमुख समस्त प्रकार के छन्दों का प्रयोग इस कृति में हुआ है । इसके अतिरिक्त जिन छन्दों को यहाँ 'रासो' का मूल माना गया है उनमें प्रस्तुत 'पृथ्वीराज रासो' की कतिपय वृत्तियों प्रकृत या अप्रमाणिक हैं ।

ऊपर यह कहा गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' रासक काव्य-परम्परा की कृति है साथ ही साथ इसकी प्रकृति निम्नलिखित भी रही है । अप्रमथ काव्य विधानों की समझता इसके निम्नलिखित स्वरूप में प्रतिबिम्बित है । गेय-नृत्य रासक काव्य की भूमिका से पद्धति होकर इसमें चरित और कथा की अनुपेक्षा को भी आवश्यक ग्रहण किया है । अप्रमथ काव्य-रूपों की समझता इस पद्धति काव्य-ग्रन्थ के संयोजन में द्विजाधीन समझती है । काव्य-रूपों की व्यापकता के साथ साथ अनिश्चयता प्रणाली की व्यापकता भी यहाँ विशेष रूप से देखने को मिलती है । अप्रमथ के जिन व्यापक काव्य रूपों की चर्चा विद्वत् पृष्ठों में हो चुकी है उनकी संश्लिष्टता 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है । इसी प्रकार छन्दों के जति व्यापक प्रयोग की दृष्टि से भी 'रासो' आदिकाल की प्रतिनिधि रचना है । विद्वत् पृष्ठों में यह उक्ति क्रिया गया है कि रासक-काव्य-वारा में कास-क्रम से चरित या कथा उत्पन्न का भी समावेश किया गया । अब 'पृथ्वीराज रासो' 'रासक काव्य' के साथ-साथ 'चरित काव्य' भी है । इस प्रकार यह निगूँय किया जा सकता है कि अपने आरम्भिक रूप में 'पृथ्वीराज रासो' कतिपय छन्दों में गीत-नृत्य-परक रहा होमा । और इसका प्रचार जन-जीवन में हुआ होया और इस प्रचार के समानांतर

१—राजस्थान भारती भाग १ अंक २ ३ जुलाई-अक्टूबर १९४६ पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता पर पुनर्विचार ।

जैसे साहित्य का भी महती योजना भी हुई होगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम 'पृथ्वीराज रासो' के उन अंशों को देखें जिनमें 'रासक-काव्य' के सशक्त विद्यमान मिलते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में कतिपय संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह निर्णय कम का प्रसन्न प्राप्त होता है कि इस कृति का आदिकव्य नीति-नृत्य तत्त्वों से समन्वित रहा होगा।

उदाहरण—

बल नीम अक्षर सुरंग पाट कहु युव विधि मंडिय ।

नुर विकास जारी सु मुन्य उदिरस यौरव निधनिय ॥

आदिपर्व समय प्रथम सू० ४० ।

पृथ्वीराज रासो के ये तत्त्वों से परिपूर्ण होने का संकेत प्रस्तुत अन्तरण में भी मिलता है—

मंत्र सति क या मंत्र रूप अप्यत लप्येक ।

मुने भवन मुन यह बान धडा करि देख ।

तक बिल करि माव भाव धामरुम्ह पाव ।

अरव हीन कम हीन छन्द गन माव ।

पिगत प्रमान बहु मोति वृति रस रूपक नव नव सर ।

बरदाय भाव रसना रसिक परचि परचि प्रीति पावे सुरस ॥

समय १८ २२४ ।

यद्यपि ये अंश परवर्ती काळ में 'पृथ्वीराज रासो' में सम्मिलित किए गए हैं परन्तु इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि 'पृथ्वीराज रासो' के विकास-स्वरूप निर्माण में 'रासक-काव्य' स्वरूप के ये तत्त्व न अल्प सहयोग प्रदान किया है।<sup>१</sup> आरम्भिक पृष्ठों में यह भी कहा गया है कि इसकी-आखों धनाढी तक 'रासक' काव्य विधा में प्रकृत काव्यों की रचना भी होने लगी थी और इस परम्परा का पूर्ण विकास 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है। अतः 'रासक' काव्य विधा की समग्रता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' उद्यत प्रयोग प्रधान वेद रूपक का अन्तर्गत आता है जिनमें युद्धों के वर्णन के साथ-साथ प्रेम-सीतानों का भी अनुयोग मिलता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'पृथ्वीराज रासो' में उत्तम 'रासक'

१—देनिए —हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास ।

कहा है कि इन्हीं छन्दों में 'पृथ्वीराज रासो' का मूल स्वरूप रचा गया होगा<sup>१</sup>—

छंद प्रबन्ध कवित यति साटक माह बृहत्प

सबु मुकं मंजित बंदि यह, पिंगल बमर भरत्प ।

इसके अनुसार कवित ( पटुपरी ) साटक ( सादृश मिश्रीभित ) माहा ( गाथा ) और बोहा आवि छन्दों में ही मूल रासो की रचना हुई है । परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' रासक-काव्य-मरम्परा की कृति है । रासक-काव्य विधा' में प्रयुक्त समस्त प्रकार के छन्दों का प्रयोग इस कृति में हुआ है । इसके अतिरिक्त जिन छन्दों को यहाँ 'रासो' का मूल माना गया है उनमें प्रयुक्त 'पृथ्वीराज रासो' की कतिपय वृत्तियाँ प्रसिद्ध या अप्रामाणिक हैं ।

अगर यह कहा गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' रासक-काव्य-मरम्परा की कृति है साथ ही साथ इसकी प्रवृत्ति मिश्रसगरीज भी रही है । अप्रभु काव्य विधाओं की समग्रता इसके मिश्रसगरीज स्वरूप में प्रतिबिम्बित है । येन-मृत्य रासक काव्य की भूमिका से गह्रमित होकर इसने चरित और कथा की अनुपेक्षा को भी आवश्यकपूर्वक ग्रहण किया है । अप्रभु काव्य-रूपों की समग्रता इस बृहत् काव्य छन्द के संमेलन में दिखायी दे सकती है । काव्य-रूपों की व्यापकता के साथ साथ अनिश्चितता प्रकाश की व्यापकता भी यहाँ विशेष रूप से देखने को मिलती है । अप्रभु के जिन व्यापक काव्य रूपों की चर्चा निम्न पृष्ठों में हो चुकी है उनकी संश्लिष्टता 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है । इसी प्रकार छन्दों के अति व्यापक प्रयोग की दृष्टि से भी 'रासो' आरिकाज की प्रतिनिधि रचना है । निम्न पृष्ठों में यह संकेत किया गया है कि रासक-काव्य-आरा में काक-मज से चरित या कथा उत्पन्न का भी समावेश किया गया । अतः 'पृथ्वीराज रासो' 'रासक काव्य' के साथ-साथ चरित काव्य भी है । इस प्रकार यह निर्णय किया जा सकता है कि अपने आरम्भिक रूप में 'पृथ्वीराज रासो' कतिपय छन्दों में भीत-मृत्य-मरक रहा होगा । और इसका प्रचार जन-जीवन में हुआ होगा और इस प्रकार के समानांतर

१—राजस्थान भाषा, भाग १ अंक २ ३ मुसार्द-जनद्वार १९४६ पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार ।

ये प्रश्न के घादित्व का भी महती योजना भी हुई होगी। जत बाबस्थिति इस बात की है कि हम 'पृथ्वीराज रासो' के उन बंसी को देखें जिनमें 'रासक-काव्य' के सखण विद्यमान मिलते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में कविय्य संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह निर्णय करने का प्रयत्न प्रारम्भ होता है कि इस कृति का आदिकव्य गीति-श्रुत्य तत्त्वों से सम्बन्धित रहा होगा।

उदाहरण—

बज्र नील बन्धुर मुरंग पाट कटु गुह बिधि मंडिय ।

मुर बिकास बारी नु मुर उदिरम गौरव निघडिय ॥

आदिपर्व सम्य प्रथम अ० ४० ।

'पृथ्वीराज रासो' के वेग तत्त्वों से परिपूर्ण होने का संकेत प्रस्तुत अवस्था में भी मिलता है—

मंथ तलिक बा धंभ कुर अण्यत तण्यव ।

मुने धमन मुन एह बान पछा करि वैकुण ।

एक चित करि भाव भाव मायकमह पावय ।

अरु हीन बन हीन खनह कन गावय ।

निपक प्रमान बहु मोति धूति, रस कपक कब कब खरन ।

अरुदाय भाव रसना रसिक परनि परनि प्रीति पाव मुरस ॥

सप्तमो अ० २२४ ।

यद्यपि वे बंध परबर्ती काल में 'पृथ्वीराज रासो' में सम्मिलित किए गए हैं परन्तु इनसे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि 'पृथ्वीराज रासो' के विकास-क्रम निर्माण में रासक-काव्य स्वरूप के वेपत्य ने अवश्य सहयोग प्रदान किया है। आरम्भिक पृष्ठों में यह भी कहा गया है कि बसन्ती-आखीं रागादी तक रासक काव्य विधा में प्रकृत काव्यों की रचना भी होने लगी थी और इस परम्परा का पूर्ण विकास 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है। जत रासक काव्य-विधा की समग्रता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' अत्यंत प्रयोग प्रमाण वेग बंधक के अन्तर्गत आता है जिनमें मुख्यों के बंधन के साथ-साथ प्रबन्ध-लोकाओं का भी अनुयोग मिलता है। टी० हजारी प्रभात टिप्पणी 'पृथ्वीराज रासो' में उल्लेख रासक-

१—बिण — द्वितीय महाकाव्य का स्वरूप विकास ।



काव्य प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हुए इसे 'सन्देश रासक' के सार्वभौम में देखने की जगह करते हैं। परन्तु इस स्वयं पर इन दो कृत्तियों के मूल अन्तर की ओर संकेत कर देना भी आवश्यक है। (क) 'सन्देश रासक' एक निश्चित कवि और एक निश्चित काव्य की रचना है। 'पृथ्वीराज रासो' की रचना में कव्यरसवाई के अतिरिक्त परवर्ती काल के अनेक कवियों का सहयोग है। इस प्रकार यह एक निश्चित काव्य-कवि की रचना नहीं है। (ख) 'सन्देश रासक' की प्रकल्प-बर्मा काव्य है, इसमें कथा सत्य यौग्य है। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में कथात्मक प्रकल्प है। इस 'पृथ्वीराज रासो' के उस रूप की कल्पना करें जिसमें वह आकार में या काव्य-रूप की दृष्टि से 'सन्देश रासक' के आकार से भिन्न नहीं रहा होगा। उस रूप में भी मुद्रों की अन्तर्व्यवस्था इसकी अनुमोदना रही होगी। परन्तु 'सन्देश रासक' और 'पृथ्वीराज रासो' में निम्नलिखित दृष्टियों से समानता मिलती है।

'सन्देश रासक' और 'पृथ्वीराज रासो'—इन दोनों कृत्तियों में काव्य-आरम्भ करने की विधा एक ही है। दोनों ही कृत्ति के कृत्तिकार अपने पूर्व के कवियों की काव्य प्रतिभा को नमन करते हैं अपनी कवि प्रतिभा की लघुता का प्रकाशन करते हैं। (देखिए इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या १६२)। इस विषय में वर्धनीय यह है कि यह विधा अपभ्रंस की प्रायः समस्त काव्य-कृत्तियों में अपनाई गई है। अपभ्रंस-अवहट्ट की काव्य-कृत्तियों में कथा-काव्य-कृत्तियों या चरित-काव्य कृत्तियों का आरम्भ दो व्यक्तियों या पक्ष पक्षियों की बातों से होता है। बातों में यह क्रम प्रायः सम्पूर्ण कृत्ति में किसी न किसी रूप में निरन्तर चलता है। पिछले पृष्ठों में इस ओर संकेत किया जा चुका है। 'पृथ्वीराज रासो' में बातों के माध्यम से कथा-क्रम की प्रस्थापना नियमित रूप से मिलती है। कतिपय कथानों का यह विश्वास है कि सम्भवतः 'पृथ्वीराज रासो' का मूल रूप इन्हीं बातों में लिखा गया होगा।<sup>१</sup>

—देखिए—हिन्दी साहित्य का आदि काल—'और सब पूछिए तो यह बात आप से छिपाना नहीं चाहता कि यह बात मेरे मन में समझी हुई है कि चंद का सच सब सुक-सुकी के संवाद के रूप में लिखा गया था और जितना वंश इस बाद के रूप में है उतना ही वास्तविक है।

प्रथम समयों में 'कर्म स्तुति' 'कर्म स्तुति' के पश्चात् पूर्व कवियों की स्तुति और उच्छिष्ट संज्ञा कवन आता है—

प्रथम भुवयी भुवारी ग्रहर्त । जिने नाम एक अनेक महर्त ।  
 पुती स्रग्मय देवर्त भीबतेर्त । जिने निस्व राक्षसों बलीमंत्र सेत ॥  
 भवं देव भवं हरी किरती माखी । जिने धम्म साधम्म संसार साखी ।  
 लूती मारती व्यास भारत्य भारखी । जिने जल पारख्य सारख्य साखी ॥  
 पवं सुकसेवं परी खल पाय । जिने कडरपी धूम कुवस पाय ।  
 भर रूप बंधम्म श्रीहर्ष सार । नसे राय कंठ जिने पद हार ॥

×                      ×                      ×                      ×

जबहूँ बट्ठ कबी कविराय । जिने केवल किछि गोविन्द गाय ।  
 पुरं सख कबी छहूँ बंद कबी । जिने बसियं देखि सा भय हूखी ॥  
 कबी किछी किछी उकछी सुदिखी । सिमें की उच्छिष्टि कबी बंद भस्त्री ।

सं० १०१ क० १३॥ पृ० ११

और इसके पश्चात् ही कवि चन्द की स्तुति दीर्घा करती है । और उत्तर-प्रत्युत्तर में कथा प्रवाहित होती है । इस प्रकार संवाद रूप में कथा-संज्ञा को प्रत्युत्तर रूप देखा देखने को मिलती है—

(क) बारम्भ में रात्रि के समय कविपत्नी पृथ्वीराज की कीर्तिकथा के समित्सार वर्णन का अनुरोध करती है ।<sup>१</sup>

(ख) कथा की संवादात्मक योजना पुनः पाँचवें समय में है । यहाँ संवाद मुकु-मुकु के मध्य होता है—

मुकु कहे मुकु संसरी कहो कथा पति प्राप्त ।

पृथु भीरो भीमग पावु किय हूब बेर विताम ॥

(ग) पृथ्वीराज के तीस विवाहों से सम्बन्धित कथा की प्रस्तावना मुकु-मुकु संवाद के माध्यम से हुई है । बाखूँये समयों में मुकु मुकु से इंदिरा के विवाह

१—विद्यापति की कीर्तिकथा के समान रासों में भी प्रत्येक अध्याय के बारम्भ में—और कथाचित् अन्त में भी—मुकु और मुकु की बातचीत समान अवसर रही होगी—हिन्दी साहित्य का आधिकारिक पृ० ६८ ।

१—मुकु कुछ यह सीमावर्ती के कवि कौमुद के समान ही है—वही पृ० ६७ ।

की कथा पृथ्वी है । और तैरहने में शुक-शुकी का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु इसका अर्थ—

शुकी-शुकी ने अतिरिक्त 'पुत्र' 'पुत्री' की बातें जानी है ( देखिए पृथ्वीराज रासो का सैंतीसवाँ समय ) । 'शुक' 'शुकी' की या 'पुत्र' 'पुत्री' की बातों में उनके थोड़ा-बहुत-रूप की प्रभावता कतिपय जगहों तक बनी रहती है । परन्तु इस विधेय विधा के प्रयोग में अपभ्रंश की अन्य कृतियों में विविध रूपता मिलती है । थोड़ा-बहुत के रूप में कथा प्रस्तुत करने वाले तत्त्वों के अतिरिक्त कतिपय सम्बन्धों में ये पात्र कथा के अर्थ या पात्र के रूप में आते हैं । ये कथा की मुख्य संविधान में भाग लेते हैं और कथा को गतिशीलता प्रदान करते हैं । यह परम्परा काव्य में कहीं सी बन गई थी । इस दृष्टि से 'पृथ्वी राज रासो' का विनास्तिशौ समय विशेष रूप से दृष्टव्य है । यहाँ शुक-शुकी पृथ्वीराज और संवोमिता की प्रणय-संवेदना के बाह्य का रूप धारण करके हैं । 'शुक' मनुष्य का रूप धारण कर पृथ्वीराज के पास संवोमिता का सन्देश लेकर जाता है । इस प्रकार की आयोजना बायसी के 'पद्माक्ष' में मिलती है जहाँ शुक कथा के मुख्य पात्रों में अपना विशेष स्थान रखता है । इसकी जहाँ पद्माक्ष की विशेषता के अन्तर्गत की गई है । कथा में मान लेने वाले पात्र के रूप में शुक का प्रयोग अपभ्रंश की कतिपय कृतियों में निम्नलिखित रूप से हुआ है । इस सम्बन्ध में 'करकण्ठ चरित' का उल्लेख किया जा चुका है । ( देखिए पृ० २१ ) । इस दृष्टि से 'पृथ्वी राज रासो' में अपभ्रंश की काव्य-कृतियों और कथानक-कृतियों का प्रयोग निम्नलिखित रूप से हुआ है ।

इसी सम्बन्धों का आचार ग्रहण कर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह धारणा है कि इन प्रसंगों में ही रासो का मूल रूप रहा होगा ।<sup>१</sup> द्विवेदी जी ने जिस निष्ठायात्मक रूप से यह निर्णय किया है उसमें संशयिता या सन्देह की भी सम्भावना है । परन्तु इसका समर्थन अति विश्वास के साथ किया जा सकता है कि इन प्रयोगों के माध्यम से 'पृथ्वी राज रासो' के भाव स्वभाव की सम्पादित प्रकृति की जा सकती है । डॉ. द्विवेदी ने इसी सम्बन्ध में एक अन्य समझावना

की ओर संकेत किया है। उक्त अनुमान है कि अपने मूल रूप में 'पृथ्वी राज रासो' समय 'सासङ्कार' युद्ध मध्य कथा या ओर इसकी कथा वस्तु के अन्तर्गत केवल तीन बातें रही होगी (१) नायक की प्रेम लीला (२) कथा हरण (३) सन् पटावय ।<sup>१</sup>

विभिन्न पृष्ठों में यह कहा गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन-काव्य श्रव्य के रूप में ही विशेष उपयोगी होगा क्योंकि अपने पूर्व की (अपभ्रंश) काव्य विधाओं की मूल चेतना पर इसका विकास हुआ है। अपभ्रंस की वे कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनमें कथा के संयोजन का सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों से है। इनमें इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों पर व्यौक्तिक तथ्यों का आरोपण निरन्तर मिलता है। इस आरोपण में इसकी रचना साहित्य के परिपार्श्व को स्पर्श करने समीची है। 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के व्यक्तित्व पर तथा अन्य सम्बन्धी व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर इस प्रकार अनेक काव्यनिक तथ्यों का आरोपण मिलता है। इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है 'वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं किया गया है। बरबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काव्यनिक कथानायक बनाने की वृत्ति रही है। कुछ में देवी शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है जैसे—राम बुद्ध इत्यादि और कुछ में काव्यनिक रोमांस का आरोप करके निबन्धी कथाओं का आभय बना दिया गया है जैसे उदयन विक्रमादित्य और ह्राक। आपसी के एतन्सेन रासो के पृथ्वीराज में-तथ्य और कल्पना का—कैमट्स और फ़िनचन का—बहुमूल योग हुआ है।' वास्तव यह कि काव्यनिक कथा-अर्थों के निरन्तर संयोग होते रहने के कारण 'पृथ्वीराज रासो' के ऐतिहासिक स्वरूप पर आचरण-सा पड़ गया है। फलस्वरूप पृथ्वीराज के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की नैसर्गिकता यहाँ अति आधिक रूप में ही उल्लेख होती है।

१—हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ० ७२।

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल—चतुर्थ व्याख्यान-पृ० ७७

स्वयं-स्वयं पर यह संकेत किया गया है कि अपने वर्तमान रूप में 'पृथ्वीराज रासो' का स्वयं अपभ्रंश के चरित काव्यों के समान यहाँ भी निम्नचरी विस्वासी और अभिप्रायो का अति व्यापक प्रयोग हुआ है। निम्नचरी कथाओं का प्रयोग रुद्रि रूप में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों में नियमित रूप से हुआ है। मुख्यतः अपभ्रंश का कवि तो चरित काव्यों की रचना में कथानक रूपों का प्रयोग मुख्य रूप में करता है। इस सन्दर्भ में 'करकण्ड चरित' का उल्लेख किया जा चुका है। (वेदिय-पृ० २० २१) भारतीय साहित्य में शुक चारिका (तोता मैत्रा) से सम्बन्धित कथानक रुद्रि का प्रयोग। यह प्रयोग तीन दृष्टियों से हुआ है—(क) कथा के कहने वाले चोटा के रूप में (ख) कथा की गति को अग्रसर करनेवाले सुन्दर बाहुक के रूप में (ग) कथा के चरित्रों को बोलने वाले अनपराध मेरिया के रूप में। इस ओर संकेत किया गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' में शुक-सुकी के माध्यम से ही कथा की प्रस्तावना की गई है।<sup>१</sup> बट्ठा-चोटा के रूप में यहाँ इनका प्रयोग तो हुआ ही है इसके अतिरिक्त किसी विशेष विधु से कथा को अग्रसर करने का प्रयास भी इनके द्वारा किया गया है। पृथ्वीराज

१—हिन्दी साहित्य का आभिकान-पृ० ८२ पृथ्वीराज रासो में प्रमुख इस विधा का पूर्ण रूप बालमहर्षि की 'कारम्भरी' में मिलता है जहाँ शुक-सुकी के माध्यम से कथा कहलाई गई है। डॉ० द्विवेदी ने अमरक के अठक से एक मोहक श्लोक प्रस्तुत किया है—'व्यति ने रात भर प्रेमाकाप किया कम्बका धुक सब सुनता रहा। प्रातःकाल सास बिठाणी के सामने उसने उन बाक्यों को धुहराना शुरू किया। बबू हिरान। उसे सुनत एक बुद्धि शुरू गई। काम के कर्मपूत में पद्मराज मणि का दुकड़ा था। उसे लेकर उसने धुक के सामने रखा और उस बाबास मूर्ख ने उसे बाह्य-पक्ष समझ कर पीच मारी। बचन उसका बग्न हुआ और छमा बिहूका लवपु ने शास्त्रि की रास की—व्यत्योनिधि अस्तोय ह्युकेनाकर्मिणं यथाः

तथातर्भुसमिनी निम्बतः सुर्वेण तारं वधू।

कणीर्धित पद्मराज अकर्म विदस्य बध्ना पुरो।

की हात्ती प्रकरोति दधिम् पक्ष स्वाकेन बाधय।

और पद्मावती विवाह के सम्बन्ध में और इक्ष्मी विवाह के सन्दर्भ में शुक-शुकी प्रयोग इसी रूप में किया गया है। अतः 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर विचार करते समय इन विविध कथानककृतियों पर अनिवार्य रूप से विचार करना होगा। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो' में निम्नलिखित कथानक कृतियों का प्रयोग विशेष रूप से दर्शनीय है—

(क) पृथ्वीराज की परम्परापूर्ण कथानक कृतियाँ—मृत के मूल से पृथ्वीराज सचिवाता के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनता है। वह उस पर मुग्ध होता है। सचिवाता के लिए शिव पूजन की विरपरिचित प्रणाली का प्रयोग इस सन्दर्भ में निरूपित है। इस आकांक्षा-पूर्ति के लिए उसे स्वप्न में वरदान मिला जाता है।

(ख) रुद्रेश बाहक के रूप में हंस-अपौरुषेय । सम्बन्धित रुद्रि का प्रयोग भी भारतीय लोक-जीवन में निरन्तर हुआ है। 'नैयम' में स्वर्ण हंस की कल्पना की गई है। पृथ्वीराज रासो में अन्वर्ण हंस का रूप बाल्य कल्पित है। और वह 'नैयम' के हंस के समान ही हो जाता है। वह सचिवाता के निकट पहुँचता है। वह उसके हृदय में पृथ्वीराज के प्रति आकष्यक उत्पन्न करता है।

(ग) अन्य कृतियों में सिद्ध परिवर्तन सांकेतिक भाषा पूषजन्म की स्मृति भविष्य सूचक स्वप्न कथा हराज कथन मुक्त इत्यादि विषय इष्टव्य हैं।

इस प्रकार काव्य-कृति की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता उसके आदि रूप और उसके विकसनाधीन स्वरूप की प्रस्तावना जिन मूल वृत्तियों के आधार पर की गई है उनका विवेचन इन पृष्ठों में किया गया। 'पृथ्वीराज रासो' की मूल काव्यात्मक अनुकेतना को सम्मुख रखते हुए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रति निम्नलिखित शब्दों में यह कहने का प्रयास किया है कि, 'संयोजिता वाक्का प्रसंग निरुद्धिष्वप्य रूप से मूल रासो का सर्वप्रथम अंग था।' अपनी विवेचना में इस सत्य की ओर भी उन्होंने संकेत किया है कि इसक वर्तमान रूप में अनेक प्रतिष्ठित अंग भी समाविष्ट हुए हैं। इसके अतिरिक्त शुक चरित से सम्बन्धित अंग की भी द्विवेदी जी ने मूल रासो का अंग माना है। 'रासक काव्य' के उपसंहार की विभाकी सम्पूर्ण रखते हुए भी द्विवेदी जी ने इसके आदिम की कल्पना की है। 'रासक काव्यो' कि यह सामान्य प्रवृत्ति है कि

उन्का अन्त सुखान्त ( मिश्रान्त ) होता है । 'सन्देश रासक' या 'बीससन्देश रासक' को उदाहरण रूप में ले सकते हैं । इनका अन्त मिश्रान्त-सुख में होता है । ऐसी सम्मानना की गई है कि 'पृथ्वीराज रासो' का मौखिक स्वरूप भी सुखान्त रहा होगा । इस दृष्टि से विचार करते हुए छिन्नेरी जी ने कहा है 'संयोजिता के मिश्रान्त के बाद कवि का उद्देश्य पूरा हो जाना ही संयत मान पड़ता है । शुक्र चरित्र के द्वारा इक्ष्मी का हृदय शान्त करना भी संयत ही है ।' छिन्नेरीजी की यह चारणा भारतीय काव्य में निहित व्यापक जीवन-दृष्टि पर अवलम्बित है । भारतीय काव्य-दृष्टि सुखान्त रही है । अतः 'पृथ्वीराज रासो' के कवि की दृष्टि भी सुखान्त ही रही होगी । अपनी विवेचना में 'सन्देश रासक' की समाप्ति निधि के अतिरिक्त 'मिश्रकृत' के समाप्त की निधि का भी उल्लेख छिन्नेरी जी ने किया है और दो और कालियास को भी निरुद्ध का समुद्र छल कर केने के बाद मिश्रान्त कर देने को उदाहरण होना पड़ा था —

श्रुत्वा वार्तां बभूव कन्वितां बनेद्योऽपि सख  
 साप स्यान्तं सख्यं हृदयं संविधायास्तकोप ।  
 संयोज्येती विमिश्रितं शुभो दम्पती हृष्टचितो  
 मौननिहा मन्त्रितगुलं मौनयामास शस्त्रम् ॥”<sup>१</sup>

ऐसी ही समाप्ति 'पृथ्वीराज रासो' की रही होगी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छिन्नेरी जी ने पृथ्वीराज रासो के आदि स्वरूप और उसके प्रामाणिक अंश की कल्पना अति व्यापक सम्बन्धों को ग्रहण करते हुए की है । उनकी विवेचना का आचार ग्रहण कर हम 'पृथ्वीराज रासो' के मौखिक रूप तक पहुँच सकेंगे, इसमें सन्देह है । परन्तु उन्होंने निम्न के लिए एक

सुस्पष्ट और व्यापक धारातय उल्लिखित किया है। इसका आधार ग्रहण कर नवीन कथ्यों की उद्भासना सम्भव हो सकेगी।<sup>१</sup>

काव्य-कृति के रूप में 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता और आदि रूप पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपने आरम्भिक रूप में पृथ्वीराज रासो उच्चतम प्रयोग प्रधान मसृज-युक्त गेम रूपक था। उसमें कथानो के छलानो के अतिरिक्त 'रासो' के भी अन्तर्भाव थे। अप्रमत्त काव्य-कृतियों की सामूहिकता पर इसका विकास हुआ है। इसके स्वस्व—निर्माण में अप्रमत्त के रोमांचक शैली के काव्यों ने विशेष सहयोग प्रदान किया है। युद्ध और प्रेम के समन्वित रूप के अतिरिक्त लोक पाथाओं और वीर गीतों का भी निरंतर योग होता रहा है। अतः इसमें प्रबन्ध कथा और आख्यायिका के तत्त्वों का समावेश नैसर्गिक ही है। इस प्रकार—

१ 'पृथ्वीराज रासो वेय'रासो' काव्य-शैली में लिखित था।

२ इसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण है।

३ 'रासो' भी 'कीर्तिकथा' की भाँति संवाद में लिखित रहा होगा। साथ ही साथ कीर्तिकथा के समान इसमें बीच-बीच में कान्ति परक पद्य भी रहा होगा।

४ 'रासो' में अनेक कथागत कथियों का व्यवहार हुआ है।

५ मूल 'रासो' के प्रामाणिक अंश निम्नलिखित माने जा सकते हैं—

(क) आरम्भिक अंश (ख) इक्ष्वाकु विवाह (ग) अचिन्ता का संघर्ष विवाह (घ) योग्यता द्वारा अज्ञानबुद्धि का पराजय (ङ) संयोगिता का अन्त विवाह और इक्ष्वाकु और संयोगिता की प्रतिष्ठिता और उनका समन्वय।<sup>२</sup>

१—इक्ष्वाकु ने अपने निष्कर्षों के आधारपर 'पृथ्वीराज रासो' के एक रूप का निर्धारण किया है। इसे उन्होंने संक्षिप्त 'पृथ्वीराज रासो' की कथा की है। यह सम्पादन इस विश्वास के साथ किया गया है कि चन्द्रशेखरदास की मूल रचना इसके समीप ही रही होगी। ऐतिहासिक-संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो सम्पादक :—डॉ० इजारीमत्ता इक्ष्वाकु और डॉ० नामवर सिंह—प्रकाशक साहित्य अकादमी प्रयाग।

२—ऐतिहासिक-संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो की व्याख्या।



डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के इन लिखनों को आचारहीन मानते हुए डॉ० मत्ताप्रसाद गुप्त ने यह कहा है कि 'पृथ्वीराज रासो' की कथा का संवाद रूप में होना इस विषय में कोई निस्संशयीय आचार नहीं है कि इसका मूल रूप संवादों में ही रहा होगा। उदाहरण स्वल्प पेंतालीसवें समयों में संयोजिता के अवतार ग्रहण करने की जो कथा है वह भी घुड़-सुकी संवाद के रूप में है किन्तु इसे द्विवेदीजी ने स्वतः प्रतिष्ठ माना है। इसके अतिरिक्त डॉ० मत्ताप्रसाद गुप्त का द्वितीय आप्रह यह है कि रासो-परम्परा में उदात्त रुद्रि व्यापक रूप में प्रचलित नहीं थी। 'बीसख देव रासो' में इस विधा का प्रयोग नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि संवाद रूप में कथा प्रस्तुत करने की विधा अरिह-काव्यों में ही विशेष रूप में देखने को मिलती है। अपभ्रंश की इस विधा में बहुत सम्भव है 'पृथ्वीराज रासो' का आरम्भिक अंश इसी शैली में रहा हो तो यह आश्चर्य की बात नहीं। 'कीर्तिछाया' 'पद्माक्ष' और 'रामचरित मानस' में इस शैली का प्रयोग इस निश्वास को सक्ति देता है। जहाँ तक 'बीसखदेव रासो' का सम्बन्ध है वह अरिह काव्य नहीं है। यह संक्षिप्त किम्बा जा चुका है कि इसमें कथा-अंश का विशेष महत्त्व नहीं है। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो' के निस्संशयीय स्वल्प की अवहेलना हम नहीं कर सकते। परवर्ती काल में अन्य कृतियों के साथ-साथ संवादात्मक शैली में भी इसके विकसंशयीय स्वल्प का संयोजन किया है। अतः संवादात्मक अंशों में प्रतिष्ठ अंशों का रहना भी नैसर्गिक ही है।

द्विवेदीजी ने 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त कथानक कड़ियों के आचार पर भी इसकी प्रामाणिकता स्थापित करने का प्रयास किया है। इस पर आपत्ति प्रकट करते हुए डॉ० मत्ताप्रसाद गुप्त ने कहा है इन कड़ियों का आचार निम्ना उद्धृत है वह स्वतः द्विवेदीजी के इन शब्दों में प्रकट होगा—परवर्ती काल में जिन लोगों ने उसमें प्रक्षेप किया वे अन्य की इस प्रवृत्ति को जानते थे। इसीसिग्न प्रक्षेप करने वालों ने चुन चुन कर के कथानक कड़ियों और काव्य-कड़ियों का प्रयोग किया है।<sup>१</sup> विशेष ध्यान देने की बात यह है कि अपभ्रंश के कथा और अरिह काव्यों में काव्य-कड़ियों और कथानक कड़ियों का नियमित प्रयोग हुआ है।

‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप में कतिपय कथामय-कवियों का प्रयोग सम्भव नहीं है। साथ ही साथ इन्हीं कथामय कवियों के आधार पर पृथ्वीराज रासो के वर्तमान स्वरूप का आकार निर्मित हुआ है। इस संकेत का प्रतिपाद नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रिवेदी जी ने ‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि स्वरूप और प्रामाणिक बंध की कल्पना अति व्यापक संस्करणों को ग्रहण करते हुए की है। उनके संकेतों का आधार ग्रहण कर हम ‘पृथ्वीराज रासो’ के मूल रूप तक पहुँच सकते हैं, इसमें संदेह है। परन्तु उन्होंने चिन्तन के लिए एक स्पष्ट और व्यापक मातृक उपस्थित किया है। इसका आधार ग्रहण कर नवीन कवियों की उत्पत्ति सम्भव हो सकेगी।

संयोजिता स्वयंवर और कईवासव निश्चय ही ‘पृथ्वीराज रासो’ के प्राचीनतम बंध हैं। संयोजिता स्वयंवर की विधि के विषय में हम निश्चित नहीं हैं परन्तु कईवासव की विधि निश्चित की जा सकती है। ‘पृथ्वीराज निबन्ध’ के रचनाकाल तक इसका स्पष्टित प्रभावशाली था। कईवासव के लिए हम सन् ११६२ को ग्रहण कर सकते हैं। जब ‘पृथ्वीराज रासो’ का आदि रूप इसी वर्ष या इसके तत्काल पश्चात् ही रचा गया होगा। ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह’ में जो बंध उपलब्ध हैं उनकी भाषा हेम व्याकरण में संकलित बंधों की भाषा से अधिक विनम्रतापूर्ण है इस हेतु ही डॉ० माताप्रसाद मुखर्जी सन् १४०० को ‘रासो’ का प्रथमकाल माना है।

#### पृथ्वीराज रासो का काव्य सौन्दर्य

‘पृथ्वीराज रासो’ एक विपुलापन्न काव्य है। इसमें एक विशिष्ट युग का जीवन-स्वरूप अन्विष्ट है। अपनी विवेचना में इस युग को निरन्तर ध्यान में रखा होता कि यह अपने वर्तमान आकार में किसी एक कवि की कृति नहीं है। कविचर की प्रतिभा का अवलम्ब ग्रहण कर अनेक कवियों की प्रतिभा ने पृथ्वीराज रासो के ‘काव्य सौन्दर्य’ का गूँथार किया है। ‘पृथ्वीराज रासो’ एक वर्णनात्मक या इतिवृत्ति प्रधान काव्य है। परन्तु इतिवृत्तियों के मध्य अनेक—  
चरित्रचित्रों में एतत्काल अनुबन्धों का नैसर्गिक सौन्दर्य मिलता है।  
(Narrative Poetry) जगज्जय काव्यों की प्रमुखता है।

विभिन्न परिपाकों से वर्णन की प्रेरणा ग्रहण करता है। इस प्रेरणा में लोक-जीवन के स्पर्शों का आभास ग्रहण करता है। लोक-संस्कारों की अनुभूतता के संरक्षण में भावों का साधारणीकरण करता है। श्रुतार की समग्री भूमिका का निर्माण करता है। कथविधान और वर्णन की सिंग्यता स्वनिष्ठ संस्पर्शों पर सापेक्ष-रूप प्रारब्ध करती है। साम्यविधान के आधार पर प्रभाव की बन्धिति स्थापित होती है। अतः वर्णन का अति व्यापक सौन्दर्य 'पृथ्वीराज रासो' में मुखरित मिळता है। इस अंकन में प्रकृति उद्दीपन रूप में प्रयुक्त है परन्तु प्रकृति चित्रों की संक्षिप्तता भी यहाँ विधेय रूप से दृष्टव्य है। 'पृथ्वीराज रासो' में प्रेम श्रुतार के साथ ही साथ युद्धों के अनेक सम्पर्शों का अंकन है। इस प्रकार यह बीरमाहात्म्य काव्य भी है। अतः युद्धों के वर्णन के अग्रजित स्वस्व इस कृति में उपलब्ध हैं। उत्साह संवर्धन एवं युद्धभेदना के अनेक स्तरों का कर्मांकन यहाँ मिळता है। उदात्त भोज तथा धैर्यिक धर्म की निष्ठा की व्यापकता का अस्तेज्य अनेक उच्चावस्थियों में हुवा है।

'पृथ्वीराज रासो' के आदि में इसमें प्रयुक्त रूपकों की संख्या का अस्तेज्य इस प्रकार हुआ है—

सत्त सहस्र नव सिय सरस सकल आदि मुनि दिव्य ।

बट बड़ भट कोऊ पड़ी मोहि ब्रह्म न बसिष्य ।

सं० एक । अन्व २० ।

और— सहस्र सत्त रूपक सरस गुण सुन्दर बहु वित ।

नि पुस्तक कवि बन्ध की दिय माता बहुरित ।

सं० १७।१।२०

परन्तु 'जागरी प्रचारिणी सम्रा' द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में सूत्रों की संख्या सोलह हजार तीन सौ छ है। यहाँ पर बहु संकेत कर देना आवश्यक है कि प्रामाणिकता और सूत्रों की संख्या के मूल स्वस्व के सम्बन्ध से ऊपर उठकर ही 'पृथ्वीराज रासो' के काव्य सौन्दर्य का अध्ययन साहित्य के सम्बन्ध में विधेय महत्वपूर्ण होना। आने वर्तमान आकार में 'पृथ्वीराज रासो' एक दृष्ट्य काव्य रचना है। रासो के कवि की निम्नलिखित उक्ति विधेय ध्यान देने योग्य है—

उक्ति धर्म विस्तारस्य राजनीति गर्भं रम ।

यद् भाषा पुराणं च कुरान् नृक्षितं मया ।

इस प्रकार 'रासो' में धर्म सम्बन्धी उक्तियाँ हैं नगरस से परिपूर्ण काव्य सौन्दर्य है राजनीति के तत्त्व हैं भाषा की व्यापकता है पौराणिक भावना है और इस्लाम-सम्बन्धित विशेषताएँ हैं । यह कथन यद्यपि शेषक के रूप में है परन्तु इससे 'पृथ्वीराज रासो' की सम्पूर्णता और उसकी गरिमा का बोध होता है ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार इस कृति के उपसंहार में भी इसकी समग्रता का वर्णन निम्न संक्षिप्त पंक्तियों में किया गया है—

सुरत बाह विमान मान । नाट्यक मेय विद्या विधान ।

बातुरी मेद बचनह विज्ञास । वसि करम नरम रस हास रान ।

×

×

×

बौदल करम कारन विवेक । रस भाष मेय विद्याग नेक ।

पौराण सुकस कथ जम्ब माय । भारथ्य जम्बदे अन्तार्य ।

कलि काव्य रस प्राहास रंज । बंभनिय छन्द मुग्धे मुग्धप ।

रिनु रस रसानि बेलास गति । मंजन मुर्मत आभास अति ।

समय ३८ २२१ ३१ ।

इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' एक वर्णनप्रधान काव्य है जिसमें घटनाओं की प्रचानता है । इसमें वस्तु-वर्णन अति व्यापक रूप में हुआ है । इसके अन्तर्गत पौराणिक कथाओं का वर्णन हुआ है ।<sup>२</sup> वस्तु वर्णन के अन्तर्गत नगर और देश

१—इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की तुलना महाभारत से की जाती है । महाभारत के विषय में कहा गया है 'यन्म भारते तन्म भारते' । पृथ्वीराज रासो के विषय में भी यह कथन स्वीकार किया जा सकता है । देखिए—  
हिन्दी महाकाव्य का स्वस्व विकास-पृ० २२१ ।

२—होमी कथा शोषमात्मिका कथा । होमी कथा के अन्तर्गत डूँडा ( डोडा ) रासो की कथा का वर्णन । यह कथा 'भविष्य पुराण' की कथा से प्रभावित लगती है । पृथ्वीराज ने जब मे कार्तिक मास में होनेवाले शोषमात्मिका पर्व के प्रति त्रिधाता प्रकट की । कथा संख्या २ के अन्तर्गत संख्या १ ३४ तक हम पर्व में निहित पौराणिक सम्बन्धों की बर्णना है ।

वर्णन में कवि की प्रतिभा का विशेष सम्पन्न वैशेष को मिलता है। इस सन्दर्भ में पट्टनपुर ( पूर्व नरेश भीमसेन चासुन्य की राजधानी सम्यो १८ )। पृथ्वीराज की विद्धी का वर्णन देखिए।

पुर्ब निमम बोधय जमन तट्ट सोधय ।  
तहा सु बाग बन्धय बने सु गुप्त बन्धय । छ १।  
समीर तासु बासय पञ्च सु फूल रासय ।  
विरज्य बेकि उर्बर सुरय पान बंभर त्र  
पु केसर कुम कुम मधुप्य बास त भ्रम ।  
बनार वाप पल्लव सु खप पति विद्धय छ ७ ।

विद्धी इन्द्रपुरी के समान है। नगाड़ों के उद्बोध से नगरी निर्धारित है। विद्धी का बीमब अतुलनीय है। मोती और मालिक्य से वहाँ के हार बमन्य बमन्य करते रहते हैं—

पुरि बुम्भिय प्रम निराग बुरे, पुर है प्रविराज कि इन्द्रपुर ।  
प्रथम विद्धिय विद्धिय कहन ग्रह पीरि प्रसादना सतन । ६१  
× × × ×  
पवि लक्ष्मिय नीलिय मान्दिय रतन बतन मन्त्रिय कर्म ।  
सुम विद्धिय हट्ट सुनै मगई करि बत मिळत मिरत सगई छ ३ ।

सम्यो ११ में कलौज का वर्णन है। सम्यो १७ में कलौजी का वर्णन है। नगर वर्णन के सन्दर्भ में कवि पनपट्ट का वर्णन करता है। कवि जीवन की समग्रता के चित्र के अन्तर्गत एक-एक सूक्ष्म तत्वों का संकलन करता है। वर्णन की स्पष्टता के मध्य भावों के तीव्र आवेशों के संस्पर्श की क्रियात्मकता के माध्यम से गू गार के अस्मित रूप की अन्तारणा करता है।

उदाहरणस्वरूप पट्टनपुर के वर्णन में कवि केवल स्पष्ट चित्रों की उद्भावना नहीं करता बसित भीमिष तथा गत्यात्मक सौन्दर्य का बंजन करता है। पनपट्ट पर बल भरनेवासी तहणियों के वर्णन में कवि उनके रूप-व्यापार और प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन करता है—

भरे पु कुंमय पन इच्छा पु पानि बंगन ।  
असा अनेक कुन - - - - - । छ ३१ ।

सरोवर समानर्ध परीत रंभ जाग्य ।

बल्ल सार संमर्ध बनेक हूँत क्रम्य । १७ ।

भर सुगीर धूम्य

अबु काम रम्य मु ससरी समध्य । स० ४२ १८

जलराजों के रूप सावध्य और यौवन-वैभव से घोषित बाछा में कामधेय के रंभ से सरोवर के पनचट पर उतरती हैं । इस सरोवर में हंस रंभ कर रहे हैं ।

‘पृथ्वीराज राखी’ में कुमार के धर-धर रूपों का वैभव बिलसा है । इसमें प्रेम की तिथीसा है और यौवन वैभव की परिभा है । इसमें ऐसे बनेक मुठों के वर्णन हैं जिनकी उद्भासना प्रलय की अनुपेक्षा पर आधारित है । मुठों की उद्भासना तो प्रलय की आकुल संवेदना पर आधारित है पृथ्वीराज राखीरा के मोन्दर्य का वर्णन कट हास मुनवा है । इस सन्दर्भ में पृथ्वीराज के उद्भूत मनोवाचों के विषय का अनुप्रेषण वर्णन का विवेक वैभव है । प्रकृति व व्यापारों और परिवर्तित रूपों के साथ-साथ पृथ्वीराज की मनोव्यथा की विविधता विवेक रूप से दर्शनीय है । समयों २५ के ३५ ४५ धरों में बर्णन और धरु के वर्णन हैं । इन वर्णनों की विरापटा यह है कि प्रकृति के संस्क्रिष्ट रूप नियोजन के साथ उसके उद्गीर्ण व्यापारों का प्रसार भी होता चलता है । मेघों के वैभव की छाया में समुद्र उद्गीर्ण होकर बोल रहे हैं । पदीहे की पी की टट से नम और धरती प्रतिबलित है बल के कज बली के बल्ल पर गिर रहे हैं । पृथ्वीराज राखीरा की स्मृति में अपने व्यक्तित्व और व्यक्तित्व की उद्गीर्ण कर चुके हैं । (ध० ६५) वर्षों की समाप्ति होती है राखी का बल कमलों से नीचे उतर गया निर्मल राखी अपनी कलाओं के साथ आकाश में तिरने लगा धरु के आगमन ने पृथ्वीराज का मन उद्भूत कर दिया ।

भोर सोर नहुँ और बटा आसाद बाँधि नम ।

बल दाहुर भिगगन टट बाँधि रंभत दुम ।

नील बल्ल बभुनतिप पक्षि आभन असंक्षिप ।

बाँध बभु निगगन धर बभुनतिगु रतिम ।

बरात बूट बन मेघ सर तब सुभौन बह्व क्यैरि ।

मन हंस भीर बीरज मुतन ह्य पृष्ठ भरन करि ।

बन परा बंषि तम मेघ छाव । बामिनिय दमकि बामिनिय बाव ।

बोलेत मोर गिरवर सुहाय । बासिग रटत पिहू और छाह ।

‘पृथ्वीराज रासो’ के कवि ने प्रकृति वर्णन की एक विशिष्ट विधा का प्रयोग किया है। सत्येव रासक’ में अथवा ‘बीसल्लेख रासों’ में प्रकृति वर्णन विप्रकर्म की भूमिका से हुआ है। परन्तु आलोच्य कृति में संयोग की भाव भूमि से विप्रकर्म की सम्भावना के अन्तर्गत प्रकृति का अंकन उद्दीपन विधा के रूप में हुआ है। उदाहरण स्वल्प पृथ्वीराज संयोजिता की प्राप्ति हेतु प्रस्थान करने के पूर्व इक्ष्मी के पास विदा लेने जाते हैं। यह वसंत ऋतु है। इक्ष्मी आश्चर्य प्रकट करती है। वसन्त विप्रकर्म के लिए नहीं है। उसमें संयोग के उन्मादित स्वल्प का बीज ही मुख्य है। वसन्त के उद्दीपन स्वल्प के द्वारा वह विप्रकर्म को रोकने का प्रयास करती हुई कहती हैं—

मवरी बंध फुसिख कबल रपनी रिब बीस ।

मैवर भाव मुल्लै भ्रमन्त मकरन्द बरीस ॥

बहुत बात उज्यलति मोर बसि बिरह अवसिय किय ।

कुह कुहंत कल कंठ पन रावस रति बगिब ।

पम कामि प्राण पति बीनबी माह नेह मुझ बित घरु ।

दिन दिन बबडि जुगन बटै कल वसन्त न पम करु छै १०

पृथ्वीराज वसन्त के इस बीज में अपने प्रस्थान को स्मरित कर केता है। वीर्य में वह रागी पृथ्वीराजी से विदा लेने जाता है। उसी रागी वीर्य के वन के माध्यम से विप्रकर्म में भावी स्वल्प का बिज प्रस्तुत करती है। पृथ्वीराज अपनी यात्रा गुप्त स्मरित करते हैं। वहाँ में पृथ्वीराज इन्द्रावती से विदा लेने जाते हैं। इस सन्ध्या के माध्यम से कवि ने वहाँ के उद्दीपित व्यापारों से वहाँ का संरक्षित बिज्य विधान करता है और साथ ही साथ उन व्यापारों के प्रभावों का भी अंकन करता है।

बन गरबै घरहरे पमक निस रैन निब है ।

समल सरोवर पिम्बि द्विपौ ततलन बन फट ॥

अक बहुक बरपत प्रेम फलसही निरखर ।

कोकिल सुर उचरै अंग पहुरत पंच सर ॥

रापुरहु मोग रामिनी रसम जरि बबल बालक रटम ।

पावम प्रवेश बालम न बसि बिरहु बगिनि तन तन बटम ॥

इस प्रकार श्रुतु वर्णन की एक विधि प्रगल्भी का प्रयोग 'पृथ्वीराज रासो' के बस्तु वर्णन के अन्तर्गत विशेष भावात्मक संस्पर्शों के साथ हुआ है। शाह हमल और चिहिर के चित्रों की उद्भावना भी उद्गीर्ण की व्यापक सम्भावनाओं के साथ हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' में श्रुतार के अनेक मोहक सन्तप्त निर्याजित हैं। संयोग श्रुतार के मादक संस्पर्शों के साथ-साथ आहृति और रस-सौन्दर्य के पाद्य स सन्निविन स्वकों को परिवह करने का रसात्मक प्रयास इस कृति की सम्पुष्टता के श्रुतार में विशेष रूप से सहयोगी है। श्रुतारविन में रस सिद्ध वर्णन के अनेक स्वकों से कृति में भावपूर्ण स्वकों का उन्मय होता है। इच्छिनि पृथा इन्द्रावती तथा सन्दर्भ में आए अन्य नारी पात्रों के कर्पासन के प्रयास कवि प्रतिमा को बरिमा से मण्डित करते हैं। उगाहरन स्वका हंसावती के श्रुतार बगन से एक अंग यहाँ उद्घुष्ट है—

जु कैस मुक्ति संजुरै ससी सराह बो करे  
मनीस बाल साथ ज्यो कि कन्ह काकि बालि ज्यो ।

उपमम नैन ऐन सी मनी कि मन मनी सी ।

क्यो निरंग बानयो सारम बिन मागयो ।

जु बेहरी जराद की बुरत मद् पाद की ।

नितय मड बुबिय प्रबास रस पुब्बिय ।

कि काय रम्य बरक ए, बरति एहि बरक ए ।

उलटि रंग बमन करी मुनास पियन ।

पं० १६१ १६७ १७७ १७०

'पृथ्वीराज रासो' में युद्ध और प्रेम अर्थात् और प्रणय के अंग दुमरे की गति देते बगने हैं। युद्ध की विभीषिका में प्रणय की कुहेनिपाये बरती है। और युद्ध भूनि में मर रहे हैं, जीवन को मन्दारता अनि यथाव और कट सरप के रूप



में सम्मुख है । बिनाश के प्रत्यक्ष में प्रणय का सङ्घास बाधित है । संयोजिता और पृष्ठीराज का मिश्रण इस संघर्ष के मध्य ही होता है । पृष्ठीराज ने संयोजिता को जिस रूप में देखा उसका विवरण देखिए—

कूबर ऊपर सिंघ सिंघ ऊपर भोज पण्य ।  
पण्य ऊपर भूग भूय ऊपर ससि सुम्भय ।  
ससि ऊपर इक कीर कीर ऊपर भूग सिद्धी ।  
भूग ऊपर कोवड संघ कंठ्य बम्भू ।  
बहि मयूर महि ऊपरह हीर सरस हेमन पार्यो ।  
सुर मुवन छंकि कवि चंद कहि छिहि जो ये राजन् पर्यो ॥

पृष्ठी राज राखो' बीरगाथात्मक काव्य है । इसमें युद्ध के अत्यन्त आकर्षण पूर्ण वर्णन मिलते हैं । उत्साह संघर्ष तथा युद्ध-वैतनात्मे अनेक स्तरों का वर्णन इस कृति को काव्य-गौरव से अश्रित करते हैं । युद्ध गाथाओं में युद्ध के मध्य सङ्घास और भोज के अगमित सम्पर्क देखने को मिलते हैं । देखिए—

मने हुक हुक नही सार पार  
चमकते चमकते करार करार ।

×

×

×

×

समकते समकते नही बाग पार  
हुककते हुककते नही सिंघ मेस ।  
कुके कूक कूटी गुरतान डाल ।  
बडी योग माया सुर अप्यचार ।  
नही चट्ट पट्ट छट्ट छट्ट ।  
कुछट्टा करे अप्य अप्य छट्टट्ट ।  
बडकते बडे ऐन ऐना सुषट्ट ।

वीर रस की व्यञ्जना के लिए शु गारमूलक तथा रति नियमक समायें यही वर्णन को बेमब प्रदान करती है । उत्साह वीर रति से परस्पर विरोधी भाव है । परन्तु रति के माध्यम से उत्साह का वर्णन विरोधाभास के अन्तराल से शक्ति रसवत्ता और प्रभाववत्ता की संक्षिप्तता का संस्पर्श प्रदान करता । उदा०—

जु भूवरं घमक्यं किं वाकुरं सुमह्यं  
शुती उपमम मेत्यं मुहाग वाम के'र्य ।

इस प्रकार पारस्परिक विरोधी भावों के माध्यम से प्रभाव की अवस्थिति मात्तोच्य कृति में एक निश्चित वर्णन प्रणाली के रूप में प्रयुक्त है। मुद्र प्रभाव कृति होने के कारण यहाँ रौद्र की व्यापकता मिश्रणी है। मुद्रों के प्रसंगों में 'वीर रौद्र' तथा वीरत्व के सम्मिश्रित रूप मिलते हैं। इन रसों में स्थायी भावों के परिपाक का कार्य आच्छन्न-उद्दीपन या अनुभावों से सिद्धा गया है। मुद्र वर्णन के सन्दर्भ में अनुप्रासाभाव उत्पन्न करने वाले अनेक सन्दर्भ भी मिलते हैं—

मरं मुह रक्तं सहं धनं धोरं  
मेव बह्वी मेव मेव न बारं ।  
जुमै मुक्ति सीधं भटे मोह छसकं  
छमै वानिमूर्ध महामन हसकं ।  
किमै कड विन मुह रस रोस सचे,  
मने ममरं नट्ट विद्या कि गावै ।

स्वतन्त्र-स्वत पर वीर विरोधी निर्बल और मानव के संस्पर्श भी मिलते हैं। कदम रस के अन्तर्गत 'सत्री' होने वाले इन्स उन्मिष्वनीय है परन्तु प्रभाववत्ता की दृष्टि से इनकी समाप्ति छाँट में होती है।

इस प्रकार काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'भृष्मीराज रासो' में साक काव्यघोसी और अर्धवृत्त काव्य विद्या इन दोनों का आचार मिलता है। गृधर को बैभव मुद्रों की भीषणता से इस काव्य की अन्तरेष्टना जीवित है। वस्तु वर्णन और भाव व्यञ्जना इन दोनों दृष्टियों से यह एक अति प्राणवन्त रचना है। इस कृति की प्रेयसीमता अति उपात्त है। भाव संस्पर्शों के साधारणीकरण की दृष्टि से इसकी अभिव्यञ्जना विद्या इस कृति को स्वायत्त का अनुमान होती है। अस्कार वभव की दृष्टि से और इन्स-वन्तों की दृष्टि से 'भृष्मीराज रासो' का महत्त्व कम नहीं है। इन दो दृष्टियों के मागवन्त के अनुसार 'भृष्मीराज रासो' पर विचार यहाँ किया जा रहा है।

महाकाव्य की साम्प्रदायिक परिभाषाओं के अनुसार 'भृष्मीराज रासो' के महा काव्यत्व का सुस्पष्टीकरण सम्भव नहीं है। इन सत्य की ओर संकेत किया जा चुका

है कि आलोच्य छन्द किसी एक कवि की संस्मिष्ट रचना नहीं है। इसका विकास अनेक चन्द्रों में हुआ है। परन्तु परवर्ती काल में इसका स्वल्प संमिश्र अर्द्धछन्द महाकाव्यों के संस्पर्शों से भी हुआ है। अतः इसके वर्तमान रूप में संमिश्र प्राकृत और अपभ्रंश महाकाव्यों की प्रबल रुढ़ियों सम्मिश्रित रूप में मिलती है। अर्द्धछन्द महाकाव्य सर्ग-बद्ध होते हैं। परन्तु इस परम्परा के विपरीत रासो 'पर्व' 'समय' और प्रस्ताव में विभक्त है। अनेक स्थलों पर 'पर्व' का भी प्रयोग किया गया है। अर्द्धछन्द महाकाव्यों के समान इसकी कथा का संतुलन नाटकीय चरित्रों के अनुक्रम नहीं है। अपभ्रंश महाकाव्यों में सर्गों के दीर्घक के लिए 'प्रस्ताव' का प्रयोग किया गया है। पृथ्वीराज रासो में भी वन 'प्रस्ताव' का प्रयोग किया गया है, उदाहरण 'सन्निवृत्ता वर्णन प्रस्ताव'।

'पृथ्वीराज रासो' के आदि पर्व अथवा प्रथम सर्ग में मङ्गलाचरण के छन्द है। इसके लघु रूपान्तर की प्रति में 'बसावतार वर्णन' के अन्तर्गत ही मङ्गलाचरण है। अनेक अपभ्रंश काव्यों में छोट्ट पुख्यों का स्तवन मिलता है। पृथ्वीराज रासो में इस प्रणाली का प्रयोग मिलता है। संवाद रूप में कथा लिखने की विधा परम्परा महाभारत रामायण और अपभ्रंश की कृतियों की विशेषता है। आलोच्य कृति में भी यह विधा ग्रहण की गई है। इसकी बर्चा की जा चुकी है। इस कृति के वस्तु निर्देश में प्रतिपाद्य विषय का स्पष्टीकरण भी किया गया है। यहाँ पृथ्वीराज रासो के गुण उसके महान् ससङ्गी व्यापकता उसकी स्तोक सख्या और उसके उत्तम ज्ञान का उत्कृष्ट मिलता है। यहाँ 'पृथ्वीराज रासो' की कथा का संक्षेप भी वर्णित है। इस प्रकार वस्तु निर्देश तथा भूमिका की दृष्टि से इस कृति में अपभ्रंश काव्य-कृतियों की प्रमुखताओं का निर्वाह मिलता है। अपभ्रंश के काव्य के छन्दों के समान इस कृति में भी एक ही छन्द के अन्तर्गत विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। आलोच्य कृति का विकास अपभ्रंश के रासक काव्यों के अनुसार हुआ है। इस प्रबल काव्य में ज्ञान्य रासक रासो चटवई, चर्चरी कवित्त सट्टक, गाथा बोहा आदि छन्दों का विशेष रूप में प्रयोग हुआ है। वहाँ बर्जिक वृत्तो मात्रिक वृत्त के अतिरिक्त मिश्रित छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। प्रथम चर्च के छन्दों की संख्या प्रायः तीस द्वितीय चर्च के छन्दों

की संख्या लगभग बत्तीस और मिस छत्ते की संख्या ६ के लगभग है। इस प्रकार अपभ्रंश के कथक-बद्ध काव्य-ग्रन्थों में प्रयुक्त प्राग-समस्त प्रकार के छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में मिला जाते हैं।

यूसु रासक प्रचलित-मूकक और चरितकाव्य रहा परन्तु अपने आधुनिक रूप में यह एक भारतीय महाकाव्य है और कतिपय विचारकों ने इसे विक्रमगोपीय महाकाव्य भी कहा है। अतः अछूत महाकाव्य का कथानक-संगठन यहाँ सम्भव नहीं है। विक्रमगोपीय महाकाव्यों के समान इसके कथानक में भी अन्विष्टि नहीं है। इसमें एकलिंग कथाएँ एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। इस दृष्टि में भीमन के बाह्य रूपों का ही चित्रण प्रमुख रूप में हुआ है। इसमें पौराणिक और रोमाञ्चक—इन दोनों उन्मूलकों का समानेष्ट हुआ है। मामूली दृष्टि और विस्मयनायक ने महाकाव्य के नामक का भीरोबात और बलुतोबात होना माना है। खट के अनुसार उसे सक्रिय होना चाहिए, अर्थात् उसमें प्रमुखता, संघर्षता और उत्साह-लक्षित्य अपेक्षित है। इसमें धर्म धर्म और काम प्राप्ति का आग्रह होना चाहिए। अतः भारतीय आचार्यों के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' के नायक पृथ्वीराज में आवश्यक गुण नहीं है। उसमें मर्यादा सीमा और लोकहित की भावना नहीं है। 'पृथ्वीराज रासो' सामन्ती युग का काव्य है। सामन्ती बीरों में नैतिक मानकों के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। अतः पृथ्वीराज में सामन्ती चरितकाव्य के नामकों के सम्पूर्ण युग मिला जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में चरित्र-वैविध्य नहीं है। यह धर्म पराक्रम और वलसाह का काव्य है। अतः इसकी ऐसी उदात्तता है। परन्तु घटनाओं के निरूपण में यहाँ संतुलन नहीं है। इसमें अनुप्रास, उदात्तता उत्प्रेक्षा रूपक आदि अलंकारों ने सर्वाधिक प्रयोग हुए हैं। बीररस के प्रयोग में ओज और शृंगाररस के प्रयोग में साधुर्म युगों के प्रयोग इसकी काव्यात्मक अनुभूतना को उत्कर्ष प्रदान करते हैं।

अनेक युग की पूर्ण अभिव्यक्ति इस दृष्टि में विद्यमान है। सामन्ती युग के सामाजिक संघर्ष को स्वल्प-योजना यहाँ मिला जाती है। राष्ट्र की स्वतन्त्रता के संघर्षों के वर्णन भी अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

## पृथ्वीराज रासो की भाषा

‘पृथ्वीराज रासो’ के भाषा-स्वरूप में विविधरूपता है। यह धनेक बात कहा गया है कि यह किसी कवि विशेष या युग विशेष की कृति नहीं है। अतः इसकी भाषा में अनेक भाषा-स्तरों के रूप मिलते हैं। अपने मूल रूप में यह अवलङ्कित की रचना है। परन्तु समग्रता की दृष्टि से इसमें पश्चिमी प्रदेश में इसकी संश्लेषणीयता की संख्या की भाषा के विकसितशील स्वरूप के दलन हो जाते हैं। इसी भाषा की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है।

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के शब्द-मध्य की संयुक्त व्यञ्जन व्यक्तियों मध्य काशीन भारतीय आर्य भाषा में समोद्भूत हो जाती हैं और पूर्व की दीर्घ स्वर व्यति कन्धु हो जाती है। परन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में (पञ्जाबी और सिन्धी के अतिरिक्त) समोद्भूत व्यक्तियाँ सरल हो जाती हैं और पूर्व की सन्धु स्वर व्यति दीर्घ हो जाती है। इस दृष्टि से ‘पृथ्वीराज रासो’ के कतिपय वंशों की भाषा मध्यकाशीन भारतीय आर्य भाषा के अतिनिष्ठ है।

बुज्ज > बुम्भ हस्त > हस्

मार्य > मय्य राजि > रति<sup>१</sup>

(ख) शब्द मध्य संयुक्त व्यञ्जनों के मध्य स्वरागम की प्रक्रिया मध्यकाशीन भारतीय आर्य भाषा में ही दृष्टिगोचर होने लगी थी। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के कतिपय विभागों में इस प्रक्रिया का व्यापक प्रसार हुआ है।

उदाहरण—

शब्द > सुषब्द अस्म > अस्म्य रक्त > रक्त<sup>१</sup>

१—इस सम्बन्ध में ‘चन्दबरबार्ह और उलका काव्य’ नामक ग्रन्थ में डॉ० बिपिन बिहारी द्विवेदी ने ‘पृथ्वीराज रासो’ की भाषा पर जो विचार प्रकट किया है उस ओर मैं विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। डॉ० द्विवेदी भारतीय आर्य भाषाओं के विकास-क्रम की प्रवृत्तियों की वैज्ञानिकविधा से अनभिज्ञ थे कथते हैं। उनके ग्रन्थ के एक उद्धरण से इस कथन का समर्थन किया जा सकता है—‘वैदिक भाषा में संयुक्त वर्ण का पूर्वस्वर हस्त्र पाया जाता है यथा—रोदसीप्रा=रोदसिप्रा (श्रुत्येव १०=८८१)।’

(ग) शब्द-मध्य स्वर-लोप या स्वर-संकोचके उदाहरण भी मिलते हैं—

मगर > मघ मगिनी > मग्नी

(घ) स्वर-मध्य स्पर्श व्यक्तियों के लोप के बाव उपवृत्त स्वरों के मध्य 'य' भुक्ति के व्यापक उदाहरण उपलब्ध होते हैं—

प्रा०

नयर > मयर > मयर

सागर > साबर > सायर

लोक > लोख > लोम

(ङ) सर्वनाम—उत्तम० एक वचन स्त्री ।

मध्यम० एक० तुंहि, तुम तुम्ही ।

(च) कर्ता के लिए साविभक्ति—हू का प्रयोग ।

उदा०—भाप बियो तापसहु, अबनि करनी मुमवतिरि ।

(छ) परसर्गीय सम्बोधनी—सम=करण कहे भूत प्रभिराज सम ।

कहे कांति सम कंट ।

अधिकरण—माँक, मग्ग, मग्गार ।

उपनाम माँक अलि यए जाप नर नारी लजा गई फागुन मास मग्गार ।

सम्बन्ध-केरा केरी बौरि नख अंघ बहुमान केर भिरी दिष्टि सों दिष्टि  
बहुमान केर ।

(ज) संज्ञा वाचक —बहु=बहु गुना बल साक्षि ।

अमात्र=अमत्र और प्राकृत में भी यह नियम मिलता है पात्र=पत्र,  
रात्रि=रति साध्य=सुग्ग, इस लक्षण की अनुकूलता से निर्मित शब्द रासो  
में भी वर्तमान मिलते हैं उदा० भूम>सुग्ग कार्य>कज्ज—देखिए—  
'चन्द्रवरदाई और उनके काव्य' पृ० २८८ : वस्तुतः जिस प्रकृति की बर्णना  
यहाँ हो। त्रिवेदी ने की है वह मध्यकासीन भारतीय आर्य भाषा की  
प्रकृति है जिसके आधार पर मध्यकासीन भारतीय आर्य भाषा प्राचीन  
भारतीय आर्य भाषा से प्रकटित हुई है । डॉ० त्रिवेदी इसे भी वैदिक  
भाषा की प्रकृति मानते हैं । उनके द्वारा प्रस्तावित भाषा की विवेचना की  
आसोचना एक स्वतन्त्र विषय है ।

व्यारि=व्यारि प्रकार विरिय बन बाल । बीजगानी बीस=२४  
तीस गुम ३२ ।

(२६) क्रिया — अकार्य के लिए—ह का प्रयोग मुख्यतः भावर के  
अर्थ में—सुमहि राज प्रविराज विपन रखनीय करिय बुध ।

सुमहु प्रविराज राजमत ।

हेमचन्द्र ने दो प्रकार के अपभ्रंश-रूपों की चर्चा की है —

(क) सिष्ट रूप की अपभ्रंश भाषा इसका प्रयोग बौद्ध भाषार्थों द्वारा हुआ  
है (ख) ग्राम्य अपभ्रंश । भाषा वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि 'सन्देश  
रासक' ग्राम्य अपभ्रंश में छिपित एक कृति है । परन्तु वस्तुतः यह अवहट्ट की  
रचना है । इस सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि सन्देश रासक और 'पृष्णीराज  
रासो' एक ही काल की कृतियाँ हैं । अतः 'पृष्णीराज रासो' का आदि रूप  
अवहट्ट में संक्षिप्त हुआ है । इस धारणा की पुष्टि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संरक्षित  
'पृष्णीराज प्रबन्ध' और 'हमचन्द्र प्रबन्ध' की भाषा के स्वल्प से हो जाता है ।  
इससे 'पृष्णीराज रासो' की भाषा क आदि स्वल्प का परिचय मिल जाता है ।  
इसमें अपभ्रंश—अवहट्ट के संक्रान्ति काल की भाषा का रूप मिलता है ।

अपभ्रंश—अवहट्ट उच्चार-बहुला भाषा है । 'पृष्णीराज रासो' की भाषा में  
उच्चार-बहुला भाषा के रूप मिलते हैं—अत्रा, पृष्णीसु, वयु, अंबवमदिउ । इस  
प्रकार के प्रयोग 'पृष्णीराज रासो' की भाषा के विभिन्न स्तरों में मिलते हैं ।  
'पृष्णीराज रासो' की भाषा की निम्नतम सीमा अवस्था में उच्चार रूप का प्रयोग  
अन्य विषय की भाषा या रूप-पूर्ति हेतु भी होता है ।

'पृष्णीराज रासो' की भाषा में संज्ञा के निम्नलिखित कारकीर्ण प्रयोग  
मिलते हैं—

(१) सविभक्तिक प्रयोग—इसके अन्तर्गत संज्ञाओं के वे रूप आते हैं जिनमें  
प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की संज्ञाओं की विभक्तियों के अवशेष मिलते हैं ।  
उदा० के सिर सुमहि समग्रिहो ।

(२) सुमविभक्तिक प्रयोग

(३) कारकीय प्रयोग ।

(४) परसर्गीय प्रयोग ।

परवर्ती अपभ्रंश-व्यवहृ में केहि, रेसि तणेन होतो करेब केर, मगिम्ह, सब सरिब, माझ भादि परसर्गी का प्रयोग मिलता है । गृष्णीराम रासो में भी इन समस्त परसर्गों का प्रयोग मिलता है ।

रासोकाव्य की परम्परा सोमबीं धनद्वीं सताब्दी तक मिलती है । इसके अनन्तरत दमासकवि का 'राणा रासो' (सन १६१८ ई०) कुम्भकर्ण का 'रतन रासो' (सन १६१८-१६२४), न्यामठ खों जान कवि का 'कायम रासो' (१६२४) राव डोंगरसी का 'खमसास रासो' (सन १६२६) कीर्ति मुन्दर का 'माकन रासो' अन्य उत्तमस्वर्णीय रचनायें हैं ।

काव्यरूप और भावयोजना की दृष्टि डोसा मादरा बूहा एक महत्त्वपूर्ण कृति है । भाषा की दृष्टि से यह हिन्दी की कृति नहीं है । परन्तु हिन्दी की कतिपय आदिकालीन कृतिवों की आन्तरिकता इस रचना में अपरिणत हो जाती है । यह एक प्रेमोत्सवनाटक काव्य है और इसकी खेडिया 'बीसखदेव रासो' से मिलती है । 'बीसखदेव रासो' के समान इस कृति की कथा अति शीघ्र है । परन्तु बीसखदेव रासो की कथा में एक शृङ्खला मिलती है । 'डोसा माद रा बूहा' मुख्यतः काव्य है । इस कृति का मूल रूप लोक गीतों के रूप में रहा है । काव्य-रूप से विकसित होकर इसने साहित्यिक रूप धारण कर लिया । 'डोसा माद-रा बूहा' को एक नवीन रूप देने का प्रयास कवि कुम्भकर्ण (जैन कवि) ने दिया । दोहों के मध्य स्थान-स्थान पर चतुर्ध की योजना कर उन्होंने इसका नामकरण 'डोसा माद चतुर्ध' रखा । पश्चिमी भारत में—पंजाब, राजस्थान गुजरात में—डोसा और मासमणी की प्रचलना के इस काव्यरूप के अनेक ह्मांतर मिलने हैं । प्रेमोत्सवनाटक काव्यों की रूढ़िमें इस कृति में व्यापक रूप में प्रयुक्त है । मासमणी के लिए डोसा सिंहल की यात्रा करता है । विप्रसम्भ वर्णन और अनु वर्णन की दृष्टियों से भी यह प्रेमोत्सवनाटक काव्यों के निरूप की कृति है । इन्हीं दृष्टियों में हिन्दी के आदिकालीन साहित्य के साथ डोसा माद-रा बूहा का सम्बन्ध उत्पन्न है ।



कोरियासी'<sup>१</sup>—गुप्त को रानियों का परित्याग नहीं कर पा रहे हो, और मैं सिन्धी नगर का राजा था मैंने सात शत रानियों का परित्याग किया है। अपना विधेय परिचय देते हुए वे कहते हैं—

‘जासन्वरि मूर्पति जासन्वर वरा  
थी आदिनाथ कहिय उपदेश’<sup>२</sup>

अगर यह संकेत किया गया है कि कच्छ या कानूपा जासन्वर के सिन्धी न। इसका संकेत कानूपा के निम्नलिखित कवन में भी मिलता है—

प्राप्ति करिष जासन्वरि पाए।  
प्राप्ति न राह्य मोरि पच्छिमाभाये ॥

एक अन्य खंड में खबर की स्मृति करते हुए कन्ह ने कहा है—

वर गिरि सिद्धर उत्पुष मुनि  
उमरे बहि किम पास  
पठ सो छंदिष पम्पामनेहि  
करि वर बुरिष बास।

‘जासन्वर नामक महावेश है विरि के छिन्नर का उज्जीय कम्ल है। यह घासकों की चरम उपलब्धि है। जहाँ खबर पाद ने बास किया था। इस खंड में ‘जासन्वर’ को प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया है। ‘बौद्ध याग और दोहा’ तथा ‘वर्षावर्षविनिश्चय’ के अनुसार कानूपा वापसिक थे। अतः इस परम्परा के

१—In India however instead of being a purely medical science it developed theological speculations and already in fairly old medical texts we find references to the view that Siddhi or perfection can be attained by making the body immutale with the help of Rasa—Obscure Religious cult Pages 251

२—मे हस्तिनापुर के पुस्तकाली राजा ब्रह्म की बजाय है उत्पन्न हुए थे अतः इनका नाम ज्वालेन्नाथ पड़ा। इनका सम्बन्ध जासन्वर वीठ से रहा है। सिन्धी परम्परा के अनुसार मे ब्राह्मण थे।

अनुसार वास्तव्य का भी कापालिक होना निश्चित होता है । किन्तु वास्तविकता क्या है इस विषय में स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में हम निष्कर्ष देने में असमर्थ हैं ।

मत्स्येन्द्र नाभ को नेपाल में अवलोकितेश्वर बुद्ध का अवतार माना गया है । तन्त्रात्मक के अनुसार इनका नाम मञ्जुश्या था । ये 'कौलज्ञान निर्णय' नामक ग्रन्थ के रचयिता थे । कौलज्ञान निर्णय में इनके लिए मञ्जुश्यानाथ पाद मञ्जुश्या-पाद मीन पाद तथा मत्स्येन्द्र पाद आदि नामों का उल्लेख मिलता है । अनुश्रुतियों के अनुसार ये मछली मारने वाली जाति के थे । यही कारण है कि इन्हें 'मञ्जुवन' भी कहा गया है । इस सम्बन्ध में कतिपय लोक कथाएँ प्रचलित हैं । एक कथा के अनुसार कार्तिकेय ने शास्त्र पुराकर समुद्र में डाल दिया । उसे एक मत्स्य खा गया । शिव ने मत्स्य का रूप धारण कर समुद्र में प्रवेश किया और इस विधि से उन्होंने शास्त्र का उद्धार किया । एक अन्य परम्परा में इस कथा का रूपान्तर मिलता है । इसके अनुसार क्षीरोद समुद्र में शिव अपनी शक्ति से तम साधना पर जातीयता कर रहे थे । मत्स्येन्द्र नाभ ने मत्स्य के रूप में इस ज्ञान को गोप्य होकर सुना । इस प्रकार एक ही कथा के भिन्न-भिन्न रूपान्तर मिलते हैं ।

यहाँ स्पष्ट रूपों में यह कहा जा सकता है कि इन लोक कथाओं से आलोच्य सम्प्रदाय के स्वल्प का स्वीकृति नहीं हो पाता है । वास्तविकता यह समझती है कि शिव और मत्स्य जिस कथा के पात्र हैं वह किसी विविध सिद्धान्त की शक्तिशाली को आत्मसात् रूप है । दर्शन को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तावित करने की प्रथा इस देश की एक विविध प्रणाली है । लोक जीवन में पहुँचकर यह प्रस्तावना जब विशेष प्रसार पा जाती है तो उसका दर्शन तब विविध हो जाता है और अनिश्चितता स्वल्प ही प्रथम पा जाता है । मेरी अपनी धारणा है कि मत्स्येन्द्रनाथ से सम्बन्धित समस्त लोक प्रचलित कथाओं की रचना में इस प्रश्रुति ने कार्य किया है । मैं 'कौलज्ञान निर्णय' के आधार पर ही इस निर्णय पर पहुँचने के लिए साक्षात् होता हूँ । 'कौलज्ञान निर्णय' में यह स्पष्ट उल्लेख

१—महा महोपाध्याय श्री हर प्रसाद शास्त्री इसे नहीं मानागी की रचना मानते हैं । प्रबोध चन्द्र शास्त्री इसे प्यारहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं ।

मिलता है कि सिख सिख रूप में भूतक पर अवतीर्ण हुए। पार्वती से एक बातों में वे कहते हैं —

महं छो भीमरो देखि कै बसतव मया कृत  
आहुम्य तु तदा मत्स्यं सक्तिबाण समीकृत  
मत्स्योपरन्तु ततस्तोत्प एहीतद्व कुकावमं  
बनति विविता जोके पसवो जान बखिता

इसी सन्दर्भ में मत्स्यस्य में सिख द्वारा 'शास्त्र उद्धार' की चर्चा मिलती है। यहीं पर यह संक्षिप्त मिलता है कि कैबल होकर सिख ने कौल का उद्धार किया। अमिताभ पुत्र ने 'रागास्वाम्यु जाकम' का उल्लेख करते हुए लिखा है—

रागास्वमं प्रणि विभाव कीर्तम् यो बाळ मायाज सिदान् वृत्तिम् ।

कळोम्मिमतम् बाह्यपणे चकार स्थाने स मच्छन् विभु प्रसन्न

वस्तु स्थिति यह है कि 'कौलहान' में मत्स्य और मत्स्येन्द्र मटीक रूप में ही प्रमुख हैं। अमिताभमूक्त अर्ध पर्वती काळ में ही ग्रहण किया गया।

नाथ-पंथ का इतिहास और इसके प्रवर्तकों तथा आचार्यों की बीमनी और उनकी साधना-विद्या का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। इस साधना-मार्ग की रूप योजना का परिचय लोक अनुभूतियों से ही मिलता है। मत्स्येन्द्र नाथ नाथ पंथ के प्रथम लौकिक आचार्य माने गए हैं। इनको मीननाथ भी कहा गया है। परन्तु 'हठयोग प्रदीपिका' में मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ का उल्लेख दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के रूप में हुआ है। 'योग' 'सम्प्रदायविष्णुक्ति' नामक ग्रन्थ में मीननाथ को मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र कहा गया है। विभिन्न सन्दर्भों से यह ज्ञात होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ का व्यक्तित्व अति प्रभावशाली था और नाथपंथ के संगठन में इनका विशेष योगदान रहा है। सिक्खी अनुभूतियों में भी मत्स्येन्द्र नाथ से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं। यहाँ भी मत्स्येन्द्र नाथ के समानान्तर मीन नाथ का उल्लेख मिलता है। परन्तु यहाँ मीन नाथ को मत्स्येन्द्रनाथ का पिता कहा गया है। सिख साधना-मार्ग के आदि सिख सूरिपा का उल्लेख किया जा चुका है। सूरिपा और मत्स्येन्द्र नाथ को एक ही व्यक्ति के रूप में भी कठिपय पम्पराओं में ग्रहण किया गया है। 'मत्स्य' और 'सूरि' को पर्यायवाची शब्द मान कर इस प्रकार का निर्णय लिया गया है। इस प्रकार 'सुह' 'रोहित' या 'ओहित'

से विकसित पक्ष माना गया है। तिब्बती परम्परा में सुई के लिए मत्स्यान्नाद (मछली की अँवड़ी लाने वाला)। परन्तु इससे वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। मत्स्येन्द्र के लिए 'मच्छन्तरनाभ' का भी प्रयोग मिलता है। मत्स्येन्द्र नाम जिसके चार पुस्तकों बहुसूत्रीतंत्र कुकानन्द और जातकारिका में इनके लिए 'मीनस्य', मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येन्द्र और मच्छिन्द्रपाद आदि नामों का उल्लेख मिलता है। 'कोष्ठ ज्ञान निर्णय' में इनके लिए मच्छन्तरपाद मच्छेन्द्रपाद मत्स्येन्द्र पाद और मीनपाद आदि नामों का प्रयोग मिलता है। हर्षसाह साध्वी की यह धारणा थी कि ये कृतियाँ नहीं छताव्दी की हैं। परन्तु प्रबोधचन्द्र बागधी का निर्णय है कि ये कृतियाँ व्याख्या छताव्दी के मध्य भाग की हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मत्स्येन्द्र नाम का समय नहीं छताव्दी से लेकर व्याख्या छताव्दी के मध्य पड़ता है।

वास्तविकता यह है कि मीननाभ और मत्स्येन्द्र नाम एक ही व्यक्ति हैं। तंत्रालोक के भाष्य से इस विश्वास की पुष्टि होती है। कायक्य में ब्रह्मपूज नहीं को लोहित भी कहते हैं और उस ग्रन्थ को लोहित ग्रंथ भी कहते हैं। अतः इस देश के वासी होने के कारण मत्स्येन्द्र को सुरेपाद या सुरसा कहा गया होगा<sup>१</sup>। तिब्बती अनुसूचियों में यह कथा भी प्रचलित है कि कौलागम के प्रचार हेतु मत्स्य के उदर से स्वयं शिव ने कौर्त्त के रूप में अवतार लिया था। मीन नाम को सहज सिद्धि का प्रथम आचार्य भी माना गया है। सहज सिद्धि से ही नाम पंच का सूत्रपाठ होता है। सुईपा बख्तानी सिद्ध थे परन्तु मीन या मत्स्येन्द्र बख्तानी साबक नहीं थे। अतः मत्स्येन्द्र और सुईपा दो भिन्न साधना धाराओं के आचार्य थे। परन्तु तारानाथ ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि मत्स्येन्द्र 'कन्द बीप' के निवासी थे और य 'कोष्ठ मार्ग' के अनुयायी थे। तागनाथ ने इस और स्पष्ट धारों में संकेत किया है कि सुईपा ने मोहिनी पद्धति का प्रारम्भ किया था। अतः इस संकेत के आधार पर मत्स्येन्द्र तथा सुई एक ही व्यक्ति लगते हैं। परन्तु सुईपा और मत्स्येन्द्र के नाम से प्रस्तावित रचनाओं में भिन्न भिन्न साधना विधा का उल्लेख मिलता है। सुईपा प्रवृत्ति मार्गी य। मत्स्येन्द्र

१—रोहिण>लोहित>साहिज>सीइज>सुई।

२—भाषांश - बस्याणी मञ्जिर - पृ० १०

निवृत्ति मार्गी थे। सिद्धों ने कुर्याप को 'मत्स्येन्द्रावतार' कहा है। बहुत सम्भव है इस कारण ही परवर्ती काल में 'मत्स्येन्द्र' और 'सुर्य' को एक ही व्यक्ति के रूप में ग्रहण करने की भावना विकसित हुई हो।

'कौत्साजान निर्णय' की भूमिका में डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने यह संस्थापना की है कि मत्स्येन्द्र नाम और 'सुर्याप' एक ही व्यक्ति थे। अपने निर्णय के लिए उन्होंने निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया है—

[ क ] तिब्बती परम्परा के अनुसार कुर्याप आदि सिद्ध थे। भारतीय परम्परा के अनुसार मत्स्येन्द्र आदि सिद्ध थे।

[ ख ] कुर्याप का सम्बन्ध सप्तरीपा से था। 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध भी सप्तरीपा से था 'श्री भास्तिनाथ मत्स्येन्द्र सावरानन्द मेरवा'।

[ ग ] कुर्याप और मत्स्येन्द्र दोनों ही कीर्तन थे। कुर्याप का अर्थ है छोड़ित रोहित या मत्स्यराज और यह मत्स्येन्द्र का पर्यायवाची है।

[ घ ] तिब्बती में कुर्याप का अर्थ होता है *Naktopa*—अर्थात् मत्स्योपर भारतीय मत के अनुसार मत्स्येन्द्र का जन्म मत्स्य के सगर से हुआ था 'कौत्साजान निर्णय' में भी इसका उल्लेख मिलता है।

राजमोहन नाथ ने इस समस्या का समाधान एक अन्य रूप से किया है। इनके अनुसार मत्स्येन्द्र नाम दो हुए हैं। एक मत्स्येन्द्र नाम हठयोग और नाम सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। दूसरे थे बौद्ध सहजिया तान्त्रिक धर्म के प्रवर्तक जिन्हें कुर्याप भी कहा गया है। डॉ० कल्याणी मल्लिक ने इस निष्कर्ष की ओर संकेत करते हुए कहा है 'उद्दिष्टान के राज कर्मचारी सोमा बौद्धधर्म में दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् कुर्याप के नाम से इसलिए विख्यात हुए कि वे छोड़ित प्रवेश के थे। कुर्याप सहज धर्म का प्रचार करते और बोद्धा में रचना करते। वे जब मत्स्येन्द्रनाथ ने कौत्साजान निर्णय की रचना की परन्तु नाम सम्प्रदाय के इन प्रवर्तक मत्स्येन्द्र नाम समुद्र-बासी थे और परवर्ती काल में मारी के पोथ में बाधित हुए। नाथधर्म के प्रवर्तक मत्स्येन्द्र नाम और सहज धर्म के प्रचारक कुर्याप-मत्स्येन्द्र नाम को राजनाथ महाधर्म ने इस रूप में प्रस्तुत किया है।

( क ) मत्स्येन्द्र ( मीननाथ )—नाथधर्म के आदि गुरु।

( क ) मत्स्येन्द्र नाथ ( कुर्यान् )—दोहा और कौत्सज्ञान रत्नमित्रा नव  
मत्स्येन्द्र नाथ ।<sup>१</sup>

मत्स्येन्द्र नाथ से सम्बन्धित अनेक कथायें प्रचलित हैं । इनमें कतिपय भली  
झिंक और अतिप्राकृतिक कहानियों भी हैं । नैपाल में प्रचलित एक कहानी के  
अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शरीर की रक्षा का भार गोरक्षनाथ पर बाँटकर  
एक मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया और वे उसकी रानी के माया-भास में  
बाबूद हुए । गोरक्षनाथ ने उनके अजेय शरीर में प्राण संचार कर उनकी रक्षा  
की । इसी प्रकार की एक कथा योगी सम्प्रदाय विष्णुति में मिलती है । गिरनार  
पर्वत पर महासिद्ध के रूप में निवास करते हुए मत्स्येन्द्र सिंहल द्वीप की रानी के  
माया-भास में बद्ध हुए और इनसे परशुराम और भीतराम नामक पुत्र उत्पन्न  
हुए इस कथा में गोरक्ष द्वारा ही मत्स्येन्द्र का उद्धार होता है । करलीवन में  
मत्स्येन्द्र पतन की कथा तो अति प्रसिद्ध इस कथा में भी गोरक्ष द्वारा ही मत्स्येन्द्र  
नाथ का उद्धार होता है । नैपाली अनुश्रुति के अनुसार मत्स्येन्द्र नैपाल के रक्षक  
थे । गोरक्षनाथ से पंजाब से होकर नैपाल में आए थे । पशुपति नाथ के मन्दिर  
के निकट निवास कर उन्होंने शैव धर्म का प्रचार किया । विष्णुकी अनुश्रुति में

गोरक्षनाथ बौद्ध इन्द्र चार्किष्ठ थे । शैवधर्म इन्होंने बाद को ग्रहण किया ।  
कौत्समान निगम में मत्स्येन्द्र नाथ को मृङ्गीपाद भी कहा गया है । गोरक्षनाथ  
का उत्प्रेत यहाँ बौद्ध रूप में हुआ है । आपने धर्म का परिवर्तन कर व बौद्ध धर्म  
में दीक्षित हुए थे । यही कारण है कि नैपाल के गोरक्षनाथ अप्रसन्न थे । परन्तु  
मत्स्येन्द्रनाथ की उपासना व कौत्स के रूप में करते रहे । बौद्ध ग्रन्थों में भीतराम  
के पदों का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार मत्स्येन्द्र बौद्ध सम्प्रदाय का आचार्य ही  
छाते हैं ।

‘कौत्सज्ञान निर्णय’ मत्स्येन्द्रनाथ चन्द्ररीप के निवासी थे । यह स्थान काम  
रूप के निकट है । इस ग्रन्थ में मत्स्येन्द्रनाथ के पतन की कहानी का उल्लेख नहीं  
है । यहाँ इन्हें कौत्स योगी कहा गया है । एक अन्य स्थान के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ  
का जन्म-स्थान बँस बैरा था व वाङ्गाल था और इनका नाम विष्णु धर्मा

था। 'गोरख पुराण' में मत्स्येन्द्र नाथ का उल्लेख मिलता है। स्कन्द पुराण की एक कथा के अनुसार मत्स्येन्द्र का जन्म अशुभ काल में हुआ था, फलस्वरूप इनके माता पिता ने इनको समुद्र में डाल दिया। मत्स्य के भाष्यम से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया और शिव ने उनका उद्धार किया। सत्रहवीं शताब्दी के एक विद्वान् जेम्स के अनुसार योगी खेच मत्स्येन्द्र नाथ सक्ति के उपासक थे बौद्ध उन्हें लोकेस्वर कहते थे और उनका सम्मान वे अवलोकितेश्वर के रूप में करते थे। लोकेस्वर या लोकनाथ इनके अन्य नाम थे। वे परम तपस्वी और इन्द्र शास्त्रिक थे। इनका मुख्य मन्त्र था 'ओं मणि पद्मे हुम्'। मंत्र की दृष्टि से वे सिद्धों की परम्परा में आते हैं।

नाथ-मंत्र पर विचार करते हुए विद्वानों ने इन समस्त कहानियों का उल्लेख किया है। परन्तु इनके भाष्यम से क्या निष्कर्ष निकलता है इस ओर किसी की भी दृष्टि नहीं गयी है। ये कहानियाँ एक दूसरे में मिश्रित हैं। इनसे किसी स्पष्ट निष्कर्ष की उपलब्धि सम्भव नहीं है। परन्तु इन कहानियों में कतिपय सांकेतिक अंश भी विद्यमान हैं। जिनसे निम्नलिखित निष्कर्षों के प्रति मैं आग्रहशील होता हूँ।

ऊपर वर्णित विभिन्न कहानियों में यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि मत्स्येन्द्र नाथ बौद्ध-साधक थे। गोरखनाथ भी मूल रूप में बौद्ध थे। परन्तु काल में उन्होंने नाथ-मंत्र में दीक्षा ली। उनके द्वारा मत्स्येन्द्र के उद्धार की कथा भी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पर मिलती है। इसका संकेत ग्रहण करते हुए बाबाबाई हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है 'मत्स्येन्द्रनाथ कभी योग मार्ग के प्रवर्तक थे और फिर संन्यास एक ऐसे साधना में सम्मिलित हो गए जिसमें स्थियों के साथ अनाथ संन्यास मुख्य बात थी—सम्भवतः यह काममार्गी साधना थी।' परन्तु इस निर्णय को एक अन्य रूप में ग्रहण करने का प्रलोभन बाधित होता है। धामधियों की समझता की दृष्टि से दो निष्कर्ष की सम्भावना बाधित होती है। नाथ-मंत्र के मत्स्येन्द्र और गोरख बौद्ध-मंत्र के मत्स्येन्द्र और गोरख से भिन्न थे। इस सम्बन्ध में राज मोहन नाथ के विचारों का उल्लेख किया जा चुका है। गोरखनाथ का उल्लेख करते हुए उन्होंने दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की कल्पना इस रूप में की है—

( क ) गोरखनाथ—नाथ धर्मी काया साधना के नेता ।

( ख ) नव गोरखनाथ—रमण बज्जु—सहजिया धर्म के प्रचारक—इनका सम्बन्ध गोपीचन्द और मयनाबती से था ।<sup>१</sup> परन्तु इन समस्याओं के आधार पर मैं एक अन्य रूप में सोचने के लिए बाध्यपित हो रहा हूँ—मत्स्येन्द्र और गोरख दोनों ही अपने मूल रूप में सहज सम्प्रदाय के थे । सम्भवतः मत्स्येन्द्र गोरख के मुख थे । शैव-धर्म में बीजित हो जाने के परभाव सम्भवतः गोरख की अनुप्रेरणा से मत्स्येन्द्र शैव या नाथ सम्प्रदाय में आए । गोरखनाथ द्वारा मत्स्येन्द्र के उद्धार की कथा बहुत सम्भवतः गोरखनाथ की अनुप्रेरणा में मत्स्येन्द्र के नाथ सम्प्रदाय के आचमन की कथा हो ?

नाथ सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव काल

नाथ मार्ग के प्रवर्तकों के समय के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का कोई निश्चित साधन हमारे पास नहीं है । ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टता में इस संबंध में हम कोई निश्चित निर्णय नहीं ले सकते । परन्तु विविध कहानियों और जन श्रुतियों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मत्स्येन्द्र और गोरख का समय नवीं शताब्दी का मध्य भाग हो सकता है । गोरखनाथ और नाथ-धर्म के अन्य साधकों की हिन्दी या लोक भाषा में जो रचनाएँ उपलब्ध हैं वे सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की हैं इनमें भाषा के विविध-स्तरों का मिश्रण मिलता है । इनके विषय में आगे विचार किया गया है । यहाँ यह संकेत कर देना ही पर्याप्त होगा कि इन रचनाओं द्वारा नाथ मार्ग के प्रवर्तकों का समय निर्धारण सम्भव नहीं है । बालनन्दनाथ गोरखनाथ और कृष्णपाद समसामयिक थे । सिद्ध-साहित्य के अन्तर्गत कान्हु (कृष्णपाद) पर विचार करते हुए हमने उनका स० ११६६ माना है । अब मत्स्येन्द्र और गोरख यदि इनके समकालीन थे तो इनका समय भी यही मानना होगा । परन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इनका समय नवीं शताब्दी का मध्य भाग मानते हैं नाथ मार्ग के आदि प्रवर्तकों का समय नवीं शताब्दी का मध्य भाग ही उचित ज्ञान पड़ता है । इस मार्ग में इसके पूर्ववर्ती सिद्ध भी बाद में बनकर अन्तर्भूत हुए हैं और इसलिए गोरखनाथ के सम्बन्ध में ऐसी हर्षना



इसकामाये बस पड़ी हैं जिनको ऐतिहासिक तथ्य मान देने पर सिधि-सम्बन्धी गलती खड़ा हो जाता है ।<sup>१</sup>

‘गोरक्षनाथ की घोड़ी’ में गोरक्ष और कबीर के मध्य बाद विवाद का उल्लेख मिलता है । यहाँ गोरक्षनाथ ने अपने को मत्स्येन्द्र का पुत्र और आदिनाथ का पीय कहा है ।<sup>२</sup> कबीर का समय सोमहवीं शताब्दी है । मत्स्य यदि गोरक्ष को कबीर का समसामयिक माना जाय तो मत्स्येन्द्र और गोरक्ष का समय सोमहवीं शताब्दी है । परन्तु यह निश्चररक साम्य नहीं है । क्योंकि कबीर के नाम से प्रचलित एक पद में यह भी संकेत मिलता है कि कबीर उनसे बनेक वर्षों पूर्व हो चुके थे । गोरक्ष के सिष्य भूगा सर्पो के बेबता माने गये हैं । राजस्थान में यह प्रसिद्धि है कि गजबंदी के साथ युद्ध करने में इनकी मृत्यु हुई थी । जन्मप्रति के अनुसार ये राजबंदी थे और जहरपीर नाम से विख्यात थे । इनकी मृत्यु फीरोजशाह द्वारा हुई । इन दोनों कथाओं के अनुसार गोरक्ष चौदहवीं शताब्दी में हुए थे । बाबा फरीद के साथ गोरक्षनाथ का नाम समुक्त किया जाता है । फरीद का समय सन् १२४४ ई० है । ज्ञानदेवरचित ज्ञानेश्वरी में नाथ योगियों का उल्लेख मिलता है । इनके अनुसार मत्स्येन्द्र और गोरक्ष का समय सन् १२४४-१२६ के मध्य पड़ता है । गोपीचन्द्र गीत भर्तृहरि पियळा कहानी ज्ञानेश्वरी गुह-परम्परा के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ का समय द्वादश शताब्दी है । ऐसा कहा जाता है कि नेपाल के राजा मरेन्द्रदेव के समय गोरक्षनाथ नेपाल में आए थे । इस धारणा के अनुसार गोरक्षनाथ सातवीं-आठवीं शताब्दी में हुए थे । वस्तु स्थिति यह है कि नाथ-सम्प्रदाय का जन्मभूमि बौद्ध धर्म के पतन के

१—नाथ सम्प्रदाय—पृ ५४ ।

२—इस प्रकार की भावना गोरक्षनाथी में संकलित कसिपय पदों में भी मिलती है—

आदिनाथ माती महिन्द्रनाथ पुता पट पदी मनीला गोरक्ष बरपूता

पृ० ८८ १

रस कुस बहिर्गईसा रहि गइ होई, मगस महिन्द्रनाथ पुता जोग न होई

पृ० ८९

साध प्रारम्भ होता है। बौद्ध धर्म का पतन मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व ही आरम्भ हो जाता है। यह कम बारहवीं शताब्दी तक चलता है। अठ गणप का आदिर्माण और उत्थान इसी काल-अवधि में होता है। मत्स्येन्द्र और गोरक्षनाथ इसी अवधि में हुए जाते हैं। डॉ० मोहन सिंह गोरक्षनाथ को गौरी शताब्दी का मानते हैं। Francis Young Husband के अनुसार जिस समय उत्तर भारत में हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान ये समस्त धर्म प्रधानता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे उस स्रष्टन काल में ही मत्स्येन्द्र और गोरक्षनाथ का प्रादुर्भाव हुआ था। इसका समय गौरी-दशवीं शताब्दी का मध्य है। Nirgun School of Hindu Poetry में डॉ० पीताम्बर दत्त बकुमाल की यह मान्यता है कि गोरक्षनाथ दशवीं शताब्दी में अवतरित हुए थे। इन्होंने हिन्दु-मुसलमान में एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। मछारकर के निष्कर्षों के अनुसार मत्स्येन्द्र नाम बारहवीं शताब्दी के थे। डॉ० प्रबोधचन्द्र दासजी ने 'रस रत्न समुच्चय' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इसके रचयिता ने अपने को बागुमट्ट कहा है। और इनके अनुसार इस ग्रन्थ का रचनाकाल छठवीं शताब्दी है। इस ग्रन्थ में गोरक्षनाथ और नित्यनाथ का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार गोरक्ष नाम का समय छठवीं शताब्दी है। परन्तु आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने डॉ० बागजी की मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है कि 'रस रत्न समुच्चय बागुमट्ट की रचना नहीं है। यह चौदहवीं शताब्दी का ग्रन्थ है।

इन प्रकार नाम-सम्प्रदाय के प्रादुर्भाव काल और उसके प्रवर्धनों के समय का उचित निर्धारण सम्भव नहीं हो सका है। मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ आदि का स्वका निरन्वरी कहानियों पर ही अधिक अवलम्बित है।

#### नाथपन्थ के साधकों की परम्परा

नाथपन्थ के साधकों की सूची अनेक समान्तरों के साथ उपलब्ध है।

पूर्वपतीकाष्ठ (५) आदिनाथ।

पार्वती ( मत्स्य रूप में मत्स्येन्द्रनाथ का अवतार )।

गोरक्षनाथ।

शैवीनाथ।

नित्यनाथ।

ज्ञानेश्वर ।

सावित्रशरण्य ।

परवतीकाष्ठ (३) निरुद्धमर—कृष्णचैतन्य ।

राजन चैतन्य ।

देवच चैतन्य ।

बाबाजी चैतन्य ।

तुकाराम ।

बहिना बाई ।

‘ज्ञानेश्वरी’ के अनुसार इस परम्परा का स्वरूप इस प्रकार है—

छंकर ।

|

पार्वती—मत्स्येश्वरनाथ का शोपनप्रवेश । मत्स्येश्वरनाथ के साथ

|

सप्तशृ गीर्वाण पर विक्रमीय चौरंगी का साक्षात्कार ।

|

मोरनाथ ।

|

मेनीनाथ ।

|

निपुत्तिनाथ ।

|

बानदेव ।

नाथपरम्परा बारह पंचों में विभक्त है । इसे बारहपंच कहते हैं । ऐसी धारणा है कि विष्णु बाह्य नाथपंथियों को मोरनाथ ने बारह पंचों में विभक्त किया ।

१ सतनामी पंच या सतनाथी पंच ( भुवनेश्वर ) २ धर्मनाथी पंच ( कृष्ण प्रवेश ) ३ रामनाथी पंच—( प्रवर्तक-सन्तोषनाथ-गोरखपुर ) ४ कलिकानी ( गंगा सागर ) ५ मत्स्येश्वरी या छदमनाथी ( गोरखा टीला ), ६ बेराथी ( प्रवर्तक भद्रहरि-राताईवा ) ७ माननाथी ( पावनपर्वण—बोधपुर ) ८ बाईपंच ( प्रचारिका विमलादेवी गोरखाकुई स्थान ) ९ गंगानाथ पंच ( बप्पार-भुस्सासपुर ) १० बप्पनाथ पंच ( जम्वाल ), ११ पावनपंच ( प्रवर्तक चौरंगी नाथ हम्प्रसब ), १२ रामनाथ या माननाथपंच । एक अन्य

परम्परा के अनुसार ये नाम इस प्रकार हैं—सतनाथ रामनाथ, धरमनाथ  
 कर्ममनाथ हरियानाथ गंगानाथ बैराग्य, राबल या नामनाथ आरुंधरिया  
 आर्यभट्ट कपिलानी और मजनाथ ।<sup>१</sup> यह सूची किसी निश्चित प्रमाण पर आधारित  
 नहीं है । अनुष्ठानों की अनुमोदना ही इसमें प्रधान है । परन्तु इसमें एक  
 संकेत मिलता है । गोरखनाथ एक ऐसे व्यक्तित्व के प्रतिनिधि हैं जिसने अपने  
 युग में प्रचलित समस्त धार्मिकीय साधना-आराधनों का विरोध किया । इनके  
 द्वारा एक स्वस्थ साधना-पद्धति का प्रस्तावन हुआ । इन्होंने योगमार्ग और शैव  
 मार्ग का समन्वय किया और सिद्धों का प्रतिरोध किया । गोरख ने अपनी  
 साधना में शैव बौद्ध ब्रह्मण्य कापस्तिक कौल आदि मतों का समन्वय  
 किया ।

मत्स्येन्द्रनाथ : जिसके पृष्ठों में मत्स्येन्द्रनाथ की बीबनी और उसके  
 व्यक्तित्व की चर्चा हो चुकी है । इसका सम्बन्ध 'योगिनी कौल मार्ग' से था ।  
 ये ब्रह्मैत साधिक मार्ग के संस्थापक थे । 'तंत्राक्षर' में मत्स्येन्द्रनाथ को नमस्कार  
 किया गया है : 'मीन चेतन या 'गोरखविमर्श' में कवली बन से मत्स्येन्द्रनाथ  
 के उद्धार की कथा से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि वे प्रवृत्तिधर्मी थे ।  
 गोरखनाथ उनको निवृत्तिमार्ग की ओर आकर्षित करते हैं ।

मीननाथ चलि गेल कवलिर बैध

कराछै बैधे ब्रूषति अब प्रजा

स्त्री राजा हए से बे स्त्री हए राजा ।

१—यह प्रसिद्धि है कि शिव द्वारा बारह पर्वों का प्रवर्तन हुआ और गोरख द्वारा  
 भी बारह पर्वों का प्रवर्तन हुआ इन पर्वों में संघर्ष हुआ । इसके निम्नान्तेष्ट  
 इन्होंने शिव के १ पर्वों और अपने १ पर्वों के संयोग से गौरीय बारहपंच  
 की स्थापना की जो इस प्रकार है—शिव-सम्प्रदाय —भुव ( कण्ठ ) के  
 कठनाथ वेदावर और रोहक के पादस्थान अफगाणिस्तान के गाबल,  
 पंच या पंक मारवाड़ केवल गोपास या राम के सन्तोफ्नाथ तथा बास  
 गोपास नाथ । गोरख सम्प्रदाय —हैठगाय, आई पंच के जोसीनाथ चाँद  
 नाथ कपिलानी मारवाड़ का बैराग्य पंच और रतननाथी जयपुर के पादनाथ  
 बड़नाथ महावीर । द्वितीय साहित्य त्रितीय भाग ७६ ।

कृष्णपाद (गोपीधन्व भीम के कनूपा) तथा भीमनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) रचित  
 चर्या पर उपलब्ध हैं। अतः यहाँ तक एक स्पष्ट ऐतिहासिक परम्परा मिलती  
 है। इसके आगे की परम्परा स्पष्ट नहीं हो पाती है। बाळम्हरीपा (हाकिपा)  
 और गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ तथा हाकिपा की रचनायें  
 मामूली अप्रसन्न-अवहट्ट में तो उपलब्ध हैं, परन्तु गोरखनाथ की रचनायें मामूली  
 अप्रसन्न-अवहट्ट में उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी भी धारणा है कि हाकिपाबाब और  
 माछीपाब गोरख के शिष्य थे। ये भीड़ थे। गोरख की प्रेरणा से वे नाथसम्प्रदाय में  
 दीक्षित हुए। विम्बरी साहित्य में यह वृत्तांत मिलता है। यहाँ माछीपाब को  
 हाकिपा कहा गया है। प्रचलित कहानियों के आधार पर डॉ० सुकुमार सेन का यह  
 निष्कर्ष है कि मैलावटी क्षेत्र तांत्रिक की और हाकिपा की साधना-संज्ञिकी की।  
 मयनावटी का उत्कल गोरखनाथ की शिष्या के रूप में हुआ है। इस रूप में निष्कर्ष  
 यह निकलता है कि मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में ताममार्गी  
 साधना से रहा है। परवर्ती काल में गोरखनाथ की प्रेरणा से वे नाथसम्प्रदाय की  
 ओर आकर्षित हुए। ये कामरूप में साधना करते थे। 'कौत्सज्ञान निर्बन्ध' 'अकुरु  
 भीर तत्र' 'कुलानन्द' और 'ब्रह्म कारिका' बादि इनकी रचनायें हैं। विन्न  
 विन्न कहानियों और यत्न-मतान्तरों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि तांत्रिक  
 ब्रह्माचारी साधनाओं को लेकर मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ (बुद्ध शिष्य)  
 में मतभेद हो गया था। 'गोरख विजय' और 'भीम चेतन' नामक कृतियों  
 में वर्णित मत्स्येन्द्र के पतन और उनके उद्धार की कथा में इस ओर स्पष्ट संकेत  
 मिलता है। 'गोरखबानी' में संकलित कतिपय रचनाओं से भी यही ध्वनि  
 निकलती है। उदाहरण—

सुनौ हो मध्विन्त्र गोरख बोसै वषम पवन कहै हेका ।  
 निरति करी नै नीका गुनिय्यो तुम्हें सतगुर मैं बेला ॥ टेक ॥  
 कामनी बहता ओग न होई रीय भुप परसै केवा ।  
 यहाँ उपरै तहाँ छिरि जावै प्यंतामनि चित एवा ॥

गुह्यी ऐसा करम न कीजे ताबे जमी महारस छीजे एके॥  
 दिवसे वाषणि मम मोहै राति सरोवर सोये ।  
 बाणि बूझि रे मूरिय सोया धरि धरि बाणी पोये ।  
 नदी तीरे बिरया नारी सग पुरया भक्ष्य जीवन की आसा  
 मनबे अपन मेर पिसि पड़ई ताबे कंप बिनासा ।

गोरखबाणी पृ० ११७ ।

इन अंशों से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ को बाममार्गीय विचारधारा से मुक्त करने में प्रयत्नशील रहे हैं। 'गोरख बाणी' में 'मछीन्द्र गोरख बोध' के अन्तर्गत 'मछीन्द्र' और 'गोरख' की वास्तविक संकल्पित है। गोरख नाथ अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ से शिक्षा प्राप्त करते हैं और मत्स्येन्द्रनाथ उनकी शिक्षाओं का उत्तर देते हैं। उदाहरण के लिए कवियंत्र अंश यहाँ दिए जा रहे हैं—

गोरख—स्वामी कौन धरि जन्म कौन धरि मूर कौन धरि काल बनावै तूर ।

कौन धरि पंच तत्व समि रहै । सतगुरु होइ तु बुझ्या कहै ।

मछीन्द्र—अबबू मनिबिरिबन्ध पवन बर तूर ।

सुनि धरि काल बनावै तूर ।

ग्यान धरि पंच तत्व समि रहै ।

सतगुरु होइ तु बुझ्या कहै ।

गोरखबाणी पृ० १८८ ।

'मछीन्द्र गोरख बोध' में जो अंश संकल्पित हैं वे अति आधुनिक हैं। इन अंशों की भाषा अठारहवीं शताब्दी की है। परमार्थवाद में मत्स्येन्द्र और गोरख के नाम से वे संकल्पित की गयी हैं।

गोरखनाथ गोरखनाथ मध्य-युग के महत्त्वपूर्ण धार्मिक नेता के रूप में प्रसिद्ध हैं। और अनेक सग्रहों से यह स्पष्ट होता है कि अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रशिक्षित बौद्धमार्ग का उन्होंने परिवर्तन किया। 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार गोरखनाथ हठयोग के मातृमयी आचार्य थे। उनके उपदेशों में योगतन्त्र तथा योग तन्त्र इन दोनों का सामग्र्यमय मिश्रण है। प्रत्यभिज्ञावर्तन कायासाधना और योग परम्परा के मार्गमय वे इन्होंने नाथसम्प्रदाय का गठन किया। गोरखनाथ के

प्रति गोरक्षनाथ विशेष आग्रहणीय थे। प्राचीन रसेस्वर सम्प्रदाय से भी वे प्रभावित थे। हिन्दी में गोरक्षनाथ के नाम से जो साहित्य मिलता है उसमें बनेक-कल्पता है और परवर्ती काल में विभिन्न साधना प्रणालियों का योग होता रहा है। विद्य सम्प्रदाय की तान्त्रिक विचारधाराओं के अतिरिक्त हिन्दू साधना के निश्चित तत्वों का समावेश भी इनकी रचनाओं में मिलता है। गोरक्षनाथ ने संस्कृत में भी रचनायें की हैं। इन रचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि गोरक्षनाथ द्वारा प्रस्तावित नाथ सम्प्रदाय मुख्यतः लैब-वर्शन पर विशेष रूप से आधारित रहा है। 'गोरक्षबानी' की भूमिका में डा० पीताम्बरदास बड़म्हास ने गोरक्ष-रचित निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(१) सप्तवी (२) पञ्च (३) सिध्दा हरसन, (४) प्रायश्चित्तो (५) नरवै शोष (६) आत्मबोध (७) अग्निमात्रा योग (८) पञ्चह विधि (९) सप्तवार (१०) मर्षीन्द्र गोरक्ष बोध (११) रोमाकली (१२) ज्ञान सिद्धक (१३) ध्यान चौवीसा (१४) पञ्चमात्रा (१५) गोरक्ष क्लेश गोष्ठी (१६) गोरक्ष वच गोष्ठी, म्हादेव गोरक्ष गुह्य (१७) सिद्ध पुराण (१८) ब्रह्मबोध (२) जाती मोदाबली ( छन्द गोरक्ष ) (२१) नवग्रह, (२२) नवपत्रि (२३) ज्ञान पारलूया (२४) एह रास (२५) ध्यान नासा (२६) आत्म बोध (२७) वच (२८) निरंजन पुराण (२९) गोरक्ष वचन (३) ईश्वरी वैक्या (३१) मूल गर्भबिम्बी (३२) रत्नापी बापी (३३) गोरक्ष वच (३४) ज्ञान मुद्रा (३५) चौबीस सिद्धि, (३६) पटवसारी (३७) पञ्च अग्नि (३८) ज्ञानपत्र, (३९) अवधि सिद्धक (४) काफिर बोध।<sup>१</sup> गोरक्षनाथ की निम्नलिखित संस्कृत रचनायें प्रसिद्ध हैं—

(१) अमलस्क, (२) अमरीष घासनम्, (३) अवधूत पीठा (४) गोरक्ष कर्म (५) गोरक्ष कौमुद (६) गोरक्ष पीठा (७) गोरक्ष निरुद्धा (८) गोरक्ष पञ्चम (९) गोरक्ष पञ्चति (१०) गोरक्ष सतक (११) गोरक्षशास्त्र (१२) गोरक्ष संतति, (१३) जतुरपीत्यासन (१४) ज्ञानप्रकाश सतक (१५) ज्ञान सतक (१६) ज्ञानामृत योग (१७) नाडी ज्ञान प्रदीपिका (१८) शोष किन्तामणि

(१९) योग मार्तण्ड, (२०) योग बीज शास्त्र (२१) योग शास्त्र (२२) योग सिद्धान्त पद्धति (२३) बीजनाथ सूत्र (२४) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, (२५) हठ योग (२६) हठसंहिता ।

हिन्दी-रचनाओं के अन्तर्गत जिन कृतियों का उल्लेख किया गया है उनको प्रामाणिकता सम्पन्न है । अपने वर्तमान रूप में ये कृतियाँ संभवतः भठारखुर्ची छपाई की हैं । इनका संरक्षण मौखिक परम्परा में होता रहा है । 'गोरखबानी' की भूमिका में इस सत्य का उल्लेख डॉ० पीठाम्बर दत्त बड़व्याल ने भी किया है । 'हिन्दी के धर्मों की हस्त लिखित प्रतियाँ बहुत प्राचीन नहीं हैं । जो कुछ मिलती है विक्रम की संभवतः भठारखुर्ची छपी के द्यार की है । ' परन्तु इन रचनाओं में भाव-पञ्चा के वर्णन और उनकी साधना प्रणाली के विभिन्न रूप संरक्षित हैं । मौखिक परम्परा पर विरहित होने के कारण इन कृतियों के आदि रूप का स्वतन्त्र निर्धारण सम्भव नहीं है । पुरानी रचनाओं में परिवर्तन-परिचर्चन के साथ-साथ गोरखनाथ और अन्य नामों के नाम पर परवर्तीकाल के योगियों द्वारा स्वतन्त्र रचनाओं का भी समावेश होता रहा है । भाव-योगियों की अनपेक्षितता के कारण देश के विभिन्न भागों में ये रचनाएँ काष्ठकर्म से भिन्न भिन्न रूपधारण करती गई हैं । स्वायत्त विभिन्नता के कारण इनमें भाषागत विभिन्नताएँ भी मिलती हैं । अतः निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि गोरखनाथ से संबंधित या अन्य नाम योगियों के नाम से प्रचलित रचनाएँ किन्तु अज्ञात की भाषा में अपने आदि रूप में लिखी गई ।

गोरखनाथ की रचनाओं से भावपञ्चा के वर्णन और उसकी साधना प्रणाली के निरूपणात्मक रूप का संस्थापन भी संभव नहीं हो पाता है । सिद्ध साधना पद्धति, कापात्मिक साधना पद्धति और लौकिक विचारधाराओं के निर्धारण के सामूहिक रूप यहाँ उपलब्ध होते हैं । ऐसी स्थिति में गोरखनाथ के साहित्य में कतिपय साधनागत विरोधों के कारण यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सिद्धदर्शन और भाव संप्रदाय के वर्णन में मौखिक अन्तर क्या है ? वस्तुतः इस पद्धति के स्वयं संरक्षण की दृष्टि से गोरखनाथ की कृतियों में सामर्थ्यादि विचारधारा के प्रति विरोध भाव विद्यमान है । कल्पना यह निष्कर्ष देना पड़ता है कि अपने



युग में प्रचलित समस्त साधना पद्धतियों का किसी न किसी रूप में गोरक्षनाथ ने समन्वय अवश्य किया है। इसकी चर्चा आगे के पृष्ठों में नाथ सम्प्रदाय के वर्णन और उसकी साधनापद्धति के अन्तर्गत की जाएगी। यहाँ गोरक्षनाथवादी में संकल्पित रचनाओं से गोरक्षनाथ से संबंधित पदों में व्यक्तित्व विविध भाव रूपों की सांकेतिक चर्चा ही यथेष्ट होगी।

गोरक्षनाथ के पन्थ में शून्यसाधना की विधा के प्रति विशेष ध्यान मिलता है। उदाहरण

बसती न शून्यं शून्यं न बसती अमम अगोचर ऐसा।

यमन सिपर यहि बाळक बोले ठाका नाँव बरछुगे कैसा।

‘जो बस्ती नहीं शून्य में रहता है और पुनः जो शून्य में नहीं बसितु बस्ती में रहता है वह अमम और अगोचर है। यमन सिपर पर यह बाळक बोलता है उसका नाम क्या रहोगे? बस्तुतः इस वर्ण में शून्य का संबंध नावतत्त्व से स्थापित किया गया है और नाथ विन्धु के अन्तर्गत द्विज और शक्ति की कल्पना की गई है। शान्ति रक्षित ने सबको स्पष्ट कहा है। उसे परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है—

शून्य मिति न बल्लभं शून्य मिति वा भवेत्,

उभयम नोभयम् चैव प्रज्ञातव्यं तु कल्प्यते।

नाथ पूर्णता का चोकर है। इस ओर संकेत करते हुए कहा गया है—

अन्त शून्यो बहिः शून्यः शून्यं कुम्भं इवान्धरे

अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः कुम्भः इव अग्निः।

कबीर में इसी भाव की व्यक्तता मिलती है—उदाहरण०

बल में कुम्भ कुम्भ में बल सो बाहर भीतर पानी

कुम्भ कुम्भ बल बलहि समाना यह तल कुम्भे नियानी।

गोरक्षनाथ की रचनाओं में सबर का प्रयोग-स्थल स्थल पर मिलता है।

बस्तुतः यह सूरति का पर्यायवाची है जिसे जनाहद नाथ की संज्ञा भी दी गई है।

नाथ से प्रेरित होकर अन्त में चित नाथ में ही समाविष्ट हो जाता है। तब न नाथ रहता है न विन्धु। उदाहरण —

सबदहिं तासा सबदहिं कौंभी सबदहिं सबर बयाया।

सबदहिं सबर तु परमा हूमा सबदहिं सबर समायो ॥

गोरखनाथ 'धूम्य' के साधक थे । 'धूम्य' को विविध कर्मों में उन्होंने ग्रहण किया है । एक स्थल पर अपना विषय धूम्य के व्यापारी के रूप में करते हुए वे कहते हैं—

सहज गोरखनाथ वणिज कराई पाँच बरसद गव माई ।  
सहज सुमाबी बाजार स्याई, मेरो मन उड़ियानी आई ॥  
चुराहट हाट अन्हें वणिजारा, तुमि हमारा पसारा ।  
केय न जाणी देख न बापी एहा वणिज हमारा ॥

गोरखनाथ 'सहज' का वाणिज्य करते हैं । ( इस वाणिज्य में ) पाँच बरस ( पञ्चबेन्द्रियाँ ) लब्ध पाय ( मवरंज ) है । इनके सहज के बराबर ( निवासस्थान ) में जाकर मेरा मन उड़ियामन्थ में आ गया । मैं चुराहट हाट का व्यापारी हूँ । धूम्य का मैंने प्रसार ( व्यापार ) किया है । मेरा व्यापार ऐसा है जिसमें आवागमन की आवश्यकता नहीं है । 'धूम्य समाधि' या 'सहज समाधि' के अन्तर्गत ब्रह्माग्नि के अवस्थित होने का भी उल्लेख गोरखनाथ में मिलता है—

विपिन हमारी जीबी पाके अग्नि बरै मूलतानी ।  
ऐसे हम ओगेसर तिमरा प्रयन्था पर निर्बानी ॥

ज्ञान से संस्पृष्ट आत्मा की क्रियात्मकता को आखेटक के व्यापारों के माध्यम से प्रेरित करने की एक निम्नलिखित विधा का प्रयोग सिद्धों की रचनाओं में मिलता है । गोरखनाथ की रचनाओं में भी इस विशिष्ट अभिव्यञ्जना प्रणाली का प्रयोग मिलता है । इन सन्दर्भ में अचेतन मनको वे 'धूम्य' के रूप में चित्रित करते हैं । ज्ञान से अचेतन मन के हुनन की प्रक्रिया को रमक-धोती में उपस्थित करते हुए गोरखनाथ कहते हैं—

आई सो भील पारबी हाथ नहीं पाई व्यगुलों मूय दाँत न काही ।  
हयो हयो मूबली भुनही न तही, नटा मुर तिहाँ नाच नाही ॥  
भीलई तिहाँ ताणियो बाँज मन ही मूबली बैबियो प्रमाय ।  
हयी हयी मूबली बैपियो बाग भुनही बाग न भी सर ताँज,  
भीलई मातपी रांगी मूबली जाँची टाँची ।

जब विह्वली मृगनी जाँघी सीस सीम मुग बाइन बाई ।  
मनव मोरखनाथ मछिखनी पूठा मार्यो मृग मया अबधूता ॥  
पाहि हिपाछी ने कोई बूझे ता बोगी कौ सुमुवन सूझे ।

ऐसा मीन पारवी है बिसके हाथ नहीं है, वह पाँवों का पंगु है । उसके मुख में दाँव नहीं हैं । उसके पास धनुष भी नहीं है फिर भी उसने मृग को मार बाधा । मृगको अधिकार में करने के लिए उसके पास बाधवन्ध भी नहीं है । झोंक के लिए उसके पास कोई नाव नहीं है । बाज ने मृग को बेध दिया वह मर गया वह मर गया । जो बाज उसने मारा था वह बाज नहीं था । भीखनी घायल मृग को ले आई । उसके सिर और धुँध नहीं है । मत्स्येन्द्र के सिद्ध गोरख कहते हैं मारा हुआ मृग अबधूत हो गया । इस प्रहेलिका को जो समझे उसके लिए निमुवन बोधवन्ध होया ।

गोरखनाथ की रचनाओं में वशम् द्वार का उल्लेख मिलता है । इस द्वार पर साधक अनाहत नाथ सुकृता है । यहाँ 'नाथ' और 'विन्दु' के संयोग से साधक अनाहत नाथ के साथ तादात्म्य स्थापित करता है । धूम्य मण्डल के लिए आकाशतत्त्व का प्रयोग करते हुए गोरखनाथ ने उसे धिक्त्व से परिपूर्ण माना है । उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया है कि धिक्त्व में ही निर्वाण निहित है । सिद्धों की साधना में 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' के समत्व का उल्लेख किया जा चुका है । गोरखनाथ की रचनाओं में भी 'सूर्य' और 'चन्द्रमा' के मिलन की जहाँ मिली है ।

गोरखनाथ 'छट्टी साधना' की जहाँ करते हैं । पवन को उल्ट कर चक्षुरंघ्र में समाहित करने से बालक रूप ( बाल ? ) का साक्षात्कार होता है । 'उत्स्था पवनो वयस समोई तब बाल-रूप परतिप होई' । 'उदय' के घर 'अस्त' छाने से ( मूलाधार स्थित सूर्य को अस्त में छाने से ) 'हैम' ( चन्द्रमा ) के घर ( चक्षुरंघ्र ) पवन का सम्मिलन करने से बँधा हुआ हाथी ( मन ) अपनी छाया में जा जाता है । बाह्य कला को छोले, सोलह कला का पोषण करे, इस प्रकार चार कलायें सिद्ध होगी । इसके अगस्त कला पूर्ण होगी । सिद्ध साधना में साधक चार कलाओं का पान करता है —

बारा कछा सोरि सोका कछा पोये

चारि कछा सारै अमन्त कछा बीबै ।

मोरखनाथ की रचनाओं में 'अनाहृद भाव' का उल्लेख मिलता है । इस सम्बन्ध में 'उम्मी अहस्या' की भी चर्चा की गई है । जो असाध्य की साधना करते हैं मगन को अनाहृद भाव से गर्भित करते हैं उम्मी समाधि गमाते हैं पवन को प्रत्यापठित कर सुपुम्मा में समाहित करते हैं और अमृतपान करते हैं वे इष्टवानी हैं । मोरखनाथ ने अपनी साधना में प्रयुक्त प्रतीकों का स्पष्टीकरण भी किया है —

पोइस नाड़ी चन्द्र प्रकास्या हारस नाड़ी मारि ।

सहस्र नाड़ी प्राण का मेका अहाँ असंख कछा शिवधानं ॥

सोमह कछापूर्ण नाड़ी में ( ईडा ) चन्द्रमा का प्रकाश है हारस में ( पिण्डा ) में मानुका सहस्र नाड़ी ( सुपुम्मा ) में प्राण का मूल निवास है अहाँ असंख कछावाले शिव का निवास है ।

अबहु ईडा मारय चन्द्र भणीबै प्यंथुका मारण धारि ।

सुपुम्मा मारय बाणी बीसिम्पु भिय पूछ अस्वानं ॥

ईडा नाड़ी को चन्द्रमा कहते हैं । पिण्डा को मानु कहते हैं, सुपुम्मा को सरस्वती कहते हैं । इन तीनों का उद्देश्य मूल स्थान ( कूर्मार्ध ) है ।

चौरंगीनाथ : सिक्खी परम्परा में के अनुसार 'चौरंगीनाथ' मोरखनाथ के गुरु भाई थे । चौरंगीनाथ के नाम से जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनमें भी इस चारमा की स्वीकृति मिलती है । चौरंगीनाथ लिखित 'प्राण संकरी' नामक रचना प्राप्त हुई है । यह मुख्यतः एक मध्याह्न है । यह अपने अर्धभाग रूप में एक संक्षिप्त ग्रन्थ है परन्तु जिस रूप में यह ग्रन्थ उपलब्ध है उसके अनुसार चौरंगीनाथ राजा चातमाह्न के पुत्र मन्मथनाथ के पिता और मोरखनाथ के गुरुभाई थे—

उदा०—सत्य अवन्त चौरंगी नाथ । आदि अंतरि गुनी सिदाय ।

चातमाह्न धरे हमारा धनमउतपति सति माँकुर बोलीला ।

बिमाठा में उनके साथ पात्रविक व्यवहार किया जा । इनको पंहु बना दिया जा । इस बार उचित करते हुए इन्होंने कहा है 'ईअस्तारा चन्दा सायत, पाप

कल्पना नहीं हमारे मने हाव पौव कटाय, रसाह कायका निरंजन बने सोप  
 संताप बने परमेव सममुख वेपीसा थी मछंडमाय पुस्केव नमस्कार करीसा  
 नमाइसा माया' २।२०७ । लोकगीतन में इस प्रकार की धारणा है कि  
 चौरंगी के पिता बंश प्रवेश के पास राजा देवपाल के तृतीय पुत्र थे । पंजाब में  
 प्रचलित विभिन्न कहानियों के अनुसार चौरंगीनाथ पूरन मयत का ही दूसरा नाम  
 था । सिक्खी परम्परा को यदि हम आधार मानें तो चौरंगीनाथ का समय लखी  
 छताब्दी का उत्तरार्ध है । 'इण्डियन प्रदीपिका' में चौरंगीनाथ का उल्लेख बारी  
 नाथ के साथ मिलता है —

श्री बादिनाथ-मस्त्येजनाथ चावरानाथ भैरवा-

चौरंगी-मीन-बोरज विवपाख विजेमवा ।

अन्य नामसाधकों के समान चौरंगी ने अपने युव के प्रतिविम्बेव जास्वाभाव  
 की व्यञ्जना की है । मोरखनाथ ने समान ही 'प्राच' अपाव' के अर्थ में इनकी  
 रचनाओं में 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' का प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण किया गया है ।  
 समाधि में इनके समस्त की अर्चों की गयी है —

चन्द्र अस्थान बुईसा जागे रवि अस्थान बुईसा सोई इह जोग अम्पाउ  
 बोलिये । इह के समान बोलिये । नाथ साधना में मूखाचार को 'उदय गिरि' कहा गया  
 है । सहस्त्रार में चन्द्रमा है इसे 'अस्तमिरि' या 'हेम पड़' कहा गया है । चन्द्रमा  
 जब सूर्य की चार कलायें प्राप्त कर लेता है तो यह उसके उदय की स्थिति होती  
 है । मोरखनाथ की रचनाओं में इस स्थिति का उल्लेख मिलता है—'उदय प्रहि  
 अस्त हेम पड़ पवना मेका बाधिजे हस्तिममिज साल मेका' । चौरंगीनाथ की  
 रचनाओं में भी इसी भाव का उल्लेख मिलता है—

'धुब भागे उदयागिरि बसे, पच्छिमभागे अस्तमिरि बसे बाइन कुये हेमगिरि  
 बसे नेरति कुये कनेर गिरि बसे । —नाथ सिखों की बानियाँ । ४० । ईसा  
 विमका और सुपुम्मा को गंगा यमुना और सरस्वती के रूप में धर्मित करके हुए  
 पवन-माड़ी के लिए इन्होंने 'परमवा' का प्रयोग किया है ।

'बिम्या बप्पन पासे बंगा बसे, बिम्या बागै पासे बमुना बसे मध्य बिम्या  
 सरस्वती बसे, पवन माड़ी नखवा बसे । नाथ सिखों की बानियाँ ८०।२०१। प्राच

वेच्छी' की भाषा समझी जाती है के पूर्व की नहीं है। इस इति की भाषा में पूर्वी प्रभाव दृश्य है परन्तु इसकी रचना पश्चिम प्रदेश में ही हुई है।

चर्पटीनाथ चर्पटीनाथ गोरखनाथ के शिष्य थे। इनका उल्लेख 'रोदनर सिद्ध' के रूप में भी मिलता है। सिद्धती परम्परा के अनुसार ये गीतिका के शिष्य थे। इस प्रकार इनका उल्लेख सिद्धों की परम्परा में भी मिलता है। ये 'अतुर्म बागिनाथ' नामक ग्रन्थ के लेखक हैं। इस ग्रन्थ का अपान्तर सिद्धती भाषा में भी मिलता है। उपर्युक्त सामग्रियों से यह स्पष्ट मिलता है कि ये मूलतः बख्तियारी साधक थे। नाथपरम्परा में ये बाद की दीक्षित हुए थे। इनके नाम से जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनकी भाषा अधिक प्राचीन नहीं है। भावभूमि तथा व्यञ्जनाप्रणादी इन दोनों ही शैलियों से इनकी रचनाओं में मिलती नहीं है। गोरखनाथ की रचनाओं में यम-रस का व्यापक संस्पर्श मिल जाता है। परन्तु चर्पटीनाथ की रचनाएँ काव्यतत्त्व से दूर हैं। नाथ परम्परा के बर्तन और सिद्धान्त निरूपण की स्मृति इनकी रचनाओं में मिलती है। उदाहरण :—

अबधू मूल दुबारे बंद सगाह  
पवन पछटे गगन समाई।  
नाथ बिन्दु दोठ अगपिर होई  
अदृष्टि पुरिष्ठ दृष्टि तब जोई।

× × ×

ईशति शक्त विषय करि बंध,  
तत्ति करि रति अपरिहरि जग  
रंजि विवत रस चरपट पीया  
पूटे तेल न बूझे पीया ॥१६॥१८७

गोपीचन्द्र : गोपीचन्द्र बंगाल के पालक से सम्बन्धित थे। गोपीचन्द्र मयगाँवी और बंगाल के राजा मानिकगन्ध (मृ १०६५) के पुत्र थे। मयगाँवी की हार्दिका की शिष्या थी। अपनी माता की प्रेरणा से गोपीचन्द्र शार्दंग में दीक्षित हुए थे। 'गोपीचन्द्र सम्पात्र' में सम्बन्धित अनेक कहानियाँ लोक जीवन में

प्रसिद्ध हैं। इनके नाम से सम्बन्धित 'सबरी' उपद्रव है। मयनाबती की अनुप्रेषा का उल्लेख निम्नलिखित अंश में मिलता है।

राज सवेना रे घुटा पाट लबना  
सवेना हस्ती चोड़ा।  
सति सति भावत मैनाबती  
कहि मैं जीवन चोड़ा ॥१७४८॥

गोपीचन्द-मयनाबती संवाद में भी मयनाबती की प्रेरणा प्रत्यक्ष प्रकट होती है।—

सोळा से राखी बारा से कन्या  
बंगाळ बेश बकुमोनी।  
बारह बरस हुमकू राज करने माता,  
पीछे हुंवा योमी।  
माता के सपनेस करि,  
सबिला विस बंपाल  
गोपी चन्द गुरु के सरने  
भेटत भवा काल

गोपीचन्द के विचित्र में उनकी रानी के विप्रसम्भवत मनी भावों का परिचय भी कतिपय अंशों में मिल जाता है। इस सन्दर्भ में रानी और गोपीचन्द के मध्य बातचीत सम्बन्धी एक भी मिलते हैं—

बहुड़ी ने बाहुड़ी गोपीचन्द राजा  
बहुड़ी बीलावर आबोबी  
मंजूषा मैं जोषम मन भित्ता हो राजा  
भाब भगति सु पायबबी।  
X + X +  
पासिक निद्रा भाबी रे राजी  
माई मनि राज ग आवै बी  
भोग भुपीत मो राज हम्हारी  
अविचल केगू पाने जी।  
X X X X

खगर चन्दा नी मड़ी बघाऊँ,  
 सोना नां तुम्ह मुँब जी,  
 कन्हो ली छा नां पत्र बड़ाऊँ  
 सीनां ना सीमी नारं जी ।

× × + ×

यफन मंडल में मड़ी हमारी  
 चंद सुणा तुंब जी  
 सहज सीतनां पत्र हमारे  
 कन्हू छीगी नारं जी

मरबरी (मरहरी) गोरक्षपी शाखा के अन्तर्गत बेराणपी एक विधेय शाखा  
 २ । इसके प्रवर्तक मरबरी माने जाते हैं । इस प्रकार किम्बन्ती है कि ये मयनाबती  
 के भाई और उज्जैन के शासक थे । मयनाबती का विवाह माणिकचन्द से हुआ था ।  
 इस आधार से ये चारहवीं शताब्दी के हैं । नाब सम्प्रदाय में इनका विशेष महत्व  
 है । इनकी रानी का नाम विगळा था, और अपने राज्य का परिष्कार कर मे  
 गोरक्षपथ में दीक्षित हुए थे । इतिहास लेखकों की यह भी धारणा है कि ये  
 संस्कृत ग्रन्थ 'बैराग्य शतक' के लेखक एवं वाक्यपदीय के रचनाकार थे ।  
 इतिहास (१७८-१११ ई०) इनके ग्रन्थों से परिचित था । ज्ञानदाय ने इन्हें बौद्ध  
 माना है । परन्तु इतिहास के उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि 'वाक्यपदीय' के  
 लेखक नागपर्व के गोरक्षनाथ से मिल व्यक्ति थे । इनके नाम से प्रचलित रचनाओं  
 की भाषा चारहवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं है ।

चपाहरण

अथयु पस विन केवल-केवल विन मयुकर  
 कोइक बोले कंठ बिना  
 चल विन मृग, मृग विन वारण  
 एक घर बेधे पंच बना ।

× × ×



जोगी भरवरी भरमि न भूछा  
तलि नर बीबी ऊपरि करि पूछा ।  
बोह बोह छप्पी बुगति करि वासी  
जोगी भरवरी बीबे भुप जारी ।

नागा अरजन्ध ( नागार्जुन ) : नागपन्थ के नामार्जुन सिख सम्प्रदाय के नागार्जुन के भिन्न हैं। परन्तु इस मान्यता के लिए हमारे पास यथष्ट प्रमाण नहीं हैं। शासनमाळा के अनुसार ये छत्रपाद और कृष्णाचार्य के समसामयिक थे। प्रबन्ध 'विस्तारवि' में एक कथा नागार्जुन से सम्बन्धित मिलती है। इसके अनुसार ये पारसिसूरि के शिष्य थे। नागनाथ नामक एक नाथ साधक की जहाँ प्यारहवीं शताब्दी में भी मिलती है। परवर्ती काल में इन्हें ही नागार्जुन के रूप में प्रसिद्धि मिली। नागा अरजन्ध का सम्बन्ध रसेस्वर सम्प्रदाय से भी था। योरलपन्थ की पारसनाथी ब्रतशाळा के ये बाहि आचार्य भी थे। इनके नाम से प्रचलित रचनाओं में से कुछ ग्रंथ यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

बाक तैं बाप उतपनी,  
बाप कभी नहीं आई ।  
बाप बाक जब परचा मया ।  
बाप मैं बाक समाई ॥

× × ×

बापा भेटिला छत्रपुत्र बापिका,  
न करिवा भोग बुगति का टेका ।  
जगमन डोरी जब पैनीका  
तब छहूँ ओरि का भेला ।

कणोरी : कणोरी नाथनाथ (नागा अरजन्ध ?) के शिष्य माने गये हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि सिख कनूषा का ही दूसरा नाम कणोरी था। बहुत सम्भव है इम्पला कन्हुपा या कनूषा के लिए परवर्ती काल में कणोरी पाव नाम का प्रयोग हुआ हो। नागपन्थ के अन्तर्गत एक सामान्य पंथ भी है कणोरी

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इस प्रकार इन्होंने नाथ साधना में काममार्गी साधना के कतिपय तत्त्वों के योग से एक नवीन पन्थ बनाया। इनके नाम से प्रचलित एक बोद्धा-संरक्षन मिश्रता है। इनकी शिष्या मेसछा ने 'मेसछा' नाम से इसकी टीका संस्कृत में की थी। इनकी रचनाओं से कुछ उदाहरण यहाँ लिए जा रहे हैं—

कहाँ उगे कहीं अचबे  
कहाँ मु रेगि बिहार  
पूछे कगोरी सुनि हो नागा अरबन्ध ।  
पिछ छूटे प्राँन कहीं समाई ।

× × ×

मगधी मेरा बीज बिजोबी ।  
पबना बाड़ि लगाई  
केतम राबक पहरे बैठा  
मृगा खेत न लाई ।

घोड़ाचौली : 'इत्थोम प्रवीरिका' में घोड़ाचौली का उल्लेख मिलता है। यहाँ इनकी जन्मी काठजयी साधक के रूप में की गयी है। इस ग्रंथ के अनुसार इनका समय बारहवीं शताब्दी पूर्व पड़ता है। वे मत्स्येन्द्रनाथ की परम्परा के साधक थे। 'सोई सोई साव उसाव बोळें बोड़ा चौली मछिर का बास। हिन्दी में इनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनके आधार पर इनके व्यक्तित्व का ऐतिहासिक मूल्यांकन सम्भव नहीं है। इनकी रचनाओं से कतिपय अंश यहाँ लिए जा रहे हैं—

यी गोरखनाथ पन्थ का मेव,  
अर्गत सिखा मिलि पायो मेव  
पाया मेव भई प्रतीत  
अर्गत सिखा मैं गोरखनाथ असीत ।  
बोळैत सिध घोड़ाचौली  
हुयें पयी येव का मूरा  
गगन मण्डल में रहनि हमारी  
बाजे अगहत तुरा ।

परमत सिद्ध : परमत सिद्ध के विषय में हमें कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। इनके नाम से 'मृगोत्थ पुराण' नामक एक ग्रंथ रचना उपलब्ध है तथाहरण-स्वरूप इस पुस्तक से एक अंश यहाँ प्रस्तुत है—प्रथिमी प्रमाण—सुमेरु पर्वत ऊपरि मुखर्ण मई है। पारजात कबलात गज विराजत है। प्रमाण पड़ते एक है। ऐसे सुमेरु पर्वत दक्षिण दिशा आगी बनू विद्य है। तिसु रिद्य कावेता कु कु विधि विस्वार है।

इन नाम साधकों के अतिरिक्त कतिपय अन्य नाम साधकों की रचनायें 'नाम सिद्धों की बानियों' में संरक्षित हैं। इनमें अथर्वपाठ धूमकीमल और दत्तजी प्रमुख हैं।

### दर्शन और माध्यम

सिद्ध साहित्य के समान नाथपन्थी साहित्य की सर्जना भी साम्प्रदायिक चिन्तन धारा का प्रतिफलन है। अतः इस पन्थ के साहित्य में काव्यात्मक सम्भावनाओं की अपेक्षा दर्शन के उन्मेष की नैसर्गिकता ही सम्भव हो सकी है। नाथ सम्प्रदाय की चतना के अतिरिक्त इसने अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन साधनाधारियों के प्रभावों को भी ग्रहण किया है। सिद्ध साहित्य के समान यहाँ भी बौद्धतन्त्रका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हिन्दु साधना के प्रभावों में अतिरिक्त नाथपन्थी साहित्य में योगमूलक भावनायें भी मिलती हैं। कापात्मिक साधना के कतिपय तन्त्र भी यहाँ प्रसिद्धिप्राप्त हैं। ध्यात्मिकता की दृष्टि यह शैवधर्म से सम्बन्धित है। अतः शिव-शक्ति की धराधना से सम्बन्धित अंश यहाँ नैसर्गिक रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। शिव-शक्ति के अभिन्नत्व की भावना यहाँ मिलती है। शक्ति के तीन स्वरूपों का उल्लेख यहाँ मिलता है—(१) चित्त शक्ति (२) माया शक्ति (३) जीव शक्ति। नाथ पन्थ में चित्त शक्ति और जीव शक्ति के स्वरूप विद्येभ्यः का अग्रक्रम मिलता है। इसी सन्दर्भ में शिवशक्ति के सम्मिलन से सृष्टि के सृजन का उल्लेख भी मिलता है उनके समन्वय की कल्पना मिलती है। शिव विस्व का निर्बिकार तत्त्व है। शक्ति जब चित्त रूप में अवस्थित रहती है उस समय 'सृजन' और 'रक्षा' प्रक्रिया क्रियात्मक रूप में रहती है। और इस सन्दर्भ में दृष्ट्या को शक्तिरूपा कुमारी के रूप में कल्पित किया गया है। मनुष्य के शरीर में इस शिव-शक्ति के संयोग को परा ज्ञान, दृष्ट्या क्रिया, कृष्णशिवी तथा मातृका-रूपों में ग्रहण किया

गया है। मोरसनाथ ने अपनी रचनाओं में शिव-शक्ति के इसी रूप की प्रस्तावना की है—

शक्ति रही रज भाषे शिव अपी अंद ।  
 बारह कला रज भाषे, सोलह कला अन्द ॥  
 चारि कला रवि की जे सति जरि भावै ।  
 ती शिव-सती संनि होवै अन्त कोई न पावै ॥

गोरखबानी पृ० १००।१ ।

अर्थात्—रज शक्ति है और बिन्दु शिव है इनके समत्व से सृष्टि सम्भव है। इस चतुर्धर्म में साधक ने चन्द्रमा और सूर्य के समत्व का भी उल्लेख किया है जो शिव शक्ति के समत्व के समान ही है। साधनात्मक प्रक्रिया से मन को अधिष्ठातृ चक्र में समाविष्ट करने से मन की स्थिति शिवत्वपूर्ण हो जाती है। मन की समाधि अवस्था को उन्मनी अवस्था कहते हैं। शक्ति को माया-रूप भी माना गया है। शक्ति के साथ संयुक्त होने पर परमस्व अभिव्यक्त होता है और पंच भूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है। गोरखनाथ के निम्नलिखित पद में इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है—

यहु मन सफरी यहु मन सीध यहु मन पाँच तत्त का बीध ।  
 यहु मन से जे उम मन रहै ती तीन लोक की बाटां कहे ॥

गोरखबानी पृ० १८।५० ।

बाधुनिरोध कर काया-साधना की प्रक्रिया हृद्योगियों में मिलती है। रसेस्वर दर्शन में पारम के सहयोग से काया सिद्धि का उत्प्रेक्ष्य निरन्तर मिलता है। बौद्ध सम्प्रदाय से प्रस्कृत्य विभिन्न धाराओं में भी काया साधना की प्रथा प्रचलित थी। इस चतुर्धर्म में काया साधना से सम्बन्धित अनेक धाराओं में लेखी मुद्रा का भी उल्लेख मिलता है। इन विधा से परिचित साधक कामजयी होता है। वह चन्द्रमा के जल का पान करता है। त्रिके शरीर में चन्द्रमा घुलित है उनके लिए वाया-ग्रामना अनिवार्य है। योगी सब द्वार अवन्द करता है बाधुनिरोध कर आत्मध्यान में लीन होता है। इन प्रकार नाथयोगी वायु को बाँधता है और 'अनर वाक्सी' का पान करता है। नाभि प्रदेश में अधिमय सूर्य है। इसकी स्थिति मूलाधार में भी जानी गयी है

ताम्र में अमृततामा चन्द्र है ( इसकी स्थिति सहस्रवार में भी मानी गई है ) ।  
जबोमुख होकर चन्द्रमा अमृत प्रवाहित करता है सूर्य ऊर्ध्वमुखी होकर उस  
अमृत का पान करता है । विपरीत साधना या उल्टी साधना द्वारा साधक  
अमृत रसा करता है । गोरक्षनाथ ने निम्नलिखित वंश में इस ओर ही संकेत  
किया है—

गगन मण्डल में ऊँचा कूना तहाँ अमृत का बासा ।

सुपुरा होइ सो गरि गरि पीवै निबुरा बाह गियासा ॥

पो० बा० २।२३ ।

या

उलटत नाद परतत व्यंघ, बाई के घर चीन्हति व्यंघ ।

सुनि मण्डल तहाँ नीमर भरिया चंद सुख तई सनमान भरिया ।

गोरख बानी २०।२५ ।

सूर्य नाड़ी में पवन तीव्रमामी होता है चन्द्र नाड़ी में उसकी गति स्थिर हो  
जाती है । जब स्वास बाहर निकलती है तब सूर्य नाड़ी चल्ती है ।

अबधू ईडा मारन चन्द्र भरीनै ध्वंशुला मारन नान ।

सुपुम्ना मारन बाभी दोसिये भिय मूख अस्थान ॥

गोरख बानी ३३।२२

पवन को उलटकर गगन में समाविष्ट करने से ( सहस्र बार कमल ) बाह  
रूप प्रकट होता है परम तत्त्व प्रकट होता है । उदय के वर अस्त करने से,  
चन्द्रमा के वर में पवन के संयोग से बंधा हुआ मन अपने एह में आ जाता है—

उलटमां पवनां मगन समोह तब बाह रूप परतपि होई ।

उर्वे ग्रहि अस्त हैम ग्रहि पवन मेला बंधिलै हस्तियनित्र साज मेला ।

गोरख बानी ३१।८६ ।

कायासाधना के अन्तर्गत सहस्रसमाधि या सूर्यसमाधि का उत्प्रेक्ष्य मिळता  
है । सिद्धों ने भी सहस्र समाधि या सूर्य समाधि का उत्प्रेक्ष्य किया है । सहस्र  
समाधि में शिव-शक्ति के संयोग की कल्पना की गई है । इसी समाधि को चर्चा  
गोरक्षनाथ ने प्रस्तुत वंश में की है—

त्रिपति हमारी डीभी पाई अगनि बरी भुक्तान ।

ऐसे हम बोलेस्वर त्रिपती प्रमथ्या पद निबान ।

बाध न निरुद्ध बूढ़ न बल्लभ सहज अंगीठी भरि भरि रांघे ।

मिथ समाधि योग भव्यासी सब युद्ध परधै सांघे ।

गोरख बानी २१८।४३ ४४ ।

नामि का अक्षोभाग शक्ति का निवास है । यह क्रियाशील और परिवर्तनशील है । यह प्रवृत्ति मूलक है । ऊर्ध्वभाग सिद्ध का स्थल है । यह निवृत्ति मूलक है । यह विद्यामय है । शक्ति सर्व के समान कृपक-रूप में है । महायाम मूर्धारकार में इसका प्रयोग परावृत्ति के लिए हुआ है । वहाँ इसकी चर्चा उल्टी साधना के अर्थ में भी हुई है ।

नाशरूप में सहज समाधि के अन्तर्गत उल्टी साधना का उल्लेख इन्हीं अर्थों में किया गया है । वहाँ हिन्दु-संन साधना का प्रभाव भी सहज किया गया है । उदा०

उकटिया पवन पट चक्र बधिया  
छाते छोड़े सोपिया पांघो ।  
चंद्र सूर दोऊ निज बरि राप्पा  
ऐछा अक्षय विनायी ॥

गोरख बानी ३६।१०५ ।

सहज समाधि के अन्तर्ग में शरीर में अरुण उरुष अवस्थाओं का उल्लेख मिलता है । अस्तुन से दबाव की दो लीमायें हैं जो मूलाधार चक्र और सहस्रार चक्र के रूप में व्यञ्जित हैं । इसी स्थिति का वर्णन करते हुए साधक ने कहा है —

अरुषे आठा उरुषे परं काम हगध जे जोषो करे ।

ठहै अर्धमग काट माया, ताका बिसुनू फराने बाया ।

गोरख बानी ७।१७ ।

‘योक्मिनी कौल ज्ञान निमय’ में अथ ऊर्ध्व में हृत्-रमण का उल्लेख मिलता है । अथ में बिन्दु जागृत कर ऊर्ध्व की ओर प्रेरित करने के कारण ही साधक को ऊर्ध्व गेहम कहा गया है । अर्धोदय रखने हुआ ह्यान्तान्ता कथं पुनः ।

अरुष-उरुषि निजि धरी उगार्द, मधि मुनि मैं बँटा बार्द ।

मनबाला की रमति बार्द कर्षन योगनाथ पामगनि पार्द ।

गोरख बानी २८।७- ।

स्वाध को अरध ( मूलाधार ) से उरध ( सहस्रार ) में स्थापित करने से ये साधक त्रिकुटी में ( मध्य ) समाविष्ट होता है । इस स्थल पर ब्रह्मत्व का सम्पर्क मिलता जोर परम गति की उपलब्धि होती है ।

अरधं कर्मल उरधं मध्य प्राण पुरिष का वासा ।

द्वारसं हंसा उरुति अस्मेता तत्र ही चोति प्रकाशा ।

मो० वा० २६ ८ ।

अरध-कर्मल से ऊपर उठकर प्राणवायु जब उरध-कर्मल में समाहित हो जाती है तभी आत्मा ऊर्ध्व गामी होती है और परम व्योम्नि प्रकट होती है । नाभ पंथ में मूलाधार ( अरध ) में स्थित कुण्डलिनी रूप में बताया गई है । ऊर्ध्व में शिव का वास माना गया है । उसे कैलाश भी कहा गया है ।

सहस्र समाधि के सम्बन्ध में समाधि पीठों की चर्चा मिलती है । सिद्धों में आत्मस्वर कामरूप ओष्ठियान तथा श्रीहृद्ग बाहि तंत्र पीठों का उल्लेख मिलता है । इसकी चर्चा की जा चुकी है । नाभपंथ में इन पीठों को देहस्थ माना गया है । यहाँ उष्ट्रियान पीठ की स्थिति स्वाभिधान चक्र में मानी गई है । 'हठ योग प्रदीपिका' में उष्ट्रियान शब्द के द्वारा मुपुम्ना को बाधित करने का उल्लेख मिलता है । इस प्रसङ्ग में प्राण का उल्लेख महालय के रूप में किया गया है । नाभ सम्प्रदाय में इस विशिष्ट विचारधारा का स्वरूप मिलता है ।

नाभसाहित्य में धूम्र-साधना की भाषणा अनेक रूपों में व्यक्त मिलती है । इस चारा में ब्रह्मसाग के सूक्ष्मतरंग धूम्र वाहियों की धूम्रभाषणा को भी समीकृत कर लिया गया है । धूम्रता को शैवाल देखी माना गया है । ब्रह्मसानी प्रतीक में धूम्रता और कङ्का प्रज्ञा या उपाय अथवा यजुं व अथ के रूप में एकीकृत है । यहाँ इनके युग्मक मिश्रण की भी वस्तुना की गई है । इस मिश्रण प्रतीक को नाभ सम्प्रदाय में त्रिब-शक्ति के मिश्रण के रूप में ग्रहण किया गया है । इसे प्राण-अपान या ईडा पिंगला के समीकरण का रूप भी कहा गया है । मुपुम्ना का उल्लेख मध्य मार्ग के रूप में हुआ है । ईडा पिंगला के समीकरण से कुण्डलिनी बाधित होती है पट चक्र के भेदन के पश्चात् साधक की स्थिति आशा चक्र के ऊपर हो जाती है । कुण्डलिनी सहस्रार में स्थित त्रिब के नाभ

आसिगन बढ हो जाती है। इसे सहज बसा या महाबसा कहा गया है। काम के निरोध से मन भी निरुद्ध हो जाता है। मन के स्वभावतः लय हो जाने को धम्मनी भाव कहा गया है। नाथपरम्परा में धूम्य को इन्हीं कथों में सहज किया गया है। परन्तु धूम्य का सम्बन्ध यहाँ 'नाथ' से भी स्थापित किया गया है जिसकी मूल प्रेरणा हठयोग है। नाथ से ही सृष्टि का प्रगच्छन होता है। इसीमें सृष्टि का लय हो जाता है। इस प्रकार के धूम्य को परमतत्त्व परमज्ञान और परमस्वभाव भी कहा गया है। उस परम तत्त्व का परिचय देने हुए साधक कहता है—

मुनि न अस्यक्त स्वयं नहीं पुजा मुनि किनु अनह्व गावै ।

बाकी किनु पशुप पशुप दिन साहर पवन दिन भू गा छाव ॥

गोरखबानी पृ० १०२।१ ।

बहु न धूम्य है न स्थूल है और न उसकी उपासना होती है और वह बिना धन्य के अनाहत नाद की गर्जना करता है। वह बिना बाटिका का धूम्य है और वह धूम्य के सौरभ का बिना पवन के प्रसार कर रहा है जिससे भू व भरता रहे है। इसी प्रकार परम तत्त्व को धूम्य का पर्यायवाची मानते हुए साधक कहता है—

बसती न मुन्यं धुन्यं न बसती भगव भयोपर ऐसा ।

मयन सिपर यहि बासक बोले ताका नाँव पछुने जैसा ॥

गोरख बानी पृ० १।१ ।

बहु निरंजन धूम्य है बहु अपने में सम्पूर्ण है। सृष्टि के आदिर्भाव और तिरोभाव का कारण धूम्य है। वह अपना कारण स्वयं है—

मुनि ज माई मुनि ज बाप । मुनि निरंजन आपै आप ।

मुनि कै परचा भया मयीर । निहृषक जोगी गहर मंभीर ।

गोरख बानी पृ० ७१।७१ ।

गिडों ने चार प्रकार के धूम्य का उल्लेख किया है। हठयोग प्रदीपिका में भी चार धूम्य का उल्लेख किया है। प्रथम तीन को घट परिचय और निष्पत्ति के स्तरों के रूप में सहज किया गया है जिसका उल्लेख गोरखनाथ की निम्न निम्नित रचना में किया है—



बरबे सोनां उरबे सोनां मध्ये सोमम् सोनां ।

तीनि सूर्य्य में रहनी जाने ता पटि पाप न पुना ॥

गोरख बागी पृ० १२।४ ।

इनके उपर सहस्रसूनु की अवस्था है जिसे सहस्र समाधि का पर्यायवाची भी माना गया है । इस स्थिति का वर्णन नाथ साहित्य में तीन जगों में हुआ है ।

(१) धूम्र की गबना के उत्प्रेक्ष के रूप में ।

(२) 'चन्द्र' और 'सूर्य' के समापन के वर्णन के रूप में ।

(३) सहस्र समाधि के रूप में ।

उवा० अमावस के घर मिल मिल चन्दा

पूर्णिम के घरि सूर ।

गाव के घरि ब्याह गरबे

बाबंत अनहद दूर ।

उच्छ्रंत नाथे पच्छंत ब्याह

बाई के घरि भीक्षुसि ब्याह ।

सुनि मंडक तहाँ नीकर भरिया

बंद सुरजि सि उनमनि रहिया ।

गोरख बागी पृ० २ । १५ १६ ।

'सहस्रार' में अमृत आवक चन्द्रमा है । अमृत के साथ का मूलाधार स्थित रवि सोपन कर बैठा है । अतः यह अमावस की स्थिति है । रवि को चार कला को प्राप्त कर लेने के पश्चात् रवि का प्रयाग स्थित हो जाता है । चन्द्रमा-पूर्व प्रभावशाली हो जाता है । नाथ बिन्दु का योग होता है । धूम्र में अनाहत नाथ ध्वजित होता है । रवि और चन्द्र के संयोग से सम्पत्तीव्यवस्था आती है । धूम्र-मण्डल ( बृहदारण्य ) में अमृत का निर्गम भरता है । नाथ उच्छ्रंत जाता है । वह सृष्टि का निर्माता बन जाता है । नीचे आता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वमग्न करता है । निम्नलिखित पंक्तियों में इसी सहस्र समाधि का वर्णन किया गया है—

विपिन हमारी डीपी पाई अविनि बने मुक्तान ।

देने हम ओगोस्वर निपना प्रगट्या पं निवीन ।

गोरख बागी २१-८।४३ ।

वाक्य न निकलें बूढ़ न बसकें, सहज बंधीठो भरि भरि राखे ।

विषय समाधि योग व्यप्यासी सब मुद परखे साधे ।

मोरख वाणी॥

कायासाधना और सहजसमाधि के अन्तर्गत पीठों का भी वर्णन किया गया है । सिद्ध साहित्य की विवेचना में इसका उल्लेख किया जा चुका है । नाग पन्थी साहित्य में इन पीठों को सिद्धों से भिन्न रूप में ग्रहण किया गया है । नाग साधक इन्हें खरीर में ही अवस्थित मानता है ।

नागसम्य में संखिनी को सर्व के रूप में ग्रहण किया गया है जिसका मुख दसवीं द्वार है । यही निरंजन का वास है । इस दसवें द्वार को बहुरंग भी कहा गया है । इस द्वार पर साधक बाइसी बोलता है, शब्द बोलता है । मोरपनाथ ने इसी का उल्लेख करते हुए कहा है 'दसवीं द्वार निरंजन उन्मत्त वासा सबरहि उलटि समाना । नाग सम्प्रदाय के साधकों ने अपनी रचनाओं में 'सबद' का प्रयोग किया है । वस्तुतः इस सबर का प्रयोग इन्होंने 'नाद' के अर्थ में किया है । इस 'शब्द' को 'मूर्ति' के पर्यायवाची-रूप में भी ग्रहण किया गया है । नागपंथी शब्द को मूर्तियोग के रूप में देखता है । इससे सहज समाधि मिलती है । अतः शब्द या नाद और मूर्ति की साधना अनिवार्य है । इसके माध्यम से निरात्म्य की अवस्था आती है । शब्द अनाहत नाद है । 'नाद' के प्रवर्तित बिन्दु अन्त में नाद में लीन हो जाता है । तब न नाद की स्मृति रहती है न बिन्दु की । यहाँ नाद शब्द या नाद को जागृत कर उससे व्यस्तमूर्खी करने की प्रक्रिया को 'तात्का लगाने की संज्ञा दी गई है । दसवें द्वार में नाद या पवन-बल खोलन की विद्या को 'तात्का खोलने' की संज्ञा दी गई है—

सबरहि तात्का सबरहि कोषी सबरहि सबद जगाया ।

सब-रहि सबद भू परका हुआ सबरहि सबद समाया ॥

मोरपनाथी ८२१०

राज्य में परतमात्र निहित है । राज्य सुदृढिर्मीन में सहयोगी है अतः मूल या अविच्छाद्य तब पहुँचने के लिए राज्य अपेक्षित है । इसी राज्य या 'नाद' के रहस्य का उत्पादन मुद-बन्धनों से होता है । यह (राज्य) स्थूल है और धार (राज्य) सूक्ष्म है ।

नाथ सम्प्रदाय मित्रता मुख्य पंथ रहा, अतः यहाँ सहाज संयम और इन्द्रिय मित्र के प्रति प्रबल आग्रह मिळता है। गोरक्षनाथ तथा अन्य नाथ साधकों की रचनाओं में नारीत्वाम की भावना तो मिळती ही है। साथ ही साथ नारी के प्रति अति भूया और उपेक्षा की भावना भी मिळती है। यहाँ नारी को 'सर्पिणी' बाथिनी' इत्यादि अद्विष्ट और असामानिक शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

मुझ्नी ऐसा काम न कौनै तापै बनी महारस सीधै ।

बिबसै बाथिनि मनमोहै रास सरोवर सोपै ॥

बानि बुझि रे मूरति छोवा बरि बरि बाबनी पोपै ।

नदी तीरे बिरया नारी संघै पुरया, ब्रह्म बीबल की आधा ।

मन्यै उपल मेर पिसि पड़ई, तापै कंठ मिनासा ॥

गोरक्षनाथी पृ० १३७ ।

इस सम्प्रदाय में धुन को विशेष महत्त्व दिया गया है। वह धून का स्वस्व मानता है उसके आचरणों के अनुसरण के प्रति विशेष आग्रह प्रकट किया गया है। जीवन में संयम और आचरण के प्रति लिखावात बनने का आग्रह प्रकट किया गया है।

### काव्य तत्त्व और अमिथ्यञ्जना प्रणाली

नायक्य के साहित्य में काव्य की अन्तर्लेखना नहीं मिळती है। अपने सिद्धान्त के तत्त्वों के निरूपण की भावना ही इसमें प्रबल है। अतः रामात्मक वृत्तियों की दृष्टि से रसात्मक अनुभूतियों की दृष्टि से, इस कर्ष के साहित्य में भावनाओं का उत्कर्ष सम्भव नहीं हो सका है। साधना के सिद्धान्तों के प्रकटीकरण या उसके स्वस्व-निरूपण और विस्लेषण के लिए यहाँ गोपन बाणी का आधार स्वीकार किया गया है। इस गोपन बाणी के सन्दर्भ में परिभाषिक या प्रतीकमूल्क शब्दों का विशेष महत्त्व है। नायक्य में बाणी के 'पूज' और 'अस्मू' शब्दों का उत्प्रेक्ष मिळता है। परा पश्यन्ती मध्यमा और वीररी के समान ही यहाँ भी बाणी के चार रूपों का उत्प्रेक्ष मिळता है —

चार बाणी बोलिय घर भीतर ते कीय कीय ।

सहज, संयम सुपाइ, अतीथ ॥

बापी सम्बन्धी 'बीजाखरों तथा 'अङ्कुरों' की बाल्पा यहाँ भी विद्यमान है — ॐ, बी रं, सौं रौं बी कती । इनसे आरण, भारण, बलीकरण उष्पादन आकर्षण स्वप्न और मोहन ये सात सिद्धियाँ मिलती हैं ।

प्राकृतिक व्यापारों के अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत प्रकृति के विभिन्न अंगों को प्रतीक रूप में यहाँ चित्रित किया गया है । कमल नदी बिबेनी घाट आदि के प्रयोगों में एक विशिष्ट अर्थ का नियोजन मिळता है । प्रस्तुत भावना या विद्वान्त निष्पन्न के लिए वस्तु-आवेश अप्रस्तुतों के प्रयोग की विधा यहाँ मिलती है । उक्त०—

तटवेसी सो तटवेसी सो अबधू गोरखनाथ बांपी ।

काल म मूल पुत्र नही छाया बिराबि करै बिन पांभी ॥

काया कृत्र तेरी बाड़ी अबधू सतगुरु बेल रपांभी ।

पुरि पाँपसी करै पाणिपापी नीकै बाको बरि बांभी ॥

गोरखबापी पृ० १०६ १०७३

इस अंश में साधक ने ज्ञान के विकास और प्रसार की भावना को व्यञ्जित करने के लिए 'वेति' के अप्रस्तुत विधान का आवेदन किया है । और प्रकृति के विशिष्ट व्यापार के माध्यम से ज्ञान के प्राबुधी और प्रसार की सूक्ष्म और सम्पूर्ण भावना को स्पष्ट और मूर्त व्यापार विधान द्वारा सम्पादित किया है ।

नाथ सम्प्रदाय में संयम और इन्द्रिय एवम् आत्मनिग्रह के प्रति प्रबल आग्रह व्यक्त किया है और इस सुन्दर में नारी के परिचाय और शम्भुत्व जीवन के प्रति चेष्टा पाव व्यक्त किया गया है । परन्तु साधना-मूलक अनुभूतियों और इससे प्राप्त आत्ममुक्त को व्यक्त करने के लिए यहाँ शम्भुत्वजीवन-स्वल्प को आत्मव्यञ्जना के माध्यम के रूप में ग्रहण किया गया है । ऐसे संदर्भों में रति भावना और संयोग गृहार के वर्णन भी मिलते हैं । उक्त०—

एक सतगुरि अपने परिचायों अबका बाल कृपारी ।

महिन्द्र प्रसार भी गोरप बोल्पा जाया ना भी टारी ॥

गोरप बापी पृ० १०६।१ १६।

इस अंश में साधक ने बाल कृपारी से अपने परिचाय का उल्लेख किया है ।

वस्तुतः साधक का वह चयन है कि बाल कृपारी ( जाया ) ने सद्गुरु ने परिचाय

त दिया । वह माया का पति हो गया । माया उसकी बखर्बर्तनी हो गई ।  
 ३. सम्बन्धों में ज्ञान के विरागपूर्व स्वरूप के प्रस्तावन के लिए अनुराग पूर्ण  
 प्रस्तुतों का प्रयोग इस काव्य-परिभाषा का मण्डन बन जाता है । ज्ञान-अनु-  
 त में भी रसात्मकता होती है । और रसात्मक घरातल से प्रस्तावित  
 कव्य मधुर तत्वों से संस्पष्टित रहते हैं । नायक साधनों की भावियों में स्वत-  
 ल पर इस प्रकार के सम्बन्ध मिळ जाते हैं । उदा०—

प्यार्न गुड बोळ तूबा अम्हारे, मन्सा बेठनि डांडी ।

उत्तमनी तांती बाजल कागी यहि बिधि तुम्हां पांडी ॥४॥

ज्ञान और गुड ये मेरे दोनों सूबे (तम्बूरे) हैं मन्सा इस तंबूरे की डांडी है ।  
 पर उत्तमनी अवस्था के तार कौ हैं, वो बज रहे हैं । तारों की ध्वनि से तुम्हा  
 घेत हो गई । इस लंघ में उत्तमनी अवस्था का वर्णन है । परन्तु संगीत  
 बन्धी अप्रस्तुतों का विधान यहाँ व्यापार-साम्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य की  
 ष्ट से विद्यमान महत्वपूर्ण है । संगीत में भावों के शोचन की शक्ति होती है ।  
 मन्सा अवस्था में अतहत नायक से साधक के भावकल्प का शोचन हो जाता है ।  
 जब समाधि में बास्ती बाँधने का उत्सुक छिड़ों में मिळता है । और इस  
 दर्म में बास्ती बनाने की विधा को रूपक में अंकित किया गया है । नायक  
 प्रभाव में भी अमृत को बास्ती कहा गया है । और बास्ती बनाने तथा पात-  
 ल के सापेक्ष व्यापार के माध्यम से अमूर्त व्यापार को मूर्त रूप देकर उसके  
 बास्ती करण का प्रयास किया गया है—

ईकीस बहूड भाठी निवावे पीबत सवा मतिबाळ

मन्सा कसाळिनि भरि भरि देखै बाझा बाझा मर ना प्यार्न ।

अमृत दापी भाठी भरिबा, ता मबै गुड छकोत्वा ।

मन महुबा तन बाहुबा कनासपटी अठारे मोत्या ॥१॥

अमर गुठा मैं मन भरि प्यारें बेस्या मायण बासी ।

बेठनि राखत यह भरि जानया, जुप जुन जानो तामी ॥२॥

इस सन्दर्भ में इक्कीस बहूड में भट्टी पुजाने का उत्सुक किया गया है ।  
 ( अमृत नायक ) पीकर योगी मत्तपाका रहता है । नैराश को यहाँ कसाळिनी  
 रूप चित्रित किया गया । मन 'महुबा' के रूप में तथा तन 'मट्टी' के रूप में

संक्रिष्ट है। ब्रह्मरूप (अमर गुफा) में आसन लगाकर सोयी अथवा अविचल भाव से इस मन्दिरा का पान कर रहा है।

प्रकृति के विविष्ट व्यापारों के अप्रस्तुत प्रयोग के अनेक अंग इस भाग के साहित्य में मिलते हैं। ज्ञान के अंकुरित होने के अमूर्त व्यापार को निरूपित करने के लिए यहाँ बपी और कृषि के संक्षिप्त व्यापार-विधान का प्रयोग मिलता है।  
उदाहरण—

उत्तर देश में मेहु बड़क्या दक्षिण आँचल छाया।  
पूरुब देश की पाणिग बिछुटी पछिम क्षेत्र में पाना ग्रह।  
वन पवना थोरी ओ छबो छत्रां साँरीड़ा समबाबो।  
बया धर्म जो बीज अयाबो इषी परि वेजे बाबो।

निछुटी या ब्रह्मरूप के लिए यहाँ उत्तर देश स्वाधिष्ठान के लिए दक्षिण दिशा इसा विगता के लिए पूरुब देश और सुपुम्ना के लिए पश्चिम क्षेत्र का प्रयोग किया गया है।

नाम साबको ने अपनी सावनाबारा की धोपठा के समर्पन में अन्य धर्मों तथा सावना प्रजापतियों की कटु आलोचना भी की है। गोरखनाथ एक स्थल पर बल्लभ पुरुष की उपलब्धि की बर्णा करते हुए सत्ययुग, त्रेता, द्वार और कल्बियुग में समानता या अमानता देखते हैं। त्रेता में राम ने रामायण की घटनाओं की रचना की जिसमें अज्ञानी के समान मर और जन्म संघर्ष कर के समाप्त हो गए। द्वार में कौरव और पाण्डवों ने संघर्ष किया। कल्बियुग में यह संघर्ष पूर्णतः वैयक्तिक रूप धारण कर गया अतः ज्ञान के माध्यम से निराहम्ब अहम्बा का व्यापार ही सर्व युगों में सर्वभूषण है (देखिए—गोरख बाणी—२१।१२३)। इस पत्र में अहिंसा सत्य की धोपठा के प्रति प्रबल आग्रह मिलता है। गोरखनाथ ने एक स्थल पर कहा है—

बीब सीब ना संनै आसा ना बपि आरथा रे बर मासा।

पाब न पाठिबा हंस गौरव, बरंत गोरपनाथ निहारि घोष ॥२२६॥

बीब में शिव का वास है बीब का भाँस माना शिव के भाँस आने के समान है।

करा दिया । वह माया का पति हो गया । माया उसकी बहुराशिनी हो गई । ऐसे सन्दर्भों में ज्ञान के विरागपूर्ण स्वरूप के प्रस्तावन के लिए अनुराग पूर्ण ब्रह्मस्तुतों का प्रयोग इस काव्य-गरिमा का मण्डन बन जाता है । ज्ञान-अनुभूति में भी रसात्मकता होती है । और रसात्मक बराबर से प्रस्तावित ब्रह्म मधुर तत्वों से संस्पर्शित रहते हैं । नाच साधकों की बाणियों में स्वतः-स्वतः पर इस प्रकार के सन्दर्भ मिल जाते हैं । उदा०—

ध्यान गुह बोळ तुंवा बन्हारे, मनसा केतनि डांडी ।

उनमनी तांती बाबज काबी यहि बिधि सुण्या पांडी ॥४॥

ज्ञान और गुह ये मेरे दोनों तूंबे (तम्बूरे) हैं । मनसा इस ठंबूरे की डांडी है । इस पर उन्मनी अवस्था के तार बजे हैं जो बज रहे हैं । तारों की ध्वनि से सुण्या सन्निहित हो गई । इस अंश में उन्मनी अवस्था का वर्णन है । परन्तु संगीत सम्बन्धी ब्रह्मस्तुतों का विधान यहाँ व्यापार-साम्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है । संगीत में तारों के शोषण की शक्ति होती है । उनमनी अवस्था में अनहुत तार से साधक के भावब्रह्म का शोषण हो जाता है । सहज समाधि में बाबजी बांधने का उल्लेख सिद्धों में मिलता है । और इस सन्दर्भ में बाबजी बनाने की विधा को रूपक में अंकित किया गया है । नाच सम्प्रदाय में भी अमृत को बाबजी कहा गया है । और बाबजी बनाने तथा नाच करने के साधक व्यापार के माध्यम से अमूर्त व्यापार को मूर्त रूप देकर उसके साधारणीकरण का प्रयास किया गया है—

ईकीस बह्नाड भाठी पिमावे पीवत सवा मतिबाल

मनसा कलास्त्रिनि भरि भरि हैं व्याछा व्याछा सर मां व्यास ।

बमूत बापी भाठी भरिया, ता मने गुह अकोस्वा ।

मन महुमा तन बाहुबा बनाउपती बठारे मोस्वा ॥१॥

अमर गुफा में मन भरि व्यावे जेस्या भावन बाबी ।

केतनि राबल यह भरि बाब्या, धुप धुग लागो ताळी ॥२॥

इस सन्दर्भ में इकीस बह्नाड में भाड़ी चुमाने का उल्लेख किया गया है । इसे ( बमूत नाच ) पीकर योगी मत्तवाला रहता है । मोराल को यहाँ कलास्त्रिनी के रूप चित्रित किया गया । मन 'महुमा' के रूप में तथा तन 'महु' के रूप में

बंदि है। ब्रह्मलोक (अमर मुखा) में जासक समाकर योगी अक्षर, अविषय भाव से इस मन्दिर का पान कर रहा है।

प्रकृति के विविध व्यापारों के अप्रस्तुत प्रयोग के अनेक अर्थ इस भारा के साक्ष्य में मिलते हैं। ज्ञान के अंकुरित होने के अमूर्त व्यापार को निरूपित करने के लिए यहाँ बर्षा और कृषि के संस्मिष्ट व्यापार विभाग का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण—

उत्तर देश में मीह बड़का दलित आँकल छाया।

पूरुब देश की पाण्डि बिछूटी, पश्चिम क्षेत्र में पाया ७१॥

मन पबला धोरी जो तबो, सतना साँदीड़ा समझाबो।

दया बर्ष मो बीज अचाबो, इषी परि पेने बाबो।

निछूटी या ब्रह्मलोक के लिए यहाँ उत्तर देश, स्वाभिष्ठान के लिए दक्षिण दिशा, इसा दिक्का के लिए पूर्व देश और सुपुम्ना के लिए पश्चिम क्षेत्र का प्रयोग किया गया है।

मात्र साबकों ने अपनी साधनाभारा की ओष्ठता के समर्पन में अन्य बर्षों तब साधना प्रजापतियों की कटु आलोचना भी की है। गोरखनाथ एक स्थल पर ब्रह्म पुत्र की उपलब्धि की बर्षा करते हुए वसुधाय, जेठा हापर और कस्तिमुम में समानता या अभिन्नता देखते हैं। जेठा में राम ने रामायण की पट्टाओं की रचना की जिसमें अज्ञानी के समान गर और बन्दर संघर्ष कर के समाप्त हो गए। हापर में कौरव और पाण्डवों ने संघर्ष किया। कस्तिपुत्र में दह संघर्ष पूर्णतः वैयक्तिक रूप धारण कर गया, अतः ध्यान के माध्यम से निराकम्ब अवस्था का आचार ही सर्व युगों में सर्वश्रेष्ठ है (देखिए—गोरख बाणी—२६।१२३)। इस पद्य में बहिष्ता तब की अश्रुता के प्रति प्रबल आग्रह मिलता है। गोरखनाथ ने एक स्थल पर कहा है—

जीव सीव ना संवे जाया ना बधि छाहवा रे हर माया।

भाव न पादिवा हंस मोत, बर्ष गोरखनाथ मिहारि पौठ ७१३५७

जीव में विष का बास है जीव का बाँस माया प्रिय के माँस छाने के समान है।



विरोध मूलक नर्सकार के द्वारा उल्टबासियों की बिना सिद्धों की रचनाओं में विशेष आकर्षण है। नाथ साहित्य में भी उल्टबासियों का व्यापक प्रयोग मिलता है। इस बिना में विरोधी धर्म-उपमानों का प्रयोग किया गया है। इसके साथ-साथ विरोधी धर्म के आरोपण प्रणाली के द्वारा भी उल्ट बासियों की रचना की गई है—

गोरखनाथ ने इसे उल्टी 'बरबा' कहा है।

नाथ बोले अमृत बाँधी बरिपैकी कंबकी मीरमा पाँची। टेक।

बाढ़ि पहरबा बाँधिले पूंठा पसे बमोंमा बजिले ऊँटा। १।

कठबा की डाकी पीपल बाँधे मुसा के सबह बिलइपा नासो २।

बडे बटाता बाकी बाट सोबे कुकिया बीरे पाट। ३।

हुकिले कुकर भुकिसे चोर, काई धनी पुकारे डोर।

ऊजड़ बेड़ा नगर मझरी लछि गामरि ऊर पलिहारी।

नवरी परि बूढ़ा भूधाइ पोषण हारा की रोटी खाइ। ५।

कामिनी बसे बंसीठी ताँवे बिनि बेसंहर बर बर काँपे। ७।

एक खु रडिया छटी बाई, बहु बिबाई सासु बाई। ८।

नवरी की बाकी पाँची कूँ आने उल्टी बरबा गोरख गाँव —

बागी पृ १४१ १४२

'नाथ अमृत-मूर्ध बाणी बोलता है। कंबकी बपी करती है, बल भीम रहा है। पाड़ा पड़ा है पूंठा उसमें बंधा है, समामा बसता है ऊँट बजता है कंब की डाक पर पीपल निवास करता है बूहे के ऊपर से बिल्ली का नाथ हो रहा है, बटोही बल रहा है परम्पु मार्ग बर गया है कुकिया पर बाट सो रही है कुत्ता चोरी के सिंघे पुना है चोर भूझता है। लकड़ी पड़ी है बूढ़ा मुँजों से रहा है, नवरी भीषे है पलिहारी ऊर है, कामिनी बल रही है बंसीठी ताप रही है। बगानेवाली की रोटी खा रही है बहु सास को जन्म बेटी है। नवरी का पानी कुँजों में जाता है, गोरखनाथ उल्टी बची गाते है। इस अर्थ में विरोध मूलक संदर्भों का नियोजन है परम्पु इसमें भावों की अन्तरिक एकता है। यह एकता ही इन उल्ट बासियों का मुख्य सौम्य है। कंबकी मानसिकता को ज्ञान की बपी कर रही है। परबबा अविनेकी मन है। यह भावा कन नाथ का

पूरा है। सामान्य भवत्वा में अचेतन मन माया के लुटे में बंधा रहता है परन्तु ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् माया चेतन मन के अधीन हो जाती है। ( यही लुटे का पड़ना में बंधना है) अर्थात् अचेतन मन है। जिसपर हमारा अर्थात् अनाहत मन का आभाव पड़ रहा है। कौमा युद्ध मन का प्रतीक है। ज्ञान उपलब्धि के पश्चात् अज्ञानमय ( पीपल ) का निवास बन जाता है। ज्ञान-उपलब्धि के पश्चात् मन ( मूढ ) के शर के माया ( बिछी ) का नाश हो गया। बटोही बळता है ( ज्ञान का साधक ), और ज्ञान की उपलब्धि के पश्चात् मार्ग का अन्त हो जाता है, जिसे मार्ग के एक जाने की संज्ञा दी गई है। अवस्था में बलने वाला मन ( मयरी ) ज्ञान की उपलब्धि के बाद समाप्त हो गया है, माया ( चूल्हा ) बल स्वयं बल रही है।

आत्मा पनिहारिण है। कुष्मिणी वह सागर है जो ब्रह्मरंध्र में ऊपर का मयी है। ब्रह्मसाक्षात्कार के पश्चात् माया ( कामिनी ) बल रही है और जीवात्मा ( बंधीठी ) टाप रही है।

कनक के माध्यम से साधना की विविध विधाओं का प्रकाशन इस धारा के साहित्य की अभिव्यक्तता प्रणाली का एक अन्य गुण है। काया-साधना के अन्तर्गत शरीर की व्याख्या नगर के शपक द्वारा की गई है। जहाँ शरीर को नगर माना गया है। चेतन मन कोठवाल है। काया का कोट ३६० पत्थरों से ( हड्डियों से ) निर्मित है। जनहर नगर की मटिका है जिसे चेतन मन कभी बहिर्मात्र बजाता है जहाँ परम ज्योति के दो दीपक बलते हैं। ( देखिए गोरखबानी —पृष्ठ १२० १२१ )।

हिन्दू साहित्य के सर्वत्र में सन्ध्या भाषा की यहाँ की जा चुकी है। संध्या भाषा के प्रयोग की विधा नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य में भी पूर्णतः विकसित मिलती है। इसमें अधिबालक अर्थ की जपेता प्रतीकात्मक मा कल्पना मूक अर्थ का ही विशेष महत्व है। नीचे नाथ साहित्य में प्रयुक्त संध्या भाषा से सम्बन्धित कतिपय शब्दों का सफटीकरण किया जा रहा है—

शब्द

सामान्य अर्थ

सन्ध्या अर्थ

माय

माय

कन्या, नैराश्या

उषा०—आकाश की घेन बाछा जाया घेन बुझावठरेन विहाय ।

गिननि मंडक में गाय विषाई कागद रही बमामा ।

मो० वा० १८६ ।

मृग

मृग

अम में आचक मल ।

अमल मोरपनाथ मंझिना पृठा मार्यो मृग भया अवभूता ।

मो० वा० ११६ १२० ।

धीम क्या हठिमे रे प्यंड बारी । मारिजे पंच मू मृगजा ।

मो० वा० पूष्ट ७३ ।

मुर्खम

मुर्खम

कुम्हळी का स्वामी साबक

उषा० ऐसा मुर्खम जोयी करे, बरती छोर्ये खम्बर भरै ।

छपिची नाविलि

छपिची नविलि

मामा ।

कहाँ निरंजन वासा कछीं कहीं काखी नाखिनी मीकक बरहीं मो० वा०

१९९ ।

मारो स्त्रीपतीं निरमळ बळ पैठी

माती माती स्त्रपतीं हसो सिंघि धावे

मो० बानी पु० ११६, १४०

मुर्खम

मुर्खम

बायू

ज्यू ज्यू मुर्खम जाव जाई सुखी कोटि नहि मळ रहाई । मो० वा० ६३ ।

अहेरी, पारखी

अहेरी पारखी

आत्मा साबक ।

आईसी मीक पारखी हाव नहीं प्यंजुनों मृग बांत न काहीं ।

मो० वा० ११६ ।

मेष

मेष

कक्या, मुल ।

उत्तर दैश में मैंह बक्या बगिच आंचक छाया ।

हंस

हंस

आत्मा प्राण बायू ।

मंग अमुन मोरी पावळकी रे हंसा पवन सुझाई जो ।

हंस पवन अ फूल्य पैठा मोरी नवी पलिहारी । २ ।

मोरपनाथी ६३ ।

मीन                      मीन                      बायू आत्मा ।

इक छय सींगभि नब छय बार्न । बेध्या मीन गगन अस्मान ।

४१ १२७ ।

कोयल मोरो भाँची बास्यो, गगन मछुलही बगछो घास्यो ।

१५६ २ ।

सिंह                      सिंह                      मायाप्रसिद्ध मन ।

परिया बपही सिंह ने बेरे । मृतक बसु शूद्रक उचरे ।

गो० ब० १५९ ।

आपस ही स्वयं बाब आपस ही गार्द । पो ब० १६६ ।

बाकिनी                      बाकिनी                      माया ।

बाकिनी उपाया बाकिनी निपाया बाकिनी पाकी काया । गो० ब० १४४ ।

छन्द

नाथ सम्प्रदाय की रचनायें 'सबरी' 'पर' 'बोहा' 'बोछा' और 'बीमार्द' में रचित हैं । गोरखनाथ ने 'फटपरी' में भी रचनायें की हैं इसका उत्सेह गोरखनाथ ने स्वयं किया है —

बासिनाथ माटी मखिन्ननाथ पूठा, फटपरी भभीसै गोरख अबभूठा । ८८ ।

परमेश्वर के स्वरूप की व्याख्या करते हुए भी गोरखनाथ ने 'छापी' और 'उमर' का उत्सेह किया है ।

ॐ कार निपकार लुद्धिम न अस्मूर्त्त पैड़ न पत्र फसै नहि पूज्ज ।

बाल न मूछ न बूय न बेका, छापी न छाप्प मुक नहीं बेका । २ ।

गोरख बानी ।

इस प्रकार 'छापी' और 'सबरी' इस काव्यधारा के अति प्रिय छन्द हैं । 'गोरखबानी' में गोरखनाथ की रचनायों का विमाजन 'सबरी' और पर इत्यादि के आकार पर हुआ है । 'नाथ सिद्धों की बाकियों में संकलित रचनायें भी 'सबरी' और 'पर' में बर्णीकृत हैं । उदाहरण—

रफ्त नंदन मैं जेमा पूज्य तहाँ अमृत का बाधा ।

समुद्र होई नु जरि जरि पीबे निपुन बार्ई सिवाया ॥

गोरखबानी पृ० ८।२९

काया ठरवर भाकड़ बिच डालें पानी भरनी लिच लिच ।

कलने कलने वह दिशि जाइ तिस कारण कोई सिध नवाई ।२।

नाथ सिद्धों की बानियाँ

अरपट नाथ जी की समदी पृ० २५ ।

यहाँ समचतुष्पत्तियों के साथ बोहे के प्रयोग की एक विशेष विधा मिलती है । प्रसोत्तरी के सुन्दर में बोहा और चौपाई का प्रयोग किया गया है । आञ्जोप्य सुन्दर की रचनाओं का एक व्यापक ग्रंथ यहाँ में रचित है, और इनमें राम रामियों का भी निर्देश मिलता है । 'गोरख बानी' के पद 'राम रामणी' 'राम बसाबरी' 'राम रामवरी' आदि छीपों में विभक्त हैं । (देखिए गोरखबानी पृ० ८३—१५८) । नाथ सिद्धों की बानियाँ के पद भी 'राम गुड' 'राम रामणी' 'राम कलंगडो' 'राम बलासी' 'राम राबरी' आदि के अनुसार बर्णित हैं । कतिपय सुन्दरों में श्लोक का प्रयोग भी मिलता है । उदा०—

मंथी उवाच—अही      आनी      महा      मूनी ।

बस      बस      बस      केन ॥

किम      अरब      कंठ      भाका ।

कूब      ध्यान      हो      उपेखरी ।१।१३७।

नाथ सिद्धों की बानियाँ मधुखी का श्लोक १०५ ।

पादकुसुम से निकसित प्यार छन्द का प्रयोग भी गोरखनाथ तथा अन्य नाथों की रचनाओं में मिलता है—

भरै न पारा बानी गाव, ससिहर सुर न बाद निवार । १ ।

पवन मोटिका रहनि अकाश महियन अतरि गगन कबिलास ।२।

पायझी डीडी गुनि कड़ाई कर्तत गोरखनाथ मखीर बतार्ड ॥

गोरखनाथ बानी पृ० ३६ १३६७

भाषा

हिन्दी में माधसम्प्रदाय की रचनायें 'गोरखबानी' और 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में संरक्षित हैं । इन रचनाओं की भाषा किसी विशेष युग की प्रतिनिधि भाषा नहीं है । इनमें किसी विशेष अंश की भाषा का स्वरूप-बोध भी

गयी होता है। इन रचनाओं की भाषा अधिक विकसलशील स्वरूप में है। अतः इनसे माया के प्राचीन स्वरूप का बोध नहीं हो पाता है और आधुनिक भारतीय कार्य भाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी, इन दोनों अंशों के भाषा-रूपों में उदाहरण इन रचनाओं में मिल जाते हैं। अपने वर्तमान रूप में इस संप्रदाय का साहित्य बोरकनाच तथा अन्य माय साधकों की भूल रचना नहीं है। लोक जीवन में इसका विकास मौखिक परम्परा में होता रहा है। इसके लिपि-बद्ध करने का प्रयास सत्रहवीं शताब्दी में किया गया। देश के विभिन्न अंशों में मौखिक रूप में विकसित होने के कारण इसमें भाषा की विविधरूपता नसगिक रूप में विद्यमान है। इन रचनाओं में भाषा की प्राचीनता के प्रति साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है। अनेक विद्वानों की यह धारणा है ये रचनाएँ पूर्वी अञ्चल (भागची से प्रसृत) की भाषा में रचित हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निश्चय तक निर्णय नहीं किया जा सकता है। आलोच्य भाषा की निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

(१) शब्द के अन्तिम में आए हुए संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रक्रिया—उदा० बाफना < स्वापना लसटी बापना बापी मो बा, विति < विविति पित विहूणा मूठा जोपी० मो० बा० १६ १०६।

(२) (i) अक्षर-संकोच और (ii) अक्षर-संप्रसारण (Syllabic contraction and Syllabic expansion) के उदाहरण इन रचनाओं की भाषा में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं—उदा० अर्पणन < आर्त्तिगन तरे अर्पणन काटे माया मो० बा० ७ १७। कंठ्य < कन्ठ्य काम श्रेय बापी पूर्ण कीया कंठ्य कीया कपूरे गो० बा० (iii) अभिन्नतर < अभ्यन्तर ठसि अभिन्नतर पर निर्माण मो० बा० विराधि < वृद्धि : पुद्गुप महि विराधि मो० बा० ३६।

(३) इस भाषा-मै-डा-डी, प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। ये प्रत्यय पोरखेनी अपप्रय और अवहट्ट में भी प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन व आधुनिक राजस्थानी के ये विशेष प्रचलित प्रत्यय हैं—उदा० गोरख बापुडा बोले अमृत बापी रे सामुही पाकनई बहुही हिहोले पगन मछन्ही बगले प्राप्पी इत्यादि।

काया छरवर माकड़ चित्त बाँधे पाने भरलै चित्त निर ।

कल्पै कल्पै बहु विधि जाह, चित्त कारण कोई सिध नवाई ।२।

नाथ सिद्धों की बानियाँ

चरफ्ट नाथ भी की सुखी पृ० २५ ।

यहाँ समस्तगुणियों के साथ दोहे के प्रयोग की एक विशेष विधा मिलती है । प्रश्नोत्तरी के सुन्दर्य में दोहा और चौपाई का प्रयोग किया गया है । ब्राम्होष्प सुन्दर्य की रचनाओं का एक व्यापक अंश यहाँ में रक्षित है, और इनमें राम रामियों का भी निर्वेचन मिलता है । 'गोरख बानी' के पर 'राम रामगी' 'राम बसावरी' 'राम रामगी' आदि शीर्षकों में विभक्त हैं । (देखिए गोरखबानी पृ० ८३—१२८) । 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' के पर भी 'राम बुद्ध' 'राम रामगी' 'राम कस्तमङ्गी' 'राम बसावरी' 'राम रावंगरी' आदि के अनुसार वर्गीकृत हैं । कतिपय सूत्रों में स्तोत्र का प्रयोग भी मिलता है । उदा०—

भंभी उवाच—अही ग्यानी महा भूमी ।

बहु ब्रह्म भस्म केज ॥

किम करय कैंठ पासा ।

कूँज ग्यान हो ज्येस्वरी ॥१६३७।

नाथ सिद्धों की बानियाँ भक्तीबी का स्तोत्र १०५ ।

पादकुलक से निकसित पवार छन्द का प्रयोग भी गोरखनाथ तथा अन्य नाथों की रचनाओं में मिलता है—

करै न पारा बाजे नाथ, सतिहर दूर न बाध विचार । १ ।

पवन बोटिका खुनि अकास महियस अतरि गमन कबिलास । २ ।

पापलनी डीवी सुनि अवाई कयैत गोरखनाथ मझिह बटाई ॥

गोरखनाथ बानी पृ० ३५ १३६७

भाषा

हिन्दी में नाथसम्प्रदाय की रचनायें 'गोरखबानी' और 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में संश्लेषित हैं । इन रचनाओं की भाषा किसी विशेष युग की प्रतिनिधि भाषा नहीं है । इनमें किसी विशेष अक्षर की भाषा का स्वरूप-बोध भी





(४) बहुवचन के किय निमित्त रूप सै-आं प्रत्यय का प्रयोग आठोन्न भाषा में मिलता है । इस का प्रयोग ब्रह्मिणी द्विती तथा पूर्वी पंजाबी में भी मिलता है । उदाहरण—बीटवां परबत डोसा रे बबधु, बायां बाप बिडारपा बी, सुसहें सभवां सहरि मनाई भुवां बीता मारपा बी, बीरख कई गुरू के सभवां तू ही बड़न हाराबी । गो० बा० १३४,

(५) संज्ञाओं के मूळ तथा विकृत रूपों में सविभक्तिक या संवोधात्मक रूप भी यहाँ मिलते हैं, परन्तु वे प्रयोग अति अल्प और सीमित मात्रा में हुए हैं । इन प्रयोगों में भाषा के कतिपय प्राचीन रूप देखने को मिल जाते हैं । उदा०—  
 देखे न सास्ने, कलेमे न कुरावे पुस्तके न बवां चाई गो० बा० पू० १० । (यहाँ-ए अधिकरण कारक का सविभक्तिक प्रयोग है) । सबदे बिबाई ऐसा मुहम्म वीर (ऐं करण कारक का सविभक्ति प्रयोग ॥) । करनं जाता करनं बरे (सम्प्रदान अधिकरण), इकोतर सै पुरिपा नरकहि चाई । —(हि सम्प्रदान का सविभक्तिक प्रयोग है) ।

(६) संज्ञा के परस्त्रीय प्रयोगों में ना परस्त्री विशेष महत्व का है । यह परस्त्री मराठी का है । और यहाँ इसका प्रयोग सम्बन्ध कारक के लिए होता है । उदा० पापाब बी देखी, पापाब ना देखता । १३१ । बामं बने सोइना बमबा मोनिवा गो० बा० १६ । सम्बन्ध के लिए ना परस्त्री का प्रयोग मिलता है । अग्रे मूळ रूप में यह सुबराती का परस्त्री है । उदा० अनेक बन्म नां पास्ति छूटे बनेत वीरख बवाडी । गो० बा १०१ । वनत वीरखनाथ मखिन्न नां पुता गो० बा० १२० चन्द्र मूर भी मुहा कीगहीं । गो० बा० ११० ।

(७) सर्वनाम रूपों के अन्तर्गत अन्हें माहुरा अम्हारे, तुम्हें भावि प्राचीन रूप हैं । उदा० छुछट हट मम्हे बधिबरा, १०५ माहुरा बोवी १०५ ध्यान गुरू बोऊ तूबा अम्हारे सतगुरु अन्हें परिभाष्या अवका बाब कूंबारी १०६ । बोजनि भूसा निरंजन बूका तुम्हें लीवां साकिम बाकीरे ११२ । ना तब बार न पारं, ११ । ताव बिबाएत विमुक्त सुम्हें १ । कून—कूण हनकूं भात पुतावे कीज पपासै पाई ।

(८) संज्ञावाचक विशेषणों में निम्नलिखित रूप विशेष उत्प्रेक्षणीय हैं—  
 बबने, बारा, इकवीस एकादसि चारि, उदा० बबपो पापा बसमान पंचवे

रवा अस्मान ७१ २५५, बार कका सोये सोला कका पोये, इकबीस सईस पटसी बाहु, पवन पुरिय जपमाछी २५।१ । नव पंड पृथी इकबीस मां ही, एका इति एक तारी । ६७ । चारि महाबर बारह बेसा । १३३ । मूडकी जुम व्यारि ती बाई । अठ्यासी सहस्र रवीसर कंडप व्याप्या असाधि विपनु की मामा ।

(१) क्रिया रूपों के अन्तर्गत-अ भविष्य का प्रयोग यहाँ नियमित रूप में हुआ है। इसी प्रकार भूतकाल के लिए-अ रूप का प्रयोग भी आलोच्य भाषा की एक प्रवृत्ति है। हम दो दृष्टियों से इस संवर्ग की भाषा पूर्वी भाषाओं के निकट की है। उदा०-अ भविष्य, हँसिवा खेसिवा रहिवा रंग काम कोष न कजिवा संभ । हँसिवा, खेसिवा माइवा गीठ, थिड़ करि राखा अपना बीठ । रंग भिन्न बसिवा, अजिनिमि बसिवा । १५ । हबकि न बोसिवा डबकि न बसिवा बीरे बरिवा पाव । ११ २७ । भूतकाल के लिए-अ प्रत्यय का प्रयोग जब मुख्य दोठ सममुख रासिका रस कुस बहिपईका रहि गईका छारं । ८५।१३ और सूरज दोठ नवन बिभूका, गईका बीर अंबारं । पृ० २६४ । कामाकई बीठिसे बीरख अबबूता । १३४ ४ ३२ ।

आरम्भ में इस प्रत्यय का प्रयोग केवल भूतकाल के लिए होता रहा परन्तु काल-काल से इसका प्रयोग वर्तमान के अर्थ में होने लगा था। गोरखबानी और 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में इस प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल और वर्तमानकाल इन दोनों के लिए मिलता है।

(१०) पश्चिमी जगत् में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के इष्य भविष्य से विकसित-ही रूप का प्रयोग (भविष्य के अर्थ में) होता है। पूर्वी पञ्जाबी बखिनी हिन्दी तथा प्राचीन राजस्थानी में इस रूप से विकसित-अ भविष्य का प्रयोग मिलता है। इस दृष्टि से आलोच्य भाषा पश्चिमी प्रभाव से संस्पष्ट है। उदा० जिहपर और सूर नहि जय तिहि बरि होसी बजियारा मूक मुनि बिना न बाजसी ये हुन्यो बड़ रोम । ७४।२३५ । जिबवा नारी नी संभ करेस्यो तो रोम रोम गरक पड़ी स्यो री । यो० वा० १२१ ।

(११) सहायक क्रिया के रूप में अछ का प्रयोग भी इस भाषा में मिलता है। उदा० हिन्नु आछे अलस्य की तहाँ राम अछे न पुराई । ९ २५ ६२ । नयन तिवर आछे, अंबर पानी मरता मडां लोकां मरन न जाणी । ८१।१।

शक्ति स्त्री रत्न बाधे, शिव स्त्री बाध, बारहकला रत्न बाधे सोसह कला  
चन्द्र १००।५१।

(१२) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के कर्म बाण्य का विकास हिन्दी तथा  
अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में कर्तृबाण्य के रूप में हुआ है। आलोच्य  
साहित्य की भाषा में यह विधा सम्पूर्ण रूप से विकसित मिलती है। उदा०  
अबबू ईस्वर हमारे चेला मनीषे मछीद बोझिए नाही।

### विद्यापति

बालि काशीन साहित्य में विद्यापति के काव्य का विषय महत्त्व है। एक  
शुभार कवि के रूप में इनकी क्वालि लोक-मानस और साहित्य के विद्वार्थियों  
को आकर्षित करती रही है। इन्हें 'मैक्स कोकिक' और 'अमित्र बपदेव' की  
उपाधियों से बाध भी सम्मानित किया जाता है। विद्यापति की रचनाएँ  
संस्कृत में हैं, अवहट्ठ में हैं और वेस्य भाषा (मैथिली) में हैं। मैथिली की रत्न  
नायें शुभार मूलक हैं और इन पर 'गीत गोविन्द' 'गाथा सप्तसई' तथा 'अमर  
छतक' का यथेष्ट प्रभाव मिलता है। गौड़ीय वैष्णव भक्ति से सम्बन्धित साहि-  
त्यिक रचनाओं के भाव-मूल के रूप विधान में विद्यापति के पदों ने भी महत्त्वपूर्ण  
योगदान दिया है। 'कृष्ण कर्णामृत' और 'वीरचोदित' के पदों के समान  
विद्यापति के पदों ने चैतन्य की भक्तिभावना का उत्प्रेषण किया है। विद्यापति  
के पदों की भाषा मैथिली है परन्तु कृष्ण-साहित्य के अध्ययन के ऐतिहासिक संदर्भ  
में विद्यापति के पदों की उपेक्षा अन्याय है। कृष्ण-साहित्य की परम्परा  
और उसके क्रमिक विकास के संदर्भ में हिन्दी के अन्तर्गत इनका अध्ययन  
अपेक्षित है।

विद्यापति के नाम से प्रचलित पदों की संख्या अति व्यापक है। अपने वर्त-  
मान रूप में ये पर किसी एक कवि की रचनाएँ नहीं हैं। बनेक कवियों के भाव-  
योग से ये वर्तमान आकार धारण कर सके हैं। विद्यापति नामक कवि का प्रथम  
उल्लेख 'सुकुटि कर्णामृत' नामक ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ में विद्यापति  
रचित पाँच श्लोक मिलते हैं। जिस विद्यापति की खोज हम कर रहे हैं वे कर्म-  
विद्या के समकालीन थे। कर्चदेव पश्चिमी बंगाल और बीरभूमि के अधिपति थे।

इन्के पन्नासु अनेक कवियों ने विद्यापति का उपमान ग्रहण कर रचनामें की है । इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि परवर्ती कास में 'पन्कार' या 'भीतकार' के स्थान विद्यापति की उपाधि का प्रयोग होने लगा था । इस प्रकार विद्यापति के नाम से जो पद उपलब्ध होते हैं उनमें मैथिली कवियों के अतिरिक्त बंगाली तथा नेपाली परवर्तीओं के पद भी सम्मिलित हैं । अठारहवीं सताब्दीके मध्य बंगाली विद्यापति नामक एक कवि ने 'पाँचासी काव्य की रचना की थी । प्रियदर्शन ने विद्यापति के पदों का जो संग्रह किया है उसमें कवि विद्यापति जयराम के अनेक पद संगृहीत हैं । इन प्रकार विद्यापति के नाम से उपलब्ध पदों में 'नव जयदेव' 'अमिनव जयदेव' आदि नामों का भी उल्लेख मिलता है—उदा० 'कान्हू रूप सिरि निव सिंह आएल कवि अमिनवजय देवा' न० ७७ १२

#### अथवा

'राजा शिव सिंह भूप नरायन कवि अमिनव जयदेव ।' न० १८ ।

कतिपय पदों में 'कविसेखर', और नव कवि सेखर' आदि नामों का उल्लेख भी मिलता है—अथवा

अनद विद्यापति मय कवि सेखर

पशुबी बीसेर कहौ

साह तुझे भूय सम नागर

माळति पैलिक जहाँ ।

ऐसे ही अन्य पदों में 'रामसेखर' 'कवि महाम' आदि नामों का भी उल्लेख मिलता है ।

जिस 'मैथिल कोटिल विद्यापति' की जगह हम कर रहे हैं वे 'समुक्ति बर्णा मृत' के विद्यापति से भिन्न थे । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उन्हें हम विद्यापति प्रियीम की संज्ञा देते हैं । विद्यापति का जन्म बिहार के दरभंगा जिले के अन्तर्गत बेनीपट्टी ॥ बिसपी ग्राम में हुआ था । विद्यापति का सम्पर्क अपने समय के अनेक राजाओं से था । इन सब के सम्मुख में विद्यापति ने पब्रौत किया है । परंतु अपने विषय में वे मोन हैं । सन् १८७१ में Indian Antiquary में पॉन बीप्ल ने विद्यापति पर एक टैरा किया । इन लेख में इन्होंने यह प्रस्तावना

की कि विद्यापति का मूल नाम बसन्त राय था । और उनके पिता का नाम ब्रह्मानन्द राय था । वे बाढ़ि के ब्राह्मण और मछोहर जिले के कर्म बोरके निवासी थे । राय कृष्ण मुखोपाध्याय ने १८७५ में 'बैद्य दर्शन' में बीम्स की स्थापना का वर्णन करते हुए यह कहा कि विद्यापति बिबिका निवासी थे और राजा ध्वज सिंह के समासुर थे । अपने निर्वय में परिवर्तन करते हुए बीम्स ने इस निबन्ध का बङ्गुरेजी रूपांतर १८७५ के Indian Antiquary में प्रकाशित किया । सन् १८८१ में प्रिचर्सन ने Marthuli Chrestomathy नामक ग्रन्थ में विद्यापति की बंसावली का प्रकाशन किया । नेपाल दरबार में हुकाबुज मित्र के 'ब्राह्मण सर्वस्व' की एक प्रतिकृति प्राप्त हुई है । इससे विदित होता है कि ई० सन् १४९० में इस ग्रंथ के लिपिकार श्री रघुबर ने 'समग्रिय सनुपाध्याय त्रिभुवन कुल कुमुदिनी के चन्द्र स्वल्प अतिपन्न के निष्कट सिंह स्वल्प सन्वरित एवं पवित्र की विद्यापति महात्म्य के वास अध्ययन किया ।

विद्यापति के पिता बसन्त ठाकुर राय गजेन्द्र के समा पवित्र थे । परन्तु विद्यापति की कल्पतिथि और कल्प संवत् के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का हमारे पास निश्चयात्मक साधन नहीं है । विद्यापति ने अपने एक पद में देवसिंह की मृत्यु और देवसिंह के राज्याभिषेक का उल्लेख किया है । यथा—

अनल रंजन कर लललल परबह

सक समुह कर मकिनी सती ।

चेठ कारि छठि बेठा निबिबो

बार बेहण्ड बाद कती ।

देव सिंह क पुहुनी जहू

मडाका मुर राम सक ।

गुह मुर राज निरै बय सोनठ

उपन हीन बय सिधिर जक ।

× × × ×

१ विष्णुनाथ—हरादित्य—कर्मोदित्य—देवास्तिव श्रीरंजन—बसन्त—  
बसन्त हरपति—रतिबर—रघु—विष्णुनाथ—पौताम्बर—बीन नामि—  
तुला—एकनाथ—भैया—कमीलास—बहरी माथ ।

( २०८ )  
 मित्रावह कइवर एहु मावए  
 मागव-मन आनख भयो ।  
 सिंहासन सिबसिंह बइठौ  
 उछने बैस बिसरि गयो ।

‘पुस्य परीक्षा’ का चन्द्र कवि कृत मैमिरी अनुबा ।

इस अंश में यह संकेत मिलता है कि अक्षय्य संवत् २२३ याके १३२४  
 १४०२ में देव सिंह की मृत्यु हुई, और सिबसिंह गद्दी पर बैठ । ऐसी धारणा है  
 कि सिबसिंह उस समय ५० वर्ष के थे । बिद्यापति सिबसिंह से दो वर्ष बड़े थे ।  
 इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि बिद्यापति का जन्म सन १३५० ई०  
 में हुआ था ।

बिद्यापति का सम्बन्ध ओइनवार बंध के राजाओं के साथ था । इनमें कीर्ति  
 सिंह और सिबसिंह के साथ बिद्यापति का विशेष स्नेह था । कीर्तिसिंह काव्य  
 और रक्षा प्रेमी थे । कवि ने इसका उल्लेख ‘कीर्तिसत्ता’ में किया है । यथा—

येहे गेहे कसौ काव्य ओठा तस्य पुर-पुरे ।  
 देखे-देखे रस जाठा दाठा अगत दुर्लभ ॥  
 ओतुजांत बबौगस्य कीर्तिसिंह महीपते ।  
 करोतु कबितु काव्य मय्य बिद्यापति कवि ॥

‘कस्मियुम में यह-यह कवि है काव्य के ओठा नगर-नगर हैं । रसजाठा  
 देख-देख में हैं, (परन्तु) अगत में दाठा दुर्लभ हैं । कीर्तिसिंह काव्य के ओठा  
 रसमर्मज्ञ और वानरीछ हैं काव्य रचना में समर्थ हैं । बिद्यापति उनके लिए  
 काव्य-रचना करते हैं ।’ ‘कीर्तिसत्ता’ की रचना सिध के समय बिद्यापति की  
 वायु क्या थी, इसका संकेत नहीं मिलता है । कीर्तिसिंह के पिता राम मधोदर  
 की मृत्यु सिध का उल्लेख ‘कीर्तिसत्ता’ में मिलता है ।

लखन सेन नरेस सिद्धिज जेहे पप्पर पंचवे ।  
 लं महुमासहि पडम पप्पर पञ्चमी कहिअने ।  
 राजपुत्र असलान बुद्धि विवरम बसे हारन ।  
 पास बहनि विगवाति राए गणेश्वर मारन ।

‘बच सदमन सेन सर्वत् का २५२’ बर्ष लिखा गया उसी बर्ष मधुमास के प्रथम पक्ष की पञ्चमी को राज-जोभी अलसान ने बुद्धि, बल और विक्रम में राजा मण्येस्वर से पराजित होकर, उनके निकट बैठ विश्वासघात कर उनकी हत्या करली। इस संदर्भ से यह स्पष्ट है कि ऋ० सं० २५२ या ई० सन १३६१ को गणेश्वर का बच हुआ। गणेश्वर की मृत्यु के पश्चात् ही कीर्तिसिंह ने अधिकार भार ग्रहण किया। इस कला के समय विद्यापति की आयु आठ बर्ष की रही होगी। इस आयु में ‘कीर्तिका’ ऐसी रचना के प्रयोग की सम्भावना ही नहीं हो सकती है। यदि विद्यापति के बच की प्रस्तावित तिथि को हम स्वीकार करते हैं तो यह निश्चय होता है कि कवि ने ‘कीर्तिका’ की रचना बहुत बाद में की होगी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ‘कीर्तिका’ की रचना के समय विद्यापति की आयु पचीस बर्ष की रही होगी। इसके लिए प्रस्तुत आधार दिए गए हैं। (क) प्रथमतः उन्होंने अपने को ‘सेन कवि’ कहा है—

एवं सेन साहस प्रमत्त प्राप्त्य कन्दोदयां  
पुण्यादि निमगाद्यसांके तरणी कीर्तिसिंहो वृष ।  
माधुर्य प्रसवस्वच्छी मुच्यथो विस्तार दिया सबी  
मावशिष्यमिच्छा सेन कवेर्विद्यापते ।

विद्यापति ने इस अंश में अपने को ‘सेन कवि’ कहा है। बाजोचकों की यह चारणा है कि सम्भवतः उनके सेन-बूट की आयु समाप्त होने के कारण उन्हें

१ श्री मनेन्द्रनाथ गुप्त ने विद्यापति के पद में उल्लिखित छन्दनाम और सकार्थ को एकत्र कर समन्वित किए बिना ही लिखा है ‘ऋ० सं० २६१ मयवा १४१२ में सिध सिंह श्री पर बैठे’। ‘विद्यापति कथावली मृमिका पृ० २।

महामहोपाध्याय उमेश मिश्र ने सन १८५१ ऋ० सं० (१३६०) मृत्यु ऋ० सं० १२७ ऋ० सं० १२७ (१४४६) के पश्चात् भागा है। विद्यापति ठाकुर पृ० ४८।

लेखन कवि कहते थे। परन्तु इस प्रकार के स्पष्टीकरण से वस्तु स्थिति का निराल सम्भव नहीं है। (२) द्वितीयतः तरुण सुसम दम्भ प्रकाश करके उन्होंने इस काव्य की सूचना में कहा है—वासुचन्द्र और विद्यापति की भाषा—इन दोनों को दुर्बलों का उपहास नहीं लगता। वह वासुचन्द्र परमेश्वर शिव के शिर पर घोभायमान होता है यह विद्यापति की भाषा निश्चय ही विदग्ध जनो को मोहित करती है। इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि तरुण-मुसल दम्भ प्रकाशन हेतु ही इस प्रकार की उक्ति कवि ने की है। परन्तु यह निष्कर्ष बहुत वैज्ञानिक और मूल्यवान नहीं है। यदि हम सम्बन्धित सम्बन्ध के अनुसार इस संघ पर विचार करें तो स्थिति अधिक स्पष्ट होगी। विद्यापति संस्कृत के भाषार्थ थे। संस्कृत में इनकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। शोक-बीजन के काव्य के लिए शोक भाषा ही अधिक उपयोजी होती है इस सत्य से वे परिचित थे। उस समय शोक भाषा में रचना करना विशेष साहस का काम था। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि 'राम चरित मानस' की रचना के समय मौलामी तुलसीदास के सम्मुख भाषाविषयक यही इन्कारमय स्थिति थी। 'कीर्तिछता' की रचना के समय विद्यापति के सम्मुख सामान्य जनजीवन था। यही कारण है कि विद्यापति के लिए यह अपेक्षित हो गया कि शोक-भाषा में रचना करने के कारण का स्पष्ट उल्लेख करें। इस उल्लेख में उनकी विनम्रता आत्मविश्वास और शोकभाषा की अनिवार्यता के स्वर मुखरित हैं।—यथा,—

वासुचन्द्र निजावह भाषा ।

बहु नहि सम्यह दुजन हाता ॥

ओ परमेश्वर हर शिर सोहह ।

ई निजह भावर मन मोहह ॥

का परबोधनों कवण मनावनो ।

लिमि नीरस मय रस सय तावनी ॥

पह मुरता होइनु महु भाषा ।

ओ बुझिअ सो करहि पमया ॥

मरमा बुझा दुनुम रन कवण कमाइ छल्ल ।

तजन पर अँजवार जन दुजन नाम मइम्स ।



एकदम बापी बुद्धम भावह  
पाठन रस को मम्म न पावह । २०।  
ऐसिक बमना सब जन मिट्ठा  
तँ तँसन बम्पओ बबहट्टा ।

कीर्तिछटा पट्टन १ ।

इस प्रकार यह प्रीति नाम की रचना है। अपने पिता गणेश्वर की हत्या के प्रतिशोध के लिए कीर्तिछिह को बौलपुर के मुख्तियार इस्माहीम शाह की सहायता सेनी पड़ी। यह १४०१ १४४० के मध्य बौलपुर का शासक बना। जत कीर्तिछिह ने इसी अवधि में इस्माहीमशाह की सहायता प्राप्त की होगी। यदि इतिहास इसे प्रमाणित करता है, तो 'कीर्तिछटा' की रचना विद्यापति न ५० ५१ वर्ष की आयु में की थी।

'कीर्तिछटा' में वर्णित 'पञ्च पञ्चवै' के स्वरान्त स० सं० २५२ को जयसबास ने बत्तीकार किया है। उनका कहना है कि यदि इसका अर्थ स० सं० २५२ किया जाय तो गणेश्वर की मृत्यु सन १३७१ में हुई।

गणेश्वर की मृत्यु के पश्चात् कीर्तिछिह ने असज्जन के विपरीत इस्माहीमशाह से सैनिक सहायता प्राप्त की थी। यह कटना सन् १४३३ की है। बौलपुर की स्थापना सन १३६४ ई० में हुई। इस्माहीम शाह सन ई० १४०१ १४४० तक बौलपुर का शासक था। गणेश्वर का वन इसी अवधि में हुआ होगा। परन्तु 'कीर्तिछटा' के अनुसार यह कटना १३७० ई० सन की है। जत जयसबास का यह संकेत है कि समस्त संवत् पर विचार करने से विधियों में संशय नहीं बैठती है।

इस समस्या पर एक अन्य दृष्टि से विचार किया गया है। इसका उल्लेख इस प्रसंग में आवश्यक है। कीर्तिछटा में बौलपुर का जो वर्णन उपलब्ध है वह इस प्रकार है—

तँ जाने पैसिखन नयर सो बोमापुर तनु नाम  
लोअन कैरा बट्टहा लच्छी के बिसराम ।

अन्व

पैसिखनउ पट्टन बाह मेसस बजोन मीर पकारिबा  
पासान कुट्टिय भीति भीतर गुह उपर डारिया ।

(जो नापुर) की मेसज को यमुना का पानी प्रासादित कर रहा था अथवा नगर जो यमुना के बच से प्रासादित था, सुम्बर मेसजता के समान लग रहा था। इस संदर्भ में आया हुआ नगर बीनपुर नहीं अपितु दिल्ली है। 'कीर्तिसिंह' बीनपुर के सुल्तान इब्राहिम साह के निकट नहीं अपितु दिल्लीके शासक फिरोज साह तुघलक के निकट सहायता के लिए गये थे। 'कीर्तिसिंह' में 'इब्राहिम साह' 'इब्राहिम साहि' 'इमराहिमसाह' 'इमराहिमसो' आदि रूपान्तरों का प्रयोग मिलता है। वह व्यक्ति विशेष की अपेक्षा एक सम्प्रदाय विशेष की संज्ञा है। प्राचीन सन्दर्भों से भी इसकी पुष्टि होती है।

असि कसियुव राजा सकेन्द्रो बभुबाबि-  
 योमिनी पुरमात्माय यो भुङ्क्ते सकलां महीम्  
 सर्वं सागर पर्यन्तां बसी अङ्गे नपथिपाम्  
 महामूर मुर बाघी नाम्ना धुरो-तिरम्वतु ।

अथवा

भावी भाव पाप उन्निवारा, सिधि नीमी जो मयक बाटा ।  
 नयन अस्त्रिनी मेपक चन्दा । पंच बना जो सग्न बनन्दा ।  
 योमिनिनु रिस्ती बड़ जाना । साह सिकन्दर बड़ मुक्ताना ।

ईस्वर बास 'सत्यवती कथा' । १२१८ ।

इस प्रकार कीर्तिसिंह तुमलक की सहायता के लिए दिल्ली गये थे। इतिहास से गह्रा संकेत मिलता है कि ई० सन् १३७२ में तुमलक मिलिसा जाया भी था। उस समय कीर्तिसिंह कुमायबस्ता में थे। इसका उल्लेख 'कीर्तिसिंह' में स्पष्ट मिलता है।

पामे अति कुमलो कुमार  
 हरि हरि सबे सुमर । ६० ।

बाली छन्द (मध बहका) ।

ततो ये कुमारो पश्यत बजारी  
 अहि लप्य बीरा नर्तना हू रात्री ।

कीर्तिसिंह द्वितीयपट्टक ।

इस प्रकार की भारता प्रचलित है कि सिवसिंह की अनुग्रहा से विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा', 'गौराक्ष विजय' और 'कीर्ति पताका' आदि कृतियों का प्रथम किया। सिवसिंह के पिता देवी सिंह की मृत्यु अन्त्यम संवत् २१३ संक सं० १३२४ (चैत्र कृष्ण पक्षी) को हुई, और उसी दिन सिवसिंह ने राम्यभार प्रहण किया। सिवसिंह ने साढ़े तीन वर्ष (या तीन वर्ष १ महीने) तक वासन किया। सन् १४०६ के अन्त्यम मिथिला पर बीरपुर तथा बंषाक के मुखमानों के आक्रमण हुए। पराभव की सम्भाक्ता देखकर सिवसिंह युद्धभूमि से पलायन कर गए। इस प्रकार की अनुपुति मिथिला में प्रचलित है कि सिवसिंह के पलायन के बत्तीस वर्षों पश्चात् विद्यापति ने सिवसिंह को स्वप्न में देखा। वषा—

सपन देखक हम सिवसिंह भूप

बतिस बरस पर सामर रूप

बहुत देखल मुस्मान प्राचीन

आब भेम्हैं हम आयु बिहीन

समुट समुट निम लोचन नीर

अकरहु काल न पावनि नीर

विद्यापति सुबतक प्रस्ताव

त्याग के करना रसक त्वभाव।

इस प्रकार विद्यापति अपनी मृत्यु निकट देखने लगे। इसके अनुसार विद्यापति सन १४१७ तक जीवित थे। परन्तु इसके पश्चात् भी विद्यापति के जीवित रहने के दृष्ट प्रमाण मिलते हैं। नैपाल दरबार पुस्तकालय में शाहजान खर्ख नामक कृति की हस्तलिखित प्रतिलिपि सुरक्षित है। इसके मूल लेखक हठायुध मिश्र हैं। विद्यापति के एक छात्र खड्गवर ने इसकी प्रतिलिपि की थी। सोमेस्वर ने मूल कृति से इसकी तुलना करके इसका पाठ-शोधन किया था। खड्गवर ने अपने आचार्य विद्यापति के लिये भी छन्द का प्रयोग किया है। प्राचीन काल में केवल जीवित व्यक्ति के लिए ही छन्द के प्रयोग की प्रथा थी। खड्गवर सं० सं० १४७ सन १४६० में विद्यापति से सिखा ग्रहण कर रहे थे। उस समय उनकी आयु ८० वर्ष से अधिक थी।

जों सहीदुद्धा ने सन १४६० तक विद्यापति का जीवन-काल-स्वीकार किया है। जों सुमत्र म्म सन १४६१ ई० तक विद्यापति को जीवित रहना स्वीकार करते हैं। 'विद्यापति-प्रवावली' ( बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ) के सम्पादकों ने सन १४१० तक विद्यापति को जीवित रहना स्वीकार किया है। उन्होंने अपना निष्कर्ष देते हुए कहा है, 'बाह्यान्तर्गत' के अन्त-उद्धारण के आधार पर निश्चित रूप से यह प्रमाणित होता है कि महाकवि विद्यापति सं० सं० १४१ तक जीवित थे। परन्तु यहाँ भी विद्वानों ने सं० सं० को ईसवी संवत् में परि-  
 वर्तित करने में मूक की है। कारण पहले कहा जा चुका है कि विद्यापति ने 'जनक रत्न कर कल्याणन रत्न' एक समुह कर अग्नि सती स्मिन्कर लक्ष्मणा-  
 और धकाश को एक मूख में विरो दिया है, तथा अपने समय के सिद्ध्य लक्ष्मणा-  
 का विवाद समाप्त कर दिया है। परन्तु उपर्युक्त विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं गया। अतएव किसी ने सं० सं० १४१ को १४६० किसी ने १४६१ स्वीकार किया जो सर्वथा असंभव है। वास्तव में विद्यापति के अनुसार एक संवत् के साप दिखाकर गणना करने से सं० सं० १४१ से १४२० ई० होती है। (विद्यापति प्रवावली भूमिका पृ० १३)। अतः इनके अनुसार विद्यापति का जीवन काल १४२० ई० में समाप्त होता है।

विद्यापति ने अनेक पदों में मसरतगाह का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यापति का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मसरतगाह से था। परन्तु किन मसरतगाह का उल्लेख विद्यापति ने अपने पदों में किया है उनके विषय में हमारे पास कोई स्पष्ट सूचना नहीं है। यथा—

बालन लोनुम बचने बोलाय हुति

अपिभ बरति बनि सरद पुनिम सति

अपस्व वप रबीनमा ।

बाडने देलति मयराज यमनि मा ।

काजेर रज्जित बरत मयन बर

मयर मिलत बनि अरुव वपक दल ।

भाग नेक मोहि मोय रबीनि बनि

गुण निरि कल भरे मोनि जाणि बनि ।

कवि शेखर भग्न अपहृत रूप देखि

राज नसरत साहू मजलि कमल मुनि ।

नसरत साहू सन १५२१-१५२८ तक बंगाल के शासक थे । अतः यदि इस पर को हुए विद्यापति की रचना मानते हैं तो विद्यापति का जीवन कास सन १५२०-१५२१ तक मानना पड़ेगा । इस प्रकार विद्यापति की आयु १७१ वर्ष की होगी । यह सम्भव नहीं लगता है । अतः यह पर आलोच्य विद्यापति की रचना नहीं लगता । यह पर 'राजतरंगिणी' में संकलित है और इसकी समाप्ति 'इति विद्यापते' से हुई है । एक अन्य पर 'जब कवि साखर' के नाम से लिखा है । यह पर भी नसरत साहू से सम्बन्धित है । अतः इस पर से भी विद्यापति की जीवनी के किमी बंध का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है । इसे आलोच्य विद्यापति की रचना स्वीकार करने में संकोच होता है ।

इस पर को सम्मुख रखकर विद्यापति की जीवनी पर एक अन्य दृष्टि से विचार किया गया है जो अधिक उर्ध्वसूक्त और वैज्ञानिक लगता है । सन १५८८ में फिरोज साहू का पीप एवं फरोज खाँ का पुत्र गंगासुरीन तुलना (छिपीय) बही पर बठा । पारम्परिक विमेल होने के कारण उसने शिवसिंह को बन्दी बनाया । शिवसिंह के मिता देवीसिंह ने उन्हें मुक्त कराने के लिए विद्यापति को दिल्ली भेजा । यह घटना १५९४-९५ की है । उस समय गंगासुरीन का भाई नासीखीन या नसरत साहू बही पर था । विद्यापति ने नसरत को प्रभावित

शिवसिंह ने विद्यापति के संरक्षण में अपने परिवार को नेपाल की तराई में छतरी के राजा पुरादित्य 'मिणिगाम्ब' के पास राजबनौली भेज दिया । पुरादित्य के आग्रह पर विद्यापति ने छिखनावली की रचना की—सर्वादित्य सनूजस्य श्रोणवार महीपतेः । गिरिनारायणस्याहो पुरादित्यस्य पाण्डायन । अल्प भुस्तोपदेशाय कौतुकाय बहुमुताम् । विद्यापतिस्मसांप्रीत्यै करोति । छिखनावली ।—छिखनावली, श्लोक १२ ।

विद्यापति ने 'छिखनावली' की रचना सन १५०८ में तथा 'धीमदभागवत' की प्रतिक्रिया सन १५१८ में की थी । इस प्रकार अथर्वन बारह वर्षों तक विद्यापति राजबनौली रहे । मिथिला का शासन बही से शिवसिंह की पत्नी लक्ष्मी देवी करती रही ।

क्रिया । नसरत ने सिवसिंह को मुक्त किया । बादशाह नसरत ने विद्यापति को 'कवि राखर' की उपाधि दी । यही कारण है कि नसरत से सम्बन्धित पदों में विद्यापति ने 'कवि बेखर' का प्रयोग किया है ।

विद्यापति की भाषा के निर्णय में नरसिंह देव के कनकाङ्गा छिन्नाम्ब का भी उल्लेख किया जाता है । इसकी स्थापना 'मयास्त्रिम्ब' नाम से सूर्य की प्रतिष्ठा हेतु हुई थी । इस छिन्नाम्ब का निम्नलिखित ग्रंथ व्यास देने योग्य है ।

पृथ्वी पति त्रिबरो नम (सिंह-जा)-सी  
दासी विप्रेन्द्र कपुञ्जम्ब कीर्ति राशि

X X X X

ज्येष्ठ मासे छकाये सप्तदशमनाह्रिते मिरा  
बुद्ध वारक्रीय चन्द्र बुद्ध वासैतामिपधानि ।

ब्रह्मन्त नाम पति के अनुसार 'वराहवन्दनाह्रिते' का गुरु वर्ष हुआ—  
सा=२, अस्म=७, वसन=१३ अर्थात् १३७५ सकार या १४२३ ई० । नरसिंह देव के द्वारा विद्यापति का कल्पित सम्बन्ध था । उनकी सर्वप्रथमी बीरपती के लिए विद्यापति ने 'दास वाक्यावली' की रचना की । अतः इस अवधि में विद्यापति के जीवित रहने में संदेह नहीं होता है ।

मित्र मित्र विचारकों के अनुसार इन पुस्तों में जो विवेकानाये हैं हैं उनके हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ हैं । अध्ययन की पुष्टि की दृष्टि से विभिन्न विचारकों के मत का संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है ।

यह्यहोपाध्याय उमेश मिश्र विद्यापति का जन्म सं० सं० २४१ अर्थात् १३६० ई० के लगभग मानते हैं । अपनी स्थापना के लिए वे निम्नलिखित कारण देने हैं—

(क) विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर महाराज यनेस्वर सिंह के समाधि स्थल से । उनकी समा में वे अपने पुत्र को ले जाया करते थे । महाराज यनेस्वर की मृत्यु १५२ कल्प संवत् में हुई थी । विद्यापति की माता उस समय वय से कम १० ११ वर्ष की अवस्था रही होगी । पशु इस प्रकार के निधन के लिए विपरीत कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं देने ।

(क)

राजनीति ।

की भाषा

(ग)

की शिक्षा

यह वह

(विधि-)

की

२३२ व

विचारों

के की

की छा

है । २

है की

अनुसार

हुआ है

४

सं० २

।

१३६)

आदि

राम

की ।

पक्षों

६ १४१८ में शीघर के अधिपति पुराविल के आग्रह में राजबगौली में इन्होंने 'सिक्कनावलि' की रचना की।

७ १४२८ में 'मायवर्ण' की अनुकृति की।

८ १४३०-४० के बीच पद्म सिंह और मिस्साय देवी के नाम से एक पत्र और 'श्रीव सर्वस्वसार' तथा 'गंगा बागपावली' की रचना की।

९ १४४०-६० ई० के मध्य 'विभाष सागर' 'दान बागपावली' और 'पुराणसिद्धि सरमिणी' की रचना की।

१० सन् १४६० ई० में स्मृति के अध्यापक के रूप में शास्त्रसर्वस्व का अध्यापन किया।

आचार्य रामकृष्ण शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में विद्यापति के समय का निर्धारण करते हुए यह कहा है कि विद्यापति सिद्धिह के अति निकट सम्पर्क में थे। सिद्धिह का राज्याभिषेक सन् १४०३ के लगभग हुआ। अतः विद्यापति की जन्म तिथि १३६०-६३ के मध्य निर्धारित होती है।

विद्यापति की दृष्टिमाये

(क) कीर्तिलता — इस कृति की भाषा 'अवहट्ठ' है जिसे विद्यापति ने 'देविस ब्रजभाषा' कहा है।<sup>१</sup> अवलोकन से कीर्तिसिद्धि के पिता राय क्येसर की हत्या पर निषिद्धा पर अधिकार कर लिया। कीर्तिसिद्धि और वीरसिद्धि ने जोनापुर के गुप्तान की सहायता से अवलोकन से पितृव्य का प्रतिघोष किया तथा निषिद्धा का उद्धार किया। यही इस कृति की कथा है। काव्य-रस की दृष्टि से यह श्राव्य-अपभ्रंश के अति काव्यों की परम्परा की कृति है।<sup>२</sup> विद्यापति ने इसे 'पुस्त्य कहानी' कहा है—

१ सकल बाणी बुझन भावह।

पाठ कर रस को मम न पावह।

देविस ब्रजभाषा सब जन मित्र।

तँ तँसल जगमो अवहट्ठ।

कीर्तिलता प्रथम पस्तक।

२ 'इस प्रबंध में ध्यान देने की बात यह है कि विद्यापति की कीर्तिलता में उस समय के देस भाषा साहित्य के गुणानुवाद मूलक चरित-काव्यों के जनक प्रभास मिश्र हैं। यह पुस्तक उस युग के गुणानुवाद मूलक चरित काव्यों में सब से अधिक प्रामाणिक है। हिन्दी साहित्य का आरिफान। पृ० ६४।



(ख) बिद्यापति के प्रधान आश्रयदाता धिबसिंह ५० वर्ष की अवस्था में राजगढ़ी पर बैठे। अतः उनका जन्म २४३ सन्मम संवत् में हुआ। यह भी सोचो की वारणा है कि कवि बिद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े थे।

(ग) 'कीर्तिकाव्य' में बिद्यापति ने अपने को 'लेखन कवि' कहा है। अतः वे कीर्तिसिंह और वीरसिंह की वास्यावस्था के साथी (लेखने के योग्य) रहे होंगे। अतः यह अनुमान होता है कि बिद्यापति २५२ सन्मम संवत् में १० वर्ष के थे। (देखिए—बिद्यापति ठाकुर पृष्ठ—४६ ४७)।

श्री लोचननाथ और धिबनन्दन ठाकुर के अनुसार बिद्यापति का जन्म काल २५२ सन्मम संवत् या १३५१ ई० है। उनकी प्रस्तावना है 'किञ्चिदस्ती है कि बिद्यापति धिबसिंह से दो वरस बड़े थे। राध्यामिषेक के समय उनकी आयु १० वर्ष की थी। इस किञ्चिदस्ती के अनुसार २५३ सन्मम संवत् में बिद्यापति की उम्र ५२ वर्ष की थी और उनकी मृत्यु ६० वर्ष की उम्र में हुई। उनकी प्रथम पुस्तक 'कीर्तिकाव्य' की रचना २५२ सन्मम संवत् के समय हुई थी। इस समय बिद्यापति कम से कम बीस वर्ष के रहे होंगे। इस प्रकार अनुमान से मात्तुम पड़ता है कि बिद्यापति का जन्म लगभग २४२ सन्मममय में हुआ होगा। (देखिए—महाकवि बिद्यापति पृष्ठ ३८ ३९)।

डॉ० निजानबिहारी मजूमदार के अनुसार बिद्यापति का जन्म-समय स० सं० २६१ (१३८० ई०) है। अपने निर्णय के लिए वे निम्नलिखित कारण देते हैं —

१ बबामुद्दीन और नसरत शाह-सम्बन्धित पदों की रचना बिद्यापति ने १३८१ ८६ में मध्य की थी।

२ सन् १४०० ई० के लगभग बिद्यापति ने नैमियारण्य निवासी बेबीसिंह के आदेश से 'नू पञ्जिया' की रचना की।

३ १४०२ १४०४ ई० के मध्य इब्राहीम ने कर्तिसिंह को मिर्जिता का राज्य दिया। उसी समय बिद्यापति ने 'कीर्तिकाव्य' की रचना की।

४ १४१० ई० में बिद्यापति के आदेश से 'काव्य-प्रकाश विवेक' की टीका की गई।

५ १४१० १४१४ ई० के मध्य धिबसिंह के राज्यकाल में उन्होंने दो तो पदों की रचना की।

१ १४१८ में होमबर के अधिपति पुराहित के आश्रय में राजकीर्ती में इन्होंने 'विद्यापति' की रचना की।

७ १४२८ में 'माधव' की अनुक्ति की।

८ १४३०-४० के बीच पद्य सिद्ध और विद्यापति देवी के नाम से एक पद्य और 'श्री स्वस्वतार' तथा 'बंग बाभ्याबली' की रचना की।

२ १४४०-१० ई० के मध्य 'विद्यापति सागर', नाम बाभ्याबली और 'दुर्गायति तरंगिणी' की रचना की।

१० सन् १४६० ई० में स्मृति के सम्पादन के रूप में बाहुमन्तरस का सम्पादन किया।

बाबाजी रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में विद्यापति के समय का निर्धारण करते हुए यह कहा है कि विद्यापति विजसिंह के अति निकट सम्बन्ध में थे। विजसिंह का राज्याभिषेक सन् १४०३ के लगभग हुआ। तब विद्यापति की जन्म तिथि १३२०-२३ के मध्य निर्धारित होती है।

विद्यापति की रचनाएँ

(क) कीर्तिका — इस कृति की भाषा 'अवहट्ठ' है जिसे विद्यापति ने 'देसिय बजना' कहा है।<sup>१</sup> अष्टाङ्गल ने कीर्तिसिंह के पिता राम गम्बर की हत्या पर विमला पर अधिकार कर लिया। कीर्तिसिंह और वीरसिंह ने कोनारपुर के मुठान की लड़ाई से बलराम से भिद्यन का प्रतिशोध लिया तथा विमला का उद्धार किया। कड़ी इस कृति की रचना है। काव्य-रस की दृष्टि से यह प्राकृत-अवहट्ठ के अति काव्य की परम्परा की कृति है।<sup>२</sup> विद्यापति ने इसे 'पुष्प बजानी' कहा है—

१ सकल बाबी मुहमन जावद।

पाउंर रस को भग्न न जावद।

देसिय बजना सब जन मिट्टा।

तं तीक्ष्ण बम्पजी अवहट्टा।

कीर्तिका प्रथम पदम् ।

२ 'इन प्रबंध में प्यान देने की बात यह है कि विद्यापति की कीर्तिका में उस समय के देश भाषा साहित्य के सुभासुवाद मुक्त चरित-वाक्यों के अनेक लक्षण मिलते हैं, यह पुस्तक उस युग के सुभासुवाद मुख्य चरित-वाक्यों में सब से अधिक प्रासंगिक है। हिन्दी साहित्य का आधिकार। पृ० ६४।

पुस्य कहाती हौं कहूँ बसु पत्पावे पुन ।

मुक्त सुभोजन सुमनजन देवहा बाद सुपन्न ।—कीर्तिस्तो—प्रथम प्रस्तव ।

इस प्रकार 'कीर्तिस्तो' एक ऐतिहासिक चरितकाम्य है । अपभ्रंश चरित काम्यों के कल्पित तत्त्व इस कृति में उपलब्ध हो जाते हैं । धोता-बक्का के माध्यम से कथा कहने की परम्परा अपभ्रंश चरित-काम्यों की प्रमुख विधा है । इसका उल्लेख निम्नलिखित पृष्ठों में हो चुका है । 'कीर्तिस्तो' में भी कथा धोता बक्का की बाती के माध्यम से प्रस्तावित और निरूपित है । भूमी प्रण करती है और उत्तर में भूय कथा कहता है । तथा

‘भूमी पुच्छइ मिय पुन की संसारहि सार’ ।

भूय उत्तर देता है—‘मामिनि बीरम मानसो बीर पुस्त कह्यार’  
अर्थात् ‘मामिनि । मान के साथ बीरमि खना और बीर पुस्य का जन्मलेना ।’  
भूमी (पुन) निन्नासा करती है—‘बीर पुस्य कह बसिमजह नाह न बस्यइ नाम,  
नह छे आहें फूर कहति हजो जाकनुइन काम’—नाथ यदि कहीं बीर पुस्य जन्मा  
हो तो आप नाम क्यों नहीं लेते ? यदि अस्ताह पूर्वक कहें तो मैं सुनकर हत  
होऊँ ।’ भूय पुन उत्तर में कहता है—

पुस्य हुजुर्त बकिरावे बासु कर कम पसीज

पुरिस हुजुर्त रकुमज केन बसे रावय मारिय ।

पुरिस मगीरय हुजुर्त केने मिय पुछ छरिउ,

परसुराम बह पुरिस केने बसिमज कम करिजउ ।

अब पुस्त पसंभसो राय गुरु किर्तिसिंह नमचेसुज

जे सपु सगर सगहि परबप्य बीर छरिय पुन ।

‘पुस्य राजा बलि हुए, जिनके जाये जिन्हु ने हाथ फँकाया । पुस्य रामचन्द्र  
हुए, जिन्होंने शक्ति से रावण का नश किया । पुस्य राजा मगीरय हुए जिन्होंने  
अपने क्रुद्ध का छठार किया । परसुराम पुस्य ने जिन्होंने शत्रुओं का नाश किया ।  
और पुस्य रामचन्द्र गजेश्वर के पुत्र कीर्तिसिंह हैं जिन्होंने शत्रुओं का नाशमर्ग  
कर मुहम्मद में अपने पिता का प्रतिरोध किया । इसके पश्चात् कथाक्रम से  
चलती है । द्वितीय सूचीय बीर अनुर्ब पसंभों में क्रमशः इसी रूप में भूमी प्रस्त करती

है, तथा उत्तर में शून्य कहा कहता है। इसके परचातु कवि सत्यम प्रसंता और  
दुर्जन लिखा करता है।

ते मोक्ष भक्तमो निरुद्धि गए महसमो कम्ब  
बल खेका सुत पुसिहृद सुखन परसह सन्ध

× × ×

बनसजो विरहूर विरह भयद अमिन्न विनुकह चन्द  
सम्मान चिन्तइ मनहि मने मिल करिअ सब कोए  
मेन कहुना नुगह बइ दुग्गम वीर न होए।

‘बलि मेरा साधारण काव्य कविति प्राप्त करते तो वह मेरा लीलाव्य है  
बल इसे लीला-लीला की वस्तु समझ कर इसकी निम्न करने। सुखन इसकी  
प्रसंता करने। निपहार निप जगत्कित करता है। बनसजो समुद्र बपी करता है।  
सुखन सब को मिल समझ कर सब की धुधकामना करता है। मेरी मुक्ति का  
अनुवादन करने वाला दुर्जन मेरा शत्रु नहीं है।’

‘कीर्तिष्ठा’ में पद्य के अतिरिक्त पद्य का प्रयोग भी किया गया है। अतः  
इसे संस्कृत के पद्य काव्य के सम्बन्ध की दृष्टि भी बड़ सकते हैं। अपभ्रंस के  
बोहा, एता, अपर छन्दों के अतिरिक्त इसमें कीर्तिष्ठा, भुवन प्रपाठ, बालि छन्दों  
का प्रयोग हुआ है। इस दृष्टि में संस्कृत और प्राकृत के बीच भी मिलते हैं। इन  
दृष्टियों से वह भाषिकालीन साहित्य की प्रतिनिधि रचना है।

अपनी वरमरा के अन्य अति काव्यी की अपेक्षा ‘कीर्तिष्ठा’ पूर्णरूप से  
इतिहाससाक्ष्य दृष्टि है। मूल का सामान्य जीवन इस दृष्टि में प्रतिनिधित्व  
है। राम भगवत की मातृ के परचातु विविता में अध्यवस्था जायई। इसका  
कसैय दह बंध में मिलता है —

ऊपर एक गए नेता चोरे कपरि बर स्तिरिधज।  
दान नीमजनि यहिअ बाम मत्त पन्थ लिमजिअज।  
अक्यर रम सुगमनिहार गहि कं पुल मनि विजगारि मर।  
त्रिपुति निरोद्धि सन्ध गुणे वा पन्थ बंध लम्प गदं ॥

मनेस्वर की इत्या के परचात् जसकान को परिताप हुआ । उसने मनेस्वर का राज्य उनके पुत्रों को देना चाहा । परन्तु राजा की इत्या ने अपनी प्रतिष्ठा नहीं मान्ते थे । माता मंत्री तथा अन्य गुरुजनों ने राज्य को स्वीकार करने का उपदेश दिया, परन्तु राजकुमारों के सम्मुख एक वाक्य था—

माता भयह ममतायह मन्त्री रजह नीति ।

मज्जु विजारी एकह पह भीर पुरिस को पीति ।

मान किना भोजना सतुह देवस राज ।

सरज पइठे बीसना तिमिठ काजर काज ।

‘कीर्तिसत्ता’ काविकाकीर्ण साहित्य में बीर काव्य-धारा की प्रतिनिधि रचना है । विद्वानोंने इसे विद्यापति की प्रथम रचना के रूप में स्वीकार किया है । परन्तु काव्य-रूप, अधिव्यञ्जना प्रवाही और भाषा के आधार पर यह कवि की प्रौढ़ कृति है ।

(ख) कीर्तिपदाका कीर्तिसत्ता के समान यह कृति भी महाभारत की रचना है । इसकी एक अश्विष्ठ प्रति मैसूर दरबार पुस्तकालय में सुरक्षित है । अतः इसके सम्पूर्णरूप पर विचार करना सम्भव नहीं लगता । इस कृति का मुख्य उद्देश्य शिवसिंह का कीर्तिवर्णन सम्वत्ता है । संस्कृत श्लोक के अतिरिक्त इसमें नव के अंश भी मिलते हैं । शिव तथा मनेस्वर की कल्याण के परचात् कृति आरम्भ होती है—

पच्छिम मण्डकि बडवुणे भीषम कीर महेन ।

बाभी महुर महुन् रस पिमठ सुजन सबकेन ।

कवि ने शिव सिंह का यक्षवर्णन बिन पंक्तिओं में किया है अन्तर्गत एक अंश यहाँ दिया जाता है—‘बम्म हेसी ब्यवहार लोक गरि, महुह पर केद । सबकों बर ठम्माह पकठि बलि अमियम । बाहर बाने रसह । बारिह सणोपरि पही अमियम ।

” इस रचना में श्रुतार कतिपय नव आकर्षक हैं । यक्षवर्णन के परचात् निम्नलिखित अंश है—

एवं भीतिवसिह देव रूपते सज्जाम्भारत यशो

मापमिष्ठ प्रतिपत्तनं प्रतिविष्टं प्रत्यवर्णं सुभुव ।

(ग) गोरक्षविजय : यह एक अंक की नाट्य कृति है । इसके कथोपकथन संस्कृत और प्राकृत में हैं । नील मैसूर में हैं । इस कृत की मूल भाव भूमि गोरक्ष-मत्स्येन्द्र

कथा है । बर्बनारी मटेखर की भाषा से माटक का ज्ञात होता है । इसकी एक मात्र कविता प्रति नेपाल-शासक-पुस्तकालय में सुरक्षित है । बाह्य चर्चों में यह प्रति निहित है । उनमें १-७ संख्या के पत्र नहीं हैं । ८, ९, ११, १२ पत्रों में एक-एक पंक्ति ही है । ( देखिए विद्यापति परावर्ती, पृ. ७३ ) ।

'मुराजिमा' 'मुख परीक्षा' 'छिन्नावली', 'सर्वसर्वस्वसार' 'दानवासा-वली' 'दुर्वा मति परीक्षिणी', 'मन्त्रावली' 'वर्णमाला' 'अभिषेक' आदि विद्यापति की संस्कृत की रचनाएँ हैं । 'मुराजिमा' की रचना देवचिह्न की भाषा से नेपालभाषा में हुई । 'मुख परीक्षा' 'पञ्चमूर्ति' और 'हिन्दोपदेश' आदि के सम्बन्ध की रचना है । इस भाषा का प्रथम स्वरूप की प्रेरणा से हुआ था । 'छिन्नावली' में पञ्च-वैष्णव बरिपाटी का आदर्श प्रस्तुत किया गया है । 'सर्वसर्वस्वसार' की रचना मधुचिह्न की पत्नी विस्वासेवी की कविता से हुई । 'मन्त्रावली' में मन्त्र के स्वरूप-कीर्तन से सम्बन्धित रचनाएँ हैं । 'दुर्वा मति-परीक्षिणी' में दुर्वात्मक सम्बन्धी रचनाएँ हैं । 'वर्णमाला' में वर्णों का विभाग है । 'अभिषेक' एक नाटिका है ।

( ५ ) परावर्ती — विद्यापति के परावर्तीजीवन में प्रचलित हैं । परावर्ती काळ में विद्यापति की भाषा-शैली के अनुसार परावर्ती की रचना हुई है । अतः इन पत्रों में से विद्यापति के पत्रों को पृथक् कर लेना ठीक नहीं है । विद्यापति के पत्र प्रायः लोककविता से संरक्षित हैं । नेपाल और विभिन्न से जो प्रतिष्ठा अलम्बन हुई है उसका अनुकूलन विद्यापति के अनेक पत्रों पर पाया हुआ है । अतः इन पत्रों की भाषा और उनके स्वरूप में अनेकानेकता मिलती है । परन्तु कविपुत्र हस्तलिखित प्रतियों प्राचीन हैं, तथा इनके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि इनके लिपि-रक्ष करने की योजना विद्यापति के निधन-परावर्ती काल में हुई होगी । इन पत्रों में भाषा का प्राचीन रूप भी उपलब्ध हो जाता है । नीचे मधुचिह्न प्रतियों और सम्पादकों का उल्लेख किया जाता है :

( ६ ) नेपाल परावर्ती — यह परावर्ती नेपाल शासक पुस्तकालय में सुरक्षित है । इसकी लिपि प्राचीन वैदिकी है । इसमें विद्यापति के कविरिक्त अन्य कवियों के पत्र भी संरक्षित हैं । अनेक पत्रों में किसी कवि के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है । जो कुछ था ने इनके आधार पर 'विद्यापति जीनि तथा'

( Or The Songs of Vidyapati Motilal Banarasi Da. १९१४ ), का सम्पादन किया है। इनके पूर्व लगेन्द्रनाथ भुत और लखन मिश्र तथा दिमानविहारी मधुसूदार ने भी विद्यापति-पदावली का सम्पादन किया है।

( क ) विद्यापति के पदों का एक संकलन 'राममठ-पदावली' के नाम से विख्यात है। राममठपुर (बरगंगा) से प्राप्त होने के कारण यह प्रति इस नाम से विख्यात है। यह प्रति खण्डित है। पत्र संख्या १० के पूर्व का अंश उपलब्ध नहीं है। अन्तिम पत्र की संख्या १२१, और अन्तिम पत्र संख्या ४१८ है। ( ग ) विद्यापति के पदों का एक संग्रह 'तटैनी-पदावली' के नाम से विख्यात है। लगेन्द्रनाथ भुत ने अपने सम्पादन में इसका प्रयोग किया है। मैसिकी कवि लीलान कृष्ण 'राष्टरमित्री' में विद्यापति के ११ पत्र संकलित हैं। 'विद्यापति-पदावली' के प्रथम सम्पादक लगेन्द्रनाथ भुत ने अपने संस्करण में इन पदों का प्रयोग किया है।

महाप्रभु शैल्य के अनुयायियों ने कीर्तन के रूप में विद्यापति के पदों को विस्तार दिया है। वैष्णव पदावलीयों में विद्यापति के पदों के कुछ न कुछ अंश उपलब्ध हो जाते हैं। 'पदामृत समुद्र', 'पद्मस्तव', 'संकीर्तनामृत' तथा 'कीर्तनाम्न' आदि संग्रहों में विद्यापति के पत्र उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु वैष्णव पदावलीयों में उपलब्ध विद्यापति के पत्र नेपाल या मिथिला की प्राचीन पांडुलिपियों में नहीं मिलते हैं।

**विद्यापति के पदों का मातृपद**

विद्यापति के पदों की मुख्य संरचना 'गुणार-मूक' है जिसमें कृष्ण रासिका लौकिक आत्मजन के रूप में ही गृहीत हैं। गार्हवी-तेरहवीं शताब्दी में कृष्ण-काव्य में एक नवीन भावधारा की उद्भासना अयदेव द्वारा हुई। अयदेव के 'मीरपोथि' में राधा-कृष्ण की प्रेमलीलायें लौकिक बरातक पर प्रस्तुत हुई हैं। इन पदों की परम्परा संस्कृत में नहीं मिलती है। यह अप्रमत्त-अवहट्ट कास में विकसित लोककाव्य-रूप है। अयदेव ने संस्कृत में इस लोक-काव्य-शैली का अभिनव प्रयोग किया है। अतः नीति धिरु की दृष्टि से अयदेव समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य के आदि कवि हैं। अयदेव की राधा-कृष्ण विप्लव

१ अयदेव गार्हवीं शताब्दी उत्तरार्ध में हुए थे। ये बंगाल के मेग बंस के अन्तिम राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि थे।

गीति कविता का अथर्वमन्त्र ग्रहण कर द्वितीय, त्रितीय, चतुर्थ तथा अन्य भारतीय भाषाओं में राधा-कृष्ण सम्बन्धी गीति कविता-धारा प्रस्तुति हुई ।

इस दृष्टि से विद्यापति के काव्य में राधा-कृष्ण सम्बन्धी भावना का जो स्वस्म मिश्रता है उसकी एक पूर्ण परम्परा है । इनके पदों में कृष्ण-राविका के अलौकिक स्वस्म का अंश है । इस प्रकार की निश्चयात्मक भारणा बनाने में हम असमर्थ हैं । परन्तु हम इसना विश्वास के साथ कह सकते हैं कि विद्यापति का काव्य एक पूर्ण परम्परा का विकसित रूप है जिसका मराठक सर्वथा लौकिक है । वैष्णव धर्म, दर्शन और साहित्य में भी राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं के वर्णन का एक निश्चित रूप मिश्रता है । शास्त्रकार भक्तों के बीचों में भी कृष्ण राविका की प्रथम संवेदना का मान मिश्रता है । साय-ही-साय झाक के अंककन 'पाहा सत सई' में राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं से सम्बन्धित अंश मिलते हैं । 'कवीन्द्र बचन समुच्चय' में राधा-कृष्ण विषयक कतिपय पद संश्लेषित हैं । इन पदों में व्यञ्जित भाव, रस और अभिव्यञ्जना विधा के वर्णन हम परम्परी काव्य में केवल विद्यापति में ही नहीं अस्तित्व उनके परचाट के अन्वय कवियों में भी पाते हैं—उदा०

क्रीडं हारि हरिः प्रवाह्युपवर्तं धालामुपेनात्र किं  
कृष्णोऽहं दमिते विमेषि सुतरां कृष्णं कथं वागरः ।  
मुपेऽहं मधुसूदनो नम कटां तामेव पुष्पासवा—  
नित्यं निर्वचनी कृतो दमितवा ह्रीनो हरिः पातु नः ।

वर्णन—'हार पर क्रीड' 'हरि' ( कृष्ण, शब्द ) । 'उपवन में जाओ छाया मृग की यहाँ क्या आवश्यकता है ? 'हे दमिते ! मैं कृष्ण हूँ । अतः और अथ क्या रहा है, कवि कृष्ण वर्ण कैसे हो सकता है ? ' 'हे मुझे, मैं मधुसूदन हूँ ( मधु कर हूँ ) ' 'अतः पुष्पित कटा के पास जाओ' । शिवा के पास इस प्रकार निर्वचनी इत होकर अग्रिम हरि हमारी रक्षा करें । इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों में राविका-कृष्ण की प्रथमलीलाओं से सम्बन्धित पदों में पार्श्वीय शृङ्गार का रसात्मक स्वरूप प्रपञ्च होता है ।

मयाश्रितो भूर्त्तः स तस्मिन् निश्रितमेष रजनीम्  
बहूः स्थापनं स्थापितं निपुणं मयापयितुम् ।



न दृष्टो भाषीरे छट्मुखि न गोवर्धनमिरे  
न कास्मिन्द्या (कूँडे) न च निषुल कुङ्गे मुरगिणु ।

अर्थात् सक्ति मैंने सम्पूर्ण निष्ठा उस भूर्त की ओर की—बहु इस स्थान पर हो सकता है उस स्थान पर हो सकता है । निःसन्देह उसने अन्य गोपी के साथ अभिसार किया है । मुरगिणु को मैंने बट वृक्ष के नीचे नहीं देखा कास्मिन्त्री के कूँड पर भी नहीं देखा केतस कुङ्ग में भी नहीं देखा । इस प्रकार लीलाशुक दिस्वर्मगल ठाकुर की कृति 'कृष्णकव्वाँमृत' नायक ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं का बर्णन लौकिक बराबर पर मिलता है । बारहवीं छताब्दी में श्रीवत्सास की कृति 'समुत्तरकव्वाँमृत' में कृष्ण-राधा की प्रणय सम्बन्धी रचनाएँ हैं । विद्यापति पर इन दोनों ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित है । इनके अतिरिक्त बयदेव के काम्य में कृष्ण नायक और राविका नायिका के रूप में प्रतिस्थापित हैं । यही नहीं, बयदेव के समकालीन अन्य कवियों में भी इसी प्रकार की भाव भूमि मिलती है । उमापतिवर सरन गोवर्धनाचार्य आदि समकालीन कवियों में एक ही प्रकार की भावधारा मिलती है । उदाहरण के लिये उमापतिवर से एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा सकता है—

अबुद्धिबळने क्यापि नयनोन्मेषे- कयापि सिद्ध—  
ज्योत्स्नाविष्णुखिले क्यापि निवृत्त सम्मानितस्याजलि ।  
बर्नोद्भेदकुटावहैलविनयभीमावि पञ्चानने  
छोट कानुमय अयलि पतिठा कंसछिपो दृष्टय ।

कतिपय गोपी मौहों से, कतिपय गोपी नयनों से कतिपय गोपी मुस्कान की अभिव्यक्ति प्रसारित कर कृष्ण का स्वागत कर रही है । 'कवीन्द्र बचन समुच्चय' में और 'समुत्तरकव्वाँमृत' में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं, जिनमें राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं के सन्दर्भ में बचन-भंगिमा के उदाहरण हैं ।

कस्त्वं यो निशि केसव- धिरसिन्धे किं नाम गर्वामहे  
मद धीरिरहं नूनं पितृवर्त पुत्रस्य किं स्वाधिह ।  
पद्मी बल्लमुक्ती प्रयच्छसि न मे कुरादी बटी रोहिणी—  
मिस्वं गोप बभूहि तोरयया बुतस्योः इति पातु वा ।

कर्पात, 'इस निविड़ मिठा में तुम कौन (बाए) हो' ? उत्तर, 'मैं केज्व हूँ  
'(केज मुक्त) केजों के हेतु अभिमान क्या ? 'अमुक्ति मैं छोड़ हूँ' । (स्नेह—गुर का  
पुत्र) 'यहाँ पिता के पुत्र नाम से पुत्र का क्या हित, 'हे कन्दमुखी मैं चक्री हूँ  
(स्नेह—कुम्भ कार) 'तुम्हारे तुम मुझे घट दुग्ध-पात्र क्यों नहीं देते ?' गोप-बधुओं  
के उत्तर से विभिन्न कृष्ण तुम्हारी रक्षा करें । इस प्रकार आठवीं राधात्म्या एक  
प्रेमबलक और अगार प्रबल कविताओं में राधाहृदय लौकिक आनन्दमय के  
रूप में ही ग्रहण किये गये । विद्यापति के पदों में इसी मूल भावना को ग्रहण  
किया गया है । इस प्रकार की कवन अभिवा विद्यापति के पदों में भी मिलती हैं ।

वित परम्परा की कभी हम कर रहे हैं उसमें राधाहृदय सम्बन्धी पदों में  
ब्रह्माय का स्वर ही प्रधान है, इस प्रकार के निर्णय में संकोच होता है । 'हृदय  
कर्पात' में बर्त भावना के दर्शन बच-पन ब्रिज बाँटे हैं परन्तु अयदेव के 'गोप  
योनिज' में इस प्रकार की भावना नहीं मिलती है । अपने काव्य के प्रारम्भ में  
अयदेव ने कहा भी है —

यदि हरिस्मरणे सरस मनो  
बदि बिकास कलामु कुमुदहम् ।  
मधुर कोमल काम पदावली  
शुभु लला अयदेव सरस्वतीम् ।

'यदि हरि-स्मरण से मन सर-युक्त रहना चाहते हैं, तथा यदि बिकास-कलाओं  
के प्रति उत्सुकता हो तो अयदेव की भावना की कोमलकाम्य पदावली सुनें ।'  
तारने यह कि अयदेव में 'विकास-कलामु-कुमुदहम्' की भावना ही ब्रिज के  
नाम है । विद्यापति के काव्य में भी 'विकास-कुमुदहम्' की भावना की प्रकटा है ।

जब अपनी पूर्व परम्परा के अनुसरण में ही विद्यापति की भावनाओं  
ने नृप रूप धारण किया है । इस प्रकार विद्यापति के काव्य में राधा-हृदय के प्रेम  
की भावना का विकास अयदेव के नाट्यम से ही हुआ लगता है । इसमें आध्या  
त्मिक या अलौकिक स्थिति के निररीत लोक जीवन में पृथार लीलाओं  
को आदर्श पदार्थ की संस्कारना मिलती है । राधाहृदय की अगार-लीलाओं  
के नाट्यम से साधारण व्यक्ति की प्रपण एवं अगार भावना के अंश की प्रकृति  
'अवकण्ठक' और 'गोहा सचनई' में प्रतिबिम्बित मिलती है । जय संकृत

और मोहल वाङ्मय की समग्रता की आत्मसाध करती हुए विद्यापति ने राधा-  
इष्ट से सम्बन्धित पदों की रचना की है। शृंगार भावना की दृष्टि से विद्यापति  
के पदों को तीन वर्गों में विभक्त करते हैं।

(१) प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनमें परकीया प्रेम निरूपण की  
चप्पा मिलती है। राधा इन पदों में परकीया के रूप में ग्रहीत है।

(२) द्वितीय वर्ग में भागवत प्रेम सम्बन्धित पद आते हैं। आलोचकों की  
यह धारणा है कि विद्यापति के काव्य की मूल भावना इन्हीं पदों में व्यक्त है।

(३) तृतीय वर्ग उन पदों का है जिनमें आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन है।  
इस वर्णन में विद्यापति को भक्त कवि के रूप में ही देखा गया है। चिन्मय ने<sup>१</sup>  
विद्यापति की विवेचना एक भक्तकवि के रूप में ही की है। विद्यापति के काव्य  
की विवेचना के वर्णन में मोनूनाथ बस ने विद्यापति के पदों में राधा और कृष्ण  
को बीजात्मा और परमात्मा का प्रतीक माना है। विद्यापति के निम्नलिखित  
पद की व्याख्या के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

रवलि काकर बस भीम मुबंयस

कुलित पड़प पुरवार ।

मरब छरब मम ऐसे बरिस बन

संसय पड़ बरिसार ।

बरा बैबस कलि, हित कब मानस बलि

नेपुर न करए गेक ।

सुमुखि पुखी तोहि, वरुन कहसि मोहि

सिनेह कएए दुर भोक् ?

इस अंश में वर्णित पद की भाषाओं की आलोचक ने आत्मा के सम्मुख  
उपस्थित सांसारिक बाधाओं का प्रतीक माना है। परन्तु इस प्रकार के विस्तरेण

1 But his (Vidyaptis) chief glory consists in his matchless sound (Padas) in the Mathuri dialect dealing allegorically with the relation of soul to god under the form of love which Radha bore to Krishna—Modern Vernacular Literature of Hindustan pp. 910

से वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है । वस्तुतः वह अभिसारिका का वर्णन है । इस प्रकार के वर्णन में अस्पष्टता के बरतों की भावना आरोपित वस्तु होती । अभिसारिका वर्णन के सन्दर्भों में प्राचीन कवियों में निरन्तर इस प्रकार की भाव दीखना मिलती है । ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं, जिनमें अभिसार के लिये उत्सुक राधा (नामिका) अनेक विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण करती है । यथा—

मार्गे पकिनि लोचनान्धतमसे निःसम्ब संचारकं  
नन्तव्या वयितस्य मेघ्य वसन्तिर्मुने चेति हृत्वा यतिम् ।  
बाबागुदुत्तमपुरा कलसेनाब्ध्याय मेघे भूयं  
कृष्णास्तम्बपरस्थिति स्वयमेव पन्थानमन्यस्थिति ।

कवीन्द्र वचन तमुच्यते

नामिका सोचती है—पंक्तिन पथ पर मेघ की कालिमा के आवरण से निःसम्ब वरन करते शिव के सहो बाबा होमा इस प्रकार मुग्धा गुरुर को बुझों तक उठाकर नयनों को हाथों से छिपा कर, कण्ठ से पवों की नियन्त्रित कर मार्ग बचने का अभ्यास कर रही है । इस प्रकार अभिसार से सम्बन्धित पदों को एक निश्चित परम्परा मिलती है । अनेक पदों में गहन तम के मध्य रात्रिका दुर्गम पथ की किन्ता न करते हुए भी अभिसार के लिये जाती है । इस प्रकार के सन्दर्भ को ग्रहण करते हुए विद्यापति अभिसार की ओर अवसर होनेवाली नामिका (राधा) का रूप वर्णन करते हैं और उसने मनोमाओं का अंकन करते हैं । अभिसारिका के लिये पथ की पोखरीयता अपेक्षित है । विद्यापति की नामिका अपने को गोपन रखने की चेष्टा में विरोध प्रकार के प्रसाधनों की पारण करती है । वह गुरुरों का परिधाय कर कैती है, पीठ बरन चारण कर कैती है, तथा अभिसार को जाती है—

गुरुर रसना पछिर देख  
पीठ बसन है जुबति विधि देख  
द्विपित बिलम्बे होएत हास  
गहि गए होएत कागदुद वास  
यमन करह सनि बल्लभ येह  
अभिलष होएत सति दधि न दगरेह ।

कवि अभिसारिका के मनोभावों और आन्तरिक व्यापारों का बहान कर रहा है।  
अभिसार भावों से प रपुनी नायिका के आसक्तपूर्ण हृदय-गत भावों का बहान  
विद्यापति ने नैसर्गिक रूप से किया है। अनुगम से प्रेरित और मगन से आकर्षित  
नायिका का विनय प्रस्तुत अंश में देखिए—

गुरुजन गयन पगारि परल जभों

सुन्दरि सतरि बलहि

अम्बर सकल विमोहन सुन्दर

धनतर तिमिर सानरी

कैहु कतही पय बलहि न पारिब

बलि मति बुझि भयरी।

अभिसार के क्रिये उत्सुक नायिका मानसिक दृष्टि में है। वह देखती है कि  
सति नम में आ गया है। उसके मन की अभिसार-भावना खण्डित होने लगती  
है। अभिसार भावना से उत्सुक होकर मावरी अङ्गराज से अपना कल्प कर रही  
है। उत्सुकता से पश्चिम दिशा की ओर रू-रू कर देख रही है। मार्ग में उसकी  
योफसीबता मन में हो इस हेतु वह नूपुरों को पदों में टक कर रही है। वह  
अन्वयगी आनन्द काण्ड कर रही है। यथा—

वरन नूपुर उपर सारी

सुन्दर मेखल करे निबारी

अम्बर सानर नैह म्माई

बलहि तिमिर-पय समारि।

१९४२१६

अभिसार में निरन्तर होने पर सखी विज्ञासा करती है—

बलि छोरा नहि कन नहि बलकास

परेक अलग कते देख निबारास।

सतर में नायिका कहती है—

करबोरि पैहमा परि कहनि निगती

बिसरि न हूकबिए पुरुष पिरिती।

प्रथम पहर राति रमसे बहुला

दोसर पहर परिक्रम निन्द मेका

निन्द निरुपतइत मेक अनिरात

तावत उपल नम्बा परम मुखाति।

बहिष्कार के सम्बन्ध में सक्षिप्त दूरी की भूमिका धारण करती है। प्रेममूर्क काव्य में दूरी प्रत्येक का कक्षिण प्रयोग सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में किसी न किसी रूप में स्पष्ट होता रहा है। ऐसे अनेक सम्बन्ध मिलते हैं जिनमें नायिका की ओर से दूरी नायक के निकट बाहर नायिका की व्यक्त अवस्था का वर्णन कर, उसे नायिका की ओर आकर्षित करती है। 'बाहा ससर्ग' तथा इस संदर्भ की अन्य कृतियों से इस प्रकार के अनेक सम्बन्ध प्रसृत किये जा सकते हैं। उदा०—

य मुञ्चति दीहसार्धं न कञ्चति विरं न होन्ति किञ्चिदाशौ ।

बल्लाशौ ताशौ जार्णं बहु बल्लाहो न तुमम् ॥

बर्षाद् (बो)दीर्घं निबन्धन नहीं होती है, विलम्ब तक नहीं रोती है जिन को काया विरह में (बीज) नहीं होती के भाष्यवती है—ऐसी नारियों के कृष्ण तुम बहुम नहीं हो। इस प्रकार दूरी प्रत्येक से प्रकट-व्युत्पन्न और विरह निवेदन की प्रथाओं की एक सुनिश्चित परम्परा मिलती है। अपने परो में बिधा वति इसी परम्परा के कर्म हैं। विद्यापति की एक दूरी नायक के सम्मुख नायिका की अवस्था का वर्णन कर के उसमें रति भाव आणत करती है 'बर्षा की रति है और (बहु) कोमल कामिनी है। अन्धकार घन उदाल कर रहा है। धर्म निष्ठावरों से पूर्व है, बर्षा मनकरत हो रही है। है यावद बहु प्रथम वति धन से उल्टी है। अतः स्वयं आकर उल्टे हैलिया, और अनुकूल व्यवहार करिय। बीज में मगानह रूप धारण कर यमुना नदी प्रवाहित है। बहु किस प्रकार उल्टे बार कर जा सकती है ? मुरत रस और लुपेठन बहुवचन—वे सभी उसके तिम्र उराहणीय हैं। मन में वे सारी बातें समझ कर भी तुम मुमुक्षी के विमुक्त हो पड़े हो ? तुम्हारे मन में लगना नहीं आ रही है ? मधु को स्वयं अनुकर के बर्षाप जाते हैला है ?

बारिह नाभिनि कोमल कामिनि

दास्य नति अन्धकार

धन निष्ठावर सहजे सम्भार,

धन पर जल बार ॥ प्र० ॥

नाचध प्रथम नेहे से बीती

गए अपनीहि से बबकोक्ति  
 करिख तैसनि रीति ।  
 बसि मयामुनि आतर बजुनि  
 कैसि कए अतसि पार  
 मुख रस सुचेतन बासमु  
 ता पति संख असार  
 एत गुनि मेन विमुख सुमुखि  
 तोह मने नहि काय  
 कतए बैपछ मधु अपने  
 जा मधु कर समाज ॥  
 अने मिद्यापती त्यागि ॥२॥१॥

इस सन्दर्भ के अनेक पदों में नायक की दृष्टी नायिका में नायक के प्रति  
 आकर्षण और रतिभाव बाधित करती है । एक सन्दर्भ में दृष्टी कहती है 'अम्ब  
 कलावती युवसियों हैं, परन्तु वह तुम्हें ही बुरे प्राण की तरह मानता है ।  
 तुम्हारे दर्शन के बिना वह लज्जा-मान भी जीवित नहीं रह सकता है । वह  
 कितनी बाह्य बदन-व्यासा सहन करेगा ? बरी युववती और दुष्प्रवती रमणी  
 सुनो ! निरुद्ध मत कठे बसन्त ऋतु की रात छोटी होती है । नीच परि  
 धान, तुम्हारे शरीरका वर्ण अन्धकार में अन्धमा या विवृत करेगा । तुम्हारा  
 मुख पूर्ण अन्धमा के समान है । जैसेते हुए अन्धमा का असूय पान बकौर करेगा ।

कत अल्ल युवसि कलामति आने  
 तोहि मानए अनि दोसरि पचने ।  
 मुख बरसन बिनु सिक्खो न बिबद्ध  
 बाह्य मरण केरम कत सहइ । प्र० ० ।  
 सुन सुन गुणमति गुणमति रमणी  
 न कर निरुद्ध जोटि मधुक रवनी ।  
 सामर अम्बर तनुक रङ्गा  
 विमिर सिक्खो ससि सुखिउ करेपा ॥  
 सपुन सुबाकर जानन तीरा ॥

विदुत अमित्र ह्यसि चन्द्र बहोरा ।

अनहि विद्यापति इत्यादि । ॥ ६ । १५ ।

इस प्रकार की अनेक उक्तियाँ संस्कृत और प्राकृत काव्यों में उपलब्ध हैं । विद्यापति इन उक्तियों से अच्छी भाँति परिचित थे । अपने पदों में इनका प्रयोग उन्होंने बलि मुक्त रूपमें किया है । अठ-अधिसार तथा दूती प्रबंध में विद्यापति पूर्णतः कौटिल्य बराबर पर अवलम्बित हैं । 'समुक्ति-कर्मामृत' में 'विद्यापति' 'विनीतामिसार' 'व्योमनामिसार' आदि से सम्बन्धित कौटिल्य मिलते हैं । विद्यापति इन सग्यों से संस्पृष्ट हैं । उनकी नायिका कौटिल्य रात्रिका नहीं हैं । यह इस प्रकार के वर्णों पर यमित्र यावना के आरोपण से विद्यापति के काव्य की नूतन रचना का स्वभाव स्पष्ट नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त इस प्रकार के निष्कर्ष से इस विद्यापति की उन सग्यों से अवगत कर सके हैं जिनका तत्काल विद्यापति के ऐतिहासिक मूल्यांकन की दृष्टि से इन पृष्ठों में किया गया है ।

विद्यापति शृंगार के कवि हैं । 'कविचरण समुच्चय' 'मुनापिवावली' 'समुक्ति-कर्मामृत' 'भूति मुक्तावली' और 'धामर वरति' के श्लोकों में वर्णित धारों के अनुरूप विद्यापति के पदों में गारी-सीमर्य और शृंगार की भाव योजना मिलती है ।

'माहा ललवई', 'कविचरण समुच्चय' 'मुनापिवावली' 'समुक्ति-कर्मामृत' तथा 'धामर वरति' में नायिका की बर-सन्धि के अनेक वर्णन मिलते हैं । विद्यापति के पदों में बर-सन्धि के बिना इन रचनाओं में उपलब्ध बर-सन्धि के बिना ही बिना नहीं है । मुक्त्या के लिए यह श्लोक देखें—

पने बास्येपैत नुमुयनमुपा सावधद्वं  
बनाहीर्येबास्या सजमुयनमुन्निद्विपमिनु ।  
लक्ष्मी प्रहसती चरति बरन बर्यद्वं  
इत बर्य मुपा बलिपमिन्न योगिपमन । पतामन ।

इसी सग्य में विद्यापति के कविता पदों की अवलम्बित किया जा सकता है ।



सेसव थापु गहीरि केवायस  
 यीमने गहस पास  
 जेयो निरु पलि बिछु बोछए  
 से सेयो सुभासम मास ॥  
 बीमल सेसव खेरए जांगल  
 छाडि बेहे मोर ठाम  
 एत दिन रस सोहे बिरसल  
 बचहु नहि बिराम ॥  
 मने बिद्यापति इत्यादि ४१६।

सद्यस्नाता के वर्णन में विद्यापति स्वल्प वर्णन के माध्यम से स्नाता का संस्कार्य  
 चित्रांकन करते हैं। इस वर्णन में स्नानाधीन और सांस्कृतिक हो सर्वदृष्टियों से  
 प्रमुखता धारण कर गई है।

कामिनि करए सनाने  
 हेरवते हूबय हरए पधवाने ।  
 किनुर बसए बसबारा  
 मुख छलि बरे बलि रोमए बंधार । प्र० ।  
 छितकबसम ठनु काबु

मुनिहुक मानस मगपब जागु । इत्यादि । ११८।२७२

इस पद के साथ निम्नलिखित पंक्तियाँ तुलनीय हैं—

पतनिमन्त्रपूर्णसा गङ्गाबुस्तिष्वाए सामर्षणीए ।

बलविभुएहि किनुरा बजन्ति बन्धस ब गण ॥६॥५॥

बाह्यसत्तर्क ।

विद्यापति के पदों में बीमना मुन्ना प्रकृति नवीकृत लक्षित वासक  
 सज्जा विप्रसज्जा मामिनी धाति से सम्बन्धित वर्णन मिलते हैं। तस्वी के प्रेम  
 बाधन्य के वर्णन में पार्ष्णीयता है। इस विरहजन्य जाकुलता और कष्टकृतता के  
 अनेक वर्णन इनके पदों में मिलजाते हैं। विवेक पर प्रियतम के छौने के दिनों  
 की गचना नासिका करती है। गणना की सुविधा के सिद्ध यह मिति को चिह्नित  
 करती है—

काविक अवधि करिख निज गेह ।

सिद्धार्थ काकि भीति मरिगेह ॥

मायिका संकेत पाकर निविधत स्वान पर आती है । परन्तु स्वान को मृता पाकर वह स्तब्ध हो जाती है । वह कोकिल का सम्य मुनकर और चन्द्रमा के मय से कमल को भर कर स्नान करती है । अस्त-व्यस्त वस्त्रा होकर विद्याओं में उगमत्त बूमती है । आनन्द पुत्र निके हैं सीरम पीठ रहा है । नवीन मञ्जरियाँ प्रस्तुत हैं । कोयल पंचम राग बजाप रही है । इस प्रसंग में प्रोपितमर्तु का समय की पणना कर रही है । अमर मकरन्द पान कर रहे हैं और वर्ण्य पतिजों को प्रेम-प्राप्त में लब्ध कर रहा है । प्रिया का प्रिय दूर देश में है, प्रिया का मन बाधुर है । मायिका दूसरे के नाश्वर्य से सम्प्रेष भेजने का विचार करती है परन्तु वह सोचती है कि पक्षिक के द्वारा सम्प्रेष भेजना उचित नहीं, कारण वह सम्प्रेष को भूक खफता है । इस प्रकार के मनोभावों को व्यक्त करने वाले अनेक पद हैं । इनमें प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है । कोकिल-समूह कञ्जरव कर रहा है । काहुल भव रहा है । मंजरियों पर अमर मुग्धवार कर रहे हैं । कुबो का वातावरण रसात्मक हो गया है । मायिका का मन स्तब्ध है । प्राण निविध के पार प्रिय के समीप हैं परन्तु सख्ता का प्रतिबन्ध है । विरहिणी के वरण निमित्त शत्रुता प्रकट हो गया है । एक पद में वसन्त की रात का वर्णन है । कामदेव प्रभावात्मक रूप वारण कर रहा है । हंसवामिनी प्रतिनिध स्निग्ध रहती है । वसिष्ठ एवम उसे पराजित करता है । अक्षर-मुहुर विवाद बढ़ा रहा है, और समुत्त के समान काव्यवाली मूल्य के निष्कट पहुँच रही है । विरहिणी मार्ग देल रही है । प्रिय अवधि भूल गय । उसके तपन-बकोर संचाखीन हो गए । निन्दुर बुद्ध की भीति बूमती प्राण लेकर पार करती है । कामिनी प्रिय की विरहिणी हो गई प्रिया केवल प्रिय की कहानी रह गई । एक पद में विदेश गमनोत्तु बाधुर प्रिय से आग्रह करती हुई प्रिया कहती है पावन से भयभीत हैं । मेरी की लगी में विमला अवलम्ब ग्रहण करेयी । मेरे सुन्दर मुपट्ट । जिसके मापार पर लक्ष्मी पर में रहती है वह मेरे विदेश आय ।

इस प्रकार विद्यापति के पदों में शृंगार की चारा अनेक रूपों में प्रवाहित है । शृंगार कवी संक्षेप के सम्बन्धों में और कभी विवशम्भ के सम्बन्धों में अपनी अभिव्यक्ति पा जाता है ।

कठिपय पखों में नायिका बचन-बक़्ता का वाचार ग्रहण कर रति  
आकर्षण और स्नेह जापरण करती है। एक पक्ष में नायक को आकर्षित करने  
की भावना से नायिका कहती है 'मैं बकेली हूँ, स्वामी नाँव में नहीं हूँ। बत-  
स्वान देने में मुझे संघय हो रहा है। पड़ोसिन के निकट रहने पर अव्यक्त स्वान बिसा  
देती। हे पक्षिक। अपने मार्ग जाओ। नगर में अव्यक्त स्वान सोन लो। बीच में  
प्रान्तर है। सन्ध्या का समय है। परदेश में यन्त्रिय को देखकर खूना चाहिए।  
नम्र में मैत्र है। रात का रहस्य है जो करता है उसका निर्णय कर लो।' यथा—

हमें एकद्वीर पिबतम नहिं याम

तेँ तरतम अक्षरते एहि ठाम।

अनतहु कतहु करैतहु बाध

बोसर न बैसिअ पखउसिजाओ पास। इत्यादि।

१९८।२२७।

आत्मन्वन की चट्टाओं के वर्णन तथा भिन्न चट्टाओं के वर्णन-सन्दर्भ में विद्यापति  
संयोग वर्णन के अन्तर्गत नायक-नायिका के रूप का विधान करते हैं। वे आत्मन्वन  
की चट्टाओं के अति सजीव रूप का भूत विधान करते हैं। इस प्रसंग में वे  
नायिका का मूल बिन्दु वर्णन भी करते हैं। परम्परागत उपमानों द्वारा वे संस्मृत  
रूप विधान करते हैं। एक अंग के वर्णन के लिए कवि अनेक उपमानों का प्रयोग  
करते हैं। परन्तु इनके उपमाग परम्परा से प्राप्त उपमाग ही हैं। इस क्षेत्र में  
नवीन उद्भावनाएँ नहीं मिलती हैं। मुख के सौन्दर्य वर्णन के लिए कज्रमा, मुकुर  
कनक अक्षर के लिए विष्णुकण्ठ प्रवाल विद्रुम-पस्वन नेत्रों के लिए बाहुिम फल  
चारंग कुरसिनी लक्ष्मी, स्वजन, मुन्तलों के लिए चारंग भ्रमर, वल्लभ,  
आदि परम्परा-ग्रहीत उपमान ही सम्मुख आए हैं। विप्रसम्भ के अन्तर्गत पूर्व  
राग भाग प्रवास के सन्दर्भ विद्यापति के पवों में पयौस भाषा में मिल जाते हैं।  
पूर्व राग में नायिका स्वप्न में नायक को देखती है उसके सौन्दर्य पर मुग्ध  
होती है। उसको रोमांच हो जाता है। स्वप्न में ही वह संयोग मुख का अनुभव  
करती है।

सपने देख हुरि लज्जत रंजने

पुलके पुरल छनु बायु अगल्ले

बधन मोगाए मधर रस लला

निहि अवधान कान्ह कहा मेला गधु०॥

का लागि नीन्द मागति बिहि मोरा

म मेले सुख सुख कायक जोरा । २३८।२३५

मात-वधन के पत्नी में नायिका के करने का वर्णन है । नायक बिछ में दुःखी हो जाता है । छवियाँ नायिका से नायक के दुःखों का वर्णन करती हैं । साथ ही साथ नायक भी कहता है । छवियाँ नायिका के दुःख का निवेदन करती हैं । यथा—

छोहे कुलमति रति कुलमति गारि

बाहुँ दरछने मुल्ल मुगारि ।

उचितहु बोछइते भवे अवधान

संसय मेळइतु छनिह वरान । गधु०॥

मुगारि श्री कइय कहइते जान

छोर नामे पछु लजो बाव । २३९।२२२ म

नायक से नायिका की अवस्था का वर्णन करते हुए खली कहती है—

अपमहि हृदय पेन अपवाए ।

पेनक बहुर मलाह कहाए म

× × ×

माकन कके बिसरति वर गारि ।

बइ परिहर पुन होय बिचारि म

× × ×

काजरे राहु उरन मिला काम ।

दिन मलयज पुन मलयज बाहु त दत्तादि । २४०।२२३।

प्रवास-वर्णन में विद्यापति की भावनायें अधिक गविरहसीन लगती हैं । रस सन्दर्भ में कवि नायिका की लज्जाशयनी की कोमलता अनुभूतियों को संलग्न कर रहे हैं । नायिक के वर्णन व्यापारों के संक्षिप्त वर्णन द्वारा कवि

करण की सम्भावना को व्यापक बनाते हैं। एक पक्ष में इस प्रकार का वर्णन है कि नायिका को यह विश्वास था कि प्रिय सबसे कह कर विशेष वायना। परन्तु नायक उसे निरिक्त ही छोड़कर चला गया, नायिका इस अवस्थामात्र से विभुम्भ है।

छत्ति भरमे राहि विमाने बाएन कहि

कोप कए नीन्द नेकी।

बागि छठिअ बनि बैसि सेन सुनि

हरि बोलइते निज पेसी। ॥ १५५॥ १२१॥

विद्यापति प्रकृति के कवि नहीं हैं। प्रकृति विषय कवि का उद्देश्य भी नहीं है। कवि अपने पक्षों में प्रकृति का बंधन उद्दीपन रूप में ही प्राप्त करते हैं। नायिका के विरह-वर्चन के सन्दर्भ में प्रकृति के विविध व्यापार उसकी अनुसूतियों और विरह-संवेदना को तीव्र करते हैं। नायिका में अविचार भाव बाधित करने के लिए सखी वसन्त के रसमय वातावरण का वर्णन करती है। नायिका से मान-परिचाग कर संयोग सुख के प्रभोजन को बाधित करती है। यथा—

कोमिल मुख कतरन

काहुल बाहर बाजे

मग्नरिक्त मधुकर गुजरए

स सुन कुन रयाव।

× × ×

विरहिनि जन मरन कारण तउ

बसत मउ पुराव ॥ १५६॥

वसन्त की रानी में प्रियकी स्मृति आती है। प्रिय वसन्त रानी में संयोग का वचन देकर यथा वा। परन्तु वह नहीं जाना। कोवळ पंचम स्वर में गा रही है। विसाओं में सहकार लिंग गये हैं जन्ममा से राजि धवस हो उठी है। तब पर मलि पुञ्जित है। इस सन्दर्भ में नायिका का मन विरह के जावेन से व्योमि हो उठता है। यथा—

वसन्ती रजनि रङ्गे पलटि यपति संज्ञ

परस रमस विभा वल कही।

कोकिल पञ्चम गात्र सीमलो न सुबन्ध जात्र

उत्तिम बधन व्यभिचर नहीं । छ ।

×

×

×

सो पति पक्षिने मुर उमि गेसा ॥

साहूँ मकर मिसा बन्धि उजिर मिसा

विद्यापति जन हस्तादि १४१।१२

विद्यापति की नायिका बने अन्धकार में अधिसार करती है । जसपा जसपा दे रही है रात कम्बल प्रसारित कर रही है विद्युत् प्रकाश से हो कभी कभी मार्ग लक्ष्य सर के लिए आलोकित हो जाता है और कामदेव के इस मोहक प्रस्ताव का नायिका स्वागत करती है । इस प्रकार भू वार के उद्योग और निबोध इन पद्यों के अन्तर्गत विद्यापति ने प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप की ही ग्रहण किया है । अनुभूति और भावना की सीमता के लिए इस प्रकार के वर्णनों का विशेष महत्व है । अतः विद्यापति के वर्णों में विम्बविधान और प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र नहीं मिलते । नायक और नायिका को आत्ममग्न तथा आधाय रूप में ग्रहण कर उन्होंने मधु पिब का वर्णन प्रकृति के उपादानों द्वारा किया है । यथा—

हरि रिपु रिपु प्रभु तनय है बरिनी

सुलना बच रमनी ।

विद्युत्पासन सम बचन सोहाबोन

बमलासन सम यमनी ॥५०॥

×

×

×

मदन बल्लभ मुर बेदिह सीसन भुस

बचक नयन बकोरा ।

हेरितहि मुन्दरि हरि जन लए बेनि

हर रिपु बाहुन मोरा ॥

उरपि तनय मुर सिमुर लीलाबोन

हामि देपनि रज कान्ही । हस्तादि १४२।२०७।

हृदय के रज विनय में भी बचि एने ही उपादानों का प्रयोग करता है ।

ए सखि पेसखि एक अपरूप  
 गुमइत माननि सख सख  
 कमल जुगल पर चौदक गाल ।  
 तापर लपकस लख लमाल ।

×                      ×              ×  
 तापर चंचक खंजन छे जोर  
 स्वर सौपनि भूपक गोर ।

अपने कव्य के संश्लेष में विद्यापति ने अप्रस्तुत विधान का प्रयोग किया है । नायक और नायिका के रूप विधान और उनकी दूख भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए कवि ने वस्तु-सापेक्ष और वस्तु, निर्विशेष इन दोनों प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है । विद्यापति के कव्यों में रूप विधान, भाव-वर्णन और परिस्थिति-संकेत इन समस्त संश्लेषों में सन्वाचकारों और अर्थाचकारों का विस्तृत प्रयोग मिलता है । अर्थाचकारों का प्रयोग प्रायः वस्तुनिष्ठ ही है । सन्वाचकारों में अनुप्रास समक और लक्ष्य के प्रति कवि विशेष आग्रही हैं । अनुप्रास के माध्यम से कवि अपने कव्यों में व्यन्तात्मकता और संपीठात्मकता की सृष्टि करता है । अर्थाचकारों में उपमा, संश्लेषा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, यथासंख्य, व्यतिरेक, पर्यायोक्ति, एकावली, असंगति, तत्पुन आदि विशेष रूप से वर्धनीय हैं । बाष्पदण्ड और उक्ति वैचित्र्य की दृष्टियों से विद्यापति के कविपद पर अत्यन्त सुन्दर नज़र पड़े हैं । बाष्पदण्ड के अन्तर्गत वचन-संनिधा के माध्यम से कुटी नायिका और नायक के मनोभावों को समझाने का प्रयास करती हैं । और फिर एक दूसरे को समझ देकर उनके संश्लेष की भूमिका निर्मित करती हैं । इस संदर्भ में निम्नलिखित पद की व्याख्याप्रभावी ध्यान देने योग्य है—

सुख सिद्धुर सिद्धु चान्दने सिद्धुए इन्द्र ।

तिनि कहि गेल तिकके ।

विपरित्त अबिसार अमिन् नसए चार

अनुस कएल बछके गामु०॥

माधव भेटसि पहाइल बेरी ।

आबर हरलक पुकिनो न पुहलक

बगुर सलीजग मेसी ॥  
 केतिक दस कए बम्पक दस दए  
 कबरी बोएकक जानी ।  
 बगुरे कुहुमे बङ्गबलि कएक  
 समय निरे सयागी ॥

मगइ विद्यापति इत्यादि । १२४१।१४०।

व्यर्थ मायक ने सिन्दूर बिन्दु से सूर्य और चन्द्र से चन्द्रमा का अंकन किया ।  
 इन के माध्यम से अपने जाने की तिथि का संकेत किया । (सूर्य और चन्द्रमा अमावस्या  
 में एक राशि पर आते हैं) । नायिका ने बंधुस की मुद्रा से मायक को आमन्त्रित  
 किया । (तब मैं बंधुस की मुद्रा से आवाहन किया जाता है) । केवड़ा के पत्र में  
 बम्पा का पुष्प संयुक्त कर नायिका ने केवड़ा-सजा की । (केवड़े के पत्र में कष्टक  
 होते हैं) । बम्पा के निकट प्रवर नहीं आता) । इस प्रकार नायिक ने मायक को  
 सूचित किया कि परिस्थिति प्रतिकूल है । कुंदमु-बस्तूरी से अंतरांग रचकर पुन  
 मायक को अमावस्या को जाने का संकेत किया ।

इस प्रकार विद्यापति की व्यक्तता प्राचाही में मावों की अभिव्यक्ति विविध  
 रूपों में हुई है । इसमें भावपत्र और कटापत्र का समन्वित रूप मिलता है ।  
 इनकी भाषा में निवमपता और संगीतात्मकता के तत्त्व पूर्णतः निधोजित  
 हैं । उक्त-पद्यों में व्यंग्यार्थ बोधक पदों के अनेक रूप इनके काव्य में उपलब्ध  
 होते हैं ।

विद्यापति आपुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में पं-परम्परा के प्रतिस्थापक  
 कवि हैं । इनके पद येम हैं और इनमें गीति-तत्व की समग्रता मिलती है । स्वर  
 संगीत और छन्द-संगीत में दोनों तत्व इनके पदों के विराज बभब हैं । स्वर-संगीत  
 और भाव-संगीत के समन्वित स्वरूप में ही इनके भाव संनिष्ठ अभिव्यक्ति प्राप्त  
 करते हैं । इनका संगीत भावोन्नत में सहयोगी है । विद्यापति के गीतों में वैपटिक  
 भावों की तीव्रता है । प्रत्येक पं में नायिका या मायक के समोभावी की  
 सम्पूर्णता की अभिव्यक्ति मिलती है । धीरेधीरे में रागात्मक अनुभूति और भाव  
 प्रकृता प्राप्त रूप में विद्यमान रहती हैं । विद्यापति के गीत पं तो रागात्मक  
 अनुभूतियों की अनुमेला हैं । सास्त्रीय तत्वों के साथ-साथ विद्यापति ने लोकगीतों



की व्यक्तता विधा का प्रयोग भी अपने पदों में किया है। कथारमक भीतों की सिम्पबिधि के साथ-साथ कोक-गीतों की सरकता स्वाभाविकता, भावमयता और स्वच्छन्दता इनके पदों में सहज श्रुमार के रूप में विद्यमान हैं। इस दृष्टि से वे जयदेव की गीति-कला से विद्यप प्रभावित हैं।

विद्यापति ने शिव-पार्वती-सम्बन्धित पदों की भी रचना की है। आलोचकों की ऐसी धारणा है कि इन पदों में विद्यापति की सेवाभावना व्यक्तित्व है। परन्तु इन पदों की विवेचना के लिए इनको पूर्ब-परम्परा और इनके ऐतिहासिक स्वल्प का उत्प्रेक्ष्य अपेक्षित होना। भारतीय साहित्य में आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य अठनी श्रु गारात्मक कवितायें लिखी गईं जिनमें राजानुज्य की प्रेम-लीलाओं से सम्बन्धित भावधारा की प्रधानता रही है। साथ-ही-साथ कल्मीनारामन की आलम्बन रूप में ग्रहण कर श्रु गार मुक्त रचनायें भी हुईं। राधा कृष्ण की प्रेमलीला के समान हूर-बोरी की प्रेम कोला से सम्बन्धित श्रु गार कविताओं की एक निश्चित परम्परा मिलती है। काश्मिरास ने इस सन्दर्भ की रचनायें की हैं। जयदेव के युग में शिव-गौरी को अवलम्ब बनाकर श्रु गार प्रधान रचनायें की गईं हैं। यह परम्परा विद्यापति के पदों में भी संरक्षित मिलती है। विद्यापति के पदों में कृष्ण राविका या नायक-नायिका के श्रु गार वर्णन में काव्य की एक परम्परा का विकसित रूप मिलता है। शक्ति-वत्स की संस्थापना की अपेक्षा इन पदों की भाव-सविनता का परम्परा के सन्दर्भ में मूल्यांकन साहित्य के इतिहास में अपेक्षित है। यही स्थिति शिव-पार्वती-सम्बन्धित पदों की भी है। इन पदों की अन्तस्तेजना का स्वल्प विकास ऐतिहासिक परम्परा पर अवलम्बित है। यथा—

आवे अकामिक आप्ण बेपमारी  
भीमि मुनुसि अप्ण अकिल कुमारी ॥१८॥  
मिपिमा न केह बडावए रिसि  
बबल निहारए मिहुरी हँसी।  
ए ठमा रसि सँझे निकहि बसली  
ओहि ओपिया देवि मुखि पकली।  
हुर कर गुनपन अरे बेपमारी  
कों विठिमओछए राजकुमारी।

कैमो बीछ वेदए बेहे बनू काहु  
 कैमो बोलबोला भाति (न) बाहु ॥  
 कैमो बोलबोनि बाहि बेहे बनू भासी  
 हुनुकिमो भए बर बिबमो भवानी ।  
 मनइ बिद्यापति भमिमउ सेवा  
 बन्दलदेवि पति बैरल देवा ।

॥२१॥१११८॥

बविबि योपीदेवबारी भाकसिक बा गया । कुमारी गौरी मित्रा देने बत्ती ।  
 गौरी पूर्ण रूप से स्वस्य ही परन्तु योगी को देखकर मुग्धित हो गई । छवियाँ  
 कहुती हैं कि गौरी को योगी को समर्पित करवो सम्भवत इतसे बहु बेचना पा  
 बाय ।

विद्यापति की भाषा

विद्यापति की पञ्चाली की भाषा में देखूरी में पन्द्रहवीं शताब्दी पूर्वार्ध तक  
 की मैथिली का कन अवस्था है । मध्यकाशीन भारतीय भाष्य भाषा में विकसित  
 नवीन संयुक्त स्वर यहाँ मूलित हैं । (१) उदा० बरसन ठरसन पुदस्य परत  
 सिनि तरलक इत्यादि ।

(२) प्राचीन भारतीय भाष्य भाषा की शब्दमध्य-क-ध्वनि विद्यापति की भाषा  
 में परिवर्तित मिलती है । उदा० बार (वं) यल (वाल) बार (वाल) ।

(३) प्राचीन भारतीय भाष्य भाषा की आदि य-ध्वनि यहाँ ब-में परिवर्तित  
 होती मिलती है । उदा० बउवन (यौवन) पुय (पुय) बजना (यमुना) ।

(४) संज्ञाओं के कारकीय प्रयोग के तीन कन मिलते हैं । (क) सविमल्लिक  
 (ग) परवर्णीय (घ) प्राशिवन्कि । उदा०—नियार्ण देत काम (कर्ता) बिलार्ण  
 सह्य बिरुग गन बोरा (करण), जलदहि रागज दुहुनि लाम ।

प्रातिपदिक प्रयोग—मल मलन, मनय अनिय कम (वर्ग) न मुग बचन  
 (बधिरास) ।

(५) मध्यम काल के बिस् एरि के का केग, केर, आदि परवर्ण प्रयुक्त  
 हुए हैं । उदा पर गहो दोसर केरा नागरि जन केर बहुत निगाम । सर्वनाम क्तों  
 क भाष की हि क्तों का प्रयोग होता है । स्वार्थ प्रात्यक्ष-क-का प्रयोग सम्भव

के अतिरिक्त अन्य कारणों में होता है। उदा० नामक वस्तु बोझिल पमार, भानक बोझिल घोष गमार, इत्यादि।

(१) मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के भविष्य भाकार्य हेतु इहिवि, रहिवि, तथा इह का प्रयोग मिलता है, उदा० रहिविवि बीहिवि, बुमिवि, होइव । मूठकाल-क से निर्मित होता है। भविष्य के किए क का प्रयोग होता है। उदा० अनूनय मोरि बुमिवि, राखिवि पुओ काव ।

(७) सहायक क्रिया के रूप में अस्त्र और वच रूप प्रयुक्त हैं। उदा—नेस अस्त्रि अस्त्रमिन्, अस्त्रिक, इत्यादि।

अमीर खुसरौ —अमीर खुसरौ हिन्दी के कवि माने गये हैं। इनका नाम अब्दुल हसन था।

हिन्दी-इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में इन्हें बड़ीबोली का आवि कवि या प्रथम कवि कहा गया है। इनका समय सन् १२२९-१२२९ ई० माना गया है। वे निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। इनका सम्बन्ध दिल्ली के तुकाम खिलजी और तुक्कम इन तीनों वंशों से रहा है। ये अरबी-फारसी के पश्चित वे साथ ही-साथ हिन्दी के रचनाकार भी थे। एक स्वच्छ पर इन्होंने कहा है—

तुर्क हिन्दुस्तानिमम मन हिन्दी घोषम अवाव  
पु मन तुलिय हिन्दीम अर रास्त पुर्वी  
वे मन हिन्दी पुर्व ता मध्य गोयम।<sup>१</sup>

खुसरौ की एक स्वीकारोक्ति मिलती है—

१ अमीर खुसरौ हिन्दी को स्नेह से देखते थे। एक स्वच्छ पर उन्होंने कहा है 'मैं मूक पर था। अरबी तरह सोचने पर हिन्दी (हिन्दी) भाषा फारसी से कम नहीं थात हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की ओर और सबों में मुख्य है, रई और कम की प्रचलित भाषायें समझने पर हिन्दी से कम मान्य हुई। अरबी अपने में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती -- हिन्दी भाषा भी अरबी के समान है, क्योंकि उसमें भी मिलावट के लिए स्थान नहीं। मराठी किरामुस्तारंग—हिन्दी साहित्य भाग २—पृ० २२९ से उद्धृत।

‘जुलसे बंद मर्मे हिन्दी मजरे दोस्तां कराया गुदा अस्त । इस सम्दर्भ में प्रयुक्त हिन्दी’ शब्द के अर्थ को अति व्यापक रूप में ग्रहण करना होगा । निश्चय ही हिन्दी के वर्तमान प्रयोग से भिन्न अर्थ में कुसरो द्वारा यह शब्द प्रयुक्त है । कुसरी ने इसका प्रयोग ‘बनाने हिन्द (जिससे वह परिचित था) के अर्थ में किया है । कुसरो के नाम से जो रचनायें उपलब्ध हैं उनमें ‘शास्त्रिकबारी’ अर्थात् फारसी हिन्दी कोश) पहेलियाँ मुकत्तियाँ, दो मुकने तथा यत्रों प्रचलित है । ‘शास्त्रिकबारी’ को कविपद पंक्तियाँ देखिए—

शास्त्रिक बारी सिरबन हार  
बाहिर एक बदा कछार  
रसूख पंगम्बर जान बसीठ  
मारो दोस्त बोछो जो ईठ ।  
X X X

बया बिरावर भाव र भाई  
बन घान मान्तर बैठ री भाई  
मुक्क काकूर अस्त कस्तूरी कपूर  
हिन्दवी जानम्य दादा और सकर  
मूय बूहा युर्व बिहरी मार बार  
जो जलो रिस्त बहिन्दी ।

‘शास्त्रिकबारी’ की एक भी प्रति सोलहवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं प्राप्त है । प्रतियों में उपलब्ध भाषा-रूप षोडशी शताब्दी का नहीं है । इस प्रकार की प्रस्तावना भी की गई है कि ‘शास्त्रिक बारी’ प्रसिद्ध अमीर खुसरो की कृति नहीं है । जहाँगीर के समय (१६१७ एडी ई०) एक अन्य अमीर खुसरो का उत्पन्न मिश्रण है । ये संपीनकार, पायक और विद्वान थे । इन दोनों व्यक्तियों को एक व्यक्ति के रूप में इतिहास लेखकों ने ग्रहण किया है । देखिये पंजाब में उर्दू पू० १७४ गीतानी । जहाँगीर नामीन अमीर खुसरो के पदनाम भी या तो अमर अमीर खुसरो हुए हैं या अमांर खुसरो के नाम से पर्याप्त रचनायें हुई हैं । अपने कथन के प्रमाण हेतु अमीर खुसरो के नाम से प्रचलित रचनाओं के विभिन्न स्तों को प्रस्तुत कर रहा हूँ —

पहेलियाँ—

उरवर है एक ठिरिया उररी, जगने बहुत रिझाया  
बाप का ससने नाम जो पूछा बाबा नाम बताया ।  
बाबा नामकिता पर प्यारा, बूढ़ पहेली योरी ।  
'जमीर कुसरो' यों कहे अपने नाम न बोली ।  
निबोरी ।

सबुने—

जगार क्यों न बसा—

बजोर क्यों न रखा—दाना न था ।

पच्छिन्न क्यों फियासा जवहा क्यों ज्वाला—सोटा न था ।

इन अंशों की भाषा आधुनिक है । इन्हें हम तेरहवीं सताब्दी के जमीर कुसरो की रचनायें नहीं कह सकते हैं । कुसरो के नाम से प्रचलित कवियों में अनेक स्रज ऐसे मिलते हैं जिनमें फारसी और हिन्दी की पंक्तियों का मिश्रण है । यथा—

जे हास मिसकी मकुन तयाफुक कुराय सैना बनाय बतियाँ ॥  
क्रियावे हियरी न दामे ऐ बी । न केहु काहे अगाय खतियाँ ॥  
दावाने हियरी बराज न् जुस्त न रोखे बसलत बु बल कोटह ।  
सब्बी मिया को जो मैं न देखू तो कैसे काटू अचेरी रतियाँ ।

वीर काव्य

अपभ्रंश और अवहट्ट में वीर-काव्य उपलब्ध होते हैं । 'रासक काव्य' और 'चरित काव्यों' में शूणार और शान्त रसों के साथ-साथ वीररस से सम्मिश्रित स्वर्ण भी मिलते हैं । स्वयंभू के रिठ्ठनेमि चरित' ( रिठ्ठनेमि चरित या 'हरिवंशपुराण' ) में वीर भावना का स्वल्प अनेक स्थानों में मिलता है । पुण्यरत्न के 'महापुराण' या 'विचरिष्ठ महापुरिस बुजार्जकार' में शूणार और शान्त के अतिरिक्त वीर रस की सचेतकता पर अनेक उल्लेखपूर्ण वर्णन मिलते हैं । जैन धर्म से सम्बद्ध रचनाओं में बामुदेवों तथा प्रतिबामुदेवों के युद्ध-संदर्भों में वीर रस का व्यापक स्वरूप मिलता है । धनपाल के 'मणसिंघत नहा' के द्वितीय सर्ग की रचना वीर रस की भावभूमि पर हुई है । जबकि कवि की कृति, 'हरिवंश पुराण' में शान्त और कदम के साथ-साथ वीर रस के पयौत प्रसंग मिलते हैं । अपभ्रंश स्रजकाव्यों में मुख्यतः

‘असह्य चरित’ (पुष्पक) ‘सकलविधि मित्राण्य काम्य (नयनन्वी) ‘करकण्य चरित’ (मुक्तिमलकापर) इत्यादि रचनाओं में बीर रसात्मक सौन्दर्यपूर्ण स्वयं पर्याप्त माना में मिलते हैं। परन्तु इन रचनाओं में बीर रस का समाहार घाण्ट में होता है।

अपभ्रंश मुक्तकों, व्याकरण और ध्वन्य-ध्वनों में उपलब्ध उदाहरणों में विभिन्न भावों के साथ-साथ बीर साधारणक ध्वन्य में मिलते हैं। इसका उदाहरण ‘सन्धानुशासन’ तथा ‘अन्धानुशासन’ व प्राकृत्यपेक्षकम् आदि कृतिओं उदाहरण के लिए प्रस्तुत की जा सकती है। प्रबन्ध चिन्तामणि में ऐतिहासिक पुरुषों से सम्बन्धित प्रबन्धों में भी इन प्रकार के पर्याप्त स्वयं मिलते हैं। इस प्रकार हिन्दी में बीरकाव्य का स्वयं अपभ्रंश के बीर काव्यों के अनुकूल ही है। इस प्रकार का विस्लेषण किया जाता है कि समस्त काल से विकसित बीर काव्य बारा का परम्परागत विकास हिन्दी में हुआ है। इनका सम्बन्ध रूप ‘विप्लव और चिन्तन’ इन दोनों ही प्रकार की काव्य-बाराओं में हुआ है।

बीर काव्य भाषा के अन्तर्गत ‘प्रबन्ध’ और ‘मुक्तक’ इन दोनों बाराओं का विकास हुआ है। प्रबन्ध-रचना में ‘महाकाव्य’ और ‘अष्ट काव्य’ दोनों स्वयं उपलब्ध होते हैं। आधिकारिक के अन्तर्गत बीरकाव्य-बारा से सम्बन्धित विन कविताओं और उनके काव्यों का उल्लेख किया जाता है उनकी सभी ‘रासक काव्य’ की विवेचना के अन्तर्गत हो चुकी है। इनमें सर्वप्रथम महीन्दार (११६८ ई०) का स्मरण किया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन्होंने ‘अपभ्रंश प्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें अपभ्रंश की बीरगाथाओं का वर्णन किया गया है। यह कृति उपलब्ध नहीं है। विद्यामल बपालदास नामक चारण की कृति, ‘राठोड़ा री रवात’ में इसका उल्लेख मिलता है।

इन परम्परा के दूसरे कवि अमरिका हैं। इनका समय ११७३ ई० माना गया है। इनकी रचना ‘परमाक राठो’ या ‘आसह घण्ट’ है। इस कृति की विवेचना ‘राठो काव्य’ के अन्तर्गत में की जा चुकी है। देखिये पृष्ठ १०१।

मधुकर—(११८३ ई०) ऐसा विश्वास प्रबल किया जाता है कि अपभ्रंश की कीर्ति-वर्णन की अनुप्रेषा से इन्होंने ‘अप मण्डू अप चन्द्रिका की रचना की है। परन्तु यह ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं है।

विद्याधर (विज्जाहूर)—ये बयबन्ध राठौर के मन्त्री थे। राष्ट्रकूटों के इतिहास में इनके विषय में कुछ संकेत मिलता है। 'प्राकृत पेंपकम्' में इनके नाम से कतिपय छन्द मिलते हैं। बीर रस के सम्बन्ध में इनकी पंक्तियों का महत्व है। यथा—

मय भञ्जित बंगा मयु कस्मिन्ना ऐस्मन्ना रण भुङ्क्ति नृपे ।

मच्छट्ठाभिट्ठा सम्मिन्न कट्ठा छोरट्ठा भज पाव पौरे ॥

बंदारण बंवा पम्पन्न भंवा जात्वा ओत्तवी बीब हुरे ।

कासीसर रागा किन्नर पद्मावा विज्जाहूर मय मंति बरे ।

प्राकृत पेंपकम् पृ० १२६ ।

डों० भोजासंकर व्यास ।

शार्ङ्गधर—(११११ ई ) —ये हम्मीर के सम्राट् राजबंदी के पुत्र थे। ऐसी मान्यता है कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासों' के अतिरिक्त 'हम्मीर काव्य' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। 'प्राकृत पेंपकम्' में इनकी कतिपय रचनायें उपलब्ध हैं। 'शार्ङ्गधर पद्धति' नाम से इसका एक सुशोभित संस्करण है। इसमें शार्ङ्गधर मन्त्र हैं। बेसी भाषा मिश्रित संस्कृत श्लोक भी यहाँ मिलते हैं। यथा—

मून बारल छाह छेठ पसरी निन्नाय छन्न बार ।

छत्रु पाङ्गि कुटालि तोङ्गि हल्लिखी एवं भजस्तुदुसटा-

कुठे मय मरा मनालि छहसा रे कंठ धरे कहे ।

कंठे पाग निनेस बाह सरण बी मल्लनेव विमुम् ।

बीर काव्य मूलतः बीर प्रचलित मूलक रहे हैं। इनका विकास प्रबन्धकाव्य और बीरगोतों के माध्यम से हुआ है। बीर गीतों का विकास मौखिक परम्पराओं में होता रहा है। प्रबन्धों और बीर गीतों में युद्ध के सम्बन्ध में प्रेम की शृंगार मूलक अनुभूतिना निरन्तर विद्यमान रही है। नायिका के रूप-सौन्दर्य का आकर्षण युद्ध की अनुप्रेरणा देता रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस ओर संकेत किया है। 'रासों' को 'बीर नाचात्मक काव्यविधा' के रूप में जो स्वीकृति मिली थी वह अवैज्ञानिक है इस ओर संकेत किया जा चुका है। यह चारणा भी ठीक नहीं कि 'रासों' के रचयिता माट और चारण थे। बीर काव्य की भाषा विषयक समस्या की ओर संकेत करते हुए यह भी कहा गया है कि बीर काव्यों की रचनायें 'डिगल' और 'पिपल' में हुई हैं। डिगल

की कविता राजस्थानी लोक-भाषा भी पिछठ बन मिथित राजस्थानी । परन्तु इस प्रकार की भारवा में भी परिवर्तन करना होगा ।

वारिकालीन साहित्यिक विचारों में भाव-संविज्ञा की दृष्टि से ही बीर काव्यों के आधार पर एक स्वतन्त्र काव्य धारा का वर्गीकरण हो सकता है । परन्तु काव्यरूपों की दृष्टि से इनका समावर्तन कथा-काव्य और वरिज-काव्य के अन्तर्गत हो हो जाता है । अतः इसके लिए स्वतन्त्र वर्गीकरण का सिद्धान्त विरोध उत्पत्ती नहीं होता । 'मल्लि काव्य' तथा 'रीति काव्य' के अन्तर्भ में भी बीर काव्यों की रचनाएँ व्यापक स्तर पर हुई हैं । उदाहरण स्वल्प—वेणु की 'रत्नावली' और सिंह 'वरिज' 'बहोपीर जस बन्धिका' मतिपाम की 'काठ 'कलितकलाम' कृष्णमति मिय की 'संघाम चार' मूषण की 'चिबपाम मूषण' 'मूषण हजाप' 'मूषण उल्लास' आदि इत्यादि विरोध उत्प्रेक्षनीय हैं । इनके काव्य-स्वरूप और भाव-योजना पर आगे के पृष्ठों में विवेचना की गई है ।

मुल्ला बाऊर कृत 'चंदावन' (चंदावन)

मुल्ला बाऊर कृत 'चंदावन' प्रेम-कथा-मूलक कृति है । इस कृति का ऐतिहासिक महत्व है । यह तुलुवन मंजल और जामबी के प्रेमाश्रित काव्यों की पूर्ववर्ती रचना है । मुल्ला बाऊर अष्टादशवीं शताब्दी के समाकाशीन थे । 'चंदावन' की रचना इन्होंने सन् १३७० में की थी । प्रेम-कथा-काव्य-परम्परा की इस आरम्भिक कृति का मूल्यांकन आदि कालीन साहित्य में विरोध मूल्य का विषय है ।

मुल्ला बाऊर के विषय में निम्नलिखितों ने लिखा है 'मुल्ला बाऊर' जमीर सुठरी का समाकाशीन था । उग्रका कविता-काठ संवत् १३२८ के लगभग था । उद्यम मूलक और चन्दा की प्रेम-कथा हिन्दी में रची । यह ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को मुल्ला बाऊर और उनके ग्रन्थ 'चंदावन' का परिचय था । परन्तु किसी को यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका था । लगभग एक सौ बरस के समय 'अधवार उग्र-अधवारके' नामक इतिहास ग्रन्थ की रचना की थी । इस ग्रन्थ से यह ज्ञात होता है कि बाऊर के यह ग्रन्थ अंग्रेजी विराम दिखी थे । य प्रसिद्ध विरामी ग्रन्थ हमरत जमीरकी बरपी की



बड़ी बहन के पुत्र से । अतः बाब्ब का सम्बन्ध बिस्ती-संत-परम्परा की बिस्ती धागा से था ।

अब गब्रेटियर से यह ज्ञात होता है कि ७१६ हिजरी में मुस्लाबाब्ब ने 'बन्दावन' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । इस ग्रन्थ की रचना फिरोजशाह के समय (हिजरी ७५२-७६०) में हुई थी । इसका सम्बन्ध मुस्ला बाब्ब ने 'बन्दावन' में किया है । 'बन्दावन' में जिस रूप में उन्होंने अपना परिचय दिया है उसके अनुसार वे इस्मई के निवासी थे । यह नगर बंगा के किनारे बसा था । अब के प्रादेशिक गब्रेटियर तथा रायबरेली-गब्रेटियर में इस नगर की जगहों की गई हैं । इनसे यह निश्चित होता है कि बिस्ती के सुल्तान इस्तुत्तिसिद्द के शासन काल में यह नगर उन्नतिशील था । उसके समय यहाँ मखदूम बदस्सीन रहा करते थे । फिरोजशाह तुगलक के समय यह इस्लाम धर्म का केन्द्र था । बाब्ब ने बारम्ब में परिचयात्मक रूप में जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है—

साहि फिरोज जिह्नी सुल्तानू । बीना साहि बबीर बन्धानू ॥

इस्मई नगर जैसे नवरत्ना । ऊपर कोट तले बहि गया ॥

घरमी सोय बसहि मयबन्ता । पुन बाहक मायर बसबन्ता ॥

मस्जिद बयौ पुत सजरन मीर । मस्जिद मुबारिक तहाँ के मीर ॥

इस प्रकार मुस्लाबाब्ब मस्जिद बयौ के पुत्र मस्जिद मुबारिक के पुत्र थे ।

'बन्दावन' के रचना-काल का सम्बन्ध करते हुए बाब्ब ने किया है—

बरिस सात से होई इक्यासी । तिहि बाह कवि सरसैत भासी ॥

एक वर्ष प्रति में यह सम्बन्ध इस रूप में लिखा है—

बरस सात से हूये उग्यासी । तहिबा यह कवि सरस अमासी ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का प्रथम हिजरी ७७६ ७८१ (सन् १३१०-१३७०) के मध्य हुआ था ।

'बन्दावन' की कथा की मूल संरचना है कथा और जोरि की प्रथम-कथा ।

कथा-प्रस्तावना की दृष्टि में तथा वर्णन प्रकाश की दृष्टि से यह सूफी प्रेमात्मिक काव्यों के अनुरूप की दृष्टि है । परन्तु इसकी कथा लौकिक है । जामवी मयबा अन्य सूफी कवियों के प्रेमात्मिक काव्यों के समान इसकी लौकिक कथा पर असौकिक तत्वों का आरोपण नहीं है । काव्य रूप की दृष्टि

से यह कहकर सौती की रचना है। गोबर महर और पटरानी फूछरानी की कथा चौद का विवाह बाण्ड कर्ष की अवस्था में बावन नामक बाण्ड से हुआ। उसकी बामु समय बार या पाँच वर्ष की थी। चौद के लिए इस प्रकार के परि संयोग का कोई धर्म नहीं था। वह अपनी निरु-कथा जब अपने परिवारों में व्यक्त करती है तो उसे निर्वासन मिलता है। उसकी माँ उसे धारण देती है। एक बाजिर और का रूप देखकर मुग्ध हो जाता है। वह नगर-नगर चौद के निरु-गीत गाता प्रमथ करता है। उसके गीत के माध्यम से रामा स्वयम् चौद के रूप-सौन्दर्य का संरिच्छ प्रभाव प्राप्त करता है। स्वयम् चौद को प्राप्त करने हेतु राम महर पर आक्रमण करता है। अपनी पराजय सम्मुख देखकर राम महर छोरिक से सहायता की याचना करते हैं। छोरिक रूपय को पराजित करता है। चौद छोरिक पर मुग्ध होती है। इसक परचाव कवि जन्मा-छोरिक की प्रमथ-कथा विविध रूपों में प्रस्तुत करता है। जन्मावन की विभिन्न प्रतियाँ उत्तम्य हैं वे सभी खण्डित हैं। अतः इसकी कथा की समाप्ति विधि पर कुछ कहने में हम असमर्थ हैं।

‘जन्मावन’ का आत्म कवि ने हिन्दी में उपलब्ध विभिन्न प्रेमा-स्वानन्द काव्य के समान ही किया है। यथा—

पहिल नाबडें विजयद्वारा। तिन विरजा इह देख बयारा।  
 विरजसि धापी और बकानू। विरजसि मँदर भी कमलानू।  
 विरजसि चौं मुकन ठगियाय। विरजसि सरय मछन का भारा।  
 विरजसि घाँह खीठ भी बूपा। विरजसि किरतन और सकपा।  
 विरजसि मेघ पवन बँधकारा। विरजसि बीनु कर जमरारा।  
 बाकर समे नितिकी कहेउ एक छो पाइ। १।  
 द्विप करै मन हुकूतें डूधर बिज न समाइ। २।  
 कवि मुस्तागऊ की बर्णन प्रपाठी अति मोहक है। रूप विनय क सन्दर्भ में कवि संरिच्छ विज विधान करता है। प्रस्तुत अंश में कवि न चौद का वर्णन किया है, देखिए—

हम देवन दुम दुमवन जाव। जमक जमक पनि जाउ उगाव।  
 भनक भनक पी जाती परा। जमक जमक जनु मुपति भरा।

बड़ी बहन के पुत्र थे। अतः शाब्द का सम्बन्ध बिस्फी-संत-परम्परा की बिस्फी शाखा से था।

अब बगटियर से यह ज्ञात होता है कि ७१२ हिजरी में मुस्लाबाब्द ने 'बन्दाबन' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना फिरोजशाह के समय (हिजरी ७१२ ७२०) में हुई थी। इसका उल्लेख मुस्ला बाब्द ने 'बन्दाबन' में किया है। 'बन्दाबन' में जिस रूप में उन्होंने अपना परिचय दिया है उसके अनुसार ये इल्मरु के निवासी थे। यह नगर स्या के किनारे बसा था। अबक के प्रादेशिक बगटियर तथा राजबरेली-बगटियर में इस नगर की बर्षों की गई है। इनसे यह विदित होता है कि बिस्फी के सुल्तान इस्तुतिमिश के शासन काल में यह नगर उल्लिखित था। उसके समय वहाँ मखदूम बदरुद्दीन रहा करते थे। फिरोजशाह तुगलक के समय यह इस्लाम धर्म का केन्द्र था। बाब्द ने आरम्भ में परिचयात्मक रूप में जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है—

साहि फिरोज बिद्दी सुल्तानू। बीना साहि बबीर बखानू॥

इल्मरु नगर बसै नवरमा। ऊपर कोट तले बहि गया॥

बरमी लोग बसहि भवबन्ता। गुल गाहक गायर बसबन्ता॥

मलिक बयौ पुत उबरल भीरू। मलिक मुबारिक वहाँ के भीरू॥

इस प्रकार मुस्लाबाब्द मलिक बयौ के पुत्र मलिक मुबारिक के पुत्र थे।

'बन्दाबन' में रचना-काल का उल्लेख करते हुए बाब्द ने लिखा है—

बरिस सात सै होई इसयासी। तहि बाहू कवि सरसैर भासी॥

एक बरस प्रति में यह उल्लेख इस रूप में मिलता है—

बरस सात सै हूतै उम्यासी। तहिया यह कवि सरस अभासी।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन हिजरी ७७२ ७८१ (सन् १३२० १३७०) के मध्य हुआ था।

'बन्दाबन' की कथा की मूल संवेदना है बन्दा भीरू शेरिक की प्रणय-कथा। कथा प्रस्तावना की दृष्टि से तथा वर्णन प्रणाली की दृष्टि से यह सूफी प्रेमाभ्यासक काव्यों के अनुरूप की कृति है। परन्तु इसकी कथा लौकिक है। बामसी अथवा बरस सूफी कवियों के प्रेमाभ्यासक काव्यों के समान इसकी लौकिक कथा पर अलौकिक तत्वों का आरोपण नहीं है। काव्य-रूप की दृष्टि

से यह कवचक घेकी की रक्षा है । मोर महर और गटरानी फूझरानी की कन्या चौद का विवाह बाछ् वर्ष की अवस्था में बामन नामक बाकक से हुआ । उसकी बामु सप्तमन बार मा पाँच वर्ष की थी । चौद के लिए इस प्रकार के पति संयोग का कोई अर्थ नहीं था । वह अपनी विरह-व्याथा अब अपने परिवर्तों में व्यक्त करती है तो उसे निर्वीर्यम मिलता है । उसकी माँ उसे दारण देती है । एक बारिच चौद का रूप देखकर मुस्ति होता है । वह नवर-नवर चौद के विरह-भीष वाता प्रमन करता है । उसके भीष के माध्यम से राजा क्मचन्द चौद के रूप-सौन्दर्य का संसिष्ट प्रभाव प्राप्त करता है । क्मचन्द चौद को प्राप्त करने हेतु राम महर पर बाक्यन करता है । अपनी बराधय सम्मुख देखकर राम महर कोरिच से सहायता की याचना करते हैं । कोरिच क्मचन्द को बराजित करता है । चौद कोरिच पर मुख्य होती है । इसके पश्चात् कवि चन्दा-कोरिच की प्रमय-कथा विविध रूपों में प्रस्तुत करता है । चन्दावन की जितनी प्रतियाँ उपलब्ध हैं वे सभी सभिष्ठ हैं । अतः इसकी कथा की समाप्ति निवि पर कुछ कहन में हय असम्भ हैं ।

‘चन्दावन’ का आरम्भ कवि ने हिन्दी में उपलब्ध विभिन्न प्रेमा-व्याप्तक काव्य के समान ही किया है । यथा—

पहिसे वाबजै विरजनहारा । जिन सिग्या रह देवस बयारा ।  
 विरजसि बरती और बकामू । विरजसि मँदर औ कमिकामू ।  
 विरजसि चौद मुख उबियारा । विरजसि सरप लपट का भारा ।  
 विरजसि चौह सीठ औ मूपा । सिग्यसि किरतन और सकपा ।  
 विरजसि मेप पवन औषकाप । विरजसि बीनु करे बमकारा ।  
 बाकर छमे सितियमी कहैत एक सो माइ । ६।  
 हिय पवरी मन हुलहूँ दूसर विठ न समाइ । ७।

कवि मुस्ताबादर की वर्णन प्रणाली अति मोहक है । रूप चित्रण के सम्बन्ध में कवि संसिष्ट चित्र विधान करता है । प्रस्तुत अंश में कवि ने चौद का वर्णन किया है, देखिए—

हूँस मँदन ठूम ठूमरन आवइ । बमक बयत पनि वाठ उठावइ ।  
 भनक भनक पौ परती परा । बमक बमक बन नुपति भरा ।

सख मल्लान सो चौंदा जायइ । जानों की तरि बेगु सखानइ ।  
 सर भुईं धरख चौंदा परि पाऊ । जान हुते न काहेत नाऊ ।  
 पागे भूर भैन भरि चौंदा । नीज काहि बुइ ठकना मांझी ।  
 कछु चौंदा बिउ छागा मन हुत उतर न काउ ।  
 पौयहि हाथ न फुंके हँस-हँस रोवइ पठ ।

ऊपर यह उल्लेख किया गया है कि कन्वाशन 'कङ्कक सीडी' का काम्य है । प्रत्येक कङ्कक में पौंच यमक है । प्रत्येक कङ्कक का समापन एक यत्ता से होता है । यमक में माताओं का क्रम १६, १५ है । यत्ता में माता-क्रम में मिलता है । किसी में ११, ११ माताओं का क्रम है किसी में ११, १२ और किसी में १२, ११ माताओं का क्रम है ।

'कन्वाशन' की मिलनी प्रतियाँ उपलब्ध हैं वे सभी सन्धिष्ठ हैं । इस रचना की उपलब्ध प्रतियों का विवरण इस प्रकार है—

(१) रीसेम्बल की प्रीत—यह मैनचेस्टर के रीसेम्बल पुस्तकालय में सुरक्षित है ।

(२) बम्बई प्रति—प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजिक में सुरक्षित है ।

(३) पंजाब प्रति—यह प्रति इस समय लाहौर विश्वविद्यालय में पुस्तकालय में सुरक्षित है ।

(४) बीकानेर प्रति—यह प्रति बीकानेर में राकठ सारस्वत के पास सुरक्षित है ।

(५) काशी प्रति—

## भक्ति (काव्य) काव्य

[४] सन्त साहित्य

सन्त साहित्य का रहस्य विवेचन

निम्न भाषणों पर अवलम्बित जो काव्य-धारा हिन्दी में प्रस्तुति हुई उसका विधान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ज्ञान मार्गी तथा प्रेम मार्गी इन दो मार्गों में किया है। ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों को 'सन्त', तथा उनके साहित्य को 'सन्त साहित्य' की संज्ञा मिली है। प्रेम-मार्गी शाखा के अन्तर्गत मधन, कुसुमन बाबरी आदि सुझी कवियों की रचनाएँ आती हैं। इस मार्ग के साहित्य-स्वरूप पर आगे विचार किया गया है। सन्त साहित्य मछि-युग के पूर्वार्द्ध का साहित्य है, तथा दक्षिण भारत और उत्तर भारत की बार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा किसी अथवा राजनैतिक अनुप्रेरणाओं को सम्मिलित कर इस भाग का साहित्य संश्लिष्ट रूप धारण कर सका है। ऐतिहासिक स्पष्टता की दृष्टि से इस सम्प्रदाय से सम्बन्ध साहित्य का स्वल्प निम्नोक्त पन्ध्रवीं शताब्दी में होता है और इसके आवर्तक सन्त कबीर माने जाते हैं। सन्त कबीर का जन्म सन् ११२९ (संवत् १४२३) में माना गया है। जन्मस्थान की सुविधा की दृष्टि से हम सन्त कबीर के साथ ही इस भाग के साहित्य के अध्ययन को सम्बन्ध कर लेते हैं। परन्तु वास्तविक यह है कि सन्त साहित्य की अनुप्रेरणा कबीर के अनेक वर्षों पूर्व ही सृजनात्मक रूप धारण कर चुकी थी। क्रिया प्रक्रिया के संघर्षों में युव-जीवन की विविध परिस्थितियों ने इस काव्य-धारा में एक संश्लिष्ट रूप धारण किया। विश्वसाहित्य की परम्परा का अन्तर्गत क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक इन दोनों रूपों में भाग साहित्य में हुआ। इस परम्परा का विकास जलती काल में संत साहित्य के रूप में हुआ। आगे जो विवेचन और विस्मयन प्रस्तुत है, उससे इस कथन का स्पष्टीकरण हो जावेगा।

साधारणतः सन्त का साहित्यिक अर्थ होता है बुद्धिमान पवित्रात्मा अथवा बोधकाय व्यक्ति। भक्त साधु और महात्मा के अर्थों में भी इन शब्दों का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार की धारणा भी प्रचलित है कि ब्रह्मानन्द-मय्यन्त व्यक्ति

ही संत है 'सुखं ब्रह्मानन्दमात्मकं विद्यते तस्य'। धम्मपद में 'संत' के लिए इस शब्द का प्रयोग मिलता है। यह संस्कृत 'सन्' का बहुवचन है, जिसका प्रयोग हिन्दी में एक वचन के लिए होता है। इसका प्रयोग परम तत्त्व के लिए भी होता है, जो स्थिर है। 'पाहुड़ बोहा' में 'सन्त' का परिचय इन शब्दों में दिया गया है, 'संतु निरंजन सुखि सित तहि किम्बत बनुराज। एक साखी में कबीर ने संत का परिचय इस प्रकार दिया है —

निरबेरी निहकामता सार्हि ऐसी नेह।

बिचियों सु प्यारा रहै सन्तन के अंग एह।

कबीर संवावसी।

यौस्वामी तुलसी दास ने भी संत के व्यक्तियों की बर्णन करते हुए कहा है—

सबकै ममता तान बटोरी ममपद मनहि बाँध बर डोरी।

ऊपर इस ओर संकेत किया गया है कि हिन्दी में निर्गुण भक्ति-परम्परा के अन्तर्गत कबीर और उनके अनुयायियों को निर्गुणपन्थी और उनके काव्य को 'निर्गुण साहित्य' की संज्ञा मिली है। इनके लिए ही 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के पूर्व संतकाव्य की एक स्पष्ट परम्परा मराठी साहित्य में उपलब्ध होती है। मराठी में 'भेदुस' या 'बारकरी' सम्प्रदाय के साधकों के लिए 'सन्त' संज्ञा का व्यवहार किया जाता है। इस सम्प्रदाय में 'निर्गुण' के प्रति विशेष भावना प्रकट मिलती है। इस परम्परा में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम आदि संतों का विशेष स्मरण किया जाता है। कबीर और उनके अनुयायियों के लिए 'सन्त' की संज्ञा सम्भवतः मराठी-परम्परा से ही ग्रहण की गई है। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द ने निर्गुण ब्रह्म की जो कल्पना की है उसमें यह बरा-बरण ही मुक्त है। उन्होंने जिस निर्गुण की कल्पना की है वह इंद्र-अर्द्ध इन्द्र दोनों तत्वों से परिपूर्ण है। वह यौगिक ब्रह्म है। इस प्रकार रामानन्द का ब्रह्म यौगिक साधना और वैदान्तिक विचार द्वारा के अनुकूल है। हिन्दी के संत साधकों ने इन्हीं विचारों का अवलम्ब ग्रहण कर अपनी चिन्तनधारा और अपने भावबोध का निबन्धन किया है। साध-साध हममें ज्ञान भक्ति और वैराग्य इन तीनों के प्रति समन्वयात्मक दृष्टि थी मिलती है। यहाँ ब्रह्मावस्था अस्मत्निरंजन निर्गुण ब्रह्म की उपासना स्वीकार की गई है। बौद्धदर्शन, बौद्ध धार्मिकवाद, धर्मवाद विज्ञान

बाद दोब दर्शन तथा प्रतिनिष्ठा दर्शन इस भावधारा की सामना और इसे सम्मिलित साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़भास ने सन्तों के मतों को 'निर्गुण पंथ' और सन्तों को 'निरगुनिया' कहा है। परन्तु परमुराम बसु इस पर आपत्ति करते हुए यह संकेत करते हैं कि बड़भास के निर्णय से यह संकेत मिलता है कि इसके अनुयायी परम तत्त्व को केवल निगुण ही मानते हैं। परन्तु बसुस्थिति यह नहीं है। कबीर इत्यादि सन्तों ने निर्गुण और सगुण से किसी अनिर्वर्तनीय व अज्ञेय किन्तु अनुभवयोग्य को परम तत्त्व माना है। यथा

आके मुख भाषा नहीं गाही न रूप कुरूप ।

पुष्प बास से पातरा ऐसा तस अनूप ॥

जिसके मुख नहीं है भाषा नहीं है वह पुष्प की सुगन्धि से भी मूल्य केवल अनुभव में ही परिवर्तित हो सकता है संभरन कर सकता है। यही का है कि कबीर को कहना पड़ा—

भाये कही त बहु करी, हकका कही तो मूठ ।

मैं का जानौं राम कूँ, मैनन कबहुँ न दोठ ।

इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया जाता है कि महात्मान मंत्राय ब्रह्मपान तथा तांत्रिक बौद्ध साधना के आधार पर बोधोपायनात्मक और साहित्य पाठों विकसित हुए। उनके विपरीत प्रतिक्रियात्मक रूप में नायकत्व और साहित्य का विकास हुआ। नायकत्व की परवर्ती श्रुतता ही संतमत परन्तु बसु-स्थिति को अति व्यापक रूप में देखना होगा। नाथ-सन्त मत में ब्रह्म के उपासकों के प्रति आग्रह है, जो सम्भवतः सिद्धों में नहीं है। इस प्रकार निर्धर्म से ही स्थिति का समाधान नहीं हो जाता है। बौद्ध के विचलन के समय ही हीनयान महायान, मंत्रयान और सहज यान के समक्ष एक सम्प्रदाय के अस्तित्व का संकेत मिलता है जिसे ध्यानसम्प्रदाय नाम से ज्ञाति मिली थी। इस सम्प्रदाय में मंत्रयान संनयान, सहजयान प्रस्थापित जीवन-मार्ग के विपरीत शून्य, सात्त्विक जीवन-मार्गों के आधार प्रकट किया गया है। मुने ऐसा क्यता है कि 'नाथपंथ' और 'संत' दली भावधारा के परवर्ती रूप हैं। ध्यान सम्प्रदाय में विषय-वस्तुवाच्यो के पठने का आग्रह मिलता है।



ही सन्त है, 'सुखं ब्रह्मानन्वात्मकं विद्यते मयम्'। वम्मपद में 'सांत' के लिए इस शब्द का प्रयोग मिलता है। यह संसृष्ट 'सन्' का बहुवचन है, जिसका प्रयोग हिन्दी में एक वचन के लिए होता है। इसका प्रयोग परम तत्त्व के लिए भी होता है, जो नित्य है। 'पाहुड़ बोहा' में 'सन्त' का परिचय इन शब्दों में दिया गया है, 'संतु निरंजन सुखि सिठ तहि किम्बत जगुरात। एक छासी में कबीर ने संत का परिचय इस प्रकार दिया है —

निरबेरी मिहकामता साईं सेती नेह ।

विरियो धूं न्पारा रहै संतन के जंग एह ।

कबीर उभावली ।

श्रीस्वामी तुकसी दास ने भी संत के लक्षणों की बड़ी बख्ते हुए कहा है—

सबकै ममता ताब बटोरी भगवत मगहि बाँध बर जोरी ।

अगर इस ओर ध्यान दिया गया है कि हिन्दी में निर्गुण भक्ति-परम्परा के अन्तर्गत कबीर और उनके अनुयायियों को निर्गुणपन्थी और उनके काव्य को निर्गुण साहित्य की संज्ञा मिली है। इनके लिए ही 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के पूर्व संतकाव्य की एक स्पष्ट परम्परा मराठी साहित्य में उपलब्ध होती है। मराठी में 'जगुस' या 'बारकरी' सम्प्रदाय के साधकों के लिए 'सन्त' संज्ञा का व्यवहार किया जाता है। इस सम्प्रदाय में 'निर्गुण' के प्रति विशेष आस्था प्रकट मिलती है। इस परम्परा में ज्ञानदेव नामदेव तुकाराम आदि संतों का विशेष स्मरण किया जाता है। कबीर और उनके अनुयायियों के लिए 'सन्त' की संज्ञा सम्भवतः मराठी-परम्परा से ही ग्रहण की गई है। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द ने निर्गुण ब्रह्म की ओर कससा की है उसमें वह बय-भरण से मुक्त है। उन्होंने जिस निर्गुण की कल्पना की है वह ईश-ईश्वर इन दोनों तत्वों से परिपूर्ण है। वह यौगिक ब्रह्म है। इस प्रकार रामानन्द का ब्रह्म यौगिक साधना और वैश्वान्तिक विचार धारा के अनुकूल है। हिन्दी के संत साधकों ने इन्हीं विचारों का अवलम्ब ग्रहण कर अपनी चिन्तनधारा और अपने भावबोध का नियमन किया है। साथ-साथ इनमें ज्ञान भक्ति और वैराग्य इन तीनों के प्रति समन्वयपूर्ण दृष्टि भी मिलती है। यहाँ इताईत अकसमिरंजन निर्गुण ब्रह्म की उपासना स्वीकार की गई है। बौद्धधर्म, बौद्ध शक्तिवाद, धर्मवाद विज्ञान



ध्यान सम्प्रदाय में वैदिक जीवन की सापेक्षता और जीवन के गार्हस्थ्यिक स्वरूप के प्रति विशेष विश्वास प्रकट किया गया है। नावसावकों में गार्हस्थ्यिक जीवन की आवश्यकता मिलती है, परन्तु सन्तों ने इसके प्रति विश्वास प्रकट किया है। कबीर ने अष्टि दृष्ट सन्तों में कहा है 'जपिए नाम जपिए धनु' यर्थात् नाम का जाप करिए और जन्म का जाप करिए। ध्यान सम्प्रदाय में स्वानुभूति-परक ज्ञान को ही विशेष प्रथम मिला है। 'लंकावतार सुख' में 'स्वयं सबेस ज्ञान' की कहीं की नहीं है। 'ध्यान सम्प्रदाय' ने इस 'स्वयं सबेस ज्ञान' सिद्धान्त को ग्रहण किया है। कबीर तथा अन्य निर्गुण सन्तों में भी 'स्वयं सबेस ज्ञान' की कहीं मिलती है। कबीर ने इसी सन्तर्भ में कहा है 'पाछे जाया जाइ बा छोड़ बेर के साबि भाये' में सतगुरु मिला बीपक दीया हाथ। साधना की अनुभूतिपूर्व आवश्यकता के अनेक सन्तर्भों का जो स्वरूप सन्तों में उपलब्ध है, उसकी पूर्ण रूप-दीप्ति ध्यान सम्प्रदाय की अभिव्यक्ति प्रकाशी में अवस्थित मिलती है। कबीर ने मन की दो स्थितियों कबला अवस्थाओं का उल्लेख किया है, 'इन मन' और 'उन मन'। ध्यान सम्प्रदाय में इस प्रकार की चारणा प्रचलित है कि सापेक्ष व्यक्तिगत मन ही निरपेक्ष और समष्टिगत मन हो जाता है। साधना की उच्च भूमि पर सापेक्ष मन निरपेक्ष हो जाता है। व्यक्तिगत मन को अनन्त निरपेक्ष मन में मिलाने की प्रक्रिया को 'उन्मनी अवस्था' कहते हैं। सन्तों ने इस प्रकार की उन्मनी अवस्था की कल्पना की है। कबीर ने इसी क्रिया को व्यक्त करते हुए कहा है—

मन लावा उन मन सौ ममल जूँचा बाब ।  
मन लावा उन मन सौ जनमन मनहि बिलग ।  
कूँज जिलग्या पाणिनी पाणी मूँ बिलग ।

अथवा

मन बीया मन पाइये मन बिनु मन महि होय ।  
मन उनमन उस अँड जूँ बनल अफासा जोई ।  
उठत बैठत कबहुँ न मिसरे, ऐनी ठारी जागी ।  
कई कबीर मह उनमन रहनी, सो परमट कर गारै ।

इस प्रकार शान्त चेतना को अनन्त चेतना में मिलाने की प्रक्रिया को ध्यान सम्प्रदाय में उन्मनी स्थिति कहा गया है। कबीर इत्यादि ने इसी उन्मनी अवस्था

को बर्बाद की है। ध्यान सम्प्रदाय में इसके प्रकट और अप्रकट इन दोनों रूपों की परिचयना की गई है। कबीर ने इस भाव-संविदना को ग्रहण करते हुए कहा है कि 'जग्य' अवस्था अप्रकट है, परन्तु सहज समाधि में वह प्रकट हो जाती है।  
 यथा—

सखो सहज समाधि मली

बहुँ बहुँ सोखो सोइ परिकरमा को कुछ करी सो बिबा

× × × ×

कह कबीर यह अनमन रखी यह परपट कर बाई।

कबीर तथा अन्य मन्तों की रचनायें अंगों में वर्गीकृत मिलती हैं जैसे 'गुरु देव को अंग' 'गुरुमित्र को अंग' 'विद्वत् को अंग' 'परमा को अंग' 'तस को अंग', इत्यादि। बुद्धबोध ने इस छन्द का प्रयोग 'वारण' के अर्थ में किया है। इस सम्बन्ध में 'विमुक्त मन्त्र' की ओर संकेत विशेष महत्वपूर्ण होया। इस छन्द के द्वितीय परिकर में 'अंगति' का अर्थ 'गुरुमित्र' की बर्बाद मिलती है। 'प्राप्तिविधि' में एते अनेक सम्बन्ध मिलते हैं, जिनमें अङ्गों के साथी देने की विधा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के अति स्पष्ट प्रयोग ध्यान सम्प्रदाय में मिलते हैं और इस सम्बन्ध में यह संकेत दिया जा सकता है कि कबीर इत्यादि की रचनाओं में यह प्रयोग इस पूर्व परम्परा से ही अवलम्ब हुआ करता है। उदाहरण—

निबारी निहकामता बाई सेती नेह।

विपिका सुं मारा रही सन्धि का अर्थ यह ॥

यस रथा के सिद्ध सपायत ने 'स्मृति' का उल्लेख किया था। ऐसे सम्बन्ध मिलते हैं जिनमें वे अपनी 'स्मृति' और 'अविस्मृति' अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं। मन्तों ने मुरति का प्रयोग स्मृति के पर्यायवाची रूप में किया है। 'प्रज्ञावारविज्ञा' की अनुभावना का विकास मन्तों में मिलता है जिसके अन्तर्गत 'गुरु' के प्रति बिद्वत् कामर्दन भाव प्रकट किया गया है। 'सिद्धों' और 'नापी' में इनका प्रयोग मिलता है। इसकी बर्बाद हो चुकी है। 'प्रज्ञा' को 'अर्थ' का पर्याय माना गया है। यह ज्ञान-धार के समान अज्ञान को लुप्त करता है। मध्यकालीन मन्तों में इनका प्रयोग मिलता है और यहाँ 'तब' को 'प्रज्ञा' या 'अर्थ' का पर्यायवाची माना गया है, यथा—

सतगुरु साँचा सूरिबौ सबर बु बाप्पा एऊ ।  
 जावत ही मैं मिल गया पढ़्या कछेने छेऊ ।  
 सतगुरु मारा बाण भर बरि करि सुखी मूठि ।  
 अग उचाड़े जागिया गई वसा सँ फूटि ।

सन्तों की साध बारा और अभिषेकना प्रणाली सिद्धों और नाथों की रचनाओं से बलिष्ठ रूप में सम्बन्धित है । भाव भाषा, प्रतीक विधान और अन्य विशिष्ट पारिभाषिक धर्मों की दृष्टि से हम सिद्धों-नाथों और सन्तों में एक मूलका का विकास देखते हैं । इसके साथ-साथ रामानन्द के उद्घोषों से उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति की जो रूप-मोचना प्रस्तुति हुई, उसका यथेष्ट प्रभाव सन्त-मत के स्वरूप संगठन पर पड़ा है । इस प्रकार सूर रूप में हम यह स्पष्ट देखते हैं कि उत्तर भारत में सन्त सम्प्रदाय की पीठिका निर्मित करने में अनेक गलबादों ने योगदान दिया है । बख्तगानी साधकों की विचारधाराओं की प्रतिक्रिया में प्रस्तुति नाथपंथ की अनुश्रुति का योग यहाँ स्पष्ट मिळता है । महाराष्ट्र में प्रचलित विठ्ठल सम्प्रदाय की प्रेमासक्ति भावना का संस्पर्ध भी यहाँ उपलब्ध हो जाता है । रामानन्द द्वारा प्रतिपादित और उनके प्रभाव से बालूत अर्द्धतवाद और विशिष्टार्द्धतवाद की चिन्तन बारा का भी आंशिक समাবেस यहाँ मिळता है । सूफी साधना बारा की रहस्यवादी निमूति भी यहाँ पड़ीत है । इस प्रकार संतमत ने बौद्धदर्शन के अन्तर्गत उपलब्ध सन्निकवाद दृष्ट्यवाद, विज्ञानवाद तथा धर्मदर्शन और प्रतिभिज्ञा दर्शन के विभिन्न छकों को आत्मसात् किया है । कापाक्षिक और रसेस्वर साधना-बाराओं से भी यह मत प्रभावित है । साधना सम्बन्धी छन्दों के अन्तर्गत 'नाद' 'विन्दु' 'उम्ली' आदि का बलिष्ठापक प्रयोग सिद्धों और नाथों के समान सन्तों ने भी किया है । संन-मन्त्र-साधना एवं दर्शन से सन्त विशेष प्रभावित थे । इतना होते हुए भी सन्तों की साधना और उनके काम्य का स्वरूप सिद्धों और नाथों से भिन्न था । उदाहरण स्वरूप राम को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने उन्हें 'दसरथ सुत' से भिन्न माना है—

दसरथ सुत तितुं छोड़ बखाना, राम नाम का मरण न जाना ।

इसी दृष्टि से सन्तों ने पूर्व-परम्परा से प्राप्त 'गुरु' 'तहज समाधि'

‘साधना’ आदि स्त्रियों का भवत्वाय बनने अनुसूत किया है। इस संदर्भ में कबीर से सम्बन्धित सना बाहू के एक बोहे का उल्लेख यहाँ अवलोकित समता है—

निरुण बहू को किया समाधु, तब ही बने कबीरा साधु।

सुर्दही राह सोम सब छाड़ी हिन्दू के करमीठे पुनि प्यारी। दाहू।

(बेबिए—हिन्दी साहित्य की भूमिका प्र० स० ३७)। इस प्रकार कबीर साधना की उस माय भूमि की प्रस्तावना करते हैं जहाँ धर्म-जाति और धर्म साधना की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की अनुभूतना सम्प्रदाय की समता के निर्माण में निरन्तर क्रियाशील रही है।

हिन्दीसाहित्य में सन्त-मठ का जो स्वल्प विकसित हुआ है उसके स्वल्प पद्य का आधिक्य खेव रामानन्द को है। रामानन्द से प्रेरित होकर ही कबीर ने निरुण सन्त-मठ का स्वल्प-विधान किया। भक्ति के इस स्वल्प का इन्होंने विस्तार किया। इस प्रकार की साधना भी मिलती है कि भक्ति का प्राथमिक दायित्व में हुआ, रामानन्द द्वारा उत्तर भारत में उसका संस्थापन हुआ सत्तरीप-मठगणों में उसका प्रसार कबीर द्वारा हुआ।

मछी दाबिइ ऊमरी साध रामानन्द।

परपट किया कबीर ने सठ बीर नव सन्त।

रामानन्द की शिष्य परम्परा में रैदास कबीर, ब्रह्मा, देवी रैदास भवानन्द, मुठानन्द, बाघानन्द, गुरुगुरानन्द, परमानन्द, महानन्द और भी आनन्द की कक्षा की जाती है।

सन्तों की परम्परा

संत-परम्परा के इतिहास-विवरण के सम्पर्क में ‘गीत गोविन्द’कार जयदेव का नाम आदि सन्त के रूप में प्रस्तावित किया जाता है। इस प्रकार की मान्यता मिलती है कि जयदेव सहजवान से प्रभावित थे। ‘आदि ग्रन्थ’ में जयदेव के नाम से जो दो पंक्तियाँ मिलती हैं उनमें से प्रथम में रामनाम का उल्लेख है। महा-बाब के नाम-साधन मन-बचन-कर्म से की जाने वाली ‘भक्ति’ का भी उल्लेख मिलता है। दूसरे पंक्ति का नाम भूमि इस प्रकार है कि भक्ति का स्वल्प दम और दाम

से स्पष्ट है। कतिपय सन्दर्भों में यह संकेत मिलता है कि इनके 'गीतगोविन्द' में वर्णित राधा-कृष्ण सहस्रनामियों की साधना में उपलब्ध 'प्रज्ञा' और 'उपाय' के पर्यायवाची हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। कतिपय विचारकों ने इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी माना है। वास्तविकता यह है कि जयदेव सन्त परम्परा के अन्तर्गत नहीं आते हैं। जिस जयदेव के पदों का संकलन 'आदि ग्रन्थ' में मिलता है, के 'गीतगोविन्दकार' से मिले थे। इसका निर्णय जयदेव के नाम से प्रयुक्त निम्नलिखित पद की भाषा से हो जाता है —

कंद सत मेरिया, नाथ सब पूरिया सूरसत छोड़सावसु कीजा ।

अबक बस ठोड़िया अबल बसु बाधिया अपड़ बड़िया तहा आपठ पीया ।

मन बाधिगुण आधिबसरीजा । तेरी दुनिया हसरि संमानिया (छांद १) ।

धरनि कठ अरधिया धरनि कल सरधिया । ससस कठ सकल संमनि बाइया ।

बवदि बँदेठ कठ रमिया बहसु निरवानु निव कीज पाइया ।

[ मुद्रण्य साहित्य पृ० ११०६, ११५१, समुत्तर । ]

इस प्रकार हम हिन्दी-सन्तपरम्परा के सन्दर्भ में हिन्दी के पूर्व मराठी में उपलब्ध सन्तपरम्परा और हिन्दी सन्त-परम्परा के परवर्ती पंजाबी सन्तों की परम्परा का उत्तम आवश्यक समझे हैं। इस दृष्टि से ही मराठी और पंजाबी परम्परा के साधकों और कवियों की जड़ी यहाँ की जा रही है। महाराष्ट्र में नाथ सम्प्रदाय की विभिन्न धाराओं से सम्बन्धित साधना-परम्पराओं का उत्तम मिलता है। नाथ सम्प्रदाय के समानांतर यहाँ 'महानुभाव सम्प्रदाय' का अस्तित्व होता है। मराठी में सन्तमत की परम्परा यहीं से आरम्भ होती है। हिन्दी में उपलब्ध सन्त मत का पूर्व रूप भी यहाँ उपलब्ध हो जाता है। इसके प्रवर्धक चक्रवर थे। इनका समय सन् १२३३ ई० के निकट पड़ता है। इनकी रचनाओं में प्रस्तावित भाव पद का स्वल्प कतिपय संघों में हिन्दी-सन्तों की रचनाओं के भाव-मस के समान ही है। उपा०—

मूख स्थानी मिठ बन्ध बांधो हो जोई ना काय कलाई ।

गुह बचने उड़ियाया दड़ बन्धोई जे बीना बचक नाही ।

मुठी बंधी भिन्न होई जेणे सहमी जाई।

सो परी मोरो बेरी आपणा काई।

×

×

×

पनि पंचायत पावें वन हो जावती आप आन स्वामी।

पथ पुरो हो मनस्विर करो हो वन में सीसा भान।

जावा गमन बुई न बारो बुझि राखो जपन ये।

झारिए जाणा निवारो निवारो हो मिडे न पायो जाई।

जैसे निरंजन लोको करी हो भाव-ज्याव दोन्ही नाही।

—हिन्दी को मराठी सन्तों की देन।

महाराष्ट्रीय सन्त-परम्परा में सन्त सधना का नाम विशेष आदर के साथ दिया जाता है। नामदेव ने अपनी रचनाओं में इनका उल्लेख किया है। परन्तु इनकी जीवनी, इनकी रचना-मशाली और साधना प्रचालो के विषय में सामग्री उपलब्ध नहीं है। सधना या सधना नामक एक अन्य साधक की कथा मिलती है परन्तु वे सिन्ध के निवासी थे तथा वे नामदेव के समकालीन थे।<sup>१</sup>

इस सन्दर्भ में बारकरी<sup>२</sup> सम्प्रदाय का उल्लेख अपेक्षित है। इसके प्रवर्तक संत पुंडलिक थे। इनका समय सन् ११२० के लगभग आता है। इस पंथ की नामवत्पत्न भी कहते हैं। इसके विकास का इतिहास पाँच कालों में इस रूप में विभक्त किया जाता है—(क) भक्त पुंडलिक से संत ज्ञानेश्वर तक (ख) संत ज्ञानेश्वर और नामदेव (१२७०-१३३०) तक। (ग) संत नानुबास और संत एकनाथ (१३३०-१५८०) तक। भक्त चिरोमणि तुकाराम और संत जिनोबाराय (१३८८

१ नामदेव से इनका परिचय एकोय की कन्नरा में हुआ था। यहीं वे सन्त-परम्परा में द्रोष्टित हुए थे—इसलिए उत्तर भाग की सन्त परम्परा।

पृ०—१००।

२ बारकरी का अर्थ है बारी (बाग) बरी (करनेवाला), परन्तु महाराष्ट्र में धार्मिक दृष्टि से उसे बारकरी कहते हैं जो पंढरपुर स्थित श्रीविठ्ठल मूर्ति का उपासक है और जो आषाढ़ तथा एकादशी को पंढरपुर की नियमित यात्रा करता है।



१७२०) । एक संत महीपति और उनके पत्न्यात् ( १७६० ) तक । यह सम्प्रदाय मूर्खतवाद को मानता है । व्यापक निर्गुण और निराकार के प्रति आस्थावान होते हुए भी उसके सगुण रूप पर भी यहाँ विश्वास मिश्रित है ।

संत ज्ञानेश्वर संत ज्ञानेश्वर का जन्म सन् १२७५ (यके ११६७ आषाढ वद्य ८ को) पैठण से चार कोस पर गोदावरी के उत्तर किनारे जापे गाँव में हुआ था । संत ज्ञानेश्वर और नामदेव इन दोनों ने एक साथ उत्तर भारत की यात्रा की थी । इसका उत्कृष्ट नामदेव रचित 'तीर्थीवर्णि' के ५६ अंशों में है । इसकी मृत्यु अवधि सन् १२६९ है । इन्होंने 'भावार्थ दीपिका' ( ज्ञानेश्वरी ) अमृतानुभव 'हरिपाठ के अंग' इत्यादि रचनाएँ की हैं । 'ज्ञानेश्वरी' श्रीमद्भगवद्गीता की टीका है । ऐसा विश्वास प्रकट किया जाता है कि उत्तर भारत में भ्रमण करते समय इन्होंने हिन्दी में भी कतिपय पदों की रचना की थी । यथा—

सब बट देखो माभिक मीना,  
कैसे कहीं मैं काछा बबका ।

X X X

निर्गुण ब्रह्म मुनन से न्यारा ।  
पोषी पुस्तक भए अपारा ।  
कोरा कागज फड़कर बाय ।  
तेना एक और देना दोय ।

X X X

निर्गुण बाठा कटौ हतौ ।  
सब भुय बन में जाप हित ।  
सबा सर्वथा अक्षय होय ।  
तेना एक न देना दोय ।

एक अन्य उदाहरण —

छोई कच्चा बे नहीं गुड का कच्चा  
हुनिया तबकर जाक रमाई, जाकर बेटा बन मौ ।  
सेवरि भुवा बज्जासन भाँ ध्यान परछ है मुत मौ ।  
छीरप करके उम्मार छोई, बागे जुमसि मो-सारी ।

हनुम निवृत्तिका ज्ञानेश्वर को लिंगके ऊपर जागा ।  
 सव्युक्त की इना भई तब आपहि आप विद्याना ।  
 ये रचनायें ( किसी भी रूप में ) ज्ञानदेव की नहीं हो सकती हैं । इनका  
 प्रथम ज्ञानदेव के नाम से बहुत बाद को हुजा मगता है । इनकी भाषा  
 अंगरबी धाताबी के परचाए की है ।

संत नाम देव (१२७०-१३५०) — संत नामदेव बारकरी मन्मथान के  
 मध्यम प्रचारक थे । उत्तर भारत में कबीर का जो स्थान है वही स्थान महा  
 राष्ट्र में संत नामदेव का है । इनका जन्म सन् १२७० में गरसी बाहुमधी नामक  
 ग्राम में एक वर्षी कुल में हुआ था । विठ्ठल-मठि इनके परिवार की विशेष  
 मक्ति-विधा थी । ज्ञानेश्वर के साथ इन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की थी ।  
 पंढरपुर के मन्दिर के महाद्वार पर ८० वर्ष की आयु में इन्होंने समाधि ली थी ।  
 गुरु नामक तथा गरसी मेहता ने इनकी मठि की महत्ता स्वीकार की है और  
 इनके व्यक्तित्व-उपपाटन में अनेक पदों की रचना की है । यथा—

पूर्व पंढरपुर मोझर । बाहुमध धापी सर्वक गाय ।  
 उई बौधी मुसतान सभाम ॥

नामदेव गाय संजीवन करे । तो गुलसी माळा कंठ पर ।  
 ते नामदेव नी जिवाडी गाय । एवा समरन बंधुष्ट राय ॥

—गरसी मेहता ।

इस प्रकार की किम्वदन्ती है कि संत नामदेव ने लगभग ३००० 'अमर्यों' की  
 रचना की है । ये अमर्य 'नामदेव की गाथा' नामक ग्रंथ में संगृहीत हैं ।  
 'गुरु ग्रंथ साहिब' में नामदेव के ६५ पद संकलित हैं । 'गुरु ग्रंथ साहिब' का संकलन  
 नामदेव के समाधिस्थ होने के लगभग छह सौ वर्ष परचाए हुआ है । अतः इस  
 संकलन के पदों को नामदेव के मूल पदों के रूप में हम नहीं स्वीकार कर सकते ।  
 इन पर पंजाबी का मयेष्ट प्रभाव मिलता है । राही बोली जनभाषा तथा अन्य  
 पूर्वी बोक्तियों के बीच इनमें समन्वय हो जाते हैं । संत नामदेव संत ज्ञानेश्वर के  
 दिव्य विरोधा रोकर से दीक्षित हुए थे । और बीजा के परचाए के योग-मार्ग की  
 ओर आकर्षित हुए । नामदेव के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में से कुछ बीच यहाँ

प्रस्तुत हैं । वस्तु-पक्ष और अभिव्यञ्जना प्रधासी, इन दोनों ही दृष्टियों से ये रचनायें हिन्दी-संत-रचनाओं के अनुरूप हैं—

अबधु मधुम निराकार सहि अनहत बेनु बजाऊ गो ।  
इडा पिंगला अड्ड सुखमना पवनै बौधि रहाउमो ॥  
चंद्र मुरख बुई सम करि राखत कस्य ज्योति मिळि जाऊँमो ॥

अपवा —

जम अनहत सूर उबारा, तह दीपक बसै चँझारा ।  
गुस्पर छापी आनिआ अनुसामा सहज समानिआ ।

अपवा राव मीरब—

मैं बछरी मेरा रामु भठारु ।  
रनि रनि ठाकठ करठ सिंगारु ॥  
भळे निदळ भळे निदळ भळे निदळ सोगु ।  
तनु मनु राम पियारे जोमू ॥

इसकी तुलना कबीर-रचित 'हरि मेरो पित मैं राम की बहुरिआ' अपवा 'दुखहिनि गावहु मंगलवार, हम बर जाए राबा राम मतार' शीर्षक पदों से की जा सकती है । नामदेव 'नाम स्मरण' के प्रति आग्रह व्यक्त करते हैं । अपनी वाचियों में गुरु की महिमा का वर्णन करते हैं । 'उम्मी बवस्या' में उपलब्ध 'अम-मोय' का वर्णन करते हैं । उम्मी बवस्या और 'अमल नाब' का विस्तार कबीर और अन्य संत साधकों में उपलब्ध होता है । उसका स्वरूप नामदेव की रचनाओं में मिल जाता है । पंहरपुर की बिच्छक प्रतिमा को नामदेव ब्रह्म के व्यापक स्वरूप के रूप में सम्मान देते थे । कबीर ने इनकी परम्परा के अनुरूप ही अपने अनेक दोहों में 'बिहुसा' का प्रयोग व्यापक ब्रह्म के लिए किया है—

गोबुल नाइक बिहुसा मेरो मन जायी तोहि रे ।  
बहुतक दिन बिभुरे भए, तेरी बीसति भावे मोहिरे ॥  
मन के मोहन बीहुसा गहुमन जायहु तोहि रे ।  
चरण कमळ मन मानिआ, और न भावे मोहि रे ॥

—कबीर

संत एकनाथ (सन् १५३३-१५६६) संत एकनाथ का जन्म दक्षिण काशी देऊल में संत भानुदास के कुल में सन् १५३३ में हुआ था। ये भानुदास के पीछे थे। इनके पिता सूर्यनारायण थे, और उनकी माता का नाम रुक्मिणी था। इनका जन्म मूल गजग में हुआ था। इसका उल्लेख एकनाथ ने इस प्रकार किया है, 'मूल की मूल में ही एकनाथ ने जन्म ग्रहण किया। यह मूल गजग ऐसा था पड़ा कि मैंने लोगों को निर्मूल कर दिया। उन्होंने गजग की सान्ति की सो वे स्वयं ही सान्त हो गए।' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'बतुःस्तोत्री भागवत', 'हस्तमासक' 'मानन्द सङ्गीत' 'नाथनामवत' 'ज्ञानेश्वरी का संक्षेपित पाठ' 'भावार्थ रामायण' इत्यादि। एकनाथ के नाम से सम्बन्धित कतिपय हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध हुई हैं।

### हिन्दी में सन्त-परम्परा

कबीर — हिन्दीसाहित्य में सन्त-काव्य धारा का स्पष्ट और स्वतन्त्र स्वरूप कबीर द्वारा संस्थापित होता है। कबीर भुव चिन्तक भुव-उन्मायक और भक्त इन विभिन्न भूमिकाओं में अपने व्यक्तित्व का प्रसार करते हैं। अपने एक शोहे में उन्होंने कहा है—

तुम्हें जिन जानों पीत है, यह निज बड़ा बिचार  
केवल कहि समुदाहृत्य आसन साधन सार रे।<sup>१</sup>

अर्थात्, इन गीतों में आचारमकता की अपेक्षा ब्रह्म-सम्बन्धी कबीर की अपनी भावनाएँ व्यक्त हैं, जो आत्मानुभूति द्वारा ही उपलब्ध हैं। कबीर ने एक व्यापक मानवतावादी आदर्श की सम्राज्यता को अपने सम्मुख रखा है। इस आदर्श में उन्होंने जीवन के परात्मात्मक सौन्दर्य को परिवर्द्ध किया है। इनमें 'बहुवन द्विपाय' और 'बहुवन भुपाय' की भावना नैसर्गिक रूप में संघाहित हो उठी है। इनका परिचय इस शब्द से मिल जाता है।

हरिजी यह बिचारिया सागी कई कबीर।

भी सागर में बीज है ये कोई बड़े सीर।<sup>२</sup>

सम्भवतः उनकी छात्रियों से घबलाकर में बड़े व्यक्तियों को जीवन का छट पिक सार यह बिचार उनही भाषा वा मेद-दण्ड है।

१. देखिए—मराठी का भक्ति साहित्य पृ० १२०।

२. कबीर उन्मायनी पृ० ८०-पद २।

३. कबीर उन्मायनी पृ० ४६ आरस की ओर।

कबीर का व्यक्तित्व मध्यकासीन साधकों में अनेक दृष्टियों से आकर्षणपूर्ण रहा है। नायादास ने कबीरदास का जो परिचय दिया है उससे उनके मानसिक गठन का परिचय मिल जाता है—

कबीर कानि राखि नहीं बर्णायम पठारसनी ।  
 भक्ति विमुख जो बर्म मुख अघरम करि मायो ।  
 योग बन्ध हत बान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।  
 हिन्दु गुरक प्रभाम रमैनी सबही साखी ।  
 पक्षपात नहि बचन सबही के हित की भाखी ॥  
 बासु बहा ह्वे बगल पर मुख देखी नाहिन मनी ।  
 कबीर कानि राखी नहीं बर्णायम पठारसनी ॥६०॥ (१२४) १

कबीर ने विरोधों के बीच जन्म किया और विरोधों के मध्य ही वे विकसित हुए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कबीर का जन्म विजया ब्राह्मणी के गर्म से हुआ था, और उनका पाकन-पोषण मुसलमान बुजारे गीर के यहाँ हुआ था। इस जन प्रचलित भावना में कितना सत्य है इसका निर्णय करना सरल नहीं और यह आक्षेपक भी नहीं है। परन्तु इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण विरोधी तत्वों और संस्कारों से हुआ था। वे विरोधी परिस्थितियों के मिश्रण-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। मुसलमान उन्हें मुसलमान नहीं मानते थे हिन्दु उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। समग्रता की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि उनके व्यक्तित्व का विकास ऐसे वातावरण में हुआ, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रतिस्पर्धी की भावना उच्च रूप धारण करती आ रही थी। पण्डितों की कटिवाही दृष्टि, ज्ञान की परिमा से मण्डित उनका व्यक्तित्व और शिष्ट की भावना की बरत सीमा उनके सम्मुख थी। दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर परिष्कात अधिका का भयावह रूप था। योग-भावना समाजान्तर सौक्ति-भावना प्रचलित थी। समुक्त शक्ति और निर्बुक्त शक्ति इन दोनों का प्रभावपूर्ण अस्तित्व था। इस प्रकार अपने मूल में प्रचलित समस्त मान्यताओं की

प्रतिद्विष्टता स्वीकार करते हुए कबीर ने अपने पथ का निर्माण किया और अपने अनुमूल सत्य पर उन्होंने सर्वत्र निश्वास किया ।

कबीर जीवन में आत्मा रखने वाले साधक थे । उनकी साधना और भक्ति का संकुरण इसी आत्मा का प्रतिफलन था । यही कारण है कि उनमें भक्ति, ज्ञान अनुराग विराग आकर्षण और विकर्षण इन समस्त तत्वों के समन्वय की महती चेष्टा विद्यमान है । योग की साधनात्मक प्रक्रियाओं से प्राप्त प्रसार जीवन की सापेक्षता में ही उपलब्ध हो सकता है इसका निश्वासपूर्ण प्रस्तावन इस पद में निकल आता है —

संतो सहज सहज समाधि मली ।

छाई ते मिलन धनो बा दिम ते सुरत न भवत बली ।

मौन न मूढ़ कान न कर्बु काया कष्ट न धार ।

कुले नैन में हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ।

कहूँ तो नाम मुनूँ तो मुमिरन जो कछु करूँ तो पूजा ।

मिष्ट उद्यान एक सम देखूँ भाव मिटाऊँ दूजा ।

जहँ-जहँ जाऊँ छोई परिकरमा जो कछु करूँ तो सेवा ।

जब सोऊँ तब करूँ दण्डक पूरूँ और न देवा ।

छत्र निरखर मनुजों राधा मलिन बप्पन का त्यागी ।

ढलत बैठत कबहूँ न बिसरै ऐसी छारी साधी ।

कई कबीर यह समझ रहनी छोई परपट करगई ।

मुल-मुल के इक परे परम मुख तेहि में रहा समई ।

कबीर : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २४६ ।

संत कबीर की बीबनी का निर्धारण अनुभूतियों के आधार पर ही होना रहा है । अब उनकी प्रामाणिक बीबनी अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है । कबीर कभी इन्हें सत्यपुरुष मानते हैं । उनकी यह धारणा है कि सत्यपुरुष का ठेग कापी के सहज वातावरण में संभव है । उनकी यह धारणा है कि सत्यपुरुष का ठेग हुआ था । नीरु पुनाई की स्त्री को पुरखन के पथ पर पौड़ा हुआ बालक मिला था । (देखिए — 'कबीर चरित बोध' पृष्ठ ६ भी ब्रह्मदेवर प्रेम बम्बई मंत्र १८९१) । कबीर का परिचय 'प्रसंग चरित्रावत' नामक ग्रन्थ से भी प्राप्त होता है ।

पीपा, सेन रेवास, के साथ कबीर का भी सम्बन्ध इस ग्रन्थ में मिलता है। वहाँ इन्हें रामानन्द का शिष्य कहा गया है। इस ग्रन्थ में नीरु और नीमा का भी उल्लेख मिलता है। अपने आचार्य रामानन्द के साथ कबीर ने उत्तर भारत का व्यापक भ्रमण किया था, इसकी चर्चा भी यहाँ मिलती है। (देखिए स्वामी रामानन्द और प्रसंग पारिजात :—छंकर दयालु श्रीवास्तव हिन्दुस्तानी १९३२)। कबीर पंक्तियों में इनके जन्म से सम्बन्धित निम्नलिखित बोधा प्रसिद्ध है।

बीरहु छी पचन साठ मए, पन्ध्रबार एक ठाट ठए।

बेठ सुबी बरसावत को पूरनमासी प्रकट मए।

अनन्तदास ने अपनी रचना 'कबीर साहब की परचई' में कबीर का विस्तृत उल्लेख किया है। इनका समय पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनका जन्म मौन सन्त रेवास के पश्चात् हुआ था। इस ग्रन्थ में कबीर की जीवन-स्थिति का उल्लेख नहीं है परन्तु इससे कबीर के जीवन के कतिपय पक्षों पर प्रकाश पड़ता है —

१ वे काशी के जुलाहा थे।

काशी बसे जुलाहा एक हरि भक्तनि की पकड़ी टेक।

२ वे गुरु रामानन्द के शिष्य थे।

गुरुम भयति कबीर की बीन्ही परछा बीन्ही बख्सा बीन्ही ॥

भाम बड़े रामानन्द गुरुवाया। जा मन मरन का घरम बनाया।

३ सिकन्दर शाह काशी में आया था। उसने कबीरबाद पर अत्याचार किया था।

साह सिकन्दर काशी आया। काशी मुर्दा के मनि थाया।

कई सिकन्दर ऐसी बाटा। हूँ तोहि बैपू पोखिय जाटा।

पाछल संक स मॉने मोरी। अब बैपू साँची करामति तोरी।

बौन्धो पग मेरहो बंजीर। जे मोरपो गंगा के मीर।

४ कबीर ने ६२० वर्ष की आयु पाई थी।

बाल फनी बोपा मैं बयो। बीस बरस तैं पैतन मयो।

बीस सऊ कम कीनी मयती। ता पीछे पाई है मुकटी।

इस रचना से यह स्पष्ट होता है कि बीस वर्ष की अवस्था में इन्हें कर्म-ज्ञान मिला था। सो वर्ष तक इन्होंने पछि का प्रचार किया इसके पश्चात् इनकी मृत्यु हो गई।\*

अनुसूचक ने 'भारत-ए-अकबरी' (संवत् १६११) में कबीर का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार कबीर मुहम्मिद (क़ुतुबशाही) से। इस ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है कि मुहम्मद अकबर के अन्तर्गत एतमपुर में इनके दो मजार हैं। मृत्यु के पश्चात् मुसलमानों द्वारा इनके शव का दफनाने और हिन्दुओं द्वारा वाक़ने का उल्लेख मिलता है। पर आलोचना सम्यक् से कबीर के आविर्भाव काल का परिचय नहीं मिलता है। संत कबीर की जीवनी के निर्धारण-हेतु 'पुरुष ग्रन्थ साहिब' का संदर्भ दिया जाता है। सिद्धार्थ के पीछे यह थी अर्जुनदेव ने इसका सम्पादन किया था। इस ग्रन्थ में कबीर के 'राम' और 'बख़्श' संदर्भित हैं। परन्तु इनसे कबीर के जन्म का उनके आविर्भाव काल का परिचय नहीं मिलता। कतिपय सम्प्रदायों में अनेक उन्हीं ने कबीर का उल्लेख किया है।

यथा —

१ नाम छोड़ा कबीर बुझाया पूरे गुले पाई। (नामक छिरी राम)।

२ नामदेव कबीर छिलोचनु सचना सीमु छरे।

कहि रविदासु बुनहु रे संतहु हरिबीर ते समे छरे।

(यथ रविदासी रामु भाषा)।

इस संदर्भ में यह विस्मयनी प्रकट किया गया है कि कबीर नामक के समकालीन थे। कबीर के रामु बौद्ध (४) तथा रामु बौद्ध (१५) संस्था के ५०

१ इस ग्रन्थ का अन्त्येष्ट हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के संतित विवरण के मूळ ८८ पर किया गया है। हस्तलिखित ग्रन्थ का नम्बर १२८ है। इसका संवत् १६१७ (१६००) है। इसके दो भाग हैं जिनमें पोषा और रंदास की जीवनीयों हैं। इनके नाम ही कबीर की जीवनवर्षी है। अतः इस ग्रन्थ में उल्लेखित कबीर का जीवन-परिचय भी अनुसूचितों पर आधारित है। डॉ० रामधुमार वर्मा ने विश्व प्रति का उल्लेख किया है अन्तर्गत प्रतिलिपि नाम है संवत् १८४२ (७५ १७८२)। 'यह नामी हजार भी' के मुद्रित का एक अंश है। ईसाई हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० २२६ २३०।



भी प्रमाण स्वल्प दिए जाते हैं। प्रोफेसर बी०बी० राय ने अपने 'सम्मन्नाम' सीरीज ग्रंथ में इसका उल्लेख करते हुए कहा है 'गुरु नामक जो कबीर के बाप भी मौजूद था और जिसने बहुत सी तात्वीमी बातें अपने भावि ग्रन्थ में इतिहास की, सन् १४१० ई० (१३४७) में अपनी तात्वीमी केनी गुरु की सो कबीर का उससे थोड़ी मुह्त मौजूद होना भी मुमकिन है।' इस वक्तव्य से आलोच्य विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता है। कारण यह कहा जा चुका है कि 'आदि ग्रन्थ' एक संग्रह ग्रंथ है, जिसका संकलन गुरु अर्जुनदेव ने संवत् १५५१ में किया था। नामक ने कबीर का साक्षात्कार किया था इसका विश्वासपूर्वक समर्थन नहीं किया जा सकता। इस ओर संकेत करते हुए परधुराम कर्तुषेयी ने लिखा है। 'आदि ग्रंथ केवल गुरु नामक की ही रचना न होकर एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें गुरु नामक कबीर आदि के अतिरिक्त उन विश्व गुरुओं की भी रचनाएँ संग्रहित हैं जो गुरु नामक के पीछे हुए थे और जिसका संग्रह काल बास्तब में पाँचवें गुरु अर्जुनदेव (१५५०-१५६३) के समय सं० १५५१ में बतलाया जाता है। गुरु नामकदेव १५, १६ साल की अवस्था में अपने पिता की आजा से माई बाबा के साथ व्यापार करने निकले थे। उस समय काहोर के मार्ग में जो मूखे साधुओं का बसाड़ा था औरकाला के पास निवा था वह कबीर पन्थियों का ही रहा होना तथा वे सोच अपने मठ के प्रचारार्थ दूर-दूर तक फेले गए होंगे और इस प्रकार अत्यन्त कम से कबीर साहब के सिद्धान्तों द्वारा उनका प्रभावित हो जाना कोई असम्भव बात नहीं। इसलिए—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—पृ० ७१४।

नामादास के ग्रन्थ 'नक्तभाऊ की टीका' का अवलम्ब ग्रहण कर कबीर की जीवनी के निश्चरण का प्रयत्न किया जाता है। 'नक्तभाऊ की टीका' संवत् १७०२ में लिखा गई। यहाँ दो तथ्यों की ओर संकेत किया गया है—(१) कबीर सिक्न्दर लोदी के सहकाशीन थे। सिक्न्दर लोदी ने उन पर अत्याचार किया था। (२) कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यदि इन दोनों तथ्यों का काष्ठ-निर्धारण हो सके तो कबीर के आधिर्भावकाल का कुछ पचरिय हमें मिला सकता है।

प्रायः समस्त इतिहासकार कबीर और सिक्न्दर लोदी को समकालीन मानते हैं। परन्तु यहाँ तक भुलें जाय है सिक्न्दर लोदी और कबीर से सम्बन्धित बटना का सर्वप्रथम उल्लेख अनन्तदास द्वारा 'कबीर साहब की परिचरि' में मिलता



भी प्रमाण स्वरूप दिए जाते हैं। प्रीटसर बी०बी० राय ने अपने 'सम्प्रदाय' शीर्षक ग्रंथ में इसका उल्लेख करते हुए कहा है 'गुरु नामक जो कबीर के बाप भी मौजूद या और जिसने बहुत सी ठानीमो जाते अपने जाति ग्रन्थ में इतिबास की, सन् १४६० ई० (१५४७) में अपनी ठानीम ऐसी धुक की सो कबीर का सबसे थोड़ी मुस्त मौजूद होना भी मुमकिन है। इस सम्बन्ध से आलोच्य विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता है। कारण यह कहा जा चुका है कि 'जाति ग्रन्थ' एक संग्रह ग्रंथ है जिसका संकलन गुरु अर्जुनदेव ने संवत् १६६१ में किया था। नामक ने कबीर का साक्षात्कार किया था इसका विस्वासपूर्वक समर्थन नहीं किया जा सकता। इस ओर संकेत करते हुए परशुराम ऋषिजी ने लिखा है 'जाति ग्रंथ केवल गुरु नामक की ही रचना न होकर एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें गुरु नामक कबीर, जाति के अतिरिक्त उन सिख गुरुओं की भी रचनाएँ संग्रहीत हैं जो गुरु नामक के पीछे हुए वे और जिसका संग्रह काल वास्तव में पाँचवें गुरु अर्जुनदेव (१६२०-१६६१) के समय सं० १६६१ में बतसाया जाता है। गुरु नामकदेव १५, १६ साल की अवस्था में अपने पिता की आज्ञा से भाई बाला के साथ व्यापार करने निकले थे। उस समय आहोर के मार्ग में जो भूखे साधुओं का बजाड़ा या ओरकाला के पास मिला था, वह कबीर पत्नियों का ही रहा होगा तथा वे सोय अपने मठ के प्रचारार्थ दूर-दूर तक फैल गए होंगे और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से कबीर साहेब के सिद्धान्तों द्वारा उनका प्रभावित हो जाना कोई असम्भव बात नहीं। देखिए—उत्तरी भारत की संत परम्परा—पृ० ७१४।

नामादास के ग्रन्थ 'मक्तमाल की टीका' का अवलम्ब ग्रहण कर कबीर की जीवनी के निर्धारण का प्रयत्न किया जाता है। 'मक्तमाल की टीका' संवत् १७०२ में लिखी गई। यहाँ दो तथ्यों की ओर संकेत किया गया है—(१) कबीर सिक्खर लोदी के दरकासीन थे। सिक्खर लोदी ने उन पर अत्याचार किया था। (२) कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यदि इन दोनों तथ्यों का काल निर्धारण हो सका तो कबीर के आधिभौतिककाल का कुछ पचरिय होंगे मिल सकता है।

प्राक् समस्त इतिहासकार कबीर और सिक्खर लोदी को समकालीन मानते हैं। परन्तु यहाँ तक मुझे ज्ञात है सिक्खर लोदी और कबीर से सम्बन्धित बटुआ का सर्वप्रथम उल्लेख अनन्तदास ब्रह्म कबीर साहेब की परिचर्चा में मिलता



४ बिम्बू—	History of the Rise of the Mohamden Power in India	सन् १४८८ १५१७ (संवत् १५४२ १५७४)
५ मेहासिन्ध	Sikha Religion	सन् १५२८ १५२८ सिंहासनाधीन (संवत् १५२५ १५७५ सन् १४८८ (संवत् १५४५)
६ कैवट—	Kavir and the Kavir Pantha	सन् १४४० १५१८ सन् (संवत् १४२७ १५७५) १४२९ संवत् १५२३ बीनपुर पमान
७ स्मिथ—	Oxford History of India	१४४०-१५१८ सन् १४८२ (संवत् १४२७ १५७५) १५१७ (संवत् १५४५-१५७४)
८ मञ्जारकर	Vaisnavism, Saivism and minor Religious System	सन् १५२८ १५२८ सन् १४८८ (संवत् १४२५ १५७५) १५१७ (संवत् १५४५ १५७४)
९ ईस्वीमस्यार	New History of ईसा की पन्नाहवीं India	सन् १४८२ संवात्सी १५१७ (संवत् १५४५ १५७४)

इस प्रकार प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार सिक्खर खोरी का समय सन् १४८८ ८२ से सन् १५१७ (संवत् १५४५ ४६ से १५७५) तक माना गया है। और इस सम्बन्ध के अनुसार खोरी का समय भी नहीं रहा होगा। (बिस्मि—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २३६)। परन्तु इस सम्बन्ध में एक अन्य सत्य की ओर हमारा ध्यान जाता है। बस्ती जिले के मगहर नामक स्थान पर बामी नदी के तट पर बिजधी खो ने खोरी की समाधि बनवाई थी। यह घटना सन् १४२० (संवत् १५०७) की है। इस प्रकार खोरी की निम्न तिथि इस सन् या संवत् को मानना चाहिए। सिक्खर खोरी का समय खोरी के निर्धारित समय के अक्षीय वर्ष पश्चात् पड़ता है। अतः इन सम्स्त सम्बन्धों से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। डॉ० रामकुमार बर्मन ने इसके

समाधि में एक प्रस्ताव निम्ना है। उनकी भाषणा है कि सन् १५५० में स्थापित समाधि कबीर का मरणस्थल नहीं है। इसके विपरीत यह उनका स्मृति स्थल है। जिसकी खोज ने कबीर के जीवनकाल में ही इसका निर्माण किया था। सिदाई जी ने १२७ वर्ष पश्चात् इस स्मृति स्थल का उद्धार किया और जन जीवन में यह कबीर की समाधि के रूप में प्रचार पा गया। (हिन्दी छात्रिय का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २३७)। डॉ० वर्मा के निष्कर्ष का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। कबीर और सिकन्दर बोरी को समकालीन सिद्ध करने के लिए ही विद्वान सेवक ने इन प्रकार की कल्पना की है। बाव भी कबीरपत्नियों में एक विशेष श्रेणी मिलती है। बावक अपने जीवनकाल में ही अपनी समाधि की व्यवस्था कर लेते हैं, और मातृ ध्वंसीत कर उस भूमि में धरीर-स्थापन करते हैं। मयरा धरीर छूटने पर उन्हें उसमें समाहित कर दिया जाता है। बहुत सम्भव है कि अपने जीवनकाल में ही अपनी अन्तर्मुखि मयहर में कबीर ने अपनी समाधि की व्यवस्था कर ली हो। और जीवन का सम्पूर्ण प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसमें समाधि के ली हो। परन्तु स्पष्ट समाधि के निर्माण के १२७ वर्षों पश्चात् कबीर अपनी समाधि में समाहित हुए, इसके लिए हमारे पास प्रमाण नहीं है। लोक-जीवन में प्रचलित अनुष्ठानों और इतिहास की अस्पष्टताओं से इस समस्या का निराकरण सम्भव नहीं है।

मेरी धारणा की सैकितिक प्रामाणिकता कबीर के निम्नो-सम्बन्धी लोक-जीवन में प्रचलित मान्यता में मिल जाती है। 'कबीर कसौटी' नामक ग्रन्थ (रचना काल संवत् १६४२, प्रकाशक लखनौ कबीर पन्थी) में कबीर की मृत्यु से सम्बन्धी एक दोहा उपलब्ध होता है 'सकत् कन्है से पसतत किया मयहर को कील। मावमुदी एकादशी, रमो पन में पवन' (कबीर कसौटी मुद्रिका पृ० ३४)। 'इस रचना में इसका भी उल्लेख किया गया है कि, 'औ कबीरजी काशी में एक छोटी बरत दस दहकर मयहर गए।' काशी से माव गुरी एकादशी दिवस बुधवार, सं० १५७२ को उन्होंने मयहर के लिए प्रस्थान किया था और उसी दिन वहाँ से चलकर काशी से मयहर तक की 'एक मंजिल' की दूरी तय की वहाँ पहुँचकर

१—पी पञ्चमाम चतुर्वेदी-जसरी भारत की संत परम्परा से यह सूचना ग्रहण की गई है। इसलिए पृ० ७१० पृ११

जिंसी संत की एक छोटी कोठरी में जो वर्तमान आमी मरी के किनारे बी  
 छेत्कर बाहर छोड़ सी बाहर से ताका बन्द कर दिया और एक अधौकिक ध्वनि  
 में साब सत्य भोक सिधार गए ।<sup>१</sup> यदि हम इस कथन की प्रामाणिकता सिद्ध कर  
 सकें तो कबीर का जन्म या आविर्भावकाल संवत् १४३३ या सं० १३६८ होया ।  
 तासी ने भी अपनी कृति 'इस्वार व-का कितोराएर ऐहूँ ऐहूँ' (सं०  
 १८२६) में इस बोहे की ओर संकेत किया है । और परवर्तीकाल में इस विषय  
 पर विचार करने वाले आलोचकों ने इसे प्रामाणिक मान लिया है ।<sup>२</sup>

कबीर की मृत्यु तिथि को प्रस्तावित करने वाले आचार्यों में आचार्य सिद्धि  
 मोहन सेन और डा० पीताम्बर दत्त बड़म्बास का उल्लेख आवश्यक है ।

इनके अनुसार कबीर का मृत्यु संवत् १५०५-७ (सं० १४४८-५०) है ।  
 इनका जन्म-संवत् १४३३ (सं० १३८६) है । इस प्रकार इनकी धारणा है कि  
 बिबसी साँ ने इनकी मृत्यु-समाधि निर्मित की थी । अतः इस सन्दर्भ में प्रस्तुत  
 दो विचार धारामें सम्मुख आईं ।

(क) प्रथम धारा इनका जन्म काल संवत् १४३३ (सं० १३८६) मानती है ।  
 इसके अनुसार इनका मृत्यु-काल संवत् १५७५ (सं० १५१८) है । ३२ वर्ष  
 की अवस्था में इनकी समाधि निर्मित की गई (सन्तों की परम्परा के अनुसार) ।  
 समाधि निर्माण के ७५ वर्ष पश्चात् कबीर समाधिस्थ हुए ।

(ख) द्वितीय धारा (प्रथम धारा के अनुसार) इनका जन्मकाल संवत् १४३३  
 (सं० १३८६) में मानती है परन्तु मृत्यु तिथि के रूप में १५०५-७ (सं० १४४८-  
 ५०) स्वीकार करती है । इसके अनुसार कबीर की मृत्यु ११ वर्ष की आयु में  
 हुई । परन्तु बिबसी साँ कबीर के अनुयायी के अथवा उन्होंने कबीर की समाधि  
 बनवाई इसकी पुष्टि किसी ऐतिहासिक आचार से नहीं होती है । पीताम्बर दत्त  
 बड़म्बास इनका जन्मकाल संवत् १४२७ में मानते हैं और इनके अनुसार इनकी

---

१—वेस्टकाड ग्रीकालिफ़, बालम्बर प्रसाद अण्डरहित डॉ० भंडारकर,  
 फर्गुहर, स्वामिमुखर बास रामचन्द्र गुप्त इसे ही ग्रहण करते हैं । मण्डारकर  
 स्वामिमुखर बास इनकी आयु १२० वर्ष मानते हैं । वेस्टकाड और अण्डरहित,  
 फर्गुहर इनका जन्म काल सं० १४६७ मानते हैं ।

सामु ७८ वर्ष की थी। इस प्रकार इनके अनुसार कबीर की मृत्यु सम्वत् ११०१ में हुई थी। परन्तु विद्वान केवल ने अपने निर्धारण का कोई कारण नहीं दिया है।

इस प्रकार कबीर की सम्प्रतिष्ठि या उनके आधिपत्य-काल का निर्णय इस नहीं कर सकते। विभिन्न अनुसन्धियों की ऐतिहासिक तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि कबीर का जन्म संवत् १४११ या १४१६ में हुआ था। श्री परम-राम कपुर्वरी डॉ० बड़ववाल के अनुसार ही खोजते हुए कहते हैं। यदि सांकेतिक रूप में वे संवत् १४२१ को कबीर का जन्म संवत् मानते हुए कहते हैं 'यदि मान्य दास की परवर्द्ध सामाजिक मान की धार और उसके वैयक्त का एकात्मिकी काल की साथ निकल जावे तो इस विषय में 'सोच बारस है केतन नयो' के सहारे हम उनके जन्मकाल के लिए संवत् १४११ ई० १४२१ से छहने और बँसा हाने पर कबीर साहब मैथिल कवि विद्यापति (ई० १४१७-१५०१) के समसामयिक हो जायेंगे। ऐसी रचना में इस सम्प्रति की भी पुष्टि होती हुई दीख पड़ेगी कि आशाम के प्रसिद्ध मल कवि संकर देव (ई० ११०१ ११२१) ने अपनी उत्तरी भारत की हादय वर्णना सीधे माना (न० ११४० ११४२) के अनुसार पर कबीर साहब की सम्प्रति के जो वर्णन किए थे। देखिये—'उत्तरी भारत की सत्त परम्परा', पृष्ठ ७३३। कबीर के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके परभाव की दृष्टि रहा। अन्त परवर्तीकाल में उनकी ओकनी के साथ अनेक अलौकिक घटनाएँ भी सम्बद्ध होती रही हैं। सिद्धार्थ कोरी का प्रसंग कबीर के जेठ छठी के शिष्य होने की वजह, उनके घर के स्थान पर कमान-फूल की प्राप्ति, इसी सम्प्रति की घटनाएँ हैं। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द की निधन तिथि है संवत् १४०७। जैसी भी कल्पना की जाती है कि रामानन्द की मृत्यु के समय कबीर लगभग २० वर्ष की आयु के थे। ऐसी स्थिति में कबीर का आधिपत्य संवत् १३८७ में हुआ होगा। बीजाम्ना इस बड़ववाल ने रामानन्द की निधन तिथि के लिए संवत् १४४७ की सम्भावना की है। इनके अनुसार ही कबीर का आधिपत्यकाल संवत् १४२७ है।

#### कबीर की निधन तिथि

वर्षा के आधिपत्य काल ६ मसाम ही उनके निर्वाणकाल का निर्देश भी मान्य नहीं हो पाया है। विविध प्रकार की विवरणियों और लोक-गीतनमें



प्रचलित अनुकथाओं का आधार ग्रहण कर विद्वानों ने उनकी निम्न तिथि के निर्धारण का प्रयास किया है।

निम्नलिखित दोहों में कबीर की मृत्यु तिथि का संकेत मिलता है—

(क) संवत् पञ्चहसी पाँच गौ मगहर कियो गौन।

बगहन सुबी एकादसी, मिछो पौन में पौन ॥

(ख) संवत् पञ्चसी पछतरा कियो मगहर को गौन।

माघ सुबी एकादसी, एको पौन में पौन। (कबीर-ब्रजमुनि)।

(ग) संवत् पञ्चसी ऊन्हतरा हाई।

सतमुख बके उठ हंसा ग्याई। (बर्मदास-दावण पंथ)।

(घ) पञ्चह सी उनचास में मगहर कीनो गौन।

बगहन सुबी एकादसी मिछो पीन में पीन। (नन्द माख की टीका)।

प्रथम दोहों के अनुसार कबीर की मृत्यु संवत् १५०५ में द्वितीय के अनुसार संवत् १५७५ में, तृतीय के अनुसार १५९६ में और चतुर्थ के अनुसार १५४६ में हुई। इन विभिन्न संवत्‌ों में संवत् १५७५ के प्रति विद्वान अधिक आकर्षित हैं। परन्तु उनके इस आकर्षण के लिए इतिहास-सम्मत तथ्य सम्मुख नहीं आ सके हैं इस ओर संकेत किया जा चुका है। इसके पश्चात् संवत् १५०५ को इनका मृत्यु काळ मानने वालों का ठक अधिक बहानात्मक समझता है। परन्तु बड़े-छोटे प्रमाण न मिलने पर इस सम्बन्ध में भी निश्चयात्मक निर्णय नहीं किया जा सकता है। डॉ० रामकुमार बमौ सन्त कबीर का जन्म काळ संवत् १४३३ (१३६८) और निधन-संवत् १५३१ (सन् १४६४) मानते हैं।<sup>१</sup> इसप्रकार वे कबीर की आयु ६९ वर्ष मानते हैं। परन्तु अपनी मान्यता के समर्थन में वे प्रमाण नहीं प्रस्तुत करते हैं।

### जन्म-स्थान

सन्त कबीर के जन्म-स्थान का निर्णय भी अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। इस सम्बन्ध में दो विचारधारामें प्रमुख रूप में सम्मुख आई हैं। प्रथम के अनुसार कबीर का जन्म बस्ती जिले के अन्तर्गत मगहर नामक स्थान में हुआ था। अपना जीवन समाप्त कर मगहरमें ही कबीर ने समाधि ली थी। दूसरी

के अनुसार कबीर का जन्म काशी में हुआ था। अपनी जीवनीका समाप्त कर संक्षेपेणें मगहर में समाधि ली थी। एक अन्य ग्रन्थ के अनुसार कबीर का जन्म बाजयवड़ के बेरहूर या बेरहूर पोखरा नामक ग्राम में हुआ था। इस एक अन्य प्रकार की धारणा विकसित हो रही है। इसके अनुसार सन्त कबीर का जन्म बिहार के किसी स्थान में हुआ था। कबीरदास ने अपने कतिपय पदों में मगहर का उल्लेख किया है। इनके आधार पर यह निश्चित होता है कि इनका जन्म मगहर में हुआ था। 'पुन जन्म साहिब में कबीर के नाम से प्रकटित एक पद में इसका उल्लेख मिलता है—

छोरे बरोखे मगहर बसिओ मोरे तन की तपन बुझाई।

बहिरे दरसन मगहर पाइओ पुनि काशी बसे आई।

इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि कबीर का जन्म मगहर में हुआ था और काशी में वे बाद की जाये थे। काशी उनकी साधना भूमि थी। परन्तु विद्वानों ने इस सम्बन्ध में आपत्ति प्रकट की है। इनके अनुसार 'बरखनु पाइओ का जन्म जन्म जन्म नहीं अपितु ज्ञान-दर्शन प्राप्त करना है।' इनके अनुसार कबीर का जन्म काशी में हुआ था। काशी से ज्ञान प्राप्त करने हेतु वे मगहर गए और ज्ञान प्राप्त कर के पुनः काशी लौट गए। इसके परमाणु पीछे-अर्थात् की कथा-लेखन पर वे पुनः मगहर जा गए थे। इस प्रकार की प्रस्तावना सम्मानित नहीं क्योती है। मगहर किसी भी समय बार्मिक या सांस्कृतिक केन्द्र नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में कबीर ने मगहर बाहर ज्ञान प्राप्त किया होता, यह मानना उचित नहीं लगती है। वास्तविकता यह है कि कबीर मगहर में जाये थे। काशी उनकी साधना भूमि रही है। कबीर के नाम से प्रकटित निम्नलिखित दोहे में इसी सत्य का उल्लेख मिलता है—

छोरे बरोखे मगहर बसिओ मोरे तन की तपन बुझाई।

बहिरे दरसन मगहर पाइओ पुनि काशी बसे आई।

यस वग के विपरीत ऐसे भी वर्णन मिलते हैं, जिनमें काशी का उल्लेख कबीर के जन्म-स्थान के रूप में मिलता है। यथा, 'काशी में हम बसत गए हैं

रामानन्द बिताए । वास्तविकता यह है कि इस संदर्भ में प्रस्तुत दोनों उद्धरण कबीर के नहीं हैं । कबीर के परचात् इस प्रकार की अनेक किंवदन्तियों का विकास हुआ है, जिनमें से अधिकोस कबीर के नाम से सम्बद्ध हो चुकी है । कबीर के परचात् दो मतों का विकास मिळता है । प्रथम मत उन्हें मगहर का मानता है, द्वितीय मत उन्हें काशी का । अतः समस्त सम्प्रदायों में एक दूसरे में इस प्रकार बुझिष्ठ हो चुकी है कि उनमें से वास्तविकता का निर्धारण सम्भव नहीं लगता है । हमारे पास इतिहास-सम्मत दृष्टान्त नहीं हैं जिनके आधार पर हम स्पष्ट निर्णय ले सकें । परन्तु किंवदन्तियों और अनुभूतियों की आन्तरिक अनुकूलता में इतिहास की सापेक्षता अति दीर्घ रूप में विद्यमान रहती है जिसका आधार ग्रहण कर हम वास्तविकता के कुछ निष्कर्ष पहुँच सकते हैं । उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मैं इस विचार की ओर आकर्षित होता हूँ कि कबीर का जन्म बस्ती बनपद के अन्तर्गत मगहर नामक स्थान में हुआ या अथवा उनके जीवन का आरम्भिक काल मगहर में ही व्यतीत हुआ या । सम्पूर्ण बस्ती बनपद का विकास मुसलमान-काल में हुआ है । मगहर मुसलमानों की मुख्य बुज्जाहो की बस्ती है—असंगवार सौ वर्ष प्राचीन । ये बुज्जाहो हिन्दू धर्म से परिवर्तित करते हैं और ऐसी स्थिति में कबीर का मगहर में जन्म लेना असम्भव नहीं लगता है । परन्तु काशी से सम्बन्धित विचार द्वारा का समाधान किस प्रकार हो ? बहुत सम्भव है नीक और नीमा सम्बन्धितायुगीनियों के साथ काशी में मगहर जाये हों । उनके मगहर जाने के पूर्व ही काशी में उनके पुत्र कबीर का जन्म हो चुका या । इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि नीक और नीमा मगहर से अथवा के सम्बन्ध में काशी आए हों और कबीर उनके साथ आए हों । उत्तरचात् नीक और नीमा काशी-वासी हो गए हों ।

डाक्टर मोदिन्द त्रिगुनायत मगहर को ही कबीर का जन्म-स्थान मानते हैं । परन्तु बस्ती स्थिति मगहर के विपरीत वे काशी स्थित मगहर की कल्पना करते हैं । इस प्रकार वे काशी और मगहर के क्षेत्र को समाप्त करने का प्रयास करते हैं । परन्तु अभी तक काशी के अन्तर्गत किसी मगहर के अस्तित्व की सूचना हमें उपलब्ध नहीं है । अतः इस प्रकार की प्रस्तावना का कोई अर्थ नहीं है । त्रिगुनायत के अनुसार 'मगहर में मुसलमानों की बस्ती अधिक है कोई आश्चर्य

नहीं कि कबीर इन्हीं जुलाहों के घर उत्पन्न हुए हों ।' इस निष्कर्ष से किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । परन्तु इस निष्कर्ष पर का० सरलाय सिंह आपत्ति करते हैं । उन्होंने कतिपय विज्ञापनों की हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि उस स्थान का बगहर नाम कबीर का उपकारीन है ? (२) यहाँ कबीर के जन्म के पहले से ही मुसलमान रहते थे ? (३) कबीर का जन्म किसी मुसलमान के घर में हुआ था ? (४) वह इसी स्थान का जुलाहा था । हो सकता है यह बगहर कोई नई बस्ती हो और कबीर के बाद जुलाई लोग यहाँ आकर बैठे हों और अपने स्थान को बहुत देने के लिए कबीर से सम्बन्धित बगहर के पीछे बगहर नाम रख दिया हो ।' बिश्वनाथ डॉक्टर महोदय का निम्न प्रयास करते हुए मेरी एक विज्ञप्ति है । उनके पास क्या ऐसे प्रमाण हैं जिनके आधार पर वे अपनी आपत्तियों का समर्थन कर सकें ? उनके पास इस प्रकार का एक भी आधार नहीं जिसके अद्वयत्व से वे यह निष्कर्ष कर सकें कि वर्तमान बगहर कबीर का उपकारीन नहीं था । कबीर के पहले यहाँ जुलाहे नहीं रहते थे इस निष्कर्ष का भी आधार उनके पास नहीं है । यहाँ तक उनके जुलाहा होने का श्रान्त है । इस विरवाच का लक्षण नहीं किया जा सकता । अन्य से अथवा संस्कार से किसी न किसी रूप में कबीर का सम्बन्ध जुलाहा पानि में रहा है । लोगों को यह बताना है कि कबीर बगहर के प्रति दमनित आकर्षित नहीं थे कि यह स्थान उनकी जन्मभूमि थी बल्कि एक बराच मानवीय परिवर्तनशीलता वाले जीवन में व्यापक बराचल प्रमाण पर खड़ी थी । इस मानना के कारण ही कबीर न बगहर का स्तवन किया है । कुछ इसी प्रकार की अनुभूति से प्रेरित होकर बिश्वनाथ डॉक्टर न दोषपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करते हुए लिखा है 'मैं समझता हूँ कबीरदास ने अपनी रचनाओं में बगहर की बड़ी दृष्टिपूर्व नहीं की है कि वह स्थान उनका जन्म-स्थान था, परन्तु इसलिए कि बगहर पर पीले हुए निर्मूलक बर्तन को अन्य विज्ञापन के लिए मरुता चाहते हैं । इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनुचित नहीं कि कबीर द्वारा की गई बर्तन में अष्टा भावना की सम्पन्नता न होकर यदि वह अन्तर्बदलन की उम्मुक्त वास्तविकी प्रकृति की उत्पत्ति माना है ।' इस शर्त में एक विज्ञप्ति है । बगहर के समान अनेक ऐसे स्थान हैं जो अराजक

ही कर्मस्थ माने जाते हैं। कबीर ने इन स्थानों के उच्चार का प्रयास क्यों नहीं किया ? मगह (मगध) बौद्धों का केन्द्र रहा है। सामान्य जन-जीवन में उसे अपवित्र माना गया है। बौद्धों का केन्द्र होने के कारण यह हीन-भावना से उपेक्षित रहा है। परमार्थी काष्ठ में मगह और मगहर को एक ही मान देने की प्रवृत्ति बाएल हुई, और मगह की अपवित्रता का आरोपन माहर पर हुआ— यह आरोपण नैसर्गिक भी है।<sup>१</sup>

कबीर का जन्म जुलाहा जाति में हुआ था। उनकी बातियों में ऐसे भी संदर्भ मिलते हैं, जिनमें इन्होंने अपने को 'कोरी' भी कहा है। यथा —

(क) जाति जुलाहा मति की बीर हरवि हरवि गुन रमै कबीर ।

क० पृ० पद २७० ।

(ख) पछिहर काम राम कहू बीरे, सुन सिख बन्धू मोरी ।

हरि की नाम धर्म पद दाता कहै कबीरा कोरी ॥

क० पृ० पद ३४६ ।

यथा 'हम बरि सुत तमहि नित ताभा' आदि संकेतों से यही निष्कर्ष मिलता है कि कबीर जाति से वा व्यवसाय से जुलाहा थे। कबीर के समकालीन रैदास भक्ता आदि उन्हें जुलाहा मानते हैं। गुरु अमरदास जगन्तदास राजब तुकाराम की रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि कबीर जुलाहा जाति के थे। 'सबीन्तुस असफिया' 'बलिस्ताग ए-मजहिब' अनुराग सागर', कबीर कसौटी' आदि रचनाओं से भी इस विश्वास को पोषण मिलता है कि कबीर जुलाहा-जाति से सम्बन्धित थे। रैदास ने एक बंध में कहा है कि कबीर के कुल में ईश का स्मरण मनाया जाता था। उनके कुल में शेष सखीर तथा पीरों का सम्मान था। गोबध भी इनके परिवार में होता रहता था।

१—कबीर के जन्म-स्थान की ओर संकेत करने वाले बंधों में निम्नलिखित बंध विशेष प्रचलित हैं—

पहले बरखन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई ।

या

पहले बरखन कासी पायो पुनि मगहर बसे आई ।

जाके ईति बकरीति निज गऊर, बप कर मानिये सेप सहिय पीरा ।

बाप बैसी करी पूत ऐसी बरी नाँव नब लंड परसिष कबीरा ।

सर्वेयी—अजन प्रसाद, पद २२ ।

इस प्रकार के अनेक सम्बन्ध मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि कबीर का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मुसलमानी संस्कार से अवश्य था ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की जाति का निम्नोक्त इतिहास के मन्दर्म में दिया है । वे उनकी जाति का सम्बन्ध आधीना 'यूरी' या 'योरी' जाति से स्थापित करते हैं । अपना निष्कर्ष देते हुए वे कहते हैं 'यदि यह अनुमान सत्य है तो इकता के साथ कहा जा सकता है कि कबीर वास्तविक जुलाहा जाति में पालित हुए थे वह एकदम पुरत पड़ने के योरी बैसी किसी आधम-अष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की राह में थी । देखिए कबीर पृ० ११ ।

आर यह संकेत दिया गया है कि कतिपय सम्पर्कों में कबीर ने अपने को 'कोरी' भी कहा है 'कई कबीर कोरी' या 'सूनी मून निबाये कोरी' । यह अनुमान लगाया गया है कि कबीर आधीन कोरी जाति के थे । यह जाति कासा त्वर से जुलाहा जाति में विलीन हो गई थी । मुसलमान होने के पूर्व यह जाति योरियो को अनुयायिनी थी<sup>१</sup> । इन मन्त्र का समर्थन हजारी प्रसाद द्विवेदी भी करते हैं । 'ऐना जान पड़ता है कि यद्यपि कबीर वास्तविक रूप में जुलाहों न मून छ्मानी धर्म ग्रहण कर लिया था पर आचार्य जनता में तब भी कोरी नाम से परिचित थे । कबीर वास्तविक रूप में जुलाई के स्वकी और उस्तादियों में कई जगह जुलाहा के स्थान पर कारी नाम दिया है<sup>२</sup> । कबीर जिन जाति के थे उनका जाति का योरी प्रबन्ध जुती नाम से प्रसिद्ध था । इस प्रकार का विवरण दिया जाता है कि वे योरी पहले नाम कबीर थे जो मूलतः बौद्ध धर्म के अनुयायी थे । वर्ण-व्यवस्था में इनका विरासत नहीं था । इनकी जीविका का साधन कपड़ा बुनना था । मरने के पश्चात् वे दाह संस्कार अथवा और गाढ़कर इन दोनों विचारों से कलते थे । कबीर के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उनका मृत्यु के

१ इतिहास पीनाम्बर दत्त बड़व्याल योग प्रसाद पृ० १२५ ।

२ कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १ ।

परचात् कुछ फूस बच रहे थे बिगमें जाये को हिन्दुओं ने जलाया और जाये को मुसलमानों ने गाड़ दिया । योगियों में प्रचलित शव-संस्कारकी प्रथा और कबीर के शव-संस्कार की विधा में साम्य मिलता है । अतः इसमें सन्देह नहीं कि कबीर का सम्बन्ध प्राचीन युगी जाति से था<sup>१</sup> ।

कबीर के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी संस्कारों (हिन्दू-मुसलमानों) का सम्मिश्रण मिलता है । इस प्रकार के संस्कार कबीर को किसी निश्चित परम्परा से प्राप्त हुए लगते हैं । अपने विस्मेषणों में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ० पीताम्बर दत्त बड़पाळ ने इन्हीं भिन्न भिन्न परम्पराओं की ओर संकेत किया है । श्री परशुराम जगुर्वेदी ने इस सम्भावना की ओर संकेत करते हुए कहा है 'बहुत सम्भव है जुगी कड़कामेबाजी जाति पहले नाथ मत की अनुयायिनी रही होगी और ऐसी अनेक जातियों ने मुसलमानी प्रभाव में जाकर कहीं-कहीं सामूहिक रूप में बर्मांतर ग्रहण किया होगा । हम तो यहाँ तक कहेंगे कि काशी एवं मगहर के साथ विशेष सम्बन्ध रखने वाले कबीर साहब का कुछ यदि क्रमशः सार नाथ एवं कुशी मकर जैसे बौद्ध तीर्थों के आस-पास निवास करने वाला बौद्धों या उनके द्वारा प्रभावित हिन्दुओं में से ही किसी का मुसलमानी रूप रहा हो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । हो सकता है कि उसमें सूत कातने व बुनने की कीटिका भी पूर्व समय से बैसी ही लगी आ रही हो' ।

इन निष्कर्षों की वैज्ञानिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता है । कबीर की रचनाओं की अन्तर्द्वेषता का निरीक्षण इस प्रकार के निर्णय का समर्थन करता है । कबीर के व्यक्तित्व निरीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि उनमें एक विशिष्ट

१ 'ब्रजाल में योगियों की कहीं समाधि भी जाती है और कहीं नहीं इनका अग्नि-संस्कार भी किया जाता है । मेरा अनुमान है कि श्वश्रुत कबीर दास को (जिपुरा बिले के वर्तमान योगियों की भाँति) समाधि भी दी गई होगी और अग्नि-संस्कार भी किया गया होगा । कबीर पृ० ११ । अग्नि-संस्कार के परचात् बचे हुए भस्म को भी कुछ कहते हैं । बहुत सम्भव है कि योगियों में प्रचलित इस प्रथा के अनुसार कबीर का अग्नि-संस्कार हुआ होगा और उनके बचे 'कृष्ण' का विभाजन हुआ होगा, जिस पर मगहर में मस्जिद और मस्जिद का निर्माण हुआ होगा ।

२ उत्तर भारत की सप्त परम्परा, पृ० १५० ।

संस्कार और शिक्षा का संयोग था। उनकी विभक्तिकारा परम्परापूर्ण है। इस परम्परापुत्र शिक्षा को आत्मसात करने के पदवाच्य उन्होंने इसका प्रयोग जीवन के संघर्ष में किया था। कबीर साक्षात् बा परोक्ष रूप से रामानन्द के शिष्य थे। राजा जगद से उन्हें राम की साधना मिली थी। परन्तु रामानन्द की वैष्णव साधना का प्रयोग कबीर ने एक विशिष्ट अर्थ में किया। जगद के विस्तृत्य से यह उक्ति निकला है कि कबीर का प्रादुर्भाव जिस बाति में हुआ था उसपर कोई प्रभाव किसी न किसी रूप में विद्यमान था। कबीर में भी ये संस्कार मिलते हैं। अतः कबीर ने राम के साथ अपने पूर्व प्रभावों को सम्मिश्रित कर एक विशिष्ट प्रकार की साधना बुझि और किष्क-वारा तथा ब्रह्म-स्वरूप का संकल्प किया। इस प्रकार कबीर वैष्णव मार्ग पर संवत्सर करते हैं, परन्तु उनका उद्देश्य है मोक्षों का निर्वाण। अतः उनका ध्यान वैष्णव है परन्तु साधन बौद्ध है। गोरखनाथ की दृष्टि भी यही रही है। नाथानुसंग ने माध्यमिक कारिका में कहा है 'म सत् ना सत् न सत्सत् न बाधनुचक्रम्'। गोरखनाथ ने इसे बत्ती साधना का आधार मानते हुए कहा है 'बत्तीन घुमै सुन्दर बत्ती भयन भयोबर ऐसा यवन विपर पर बात कबोला दाका नाम बरोमे कैसा। इस प्रकार गोरखनाथ ने धूप को एक व्यक्तित्व प्रदान किया। गोरखनाथ ने 'दाका नाम बरोमे कैसा' के माध्यम से उसके नामकरण का प्रसन्न ठाया। कबीर ने इसका नामकरण किया 'राम'। अतः कबीर की सिद्धा बर्णन और संस्कार-मूर्ध थी। और इसमें लपेट नहीं रह जाता कि कबीर जिस बाति में अवतरित हुए थे वह विभिन्न साधना प्रभावों से व्युत्पन्न बौद्ध साधना के परि वर्तित रूप से संस्मरित थी। ऐसी स्थिति में डॉक्टर राम कुमार वर्मा के निष्कर्ष को भी अस्मभक्ति नहीं माना जा सकता, 'कबीर के सिद्धा ऐसी जुलाहा बाति के होने को सुव्यक्तमान होने हुए थी जो पितृ के संस्कारों से सम्पन्न थे तथा दशनामी मन्त्रदाय में दीक्षित होने के कारण पोसाई नहलाते थे। इन गोसाद्यों पर नाथ पंथ का विशेष प्रभाव था'।

१ उक्त कबीर, पृ० ६१। डॉ. वर्मा की यह धारणा एन.ए. ट्रेडिंग पर बाबा गि लक्ष्मी है जिसका सीधे यह है कि गोसाईं दशनामी भेद से नहीं रही थी जोर नहीं बँकन होने है—देखिए *Castes and Tribes as Represented at Banaras-87*



डॉक्टर सरनाम सिंह ने अपनी कृति 'कबीर एक विवेचन' में कबीर की वांछि विषयक समस्या का निदान करना चाहा है। परन्तु वे अपने गन्तव्य तक पहुँचने में असमर्थ रहे हैं। वस्तु की संस्थापना की अपेक्षा भाचार्य त्रिवेणी की संस्थापना के कारण में ही विद्वान् श्रेष्ठक संलग्न हैं।

कबीर की वांछि पर विचार करनेवाले विद्वानों को सरनाम सिंह चार मठों में विभक्त करते हैं। [क] डॉक्टर स्याम सुन्दर दास का मठ [ख] डॉक्टर बड़प्पाज का मठ [ग] डॉक्टर हजारी प्रसाद त्रिवेणी का मठ जिससे डॉक्टर राम कुमार बर्मा अधिकोप सहमत प्रतीत होते हैं। [घ] डॉक्टर विमुखायत का मठ जिसको परधुराम चतुर्वेदी का समर्थन प्राप्त है। इसके पश्चात् इनका बोधात्मक निर्णय सम्मुख आता है। इनमें से डॉक्टर स्यामसुन्दरदास का मठ कोरी किञ्चन्ती पर आश्रित है, अतएव प्रमाणाँ के अभाव में उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। दूसरा निरुद्ध डॉ० बड़प्पाज का है। जिनके निरुद्ध में अधिक उर्ध्व-संगत प्रवास है। डॉ० बड़प्पाज से विमुखायत डॉ० राम कुमार बर्मा और श्री परधुराम चतुर्वेदी सहमत हैं। किन्तु डॉक्टर त्रिवेणी ने कबीर की वांछि के सम्बन्ध में मायाविह की भौति बड़े कौशल से काम लिया है। परन्तु उनकी इस गवेषारम्भ विवेचना से कबीर की वांछि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। कबीर दास की ना हिन्दू ना मुसलमान' वाली छक्ति ने तो केवल हिन्दू और मुसलमान जातिओं से बहिष्कृत किया जा किन्तु हजारी प्रसाद त्रिवेणी के पाश्चि घण्ट के प्रयोग ने तो विचारे कबीर को योगी या जूजी वांछि का भी नहीं रहने दिया। उन्होंने अपने एक ही वाक्य में प्रकट नहीं होने दिया कि कबीर अमूल वांछि में उत्पन्न हुए थे। बार-बार पढ़ने पर उनके यहो घण्ट मिल सके।

१ कबीर दास जिस जुलाहे बंध में पाश्चित हुए थे, वह इसी प्रकार के नाथ मतावलम्बी ग्रहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।

२ कबीर दास जिस जुलाहे वांछि में पाश्चित हुए थे वह एकाध पुरात पहले की योगी जैसी किसी अष्ट वांछि से मुसलमान हुई थी या धर्मी होने की राह में थी।

३ कबीर दास इसी मन् धर्मान्तिष्ठ लोगों में पाश्चित हुए थे।

इस प्रकार की विवेचना से समस्या का समाधान नहीं हो सकता । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की विवेचना और उनके निष्कर्षों के ऐतिहासिक स्वरूप की डॉ० सरनाम सिंह ग्रहण नहीं कर सके हैं । कबीर जुलाहा या इसका विरोध किसी विचारक ने नहीं किया है । परन्तु कबीर का जुलाहा होना हमारे लिए उन्ना धातुमक नहीं है । जितना कि भारतीय धर्म-शास्त्रों में उन्ना स्वान निर्धारण । कबीर मध्यकालीन धर्मशास्त्रों के समन्वित रूप में । जोड़ तथा हिलाने संस्कारों से संस्पर्धित अनेक धार्मिकों और उन्नाधार्मिकों का प्राकृतिक काम-काज से मिलता है । समय बाक इन्हीं से कतिपय जानियाँ इस्लाम-धर्म ग्रहण करती हुई मिलती हैं । कबीर इसी प्रकार की एक जाति में उत्पन्न हुए हैं । इस संस्था की भार ही बाबायें द्विवेदी ने उन्ने किया है । इस प्रकार कबीर की साधना सम्पूर्ण रूप से भारतीय है । इस प्रकार द्विवेदी की का निरूपण अधिक व्यापक इतिहास सम्मिल और व्यापक सम्भावनाओं से परिपूर्ण है । 'प्राकृतिक संस्था के कार्य डॉ० सरनाम सिंह की जाति नहीं होगी चाहिए । द्विवेदी की का यह स्पष्ट धारणा है कि कबीर का काम जुलाहा या मुसलमान परिवार में हुआ था । यह परिवार अपने मूल रूप में भारतीय है । भारतीय धर्म-शास्त्रों के विविध उत्पत्तियों का संरक्षण उनमें मिलता है । इन्हीं उत्पत्तियों के मध्य कबीर के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था । कबीर के विचारों की वापस भूमि को दृष्टि में उन्नी जाति का निर्धारण भी आवश्यक हुआ है । अपने गहन-अन्त के परभाव डॉ० सरनाम सिंह डॉ० द्विवेदी की मान्यता के साथ स्वर धिक्कर कहते हैं । अपने द्वारा यह यह है कि कबीर जुलाहा जाति में उत्पन्न हुए थे उनके रूप का संरक्षण कोरी जाति से जिन पर भावार्थ का प्रभाव था, अवसर रहा था । इसलिए उनके बीच पर पूर्व जातीय संस्कार बन हुए हैं, जिसकी अभिव्यक्ति कबीर के व्यक्तित्व में प्रभावित है, तथा जिससे लोग में शास्त्रान्त का प्रभाव सहामक था । १

कबीर का जाति के सम्बन्ध में डॉ० योगिन्द्र त्रिपाठी का विचार यहाँ विचारणीय है ।—

१ कबीर राम जमीनी थीं जमीनी जाति के सम्बन्धित मने थे ।

१ कबीर एक विचारक गूढ़ थे ।

२ कबीर का कोरियों से कोई सम्बन्ध नहीं म था । कबीरवास की यह प्रवृत्ति थी कि वे जिस वर्ग और जाति के लोगों के सामने जाते वे प्रायः उसी व्यक्ति की भाषा में विचारों को अभिव्यक्त करते थे । कबीर ने कोरी वस्त्र का प्रयोग इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर किया है । जुलाहा का क्यानामर कोरी ही हो सकता है । कोरी जाति का सूचक न होकर केवल व्यवसाय का सूचक है ।

३ किन्हीं कुछ प्रमाणों के अभाव में कबीर का सम्बन्ध गुसाईं जाति से भी स्थिर नहीं किया जा सकता है ।

४ कबीर जुलाहा जाति के ही रत्न थे । कबीर की हिन्दू विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए रामानन्द का दिव्यात्म पर्याप्त है ।

डॉ० मोदिन्द त्रिगुणाचल ने विचारकों की मान्यताओं को अस्वीकार किया है परन्तु वे अपनी मान्यता के लिए स्पष्ट या अस्पष्ट प्रमाण नहीं देते हैं । अतः उनकी मान्यता विवेचना की अपेक्षा नहीं रखती हैं । एक सन्दर्भ में कबीर ने अपने पिता को 'बहु गुसाईं' कहा है —

बापि बिछासा मेरो कीन्हा । सेज गुसाईं मुसि ब्रह्मिनु बीन्हा ।  
 तिसु बापु कउ मनहु बिसारी । बाये बस्या न बाबी हारी ।  
 बलि तिसु बाबै निनि हउ बाइया । पंजासे मेरा संयु बुकाइया ।  
 पिता हमारो बहु बोसाई । तिसु पिता पछि हउ किंचु बाई ।  
 सति मुह भिने तो मारग बिखाइया । बसत पिता मेरे मन भाई ।

गुरु ग्रन्थ साहिब राग बाठा ३।

इससे यह निश्चित होता है कि पिता ने कबीर को बभ्रुत का दान किया । उनकी कुत्रा से कबीर पञ्चेन्द्रियों से मुक्त हुए । इस सन्दर्भ को ग्रहण करते हुए भी परशुराम कपुर्वेजी लिखते हैं परन्तु कबीर साहज के अपने पिता के सिद्ध प्रसूक्त छन्द 'बहु गोसाईं' छन्द से यह भी सूचित होता है कि वे बहुत बड़े विवेचित्र का अतीत रहे होंगे और उनका प्रमाण अपने पुत्र पर एक साधारण पिता का हा ही न होकर इन्हें सांसारिक प्रपञ्चों से अलग कर इन्हें यथार्थ के प्रति उन्मुख कर देने का भी रहा होगा<sup>१</sup> । अस्तुस्तिपति यह है कि इन सन्दर्भ में कबीर ने अपने अर्थात्म पिता की ओर संकेत किया है । अन्तिम पंक्ति से इसका स्पष्टीकरण हो

बाठा है। 'सुत मृग के मार्ग-प्रदर्शन से अणु पिता की उपस्थिति हुई। मरु 'पिता हमारा बहुत बोवाह' और 'अणु पिता' इन दोनों में भेद नहीं है। 'बहु बोवाह' के आधार पर कबीर की जाति का निर्धारण भी सम्भव नहीं है। परम तत्व को या मृत्यु को 'पिता-माता' के रूप में कार्य साधकों ने भी स्वीकार दिया है।

'मुनि ज भाई मुनि ज बाप मुनि निर्जन भाई बाप।

मुनि के पक्षे अथा तबीर निहृवस जोनी गहिर समीर ॥

गोरखबानी २३१/७३।

कबीर ने अपने पिता के विषय में कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार अपनी माता के विषय में भी वे मौन हैं। परन्तु कबीर के नाम से प्रचलित कतिपय रचनाओं में इसकी माता की चर्चा मिलती है। कबीर अपनी जीविका के प्रति उदासीन रहते थे; कबीर विघ्न में विग्रहण करने लगे थे। यह उनके परिवार के लिए पिता का विषय था। कबीर और उनकी माता के मध्य को बार्मिक मय मेरु था उनका उल्लेख नीचे किये छन्दों में मिलता है —

जिहि छठि कोरी मापरि भाई, कीपत जीउ परबो,  
ताका बाका बहु न सुझे हरि हर रख तरटिबो।  
हमार कुछ करने राम कहिबो अप की बाला नई निपूरे  
तब ते मुख न आबो।

पुरुष श्रव्य साहित्य राम विद्यावन्त ४२।

इस प्रकार का विवाह किया जाता है कि कबीर हैं पुरुष रामानन्द से। रामानन्द अपने पुरुष के सर्वश्रेष्ठ बार्मिक नेता सुधारक और बार्मिक पुरुष थे। काशी में उन्होंने अपना सन्देश-मन्त्रावन भी दिया था। पान्थ कबीर ने रामानन्द के विप्लव का कहीं उल्लेख नहीं किया है। कबीर पंडितों के दो बने मिलते हैं। प्रथम हिन्दू कबीर यन्त्री इसके अनुसार कबीर रामानन्द के शिष्य थे। द्वितीय मुसलमान कबीर यन्त्री, जिसके अनुसार कबीर देव शरी के भूतेश्वर थे। डॉ० फण्डाकर तथा डॉ० मोहन सिंह के अनुसार रामानन्द कबीर के पुरुष नहीं थे। बाबाई हमारी प्रसार दिवनी ने कबीर को रामानन्द का शिष्य माना है। अन्य विचारकों को भी यही धारणा है। अपने मन के सर्वजन के लिए वे शिष्य निम्नलिखित प्रशस्ति देने हैं—

कासी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द वेताय ।

समरथ का परवाना काये हंस उबारन आए ।

यह बंस कबीर का है इसका समर्पन गद्दी किया जा सकता । कबीर ने अपनी छावना के लिए बेधबल भूमि को ग्रहण किया है । बध्मनों के प्रति उन्होंने अपनी आस्था भी प्रगट की है—

मेरे संपी बोह बणां एक बेधबल एक राम ।

बो है बाटा मुक्ति का वो सुमिरावे नाम ।

अतः कबीर का सम्बन्ध रामानन्द से किसी न किसी रूप में रहा है, इस पर अनिश्वास नहीं किया जा सकता है ।

प्रसिद्ध इतिहास कार डॉ॰ रामप्रसाद मिपाठी और बेस्टफ्ट से 'कबीर बहुत बसकिया' का आधार ग्रहण करते हुए इस मत का प्रतिपादन किया है कि कबीर सेख तकी के शिष्य थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है—

मानिक पुरहि कबीर बसेरी । मरहति मुनी सेख तकि केरी ।

ऊबी मुनी बीन पुर बागा । भूँदी मुनि पीरन के नामा ।

रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास छैट्ठवाँ मुद्रण । पृ ७८ ।

'कबीर बहुत बसकिया' में लिखा है 'सेख कबीर बीसाहा सेख तकी के उत्तराधिकारी और केहे थे—उनकी मृत्यु सन् १५२४ में हुई । उनके पीर सेख तकी सन् १५७२ में मरे थे । सेख तकी नाम के दो सुफ़ी पीर प्रसिद्ध हैं । एक का सम्बन्ध कड़ा मानिकपुर से था और दूसरे का सम्बन्ध धुसी से था । प्रथम का सम्बन्ध मूफियों के चित्तिया समप्रदाय से था । वे कबीर के समकालीन नहीं थे । अतः कबीर का इनके साथ किसी प्रकार के सम्पर्क की सम्भावना नहीं हो सकती । बीजक की आठवीं रसीतों में किसी सेख तकी का उल्लेख मिलता है ।

नागा नाथ मचाव के नाचे मर के सेख ।

घट घट अविनासी यहै, सुनहु तकी तुम सेख ।

इस उदाहरण की परभावना में कुछ शिष्य का भाव व्यञ्जित नहीं होता । इसमें बाद-विवाद की भावना मिलती है । परन्तु इस सम्बन्ध का आधार ग्रहण कर कृत्र भी निर्णय नहीं लिया जा सकता है । भूमी के सेख तकी का सम्बन्ध मूफियों

के मुहुराबरी नम्रदाय से था। उनका मृत्युकाळ मनु १३०० बनघाया जाता है।

अतः कबीर का इनके शिष्यत्व का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में संकलित एक पदके अनुसार कबीर मोमन्ती-सीर निवासी किसी पीठाम्बर पीर के प्रति आस्थावान था। यहाँ की भाषा उनके लिए हज यात्रा के समान पवित्र थी।

हज हमारे मोमन्ती सीर ।  
 जहाँ बसहि पीठाम्बर पीर ॥  
 बाहु बाहु दिया गुरु पावता है ।  
 हरि का नाम मेरे बन पावता है ॥  
 नारद सारन करहि लबासी ।  
 पानि बठी बीबी कबला बासी ॥  
 बंटे माना मिह्ला रामु ।  
 सहस नाम से से करत सछामु ॥  
 कहन कबीर राम गुन गावत ।  
 हिरु तुलक बाउ मुसमावत ॥

गुरु ग्रन्थ साहिब जी राम भाषा पर १६।

इन शब्दों का आचार ग्रन्थ पर कुछ विचारक यह कहना चाहते हैं कि बहुत सम्भव है कबीर पीठाम्बर पीर से संबंधित हुए हों। परन्तु यह शंका दिल्पा प्रामाणिक है, इसका निर्णय कर लेने के लिये ही इन प्रस्तावना पर विचार किया जा सकता है। अपनी रचनाओं में अनेक जन्मों में कबीर अपने गुरु को नमन करते हैं। परन्तु वे गुरु के रूप में किसी विशेष व्यक्ति का उल्लेख नहीं करते हैं।

बलिहारी गुरु आपनै ली हाड़ी नै बार ।

त्रिवि भागुपि सँ बेचना वरत न लायी बार ।

कबीर जन्मावली मारती २।

अने नाम विवेक दार अथवा राम की वरत के समस्त मानने हुए कबीर कभी कह नहीं सकते हैं—

बहु कबीर मैं सो गुरु पादया

आधा भाउ विवेक ४।

गुरु ग्रन्थसाहिब; राम गृन्थ, पद २।

## कबीर के काव्य का दर्शन और भावपक्ष

सग कबीर की आलोचना सन्त भक्त और धार्मिक नेता के रूप में हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में होती रही है। कबीर भक्त थे विपारक थे और चिन्तक थे। उनके काव्य में उनका जीवन-दर्शन उनकी चिन्तन विधि और उनको साधना विधि प्रतिबिम्बित है। भावनाओं की दृष्टि से उनके काव्य को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथमवर्ग में उनकी साधना विधि की आन्तरिकता का अंकन मिलता है। उनकी भक्ति-विद्या के मूल स्वरूप के दर्शन इस वर्ग की रचनाओं में मिल जाते हैं। इस सन्दर्भ के अन्तर्गत साधना विद्या की विविष्ट प्रणाली का परिचय मिलता है। पारिभाषिक शब्दावली और अनिव्यञ्जना विद्या की विविष्ट प्रणालियों के विविधस्वरूप यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं। इस वर्ग की रचनाओं में उनके चिन्तन के वैयक्तिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस सन्दर्भ में वे 'राम' की खोज करते हैं ऐसे राम की प्रस्तावना करते हैं, जो पुष्प की सुपत्ति से भी सूक्ष्म है। जिसके मुख नहीं है भाषा नहीं है जो न कल्पान है और न कुल्फवान है। वह मन-वाणी है अगम और अगोचर है वह केवल अनुमूर्ति में ही आ सकता है। उसके स्वरूप की कोई कल्पना सम्भव नहीं है। उसके स्वरूप-वर्णन में कबीर अपनी अद्यतनता का परिचय देते हुए कहते हैं—

भारी कही त बहुत डरी हलका कहीं तो गुठ ।

मैं का जानू राम कूं नैगू कबहुँ न दीठ ।

स्वरूप नेत्रों से उसके स्वरूप की कोई कल्पना नहीं की जा सकती है। वह तो गुंठे का मुक है जिसका स्वाद वृंदा प्राप्त करता है परन्तु जिसके मुक की वह व्यञ्जना नहीं कर सकता है—

अबक कहाँभी प्रेम की, कछु नहीं न जाई

पूगे केरी सरकरा बँठे मुसकई ॥१७॥१४॥१२॥

वह अलख निरंजन है। वह अमय पर का दाता है। यथा—

परिहर काम राम कह बीरे सुम सिल बन्धू मोरी ।

हरि की नाम अर्य पद दाता कहै कबीरा कोरी ॥

इस प्रकार कबीर के परम आराध्य हैं राम। राम की बन्धना वे अनेक रूपों में करते हैं। उन्होंने रामनाम के स्मरण के प्रति विधेय आस्था भाव की व्यञ्जना की है। नाम-स्मरण ही उनकी भक्ति का मेहरबान लगता है और कबीर इस

सन्दर्भ में वैष्णव भक्ति के तट को संस्पृष्ट करते हुए कहते हैं । ये मारवी भक्ति का उत्प्रेष भी करते हैं—'भक्ति मारवी रिदै न आई' अथवा

भक्ति मारवी भगवत सरीरा

इहि बिधि भक्तिहि कहै कबीर । १८३।२७८।

अपने राम का सम्बन्ध वे निर्गुण और निराकार से भी स्थापित करते हैं । अल्ताह कं बप को वे अपने राम में समाहित कर लेते हैं । उनका राम उनका अल्ताह है जो रिक्त और शून्यावस्था में एक समान है । अतः नाम-स्मरण पर भक्ति आस्था प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

मेरा मन मुमिरं राम कूं मेरा मन रामहि भाहि ।

अब मन रामहि हूं रहा सोल न्याये काहि ।

कबीर के अनुसार राम का नाम त्रिलोक का तार है । उसके ध्यान तादात्म्य स्थापित करने के पश्चात् व्यक्ति बीकन में रहते हुए भी जीवन-मुक्त हो जाता है । राम को वे रसायन का पर्याय मानते हैं । इस रसायन का ध्यान साधारण काम नहीं है । इसके लिए सर्व-अस्वियोग की आवश्यकता पड़ती है ।

राम रसायन प्रभ रस पीवत बचिह रसाध ।

बबीर पीवत कुलम है भक्ति सीस कलाक । 'रस की बीन' ।

यह राम सर्व व्याप्य है । मृग की कस्तूरी गन्धि में रहती है, परन्तु अपने शरीर में ही कस्तूरी के अस्तित्व का बोध मृग को नहीं होता । ऐसे ही राम पर पर में व्याप्त है परन्तु उसके अस्तित्व का बोध व्यक्ति को नहीं होता<sup>१</sup> । मयों में जिस प्रकार कुनबी है उसी प्रकार घट में सात्त्विक है । इस पुनर्जी के अस्तित्व का अनुभव करते हैं इसी प्रकार 'धार्मिक' के अस्तित्व की अनुभूति भी हम कर सकते हैं परन्तु उसे ऐसा नहीं लगते हैं।<sup>२</sup> राम से मिलन की बलवती अभिलाषा कं आशरण को बबीर संवरण नहीं बन पाये । राम के दर्शन

१ कस्तूरी कुशल मन मृग कूं बन भाहि ।

ऐसे बन पर राम है दुमियां देने भाहि ।

२ जगू ननु मैं पुनतो ग्यु ग्यानिः पर भाहि ।

मूरिग सोन न जाणही बाहिर दर्शन पाहि ।



के लिए कबीर की अवस्था बिरहिणी के समान है। मृत्यु के पश्चात् उनके दर्शन का भय ही क्या ?<sup>१</sup> राम के पास पत्र लिखने की बख्शी भी भिन्नता उनमें पायी जाती है। अपने शरीर को बचाकर धार करके मसि बनाना कर, करक की केशमी बनाकर राम का नाम लिखकर वे राम के पास भेजने के लिये उत्सुक हैं जाकायित हैं।<sup>२</sup> राम के दर्शन के लिए साधना के अन्त क्षणों की आवश्यकता है। उसका निवास-स्थान अति सूक्ष्म है। वहाँ बीटी का प्रवेश नहीं हो सकता राई के रखने के लिए वहाँ स्थान नहीं है। उस स्थान पर केवल पवन का अवलम्ब ग्रहण कर पहुँचा जा सकता है। ऐसे घरातल पर पहुँचकर राम की अनुभूति हो सकती है।<sup>३</sup>

कबीर राम को मुनादीत मानते हैं। वे सदा रज और वम से परे हैं। कबीर की धारणा है कि वह गुण और निर्गुण दोनों के अस्तित्व की सम्भावना से विमुक्ति है। वह मूल में ही निर्गुण है, निर्गुण में सगुण है। यद्यपि उसे अजर और अमर कहा गया है परन्तु इस परिभाषा से उसके अस्तित्व का, उसके गुणों का बोध नहीं हो पाता है। उसकी उचित परिभाषा यह हो सकती है कि वह अकाल और अमय है। वह दिव्य और अज्ञान में समाहित है पर दिव्य और अज्ञान से परे है। वह काल की लक्ष्मि में परिवर्त नहीं है। उसका न आदि है न अन्त। वह अमल और सगुण से परे है। अजर और अमर, ऐसे विशेषण उसके लिए उपयुक्त नहीं हैं—

सदा बोधा कायूँ कहिए ।

गुण में निरगुण निरगुण में गुण है

बाट अङ्गि क्यों कहिये ॥ टेक ॥

१ बिरहिनि ऊठे बीपड़े धरसन कारनि राम ।

मूँवा पीछे बैहुये, सो दरसन कहिहि काम ॥

२ महु ठग बाछी मसि करौ लिखी राम का नाम

केसवि कर्क करक की मिलि मिलि राम पठारौ । १२१७

३ वहाँ न बीटी बड़ि सके राई ना ठहराई

मन पवन का गम नहीं वहाँ पहुँचे जाय ।

धरत अरत कय सब कोई बसक न कय्यो आई ।  
 नाति सख्य बरय गहि बरके, परि परि रह्यो समई ॥  
 प्यंढ सङ्गान्ह कयै सख कोई बरके आदि अर मन न होई ।  
 प्यंढ सङ्गान्ह छाकि जे कयिए, कइ कबोर हरि सोई ॥ १८० ॥

वह अकल निरंजन है । उसे कोई देख नहीं सकता है । वह निर्मम और निराकार है । वह न दृश्य है न स्पर्श है न उसके रूप है, न रसता है । वह द्रष्टि और अद्रष्टि दोनों के परे है । उसका कोई वर्ण नहीं है वह अवर्ण्य है, इस पर हम अपना मन्त्रम नहीं दे सकते । उसका न आवि है, न अव्य है न भव्य है । उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । वह अकथ्य है । इस अपरम्पार का न जन्म होता है, न उसका विनाश होता है । उसके वर्णन को कोई युक्ति हमारे पास नहीं है । यदि उसका वर्णन करें तो उसकी सम्पूर्णता वर्णन में नहीं जा पाती । वह स्वयं ही उपमेय है और स्वयं ही उपमान है । उसके गुणों के कथन और व्यवस से कुछ मिलता है और परवार्थ होता है ।<sup>१</sup>

१ अकल निरंजन मयै न कोई ।  
 निर्ममे निराकार है सोई ॥  
 गुनि अतबुल, रूप नहीं रेखा ।  
 द्रिष्टि अद्रिष्टि द्विष्यो नहि पेखा ।  
 बरन अबरन कय्यो नहीं आई ।  
 सरत अतीत बन रह्यो समई ॥  
 आवि अन्त बाहि नहीं मये  
 कय्यो न आई आहि अकथे ।

अपरम्पार उपमै नहि विनवी  
 उपनि न आविनिवै कबिजे नैगे ।  
 अम नविए सम होन नहीं, जन है नैना ना-  
 बहन गुनन गुन आये अर परमारय होय ।

कबीर ने अपने राम के लिए गोविन्द केराब और माधव आदि नामों का प्रयोग भी किया है। परन्तु उनका राम निरंजन है। वह रूप रेश में परिवर्त नहीं है। बम्बू की स्फुलता जिन तत्वों से रक्षित है, वह उन सबसे पर है। वह समुद्र की गमिरता से भी अधिक गम्भीर है और पर्वत की उच्चता से भी उच्च है। मत्स्य उसका अस्तित्व समुद्र, शिपर, गगन और भरती के अस्तित्व के पूर्व का है। रवि सृष्टि अस्तित्व में नहीं आये से पवन का संचार नहीं हुआ था नाद और बिलु का प्रस्फुटन नहीं हुआ था काष्ठ और काया का अस्तित्व नहीं हुआ था इनके पूर्व से ही 'रामराय' का अस्तित्व है। उस राम के चिह्न नहीं है। शुभा और विषा उसके पुत्र नहीं हैं ऐसा राम बट बट में परिवर्तित है। वह मेघ विवर्जित है वेद विवर्जित है पाप-पुण्य विवर्जित है, ज्ञान-व्याग विवर्जित है स्मृति-सुस्म विवर्जित है—उनका राम ऐसा अनुपम तत्व है।<sup>१</sup> उनका राम उनका रहिमान उनके हृदय में है।

पूरब विसा हरी का बासा पक्षिम बछह मुकामा ।

दिल की कोषि बिछे दिल भीतरि इहां राम रहिमाना ॥

कबीर के राम परम तत्व हैं। उनका राम 'अमृत तत्व' का पर्यायवाची है। उससे अमरत्व की प्राप्ति होती है। संसार मर्त्य है पर वह परम तत्व चिरजीवी है और कबीर भी चिरजीवी है। कारण वे राम की अमरता के अंग

१ गोबिंद तू निरंजन तू निरंजन तू निरंजन राया

तेरे रूप नाहीं रज नाहीं मुद्रा नाहीं माया द्रष्टव्य

समय नाहीं शिपर नाहीं बरती नाहीं गगना ।

रवि सृष्टि बोट एकै नाहीं बहत नाहीं पवना ।

नाद नाहीं व्यंज नाहीं काष्ठ नाहीं काया ।

जब तें जस व्यंज न होते तब तूही राम राया ॥

बप नाहीं तप नाहीं जोग व्याग नाहीं पुत्रा ।

सिब नाहीं सक्तनी नाहीं देव नाहीं हुवा ॥

रूप न जून न स्वांग अचरजन बेद नाहीं व्याकरणा ।

तेरी गति तूही जानि कबिरा तो सरना । २१२।१३२ ।

है। शास मर्य हैं सन्त अमर्य है कारण सन्त 'रामराम' का पान करते हैं। सन्त की मृत्यु तो तभी होगी जब राम की मृत्यु होगी।

हम न मरे मरिहैं संसारा हम कूं मित्या विमाननहारा ।  
जब न मरी मरने मम मांगा तेई मूष बिनि राम न जांमा ।  
साकत मर सन्त जान कीबैं मरि मरि राम रखाइन पीरै ।  
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं हरि न मरे हम काहे कूं मरि हैं ।  
कहै कबीर मन मनहि मिखावा अमर नए सुख सागर पावा ।

पदावली ४३०।६१।

साधना की परमभूमि पर पहुँच कर कबीर अपने को राममय देखते हैं। इस भूमि पर पहुँच कर कबीर अनुभव करते हैं कि मैं समष्टि में हूँ, समष्टि मुझ में है, मैं सबनि में औरनि में हूँ सब मेरी विद्यम विद्यम विद्यमाइ हो। यह स्थिति महा समाधि की स्थिति है। इस स्थिति में कबीर विमुक्तों से ऊपर उठ जाते हैं, वे राम-रस की प्राप्ति करते हैं 'विमुक्त रहित फल रसि हम राखन तब हमरो नाउ राम राइ हो। राम की अनुभूति 'महाराज' के समान है। इस रस का पान करने वाला योगी है। यह महाराज अमृत-राज है। इसमें संसार की लुप्ता छविइ होती है। उनका राम भूय का पर्यायवाची है जिसकी उगमविषयन-मण्डल में ही सम्भव है—

अवधू गगन मग्न नर कीबैं।  
अमृत छरी मरा मुख उपरै अंक लालि रस पीबैं ।

×

×

×

मनवां जाँ दरीबैं अंग गगन भया रसि लाया ।  
कहै कबीर त्रिप मंदा माही मरद अनाहर बाया ।

राम की अनुभूति बाण्णी पान की अनुभूति के समान है। राम-रस-पान में कबीर का मन मडबाला है। यह उदरविषय उगमनी अवस्था में ही हो सकती है। उगम विषय में गगन-मण्डल में कबीर राम के महाराज का पान करते हैं। कबीर न राम-नाम से सम्बन्धित पदों में राम के अनेक रूपों और गुणों को बर्णन करता है। राम-नाम की मतिमा और उगम विषय का परिचय देते हुए कबीर ने एक पद में कहा है—

जब गहि रामनाम भबिनासी । हरि तबि जियरा कतहूँ के वासी ।  
 जहाँ आइ तहाँ होहु पतझा । जब बलि बरसि समझि बिप सझा ॥  
 राम नाम लय भाय सुधीन्हा । भिजूनी कीट समझि मन बोन्हा ।

×

×

×

इच्छा के मजसारे बोह्रित राम बजार । कही कबीर हरि धरन ग्यु,  
 योगस-भुर बिस्तार । बीबक पैनी ।

इस सन्दर्भ में मुख्य प्रश्न यह है कि कबीर के राम का वास्तविक स्वरूप क्या है ? कतिपय आलोचकों की यह धारणा है कि निर्गुन और सगुन के प्रति परम्परा से प्राप्त विचारधारा के अनुकूल ही कबीर अपने राम की कल्पना करते हैं । पुगनों में सगुणवाद और निर्गुणवाद, इन दोनों रूपों पर समान रूप से चर्चा की गई है । सगुण-पद के माध्यम से यहाँ निर्गुन के निकट पहुँचने की सम्भावना प्रस्तावित की गई है । कबीर तथा अन्य निर्गुनवादी सन्त पुराणों से अनुसृत हैं । ( देखिए हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृ० २०० ) । परन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष भ्रामक है । कबीर पुराणों की परम्परा में नहीं आते हैं । इसका स्पष्टीकरण आने के विन्मेषन से हो जाता है । कबीर उपनिषद् के अनुयायी भी नहीं हैं । साथ ही साथ कबीर ने अति स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनके राम निर्गुन के समुल अवतार नहीं थे । उन्होंने नर रूप धारण कर लीला नहीं की थी । ब्रह्मण के नर रूप लेकर उन्होंने रावण को पराजित नहीं किया था । उनके राम कृष्ण-रूप में भी अवतरित नहीं हुए थे । जब रक्षा हैतु उन्होंने गोवर्धन पर्वत भी धारण नहीं किया था । उन्होंने न ठो कामन-रूप धारण कर बलि को खला था और न उन्होंने बाराह रूप धारण कर पूष्पी को अपने बाँतों से उठाया था ।<sup>१</sup> इस प्रकार राम के निर्गुन और सगुण इन

१. ता साक्षिकैक सापी साधा बुल-भुल मेटि रह्यो अनाया ॥  
 ना ब्रह्मण चरि औतरि माया माँ संका का राम संताया ॥  
 देवे कृन् न औतरि जाया । माँ बतवै के मोद खिलाया ।

×

×

×

ब्राह्मण होय नहीं बलि सक्षिपा परनी वेद सेन सचरिया ।

दोनों स्वयं की सम्मानना को कबीर अस्वीकार करते हैं। इसी प्रकार कबीर को बड़तबारी और एकेस्वरवादी सिद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है। परन्तु कबीर अड़तबाद या एकेस्वरवाद की सीमा में परिवर्तन नहीं होत हैं। वास्तविकता यह है कि सत तम और रज इम तीनों गुणों से अतीत तत्त्व को वे निर्मूल्य मानते हैं। इस सत्य की ओर संकेत करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपना निष्कर्ष देते हुए कहते हैं 'इसी त्रिगुणातीत, ईशान्वित विरहान्न आशान्न विनिर्मुक्त, अलस, अलोचर अगम्य प्रेम पाटावार मगवान् को कबीर दास ने निमुन राम' कहकर सम्बोधन किया है। वह समस्त तत्त्वों से भिन्न है फिर भी सर्वमय है, वह अनुभवक सत्य है,—देवस्य अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसी भाव को बताने के लिए कबीर ने बार-बार 'मूंगे का गुड़' कह कर उसे याद किया है'<sup>१</sup>

इन समस्त विवेचन विचारों ने बस्तु-स्मृति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। कबीर की भावना का मूल्योक्त्य जननी रचनाओं की ऐतिहासिक परम्परा में ही अधिक उपयोगी और वैज्ञानिक होया।

यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट होता है कि कबीर ने जिस राम की कल्पना की है, वह बोझों का गुलाम है। इस गुलाम को मिटों ने और उनके पश्चात् नाथ साधकों ने अपनी विस्तार-मार्ग के अनुसार प्रस्तावित किया है। यदि कबीर की रचनाओं को मूलमता से देखें तो इन कथन का स्पष्टीकरण हो सकेगा। कबीर 'राम' के विभिन्न कर्तों की कथा करते हैं। परन्तु उनके गुलाम की ओर संकेत करना वे नहीं मूठने। विभिन्न प्रस्तावनाओं के पश्चात् वे इसी मन्दन पर लौट कर आते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि लोह राम को हठरथ-गुन के रूप में देखता है परन्तु उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित नहीं हो पाता है, वह 'रामनाम के मर्म को समझ नहीं पाता है। रामनाम का मर्म क्या है? वह गुलाम है जिसकी उत्कर्षित गगन-मग्न में ही सम्मग्न हो सकती है। लोह-मानस में

उनके राम के प्रति उसी प्रकार की जिज्ञासा भावना है जिस प्रकार की जिज्ञासा भावना भगवती के मन में राम के प्रति थी —

राम जो बचन रूपमि सुत सोई । की अत्र अगम अलख गति कोई ।

× + × ×

जो रूप छनय तो क्या किमि नारि बिरहें मति भोरि ।

वेचि बलि महिमा सुनत अमति बुडि अति मोरि ।

उत्तर में शिव कहते हैं—

राम सखिबालन विनेसा । नहि तहें माह निहा छन सेसा ॥

सहज प्रकासरूप भगवाना । नहि तहें पुनि बिम्बान बिहाना ॥

राम के समुद्र-व्यापार की कथा ॥ मन्दर में गौत्वामीजी उनके निर्मुक्त स्वरूप और पूर्ण ब्रह्मत्व की ओर स्वस-स्वक पर संकेत करते बैठते हैं । 'मुह' की जिज्ञासा को दूर करते हुए कस्मन उसकी संकाओं का समाधान करते हैं :—

सोबत प्रभुहि निहारि निपावू । जयत प्रेम बस हृदय निपावू ॥

तनु पुसकिट जसु कोवन बहई । बकल सप्रेम छलन सल कहई ॥

× × × ×

माहु पिठा परिजन पुरबासी । सखा सुखीस बास बह बासी ॥

बोम्बहि बिम्बहि प्राण की नाई । नहि सोबत तेह राम मोचाई ।

कस्मन उसकी संकाओं का समाधान करते हुए कहते हैं—

राम ब्रह्म परमारब क्या । अविमल अलख अनाधि कनूपा ॥

सकल बिकार रहित मत्तमेवा । कहि नित नेति निरूपहि बेवा ॥

रामचरित मानस अबोध्या काण्ड ।

इस प्रकार मोक्षामी जी के राम निर्मुक्त निराकार हैं । यही उनके राम का वास्तविक स्वरूप है । इसी प्रकार कबीर ने भी राम के विविध रूपों के अस्मैश के परचाह स्वस-स्वक पर संकेत किया है कि उनका राम 'निरंजन' है, वह अमृत-रस है उसकी अनुभूति सहज समाधि में ही होती है । इस प्रकार कबीर जिस राम की कल्पना करते हैं वह शुद्ध है । राम के साथ मृग्य को सम्बद्ध कर कबीर ने अकि और योग का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है । बीड़ों के मृग्य को व्यक्तिव प्रदान करने का अर्थ मानवी हृद करने का अर्थ, मोरल नाच

को है। उन्होंने शून्य के भावगीकरण करने की भावना से एक निष्ठासा प्रकट की :—

बसती न शून्यं शून्यं न बसती अगम अयोधर ऐसा ॥  
मगन सिपर पर बाधक बोले ताका नाम बरोगे कैसा ।

कबीर ने 'मगन सिपर' पर बोझने वाले 'बाधक' के लिए 'राम' नाम की प्रस्तावना की। इस प्रकार कबीर ने शून्य का नामकरण किया।

कबीर ने अपने राम के स्वप्न प्रस्तावन के लिए भक्ति का अवलम्ब ग्रहण किया है। वैष्णव भक्ति निगुण भक्ति अथवा इस्लामी एक्सेम्बरवाद को कबीर ने साधन के रूप में ग्रहण किया है। कबीर ने रामनाम का आधार ग्रहण किया है। परन्तु मोरखता के समान कबीर का सत्य या उनका साध्य शून्य है। राम को 'शून्य' से सम्बद्ध कर कबीर ने एक नवीन उद्भाषना की है। कबीर ने अपने राम को अमृत-रस के रूप में देखा है। सहजसमाधि में सिद्ध और नाथ साधक अमृत पान करता है। पदार्थिता या जली साधना में कृष्णस्निग्ध जागरण और प्राण-वायु के ऊर्ध्व-मगन से साधक द्रव्य द्वार को अवलम्ब करता है। बाद्यो

बोमडा है और उसका पान कर अजर अमर हो जाता है। सिद्ध और नाथ मत से सम्बन्धित साहित्य को विवेचना के तन्त्र में इसका उल्लेख किया जा चुका है। बसु, कबीर का राम इस अमर बाद्यो का पर्यायवाची है। इसकी प्राप्ति से सहज समाधि में करते हैं। कबीर के अनुसार रामनाम के रस का पान करने वाला साधक योगी है। इस रस की बनाने में 'चौद' और 'सूर्य' को भट्ठी करना पड़ता है। मुमुक्षा को पान करना पड़ता है। इस अमृत-पान से तुप्पा रागिण्य होती है। इस रस के पान के पुण्य का केवल अनुमन किया जा सकता है परन्तु इसका वर्जन सम्भव नहीं है। इस रस का पान केवल सहज-समाधि का ब्यापार ही कर सकता है। एक अंग पर में कबीर 'सहज शून्य' में 'राम-रम' के पान करने की कर्षा करते हैं।

१. कोई पीरे रे रस राम नाम का जो पीरे को जोगी रे ।  
मनो सेवा करी राम को ओर न दूरा भोगी रे ॥१७॥

मदु रस तो सब कोना भजा बस्य अपनि परियारी रे ।  
ईसर सोरी पीरन लाये राम तबी बरियारी रे ।



'राम रस' का पान शिव सगुणकारीक करते बने या रहे हैं परन्तु इससे उनकी वृत्ति नहीं होती। इसा पियका को भट्टी में परिवर्तित कर अक्षरप्र में यदि प्रव्यसित करने का उत्सुक कबीर करते हैं। बसने द्वार को 'ससिहर' और 'सुर' से बन्द करके उसमें ताड़ी लगाने का उत्सुक करते हैं। गंगा में नीर के प्रत्यावर्तित होने से अमृतधार का प्रसृष्ट होना है। इस रस-पान की प्रक्रिया में धुत नागिनि (कृष्णकीर्ती) बाधित हो उठती है। परन्तु सत्सुख से ज्ञान प्राप्त कर ही सहज सुख में इस रस का पान किया जा सकता है।<sup>१</sup> इस प्रकार कबीर ने जिस राम की कल्पना की है वह 'रसायन' और 'अमृत-नाभ' का पर्याय वाली है। सिद्धों और नाथों ने सुख मण्डल में जिस 'निर्भर' की कल्पना की है उस 'निर्भर' से कबीर का राम भिन्न नहीं है। 'अनाह' की किमारी बन्द रही है। बीरनाद में ली कभी है। मफ मण्डल में सींगी बन्द रही है। वहाँ नि-स्वान पर निराकार का क्रम विजय हो रहा है। वहाँ कलक-कल्प से अमृत-रस का निर्भर प्रवाहित है। पवन-व्यासा में साबक इस रस का पान कर रहा है। कबीर उस रसायन को 'राम रसाइन' की संज्ञा देते हैं।<sup>२</sup> कबीर ने

बैद सुर दोह माठी कीन्हूँ सुपमनि पिपसा लागी रे ।  
अमृत कूँ पी सोचा पुरषा मेरी जियला भागी रे ।  
महु रस पीबै गुहा बहिका ताकी कोई न बूझे सार रे ।  
कहै कबीर महारस महुगा, कोई पीबैया पीबण द्वार रे ।

१ बोको भाई राम कूँ बुझाई

इहि रस शिव सगुणकारीक भाते, पीनत अबहुँ न अबाई ।  
इसा व्यंगुला माठी कीन्हूँ बहूँ जगिनि परिवारी ।  
ससिहर सुर द्वार बस मुँदे, लागी ओष जुम तारी ।  
मनि मति बाका पीबै राम रस बुझा कछु न बुझाई ।  
ससटी गंगा नीर बहि जाया, अमृत बार बुझाई ।  
पंच बने सो संग करि धीन्हूँ बसत सुमारी लागी ।  
प्रेम पियाले पीबन लागे सोबत मामिन लागी ।  
सहज सुनि मैं जनि रस बाध्या सत गुरु में मुधि पाई ।  
बास कबिरा इहि रस माता कबहुँ ज्यकि न बाई ।

स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राम-गुण की बेलि है। इस सत्य को इस सत्य को  
 मोरलनाथ मसी मॉलि जानते हैं। इस बेलि का कोई स्वरूप नहीं है इसको  
 कोई धारणा नहीं है। बिना सिद्ध के हो वह गगन तक प्रसरित है। यह  
 बेलि सहज की बेलि है यह पुष्पित होने लगी\*। सहज के स्वरूप को समझाने  
 बाबा योगी ही रामबेलि के रहस्य को समझता है। इस राम की गति बताव है।  
 बत उसके रूप का कथन सम्भव नहीं है। कबीर स्वीकार करते हैं कि निरंजन राम  
 जहाँ निवास करते हैं वहाँ कुछ है अथवा वह स्थान शून्य है इसका ज्ञान  
 उन्हें स्वयं नहीं है। कई कबीर जहाँ बहुत निरंजन तहाँ कुछ बाहि की शून्य\*।

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि कबीर बौद्धिक विचारधारा के साथ  
 बौद्ध भावना को सम्बद्ध करते हैं। शून्य को साकार रूप लेकर उसे बबिक सहज  
 बोधमय और मानवीय बनाते हैं। भारतीय चिन्तन-धारा में जड़त भावना  
 की ही स्वतन्त्र विधायि मिलती है प्रथम वैदिक-सम्पन्न जड़त भावना  
 जड़तवाद या 'शून्यवाद'। कबीर इस द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस  
 प्रकार कबीर ने ब्रह्माईतवाद के साथ बौद्धाईतवाद को सम्मिलित किया है।  
 ब्रह्माईतवाद को परम उपनिषद् में उनकी साधना मुखर नहीं है। अपनी  
 साधना के परम रहस्य को स्पष्ट करने हुए कबीर ने कहा है—

२ बयत गुन बनहूद कीगरी बाज तहाँ दोरय नाद स्पी लागै ।  
 बि अस्वान् बस्तर मृग धाला मयन मण्डल छीपी बाज ।  
 तहूबाँ एक कुकान रच्यो है निराकार जन साजै ।  
 मयन की भाठी छीपी करि बूमी कनक कमल एक पाव ।  
 तहूबाँ बुरे बसुन रस नीमर रस ही में रस चुकावा ।  
 बब लो एक अनुग्रह बाज भई, पवन तियाला साज ।  
 तीनि मयन में एहे जानी बहो कहा बने राजा ।  
 बिनर जायि पण्डित पण्डितम बहि बवार रसि राजा ।  
 पट्ट दुनियाँ रान् थ्रिभि मुलानी में राम रमान माना ।

मनसू गगन मण्डल पर लीजे ।

वमूत भरे सवा गुल छपजे बंजगाछ रस पीजे । त्रेका ।

मूछ बाँधि सर गगन समानां सुपमन यो तन जायी ।

काम क्रोध बोळ भया पसीठा तहाँ जोगणीं जायी ॥

मनवां जाइ दरीवे बैठे मयन भया रसि छागा ।

कई कबीर जिय संसा नांहीं सखद अनाहुव जागा ।

पद ७०१६७ ।

जत कबीर का राम 'सुख' है, उनका राम 'निर्वाण' है जिसको उन्होंने ब्रह्मभक्ति के आदर्शन के साथ सम्बद्ध किया है। परन्तु उद्देश्य उनका शून्य है ब्रह्मभक्ति नहीं। इसके सम्भावित कारणों पर सत्य साहित्य के समष्टिगत मूल्यांकन के अन्तर्गत विचार किया गया है। वास्तविकता यह है कि कबीर ने 'सुख मण्डल' में निवास करने वाले पुण्य का ध्यान किया है। शीशों ने निर्वाण को शीतल कहा है। उनका यह निश्वास है कि संसार व्यर्थ है और निर्वाण वस्तुतः इस व्यर्थता का दूसरा पक्ष है उसका शीतल होना ही निर्वाण है। कबीर की भक्ति इस निर्वाण से निम्न नहीं है। उन्होंने अपनी भक्ति के दौलत स्वरूप की कल्पना की है। कबीर इस भक्ति के स्वरूप की खोज करते हुए कहते हैं कि शून्य में स्नान करने से तन की तपन समाप्त हुई और तन शीतल हुआ— 'तपनि नईं शीतल भया जब यह किया मुनि असमान। इस प्रकार कबीर की भक्ति का साम्य है सहज समता जिसे कबीर राम का पर्याय मानते हैं। यह एक मानसिक स्थिति है, अनुभूति है जिसमें सापेक्ष व्यक्तिगत मन निरपेक्ष और समष्टिगत हो जाता है। इसे मन की इन्द्रावीत अवस्था कहते हैं। नाथ सम्प्रदाय ने इस प्रकार की अवस्था की कल्पना की है—'बुभुक्षा मेंति सहज में रही ऐसा विचार मधिनत्र कही। कबीर ने इसी ने अनुस्यू कहा है—

सहज सहज सब कोई कही सहज न बीनई कोइ ।

जिन्ह सहज हरिबी मिलै, सहज कहीजे साई ।

सहजे सहजे सब गये मुन बिठ कामिनी काम ।

एहोब है भिसि रह्यो बात कबीरा राम ।

कबीर ग्रन्थावली, छापी ४ ३ पृ० ४२ ।

कबीर ने ध्यान चिन्तन की प्रस्तावना के लिए भक्ति का आधार ग्रहण किया है। भक्ति के विविध रूपों को कबीर ने समाज के अस्तित्व पर ग्रहण किया है। कारण कबीर में अपने समाज को संयोजित और समन्वित करने का उत्सवशील प्रेरणा थी। सिद्धों में समाज-उन्नयन की चाहना नहीं थी। व्यक्ति और समिष्ट के सामासिक अनुबन्धों में सामास्य-संस्थापन की क्षमता उनमें नहीं थी। वह उनका उद्देश्य भी नहीं था। सामासिक स्तर पर उत्तर कर जीवन को संयोजित करने का आग्रह उनका उद्देश्य नहीं था। उनके बुद्ध का व्यक्ति बनाम विचार मानना में अपनी आत्मा का प्रतिबिम्ब उनकी रचनाओं में नहीं पाया जा सकता। सामास्य ने नवीन सम्भावनाओं की आधार भूमि प्रदान करवा था। परन्तु पूर्वज निवृत्ति मार्गी होने के कारण उनमें निवृत्तता के विपरीत प्रतिक्रियात्मक स्वर प्रबल हो गया। सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना के कारण इन चारा को समाज की आवश्यकता में स्थान न मिल सका। समाज-अपटन तथा धृष्ट-बोध की समन्वित करने की क्षमता उनमें नहीं थी। कबीर भूतल और द्रष्टा थे। अपनी पूर्वजनी चिन्तनधाराओं में निहित जीवन के नियमात्मक तत्वों के दर्शन के कर चुके थे। जन जीवन के प्राप सम्बन्ध जीवन की भवित्व में जीवित रहन काफी भक्ति विषय का आधार ही उनकी चिन्तन धारा का प्राप्य बन सकेगी उसके द्वारा ही वे सुख-जीवन को अपने निज ही हाथों से अपने ही सम्बन्ध में ले सकेंगे।

वैष्णव भक्ति का अवलम्ब कबीर ने अपनी विस्तार के माध्यम से अपनाया था। सामास्य अपने मूल के सब स्वरूप भक्ति थे। वैष्णव भक्ति की अवधारणा उन्होंने सामान्य मानव के लिए की थी। सामास्य के इस महान् बोध उत्तर भक्ति के कारण ही कबीर उनकी ओर आकर्षित हुए थे। कबीर ने ब्रह्मों के प्रति सम्मान भाव व्यक्त किया है।<sup>1</sup> यह बड़ा मरा है कि कबीर ने 'नारदी भक्ति' की भी

१ (i) मेरे नदी होइ जया तन वैष्णव एक राख ।

को है जाना मुहुनि का को मुसितारै नाम । नामी ४ ।

(ii) वैष्णव की दायी भली का नाम का बट पाठ । इन्द्रायनी १३ ।

(iii) पाग, बाँधन और धर्म के नामों में ब्रह्म ।

भक्त भाग दे यन्त्रो जाना पितृ लोचन । इन्द्रायनी २३ ।

बर्षा की है। गारुडी शक्ति में प्यारह प्रकार की आसक्तियों की बर्षा की गई है। इनमें कान्हा आसक्ति का भी वर्णन मिलता है। कबीर की रचनाओं में प्रेमासक्ति-भावना को व्यक्त करने वाली रचनाएँ हैं। 'रामानन्द की एक रचना है 'बेधव मठाव्य भास्कर'। इस ग्रन्थ में ईश्वर और जीव के सम्बन्धों को प्रति-पक्षी ( माया मनुष्य ) के सम्बन्धों के रूप में व्यक्त किया गया है। कबीर की रचनाओं में इस भाव-योजना से सम्बन्धित कतिपय पद मिलते हैं—

दुखहिम गावहु मंगल चार

हम पर आए हो राधा राम भठार । टेक ।

तन रति करि मैं मन रति करि हूँ पंचतत बराठी ।

राम देव मोहि व्याहन आए मैं जोवन मत माठी ।

सरीर सरोवर बेरी करि हूँ, छद्मा देव उचार ।

रामदेव संगि भावरी मैं हूँ, बनि-बनि भाय हमार ।

मुर ठेठीसुं कौतिय आए, मुनिवर सहसु अम्मासी ।

कहै कबीर हम व्याधि कहे हैं पुरिय एक अम्मासी । पद १ ।

एक अन्य पद में इस प्रकार की भावना मिलती है कि व्यापक अवधि के पश्चात् प्रिय के दर्शन होते हैं। प्रिया से मिलने प्रिय (राम) स्वयं आए हैं। मंगलाचरण के पश्चात् प्रिया ने राम रसायन की अपनी रसना पवित्र की। अविचार कल स्नेह, मित्र और परिचय से आलोकित हुआ। प्रिया को संयोग-मुख मिला। प्रिया को इसका वीरव है कि प्रिय (राम) ने उसे सुहाग का अनुदान दिया ।<sup>१</sup> एक अन्य पद में इस प्रकार के भाव व्यक्त है कि हरि मेरे प्रिय हैं मैं

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की वेधवों की अहिंसा और प्रपत्तिवाद से प्रभावित माना है—हिन्दी साहित्य का इतिहास । मण्डारकर कबीर की वेधव शक्ति परम्परा में म्नाते हैं। *Vaisnavism and Saivism*. 95 'रामानन्द की प्रधान उपदेश अलग्व शक्ति को कबीर ने खिरसा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्त्व ज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों रति और प्रिया के अनुसार एक नवीन रूप दिया था। कबीर २८ । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

२ बहुत दिन में प्रीतम पाये ।

मान बड़े चरि बैठे जाये ।

मंगल चार मोहि मन राखी राम रसायन रसना चापी ।

मन्दिन माहि भया छजियारा छि सूती अपना पीव सियाप ।

मैं रमि राखी जे निजि पाई हमहि बड़ा बहु दुमहि बड़ाई ।

कहै कबीर मैं कछु न कीन्हां, सरी सोहाम राम मोहि दीन्हां । पद २ ।

उसकी बहुलिया है। हरि बिना मेरा जी एक पल के लिए भी विधाय नहीं पाता।<sup>१</sup>  
 इन मन्त्रों के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि कबीर 'गारजी  
 मन्त्र' या रामानन्द की शक्ति पद्धति के अन्तर्गत आते हैं।

विष्णु निवेशन की इस तीव्रता के आधार पर कबीर के अधिकृत आलोचक  
 यह निर्णय लेते हुए लिखते हैं कि कबीर ने विष्णु भावना और उसकी व्यक्तता  
 प्रयाची सूक्तों से प्राप्त की है। कबीर में मायुर्ग भाव के तत्त्व मिलते हैं, विष्णु  
 निवेशन की तीव्रता सूक्तों की पद्धति के अनुसार ही समझी है। भारत में कबीर  
 के पूर्व सूफी सम्प्रदाय प्रचलित हो चुका था। इस आधार को ग्रहण करते हुए  
 डॉक्टर रामकुमार बर्मा ने शक्ति विरवात के साथ कबीर पर सूफीमत के प्रभाव  
 की स्वीकार किया है।<sup>२</sup> परन्तु कबीर सूफी-साधना से प्रभावित थे वह एक  
 विचारणीय प्रश्न है। वास्तविकता जो भी हो, परन्तु इतना स्पष्ट है कि सूफी  
 साधना कबीर का साध्य नहीं है। वेने ही जैसे वैष्णव भक्ति। सूफी तत्त्व या  
 पक्ष शक्ति कबीर का अपस्तुत है प्रस्तुत है कबीर का राय, कबीर का श्रुत्य।

मित्र साहित्य की विवेचना में कहा गया है कि बोधिविन्द की प्राप्ति के लिए  
 'कच्चा और 'गुन्यता के संयोग की कल्पना की गई है। महायान में 'कच्चा'  
 को 'उपाय और 'गुन्यता' को 'मज्ञा' कहा गया है। महायानसूत्रांशवार' में  
 गुन्यता में गन्तव्यी के रूप में वर्णित है। बोधिविन्द हमने प्रवाद आश्रित  
 में परिचय करते हैं। 'अष्टावक्र' में गुन्यता को कबीर और कच्चा को पनि  
 का में स्वीकार दिया गया है। इनके विम्वन का वर्णन दाम्पत्य-धर्म-मेवोप के

१ हरि मेरा पीब माई हरि मेरा पीब  
 हरि बिन रहि न सटे मेरा जीब लिका  
 हरि मेरा पाव मैं हरि की बहुलिया  
 राम बड़ मैं पुत्रक लुगुलिया  
 दिया मंगार मिलन के लाई।

पाटे न मिले राजा राम समार्द।

कबीर केर विम्वन जो पाई

कई कबीर भी जसि कहि जाई। ११७।

२ हिन्दी गान्धिवर आलोचनात्मक इतिहास पृ०

माध्यम से किया गया है। इस मिसन को समरस-अवस्था भी कहा गया है। गूढ़ता और कसबा के मिसन का भाव साहित्य में शिव-शक्ति के मिसन के रूप में वर्णन किया गया है। इसे निरपेक्ष ज्ञानम् भी कहा गया है। कबीर ने इसी प्रकार की समरसता की निरपेक्ष ज्ञानम् की कल्पना की है। परम्परा से प्राप्त वर्चन-प्रणाली का प्रयोग करते हुए कबीर ने बाम्पत्य-गुप्ति-साधन का प्रयोग किया है। अतः कहे कबीर हम ब्याहिं चले हैं पुरुष एक बबिनासी में इसी समरस या अद्वैत अवस्था का वर्णन किया गया है। कबीर पर इस्लामी एकेस्वरवाद का प्रभाव भी देखा गया है। परन्तु कबीर जिस अल्फाह की कर्मा करते हैं, वह निरंजन है शून्य है। वह समस्त संसार में है, समस्त संसार उसमें है। कबीर की पंक्तियों में ही—

सब हम भाहिं सकल हम माही।

हम के और दूसरा नाहीं।

तीनि कोष में हमारा प्रसारा

बाबागजन सब लेल हमारा।<sup>१</sup>

कविपद आलोचकों ने कबीर की कतिपय रचनाओं में अद्वैत में इत' सिद्धान्त के वर्णन किये हैं। इस प्रकार की भावना कास्मीरी सैब वर्चन में भी मिलती है। अतः इस रूप के आलोचकों की यह चारणा है कि कबीर कास्मीरी सैब वर्चन से

१ (क) सूफी-साधना में प्रेम-साधना के माध्यम है मनुष्य का ईश्वर में 'हल' हो जाना स्वीकार किया गया है। 'हल' की स्थिति समाप्त हो जाने पर अद्वैत स्थिति समाप्त हो जाती है। परन्तु कबीर की दृष्टि अन्ये भिन्न है जलता परम उद्देश्य इन पंक्तियों में व्यक्त है—

मैं छोरे छोरे बाँझा तो मैं बहुरि न भीबस बाँझा।

×

×

×

जहाँ गूठ कपास न पूनी तहाँ बसे एक मूनी।

उस मूनि संधित समाँझा तो मैं बहुरि न भीबस बाँझा।

(ख) इस्लामी एकेस्वरवाद में अल्फाह का रूप है—सा इलाहे इल्लिहाह मुहम्मद ई-रसूल—अल्फाह का कोई अल्फाह नहीं वह एक मात्र परमेश्वर है मुहम्मद उनका रसूल है।

भी प्रमाणित है। कास्मीरी छैब दर्शन में यह भी प्रस्तावित है कि परम पति सृष्टि-सर्वना में माया का आधार नहीं ग्रहण करती है। उसकी समस्त दर्शन विधा प्रत्यक्षिप्रादर्शन में केन्द्रित है। परन्तु 'अन्त' या 'अद्वैत भावात्म्य भक्ति' से कबीर का सम्बन्ध नहीं रहा है। अतः कास्मीरी छैब दर्शन के सम्बन्ध में कबीर की विशेषता आरोपित नम्बु होगी। कबीर ने 'भारती सम्प्रदाय' के मतों का स्मरण किया है। इस सम्प्रदाय की भक्ति साधना के भी कबीर प्रमाणित करते हैं। जल्ले परब लख को बिन्धा कहूँ कर कबीर ने स्मरण किया है। इस वर्ग के साधक ब्रह्मदार बार में बिन्धासु नहीं करते बल्कि मूर्तिभार का त्याग भी करने से। वे साधक और साध्य में साधारण सम्बन्धों की कल्पना भी करते हैं। इन दृष्टियों से कबीर और इन साधकों में साम्यता मिलती है। परन्तु भारती सम्प्रदाय के एक ज्ञान-मूक्य अद्वैतपरक भक्ति के लिए संपूर्ण उपोसना पर भी अवलम्बित होते हैं। कबीर इन दृष्टि को स्वीकार नहीं करते हैं।

कबीर ने स्वयंभवेष्टज्ञान पर विस्वाह प्रकट किया है। वे स्वयंभवेष्ट ज्ञान की 'साक्षी' होते हैं। 'स्वयंभवेष्टज्ञान' के लिए स्वात्मसुप्ति आवश्यक है। इसे वे 'परमा को भव' कहते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर वे अपने 'साक्षी' के अस्तित्व की अनुसृष्टि करते हैं। इस प्रकार कबीर की समस्त प्रस्तावना 'स्वयंभवेष्ट ज्ञान' पर आधारित है—

सुरति समाधी निरति में नरति रही निरपार  
सुरति निरति परमा क्या तब नूने म्यमं दुवार । २२।१२  
सुरति समाधी निरति में अमरा ना है बाप ।  
ऐसा समाधी अनेक में मूं आप ना है बाप ।

इस प्रकार कबीर की समस्त प्रस्तावना स्वयंभवेष्टज्ञान पर आधारित है। वे वेद शास्त्र का प्रमाण नहीं ग्रहण करते हैं। सारेष्ट मत के निरलेष्ट मन में उदाहृत हो जाने के बाद ही कबीर को आत्म निन्द्य निरर्थक लगने हैं। यह ज्ञान एको और वरों पर आधारित नहीं है। इस ज्ञान को 'अद्वैत ज्ञान' कहते हैं। कबीर इसी अद्वैत ज्ञान के पुर्णार्थ से। इसी ओर ही नरति करने हुए कबीर ने 'विनु बरार मुनि हो' का उल्लेख किया है।



कबीर में समाज-संरक्षण की भावना अति प्रबल है। साध-ही साध इन्होंने स्वयं संविद्यज्ञान के आचार पर साधना की विविध भूमियों का वर्णन किया है। उनके साध साधाम्य स्थापित किया है। अपने साध के आचार पर समाज को नियंत्रित करने वाले तत्त्वों पर वे आघात करते हैं। वे छिद्रों की अवहेलना करते हैं। बौद्ध और धार्मिकों की निन्दा करते हैं। कबीर ने सर्व काशीन मानव को उगात जीवन दृष्टि दी है। उनके लिए सबसे बड़ा सुख मनुष्य है। ब्राह्मण क्षत्र हिन्दू मुसलमान पण्डित-मुन्ना बौद्ध-बौद्ध-साधु, ये सभी मनुष्य के रूप में समान हैं। मस्बिद-मस्बिद मनुष्य को सम्बोधित करते हैं। कबीर वर्ण-भेद और वर्ण-भेद की भावना पर कठोरता से आघात करते हैं। आर्थिक विपन्नताओं के आचार पर मानव का मूल्यांकन नैतिकता के विपरीत है। कबीर की दृष्टि में जीवन के स्वस्थ मूल्यों से परित मानवीय चेतना से शुद्ध व्यक्ति ही निर्बन हैं—जिनके हृदय में 'राम' नहीं वे निर्बन हैं।

निर्बन आदर कोई न है। साध जतन करे ओहु बिद न बरेई।

बौ निरबन सरबन के आई। जाये बँठा पीठ फिराई।

× × × ×

निरबन सरबन होगो आई। प्रभु की कला न भेटी आई।

कहि कबीर निर्बन है सोई। जाके हिरई राम न होई।

कबीर ग्रन्थावली १०२। परिशिष्टि।

कबीर ग्रन्थावली में संछ्छीत रचना में 'अज्ञों' में विभक्त है। 'अज्ञों' के विभाजन के ऐतिहासिक स्वस्व पर आगे विचार किया गया है। 'मन की बंध' शीर्षक के अन्तर्गत जो साहित्यी संछ्छीत हैं। उनमें मन के गुणात्मक स्वरूप की बंधी कबीर ने की है—

मन बीयाँ मन पाइए, मन बिन मन नहि होइ।

मन सनमन उस अँड ज्यूँ अनस बकासा जोइ १२।

इस अँड में कबीर ने मन के दो रूपों का वर्णन किया है। प्रथम सापेक्ष मन और द्वितीय निरपेक्ष मन। सापेक्ष मन जब निरपेक्ष मन में समर्पित हो उठता है तो इस स्थिति को उम्मीनी अवस्था कहते हैं। मन की विविध साधनात्मक परिभूमियों की बंधी करते हुए कबीर न कहा है। मन की साधना

से ही मोरक्त नाभ अपने व्यक्तित्व का निर्वोष कर सके थे। मन-साधना से ही योगिन् की उत्तमस्थि हो सकती है (१०)। पर मन की स्थिति कुछ विचित्र है। वह जस से भी पतझा और घुस से भी अधिक खींच है और पवन से अधिक चंचल और झुलगायी है। ऐसे मापेस मन को कबीर ने निरपेक्ष रूप प्रदान दिया है, उसे जामा बिज बना दिया है।

पापी हीं तै पातल पुरीं हीं तै भीष ।

फरना बेमि उठावला सो सोसठ कबीर कीन्ह । १२।

मन को अंध ।

कबीर ने मन को मृत के समान देखा है। इस प्रकार के अनन्त प्रयोग सिद्धों और मातों की रचनाओं में भी मिलते हैं। बाया कमाल है ज्ञाननिर्मा पंचनाभ है। पारधी के समान मन-मृत पर आत्ममय कर कबीर उसे अपने अधिकार में करके परम स्थिति की उत्कर्ष कर रहे हैं।

काया कर्म कमाव ज्युं, पंचतल करि बांध ।

मातौ तो मन मृत को नहीं तो मिथ्या जानि । १३। २६२। २६।

‘माता को अंध’ के अन्तर्गत कबीर ने माता के स्वरूप की चर्चा की है। परम्परा से प्राप्त ‘माया’—विषमक धारणा से विभक्त कबीर की माया है। वस्तुतः ‘चंचल मूल’ ही माया है। उसका नामकरण के पातली पालिनी आदि संज्ञाओं से करते हैं।

माया मुई न मन मुवा भरि भरि गया सरीर ।

जाता निजो मा मुई यो बहि गया कबीर । १४।

कबीर ने द्विधात्मक और मत्वात्मक बीजन-वर्धन की प्रस्तावना की है। ज्ञान-ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त करने की जगत् प्रेम की महिमा व्यक्त है। परम तत्त्व प्रेम द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है। ज्ञान की ओरता प्रेम का मार्ग सार है बोध-गम्य है—

बोपी पढ़ि-पढ़ि जय मुवा पंडित भना न कोर ।

एतै भातिर पीय का बड मु पंडित हा । १५। १४५।

जो ही ‘मेन को अंध’ ‘माव को अंध’ और, ‘माव साया भूत वा अंध’ में गैरदीन रचनाओं में उद्भव की व्याख्या मिलती है। इस प्रकार अंधा की

साक्षी भेदे हुए कबीर अपने 'स्वार्थविषयज्ञान' का वर्णन करते हैं। 'भक्ति के बंध' में ज्ञान भक्ति को कबीर तप्त कहते हैं। प्रेम भक्ति को शीतल कहते हैं। कबीर इन रचनाओं में समाज-पक्ष के विपरीत साधना-पक्ष की कपी करते हैं। वे विशिष्ट सांकेतिक और प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं, साधना की विशिष्ट उपलब्धियों का वर्णन करते हैं। ससार के प्रलोभनों से मन को मुक्त करने की भावना को सिद्धों और नाथों ने 'मन-मारने' की संज्ञा दी है। इसे 'बीजित मूठक' अवस्था भी कहा गया है। 'हरि प्रेमी' के लिए यह अवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता है—

बीजित मूठक इबै रही तबे अपत की भास ।

तब हरि सेवा आपन करे भक्ति कुछ पारबै दास ।१।

सिद्धों और नाथों ने साधक के लिए 'सूर' या 'पारबी' शब्द का प्रयोग किया है। चंचल मन को मारने वाले साधक को कबीर 'सूरबी' कहते हैं—वही सूरबी है जो मन का भ्रमन करता है—

कबीर सोई सूरबी मन घुंमाई झूठ ।

पंच पयासा पाकि के हरि करै सब झूठ ।२।

सूतजन को बंध ।६१।

गहन में बसामा बसता है निवास का निरन्तर आवात पड़ रहा है जिस सूर में आत्म-बहिष्कार की अभिलाषा बसकती है। वही इस संसार में भाग ले सकता है (६)। कबीर का भाग्य प्रेम का मार्ग है। यह प्रेम खेत में उत्पन्न नहीं होता है। हाट में इसका क्रय विक्रय नहीं होता है। इसके लिए सिर का बहिष्कार करना होता है। सिर का बहिष्कार कर राजा प्रजा सभी इस प्रेम की उपलब्धि कर सकते हैं—

प्रेम न खेती नीफरै प्रेम न हाटि बिकाइ ।

राजा परजा जिस बने सिर है सो के जाइ ।२१।६२।

भक्ति राम की बुझेही है इस मार्ग पर कायस्थ नहीं चल सकता। जिसमें शीघ्र समर्पित करने का आग्रह और धमका है वही इस मार्ग पर चल सकता है। राम की भक्ति भक्ति की व्याख्या है। इस व्याख्या के साथ कौतुक करने वाला व्यक्ति ब्रह्म हो जाता है (२५)। साधक के लिए कबीर 'सती' शब्द का प्रयोग करते

है। उसकी साधना सती के समान दृढ़ होती है। प्रिय का नाम-स्मरण कर सती पकने के लिए प्राण त्यागन-हेतु निकसी। प्रिय का नाम मुन्ते ही अपनी मुद्रि घुसकर स्व का परित्याग कर बहु प्रिय में समाहित हो बठी। वस्तुतः यह एकाकार की स्थिति है, जिसे 'समरसता' की अवस्था कहा गया है।

सती बसत कूं नीचली पीन का मुमरि छोड़ ।

सब्र मुन्त बीन मोक्षया भुलि गई सबैह ।

सती पकन कूं नीचली बिन बरि एक न येन ।

तन-मन सोप्या पीन कूं सब अंतरि रही न रेन ।

—मुरा तन की शेष । ३६ ३७।६३ ।

कबीर ने अपनी साधियों में 'सब्र' शब्द का प्रयोग किया है। 'सब्र' की भाँति के अन्तर्गत की साधियों में विविध प्रकार की आभात्मिक साधनाओं की वर्णन की गई है। यहाँ 'सब्र' शब्द के अर्थों के रूप में प्रयुक्त है। सब्र 'सामर्थ्य' का प्रति रूप है। कबीर 'सब्र' की बात भी कहते हैं जिसमें अज्ञान पर आक्रमण करते हैं। सतगुरु 'सब्र' के अर्थ के प्रयोग से अज्ञान की समाप्ति करता है—

तन पुरु साका सुनिवै सब्र बुझाया एक ।

साधन ही में निविध गया बह्या कर्मिने सेक । ३६ ।

गारा बहुत बुझारिया पोक पुकारे मोर ।

लामी पाट सब्र की रह्या कबीरा दोर । ३६।३८।

ज्ञान की मार से अहंकार का निनाश होता है। परम तत्त्व के साथ सारात्म्य होता है। इसी सब्र को कबीर 'हरि रत्न' भी कहते हैं।

ज्ञान-उपलब्धि के साधनों में कबीर ने गुरु को सर्व श्रेष्ठ स्थान दिया है। गुरु 'पाद' के शब्दों का अनुपाठ करता है। कबीर ने गुरु को 'भुक्तों' कहकर सम्मान मान व्यक्त किया है। गुरु 'सब्र' के आभाष से ज्ञान को प्राप्त करता है। मन में अज्ञान निगमन अवस्थित रहता है उसकी प्रेरणा से ही ज्योती अवस्था की प्राप्ति होती है—

हैने न कोठे ज्योतीं जैवत मेरदा पारि ।

बड़े बजार भीतरि निछा सतगुरु के हृदिकार । ३।२

दुस्तेब की भन ।

इस प्रकार स्वयंसिद्धज्ञान की ओर गुरु ही संशालित करता है । गुरु की हिमा का उच्चाटन करते हुए कबीर ने कहा है—

बीपक बीया छेस सरि पाती यई अघट ।

पूरा किया बिमाहुनी, वहुनि न खाबी हट्ट । १२

माया के दीपक पर नरपतंग के समान आकर्षित होता है । गुरु-ज्ञान में उबबुद्ध और सचेतन प्राणी ही इस आकषण से अपनी रक्षा कर पाता है । साधना की उच्चतम भूमि पर पहुँचकर साधक यह अनुभव करता है कि गुरु श्री गोरबिन्द ने अन्तर नहीं है । गुरु मेम का मेम है । उसके सिक्कन से ज्ञान का बीज अंकुरित होता है ।—

कबीर बारह प्रेम का बीजि मया सब अंग ।

अंतर भीगी जातमां हरी भई बनराह । १४

कबीर ने छछटी साधन का वर्णन किया । ब्रह्म की इस विशिष्ट विधा को छछट बौसी कहते हैं । 'सिद्धों तथा 'नाथों' की रत्नावली में इस ब्रह्म विधा की प्रचुरता मिलती है । (विशिष्ट पृष्ठ ४४ ४५ १९८) । अपनी पूर्व परम्परा के अनुसार कबीर ने अपनी छछटाबौसियों की रचना विरोधी धर्म के उपमानों तथा विरोधी धर्म के आगेपन के विविध प्रयोगों के माध्यम से की है । इसके अन्तर्गत असंयत पर योजना विरोधाभास विभाजन आदि के विशिष्ट प्रयोग मिलते हैं— यथा

कैसे नगरि करो कुटबारी,

बचस पुइय बिचपन नारी ।

बेस बिमाह गाह भई बाँक

बखरा बूडे तीम्बो सोम ।

मऊही जरी भापी छमिहारी

मास पतारि बीसह रतबारी ।

मूसा लेबन नाब मिळइया

मीठक सोबे साँप पहरइया ।

निधि उठि स्वास स्पधे भू शूई

कई कबीर कोई बिस्वा युके ।

अपीव, अचल पुरुष और अचला नागों से भरा परिपूर्ण है। ऐसे मय की रसा बँधे की बाय। बँध प्रजनन करता है बाय बन्धा रहती है। बध्ना तीनों सम्प्रा में दुहा जाता है। मरुही मरुही के घर चौककर जाती है। मरुह सोता है। सौर्य पहरा है रखा है। प्रति दिन स्वास (भुवास) सिंह से जुझता है। कबीर कहते हैं कि इसका अर्थ निराले ही समझते हैं।

सत्त्वों की रचनाओं में मन के दो कर्तों की कल्पना मिलती है। प्रथम चेतन मन द्वितीय अचेतन मन। अचेतन मन के सिद्ध 'सिंह राउ का प्रतीकारनक प्रयोग किया गया है। प्रसोममपूर्ण वृत्तियों अहंकार और अज्ञान अचेतन मन की वृत्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वह चेतन मन (स्वास्) को अपने अधिकार में रखता है। ज्ञान उपलब्धि के पश्चात् चेतन मन इन प्रभावों से मुक्त होता है। वह अचेतन मन को अपने अधिकार में कर लेता है। यही भुवास का सिंह से 'जुझता' है। यह इन्द्रियों का प्रतीक है। इन्द्रियों अज्ञान और अचेतना का प्रजनन करती हैं। ज्ञान के प्रसङ्ग से इन्द्रियाँ अछूत हो उठी हैं। वे अज्ञान और अचेतना का प्रजनन नहीं कर पाती। यही बाय का बन्धा होना है। अब मन से चेतना प्रसफुटित होती है। यही उसका 'विमाना' (प्रजनन प्रक्रिया) है। चेतन मन से प्रसन्न ज्ञान बध्ना है। उससे निरन्तर चेतना का स्फुरण होता है। यही बध्ने का दुष्ट देना है। संसार के प्रसोमम भाग के समान बँधे हैं। अब चेतन मन उनकी ओर आकर्षित नहीं होता। इन्द्रियों (विहीन) चेतन मन (मृत) पर आश्रित है। 'बीड़क' (चेतन मन) निरिच्छा है। अचेतना (सर्व) उसे आत्म-साध करने का प्रयत्न नहीं करती।

साधना के मूढ़ सत्त्व एवं राग सत्त्व के स्वल्प निषीरान से सम्प्रयुक्त रचनाओं के अतिरिक्त कबीर अपनी रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों का सङ्घन करने हैं सामाजिक कुरीतियों पर आपाठ करने हैं। सृष्टीय अर्थ की रचनाओं में अरोपक के रूप में कबीर का अतिरिक्त सम्पुर्ण आया है।

कबीर शब्दावली में मंगुहीन भाषिणी शब्दी 'मधनी और 'रदीकी' में विभक्त हैं। रदीकी में चोहारों के बरवान् बोहा के चना का अम निवोजित है।

यह अपभ्रंश की कड़वक सीढ़ी की काव्य विधा है। 'बीजक' की रचनायें 'बाबला' 'चौलीसा', 'सिपि' 'बार' 'बांजर' 'हिडोस' 'कहरा' 'बेलि' आदि में वर्णित हैं। अनुमृति के रागात्मक तत्वों का वर्णन वे गेय पदों में करते हैं।

कबीर के नाम से प्राप्त रचनाओं की भाषा में एक क्यता नहीं है। इनकी रचनायें मौखिक परम्परा में ही जीवित रही हैं।

काव्य-क्रम ॥ इनमें ध्वन्य रचनाकारों की रचनायें भी सम्मिश्रित होती रही हैं। इस प्रकार समय के अनुसार इनके नाम से प्रचलित रचनाओं के आकार प्रकार में परिवर्तन होता रहा है। कबीर के 'बीजक' के टीकाकार बिचार दास ने 'बीजक' का आधार ग्रहण करते हुए कबीर की रचनाओं की भाषा को पूर्वी कहा है। ( बिचारदास शास्त्री—बीजक बिरस टोका पृष्ठ ८३। ) डॉ० रामकुमार बर्मन कबीर की भाषा का व्याकरण पूर्वी हिन्दी पर आधारित मानते हैं जिस पर पंजाबी के ववेष्ट प्रभाव को वे स्वीकार करते हैं। ( सप्त कबीर—डॉ० रामकुमार बर्मन पृष्ठ २२ )। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को राजस्थानी-पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली कहा है। इनका यह निष्कर्ष है कि 'रमैनी' और 'पदावली' की भाषा ब्रजभाषा और पूर्वी भाषा है ( हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ८० )। वस्तुस्थिति यह है कि इनकी भाषा में भिन्न भिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं के रूप उपलब्ध हो जाते हैं। भाषा-स्तरों की अनेक हस्ता के कारण ही इनकी रचनाओं को एक से अधिक व्यक्तियों की रचना समूह कहने के लिये हम आकर्षित होते हैं।

### रचनायें

कबीर की रचनायें कबीर के बाद लिपिबद्ध की गई हैं। इनके नाम से प्रचलित रचनायें 'साखी' 'सबरी' और 'रमैनी' शीर्षकों में वर्गीकृत हैं। इस प्रकार का विश्वास प्रचलित है कि कबीर दास के सिष्य धर्म दास ने सर्व प्रथम संवत् ११२१ में 'बीजक' नाम से उनकी रचनाओं का एक संग्रह तैयार किया था। परन्तु 'बीजक' की रचनाओं की भाषा के आधार पर इस मतवाद का समर्थन नहीं किया जा सकता। 'शुद्ध-ग्रन्थ साहिब' में संग्रहित कबीर की रचनाओं

की प्रमाणितता सर्वोत्तम है ।<sup>१</sup> कबीर की रचनाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित विवरणों प्रचलित हैं—

‘सहस्र ज्ञानमे औ छप साता । कुप परमान रमैनी भासा’ ‘अर्थात् मुप-वर्ग के अनुसार कबीर ने छप सात सियागने हजार रमैनीयों की रचना की है ।

सेन नाई — सेन नाई की जीवनी तथा उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट निष्कर्ष नहीं हो सकता है । इनके विषय में अनेक जन चारणाओं प्रचलित हैं । एक चारणा के अनुसार ये बिठूर के उपासक तथा चारकरी भक्ति-परम्परा के संस्थापक थे । एक अन्य चारण के अनुसार ये रामानन्द के शिष्य थे । ‘मूलप्रश्न साहिब’ में इनके नाम से निम्नलिखित पद संकलित हैं :

कुप दीप मुठ सावि भारती ।

बारने बाउ कम्तापति ।

मंगला हरि मंगला ।

नित मंगल राजा राज राइ को ।

ऊतम बिभरा निरमल बापी ।

गुहरी निरंजन कपलापति ।

राया यपति रामानंदु जाने

पुण परमानन्द बखाने ।

मन मुरति मैं तारि मोहिरै ॥

सैधु भर्मे जनु परमानंद । रामु पनावरी ॥१॥

चरम वारम — चरम शब्द कबीर के प्रमुख शिष्य थे । जामु में वे कबीर से कुछ ही वर्ष छोटे थे । ऐसा कहा जाता है कि संवत् १५२१ में उन्होंने कबीर

१ कापी नावरी प्रचारिनी तथा कौ बोर से डॉ० स्वामसुन्दर दास ने ‘कबीर सम्पादनी’ का सम्पादन किया है । इस सम्पादनी में संकलित ५० ‘शालिशी’, बोर ५ ‘पद’ कुछ अन्य साहित्य में भी मिल जाते हैं । परमुराम खुर्दो ने न कबीर की रचनाओं की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है । इसे वे ‘व्यासाप्रति’ की संज्ञा देने हैं । इसकी मद धारणा है कि इस प्रति की भाषा ‘कबीर सम्पादनी’ में संश्लेषित रचनाओं की भाषा से प्राचीन है । इसका तिथि बाल संवत् १८५५ है । जहाँ कबीर के पदों की टीका भी की गई है ।



की रचनाओं का संग्रह किया था। बर्मबास के नाम से प्रचलित ग्रन्थों में, 'सुख निधान' का विशेष महत्त्व माना जाता है। इनकी रचनाओं में से उदाहरण के लिए एक यहाँ प्रस्तुत है—

गगन पिय बंसी फेरि बजावो ।

धौबर बुझा में उठत बुझ बुझा सो बंजन पिय नैन कगावो ।

बो बंसी सुर नर मुनि मोहि, सो बंसी पिय मोहि सुनावो ।

बानो बूझी बोलो ताका, मोहनी मूरति मोहि दिखावो ॥

बरम बास बिनचे कर बोरी बरम बंजत तरे मोहि स्यावो ॥

बना (धन्ना भगत) —बना का जन्म संवत् १४७२ में (सन् १४२) माना जाता है। ये बाति के बाट बे, और राखपुताना के सिवासी बे। इन्हें रामानन्द ने दीक्षित किया था। 'भुव धन्व साहित्य' में इनके नाम से चार पर संग्रहीत हैं। उनमें से एक पर उदाहरण रूप में यहाँ दिया जा रहा है—

भ्रमर छिरत बहु जनम भिजाने तनु, मनु, बनु नहिं बीरे,

काकज गरु काम सुख राख मनि बिसरे प्रभु हीरे ।

बिनु फल भीठ कने मन बजरे चार बिचार न जानिआ ।

गुन तें प्रीति बड़ी जनमोटी जनम मरण छिरि तानिआ ।

बुगति जानि नहीं छौ सिवासी बजत बाक कम फेर परे ।

बिनु फल संनि मरे मन ऐसे परम पुरख प्रभु मन बिसरे ।

सिमान प्रवेष्टु बुरहि धनु बीजा बिजानु मानु मन एक भए ।

प्रेम भगति मानी सुख जानिआ तुरति बचाने मुक्ति भए ।

बोति समाय समानी बाई बछसी प्रभु पदचानिआ ।

बने बनु पाइया बरबी बर भिजि जन सन्त समानिआ ।

रागु बाधा १ ।

पीपा —पीपा का जन्म संवत् १४८२ (१४२३) में हुआ था। ऐसी किंवदन्ती है कि पीपा नवरोज गढ़ के नरेश थे। ये आरक्ष्य में दुर्ग के उपासक थे। रामानन्द से दीक्षित होने के पश्चात् ये 'निर्गुन साधना' की ओर आकर्षित हुए थे।

कायत बैसा काइअत देनक काइअत बंनन बायो ।  
 काइअत धूप बीप नइबेरा काइअत धूमठ पायो ।  
 काइया बहु छह छोमते नइनिधि पाई ।  
 ना कसु जाइयो ना कसु जाइयो राम की सोहार्द ॥  
 जो बड़ाह सोई पिढ़ जो छाये सो पाये ।  
 दोषा प्रणवे परम ठगु है सतु पुक हार सखाव ॥

राम जन सारोम १४

रेदास —ये काशी निवासी थे । इनका जातिर्भाव काल संबद् १४४५  
 १५०५ के मध्य माना जाता है । निम्नलिखित ग्रंथ से इनकी रचना के स्वरूप  
 का कुछ परिचय मिल जाता है—

प्रानी किआ मेरा किया ठेरा ।

बैठे तरवार पंक्ति बसेरा ।

एकहु बंध उखारत नीचा । साढ़े तीन हाथ खेरी सीचा ।

बंक नाक पाय तिर डोरी । इहु तनु होइयो भलम की डेरी ।

ढेंगे मंदर मुन्वर नारी । राम नाम बिनु बाजी हारी ।

मेरी जाति कमीनी पांति । कमीनी बोझा जनब हमार ।

सुम सरभायत राखा रामचंद्र । कहि रविनाथ कबारा ।

सन्त झाला नाम १—कालराज सन्त सम्प्रदाय के अग्रगण्य 'काल पन्थ'  
 छाया के संस्थापक थे । इनका जन्म अजमेर के अजयपुरत पीली घूर ग्राम में संवत्  
 १२६७ में हुआ था । इनकी मृत्यु संवत् १७०२ में हुई । इनकी कानियों का  
 एक हस्तलिखित संग्रह 'कालनाथ की बिपावनी' दीर्घक से उपलब्ध है ।

छठ दादू —जमि जगम गोपाल कृष्ण 'जगम गीता' परकी और शायरराज  
 इत 'मछ काला' नामक कृतियों से दादुरायल का परिचय मिलता है । इस  
 प्रकार की शायरी मिलती है कि दादुरायल का जन्म संवत् १६०१ (यन् १२४४)  
 में हुआ था और इनकी मृत्यु ज्येष्ठ शुक्ल ८ संवत् १६६० (सन् १६०३) में हुई  
 थी । दादू पन्थियों का यह विश्वास है कि इनका जन्म अजमेर में अहमदाबाद  
 नगर में हुआ था । दादू पन्थियों के अनुसार यह कल्प-पुत्र था । वरन्तु जन  
 मान्य में इस प्रकार की मान्यता मिलती है कि ये मुनियों मयलमान थे । इनका

मूल नाम दाऊद था। बाबू की रचनायें 'साक्षियों' 'परी' और 'बालियों' में विभक्त हैं। इनके सिष्यों में सन्तदास और जयनाथदास ने 'हरके बानी' दीर्घक से इनकी रचनाओं का संग्रह किया था। राजन साहब ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'अंग बंधू' नाम से किया है। नामरी प्रचारिणी सभा ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें २६२६ साक्षियों और ४४५ पंख हैं।

बाबू परम तत्त्व को अपना आधि युक्त मानते हैं। इस कारण इनके पंख को 'परम सत्य पंथ' भी कहा जाता है। चित्तन-बारा और साधना सिधि, इन दोनों दृष्टियों से वे कबीर के अधिक निकट पड़ते हैं। कबीर के समान वे परम तत्त्व को 'धूम्र', 'परमपर्व' या 'निर्माण' की संज्ञा देते हैं। स्वयं उचित ज्ञान में निश्वास करते हैं। परन्तु बाबू और कबीर में सुझम अन्तर है। कबीर आत्मप्रत्यय में निश्वास करते हैं और बाबू आत्मसमर्पण में। बाबू की रचनाओं से एक अंश यहाँ उद्धृत है—

बचहुँ न निऊँ प्रीति प्राण कठोर।

दरसन बिना कहुँ दिन बीतै, सुखर प्रीतन मोर।

चार पहर चापु जुम बीते रैनि गैबाई मोर।

बचि गए बचहुँ नहि आए कतहुँ खे बित मोर।

कबहुँ मेन गिरिनि नहि देखे मारम चितवत मोर।

बाहु अइसहि आसुर विरीहनि बँसिहि चन्द बकोर।

बाबू की मृत्यु के पश्चात् उनका पंथ काक क्रम से पाँच शाखाओं में विभक्त हो गया। (१) कालसा सम्प्रदाय (२) नाया सम्प्रदाय (३) उत्तर मढ़ी (४) विरक्त (५) बाकी। बाबू पंथी समाज स्वामी एवं साधु, सेवक एवं गृहस्थ इन दो वर्गों में विभक्त रहा है।

संत सुन्दर दास —सुन्दरदास बाबू के सिष्य थे। इनका जन्म जयपुर के बोसा नामक स्थान में संवत् १६२३ में हुआ था। इनकी मृत्यु संवत् १७४९ में हुई थी। वे सन्त राजन के समकालीन थे। राजन के साधकाव्यों में इन्होंने साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया था। इनके लिखित ३७ ग्रन्थों का सत्येक मिश्रता है जिनमें 'ज्ञान समुद्र' का विशेष महत्त्व है। इसमें मन्त्रा भक्ति अष्टांग योग, साक्ष्यमय एक अर्थात् ब्रह्म ज्ञान-सम्बन्धी रचनायें हैं। उदाहरण—

हिये भीर बीये और बीये और  
 बीये और बीमऊ बनूप पाटी पड़े हैं  
 मुल और बोन और मेन और संग और  
 सन और मन और जम्म माहि बये हैं ।  
 हाथ और पाँव और सीमई धवन और  
 मज सिंग रोम रोम कछई सो मई हैं ।  
 ऐसी सो कठोरता मुनी न देपी कपल में  
 मुग्ध कहत काहु जन हो क यड़े हैं ।

विरहिन उदाहनों को संघ संवेदा ४७ सुन्दर उदाहरण  
 सन्त कवि रच्यव — रज्ज का जन्म संवत् १०१० माना जाता है ।  
 इसका धन्यस्मान् बनपुर स्थित साँवावेर नामक ग्राम है । यं वासि के प्यान य ।  
 उनकी रचनाओं में से उदाहरण हेतु वहाँ एक उद्धृत है—

धील समुर न ठाहरे, इन्दी पंच बगल ।  
 रज्ज रीता सिंह सो बहो परै रख हस्त ।  
 जब रज्ज धन भीत बदा, तनु बीरघन बिनेत ।  
 येनै पल्लव परीच्छे, प्रत्यक्ष आया देख ।  
 भवम नैन मुक्त नासिका सरिबपारथ हार,  
 रज्ज पीछे पल्लव का प्राण निरुद्ध ब्यवहार ।

पापरी साहिबा — बाबरी साहिबा का समय संवत् १५६६ १५६७ माना  
 जाता है । य बाहु-समवासीन थी और इसीने बाबरी सम्राट् का प्रवर्तन  
 किया था । ये मायाजग की शिष्या थीं । इनकी रचनाओं का संग्रह 'महद सागर'  
 नामक ग्रन्थ में मिलता है । उदाहरण—

बाबरी बाबरी का कहिए मन हृदके वर्णन परै मिल मोदरी ।  
 बाबरी जानहि सन्त मुमान जिन्हें हरि रूप हिए दगबाबरी ।  
 बाबरी मृत मोदवी मृगत देवति जान जनक दगबाबरी ।  
 गोपनी मोहै देवारी प्रभु, बनि बाबरी देनि भई मति बाबरी ।

मल्लक दास — मल्लका के कहिदो को मापनों में मल्लक दास का  
 मूल्य अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है । इसका जन्म संवत् १५६१ ( मत् १५७४

मूख नाम बाऊर या । दादू की रचनायें साक्षियों 'पदों' और 'वाक्यों' में विभक्त हैं । इनके छिप्पों में सन्तवास और जयन्नाथवास ने 'हरखे बाणी' सीर्यक से इनकी रचनाओं का संग्रह किया था । रज्जु साहब ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'अप बपु' नाम से किया है । मामरी प्रचारिणी सभा ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें २६२६ साक्षियाँ और ४४५ पद हैं ।

दादू परम तत्व को अपना आवि गुरु मानते हैं । इस कारण इनके पदों को 'परम कृष्ण पद' भी कहा जाता है । चिन्तन-बारा और साधना विधि, इन दोनों दृष्टियों से ये कबीर के अधिक निकट पड़ते हैं । कबीर के समान ये परम तत्व को 'धूम्य,' 'परमपद' या 'निर्मान' की संज्ञा देते हैं । स्वयं सबिख ज्ञान में विश्वास करते हैं । परन्तु दादू और कबीर में सूक्ष्म अन्तर है । कबीर आत्मप्रत्यय में विश्वास करते हैं और दादू आत्मसमर्पण में । दादू की रचनाओं से एक वंश यहाँ उद्भूत है—

अजहूँ न निकसे प्राज कडोर ।

वरसल बिना बहूत दिन बीतै सुन्दर प्रीतम मोर ।

चार पहर चारहु जुन बीतै रनि बैबाई घोर ।

बबबि गए अजहूँ नहि आए कतहूँ रछे चित मोर ।

कजहूँ नेन निरखि गहि देखे मारग चितवत तोर ।

दादू अइसाहि जातुर विरीहनि बैसैहि कन्द बकोर ।

दादू की मृत्यु के पश्चात् उनका पद काल क्रम से पाँच शाखाओं में विभक्त हो गया । (१) जाऊसा सम्प्रदाय (२) नागा सम्प्रदाय (३) उत्तर पक्षी (४) बिरक्त (५) बाकी । दादू पक्षी समाज स्वामी एवं छात्र, सेवक एवं गुरुत्व इन दो वर्गों में विभक्त रहा है ।

संत सुन्दर दास —सुन्दरदास दादू के छिप्पे थे । इनका जन्म जयपुर के घोसा नामक स्थान में संवत् १६१३ में हुआ था । इनकी मृत्यु संवत् १७४६ में हुई थी । ये सन्त रज्जु के समकालीन थे । रज्जु के साथ काफी में इन्हीं साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया था । इनके लिखित ३७ ग्रन्थों का सङ्ग्रह मिलता है जिनमें 'ज्ञान समुद्र' का विशेष महत्त्व है । इसमें नवधा भक्ति, अष्टादि योग सांख्यमत एवं अष्टाद ब्रह्म ज्ञान-सम्बन्धी रचनायें हैं । उदाहरण—

हिये और बीये और दीये और,  
 कीये और कोनऊ अनूप पाटी पड़े है  
 मुख और बीच और मेन और सैन और  
 तन और मन और मन्य माहि कहे हैं ।  
 हाथ और पाँव और सीछहूँ धवन और  
 नख चिख रोम रोम कलाई सी यड़े हैं ।  
 ऐसी सी कठोरता सुनी न दीपी जपत में  
 सुन्दर बहुत काहुँ सब हो क यड़े हैं ।

मिरहिन बराहनों को रंग सबैया ४७ सुन्दर प्रभावली  
 सत्य कवि रज्जवः :—रज्जव का जन्म संवत् १७१० माना जाता है ।  
 इनका जन्मस्थान जयपुर स्थित खानापुर नामक ग्राम है । ये बालि के राज्य में ।  
 इनकी रचनाओं में है उदाहरण हेतु यहाँ एक उद्धृत है—

धीरु समुद्र न ठाहरै, इन्दी पंच अमल ।  
 राजव रीता सिद्ध हो अहाँ परे दस हस्त ।  
 जब राजव घन जीत लदा समु दीरण बिदेख ।  
 येनै फलन पनीकई प्रत्यक्ष पाया देख ।  
 अजय मेन मुख मासिका खरिबसावध हार  
 राजव बीदे पल्ल का प्राण पिण्ड अबरहार ।

मायरी साहिबा —बाबरी साहिबा का समय संवत् १५६६ १५६२ माना  
 जाता है । ये बाहु-सम्राजसीन की और इन्होंने बाबरी सम्प्रदाय का प्रवर्तन  
 दिया था । ये मायाकन्द की रचिये भी । इनकी रचनाओं का संग्रह 'चन्द सागर'  
 नामक ग्रन्थ में मिलता है । उदाहरण—

बाबरी बाबरी का कवि, मन हुंके पदंय मरै मित्र बाबरी ।  
 बाबरी जानहि मन्त्र मुबारक जिन्हें हरि रूप हिए दामाबरी ।  
 बाबरी मुरत मोहनी मुरत दै करि नाम जगन्त लपारदी ।  
 बाबरी मोहै देहारी प्रभु, कवि राबरी देगि मरै मरि बाबरी ।

मञ्जुक दाम —मन्जुधारा के कवियों और साधकों में मञ्जुक दाम का  
 महान् महान् दण्डियों में उल्लेखनीय है । इनका जन्म संवत् १५१२/ १५१४

मूक नाम बाळ्य बा । बाहु की रचनायें 'साक्षियों' 'पदों' और 'यानियों' में विभक्त हैं । इनके सिध्दों में सन्तदास और जगन्नाथदास ने 'हरदे बाणी' कीर्णक से इनकी रचनाओं का संग्रह किया बा । राजब साहब ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'बंग बन्' नाम से किया है । नागरी प्रचारिणी सभा ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें २६२३ साक्षियों और ४४२ पद हैं ।

बाहु परम तत्त्व को अपना आदि गुरु मानते हैं । इस कारण इनके कव्य को 'परम ब्रह्म कव्य' भी कहा जाता है । चिन्तन-आरा और साधना विधि, इन दोनों दृष्टियों से ये कबीर के अधिक निकट पड़ते हैं । कबीर के समान ये परम तत्त्व को 'सूक्ष्म' 'परमपद' या 'निर्माण' की संज्ञा देते हैं । स्वयं संबंध ज्ञान में विश्वास करते हैं । परन्तु बाहु और कबीर में सूक्ष्म अन्तर है । कबीर आत्मप्रत्यय में विश्वास करते हैं और बाहु आत्मसमर्पण में । बाहु की रचनाओं से एक अंश यहाँ उद्धृत है—

बजहूँ न निरुधे प्राण कठोर ।

हरसुन बिना बहुत दिन बीतै, सुन्दर प्रीतम मोर ।

चार पहर चारहुं बुग बीते रैन गँवाई मोर ।

अर्थात् गए अजहूँ नहिं आप बजाहूँ रहो निरुधोर ।

कजहूँ नैन निरसि नहिं देखे मारम चितवत मोर ।

बाहु अइसाहिं आतुर विरीहनि बैसेहि चान बकोर ।

बाहु की मृत्यु के पश्चात् उनका कव्य काक क्रम से पाँच शाखाओं में विभक्त हो गया । (१) लालसा सम्प्रदाय (२) नावा सम्प्रदाय (३) उत्तर गद्दी (४) विरक्त (५) बाकी । बाहु कबीर समाज स्वामी एवं धातु, सेवक एवं गुरुत्व इन दो वर्गों में विभक्त रहा है ।

संत सुन्दर दास — सुन्दरदास बाहु के सिध्द थे । इनका जन्म जयपुर के बीसा नामक स्थान में संवत् १६५६ में हुआ बा । इनकी मृत्यु संवत् १७४६ में हुई थी । ये सन्त राजब के समकालीन थे । राजब के साधकासी में इनोंने साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया बा । इनके लिखित ६७ ग्रन्थों का सम्प्रेष मिलता है, जिनमें 'ज्ञान समुद्र' का विशेष महत्त्व है । इसमें गवना भक्ति, अष्टांग योग सांख्यमठ एक अष्ट त ब्रह्म ज्ञान-सम्बन्धी रचनायें हैं । उदाहरण—

धरनी दास — बरनी दास का जन्म छपरा के मामी बाँव में सम्बत् १६७३ में पद्मराम काकल के परिवार में हुआ था। इनकी मातृभाषा मोरपुरी थी। मोरपुरी के अतिरिक्त ब्रज भाषा में भी इन्होंने रचनाएँ की हैं।

प्रभु की बख जनि मोहि बिचारो।

असरन सरल अचम बन तारन जुय जुय बिरह विहारो।

जहाँ जहाँ जगम करम बसि पायो, तहाँ अबके रस छाए।

पाँचहु के परसब मुसतौ, बरत न भ्यान जहारो।

अन्य वर्ग रस भास निरखर, मज तिल मुरति संचारो।

यस्या मुख बगिन कल कल जहाँ बहनें तहाँ पति पायो।

बीज दरत दयाल दया करि पुन ऐमुन न बिचारो।

बरनि नाहि जायो सरनापति तजि लम्बा कर्मिहारो।

सन्त कवि हरिया (विहार वाले) :—हरिया साहब का समय सम्बत् १७३६ १८३६ के मध्य माना जाता है। इनके पिता का नाम पीर वजीर था। ये कबीर के प्रति विशेष रूप से आस्थावान थे। इन्होंने एक स्मरण में कहा भी है—

तहि सोनो सो सोमहि कबीरा, मेठी निरखर सीजे बीरा।

हरिया बाबू, बीरार्ई पुछ ह। हरिया प्रभावसी।

इन्होंने परम तत्व के निर्गुण स्वरूप के प्रति विश्वास प्रकट किया है। इनके अनुसार निर्गुण समुच्च नहीं हो सकता और समुच्च निर्गुण नहीं हो सकता। हरिया न त्रिम सत्य पुला की सम्पत्ता की है वह निर्गुण है।

इनके अनुसार त्रिगुण के चार स्वरा हैं—बोलता वचन निराकार और अचल।

एक निर्गुन बोलता है भाई

धामी वच कूम्हो बरवाई।

दोसर त्रिगुन पल्ल बहारी

बई अचल कोइ अन्न न पावै।

तीसर त्रिगुन है निराकारा,

छाक भजे गरल नमारा।

चोरा निरगल अचल है भाई

जहूँ जहरा जोनि जराई।

भक्ति ईशु पृ० १०१।



में कड़ा (प्रयाग) में हुआ था। मनुक मोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। इनके पूर्व 'सूर सागर' का प्रचलन हो चुका था। भट भाषा की दृष्टि से तुलसी के 'मानस' की शब्धी और सूर के 'सूर सागर' की ब्रज भाषा के मार्ग इनके सम्मुख थे। इनके ग्रन्थों में 'ज्ञान बोध' 'रत्न ज्ञान' 'भक्त बन्धावधी' 'भक्त विरदावली' 'पुरुष विष्णु' 'ब्रह्म बाणी और राम बीतार लीला' प्रमुख हैं। 'परम ठल' की उपलब्धि इनकी साधना का प्रमुख श्रेय है। उसकी उपलब्धि चार साधना विधाओं के माध्यम से सम्भव है। ये हैं—देव-युवन नियम-याज्ञ शास्त्रीय ज्ञान और खनिर्बन्धीय पं की प्राप्ति। अन्तिम स्थिति में जनहृद ध्वनि साधक में प्रतिबिम्बित होती है। इसे वे सहज ध्वनि भी कहते हैं। इस ध्वनि का आधार ग्रहण कर साधक शून्य में समाविष्ट होता है। उदाहरण—

मुरसिद भैरा बिस बरियार्ह, बिस गहि मन्दर खोबा ।  
 जा मन्दर में सत्तर काबा सकको तीसो रोबा ।  
 सातो ठवक औलिया आये मेदन होय चुवार्ह ।  
 सम्य कमर काड़े निमाज में वर से बहौ खोबार्ह ।  
 दीन बयाज मुनी बबते तबते हिय में कुछ ऐसी बसी है ।  
 तेरो कहाय के बाते नहौ मैं तेरे हित की पट खेंच कसी है ।  
 तेरोई एक मरोस मनुक को तेरे समान न दूखो बसी है ।  
 एहो मुरारि पुकारि कहौ अब भेरी हँसी नही तेरी हँसी है ।

ज्ञान बोध ।

यारी साहब —यारी साहब बाबरी साहिबा की गिप्पार बीर साहिबा के दिव्य थे। इनका जन्म सम्बत् १७२५ में दिल्ली में हुआ था।

हमारा एक असेहे गिय प्यारा है ।

भट भट नूर, मुहम्मद साहब आका सफ़क पमारा है ।  
 चौदह तबक आकी रुसनाई भिलमिल कोलि सिपारा है ।  
 देवमूख बेचून जकेला हिन्दू गुरुक सो प्यारा है ।  
 सार्ई दरबैस दरस निज पायो सोई मुमल्लम सारा है ।  
 कानै न पाय, मरे गहि कोनै, यारी यार हमारा है ।

धरनी दास — धरनी दास का जन्म छपरा के मांझी बाँच में सम्मत् १६०३ में परसराम कामस्य के परिवार में हुआ था। इनकी मातृभाषा भोजपुरी थी। भोजपुरी के अतिरिक्त ब्रज भाषा में भी इन्होंने रचनाएँ की हैं।

प्रभु जी अब जिन मोहि बिहारो ।

बनरन सरन जवन बन तारन बुग भुग निरह तिहारो ।

जहँ जहँ जनम करम बसि पायो तहँ जगम रस खाए ।

पाँचहु के परपंच भुमानो धरोड न भ्याम उबारो ।

ब्रम्ह नर्य दस मास निरन्तर, नस सिंक मूरति संवारो ।

भगवा भूत जमिन कछ हूम जहँ जहँ तहँ पति पागे ।

दीर्घ दास ब्याल दया करि पुन ऐगुन न बिचारो ।

धरनि मात्रि भायो सरनागति तजि लग्यो कलियारो ।

सन्त कवि दरिया (विहार वाले) — दरिया साहब का समय सम्मत् १७११-१८११ के मध्य माना जाता है। इनके पिता का नाम दीक बर्ही था। ये कबीर के प्रति विरूप रूप से आस्थावान थे। इन्होंने एक पुस्तक में कहा भी है —

ताहि दोबो दो खोजहि कबीरा, बँठी निरन्तर सीख बीरा ।

दरिया सागर, बीपाई पृष्ठ हूँ । दरिया स्याबली ।

इन्होंने परम तत्व के निर्गुन स्वस्व के प्रति विरवात प्रकट किया है। इनके अनुसार निर्गुन समुन नहीं हो सकता और समुन निर्गुन नहीं हो सकता। दरिया ने जिस सरय बुझा की कल्पना की है वह निर्गुन है।

इनके अनुसार निर्गुन के चार स्वस्व हैं—बोलता पवन, निराकार और अकार ।

एक निर्गुन बोलता है भाई

प्यानी बन बुझो जगपाई ।

दोसर निर्गुन पवन कहाँ

बहै अगम कोह अग्य न पाव ।

तीसर निर्गुन है निराकार,

बाके भजे नवज समारा ।

बीरा निरग्न अवन है भाई

जहँ जगता जोनि जराई ।

इसके अनुसार साधना के लिए ध्याता, भक्ति और ज्ञान तथा नामस्मरण अपेक्षित है। स्वयं सविद्य ज्ञान पर चम्पना छम्पार पर चम्पने के समान है—

ध्यान के मनु फगु बरे न कोई।

भार क्रियाग निछन बरि होई ॥

अगम अघाह पाह किमि पावे। ध्यान रत्न ॥१६८॥

बहीर के समान बरिया भी सुरति की चर्चा करते हैं। 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' के सम-स्वरूप का वर्णन करते हैं। परम समाधि में 'सबद ध्वनि' की प्रति ध्वनि का वर्णन करते हैं। यथा—

मूल सब्द धुनि होत कबोच। सुरति बांनि राखे एक ठौर ॥१६९॥

दूर बँद बर एक बर आवे। तबही डोरी छे लिखमावे ॥१७०॥

मूल सब्द धुनि होत उबारा। तहवाँ आई करो पैठारा ॥१७१॥

अह्व कंबल के ऊपर मूला। सहस्र कंबल तहवाँ रह फूला ॥१७२॥

बरिया सागर—बीमार्ह ॥ पृ० १७ ॥

बुद्धा साहब —इसका आत्मिभाव काव सं० १६८१ है। ये यारी साहब के शिष्य थे तथा गाजीपुर के अन्तर्गत भुङ्गुड़ा के निवासी थे। ये बापि के कुर्मी थे और इनका नाम बुद्धाफी राम था। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

पुरब बैस कर आपहुँ बंभना आपु भयल अबधूता ॥

अपरम्पार पार ब्रह्म बंभना आयो हमरे बर बंभना ॥

परम तत सै पुनि आपुही सरल गावै अनह्व सतना।

सबुन, छम्पुन, सतगुन सारल, हारल तन मन बोल।

गयन मन्त्रक में हरि रस आसल, बूझै बिरछा कीऊ।

निर्मल बन एक निर्मल गावस, स्वासा सर्वुन भावस।

अन बुद्धा भिन स्वासहि गावहि ऐत प्रकाश समावस।

सहजोवाह —इसका आत्मिभाव सं० १७४० १५२० ( १६८३ १७६३ ) में देहरा (राजस्थान, में हुआ था। ये चरनदास की शिष्या थीं। इनकी रचनाओं में ये एक भंघ यहाँ प्रस्तुत है—

सठ तजि भाँव जगत संघ राखो।

येहि कारण बहु मर्म कसे है बीरासी छनपरि बटि नाचो ।  
 मर्म माहि मे अनम कियो ये एकहुँ बार मयी नहीं साचो ।  
 स्वारथ ही को उठि छठि जाने राम भजन परमारन काचो ।  
 सन्तम की टकसास चडो ना गुरु की हाट कबहु नहि जाचो ।  
 कम द्वारे की काज न मानी गरज अगिनि की सहि सहि बाँचो ।  
 चरनदास कहै सहबोवाई हरि की सगल बिना नहि बाँचो ।

दया दाई —इसका अविर्भाव कालसं० १७४०-१८२० (१९८३ १७९३)  
 ई० है । दयादाई चरणराम की शिष्या थी और सहबोवाई का समकालीन थी ।

आन रूप की मखो प्रकास भयो अविद्या तम को नास ।  
 सुख पर्यो निज रूप अमेद सहबै मिले बीर को येद ।  
 बीर ब्रह्म मोठर नहि कोय एके रूप सर्व घट सोय ।  
 जग विवैत सँ प्यारा जान परम सबै रूप निर्माण ।

गुलाब साहब —गुलाब साहब बुद्ध साहब के शिष्य थे । ये गाजीपुर के  
 पादियाबाद परगना में रहने वाले थे । इसका अविर्भाव सं० १७५०-१८०० के  
 मध्य माना जाता है । कतिपय सन्तों के अनुसार वे मुइठुडा ( गाजीपुर ) के  
 समीपवार थे ।

(१) करने नीर कवन जल कहिये को समूत को धारी ।  
 को है रूप नमामस को है को है सन्नि उबारी ।  
 को है कीट जलम कोन है को है दुपति मिगारी ।  
 को है बिअँटी हति क्यम है, को जन्म को मारी ।  
 कह गुलाब यह बुद्धि पको जिब निरखन को निरबारी ।  
 सगगुठ हवा सल्ल सरमाननि मय भागर लै उबारी ॥

(२) लख लख लयावत हो पावन मुख रीति ।

गुलाब पुनकि मन भावत हो क्यमी भय धीनि ।  
 सगल कहल पुरारी हो जिन मुनास बानी ।  
 सो जन जमने बाचत हो मन गारिग पानी ।

परनदास —पावनग का अविर्भाव सं० १७६० विजयी में हुआ था ।  
 इसका जन्म इला में मुलापर के घर में हुआ था । इनके दूर गुरुदेव थे ।

मनक बपों तक वे ज्ञान मण्डल में निवास करते थे। ये शृंगार भक्ति से भी प्रभावित हुए थे। इन्हें स्यामचरनबासाचार्य भी कहा जाता था। इनकी मृत्यु सं० १८३८ में दिल्ली में हुई थी। इनके १२ शिष्यों का उल्लेख मिलता है, जिनमें सहजोबाई और बयाबाई इनकी प्रमुख शिष्यायें थीं। ऐसी किम्बदन्ती है कि मोहम्मद शाह भी इनके शिष्य थे। इनकी २१ रचनाओं में १२ प्रमाणिक मानी जाती हैं—'अष्टांग योग वर्णन' 'योग सन्नेह सागर' 'सुन्द तथा भक्ति सागर' इनकी विशेष रचनायें हैं।

कोन कमल पर गुद विराजे । के प्रकार मनहुं बुनि बाधे ।  
 कै बायी है अगह्द सुरा । जानैना कोई छाबू पुरा ।  
 तीन गुन्य कहीं जीना गुन्य । मित ही भूखे पड़ि खर कुन्य ।  
 के कहिये गया के द्वारे । भिन्न-भिन्न कहु मेरे प्यारे ।  
 बसका कोटा कीजर होय । कहीं अपि का कहिये सोय ।  
 इष्ट ज्वाल कहु कैसे जानै । मित बासन से निद्रा भायै ।  
 बहुतरि हवार जाठ ली चौसठि मारी । इनका भेद बहुत है भारी ।

योग सन्नेह सागर ।

भीखा साहब —भीखा साहब जति के बाह्यन थे और मुसास साहब के शिष्य थे। इनका जन्म बाबमगढ़ के मोहम्मदाबाद गोहना नामक स्थान में सम्वत् १७७० में हुआ था।

सतगुरु ताबक सन द्विडोळ्या मुनठहि मन अनुराग ।  
 मुझ्ठ मुनठ बचिर मन भावक बियरा चकित उठि जाय ।  
 सुकट बेसन पित जानल अगह्द बुनि मन राख ।

हरिया साहब (भारबाड़ के)—ये जति के मुनिया थे इनका जन्म सम्वत् १७७३ में । भैठारन-भारबाड़ में हुआ था । इनकी रचना कबीर के जति निष्ठ पढ़ती है—

बाबल कैसे बितरा जाई ।  
 यदि मैं पति संग रख जेमूंयी जाया बरम समझाई ॥  
 सतगुरु मेरे हुया किन्हीं उत्तम बर पलाई ।  
 अब मेरे साई को सरम पाछेगी सिगा बरन लयाई ।

गरीबदास — गरीबदास बापि के बाट और छुड़ानी (रोहठक) के निवासी  
 '। ये सत्य चरण दास के समकालीन थे।  
 मन मगन मया जब क्या पाव ॥

ये मुन इन्दीशमन करेगा नस्तु भगोली सो पारने ।  
 तिरकोकी की इच्छा छाड़, जग में बिचरी निर्गम ।  
 त्रिगुटी महल में सेज निछी है, हावस अन्दर छिप आवे ।  
 सचल भगोरन पूरन साहिब बहुति नहीं मौजनु आवे ।  
 गरीबदास सत्युक्त विदेही साचा सत गुन दरसावे ।

बूझन दास — इनका बाबिर्माण काल सम्वत् १७७० माना जाता है ।  
 इनका जन्म सनेसी (कपनऊ) में हुआ था ।

तू काहे जग में आया जो वै नाम से प्रीति न समायो रे ।  
 सुला काम सबाद बनेरे मन से ही नहिं बिसराया रे ।  
 मोय निवास बास निव बासर हत तव चित्त भरमाया रे ।  
 नई से आवो कहीं को जैई अन्त जोर नहिं पाया रे ।

पलटू साहब — इनका बाबिर्माण सम्वत् १८२० में हुआ था । ये मवार  
 बुजाव-दीला के समकालीन और धीसा के शिष्य थे । ये कौशाबाद के अन्तर्गत  
 जलाल पुर में उत्पन्न हुए थे । उन्होंने गुरुशिष्यों की रचना की है ।

समन्ति बुनि रन चरुना साबो धूब लड़ाई लड़ना है ।  
 दम दम कबम परे जागे को पीछे नाहिं पछरना है ।  
 सिख-दिल पाव क्यो को तन में खेत खेती क्या टरना है ।  
 सबद रीति समसेर जेर करि, उन पाँचों को भरना है ।  
 बाठ पहर अठवार मुरत पर गच्छि नाहीं परना है ।  
 धीन निहा साहिब के ऊपर निमरा डर अब डेरना है ।  
 पलटू बिना रुड के ऊपर, अब क्या दूमर करना है ।

मुन्टसी (गुरसी) साहब — मामादास के 'मलमास' के अनवरण पर  
 रापरनास बाहुन्धी ने वि० सं० १७७० (१७१३ ई०) में 'मलमास' का  
 प्रमनन किया है । इनमें मामादास के 'मलमास' में अष्टविंश भक्तों का वर्णन  
 किया गया है । इनमें निरंजनी पारा के बाद महम्मों का वर्णन है जिसमें मुन्गी  
 नादक का भी उल्लेख मिला है —

भव राजाहि भाव कजीर की हम येठे महंत निरंजनी ।  
 छपट्यो सुजगनाथ स्वामदास कागुड़ अनुरागी ।  
 ध्यान दास जब येम नाम जगजीवन त्यागी ।  
 तुरसी पायो तब जानसो भयो उदासा ।  
 पूरण मोहनदास जान हरिदास निरासा ।  
 राबो सप्रण सम मनि माया भजन भजनी ।

तथा

छपट्यो जगनाथ स्वामदास कागुड़ दास  
 भये भजनीक भक्ति मिथ्या मांनि पाई है ।  
 पूरण प्रसिध भयो हरिदास हरि रत  
 तुरसीदास पायो तब मीकी बन आई है ।  
 ध्यान दास नाम जब जानदास राम कह्यो ।  
 जमसो उदास हूँ के स्वासो स्वास आई है ।  
 जगजीवन येम दास मोहन हिरई प्रकास ।  
 नृकुल निराह धृति राबो मन आई है ।

राजस्वदास कृत—मरुमाछ ।

निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त निरंजनी—पृ० १४ ।

डा० नमीरच मिश्र ।

इनका जन्म १९ वीं शताब्दी में हुआ था । ये खेरपुर के निवासी थे । डॉ०  
 पीताम्बर दत्त बड़म्नाक इनको गोस्वामी तुलसीदास का समकालीन मानते हैं ।  
 अपनी मान्यता के पक्ष में उन्होंने जो प्रमाण दिया है वह विचारणीय है ।  
 काशी गानरी प्रचारिणी सभा की ओर में तुलसी की बाणी की एक हस्त  
 लिखित प्रति का उल्लेख हुआ है । इसमें 'इतिहास समुच्चय का भी उल्लेख मिलता  
 है । इसके अन्त में हम प्रकार के सूत्र मिलते हैं—उसकी प्रतिलिपि वि० संवत्  
 १७४५ (१९०५ ई०) में उद्योदास के दिव्य लाल दास के दिव्य तुरसी दास ने

की थी<sup>१</sup>। इनकी रचनाओं का आकार-प्रकार अति व्यापक है। उपलब्ध रचनाओं के आधार पर इनके साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है। ४२०२ साखी ४६१ पद (जिनमें २६ राम हैं)। चार ग्रन्थ—‘ग्रन्थ बी मयरी’ ‘कारमी सार योग संघ’ ‘छापगुल्लसन ग्रन्थ’ ‘ग्रन्थ तत्वगुण मेर’—स्लोक तथा पद्यी।<sup>२</sup> डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्याक ने इनकी रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है—

‘इसी सुसार की थी थी गुरमीरास की को कृत्त सम्पूर्ण ॥  
पद कृत्तकी संख्या ॥ साखी ४२०२। परिकरन २००। ग्रन्थ ४। पद ४६१।

राम २६। स्लोक १८। सबही १०। संवत् १८२१ की कावक सुवि ३ बार  
सनीयर सिप्यते।’<sup>३</sup> उदाहरण—

गपन में बाजै अनहद कीन।

मबुर मपुर माहीं माहीं मन मृग मयी तहाँ कीन ॥४८॥

पौबी बकि बकि रहे तहाँ ही फिर न पयानी कीन।

ताना नाद बालन्य छंद में परि मए निरै विहीन ॥१॥

इतबंत की बितबनि सब बूझी बित मारै भयो कीन ॥१॥

बिसरे या बिरकी बुझाकी जिन बोलीन भस कीन ॥१॥

बन गुरवी वा गुपकी बात है बहाँ तहाँ प्रत कही न।

ते पूरक सब पढ़िय आए, जिनही मलै यह बीन्ह ॥३॥

निरंजनी सम्प्रदाय बानी संघ—  
राग बना की पृ० ११२।

१ इतिथी महामारये इतिहास समुच्चयमे तैतीसवों अध्याय ३३। इतिथी महारये सम्पूर्ण समाप्त। मबन् १७४२ नृपे मास कार्तिक सुनी ७ बार खनी बाखरे। अगर मांसार गुणाने सुममास्तु, लिपेत स्वामी की थी थी थी थी १८ रूपीराम की को सिप्य स्वामीजी थी थी थी १०८ थी थी ताक दानरी को सिप्य गुप्तीदान बाके जितको राम राम।

२ देनिए निरंजनी सम्प्रदाय और मंत गुरमीरास निरंजनी—पृ० १६। ‘मिथ बन्पु रिनोर’ के अनुसार इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं—मयना भक्ति ब्रह्मग योग वैराग्य ग्रन्थ बीकनरी ग्रन्थ जन्मीसार योग ग्रन्थ छापु गुल्लसन ग्रन्थ तत्व गुन मेर ग्रन्थ। ३ बही पृष्ठ १६।



सिलसर्मा में सन्त परम्परा —

मध्य युगीन सन्त साहित्य में गुरु नामक शब्द का योगदान सन्त कबीर के समकक्ष का है। उनकी भक्तिबारा में व्यक्ति और समष्टि इन दोनों के बीच निबन्धन के साधन मिलते हैं। कबीर के समान ही गुरुनामक ने व्यक्ति के लिए विवेक, ब्रह्म भक्ति और ज्ञान की अनिवार्यता का सम्पादन किया। समष्टि के लिए सवाचार संयम और सामिक चल्नस्य की भावना का संस्थापन किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में गुरुनामक को कबीर की भावनाओं का प्रचारक माना गया है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। नामक का व्यक्तित्व कबीर के समान ही था। संत भाव-बारा को गति प्रदान करने वाले व्यक्तियों के समान इनका व्यक्तित्व भी भक्ति का साधार-स्वप्न है। उनकी बातियाँ 'गुरुग्रन्थसाहिब' में संग्रहीत हैं<sup>१</sup>। 'गुरुग्रन्थ साहिब' में संग्रहित नामक की बातियों का क्रम इस प्रकार है—'सख' 'बष्टपदीयाँ' 'छंद' और 'बारा'। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न रामरागिणियों के आधार पर भी इनकी बातियाँ वर्गीकृत हैं।

कबीर के ही समान ये स्वयं संवेद्य ज्ञान पर विश्वास करते थे। अपने दर्शन में नामक ने कर्म ज्ञान योग और भक्ति को समन्वित किया है। नामक ने परम तत्त्वको 'छन्द' या 'बाणी' कहा है। जैसे ही जैसे कबीर ने परम तत्त्व को 'राम' कहा है। यथा—<sup>२</sup> 'औं छतिनामु करता गुरुस निमज्ज निरखै अकास मूर्ति अजूनी सैध - गुरु प्रसाधि=बहु एक है छन्द अथवा बाणी है और इसी के द्वारा छुष्टि रक्ता है बहु सत्त है नाम है। उसके अस्तित्व का वाचक केवल नाम

- १ (क) नामक की बातियों का संग्रह डॉ. जयराम मिश्र ने 'नामक बाणी' नाम से किया है। (प्रकाशक—मिश्र प्रकाशण संघ, २१५)। (ख) 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' के लिखत गुरुओं के सभी पदों के अन्त में 'महला' शब्द आया है। इस शब्द के विचारण हेतु महला के आये क्रमांक भी है—महला १ (आदि गुरु नामक) महला २ (गुरु अंगद) महला ३ (गुरुअमर दास) महला ४ (गुरु रामदास) महला ५ (गुरु अर्जुन) महला ६ (गुरु तेगब महानुर)। नामक बाणी—  
डॉ. जयराम मिश्र—भूमिका।

है। उनके प्रत्यक्ष मुख में हैं—वह कर्तार है। पुण्ड्रियों का निर्माण कर उनके बीच निवास करने वाला है। महान् पौरुष और महान् शक्ति-युक्त है। वह समस्त शक्तियों का स्वामी है। वह भय से रहित है। वैर से रहित है। मूर्खान्त है। काम से रहित है। योगि के अन्तर्गत नहीं जाता है। और त्रिपुटी से परे है। वह स्वयम्भू है वह प्राप्त होने वाला है। उसकी प्राप्ति मुझ कृपा से ही होती है<sup>१</sup>। उवाहरण—

अनहरो अनहनु बाबो कम मुख कारे राम ।

मेरा मनो मेरा अनु पाठा काम बिबारे राम ।

अनकिनु राता मनु बीरायी मुन मंडलि बर पाइया ।

आदि गुरुनु अपरम्पक बिबाग सतगुरि अकनु कसाइया ।

आसनि बैसनि बिह नपाइनु छिनु मन राता बीबारे ।

बालक रते बीराबी अनहद कम भुम कारे ।

बालक बाबी रावु बाता माइया १ ।

छंद पद्य १ ।

राम धनि कमलून-कमलून कम में अनहद रात में प्रतिष्ठापित है। अनहद धनि में प्रतिष्ठापित राम में मेरा मन अनुरक्त हो गया है। राम में अनुरक्त मेरा मन बीराबी हो गया है। मन को शून्य बगल में निवास मिल गया है। मुझ कृपा से यह निवास उपलब्ध है। शून्य तत्त्व अपने आसन पर स्थिर विराजमान है—नामक नाम में लिपिबद्ध अनहद की कमलून में अनुरक्त है।

गुरु अंगद —इनके पिता का नाम कंक और माता का नाम दमा कुंवरि बा। इनका जन्म संवत् १२११ (वृ १२०४) में किराज बिले के 'मत्ता की सराय' नामक स्थान में हुआ था। गुरु अंगद की रचनामें 'गुरु बंदा साहिब' में पृष्ठा १ में उल्लिखित है—

बो सिह साईं ना निबे सो तिर बीजे बारि ।

नामक जिनु पिबल बहि बिछा नाही सो दिखर के बारि ।

अमरदास —गुरु अमरदास का जन्म बीघरा मुक्त १४ संवत् १२११ (वृ १४०१) को हुआ था। इन्होंने गुरु बंदा से बीघरा ली थी।

१—बीराबी माता विविधान जैसे गुणगति विधान-बोहन सिद्ध। गुरु

गुरु रामदासः—गुरु रामदास का जन्म सन् १५३४ में हुआ था। उनकी छावना का केन्द्र सप्तोप सर था। उनकी मृत्यु सन् १५८१ ई० में हुई। गुरु ग्रन्थ साहिब में उनकी रचनायें महत्ता ४ में संयोजित हैं।

मेरो सुन्दर कहहु मिछे किनु मनी

हरि के संत बसावहु भासा हम पीछ कागि बली।

पिके बचन सुकाने ही बरै, इह पाक बनी है मनी।

कटुरी यकुरी ठाकुर भाई बोल सुनरि हरि दुखि मिछी।

एकौ प्रिय सखीआ सभ प्रिय कीबो भावे पिर-साम्झी।

नानक मरीज किआ करे निबारा हर भावै तितु राखि बली।

आदिग्रन्थ पृ० ३२७।

गुरु अमृतदेव —गुरु अमृतदेव गुरुराम राम के पुत्र थे। इनका जन्म सन् १५६३ ई० में गोइन्दाबास में हुआ था। गुरु अमृतदेव ने अपने से पूर्व आदिर्मुक्त समस्त गुरुओं और संतों की रचनाओं का संग्रह किया है (१६०४)। संग्रह के अन्त में छावनाका भी बी हुई है। सन् १६०६ में इनकी मृत्यु हुई। इनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'सुखमनी' है। इसमें दस-दस पंक्तियों की अष्टपदियाँ हैं। इसके अतिरिक्त 'आवम आकरी' तथा 'बाराभावा' आदि ११ मत्छा १ में संयोजित हैं।

कबल गुन प्रागपति मिलत मेरी भाई ॥१॥ २६॥३॥

बप हीन बुधि बल हीनी मोहि परदेसनि दूर ते भाई ॥१॥

नाहिन बरगु न जोवन माटी ॥

मोहि अनाथ की कहहु समई ॥२॥

खोबत खोबत मई बेरामनि।

प्रभ बरसन बज हज फिरेत तिसाही ॥३॥

बीन श्याम श्याम प्रभ मानक

साज संगि मेरि जलनि बुकाई ॥४॥

आदि ग्रन्थ पृ० ३२७।

गुरु हररायः—ये औरंगजेब के समकालीन थे। इनकी मृत्यु सन् १६९१ में हुई थी।

**गुरु हरकृष्णराय** —गुरु हरकृष्ण राय गुरु हरराय के पुत्र थे । इनका जन्म  
सन् १६२६ में हुआ था । इनकी मृत्यु सात वर्ष की अवस्था में हुई ।

**गुरु तेग बहादुर** :—गुरुतेग बहादुर सिक्ख धर्म के गुरु गुरु थे । इनका  
जन्म सन् १६२१ में अमृतसर में हुआ था । जाकार में इनकी रचनायें सीमित  
हैं । बापि ग्रन्थ में इनके केवल ११ शब्द (वर्ष) और १७ दोहे संछिप्त हैं ।  
इनकी बापियों का विषय है —

१ संसार की गहराता ।

२ मानवीय सम्बन्धों का निष्पत्त्य ।

३ संसार के प्रति उदासीनता और ईश्वर विस्तार ।

मन की मन ही नाहि रही ॥

ना हरि मने न लीख सेवे बोटी कालि गही ॥१॥५॥७॥

दारा भीठ पूत दय सम्पति मन दूरन सब मही ॥

अवर सबक निजिआ ए जानत भगनु रामु को सही ॥१॥१॥

किरत फिछ बहुरे पुय हारिओ मानस दैद सही ॥

नामक बहुरे मिछन की करोआ विमरत पढ़ा नहीं ॥२॥३॥

**गुरु गोविन्द सिंह** —गुरु गोविन्दसिंह सिक्ख धर्म के गुरु गुरु थे । इनका  
जन्म पटना में सन् १६६६ ई० में हुआ था । सिखा की मृत्यु के पश्चात् सात वर्ष  
की अवस्था में ही वे पन्थ के गुरु निर्वाचित हुए । सिक्ख सम्प्रदाय में धर्म के  
साथ राजनीति और समाजनीति इन दोनों बातों को सम्मिश्रित कर उन्होंने  
माने पन्थ को एक गलीन बना दिया । इनकी सम्पूर्ण रचना दसम् ग्रन्थ, या  
'दनबो पायसाह का ग्रन्थ' में संकलिता हैं । इस संग्रह में भक्ति-काव्य के सम्बन्धित  
निष्पत्तिनिष्ठ वर्ण की रचनायें आती हैं—सन् १७१४ में जारी मनीमिह ने इसका

सम्पादन किया । १—जापू, २—अकास बसति ३—सुख सर्वदे (बाबर  
सोत जने निजि बहुरे) ४—सुख विष्णु पद (दे मन सेयो कनि सम्पासा) ।  
इनकी एक प्रसिद्ध कृति है बीबीज बीनार बरन । इन ग्रन्थ में इनकी भक्ति  
भाषा के सामान्य स्वभाव का अंश मिलता है । इनकी मृत्यु सन् १७०८ में  
हुई । परम शिव का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

धूम्रम कर्म न बरमा जाई

विरह सक्माहि कहौ बजाई । वसम ग्रन्थ, पृ० ४७ ।

मेर करो सुण पै मुहि बाहि परीम निबाव न बूसर ठोसो ।

मूस धिमो हमरी प्रभु बाप न भूकन हार कहुँ कोऊ मोसो ।

ऐव करी तुमरी तिनके सम ही एह देखियत ब्रह्म भरोसो ।

वा कस मै सम कास कृपाम के भारी भुवान को भारी भरोसो ।

—वसम ग्रन्थ पृ० ४५ ।

### पञ्चमिर्नाम

कबीर दास की मृत्यु के पश्चात् उनके भाग्य से कबीरवंश की संस्थापना हुई । इस पन्थ के माध्यम से उनकी बाणियों का संग्रह हुआ और उनके सिद्धांतों का प्रचार हुआ । कबीर के परम शिष्य बर्मदास ने बर्मदासी सम्प्रदाय की संस्थापना मध्य प्रदेश में की । सुरत गोपाक ने काशी में काशी साखा की संस्थापना की । कबीरचौरा साखा इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत है । इस पंथ में समाधिनिर्माण की प्रथा १४ वें महन्त राजदास के समय से आरम्भ हुई । इनके शिष्य राम रहसदास ने बीजक के आचार पर 'पंच सन्धी' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । छठीसकड़ी साखा के प्रवर्तक बर्मदास हैं । कबीर चौरा के अन्तर्गत बिहार की भगौली साखा भी है । इस गठ के प्रवर्तक जगदान गुसाईं थे । इस साखा के सन्त 'बीजक-वाठ' में विशेष आस्था रखते हैं । इस परम्परा में १३ पुरुष हो चुके हैं । कबीर पंथ की अन्य साखाओं में साहेबदासी पन्थ ठकेशरी पंथ (बड़ीरा) प्रमुख हैं । अन्य कबीर बाग कबीर, हुँस कबीर, मंथ कबीर, उदासी कबीर आदि नामों से भी अनेक पंथ प्रचलित हैं ।

राष्ट्र के बीजकाल में राष्ट्रसम्प्रदाय अपने चरम उत्कर्ष पर था । नरीम दास के समय में यह पन्थ शिखर होने लगा था । इस परम्परा में रज्जब, प्रागदास मुन्दरदास आदि सन्तों का प्राबुधान हुआ । इस पन्थ का प्रधान केन्द्र नरैना में था । इस सम्प्रदाय की पाँच उपसाखाएँ हैं—१-साकसा, २-उत्तराड़ी ३-नागा ४-विरह ५-ताली ।

नाग पंथ के संस्थापक सन्त लाल दास थे । इनकी बाणियों का

संस्कृत 'साकदास की बेनावनी' में मिलता है। बाबरी पंथ का प्रसार दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी अंगणों में है। इस सम्प्रदाय का कम-पूर्व इतिहास नहीं मिलता है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस परम्परा का प्रादुर्भाव गजीपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इस सम्प्रदाय को संयोजित करने में बाबरी साहिब का विशेष योगदान है। पन्थ के पहले प्रवर्तक यारी साहब ने इसका प्रसार किया। दीक साहब इस सम्प्रदाय के एक अन्य महत्वपूर्ण साधक हुए। बुका साहब और गुलाब साहब इसी परम्परा के अव्ययत जाते हैं।

बाबरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्रामाणिक थे। इनका जन्म आमनार में संवत् १६७१ में हुआ था। गूबराल में इनकी कर्मचारी नामक कृति मिलती है। इसके अतिरिक्त कर्मचारी इसका एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस सम्प्रदाय पर वैष्णव भक्ति, विशेषकर कृष्णभक्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सतनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक बाबू पन्थी बनजीवन साहब माने जाते हैं। सात सम्प्रदाय के संस्थापक बीरमान से इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। ऐसी धारणा भी मिलती है कि इस सम्प्रदाय की संस्थापना औरंगजेब के धार्मिक व्यवहारों के विरोधमान में हुआ था। सतनामियों ने सं० १७१९ में औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह किया था। वह वस्तुतः औरंगजेब के प्रति एक फिजान विद्रोह था। इस सम्प्रदाय में निराकार ईश्वर की उपासना होती थी। वे सूर्य की पूजा करते थे। यह सम्प्रदाय तीन शाखाओं में विभक्त है—भारतीय शाखा, कोटवा शाखा और छत्तीस गढ़ी शाखा।

पनीसरी शाखा के प्रवर्तक बरणीदास थे। इनके पन्था नामाराम रतनदास, बाबमुकुन्द दास रामदास, सीताराम दास हरनन्दन दास एवं संत

१—उत्तर भारत की संत परम्परा—पृ० १०७।

२—इस सम्प्रदाय में मध्य मातृ काल विषय सम्बन्धित टिप्पणियाँ बरिष्ठ हैं।

माप को इन में नहीं जोड़ा जा सकता। दीपपुर के बाद इन पन्थाना बरिष्ठ है। वर्ष बाबसा का वास्तव निरिष्ठ है—नैन साहिब्य मुरारिण सिंह मरीनिया पृ० १८।

रामदास इस धाका के साधक हुए । इस सम्प्रदाय का मुख्य क्षेत्र मगधी (बिहार) है । इस पंथ की एक प्रमुख धाका बीसा (बलिया) में है । इस धाका के संस्थापक श्री राम दादा थे ।

शिवनारायणी सम्प्रदाय के संस्थापक शिवनारायण दास थे । इनकी बीबनी से सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध नहीं है । इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं 'संत सागर' और 'संत विद्यास' । परम तत्व के सिद्ध इस पंथ में 'संत देश' या 'संत विद्यास' की संज्ञा का प्रयोग होता है । संत प्रवेश एक आदर्शलोक है जहाँ परम तत्व का निवास है । इस परम तत्व का वैकल्प प्राप्त करना ही साधक का परम धर्म है । इस पंथ में परम तत्व निराकार और गुण रहित माना गया है । इस सम्प्रदाय के चार मठ हैं जिनमें चार नाम के रूप में स्वीकृति मिली है । उसना बहादुर पुर, मौसरी और चन्दवार । इस सम्प्रदाय के अन्य साधकों में रामदास सदाशिव, लखन दास और मेहराव थे । ये शिवनारायण के शिष्य थे । इस सम्प्रदाय में सब को गाढ़ा जाता है जमना जलमा जाता है या बस प्रवाह किया जाता है । इस पंथ से सम्बन्धित प्यारह ग्रन्थों का संस्केह मिलता है—'संत विद्यास' ग्रन्थ 'नवन ग्रन्थ' 'संत गुहार' 'मुह अम्बास', 'संतचारी' 'संत उपदेश' 'सम्बावसी' 'संत परबान' 'संत भहिमा' और 'संत सागर' । 'सदास बबाव टीका' 'कास ग्रन्थ' जैसे ग्रन्थों का संस्केह भी कतिपय सम्प्रदायों में मिलता है ।

चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरण दास थे । इनका पूर्ण नाम रणजीत दा । इनका जन्म मेवात में सं १७६० में हुआ था । इनके शिष्यों की संख्या १२ थी । अतः इनके अनुसार यह सम्प्रदाय १२ धाकाओं में विभक्त है । सहजीवाई और दयावाई इसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थीं । चरणदास के नाम से २१ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं । जिनमें 'आवरण महात्म्य' 'दान बीसा' 'मटकी बीसा' 'माखन बोरी बीसा' आदि ग्रन्थों का सम्बन्ध आगवहू से है ।

संत रामचरण ने राम सनेह सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया । इनका जन्म सोहो बोंब में सं १७९६ में हुआ था । ये रामानन्द के सिद्धान्तों से प्रभावित थे । इनकी रचनाओं का संग्रह, 'स्वामी जी वन रामनारायण जी महाराज की जन्मे'

बायी घीर्वज से प्रकाशित हुआ । इस सम्प्रदाय का प्रचार मुजरात धर्मदासों  
मूल, बम्बई मलबार और राजपूताने में पाया जाता है ।

निरंजन सम्प्रदाय—निरंजन पंथ सम्भवतः कबीर पन्थ से भी प्राचीन है ।  
इसका प्रसिद्ध गुरुदेव गोर नाम पन्थ के समानान्तर हुआ लगता है । कबीर  
के पूर्व इस सम्प्रदाय का प्रचार बंगाल और उड़ीसा में व्यापक रूप में था । इस  
प्रकार के विश्वास की प्रस्तावना की गई है कि सिद्धों में भी निरंजन-उपासना के  
प्रमाण मिलते हैं—

की बड़ मय्य समुल्लाह, हौ परमये पचीन  
कोटिहि माहै एक कम होइ निरंजन कीन ।

निरंजन पन्थ में उपलब्ध द्वितीय शताब्दी की ओर सर्व प्रथम ध्यान डीकर  
पीताम्बर इस गुरुदेव का कार्यरत किया जा । निरंजन पंथ में ज्ञान और बलि  
के समन्वय की कल्पना मिलती है । इस सम्प्रदाय के साधना में प्रेम और योग का  
समन्वय मिलता है । इस सम्प्रदाय के प्रमुख भक्तों में हरिदास, तुलसीदास,  
देवदी, कान्हूदास, गोबिन्ददास, जगन्नाथदास, स्वामीदास, जगन्नाथ नाम,  
पूज्य नामदास, और जवजीवनदास, इन बारह निरंजनियों का विशेष  
विवरण मिलता है । हरिदास अपने पंथ में हरिपुत्र कहलाते थे । इनके पूर्वों का  
प्रसन्न समय १२२०-१२४० ई० के मध्य है । इनके ग्रन्थों के नाम इस  
प्रकार हैं : 'जपपदी ओप ग्रन्थ', 'ब्रह्म स्तुति ग्रन्थ', 'हरिदास ग्रन्थ', 'हंस प्रबोध  
नाम ग्रन्थ', 'निरंजन मूल ग्रन्थ', 'राम मुकुट', 'भुजा ओप ग्रन्थ', 'तवाचि ओप ग्रन्थ',  
'हंसान ओप ग्रन्थ' । इस पंथ के अन्य साधकों में राम प्रसाद निरंजनी, स्वस्वदास  
निरंजनी, और गोबिन्ददास निरंजनी विशेष महत्त्व के हैं । परन्तु निरंजनी पन्थ में  
व्यापक रचना करने वाले ग्रन्थों में स्वामी हरिदास सेवादस और तुलसीदास  
ही विशेष महत्त्व के हैं ।

निर पर्व से सम्बन्धित सम्प्रदायों में जगन्नाथ सम्प्रदाय निरंजन नामवारी  
सम्प्रदाय, गुपता छाही सम्प्रदाय सेरानर्वा सम्प्रदाय और अकाली सम्प्रदाय, ये  
एक सम्प्रदाय प्रमुख हैं । प्रथम के प्रकर्षण नामक के पुत्र भी जन्म प । एर्रोने बर्ग  
की राखनीति से जन्म पता । द्वितीय पन्थ की स्थापना गुरु गोविन्द सिंह के समय



बीर सिंह द्वारा हुई थी। इन्होंने भी धर्म को राजनीति से स्वतन्त्र रखा। तृतीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक कुमियाणा के भाई राम सिंह थे। इस सम्प्रदाय में अपने को राजनीति से भी समन्वित किया था। सुभरा साही सम्प्रदाय की संस्थापना सुभरा साह ने की थी। सेवा पंथी सम्प्रदाय की संस्थापना कन्हैया नामक किसी व्यक्ति ने की थी। ब्रह्मन्ती सम्प्रदाय की संस्थापना संवत् १७४७ में मानसिंह ने की थी। ईश्वर को ये ब्रह्मन्त पुण्य कहते हैं। रघुबीर सिंह के समय उनका प्रधान केन्द्र बाननपुर था। इन्होंने निरन्तर राजनीति में सक्रिय भाग लिया है।

### सन्त साहित्य का दर्शन और भाव पक्ष

सन्तों की साधना का परम उद्देश्य था इत भावना से ऊपर उठना। सद् ब्रह्म के इत से निर्गुन और सगुन के इत भाव से तथा भाव और अभाव के इत भाव से ऊपर उठना उनका परम धर्म था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि इस स्थिति की उपलब्धि ज्ञान या प्रज्ञा से ही सम्भव हो सकती है। बौद्धों ने जिसे प्रज्ञा कहा है, सन्तों ने उसे ज्ञान के रूप में ग्रहण किया है।

कबीर की विवेचना के सम्बन्ध में कहा गया है कि सन्तों की साधना का परम उद्देश्य शून्य था, जिसे 'राम' के पर्याय रूप में उन्होंने ग्रहण किया है। वह निरावलम्ब है। परन्तु वह दृढ़ और स्थिर है। साधक का धर्म इस शून्य में ही स्थिर होगा है। शून्य-साधना कठिन है वह सामान्य जीवन की साधना नहीं हो सकती है। अतः इस ध्येय की उपलब्धि के लिए भक्ति को माध्यम रूप में उन्होंने ग्रहण किया है। इस प्रयास में वे अपनी साधना को सर्वसाधारण के लिए बोध योग्य बनाते हैं। नाम स्मरण का प्रस्तावना वे इसी भावना से करते हैं। इसी उद्देश्य की सम्पुष्ट रचना कबीर ने कहा है—

शून्य मरे, ब्रजपा मरे, जनहुत हू भरि जाय।

नाम खोजेही नर मरे यह कबीर समुझाय।

नाम से स्नेह करलेवाला संसार के धरा-भरण से मुक्त पड़ा है। भक्त नाम में स्थिर हो पाते हैं। उसके साथ साधारण्य स्थापित कर लेता है। इस तत्त्व की ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

कदा ऊ भे है शून्य ऊ जेई जेई पवनी पानी।

कहु कबीर हम भग्य न जेई, जिनकी मति दूहरानी।

सन्तों ने जिस ज्ञान का आचार ग्रहण किया है जिसकी अनुमति पर उनका सम्पूर्ण दर्शन अवलम्बित है वह स्वामुमुति मूलक है। इस ज्ञान के सम्मुख वे धार्मिक ज्ञान की निम्न कोटि का कहते हैं। इस ओर ही संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

साक्षात् ज्ञाती ज्ञान की समुद्रि देखि मन भाड़ि।

बिनु साक्षी संसार का आगरा छुटत नाहि।

बीजक ३५३। ३५५।

इस ज्ञान के आवेग को ही कबीर 'ज्ञान की आँधी' की संज्ञा देते हैं जिससे माया के बन्ध से परित्रात अज्ञान की टाटी ( टट्टी ) खम्बित होती है।<sup>१</sup> अतः अपने कर्म के संश्लेषण में वे स्वयंस्वयं ज्ञान की साक्षी होते हैं। सन्त जीवन की सही पद्धति में विश्वास करते थे। उनसे सम्मुख जीवन का अनासक्ति मूलक जीवन द्यत था। अनासक्ति भाव से जीवन-व्यापन करने की भावना बौद्ध धर्म में मुख्यतः महाभारत में उपलब्ध होती है। इसे अनामोग बर्षा अथवा अत्यंत योग भी कहते हैं। इस प्रकार जीवन के प्रति सन्तों की इस निविष्ट दृष्टि की एक निमिष परम्परा मिलती है। सन्तों ने हीन भावना से ऊपर उठकर जिस सत्य को देखने का प्रयास किया है वह जीवन निरपेक्ष नहीं है। वह हमने ही अवलम्बित है वह हमसे निम्न नहीं है—

कम्पूरी कुण्डलिकसे मूय हूँ बल भाड़ि।

ऐसे बट-बट राम हैं बुनियाँ देखे नाहि।

कम्पूरीयों मूय को मय।

१. संतो भाई भाई ध्यान की आँधी रे

धन की टाटी सब उड़ाणी माया रही न बारी। रेफ।

द्विज बिज की है मूनी मिरांनी मोह बर्षाया मूय।

निम्नो धामि पती पर ऊपरि, कुबलि का मोह कूटा य

योग बुजनि करि संतो बापी निरखू बुनै न पाणी।

बूढ़ बपन बाया का निरस्या, हरि की पति बल बापी।

बापी पीछे ओ बल बुहा प्रेम हरी जन बीया।

बड़े कबीर ज्ञान के प्रवर्णे उचित भया ठग बीना। १५।८३

ईश-वस्तु के परिवन्ध से उच्च भूमि पर उसको अनुमति सम्भव हो सकती है ।

हरे छाड़ि बेहसि गया, हुवा निरन्तर बास ।

कबल ब पूसा पूल बिन को निरवै निब बास ।

परमा की मंघ ५ ।

उस सीमा के परे जिस असीम लोक की वस्तुता सन्त करते हैं वहाँ बिना लज के कमल प्रस्फुटित होते हैं । वहाँ सागर नहीं है, दीप नहीं है और न स्वाति बूँब है । वह सुख छियर-गड़ ऐसा है वहाँ मोती उत्पन्न होता है । अतः 'हृद का परिस्पाद कर बेहब' में प्रवेश करने के उपरान्त ही 'सुख-स्नान' सम्भव है । यह स्थिति 'इममन' को 'सनमन' में समर्पित कर देने के पश्चात् हो जाती है । इसे परिचय की स्थिति कहते हैं इस स्थिति में चन्दा बिना ही चन्द्रिका प्रसरित रहती है । इस चन्द्रिका में ही अलङ्कार निरंजन के दर्शन होते हैं ।

मन कामा उम मन्त्र सों गहन पहुँचा बाई ।

देवमा बंद किहुँवा बाँबिना उहाँ अलङ्कार निरंजन राय ।

इस प्रकार सन्तों ने जिस सत्य के प्रति वाञ्छा भाव व्यक्त किया है वह निषेधात्मक नहीं है परन्तु वह सृष्टि के समस्त विषयों से परे है ।

अपने कर्म के लिए सन्त अपने पूर्ववर्ती साधकों की भी साखी लेते हैं । यथा

कामनि अंग बिरक्त भया रत भया हरिनाह ।

साखी घोरस माय क्यूँ अमर भए कलि माहि ।

साखी देने की वह परम्परा भाव साधकों में भी मिलती है । अपने कर्म को अधिकारपूर्ण और यथार्थ रूप देने की भावना से छिड़ों में भी साखी (साखी) लेने की परम्परा मिलती है <sup>१</sup> ।

सन्तों ने जिस परमतरंग की वस्तुता की है वह अवाच्य है वह एक नास्तीम है । उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, और न उसका विनाश होता है । परमतरंग के इस स्वरूप की कल्पना बौद्धों ने भी की है । इनके अनुसार परम सत्ता की स्थिति आरम्भ से ही रहती है । 'लंकावतार सूत्र' में इसे 'पूर्व जर्म स्थितता' कहा गया है । इसे पौराणिक स्थिति भी कहा गया है । वह परिचर्जन या विकार से प्रभावित नहीं होता ।

भरती पवन पवन नहीं होता, नहीं लोटा नहीं तारा ।

तब हरि हरि के जन होते कहे कबीर विचारा ।

कबीर को विवेचना के सुख में इसका उत्सव किया गया है कि सत्ता ने 'नाम स्मरण' में अपना विश्वास व्यक्त किया है । नाम-अहिमा और नाम-स्मरण के साध्य से वे माली भक्ति या साधना को संश्लेषित करते हैं । इसी ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

भगति भजन हरि नाँव है पूजा पुण्य अपार ।

मनसा बाबा कमर्षी, कबीर मुमिरस सार पृ० ४०, मुमिरस ।

नाम स्मरण करते-करते मन नाममय हो जाता है । परन्तु वह नाम-स्मरण साधना पर ही अवलम्बित है । इसके लिये विचतृत्तियों का निरोध अनिवार्य है । रामनाम-स्मरण सूक्ष्म कोरी पर चलने के समान है । गद ठारों पर, सूक्ष्म कोर पर चढ़ कर कलुष निवृत्त होता है । यदि अपनी कत्ता से च्युत होकर वह मिरता है तो यह उसके लिये अविधाप बन जाता है—

कबीर कठिमाई करी मुमिरता हरिनाम ।

सूली ऊपर गद बिधा, विक ठ नाही ठाय ।

नाम बन से साधक नाममय हो जाता है, वह निरोध में समाहित हो जाता है ।

तू तू करता तू धया, मुझ में रही न हूँ ।

बारी केरी बलि गई मिठ देली जित तू ।

नाम-स्मरण गवचा भक्ति की भी एक विशेष विधा है । इस नाम बन का उल्लेख करने हुए तुम्हरी ने कहा है—

नाम बपत भव सिन्धु मुनाही

करत विचार मुन्य मन माही ।

इसका सन्दर्भ ग्रहण करके कविय विचारको ने कबीर को इसी परम्परा में रंगने का प्रयास किया है । परन्तु मन्त्र नाम-स्मरण-परम्परा की दृष्टि से वेत्तर भक्ति के विरुद्ध निरुद्ध है यह एक विचारणीय समस्या है । बीज धर्म में मन्त्रोक्ति विचार साधनाओं से विचारकर मुनाबदी परम्परा में बुद्ध का पूर्ण विचार निम्न है । यहाँ 'नमः' भक्ति

मुद्रान' का स्मरण किया जाता है। इस प्रयास ने परवर्ती काक में एक प्रबल रूप धारण कर लिया। अतः यहाँ प्रबल यह उठता है कि सन्तों में नाम-स्मरण की भावना के आगमन का माध्यम क्या है, बेजब ब्रिजमयारा या बौद्ध धारा ? वास्तविकता यह खगती है कि जो मिल मिल परम्पराओं से प्राप्त नाम-स्मरण की प्रणाली का प्रयोग कबीर ने समन्वित रूप में किया है।

सन्तों ने मन की साधना पर विशेष विश्वास किया है। उन्होंने 'इनमन' और 'उनमन' की बड़ी प्रत्येक सम्वर्धन में की है। एक मन व्यक्तिगत और वापेक है। दूसरा निरपेक है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने ऐसे मन की उपलब्धि के प्रति आग्रह व्यक्त किया है जिसमें व्यक्तिगत मन समाहित हो उठता है। इस मन का स्व रूप बोल सकल समन्वय ब्रह्म नामदेव आदि भक्तों को भी नहीं हो पाया था। यह निरपेक मन भी हमसे अभिन्न है। उसका अस्तित्व हम से मिल नहीं है। मोरख भरखरी और गोपीचन्दा इसके साथ साक्षात्स्व स्थापित कर चुके हैं। यह मन 'निरंजन' है जिसकी उपलब्धि कबीर तथा अन्य सन्तों को हो चुकी है—

ता मन कौ बोजहु रे मारी, तन छूटे मन कहाँ समारी।

समस्त समन्वय जै देव नामाँ, भवति करि मन उनहुँ न जाना।

×

×

×

गोरख भरखरी गोपीचन्दा, ता मन सौं मिलि करै कर्मदा।

ब्रह्म निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि रह्या कबीर ३३।५५।

भक्ति की प्रचलित विचारों से उस मन का परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता है। सात्व्यों और अन्य आचार धर्मों में इस मन के स्वरूप का वर्णन नहीं मिलता है। इसका परिचय ज्ञान और अनुभूति से होता है—

अप तप जंगम पूजा अरचा जीतिग जन बीराना।

कागर तिकि-तिति अकत भुलाना मन ही मन न समाना।

कहे कबीर जोगी अथ जंगम ए सब झूठी भासा।

मुरु प्रसाद रटी चाबिग क्यू निहने भवति निबासा ३४।५५।

'उनमन' के साथ 'इनमन' का साक्षात्स्व 'गहन' में होता है। यह मन परम सत्य का स्वरूप है, यह निरंजन है। यह सकल सरीरों में परिभ्रमण है—

ब्रह्म निरंजन सकल सरीर, तामन सौं मिलि रह्या कबीर।

मन की साधना पर सत्तों ने विशेष बल दिया है। व्यक्तिगत मन अति बर्नि परिचित होता है। पल-पल में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। मन की साधना को परावृत्ति साधना के रूप में सत्तों ने ग्रहण किया है। 'मन रे मनहि समाना, अथवा 'मन उलटा बहिया मिल्या' के माध्यम से इस परावृत्ति साधना या उलटो साधना की खोज की गई है। बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत छानिक निजान बाही' दर्शन एक विशिष्ट दर्शन-दृष्टि है। इसके अनुसार चित्त का उदय लम-लम होता है और उसका लय भी लय-लय होता है। चित्त की जो बदलाव एक पल में रहती है वही दूसरे लय में नहीं रह जाती। उसका अस्तित्व काटे हुए कबीर ने कहा है—

कबीरा यहु मन कत गया, जो मन होता कसिह ।

इसपर बूठा मेह उमू गया निवासा बालि । मन की संग २२ ।

संत साहित्य में 'मुरति' और 'निरति' की खोज विशेष आकर्षकपूर्ण है। मुरति को निरति में समोह्य होने की खोज मिलती है। निरति को निरात्मक कहा गया है। मुरति निरति में समाविष्ट हो जाती है। केवल अन्त में समा जाता है—

मुरति समाधी निरति में निरति रही निरपार ।

मुरति निरति परवा गया, तब गुन स्वयं दुवार २२।१२ ।

मुरति समाधी निरति में, अथवा माई बाप ।

केवल समाधी अन्त में मू बापा माई बाप । २२ । १२

अपम मुरति बेतुह बिगडाई । मुरति कबल रह मुरति लमाई १७।१२  
बहिया अन्धबली ।

पौष तनु चहों देखु बितेया । पल-पल करहि अनुपम येवा ४४।१

तामें निरति मुरति की बानी तायें निरतु माया की पानी । ४५

बौद्ध धर्म में 'स्मृति' उद्यम की खोज मिलती है। यहाँ दय धम्म का प्रयोग बाधन अवस्था या आवरणता के अर्थ में हुआ है। परवर्ती काल में 'मुरति' का प्रयोग 'स्मृति' के ही प्रयोग में किया जाने लगा। मन्त्रों के पूर्व योग्यताप से इन उद्यम का प्रयोग इन्हीं अर्थ में किया है। 'मुरति यही मया मिलि सारी पूरी हानि न होई।' मन्त्रों और मन्त्रों के लिए मुरति स्मृति केनवा आगमना और गमन शक्ति है। योग्यताप के माध्यम में मन्त्रदीन एवमात्रों में 'मुरति' के प्रति आकर्षित रहने का आग्रह मिलता है—

बुद्धाय' का स्मरण किया जाता है। इस प्रथा ने परवर्ती काल में एक प्रबल रूप धारण कर लिया। अतः यहाँ प्रसंग यह उठता है कि सन्तों में नाम-स्मरण की भावना के आगमन का माध्यम क्या है वैष्णव चिन्तनधारा या बौद्ध धारा ? वास्तविकता यह समझती है कि दो भिन्न भिन्न परम्पराओं से प्राप्त नाम-स्मरण की प्रणाली का प्रयोग कबीर ने समन्वित रूप से किया है।

सन्तों ने मन की शांति पर विशेष विश्वास किया है। उन्होंने 'इनमन' और 'उतमन' की कभी-कभी सन्तर्म में की है। एक मन व्यक्तियुक्त और चापेक्ष है। दूसरा निरपेक्ष है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने ऐसे मन की उपलब्धि के प्रति आग्रह व्यक्त किया है जिसमें व्यक्तियुक्त मन समाहित हो उठता है। इस मन का स्व रूप बोल सतक सनन्दन बैसेव नामबेव आदि मन्त्रों को भी नहीं हो पाया था। यह निरपेक्ष मन भी हमसे अभिन्न है। उसका अस्तित्व हम से भिन्न नहीं है। पोरख भरचरी और गोपीचन्द इसके साथ साक्षात्स्य स्थापित कर चुके हैं। यह मन 'निरंजन' है जिसकी उपलब्धि कबीर तथा अन्य सन्तों को हो चुकी है—

ता मन को खोजहु रे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई।

सतक सनन्दन बैसेव नामाँ, भगति करि मन सन्तुँ न जाना।

X

X

X

पोरख भरचरी गोपीचन्दा, ता मन सौं मिलि करै कर्ना।

अकल निरंजन सतक सरीरा, ता मन सौं मिलि रह्या कबीरा ३३८८।

भक्ति की प्रचलित विधाओं से इस मन का परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता है। साधनों और अन्य आचार श्रमों में इस मन के स्वरूप का वर्णन नहीं मिलता है। इसका परिचय ज्ञान और अनुभूति से होता है—

अप तप ब्रजम पूजा भजना ओठिग भन बीरानो।

कायद सिनि सिनि अपत मुछाना मन ही मन न समानो।

कई कबीर बोली जर ब्रजम ॥ सत झूठी धारा।

गुरु प्रसाद रटी चाजिब ज्यु निहूँ भगति निवासा ३४८८।

'उतमन' के साथ 'इनमन' का साक्षात्स्य 'यमन' में होता है। यह मन परम तप का स्वरूप है, यह निरंजन है। यह सतक सरीरों में परिभ्रमण है—

अकल निरंजन सतक सरीर, तामन सौं मिलि रह्या कबीर।

मन की साधना पर सन्तों ने विचार बल दिया है। व्यक्तिगत मन अति अति  
 संश्रित होता है। पल-पल में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। मन की  
 साधना को परावृत्ति साधना के रूप में सन्तों ने ग्रहण किया है। 'मन से  
 मनहि समाना' अथवा 'मन उल्टा चरिया मिस्या' के माध्यम से इस परावृत्ति  
 साधना या उल्टे साधना की जर्नी को पई है। बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत तानिक  
 विज्ञान वारो' दर्शन एक विशिष्ट दर्शन-दृष्टि है। इसके अनुसार चित्त का उदय  
 क्षण-क्षण होता है और उसका स्वरूप भी क्षण-क्षण होता है। चित्त की जो  
 अवस्था एक पल में रहती है वही दूसरे क्षण में नहीं रह जाती। उसका उत्पन्न  
 काले हुए कमीर में कहा है—

कमीरा यह मन कय गया, जो मन होता काहिह ।  
 हूपरि बूठा मेह ज्यु गया निबाधा चालि । मन की क्षण २२ ।

संत साहित्य में 'गुरुति' और 'निरति' की जर्नी विचार आकर्षणपूर्ण है।  
 गुरुति को निरति में समोह्य होने की जर्नी निचली है निरति को निरात्म्य  
 कहा गया है। गुरुति निरति में समाधिष्ट हो जाती है केवल अनेक में समा  
 जाता है—

गुरुति समाधी निरति में निरति रही निरवार ।

गुरुति निरति परका भया सब तुले स्थान दुवार २२।१२ ।

गुरुति समाधी निरति में अजपा माई आप ।

केवल समाधी अनेक में गुरु आपा माई आप । २२ । १२

अब गुरुति केवल चित्तार्थ है। गुरुति केवल यह गुरुति समार्थ १७।१२  
 चरिया छन्नावली ।

पोंच तपु वहाँ हैतु बितेना । पल-पल कर्हि अनुपम मेया ४४।१६  
 तामें निरति गुरुति की बानी तामें निरतु माया की लागी । ४५

बौद्ध धर्म में 'स्मृति' शब्द की जर्नी मिलती है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग  
 बाह्य अवस्था या जागरूकता के अर्थ में हुआ है। परमार्थी काल में 'गुरुति' का  
 प्रयोग 'स्मृति' के ही पर्याय में किया जाने लगा। गुरुति के पूर्व मोक्षप्राप्त ने  
 इन शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। गुरुति नहीं गया जिनि लागी पूर्व  
 हानि न होई। गाथों और सन्तों के लिए गुरुति स्मृति केना जागरूकता  
 और चरम चालि है। मोक्षप्राप्त के नाम से गुरुति रचनाओं में 'गुरुति' के प्रति  
 आकर्षित होने का आग्रह मिलता है—



मर्मात् वहाँ पुण्यापुण्य महा शून्य है । वहाँ सूर्य नहीं है चन्द्रमा नहीं है वायु दिक् पात्र नहीं है । वहाँ न जन्म है न मृत्यु है न ताप है न शीतलता १ है । 'धर्म बीठा' के अनुसार महा शून्य से पवन पवन से निरंजन निरंजन से निर्गुन निर्गुन से गुण की व्याप्ति काळ क्रम से हुई मानी गई है । रमाई पण्डित के शून्य पुराण में निरंजन की व्युत्पत्ति महाशून्य से मानी गई है । धर्म सम्प्रदाय की इस भावना को नाथ साधकों ने आत्मसाध किया । सन्त पन्थ ने इस साधना भावना को समीकृत किया। ऐसे ही प्रमाण मिलते हैं कि काळ-क्रम से यह सम्प्रदाय सन्त सम्प्रदाय के लिए प्रबल प्रतिद्वन्द्वी का रूप धारण कर गया । और कबीर भक्त की दक्षिणी छाया ( धर्मवासी सम्प्रदाय ) ने इसे आत्मसाध किया ।

हठयोग प्रदीपिका में निरंजन का प्रयोग मुक्त शब्द के लिए हुआ है । नाथ पंथ में निरंजन को नाथ के साथ सम्बद्ध किया गया है । सन्त साधना में हठ्यमान जगत अंजन है निरंजन इससे परे है ।

'रामनिरंजन म्पारा रे अंजन सकल पसारा रे । कबीर ने केवल राम को निरंजन माना है राम के अतिरिक्त सृष्टि के अन्य उत्पन्न अंजन हैं । ओंकार, वेद वाणी ब्रह्म शंकर सभी अंजन हैं । योगी अंजन का परिणाम कर निरंजन में वास करता है । ( १७२।३३९ ) । अंजन की उत्पत्ति होती है निरंजन अव्यक्ता है । अंजन का आवायमन होता है निरंजन सब कद में समाहित है ।

१ पौतम बुद्ध ने भी इस प्रकार की प्रस्तावना की है—मिस्रुओं (बह) ऐमा आसतन है वहाँ न पृथ्वी है न जल है न अग्नि है न वायु है न आकाश आयतन है—न यह लोको है न परलोको है न चन्द्रमा है न सूर्य है उस न अगति कहता हूँ, न मति । न वहाँ ठहरना होता है न व्युत्पन्न होगा न उत्पन्न होता है, वह आचार रहित संस्पर्श रहित है आत्ममग्न रहित है अतिरिक्तिके तादायतन मत्त मेघफटकी; न आपो, न तैजी, न वायो न आकास नम्मायतन

नार्य लोको न परो लोको न ऊमो अन्दिम मूरिया तद्ध मिस्रवे मेघ आमंति वरामि न मति ठिबि न भुति न सपति, अन्तिष्ठ अयवन इति बुद्धक मेवने-सुत्तो ने इस भावना को अपरिवर्तित रूप में स्वीकार कर लिया है ।

सन्तों के निर्जन निराकार हैं। कबीर उस निर्जन से एकाकार होने की कल्पना करते हैं।

‘कई कबीर भरम सब भाषा एक निर्जन सु मन जागा’।

निर्जन निराकार, अपरम्पार। रसिनी।

सन्तों में निर्जन के प्रति इस प्रकार की चारणा का विकास मात्र पद्य से हुआ लगता है। मोरचानाम ने निर्जन के जिस स्वल्प की कल्पना की है, उसमें वह आश्चर्यजनक से मुक्त है—

जाऊँ नहीं जाऊँ निर्जन नाब की दुहाई।

प्यढ़े अक्षुण्ण पोषणा अम्हें सब सिधि पाई।

दोरसबासी। ११६।

नाब सावकों के समान सन्तों के निर्जन की अनुमूर्ति भी उस समन-अच्छस में होती है जहाँ अनाहुर नाब ज्वलित होता है जहाँ अक्षुण्ण ज्योति प्रज्वलित रहती है। जन्म में लिप्त होते हुए भी निर्जन सबसे निष्ठित है जैसे ही जैसे चन्द्रमा जब में प्रतिबिम्बित होते हुए भी अल से असत्य है। और जल से भस्म होकर भी वह जल में है। इसी प्रकार यह घट से भस्म रहते हुए भी निर्जन प्रत्येक घट में, प्रत्येक जन्म में है। और प्रत्येक घट में रहते हुए भी वह उससे असत्य है। कबीर ने अपने निर्जन के स्वल्प की व्याख्या इन सारों में कर दी है—

१. सन्तों में इस भावना का विकास ‘ब्रह्मा पारमिता’ की मौलिक परम्परा से हुआ लगता है। जहाँ सत्य के साक्षात्कार के सन्दर्भ में कहा गया है कि सत्य हमसे एकान्त और अलग नहीं है। सत्य एक अतीत है जो हममें निरन्तर विद्यमान है। ‘संझाबजार मूज’ में इसी भावना को ‘जल में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब’ के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने इस भावना को ग्रहण किया है। कबीर की इस विचार-धारा का सम्बन्ध उत्तरकाशी के वैष्णव (साधेनधारीक) में स्थापित किया जाता है जहाँ प्रतिबिम्बवाद के सिद्धान्त की पूर्ण निष्पत्ती है। वस्तु इस सम्बन्ध में वह प्रस्तावना विशेष रूप में ध्यान देने योग्य है कि ‘संझाबजार मूज’ गीतर के वैष्णव के पूर्व का ग्रन्थ है। मोरचानाम तथा कबीर ने गीतर की ओर ‘संझाबजारमूज’ की मौलिक परम्परा से दी यह भावना को ग्रहण किया है।

अबबू अगनि बरी की काठ ।

पूछीं पण्डित जोग सग्यासीं, सतगुरु भीनैं बाट । टेक ।

अमनि पवन मैं पवन कबल मैं सबद गगन के पवना ।

मिराकार प्रभु आबि निरंजन, कत रहते भवना । १७६ १२६ ।

सन्त साहित्य की समग्रता पर विचार करते हुए एक सत्य की ओर हमारा ध्यान आता है । कबीर के परमात्मा का कल-कल से सन्तों ने अपनी साम्यताओं को धाम-समस्त करने का प्रयास किया है । अब उनके साहित्य के मुख्य स्वर में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है । इन सन्तों का व्यक्तित्व भी कबीर के समान नहीं था । अब एक ओर कबीर से उपलब्ध चिन्तन-बारा को परम्परा रूप में इन्होंने ग्रहण किया दूसरी ओर वेदान्त तथा अन्य शास्त्रों के सिद्धांत ग्रहण करने का इन्होंने प्रयास किया । बाघु, रबास, मयूक, सुन्दरदास अमजीवन दयाबाई और मीना की रचनाओं के विवेचन से इस कथन का समर्थन होता है ।

सिद्धों और मार्गों के समान सन्त 'सहज' के प्रति आकर्षित मिलते हैं । सहज का वर्णन इनमें दो रूपों में मिलता है— (१) सहज समाधि के रूप में (२) सहज-जीवन पद्धति के रूप में । प्रथम के अन्तर्गत सहज समाधि में साधक मन मण्डल में केन्द्रित होने की चर्चा करते हैं । वहाँ वे मूल बन्ध बाँधते हैं और 'अनहद' नाद के साथ सादात्म्य स्थापित करते हैं । 'उत्पन्न' की स्थिति में पूर्ण कर वे रसायन पान करते हैं—

मुनि मण्डल में मरका बाजे तहाँ मेरा मन नाचै ।

गुरु प्रसाद अमृत फल पाया सहज सहजि सुपन्ना काछै ।

पूछ मिस्या तबै सुय उपमाँ तन की तपन बुझानी ।

कहे कबीर सब बन्धन छुटे, ओतिहि ओति समाधी ।

सहज समाधि की विधि योग पर आधारित है । इडा पिण्डा-मुपुम्मा के सहयोग से जड़ रज में प्राण वायु के केन्द्रित करने की प्रक्रिया की व्यापक चर्चा सन्तों ने की है । इससे द्वार पर 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' को समस्थिति में लाने की आवश्यकता मिट और नाच पल के अनुसार ही है—

इसा प्यंगुला भाटी कीन्ही ब्रह्म अगनि परिवारी ।

ससि हर गुर द्वार बस सबे छागी जोग जुधारी ।

सहज मुनि में बिन रस आकाश, सतयुग में सुवि पाई ।  
 दास बन्धोर इहिरिनि माता बन्धू उद्धकि न जाई । ८२।७४

अथवा

अरि काये महुटिया गमन गहराय ।  
 सन मरजे, सम बिबुधी बमके लहरि उठै सोभा बरनि न जाय ।  
 मुन महुत से अमृत बरसै प्रेय बनस है साधु महुय ।  
 कृषी केहरिया मिटी बँबयरिया समि सतयुग बिन बिपा लताय ।  
 बरम दास बिनबै करिबोरी सतयुग बरण में रहत समाय ।  
 बरमदासजी की सत्नामणी ।

सन्तों ने भौतिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा इन तत्त्वों का प्रयोग सहज समाधि के उन्मर्ग में किया है। उनकी सहज-समाधि योग-समाधि से भिन्न थी। कबीर ने इस ओर ही संकेत करते हुए कहा है— बई कबीर यह उन्मन रहनी सो परमट कर गई। परन्तु सन्त साधकों में 'मुन्तर दास' ने ध्यान का अध्ययन किया था। 'ब्रह्म समुद्र' में साध्य अत्रत और योग के सिद्धान्तों का निरूपण मिलता है। अतः इनमें धार्मिक-विधान के प्रति निरन्तर आग्रह मिलता है। इसी प्रकार बुद्धा साहज ने हठयोग के लिए ध्यान अनिवार्य माना है। इनके 'अंगर मनस' के 'राजयोग' और 'ध्याय योग' में योग की मूर्त्ता का प्रतिपादन किया गया है।

सन्तों ने जीवन की समग्रता और संतुलितता में आस्था प्रकट की है। जीवन की संस्थापना असाध भूमि पर करने का प्रयास में ही उनकी जड़ता प्रमाणीत थी। सिद्धों की दृष्टि उपभोगवादी थी। इन उपभोगवादी दृष्टिकोण के प्रति बोधनाथ ने अमन्तोष-भाव व्यक्त किया है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने भी इस उपभोगवादी दृष्टि के प्रति अमन्तोष व्यक्त करते हुए कहा है कि जीवन्ती सिद्ध माना के लोक में विनाश करने वाले हैं। नैतिरता की दृष्टि से वे पाप्मों को भी निगम करते हैं। अतः सहज को सन्त सहज और भैरविक जीवन-पद्धति का परीनवाची मानने हैं—

सहज सहज सब को बई साधन न भीमू को  
 सिद्ध सहज बिपना लगी सहज बहारे को ।

सन्त साहित्य की रचना युग-जीवन के अन्तर-भन को प्रतिबिम्बित करती हैं। सन्तों ने अपने युग की संपर्कमुखक भूमिका से अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। परस्पर विरोधों के मध्य समाज को पल्लवित करने के प्रयास की दृष्टि से सन्त-साहित्य समाजर पाठा रहेगा। सन्तों को मुख्यतः कबीर को, अपने युग से प्रतारणा ही मिली। परन्तु लखन और समीकरण, इन दोनों के माध्यम से कबीर ने अपने काव्य और अपनी साधना का विकास किया। कबीर तथा अन्य सन्तों के साहित्य की दो स्पष्ट धाराएँ मिलती हैं। प्रथम में दर्शन और साधना प्रणाली का संश्लेषण है। इसका उल्लेख किया जा चुका है। द्वितीय वर्ग में युग-जीवन के आकलन की दृष्टिरोध उत्पन्न करने वाली सक्ति के विघ्नस की और समाज-संस्करण की चेष्टा मिलती है। सन्त-सम्प्रदाय ने योनी सम्प्रदाय का संयोजन किया निम्नजातियों के समायन का प्रयास किया बीछों को अपने में समीकृत करने का प्रयास किया।-आहारों तथा मुसलमानों की आलोचना से उसके सम्मुख अस्तित्व का प्रत्यक्षानुबन्ध विज्ञापित किया। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

हम बासी बहि देस ने जहाँ जाति बरन कृत नाहि।

सबद मिळावा होइ एहा बेह मिळावा नाहि।

इस प्रकार सन्त साहित्य की विशेषताओं का निर्वारण इस रूप में किया जा सकता है।

१ एक अवियत, अतीत धूम्य राम निरंजन का ध्यान। वह गुरु-पथ प्रदर्शन से ही होय है। २ गुरु और साधु सेवा ३ प्राप्ति में समान दया भाव। ४ मांस-आहार को त्यक्त कहना। मरिदा का दर्शन। ५ स्वयंविद्य ज्ञान के प्रति आग्रह तथा वेद-शास्त्र-सम्मत ज्ञान की अपेक्षा। ६ कबीर के परवर्ती सन्तों में से कतिपय ने नवपा सक्ति के स्वर को स्वीकार किया है।

७ मनुष्य-सृष्टि को समग्र तत्त्वों से घेष्ट और मूल्यांकन मागना।

सन्तों ने माया की कल्पना की है। इनके अनुसार बुद्धिभिन्नी महाभावा विष से परिपूर्ण है। विषया, जीवन को विगलित करने वाली माया का परिणम इन पीछियों में किया गया है—

योगी के योगन छु बंटी राजा के नर रात्री।

अपनी अनुभूतियों के सुशोध के लिए कवियों ने जिस व्यंग्यमा प्रणाली का रोग किया है उसमें भावनाओं का सहज और स्पष्ट रूप व्यंगित हो उठा है। इस तरह के साथ तारात्म्य भावना-स्थापन की अनुप्रेरणा को वे रति-मूलक कवियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इस सम्पर्क की रचनाओं में शीघ्रिच्छा की पैदा तारात्म्यक कवियों के स्वरूप की प्रभावता मिलती है और किन्तु उनकी सुपूर्ण भावनाओं में प्रकट होकर मूर्त हो उठता है। कवि इन सम्पर्कों में स्तु सापेक्ष कवियों का आचार ग्रहण कर अपने दर्शन की मूल अनुभूतमा का गम्भीरतम प्रस्तावन करता है और अपनी साधना को लोकजीवन के अधिक निकट जाने का प्रयत्न करता है। अपने 'राग' या 'निरंजन' से एकात्म होने की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए कवि ने गोमे (विद्यापयन) पर जाने वाली मारी की भावनाओं का आचार ग्रहण किया है—

लायी दिन बीने के हो मन होत उलास ।  
 बाकिया उठावे बीना बन्नी हो बहूँ कोई न हमार ।  
 पहनौ तोरी लायी कहरबा हो बोलिपर दिनवार ।  
 मिछेने छत्रिया छहेकर हो, मिला कुस पतिवार ।  
 बाब कबीर बाब निरगुन हो साधु कर के बिचार ।  
 गरम-गरम सीखा करिने हो बाब हाट न बाजार ।

कबीर । ३ २६।२७४ ।

तारात्म्य जीवन की अनुभूति-योजना का आचार ग्रहण कर अनुराग के संशर्षों से रचोचित पदों की व्यापकता से कवियों ने काव्यपरा की अवधारणा की है। इस सम्पर्क की रचनाओं में रसतत्त्व के स्वयं का नैसर्गिक विधान मिल जाता है। संसार की सापेक्षता को या 'दल मन' की अवस्था के लिए कवियों ने 'भैरव राग' से बस्तु-सापेक्ष विधान का नियमित प्रयोग किया है। 'जगत् की स्थिति में प्रवेश करने की प्रक्रिया के लिए 'विष के घर जान के पर्याय के रूप में कवियों ने निर्दिष्ट किया है—पारी को पुनरी और इनका वा आत्मा को 'बपु' के रूप में ग्रहण किया गया है—

नैहर में बाय छगाय बाय पुनरी ।  
 ऊ रगरेबबा के मरम न जानी  
 महि मिले धोबिया कौन करे उबरी ।  
 तनके नूँदी जान के सोहन  
 साबुन मेंहग बिचाय या नगरी ।  
 पहिरि जोड़ि के बन्नी समुरिया,  
 मोनों के लोप कई बड़ी पुहरी ।  
 कई कबीर सुनो माई साबो,  
 बिन सतगुर क्यहूँ नहि सुबरी ।  
 कबीर २०७ ।

इस प्रकार 'मोरे साहब की ऊँची अटंरिबा कछु में निरारा कपि' 'बात्म  
 बायो हमारे गेहूँ रे' 'सजिया, हमहुँ भई बिस्मासी' 'बायो बोलन बिरह सतायो'  
 'अब मैं जान मली अठिछासी' 'तितु काबुल निरानी' 'कोई पिपासे मिलावे'  
 आदि शीर्षक पदों में रति-मूलक भावधारा पर दर्शन का सम्यक् मिश्रण है। यद्यपि  
 इन पदों में प्रस्तुत है निरंजन के साध तात्काल्य भावना के संस्वाप्त-स्वरूप  
 की प्रस्तावना, परन्तु अप्रस्तुत में निहित वस्तु-सापेक्षता अनुभूति की व्यापक  
 पृष्ठि भूमि में साधारणीकरण की समता को अति बड़ बना देती है। कबीर,  
 सत्य गुरुजी तथा अन्य सत्तों के पदों में इस प्रकार की एकक्यता मिलती है।  
 कबीर के बिरहिणी के समान सन्नेस भेजते हैं और कबीर मीन बेदना को सहते  
 हैं। कबीर बिरह भुवंगम इनको बस सेता है। सुम्बर बास की बिरहिणी बक कर  
 भस्म हो जाती है। बाहु की बिरहिणी के नेत्र तास-तख्तवा के समान बपों  
 के बस से भर गए हैं। जधु बसपर की भूमिका बारन कर केते हैं।

इस प्रकार अपनी साधना की व्यञ्जना के लिए सत्य मधुर भक्ति को साधन  
 रूप में ग्रहण करते हैं। एकान्त प्रेम तथा अनन्य साधना से इनकी बांधी  
 मुखरित है। प्रेम की रीति में ये सत्य गुरुजी के समान चातक वा रूप धारण  
 करते हैं। इनके मन में प्रेम का 'पछावज' निरन्तर बजता रहता है। प्रेम का  
 रङ्ग मजीठ का रंग है। जीवन धर्म व्यापारों की साधन रूप में ग्रहण करने के  
 कारण ही सत्य लोक जीवन को संस्थापित कर सके थे और लोक मानस में

अपने व्यक्तित्व का संस्थापन कर सकें वे । उनकी भावियों में लोक मानस अपनी रचनेवालों का प्रतिबिम्ब पा लेता है ।

जीवन-सापेक्ष व्यापारों से अपनी भावनाओं के भूत विभाग के प्रयास के कारण ही अपनी चिन्तन-बारा का साधारणोत्तर के कर गये हैं । इसके अतिरिक्त युग-जीवन के विविध स्वयं के प्रतिबिम्ब भी इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं । इस सम्बन्ध में कबीर तथा अन्य सन्तों ने कपड़ा-बुझने के विविध रूपों के द्वारा साधना की विविध भूमिकाओं की प्रस्तावना की है । 'मीनी मीनी मीनी चरिया' 'बोकहा बीनहु हो इरिनामा जाके दूर नर मुनि चरे पनामा । दीर्घक रचनामें इस उद्देश्य की रचनामें हैं । इसी सम्बन्ध में संयुक्त के उत्तराध रूप के अन्तर्गत विविध अनुमति और साधना-ममि की व्यञ्जना के लिए प्रयुक्त है—

जब दूर दोह लूना करि हूँ, चित्त चेतनि की काँड़ी

गुणमन तसी जागज सापी इहि बिधि निज्यां पाँड़ी । १३३।१८९

सन्तों ने निम्न-निम्न पदों एवं साधियों की रचना निम्न-निम्न मानसिक स्थितियों और भाव भूमिकाओं में की है । कबीर ने मन की परिवर्तनशील वस्तु का उल्लेख किया है । इस प्रकार विविध मानसिक स्थिति में संसार की लक्ष्मणमूर्ता और जीवन के नस्तर रूप का जावात्मक वर्णन वे करते हैं । इस सम्बन्ध की रचनाओं में जीवन की सरसरता के बहुत सत्य का उत्पादन कर कर्म छाटना और बारावना की कर्मयोगिता का सम्पादन करते हैं । नस्तरता के मध्य वे अनन्तर भूमि का प्रतिपादन करते हैं ।

मन पूना-पूना छिरे जगन में, बँसा माता रे ।

जब को बीरों का माया रोवे बहिन रोवे दस माया ।

तेरह निन तक तिरिया रोवे केरि करे घर जाना ।

चार पयो जगजी कपायो चड़े काठ की बीदी ।

चारो कोने जाग जपाई, कँड निपा जग हीरी ।

दाद बरे जग सापड़ी केग बरे दस पासा ।

कँचन लंगो दावा पारि कँ कोई न जाया पासा ।



## अमिष्यंजना प्रणाली और भाषा

छन्दों की अमिष्यंजना प्रणाली में छन्दों भाषा का प्रयोग छिड़ों और नाचों की परम्परा के अनुरूप ही है। कतिपय छन्दों का परिचय इस प्रकार है —

छन्द	छामस्य अर्थ	छन्दों अर्थ
चुनरी अम्बिया	चुनरी चोली	छरीर

मोरी चुनरी में परि क्यो बाग किया (१६५ १२३), नैहर में बाग लगाय  
बाग चुनरी (२०७-१४३) कुछछिन अम्बिया काहे न सोबाई १६५ ३२५ ।

चौद	चौद	प्रसा
सूर्य	सूर्य	उपाम

महि कट बन्ना महि पट सूर, महि फ गावै अलख सूर । २३१।६ ।

कन्द न सूर दिवस महि रबनी तहाँ सुरछ को साई । २७।२५४ ।

हंस हंस आत्मा व्यक्ति सापेक्ष मन

हँसा करो पुष्टतन बाध, जब ही हँसा केत सवेरा बचो हमारे साथ । २४०।१२।

पक्षेक पक्षेक (पक्षी) (१) सापेक्ष मन आत्मा (२) निरपेक्ष मन

या ठरिवर में एक पक्षेक मोय सरस बह डोले १ । ३० ।

जबल बल कम गति रेखा, बैठा प्रेम के छोड़ी रे । ३०।३५६ ।

सिध	सिध	अक्षेपन मन
माय	माय	इन्द्रियाँ

एक अक्षमा देखा रे भाई ठाढा सिह बराने गाई लेका ८२।११ क० ५०

गंगा यमुना गंगा यमुना ईशा सिन्हा

कबीर बंध, यमुन के अन्दरे छह्न धूम के पाट ।

तखर तखर काया

तखर एक अक्षत धर साक पुष्ट रस भरीमा । कबीर १८१ ।

करहा करहा मन

मृति बिमाऊँ अपनी करहा छा मुनिष की डारी रे ।

क० स० पृ ११२ ।

हस्ती (गज)                      यज्ञ                      उगमन स्थिति को प्राप्त मन

गुप्त प्रसाद मूर्ध के नाई हस्ती आर्षे जाही । क० प्र० पृ० ६१

मेरुछ                      मेरुछ                      चतन मन

मीरक सोबै सोप पहरइया (क० उगवावसी)

हंस                      हंस                      इनमन-उनमन

कह कबीर स्वामी मुख सागर हंसहि हंस भिखावये ।

बहेरी                      बहेरी                      सायक

बोझ्ये                      मुम्हरी                      वन कबलि                      मेरो मन                      बहेरा खेले ।

क० प्र०

नामना के विविध रूपों को प्रस्तावित करने के लिए सन्तों ने क्यक का प्रयोग किया है । इनमें से प्रामां सभी क्यक परम्परा प्राप्त हैं । इस सन्दर्भ में 'मूर्ध' और 'बन्धना' को तूम्बी के रूप में चिह्नित किया गया है । केतना को दण्डो का पर्याय माना गया है सुषुम्भा को तन्वी के रूप में ग्रहण किया गया है ।<sup>१</sup> कबीर ने कलासी का क्यक प्रस्तुत करते हुए मान को गुह ध्यान को महुमा, कदाणि को अग्नि रूप में चिह्नित किया है । कबीर ने जुलाहे का क्यक अति व्यापक रूप में ग्रहण किया है । इस रूप के आधार पर भी कबीर को जुलाहा सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है । इन विषय का प्रयोग अन्य सन्तों ने भी किया है ।<sup>२</sup>

हिन्दु साहित्य के सन्दर्भ में इस और संकेत किया गया है । वहाँ मेरु दण्ड को पर्वत का पर्याय माना गया है । उसके गिरार पर 'प्रमा' नैरात्म ( नारी )

१—गुह करि ध्यान ध्यान कर महुमा, जब माठी करि भारा

मुदमन नाटी सहजि समोनी पीबै पीवन द्वारा । पद ७२।

२—पुन पुन पुन डाळू जब मन को, मैं बुनियां सतपुन चरवन को ।

मन बराब गुलत कर गई, काय विनोये काले लोई ।

कई साक कुनकी बुधि पाई नाव भुना के दान बड़ाई ।

विरहनाथ । रत्न काव्य ।

निवास करती है। मेघ पर्वत का यह रूपक सन्तों में व्यापक रूप में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ मेघ विसर को सूर्य छिन्न के रूप में स्वीकृति मिली है।—

हरिया बरिया गगन को मेघ उलंघा डण्ड।  
हरिया मेघ उलंघ करि पहुँचा भिड़ुटी धुँब।  
दुल भावा मुख उमवा मिटा मर्म का बुन्ध ॥  
हरिया द्रव्यावली।

सन्तों ने अभिव्यञ्जना विधा के अन्तर्गत उलटबौंसियों का प्रयोग विशेष रूप में किया है। 'सिद्धों' उत्पत्त्यात् 'भाषों' की रचनाओं में भी उलटबौंसियों का प्रयोग किया गया है। इसका उत्प्रेक्ष्य किया जा चुका है। कबीर की विवेचना के सगरम में भी इसकी जगहों की गई हैं। परस्पर विरोधी बर्म वाले उपमानों के माध्यम से इनका संस्लिष्ट विधान किया जाता है। परन्तु विरोधी उपमानों में बर्म की संस्लिष्टता निरन्तर विद्यमान रहती है। यथा —

नेवा निच नदिया बूझती जाइ।

इस प्रकार विरोधी मापा के प्रयोग से ज्ञान या छावना विधि की व्यञ्जना की यह एक विस्लिष्ट विधा है।<sup>१</sup>

१—वीणापा ने भी इसी प्रकार के रूपक का प्रयोग करते हुए 'सूर्य' को तुँबा 'कन्धमा' को तार और 'कल्या' को ध्वनि-रूप में ग्रहण किया है।

२—मुसाई के रूपक का प्रयोग सान्तिपा ने ( जयौपर २६ ) में किया है।  
हरिया मेघ उलंघ करि पहुँचा भिड़ुटी धुँब।  
दुल भावा मुख उमवा मिटा मर्म का बुन्ध ॥  
हरिया द्रव्यावली।

३—इस परम्परा का प्रादुर्भाव बीछों में हुआ। सिद्धों को यह विधा बीछ परम्परा से प्राप्त हुई, जिसका विकास भाषों और सन्तों में दिखता है। 'दीप निकाय' के 'तेविअ-मुल' तथा 'मगिमम निकाय' में अन्य-वेणु की जगह मिलती है। यहाँ बाह्यणों के बर्म को अन्तों के बौंस की उपमा दी गई है—एकमेव को मानव। अन्य वेणुपर्म मन्त्रे बाह्यण भासित ( इस प्रकार हे भागवत ! बाह्यणों का कथन अन्तों के बौंस के समान है। ) प्रचक्षित बर्म के विपरीत बर्म विधान का तात्पर्य उलटबौंसी है। परम्परा वाली विचार-धारा के विपरीत बर्म प्रतिपादन की परम्परा भी बीछ प्रयोग है।  
—देविए, ध्यान सम्प्रदाय पृ० १८६।

कबीर तथा अन्य सन्तों ने संख्या भाषा का प्रयोग किया है। पिछों और भाषों के समान इस सन्दर्भ की भाषा में भी अर्थों की अभिव्यक्ति है, प्रथम अविषा और द्वितीय प्रतीक अर्थ की जिसे हम संख्या-अर्थ भी कहते हैं। ऊपर कतिपय संख्या शब्दों का निवरण दिया गया है। इस प्रकार सन्तों ने भी अभिव्यक्ति-आधित वाणी जबवा अभिप्राय-युक्त वाणी का प्रयोग किया है। इसका प्रयोग 'पारितोषिक' वा 'अभिप्राय' में भी मिलता है।\*

सन्त परम्परा पंजाब से मैहर पूर्वी अञ्चल तक प्रसरित रही है। अतः सन्तों की रचनाओं में निम्न निम्न शक्तियों का आवागमन प्रदान होता रहा है। अधिकांश सन्तों की वाकियों के संज्ञा और उनके विविध करने का प्रयत्न इनके अनेक वर्णों पराप्त किया गया है। अतः इनकी रचनाओं की भाषा का स्वल्प निर्धारण सम्भव नहीं है। इनकी भाषा में अनेक शक्तियों का मिश्रण है। परन्तु भाषा विज्ञान के सूत्रों के आधार पर हम इनके कुछ शक्तियों तक पहुँच पाते हैं। प्रत्येक कवि पर सप्तको अम्-भूमि और साधना-भूमि का विशेष प्रभाव मिलता है। पर्वत के शब्दों में सन्तों की भाषा पर अन्य स्वानों की भाषा का दृष्ट प्रभाव पड़ा है। अतः इनकी भाषा के विषय में हम प्रायः निश्चित निर्णय नहीं ले सकते हैं। कबीर में पंजाबी और राजस्थानी तत्त्व दृष्ट भाषा में मिलते हैं, और इस कवन का सर्वत्र प्रमाणपूर्वक नहीं किया जा सकता कि इनकी भाषा मिश्रितपूर्वी है। इनकी भाषा में पंजाबी, जबरी भोजपुरी के शब्द रूप भी नहीं अपितु मिश्रण भी पाये जाते हैं। बाबू की भाषा राजस्थानी है। परन्तु सन्त कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। सुन्दर दास ने साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

काव्य विधान की दृष्टि से सन्तों की रचना में मुख्य परम्परा में जाती है मुख्य दो स्तों में मिलते हैं, शास्त्री (दीक्षा) और पर। शास्त्रियों जनों में

१—एतत् संख्याय वृत्त—'इसकी अभिप्राय बहु कर कहा गया है 'एतत् संख्याय नागिन शीतलो भूयः स्वयमोति।' इस प्रकार कुछ अभिप्राय युक्त वाणी का प्रयोग कुछ उदाहरण में मिलता है। पिछों भाषों तथा सन्तों में इस विधा का प्रयोग काल-क्रम से महाप्राय से विकसित मिलता है।

देहिना, प्यान सन्तदास १२२।

विभक्त हैं। इनमें ज्ञान सामाजिक जाओकता, सिद्धांत निरूपण के उत्तम प्राण स्वस्व मिलते हैं। इनमें शुष्क उपदेश और ज्ञान-उत्पत्ति की प्रचानता है। परमेय हैं, मिल मिल राग-रागिणियों में परिग्रह हैं। इनमें भाव और अनुमान-उत्पत्ति सबक प्रेयनीयता से विभूयित हैं। ये आत्मानुभूतिपूर्ण हैं। रमैनी में चौपाइयों के पस्पात बोहे के बत्ते का नियोजन मिलता है। यह अपभ्रंस में उपलब्ध 'कड़वक घौरी' की परम्परा की निचा है। सिद्धों और नाचों की छन्द-परम्परा का पावन सन्त साहित्य में द्रष्टव्य रूप में मिलता है। कबीर बाहु तथा अन्य सन्तों ने 'पमार' छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द का प्रयोग सिद्धों और आशिक रूप में नाचों ने भी किया है—

माकन बक की पिमास न बाह ।  
 बरु महु बनिनि छठी बजिकाह ॥  
 तु बकनिनि हउ बरु का मीनु ।  
 बरु महु रहउ बकहि बिनु बीनु ।  
 तु पिबर हउ सुबटा तोर ।  
 बनु मँबाव कहा करे मोर । कबीर ।

सन्तों की रचनामें अपनी पूर्ववर्ती परम्परा की रचनाओं के समान मिल-मिल राग-रागिणियों में लिखी गई हैं। जिनमें 'गुबरी' 'गउड़ी' 'बनासिरी' 'मसहार' तथा 'मैरव' प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'राग 'रसवान' 'राग सारंग' 'राग मारु', 'राग ठोड़ी' 'राग केदारो' 'रागसोरठि' आदि में भी रचनायें मिलती हैं।

कबीर तथा अन्य सन्तों की रचनामें अंगों में वर्गीकृत हैं। उदाहरण स्वस्व कबीर की रचनाओं का वर्गीकरण 'मुखरेव को अंग' 'सुमिरण को अंग' 'मिच्छ को अंग' 'परचा को अंग' 'रस को अंग' 'बनौ को अंग' 'भग को अंग' 'सहज को अंग' 'मवि को अंग' रूप में हुआ है। इस ओर सन्त साहित्य के स्वस्व विस्तार के अन्तर्गत संकेत किया गया है कि 'अंग' का अर्थ 'कारण' होता है। यह शब्द प्रयोग है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कुल्लुषोप द्वारा हुआ था। 'पाणि त्रिपिटक' में भी इसका प्रयोग 'कारण' के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार 'मुखरेव को अंग' में मुखरेव को कारण बना कर साक्षी की जाती है। इसी प्रकार 'परचा को अंग' के अन्तर्गत 'आत्मानुभूति या 'स्व-संविद्य ज्ञान' को कारण बनाकर साक्षी की जाती है।

## [ स ] सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य भारी

### प्रेमाख्यात्मक काव्य का स्वल्प विवेचन

बायसी और उनके परवर्ती कवियों की रचनाओं का आधार ग्रहण करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निर्मूल साहित्य का एक उपविभाजन 'प्रेम भारी' दीपक से किया है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने निर्मूल को उपासना ज्ञान के माध्यम से की है। बायसी एवं उनके शिष्यों के अन्य कवियों ने निर्मूल-उपासना के लिए प्रेम-मन्त्र को स्वीकार किया। अपनी उपासना अथवा साधना प्रणाली में उन्होंने सूफी सिद्धान्तों का आधार ग्रहण किया। भक्ति-पद्धति के निरूपण में उन्होंने सूफी सिद्धान्तों की मूल चेतना को स्वीकार किया और अपनी पद्धति के निरूपण के लिए उन्होंने आख्यात्मक काव्य प्रणाली के अनुबन्धों को स्वीकार किया। ये आख्यात्मक काव्य मुख्यतः प्रेम अथवा प्रेम की खोज पर अवलम्बित हैं जिसकी कथा भारतीय लोकजीवन से ग्रहण की गई है। इसकी लौकिक व्यापक अलौकिक खोज के मार को ग्रहण किए हैं। और ये अन्वेषित-मूलक अथवा समकारक हैं।

काव्य-रस की दृष्टि से सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य एक निश्चित भारतीय परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। इसमें अर्धार्थ और अवहट्ट तथा परवर्ती काल के आदिकाल के अन्तर्गत कलकल चरित-काव्यों की अनुषंगता पूर्णतः सुरक्षित मिलती है। चरित-काव्यों की विधा पर ही सूफी प्रेमाख्यात्मक कवियों की रचनाएँ लिखी गई हैं। इस सन्दर्भ की रचनाओं में 'अजमचरित' 'अज कुमार चरित', 'वेमिनाह चरित' 'ममिदपल बहा', 'असह चरित' 'करकण्ड चरित' आदि विषय इतिवृत्त हैं। इसकी अर्ध पुस्तक के आरम्भिक पृष्ठों में ही सूफी है। इन इतिवृत्तों में भी लौकिक कहानियों पर अलौकिक तथ्यों का आरोपण विद्यमान है। इन इतिवृत्तों में नायक-नायिका के प्रेम का उद्घाटन शुद्ध-दर्शन अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से होता है। नायकी द्वारा निहल इति की यात्राओं भी इनमें निदर्शित मिलती हैं। यहाँ तथैव केवल हम और है कि शिरी सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों में करने पूर्ववर्ती आख्यात्मक काव्यों ने उत्तराधिकार रूप से अन्त मुक्त उद्घाटन

क्रिया है। कवन की स्पष्टता इन दोनों के समान तत्वों का निरूपण यहाँ किया जा रहा है—

(क) प्रेम संबन्धना इन दोनों में पायी है।

(ख) वपप्रसा के चरित काव्यों में बने बर्ष के तत्वों का समावेश मिलता है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में सूफी सिद्धान्तों का निरूपण मिलता है।

(ग) सिंह-यात्रा की उद्भाषना इन प्रेमाख्यानक काव्यों में निम्नलिखित रूप से मिलती है।

(घ) वपप्रसा की कवच खेती पर ही सूफी प्रेमाख्यानक काव्य रचे गए हैं। इसके अतिरिक्त कवन में प्रिय मूर्ति-दर्शन स्वप्नों द्वारा भावी दुर्घटना की पूर्व सूचना, नायक या नायिका का रूप परिवर्तन मुनि का शाप नायक-नायिका के मिलन में हंस या शुक आदि का योग—इन कवियों के प्रयोग वपप्रसा और हिन्दी, इन दोनों में समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार प्रेमाख्यानक काव्यों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है।

(१) असूफी प्रेमाख्यानक काव्य —‘माचरानक काम कवचा’ ‘छीलावह कहा’ (प्राकृत) ‘ढोला मावरा वृहा’ ‘कमल सेन पद्मावती कथा’ ‘मधुमावती’ (कतुर्भुज वास), ‘रसपूजन’ ‘सारमाधवावृज’ (सदयवत्स सावलिख कथा) ‘मिनासत’ ‘नन्दमन’ ‘ममकुमार चरित’, ‘मेमिनाह चरित’ ‘ममिवत्स कहा’ ‘असह चरित’ ‘ममिवत्स कहा’, ‘करकण्ड चरित’ इत्यादि इस वर्ग की विशेष रचनाएँ हैं।

(२) सूफी प्रेमाख्यानक काव्य —अमीर खुसरो ने (१२५५-१३२५ में) ईरान के फारसी कवि निजामी के ‘पंचबर्ष’ नामक ‘खम्ब’ (पाँच मस्तकियों का संग्रह) के आधार पर अपने ‘खम्ब’ की रचना की थी, जिसमें ‘घोरी-खुसरो’ और ‘मन्नू-सैफा’ को विशेष बराबरी मिली। खुसरो की एक अन्य मस्तकी ‘दुबतरानी खिज्मा’ भी प्रसिद्ध है। ये रचनाएँ मस्तकी दोरी में फारसी भाषा में हैं। मरा प्रस्तुत सम्पूर्ण में इनकी विवेचना उपेक्षित नहीं है। प्रस्तुत खम्ब के अनुसार सूफी साहित्य द्वारा को दो वर्गों में विभक्त करते हैं।

(क) हिन्दी में उपलब्ध रचनाएँ। इनमें फारसी बहरो की परम्परा का संरक्षण मिलता है और इनकी रचना-शक्ति ईरानी या शामी है। इस परम्परा में ‘अरम राव जो परम’ (सन् १४६० रानी, निजामी) ‘अमीरखुसरो अमर’

(साह हसन-सन् १९२३) संयुक्त नवमी कृत्रमास (गवाली सन् १९२९),  
 'सगराज' (मुल्लाबख्शी सन् १९३९ ई०) 'चन्द बदन महिमार' (सन् १९६०),  
 (मुकीजी) मासि रचनायें आती हैं।

(ख) अवधी में दोहा और चौपाई की कड़वक टीली में रचित सूफी  
 प्रेमाख्यात्मक काव्य। इनका परिचय वहाँ प्रस्तुत किया जाता है। मलिक  
 मुहम्मद जायसी ने पद्यभाषण में अपने समय तक की अपने सम्पर्क की कृतियों की  
 सभी दृष्टि में की है—

विक्रम रैला प्रेम के बारा। सपनाबति बहै यबन पठारा।  
 मयू पास मुगबाबति कामी। यवन पुर होइवा बैरागी।  
 राजकुँवर कैंचकुर मयूड। मिराबाबति कईं बीगी मयूड।  
 साब कुँवर सँकासत चीनू। मयुमाबति कर किन्हु विमोमू।  
 प्रेमाबति कईं मुरसर छाया। अवा लयि अनिबल बर बाया।

इस प्रकार जायसी के पूर्व 'सपनाबती', 'मुगबाबती', 'मिराबाबती', 'मयुमाबती'  
 'प्रेमाबती' और 'अवा जगुड' के सम्बन्धित प्रेमाख्यात्मक काव्य रहे का कुछ  
 है। इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि जायसी मीताना बाऊर कुत  
 बन्दावन (बन्दावन) से परिचित नहीं थे। हिन्दी प्रेमाख्यात्मक काव्य पर विचार  
 करने वाले आलोचकों ने 'बन्दावन' को सूफी प्रेमाख्यात्मक परम्परा की कृति  
 कहा है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इस सम्बन्ध में आदिकाल के  
 अन्तर्गत विचार किया जा चुका है।

बन्दावन के सम्पर्क की बंधन में सवि मैना उन्कोर बन्दावी नामक एक  
 कृति मिलती है। इसका रचना काल सत्रहवीं शताब्दी है। इसके रचयिता  
 शीशर कामी और बला बोल नामक कवि हैं। इनके रचयिताओं ने यह स्पष्ट  
 कहा है कि सायन नामक कवि की मीताना कृति पीहारी भाषा में उपलब्ध है  
 जिसका जायस बाह्य कर इस काव्य की रचना सम्भव हुई है। 'मैना सत' और  
 'छत्री मैना-उन्कोर बन्दावी' को कथा में गाय्य भी है। परन्तु कथा के दोषों  
 की दृष्टि से इन कृतियों में तथ्या नहीं है। सम्भवतः बन्दावन का जायस  
 बाह्य कर बहु प्रभावित किया गया कि मैना सत बाऊर हुए 'बन्दावन' पर  
 आधारित है। परन्तु यह सत्य नहीं है। यह एक खटव कृति है। यदि हम



दोनों कृतियों की कथाओं की समीक्षा करें तो इस सत्य का स्पष्टीकरण हो जायगा । सूक्तियों के प्रेमास्मानक काव्यों के समान यह नव्योक्ति अथवा स्फुट नहीं है । इसकी कथा हार्पक नहीं है ।

**कवि और काव्य परिचय**

**कुटुबन** — कुटुबन प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख बुरहान के शिष्य थे । ऐसी बारणा प्रचलित है कि वे जीनपुर के साहू हुसैन के यत्निष्ट थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसका समय संवत् १३६० निर्धारित करते हैं । इसकी कृति 'मृदावती' है । इस कृति के रचनाकाक का उत्प्रेम्भ कवि ने इस रूप में किया है—

बहीम होत पन्नाह से सठी । उहीम और चौपाई बठी ।

इसमें पाँच चौपाइयों के कड़वक के साथ एक बोहा के बत्ता का क्रम है । चन्द्रविरि का राज कुमार कंचन पुर के राजा कन मुरारि की कन्या मृदावती पर मुग्ध होता है । वह राजकुमारी के निकट पहुँचता है । राजकुमारी उसने की विद्या में पारंगत है । वह उड़कर अम्यम जमी जाती है । विमोच में राज कुमार बोपी बन कर भ्रमण करता है । मार्ग में समुद्र से परितेष्ठित एक पर्वत पर पहुँच कर वह इमिमबी नामक सुन्दरी की रक्षा एक राक्षस से करता है । राजा इमिमबी से विवाह कर बैठा है । वह मृदावती से भी मिलता है । एक दिन बाबेट में उसकी मृत्यु हो जाती है । दोनों रानिमाँ सती हो जाती हैं । यह कृति सूफी प्रेमास्मानक काव्य-परम्परा की रचना है इसका स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है ।

**मंझन** — मंझन ने मधु माळती नामक काव्य की रचना की है । इस कृति के रचना-काक का उत्प्रेम्भ कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में किया है—

सन तो से बाबड अब भए । सती पुण्ड कवि परिहरियए ।  
 तब हम विम उपजी अविभाजा । कथा एक बाँवट रस भासा ।  
 गुरस बचन कहवाँ कहि सुने । जोर जो कियु हिरये महु गुने ।

× × × ×

मंत्रित कथा गुरम-रम गुनहु कही सम गाइ ।  
 इस्व ( ? ) परत जागर जो देसहु कवि मुंह लेहु छपाइ ॥  
 मधु माळती । ३३।३९

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट होता है कि हिजरी सन् २५२ सन् १५४२ या वि० संवत् १६०२ में इस कृति की रचना हुई थी। इस प्रकार यह बामसी के 'पद्मावत' के पश्चात् की कृति है। बामसी की प्रस्तावना ग्रहण करते हुए आचार्य दुसल ने अपने इतिहास में इस प्रकार का निष्कर्ष प्रगत किया है—'मंसूर की रचना का बसति ठीक-ठीक संवत् याव नहीं हो सता है, पर वह निस्संदेह है कि इसकी रचना विक्रम संवत् १५२० और १५२२ ( पद्मावत के रचना-काल ) के बीच और बहुत सम्भव है 'मृगावती' के कुछ पीछे हुई है।' परन्तु कवि के कबन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बामसी के पश्चात् की कृति है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने अपने समय के शासक का उल्लेख इस रूप में करता है—

साह सलैम जगत आ भारी । बेह भूजी बर मेरिनी सारी ।

जो रे कोवि पैरी पाँ चापै । ईदर कर ईद्रासन कापै ।

× × × ×

प्रियिनी पति पुन बाहुक इस जो चारि निधान ।

पर भुज मंजन सापुस्त बरन गरिठ मुबान ।

मयुमावती । १०।१० ।

इस प्रकार सलीम शाह के समय इस ग्रन्थ का प्रचयन हुआ। सलीम शेरशाह घूर का पुत्र था। वह शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् २५२ हिजरी १५४२ ई० में शासक हुआ। मंसूर सेल मुहम्मद बीस के पित्र थे—

सेल बड़े बज बिनि निमारा । प्यान पबन जो रूप मपारा ।

संवरि माउं नरसे जो जाने । प्यान साम होइ पाव मंवार ।

× + × ×

पुन दरसन पुन मोबन बनि बनि रिस्ति जो माव ।

जो पुन सिखउ रिस्ति प्रसिदासे सो चारिहु जग राव ।

मयुमावती । पु० १३।१२

× × × ×

जान साह मृग और न जाता । इस जो चारि मंन निपिदाना ।

बिजयो हराज न पट नहि काई । नज्ज रददि लीन जो माई ।

दोनों कृतियों की कथाओं की समीक्षा करें तो इस सत्य का स्पष्टीकरण हो जायगा । मूक्तियों के प्रेमाख्यात्मक काव्यों के समान यह 'लघोक्ति' मन्त्रा रूपक नहीं है । इसकी कथा हृदयक नहीं है ।

**कवि और काव्य परिचय**

**मुद्रुवन** — मुद्रुवन प्रसिद्ध सूफी फकीर शेक शुरहान के शिष्य थे । ऐसी धारणा प्रचलित है कि ये बीकानूर के साहू हुसेन के शिष्य थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसका समय संवत् १५५० निर्धारित करते हैं । इसकी कृति 'मुमावती' है । इस कृति के रचनाकाल का उत्कृष्ट कवि ने इस रूप में किया है—

बहीब होत पन्नाह से सठी । उहीम और बीपाई गठी ।

इसमें पाँच बीपाइयों के कड़क के साथ एक दोहा के चत्ता का रूप है । अश्वमेधिका राजा कुमार कंचन पुर के राजा रूप मुरारि की कन्या मुमावती पर मुक्त होता है । वह राजकुमारी के निकट पहुँचता है । राजकुमारी उड़ने की विद्या में पारंगत है । वह उड़कर अम्बन जाती जाती है । विमोक्ष में राजा कुमार योगी बन कर भ्रमण करता है । मार्ग में समुद्र से परिबेष्टित एक पर्वत पर पहुँच कर वह इमिमची नामक मुन्वरी की रक्षा एक राक्षस से करता है । राजा इमिमची से विवाह कर लेता है । वह मुमावती से भी मिलता है । एक दिन आखेट में उसकी मृत्यु हो जाती है । दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं । यह कृति सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य-परम्परा की रचना है इसका स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है ।

**मंजुन** — मंजुन ने मधु माळती नामक काव्य की रचना की है । इस कृति के रचना-काल का उत्कृष्ट कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में किया है—

सन गी से बाबा नय भए । सती पुस्त कलि परिहरियए ।  
तब हम श्रिय उपजी अभिसाखा । कथा एक बीचरे रग भाखा ।  
पुरत बचन कह्यो कहि सुने । और जो किछु हिररे मरु सुने ।

×

×

×

×

अक्षिप्त कथा मुरत-रत सुनहु कहीं सम याद ।  
हृदय ( ? ) परत जातर जो बैसहु कवि मुंह लेहु छपाद ॥

मधु माळती । १३१३६

इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि हिजरी सन् १५२ सन् १५४२ वा दि० संवत् १६०२ में इस कृति की रचना हुई थी। इस प्रकार यह जामिनी के 'पद्मावत' के पञ्चाश्व की कृति है। जामिनी की प्रस्तावना ग्रहण करते हुए आचार्य मुक्त ने अपने इतिहास में इस प्रकार का निष्कर्ष प्रकाश किया है—'मध्य की रचना का बसति ठीक-ठीक संवत् मात नहीं हो सका है पर वह निम्नलिखित है कि इसकी रचना विष्णु संवत् १५५० और १५५५ ( पद्मावत के रचना-काल ) के बीच और बहुत सम्भव है 'मृगावती के दुसरे पीछे हुई है।' परन्तु कवि के कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह जामिनी के पञ्चाश्व की कृति है। अन्य के आशय में कवि ने अपने समय के साक्षक का उल्लेख इस रूप में करता है—

साह जेठम जणत मा मारी। बेह भूजी बर मेरिनी सारी।

बी रे गोति वीरी पौ आवे। इंटर कर ईश्वरन कर्षे।

× × × ×

विमिनी पति युम साहब इस ओ जारि निबान।

पर भुज मंथन सापुस्त मरुत वरिस्ट जुजान।

मधुपाछटी। १०।१०।

इस प्रकार खलीम साह के समय इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। खलीम घेरसाह सुर का पुत्र था। वह घेरसाह की मृत्यु के बत्वार १५२ हिजरी १५४२ ई० में शासन हुआ। मंथन शोक मुहम्मद चौथ के विषय में—

सैक बड़े जय विमि निमारा। म्यान परम ओ बप अपारा।

संवरि नाई परसे वी आवे। म्यान काम होइ पाप मंवारै।

× + × ×

गुह बरसन गुह बोवन कति कति विमि ओ साज।

ओ गुह निमख विमि प्रतिपाले ओ बाधिं गुन राव।

मधुपाछटी। पु० ११।१२

× × × ×

मान काइ मुक्त और न बाता। बस ओ जारि मंत सिंघाता।

मिसमो हरक न बट मरि जाई। संतत रहि जीम की भाई।

बाता भी गुन साहक गीस मुहम्मद पीर ।  
 दुष्ट कृष निरमक सापुस्त गदम परिस्ट पेमीर । १५।१५।  
 कवि रचना की मूमिका में परम शक्ति की मन्थना करता है ।

प्रेम प्रीति सुखनिधि के बाता । दुई बग एकोकारि निधाता ।  
 बुधि प्रगास नाही तुम ताहि । तुम अस्तुति जे करे गोसाईं ॥

× × × ×

वीनि मुकन क बट महुं बनबन क्य बेलास ।  
 एक बीनि कहु ताहि के कैंठे अस्तुति करे हवास ।  
 मधुमास्ती १।३

कवि परम शक्ति को मुहम्मद का पर्याय मानता है । मुहम्मद सृष्टि का हेतु है । सम्पूर्ण बग उसकी शाखा प्रधाका के रूप में है । परम शक्ति बल्लभ है । मुहम्मद उसी का प्रकट रूप है (न ६) । इसके पश्चात् कवि अपने निशों का परिचय देता है ।<sup>१</sup> इसके पश्चात् अपने युगीन शासक साहू सखीम की प्रशंसा करता है (११ १३) । तत्पश्चात् अपने गुरु शक बीस मुहम्मद का स्मरण करता है और उनकी प्रशंसा करता है (१४ १३ १६ २२) । 'मधुमास्ती' की कथा का आरम्भ करते हुए कवि निम्नलिखित रूप में प्रस्तावना करता है—

पंडित मुनु बिनती यह मोरी । बिनबी पाय कामि कर बोरी ।  
 बी भस बचन सराहि न जाई । मोछ न हुकचु रोस क्वाई ।  
 बी पढ़ि बचन प्रसा किछु मेवहु । रोस साह जग मोछ जखेरहु ।

× × ×

मुकन बी रे जखेरहि तहिक ताहि मोहि खोच ।  
 बनि बग ताकर बीतरज भरन साह यह पोच । ४१ ।

१—जब मुनु चहुं भीत के बाता । सत निपाज सास्तर के बाता ।  
 प्रथमहि बकाबकर परबानी । सत गुर बचन मंत मिय जाना ।  
 दूजे उमर निपाज के राजा । जेह गुत फिरी हुना बिधि कामा ।  
 तीजे भग्न राज जसमाणा । जेह रे भेर बैर का जाना ।  
 चौथे बनी छिग बहु गुनी । दान सारन जेह सापी पुनी । १२१।

क्या का आरम्भ कवि ४४ वें कड़वक से करता है। क्या के आरम्भ में कवि इस ओर संकेत करता है कि इस कृति में प्रस्तावित क्या आपर की है, जिसे कवि ने कल्मिग में साधा-बढ़ करने का प्रयास किया है—

बादि क्या आपर बलि आई । कल्मिग मह भाखा के पाई ।  
यह कने गिरिगार सोहावा । बगु कबितागु सतरि मुई छावा ।  
सुख मानु तहं राउ बछाना । नी खंड साठ दीप बम बागा ।

X

X

X

जिधि परसाव पुर सबही निधि अन मन ह्य मीमंत ।  
मुठ बिठा पै रेनि नि रावा के चित नित । ४४।३७ ।

इस कृति की क्या इस प्रकार है—यमोहर कनेगिरि यह नगर के राजा सूरजमान का पुत्र था। औरह बर की अवस्था में एक निरा में उसके स्न-सौन्दर्य पर मुग्ध होने के कारण मधुमाळती की सखी अण्णरा खे निरित अवस्था में यद्दानपर की राजकन्या मधुमाळती के पास ले गई। मधुमाळती को देखकर इसके मन में उसके प्रति पूर्ब बन्ध की प्रीति जाग्रत हुई। राजकुमारी के प्रति राजकुमार में भी आकर्षण भाव जाग्रत हुआ।

मेम-स्फुरण के परचात् अण्णराएँ राजकुमार को पुन उसके स्थान पर पहुँचा देती हैं। राजकुमार और राजकुमारी में विप्रलम्भ-संविन्ना जाग्रत हुई। एक प्राता कुमार ने मधुमाळती की प्राप्ति की अनुप्रेरणा से एक सप्ता परिसह के साथ प्रस्थान किया। बार मास तक ब्रह्मयान में यात्रा करने के परचात् ब्रह्म-यान जमर में पड़ गया। ब्रह्म-यान लग्नित हो गया। केवल कुमार बच रहे। लघु की लहरो से वे तट पर आ गए। कुमार ने समीपवर्ती वन में प्रवेश किया। वहाँ एक चौखंडी भिली, जिसमें एक दोम्बा पर एक कुमारी भिली। वह कुमारी चितबिसर्पंत नगर के राजा चितसेन की कन्या थी। छफका नाम देया था। इसका अपहरण एक राक्षस ने किया था। येमा मधुमाळती की सहेली थी। कुमार राजस का बच करता है, और येमा की रक्षा कर चितबिसर्पंत नगर आता है। वहाँ मधुमाळती राजकुमार से मिलती है। परन्तु अपनी माता के भय के कारण मधुमाळती कुमार को सोखे छोड़ अपने घर के लिए प्रस्थान करती है। मधुमाळती अपने घर पर रह है, और राजकुमार के प्रति बचकर आकर्षण मति प्रबल बाधेन बाधन करता जाता है। उसकी माँ श्रेष्ठ से उस पर नभ के साथ

दाता

दुःख कृप

कवि रचना

मेम

पुनि

है। यह कहकर चाराफन नामक एक मय  
है। यह पत्नी ( मधुमासती ) को पित्र ब  
है। यह से अपनी व्याप प्रस्तुत करती है। मधु  
है। यह से करने की शिष्टा में यह सफल होता है।  
है। यह से होता है। यह मधुमासती को लेकर  
है। यह के उपहार में कहा है—

देने से है। पुर्न मारि वन सती कराई।

है। यह से न पारे। सही मरिहि ने कलि बोलारे।

है। यह से मुवाड। जो मरि बिप सो मरे न काड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

[ ३१ ]

मंज से मरि के हीर मे

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

x

x

है। यह से निरव बाड। जो नग वेम सखीन पाड।

३

प्रेम की स्थापना के लिए संमेलन योग-मार्ग का भी प्रस्तावन करते हैं, जिसके अन्तर्गत प्राध्यापन स्थापना की जरूरत के करते हैं—

बस मुनु करम बात बिनु भारी । निरयुक्त रूप वसु की सारी ।  
 तब ही उत्पत्ति सिद्धि यदि स्वासी । अग्नि हीय के डोल बसाया ।  
 सरके पवन अग्नि जग्यारी । ती कष्टक काबा कर भारी ।  
 ती कवि सरव मात बुनि होई । की लक्ष्मी कष्ट गहरे खु सोई ।  
 की ठेही बुनि की कद बाधा । ताही जोति भीतर कबिलासा ।

३२ ।

इस संदर्भ में संमेलन भाषों में उपलब्ध काया-वचना प्रवासी की जरूरत भी करते हैं । कामा विरहित स्थापना के प्रति वे बाधक प्रवृत्त करते हैं । इनके अनुसार संपादन में ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है । इस परिपूर्ति में ही निर्मुक्त, निरंजन की अनुभूति सम्भव हो सकती है । यही आत्मा से आत्मा ( स्वमन से परमन ) का परिचय हो सकेगा ( ३३ ) । प्रेम में आत्मसमर्पण से ही अमरत्व-ज्ञान सम्भव है । जो प्रेम में अवस्थित है, वह कालजयी है—

बसर न होत कोइ अग हारै । मरि जो मरे तेहि सीबु न मारै ।  
 प्रेम के जामि सही बड़े बाधा । सो अग जनमि काठ खेड़ बाधा ।

×

×

×

मिरि तु क (कल) अतिवृद्ध होइ गया । निहृषं अम्बर लक्ष्मी मया ।

३३ ।

‘मधुमाक्षी’<sup>१</sup> के सम्पादक डॉक्टर माताप्रसाद मुस इस ‘मर कर मर होने की आदना’ पर ही ‘मधुमाक्षी’ में भक्ति-स्वल्प का निषेध करते हुए कहते हैं ‘मधुमाक्षी की सारी कहानी इसी प्रकार मर-मर मर होने की कहानी है । मरणादों की कृपा से प्रथम साक्षात्कार होने के बाद ही सुतावस्था में नायक नायिका से मेलन कर लिया जाता है और वह मरण के कष्टों का अनुभव करता है । दोनों के प्रसन्नो से उसे नायिका से पुनर्मिलन का सौभाग्य प्राप्त होता है किन्तु नायिका की माता दोनों को सुतावस्था में अलग कर देती है, और वह पुनः

१ मधुमाक्षी—सम्पादक—डॉ० माताप्रसाद मुस-विश्व प्रकाशन  
 इलाहाबाद, १९६९ मुद्रिका पृ० २५ २६ ।



बस फँसती है। वह पक्षी होकर उड़ जाती है। छड़कर ताराचन्द नामक एक बन्धु-  
राजकुमार के नङ पर वह आ बैठती है। वह पक्षी ( मधुमाक्षती ) को पिंजर बंद  
कर सेता है। मधुमाक्षती (पक्षी) ताराचन्द से अपनी ब्यथा प्रस्तुत करती है। मधु-  
माक्षती को पुनः मानव शरीर में परिवर्तित करने की चेष्टा में वह सफल होता है।  
मनोहर के साथ मधुमाक्षती का विवाह होता है। वह मधुमाक्षती को लेकर  
अपने राज्य लौटता है। कवि कथा के समसंहार में कहता है—

उत्पत्ति भय बेटी बलि जाई । पूर्ण मारि ब्रह्म सती कपारि ।  
मैं छोड़न्हू बेहि मारि न पारेतै । सही मरिहि बे कलि औतारेतै ।  
सस मुनी संसार सुमाळ । जो मरि लिए सो मरे न काळ ।  
सकति काल तेहि निबर न जाळ । जो बग पैम सखीबन पाळ ।  
पैम अमिम बे पाइल बासा । सस काळ तेहि जाव न छासा ।  
बेहि मी पैम अमी सौं परिचै करै कपार ।  
औंधी सखस बस कली से निमहि पैम अवार ।

[ ५१८ अ ]

मंजु ने ब्रह्म के लिए प्रेम-रत्न की स्वीकार किया है। उनका स्पष्ट  
वक्तव्य है कि प्रेम संसार में अमोक्ष रत्न है। जिसके हृदय में प्रेम है उसका संसार  
में जन्म बारम्बार करना व्यर्थ है (२८)। जिसके हृदय में प्रेम रेखा से संस्किष्ट  
बिज बग जाता है वह सृष्टि को सह-मम देखता है। और इस ब्रह्म ज्ञान से  
वह आत्मवर्धन करता है (३०)। प्रेम की तीव्र अनुभूति के क्षिमे निरह अवेक्षित  
है। निरह का सुबन सृष्टि के साथ-साथ ही हुआ। प्रेम-दीप से आलोचित  
अन्तस् में अमरता का बास है—

सिद्धि भूख निरहा जग बाबा । पै जिनु पुष्प पुष्पि को पाबा ।  
पैम परारण अमल अमोक्षा । निहूँ जिन जानहु यह बोधा ।

×

×

×

×

पैम दिया जाके बट बारा । तेहि सय भावि अन्त उजियारा ।  
निरह बीठ बेहि के धर होई । सदा अमर रहै मरे न सोई ।

२१।२५।

प्रेम की साधना के लिए योग-मार्ग का भी प्रस्तावन करते हैं, जिसके अन्तर्गत प्राणायाम साधना की जगह ले करते हैं—

बस मुनू करम बाध किछु आई । निर्गुन रूप बैसु ली साई ।  
 उन ली उरख सेहि गहि स्वासी । अग्नि होय न दोस बतासा ।  
 अकै पवन अग्नि सरसाई । ती कटक काया कर भाई ।  
 ती लखि सरन बाध भुनि होई । ली लखि कस्त यहै छु सोई ।  
 ली तेही भुनि नौ कर बाधा । ताही जोति नीतर कबिजासा ।

३२ ।

इस संदर्भ में योग-मार्ग में उपसङ्ग काया-साधना प्रकाश की जगह ले करते हैं । काया विवर्जित साधना के प्रति वे आग्रह प्रकट करते हैं । इनके अनुसार सत्त्व में ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है । इस परिमृष्टि में ही निर्गुन निर्जन की अनुभूति सम्भव हो सकती है । यही आत्मा से आत्मा ( स्वमन से परमम ) का परिचय हो सकेगा (३३) । प्रेम में आत्मसमर्पण से ही अमरत्व-ज्ञान सम्भव है । जो प्रेम में अवस्थित है, वह कालवधी है—

अमर न होत कोइ जय हारी । मरि जो मरे तेहि नीचु न मारी ।  
 पैम नै जानि सही कोई जाना । ली जय अग्नि काठ सेई जाबा ।

×

×

×

निरिधु क (पल) अलिप्त होइ वसा । निहचै बन्धर ताहि कै भया ।

३३ ।

‘मधुमाखटी’<sup>१</sup> के सम्पादक डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त इस ‘मर कर बमर होने की साधना’ पर ही ‘मधुमाखटी में भक्ति-स्वल्प का निर्धारण करते हुए कहते हैं ‘मधुमाखटी की सारी कहानी इसी प्रकार मर-मर बमर होने की कहानी है । अष्टराश्री की कृपा से प्रथम साक्षात्कार होने के बाद ही मुसाबस्ता में नायक नायिका से अलग कर दिया जाता है और वह मरण के कष्टों का अनुभव करता है । पैसा के प्रयत्नों से उसे नायिका से पुनर्मिलन का सीमाव्य प्राप्त होता है किन्तु नायिका की माता दोनों को मुसाबस्ता में अलग कर देती है, और वह पुनः

१ मधुमाखटी—सम्पादक—डॉ माताप्रसाद गुप्त-विम प्रकारण  
 स्थावर १८६१ मूमिका पृ० २५ २६ ।

भरण के कष्टों का अनुभव करता है। उसका तीसरी बार का भरण ही नासिकी से मिलन उसकी जन्म-जन्मान्तर की धार्मिका का पूर्ण करता है और उनका स्थायी मित्र प्रमाणित होता है।

काव्य विषय की दृष्टि से यह कड़वक सेवी की कृति है। इसके प्रत्येक कड़वक में पौष बोधादयो के परचाएँ दोहों के रूप में एक चत्ता का रूप है। आपसी कुतूहल तथा इस सन्दर्भ के अन्य सूची कवियों ने रानियों के सती होने का व्यङ्ग्य किया है, परन्तु मर्मज्ञ इस प्रकार की योजना नहीं करते हैं। इसका स्पष्टीकरण करते हुए मर्मज्ञ ने कहा है—

उत्पति जय बेटी बलि आई। पुण्य मारि ब्रह्म सती कराई।  
मैं छोड़ल एहि मार न पारेउँ। सही मरिहि जो कलि बँतारेउँ।  
सँसार सुझाऊ। जो मरि जिए सौ मरे न काऊ।

इस प्रकार सती प्रसंग का सन्दर्भ इस कृति में नहीं ग्रहण किया गया है।

सूची प्रेमाख्यात का काव्यों में विप्रसम्भ-संविदना निरूपण के सन्दर्भ में बाछूमासा, की योजना का पाकन एक निवमित परिपाटी के रूप में किया गया है। यह परम्परा अपभ्रंश के चरित तथा प्रेमाख्यातक काव्यों में भी प्रस्तावित की गई और इस परम्परा का स्पष्ट संरक्षण मालोच्य कृति में भी किया गया है। मर्मज्ञ ने बाछू मासे का बारम्भ साबन से किया है। यह अंश 'कामुन' के छीफन-स्वप्न को प्रस्तावित करता है—

कामुन सही निपति मुनु मीरी। बिछू अपिनि तन जरि मा होरी।  
चरुह पात कर रहा न गाऊँ। जानहु बरे बिछू के बाऊँ ४०१।३२७।  
दुमर माय सखी मुनु बाता। पिऊ बिसेस मोहि बिछू धंवाता।  
किमि निरवाही दुसहँ सिपाखा। पित न सेव गँ बोवन बाबा।  
बिछू मारि पर बैसी बाबा। रैन नमै सिर बरिसै पासा।<sup>१</sup>

४०५।३३८

१ (क) कवि बनारसी बास ने 'मधुमाकती' और 'धुमावती' का उल्लेख करते हुए कहा है वे इन पोषियों का पाठ रात्रि में (जैनपुर में) किया करते थे—

तब घर में बैठे रहँ जाहि न हाट बजार।

मधुमाकति मिरगावति पोषी बोइ उबार।

ते बौबहि रजनी समै जाबहि गर दस बीस।

जाबहि भव बातहि करहि, निव उठि रेहि बलीन—

अर्थ कबानक—नामूरामप्रेमी पृ ३८।

भास्विक मुहम्मद जायसी — भीर इंसान बेहूषी ने जल्दी मसनवी 'रिमुबल  
मारिब' (र मुवे-उल-आरफीन) में जायसी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

ये बसिक नाम मुहम्मद जायसी ।  
बह कि परमावत बिगुने है छिपी ।  
मैं जास्कि से बह खोर छाहब कमाछ ।  
इसका बकबर ने किया बरजाछ् हाक न  
होके मुफ्ताक बुन्नाया सिताब ।  
छाके हो सोहबत से उनसी कैवबाब न

—जायसी प्रचारिणी पत्रिका भाग २१।१९४४ ४५ ।

इस समर्प के अनुसार जायसी बकबर के समकालीन थे । परन्तु जब तक  
की उपलब्ध सद्यः सामग्रियों में से किसी के आधार पर इसका समर्पण नहीं होता  
है । 'बास्किरी कमाब' नामक कृति में अपने जन्म-काल का उल्लेख करते हुए  
कवि ने कहा है—

मा अवतार भीर मन सही । तीस बरिस कमि अमर बही ।

अर्थात्, मेरा जन्म ६०० ख्रिस्ती (सन् १४२२) में हुआ था और तीस वर्ष  
के पश्चात् (अर्थात् मैं) मैंने काव्य प्रवचन किया । इस ग्रन्थ में जायसी एक जन्म  
मद्त्वपूर्वक बटना का उल्लेख करते हैं —

जासत उचत बार विनि ठागा ।

मा भूकम्प जलत अनुलागा । बास्किरी बकाम ४ । १२ ।

इस प्रकार जायसी का जन्म नहीं सही ख्रिस्ती (१४२२ १४८४) के जन्म  
हुआ । परन्तु इससे बह वर्ष नहीं लिखा जा सकता कि जायसी ६०० ख्रिस्ती के  
आरम्भ में ही हुए थे । जायसी ने ऊपर की पंक्ति में एक भूकम्प का उल्लेख  
किया है । इस वर्ण के आधार पर यह वर्ष किया जाता है कि जायसी का जन्म  
समय पर भूकम्प आया था । इतिहास के प्रमाण के आधार पर यह उल्लेख  
प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है । परन्तु यहाँ एक प्रसन्न संकेत होता है ।  
भूकम्प जायसी के जन्म के बराबर पर आया था क्योंकि जब वे 'बास्किरी कमाब'  
की रचना कर रहे थे, उस समय भूकम्प आया था । मेरी धारणा है कि जन्म-

प्रणयन के समय के भूकम्प का उल्लेख जायसी अपनी इस कृति में करते हैं। स्पष्टीकरण के लिए मैं पुनः इन पंक्तियों को प्रस्तुत करता हूँ—

भा भवतार मोर नव सरी। तीस बरिस ऊपर कवि बरी।

आकथ उचत बार विधि ठामा। भा भूकम्प जवत बहुमाना।

‘भूकम्पक’ की घटना का सम्बन्ध ‘तीस बरिस ऊपर कवि बरी’ से ही कल्पा है। मनेर शरीफ से ‘पद्यावत’ की जो प्रति प्राप्त हुई है उसमें अक्षरावट की पोबी भी सम्मिश्रित है। यह प्रति साहजिकी काकीन है। ‘अक्षरावट’ की पोबी के अन्त में १११ द्विपरी का उल्लेख है। यह मूल प्रति की प्रतिनिधि है। अतः ‘अक्षरावट’ का रचना काल १११ ई० सन् १५०२ ई० है। इस समय एक भूकम्पक घाते का वर्णन इतिहास ग्रन्थों में मिलता है।<sup>१</sup> यदि इस निष्कर्ष को हम स्वीकार करते हैं तो जायसी का जन्म सन् १४०५ ई० में हुआ था। जायसी ने ‘पद्यावत’ की रचना तिवि का उल्लेख इस प्रकार किया है—

सन नव सै सैतासिस यई। कथा बारम्भ बैन कवि कई।

पद्यमावत माता प्रसाद पुन १९॥

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी उद्यावली के प्रथम संस्करण में १४७ पाठ स्वीकार करते हैं, परन्तु द्वितीय संस्करण में वे १२७ (१५२०) पाठ स्वीकार करते हैं।

इस तिवि से दोरणाह के राज्य संवत् ११ सामन्तस्व स्थापित नहीं हो पाया है। श्री गोपाल चन्द्रसिंह की प्रति में १२७ पाठ है। कथा मवन (कैबी अक्षरों में) की प्रति में सन नी से अत्तीस जव रहा पाठ मिलता है। बिहार शरीफ खान पुस्तकालय की सुरक्षित प्रति में १४५ पाठ है। परन्तु ‘पद्यावत’ में प्रस्तापित उसके रचना-काल से जायसी की जन्म तिवि का स्पष्ट संबंध नहीं मिलता है। इस प्रकार यदि हम इस विचार को स्वीकार कर सकें कि भूकम्प की घटना ‘आसिरी ककाम’ की रचना के समय घटी थी, तो जायसी का जन्म लगभग ५८१ द्विपरी या सन् १४७५ ई० में हुआ था। सन् १५०५ में उन्होंने ‘आसिरी ककाम’ की रचना की, तथा सन् १५२१ में उन्होंने ‘पद्यावत’ की रचना की। यदि ‘पद्यावत’ के रचना-काल के रूप में ‘सन नव सै सैतासीस’ को स्वीकार करते हैं,

तो वह निर्वर्ण निकलता है कि 'पद्मावत' का प्रथम आवृत्ति में सन् १९५२ ई० में आरम्भ किया। प्रथम संस्करण के अनुसार 'पद्मावत' के रचना-काल के समय इसकी आयु ५७ वर्ष की थी, और द्वितीय के अनुसार 'पद्मावत' के रचना-काल के समय इसकी आयु ७७ वर्ष की थी। इस सम्बन्ध में 'पद्मावत' के संस्करण में विचार किया गया है।

### आयसी का स्थान

आयसी के जन्म-स्थान का निर्धारण भी अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। 'पद्मावत' ( स्तुति छन्द ) में आयसी ने 'आयस' का उल्लेख इस प्रकार किया है।

आयस नगर बरम अस्थानु। तहाँ जाइ कवि कीन्ह बखानू। १।

इस संस्करण से यह वर्ष निकाला जाता है कि 'आयस नगर' आयसी के जन्मे ( सूफी सम्प्रदायक के लिए ) बरम-स्थान था। किसी अन्य स्थान से इस वर्ष स्थान पर जाकर कवि आयसी ने 'पद्मावत' का प्रथम किया। 'बाबिरी कदाम' में भी कवि आयसी ने इसी प्रकार कहा है—

आयस नगर मोर अस्थानु। नगर क नाम आदि उक्थानु।

तहाँ दिवस दस प्युने आयस। मा यैराय बहुत सुख पावस। १५२।१०।

इस संस्करण में भी आयसी ने किसी अन्य स्थान से जाकर आयस में बसने का उल्लेख किया है।

आचार्य रामकृष्ण शुक्ल की यह धारणा है आयसी आयस के ही रहने वाले थे। 'पद्मावत' का आरम्भ उन्होंने आयस में ही किया था। कुछ अवधि के लिए वे आयस से कहीं अलग बसे हुए थे। फिर आयस जाकर इन्होंने इस ग्रन्थ की पूर्ति की। परन्तु कतिपय विद्वानों ने इस प्रकार के पाठ की प्रस्तावना की है— 'तहाँ यह कवि कीन्ह बखानू'। ऐलिय-आयसी प्रन्नावली डॉक्टर जाता प्रधाव मुता, पृ० ११४। 'आयस नगर बरम अस्थानु'। तहाँ यह कवि कीन्ह बखानू। 'पद्मावत' पृ० २२, डॉ० बानुदेव शरण अग्रवाल। ४०। पूर्वकाय्य शास्त्री ने आयसी को आयस-नगर के कंधावा मुहल्ले का निवासी माना है ( पद्मावती मुद्रिका पृ० १ )। इस

प्रकार की भी प्रस्तावना की गई है कि जायसी माथीपुर के निवासी थे। यहाँ से वे मानिकपुर ( प्रतापगढ़ ) में अपने परिहास में आकर बस गए थे। ( देखिए—  
नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, संख्या १२२१ )। इस प्रकार जायसी के  
जन्म-स्थान के विषय में हम स्पष्ट निर्णय नहीं कर सकते हैं।

ऐसी अनुमति है कि जायसी कुम्हड़ और जाने थे। इस का उत्तम जायसी  
ने स्वयं इस प्रकार किया है—

एक नयन कवि मुहम्मद बुनी। सोह बिमोह बिह कवि मुनी।  
बाँद बइस बन बिधि बीतारा। बीन्ह कलंक कीन्ह उबिबारा।  
बन भुम्हा एकहू नैनाही। उवा सुक बस मकतन्ह माहा।

×

×

×

×

एक नेन बस बरपन बी रोहि निरमस पाठ।  
सब बपवंत पाव गहि, मुल बीबहि के पाठ।

जायसी ने इस कथन की आशुति भी की है—‘मुहम्मद बाई’ रिति तबी एक  
छरबन एक बीबि’।<sup>१</sup>

### जायसी की गुरु-परम्परा

सत्तिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औमिया की शिष्य-परम्परा में थे। इस  
परम्परा की दो शाखाओं का उत्तम मिश्रण है प्रथम—मानिक पुर-काल्पी,  
द्वितीय—जायस की। इस परम्परा को इस रूप में प्रस्तावित किया जाता है—

१—इस प्रकार की अनुमति है कि रोखाह अपने दरबार में जायसी को बैठ  
कर हंसा था। जायसी ने प्रश्न किया—बीहि का हंसहि कि कोहरहि ? अर्थात्  
यह हंसी मुझपर है अथवा कुम्हार पर ( खूबन कर्ता ) पर। रोखाह इन पर  
अत्यन्त क्रोधित हुआ।

रोस गिबामुद्दीन बीखिया (मृत्यु सम् ११२१ ७२१ हिजरी) ।

सेख खिरामुद्दीन ।

रोस असाउल हक ।

सेख कुतुब आलम (सन् १४११) ।

रोस हसमुद्दीन ( मामिक पुर ) ।

सैयद राजे ( जमिन्दार ) ।

सेख दानियाल ।

सेख मुहम्मद ।

रोस अल्लाह ।

सेख बुरहान ( कास्पी ) ।

सेख महदी ।

मलिक मुहम्मद जायसी ।

जायस

सेख असरफ बर्हानीर ।

सेख हाजी ।

सेख कमाक

सेख मुहम्मद या मुबारक ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जायसी के दो मुस ने प्रथम—  
मुदीरुद्दीन बीखीय—सैयद असरफ । इन परम्पराओं का उत्प्रेक्ष जायसी ने  
'पचावत' में इस प्रकार किया है—

(१) सैयद असरफ पीर पियारा । बेहि मोहि पन्थ बीन्ह उमियारा ॥

(२) मुस मोहिरी छेक मैं सेबा । जले अताइल बेहिकर बोना ॥

परन्तु 'बाखिरी कलाम' में कवि केवल 'असरफ बर्हानीर' का ही स्तवन  
करता है । वास्तविकता यह है कि सुफी सन्त असरफ की मृत्यु ८०८ हिजरी  
में ही हो चुकी थी । जायसी उनके अनेक वर्षों पश्चात् हुए थे । वास्तविकता  
के स्पष्टीकरण के लिए विद्वानों का ध्यान में इस तथ्य की ओर आकर्षित करना  
चाहता है । जायसी अपने को बर्हानीर निरुद्धी की परम्परा के अन्तर्गत मानते  
हैं । यथा—सैयद असरफ पीर पियारा, सिन्ह मोहि पन्थ दीन्ह उमियारा ।



जहाँगीर जोर बिस्ती, मिहकलक जस बाँर ।

जोह मलजुम बकत के, हौं उम्हके घर बाँर ।

अर्थात्, बिस्ती बंध के जहाँगीर संसार के स्वामी और कर्ममा के सम निष्कलंक थे । जायसी अपने दो इसी परम्परा का खेबक मानते हैं । जहाँगीर की परम्परा में हाथी खेब हुए । इनके घर में दो दीपक-लग हुए, प्रथम से मुबारक और द्वितीय खेब कमाक । इतना उल्लेख करने के पश्चात् जायसी अपने मुख की जर्नी इस रूप में करते हैं—

गुह मोहवी खेबक ॥ सेवा । जसै उठाइक बिन्दु कर खेबा ।

‘बिज रेखा’ में जायसी खेब मोहवी को ही अपना मुख मानत हैं ।

महवी मुख खेब कुरहानु । काकसि मगर ऐहिक मस्थानु ।

सो मोटा मुख, हौं सिन्धु खेबा । घोषा पाप पालि सरि मेका ।

बिजरेखा ७०

जायसी ने ‘पद्मानवत’ में अपने चार मित्रों का उल्लेख विशेष उत्साह के साथ किया है । मझिऊ मुमुक साकार काश्मि उसोने मिवाँ और बड़े खेब ।

१—चारि मीठ कवि मुहम्मद पाए । जोरि मिवाई खीरि पहुँचाये ।

मुमुक मलिक बी पंडित जानी । पहिलैं येह बात उम्ह जानी ॥

पुनि सकार कादन मति माही । खांडे दान उनै निज बाही ।

मिया बल्लोने सिब जपाए । बीर बोल एन चारम जुम्भक ॥

खेब बड़े बड़ सिद्ध बखाने । कइ बरेस सिद्धन बड़ बाने ।

चारिउ अतुर बसी गुन फड़े । बी संम जोष घोसाई गड़े ॥

बिरिख बी भासहि अन्धन पासा । अन्धन होहि मलय मिरि बासा ।

मुहम्मद चारिउ मीठि मिळि गए बी एकइ बिस ।

एहि जग साय निबाहा बीहि जय विधुरन कित ।

मुमुक पट्टी ‘काँचना’ के निवासी थे । साकार काश्मि ‘सासार पट्टी’ के निवासी थे । ये साहजहाँ ॥ समय तक जीवित थे ।

—नामरो प्रचारिणी पत्रिका, भाग २१ पृ० २१ २६

बागसी की मूल्य समेती के निकट समीपवर्ती जंगल में किसी दुर्मर्या के कारण १४१ हिजरी में हुई मानी जाती है ।

जायसी की रचनायें

[क] पद्मावत — पद्मावत के रचनाकाल का तस्मिन् करते हुए बागसी ने लिखा है—

‘सग भी सी संजामि सई । कथा बरिष बेन कवि कही ।

इस शब्द के अनेक पाठान्तर विभिन्न विभिन्न प्रतियों में मिलते हैं अर्थात् ‘नौ सी संजामि, और नौ सी संजामि’ रूप भी मिलते हैं । इसकी कथा की भा बुकी है । इस सम्बन्ध में हम निम्नवात्यक निर्वय नहीं से सकते हैं । इनमें से कौन सी शिबि उचित है इसका निश्चय सम्भव नहीं हो सका है । समस्या के समाधान हेतु किए गए प्रयत्नों में ‘नौ सी संजामि’ को ही रचना के मूल पाठ के रूप में स्वीकृति का आग्रह किया गया है । बागसी ने सिद्धी के मुखवान और साई-साह के रूप में दोरसाह का अभिप्रेषण किया है<sup>१</sup> । परन्तु सन् १२७ में दोरसाह एक सामान्य जागीदार था । उसने सन् हि० १४६ में बीसा में हुमायूँ को पराजित किया, तथा १४७ में कन्नौज में हुमायूँ को पुन पराजित कर यह सिद्धी का स्वामी बना । अतः सन् १४७ हि० ही पद्मावत का प्रचलन-काल सिद्ध होता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह धारणा है कि कवि ने सन् १२० में कथा का आरम्भिक वर्णन ही कहा था और उसे दोरसाह के सम्म पूरा किया । परन्तु १२७ में कथा आरम्भ करके दोरसाह की प्रशंसा का क्या कारण है यह स्पष्ट नहीं हो पाता<sup>२</sup> ।

इस सम्बन्ध में यह भी प्रस्तावित किया गया है कि १२७ शिबि एक प्राचीन बंका जमाना में भी मिलती है । अतः वही शिबि ‘पद्मावत’ की रचना-शिबि

१—दोरसाह सिद्धी मुखवान । बरिष खण्ड तपै अस भागू ।

× × ×

औ बरिष बरिष पुहुमिपति भारी । देखि पुहुमि सब सिमिटि संमारी ।

बीन् असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज ।

पात साहि गुन अग के अग मुन्दार मुहम्मद । १३।

२ देखिए-पद्मावत-भूमिका-पृ० ३० डॉ० माया प्रसाद गुप्त ।

है। इस प्रस्तावना को स्वीकार करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त यह संकेत करते हैं, 'आमाबोल का किया हुआ यह मापान्तर बामसी की अपनी प्रति के पाठ को छेकर किया गया है, ऐसा मापान्तरकार ने कहीं नहीं कहा है, और प्रतिलिपियों में एक पाठ २२७ मिलता ही है इसलिए अधिक से अधिक नहीं कहा जा सकता कि कुछ मापान्तर 'पद्मावत' को जिस प्रति से किया गया है उसमें पाठ २२७ था'। आचार्य शुक्ल २२७ पाठ के समर्थन में कहते हैं 'कवि ने बोहे से पद्य तो सन् १६२० में बनाये थे परन्तु बम्ब को १६ या २० वर्ष पद्मावत घरवाह के समय में पुरा किया इसी से कवि ने भूतकालिक किया बहा ( या ) और कहा या प्रयोग किया है'। 'फारसी लिपि में सत्ताइस और सैतासीस में भ्रम हो सकता है। इस 'पद्मावत' का एक पुराना बंगला अनुवाद है इसमें भी जब से सत्ताइस पाठ माना गया है—'सेख मुहम्मद जालि बख्त रचित ग्रन्थ संख्या सप्तविंशतवर्षत' यह अनुवाद बराकान राम के बजीर मयल ठाकुर ने सन् १९३० ई० के जात-यात जाली-ठगाली नामक एक कवि से कराया था' १।

डॉ० माता प्रसाद गुप्त इस समस्या का भी समाधान प्रस्तुत करते हैं और लिपि की दृष्टि से भी सन् २४७ के पाठको ही स्वीकार करते हैं ४।

१ पद्मावत—भूमिका—पृ० ३।

२ बामसी ग्रन्थावली—भुक्ल, पृ० ९।

३ बामसी ग्रन्थावली भूमिका।

४ इस समस्या पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार करना अपेक्षित है, यह है लिपि और लेखन-प्रणाली की दृष्टि से। प्रश्न यह उठता है कि सत्ताइस, सैता सीस और पैतासीस में से कौन सा पाठ ऐसा हो सकता है, जिससे लिपि जनिष्ठ विकृतियों के कारण दोष हो पाठ बन गए होंगे।

सैतासीस को सैताइस कहने की भूल की गई, और इसका कारण यह है कि सत्त के फारसी लिपि में लिखे जाने पर बीच में आने वाले 'जस्त-नाम' को इस प्रकार लिखने की प्रवृत्ति की क्रिया में सत्त जस्त से अनभिज्ञ लिपिक उसे सैताइस पढ़ने लगे। फिर तो सैताइस को और बाद के लिपिकों ने सत्ताइस की विरुद्ध समझ कर सत्ताइस 'सैता में सीन के साथ लगे हुए थे' के मूठों को हटा दिया और पाठ 'सत्ताइस' कर दिया। सैतासीस से 'पैतासीस' भी इसी प्रकार फारसी लिपि की भ्रष्टियों के कारण बना फलतः यह स्पष्ट है कि रचना की लिपि मूल पाठ में 'जी से सैतासीस' ही रही—भूमिका पृ ३,।

डॉ० बामुनेन घरान अग्रवाल अपने सम्पादन में 'सम्भू गो र्दे' सेतामीस पाठ को स्वीकार करते हैं, परन्तु इसकी प्रामाण्यता में १२७ के पाठ के पक्ष में अपना मत देते हैं—'इतिहासिक प्रतियों के आधार पर १२७ पाठ सबसे अधिक प्रामाण्य मान पड़ता है। पद्मावत की सन् १८०१ की लिखि एक अन्य प्रति में भी प्रत्यक्ष रचना का १२७ मिला था। छोब रिपोट-बौद्धिक नैतिक विवरण १९११ : १ में ये अर्थ करते समय घोरछाह बासी युक्ति पर ध्यान देकर १४७ पाठ को समीचीन ठिक्का था किन्तु अब प्रतियों की बहुत सम्पत्ति एक निश्चित पाठ की युक्ति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि १२७ मूल पाठ था और बायसी ने पद्मावत का आरम्भ इसी तिथि में, वर्षात् ११२१ ई० में कर दिया था। प्रत्यक्ष की समाप्ति जब हुई कहना कठिन है किन्तु कवि ने उस काल के इतिहास की कई प्रमुख घटनाओं को स्मरण देखा था। बाबर के राज्य काट का तो स्पष्ट उल्लेख है ही (बाबरी कलाम ८१२) उसके पश्चात् हुमायूँ का राज्याभिषेक (१५११ ई०) बीसा में घोरछाह द्वारा उसकी हार (१५२६ ई०) कन्नौज में घोरछाह की उस पर पुनः विजय (१५८८ ई०) फिर घोरछाह का दिल्ली के सिंहासन पर राज्याभिषेक (१५८८), ये घटनाएँ उनके जीवन काल में ही घटी।'

इसी प्रकार की भावना की प्रस्तावना डॉ० अग्रवाल ने 'पद्मावत' का रचना काल सन् १२७ या १४७ दीर्घक लेख में किया है।'

'पद्मावत' के २३ वें शोध में बायसी ने जो कुछ अपने विषय में लिखा है उससे सुनिश्चित होता है कि वे काफी दिनों तक तपस्वी या सुफी धार्मिक के रूप में विद्यमान अपनी कविता करते रहे, और अपनी उस स्थिति की पुष्टि वे कुछ में विद्यमान मार्मिक की स्थिति से करते हैं—

बेहि के मोल निरह नै खाया । नई तेहि रूप नहीं तेहि दयाया ।

करे मेह 'रहा' मा गया । भूर कपेटा मारिह अपरा ।

अपने विचार का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष दिया है कि निम्नलिखित दोहा रचना की समाप्ति पर लिखा गया है—

१ पद्यावत—प्राक्कल्प ३३। डॉ० बामुनेन घरान अग्रवाल ।

२ परिपद पत्रिका—( बिहार राज भाषा परिपद-अक्टूबर १९५२ ई०

मोहमय कवि को प्रेम का ना तनु एकदम मौसु ।

वेहि मुस बेना तेहि हंसा, मुनि कवि बाए जौसु ।

डॉ० माता प्रसाद पुत इन निपकवों पर आपत्ति प्रकट करते हैं । उनकी आपत्ति उचित लगती है ।

(१) जहाँ तक एक दीर्घ काल तक ( १८-२० ) वर्षों तक कावसी के तपस्वी या सूफी साधक के रूप में लिखे रहकर 'पद्मावत' की रचना करने की बात है, वह मेरी समझ में उद्बुध पंक्तियों से नहीं निकलती है । इन पंक्तियों का पाठ मेरी 'आमसो सम्बावसी' में इस प्रकार है—

वेहि के बोक बिरह के पाया । कहूँ तेहि मुख जहाँ तेहि छाया ।

करे मेस रहस भा सपा । बुरि जगना नानिक छया ।

(२) जहाँ तक उद्बुध दोहे के रचना के समाप्त होने पर लिखे होने की बात है, वह भी समझ नहीं निकलती, 'मुनि कवि बाए जौसु' का अर्थ इतना ही है कि उसके नाम्य को सुनकर ( उस हँसने वाले की आँखों में ) जौसु बा गए । उसने उन्हें काव्य पूरा करके सुनाया इस प्रकार का आशय नहीं निकलता ।<sup>१</sup>

'पद्मावत' की भूमिका में डॉ० बामुदेव चरण अग्रवाल संवत् १२७ के फल के समय न की दृष्टि में इस प्रकार की प्रस्तावना करते हैं 'मेरे मित्र श्री संतु प्रसाद बह्मूना ने मुझे एक बुद्धि पूर्ण सुझाव दिया है कि पद्मावत के विविध हस्त लिपियों की तिथियाँ इन पद्याओं से मैस खा जाती हैं । हि० १२७ वालो कवि लिखित प्रति मूल प्रति थी । १३९ वाली प्रति २ वी मूल प्रति हुमायूँ के राग्यारोह्य की स्मृति-रस में बामु की गई । हि० १४३ वाली प्रति तिसका माता प्रसादजी मुत्त ने पाठान्तर में बल्लेस क्रिया है, चेरघाह के चौथा पद्य में हुमायूँ पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त बामु की गई, १४७ हि० वाली चौथी प्रति चेरघाह की हुमायूँ पर कलीब-विजय की स्मृति का संकेत देती है । पाँचवीं या अन्तिम प्रति १४८ की है जब चेरघाह दिल्ली के ताल पर बट्हर राज्य करने लगा था । मूल ग्रन्थ जैसे था तैसा रहा । कैयस पाई

बल्ल बल्ला अंत उस समय बोझ गया। 'पद्मावत' जैसे महाकाव्य की रचना के लिए चार-पाँच वर्षों का समय लगा हुआ। और भरसाह को बासीबाद होने वाली पटना के परबात ही छोड़ कर उस की प्रपत्ता वाला मध्य पूर्व में बोझा गया होगा।<sup>१</sup> परन्तु इस प्रकार के निष्कर्ष का अब तक कोई आधार न हो जब तक इस से किसी निष्कर्ष पर पहुँचना समस्या का समाधान नहीं प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार 'पद्मावत' के रचना-काल से सम्बन्धित चारों को निम्नलिखित वर्षों में प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) प्रियदर्शन और सुभाकर द्विवेदी — उन्होंने सन् १४७ पाठ स्वीकार किया है।<sup>२</sup> 'बासी' की इस वर्ष के अन्तर्गत आते हैं।<sup>३</sup> डॉ० रामकुमार वर्मा<sup>४</sup> तथा जे० खिरक भी इसी मठ का समर्पण करते हैं।<sup>५</sup> डॉ० भासा प्रसाद गुप्त इस मठ का समर्पण प्रबल शब्दों में करते हैं।

(२) रामचन्द्र शुक्ल<sup>६</sup> सन् १२७ खिलवी का समर्पण करते हैं। इस वर्ष में पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय<sup>७</sup> 'हजारी प्रसाद द्विवेदी', परमुराम 'बतुर्बेदी' डॉ० कमल कुल श्रेष्ठ<sup>८</sup> आदि विज्ञान आते हैं।

(३) आरत कला बख्त की कबी सिन्धु की प्रति में ११६ पाठ मिलता है 'सन् १० से छत्तीस वर्ष रहा। क्या उरुहि बल्ल कवि कहा। इस प्रकार मिला मिला प्रतियों के आधार पर 'पद्मावत' की निम्नलिखित रचना तिथियाँ प्रस्तावित हैं १२७ हि० १३१ हि० १४२ हि०, १४७ हि०, और १४८ हि०।

१ पद्मावत—(शालकम्प) डॉ० बापुदेव शरण अग्रवाल पृ० ३३ ३४।

२ पद्मावती—प्रियदर्शन तथा सुभाकर द्विवेदी—पृ० ३२।

३ द्विवेदी साहित्य का इतिहास पृ० ८९ ४ पद्मावती—पृ० ४० की० शिरोक मुद्रिका। ५ खिलवी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—२३ २४।

६ बापसी ग्रन्थावली, द्वितीय संस्करण। ७ बापसी पत्रिका प्रसिद्धा-भाग

१२ पृ० १४२ ८ खिलवी साहित्य पृ० २४० ४१४६ मुद्रिका काव्य संज्ञा।

१० बल्लभ मुहम्मद बापसी पृ० २४ २५।

पद्ममावत की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ

(१) कामलदेव्य रिलेघम्ब ऑफिश खम्ब की प्रति—यह २१८ पन्नों की प्रति है। इसके प्रतिलिपिकार इबादुल्लाह महमद खान मुहम्मद गोरखपुर के निवासी थे। शब्दांक ११०७ हि० में दीनानाथ नामक व्यक्ति के लिए यह प्रतिलिपि की गई थी।

(२) सरस्वती भवन पुस्तकालय ( काशी ) की प्रति—इसमें २१६ पत्र हैं।

(३) एडिन्बरा विश्वविद्यालय की प्रति—पत्र संख्या ३३८ है। इसका प्रति लिपि काळ सन् ११४२ हि० है।

(४) कामलदेव्य रिलेघम्ब ऑफिश, खम्ब की प्रति—इसमें १८० पत्र हैं।

यह प्रतिलिपि काशी लिपि में है। इसका प्रतिलिपि-काळ सन् १११४ हि० है।

(५) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रति—सीधे में मुद्रित प्रति है। इसकी लिपि फारसी है। इसमें महमद अली मुन्शी का सर्व्व अनुवाद भी संलग्न है। इसकी एक प्रति सैयद कल्ले मुस्तफा बाबली के पास भी है।

(६) पण्डितिक सोसाइटी बंगाल की प्रति—इसमें १६७ पत्र हैं। इसकी लिपि फारसी है।

(७) सैयद कल्ले मुस्तफा की प्रति—यह प्रति खलिष्ट है।

(८) मेजर खरीफ की प्रति—यह फारसी बजारों में मिली है।

इन प्रतियों के अतिरिक्त बिहार खरीफ (फारसी लिपि लिपि-काळ १७२४) रामपुर राज्य पुस्तकालय की प्रति (इसमें अत्येक बीगाई के नीचे राज्यों का फारसी पर्व्व की दिया हुआ है। इसमें कदुरलामा भी सम्मिलित है)। माया की दृष्टि से यह महत्व की है।

पद्ममावत का विषय पक्ष

पद्ममावत की कथा-अवतारणा का परिचय देते हुए आर्य्य ने इस प्रकार कहा है—

सग नी सँ सैतामि अहा । कथा अरम्भ बैन कवि अहा ।

सिंहल दीप पदविनी रानी । रत्न सेन पितर अह अनी ।

अनादहीन बैहली मुलतानु । रापव केतन कीन्ह अधानु ।

मुना साहि गढ़ सेंकन बाई । हिनू तुरकनू भई सराई ।

बादि अन्त बस बापा बहि । जिसि भापा बीनई कही ।

इस प्रकार अपने कथा नियोजन में जायसी ने सत्य और कल्पना का योग किया है । इसमें इतिहास और लोकवाचा से उपलब्ध तथ्यों का समावेश है । रज सेन की योद्धा पाशा, पद्मिनी का आदर्श तथा योराबादस के आदर्श मूलक वीरगान की पटना भारतीय इतिहास की अमर परम्परा है । परन्तु इनसे सम्बन्धित काव्य कर्मों में इतिहास की स्पष्टता पर कल्पना और लोक जीवन में प्रचलित आदर्श मूलक उन्नतता की भावना ही अधिक प्रसार पायी है । इस सन्दर्भ की एक कृति 'योराबादस रा कन्नित' उपलब्ध है । 'पद्मावत' की कथा के थोठे के विस्तरेण के सन्दर्भ में इस रचना का मूल्यांकन अपेक्षित है । इस परम्परा की एक अन्य कृति है 'हिनू रतन रो बठवाई' अत्यन्त कृति 'योराबादस की बात' भी इस सन्दर्भ में उपलब्ध है । इन कृतियों के सन्दर्भ में 'पद्मावत' की कथा का जब हम विस्तरेण करते हैं तो 'पद्मावत' के कथा-रत्न की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है ।

'पद्मावत' के पुराणों का इतिहास द्वारा समर्थन नहीं होता है । इस अंश में हीरामन ठोठे की कहानी तो पूर्णतः लोक जीवन से ग्रहीत है । उत्तरार्द्ध-कथा इतिहास पर आधारित है । पुराण-अंश लोककथा के रूप में जन-जीवन में प्रचलित रहा । इस प्रकार जायसी ने प्रमात्यावतक कान्धों की अनिवार्य आवश्यकताओं का प्रयोग पद्मावत में किया है ।<sup>१</sup>

'पद्मावत' की कथा पद्मावती के जन्म से प्रारम्भ होती है । मन्वर्ष सेन नरेस सिंह का राजा है । राज से भी बड़ा उसका बीरव है । ऐसे मन्वर्ष सेन के घर में पद्मावती न जन्म बारन किया—

भए सस मास पुरि में बरी । पद्मावति कथा बीनारी ।

बानहु सुनन फियन हुति काढ़ी । सुनन करा पादि वह बाढ़ी ।

भा भित्ति मोहू दिनक परधानु । सब सविहार भएत कवि कायु ।

×

×

×

१ डॉ० माता प्रसाद गुप्त इसे राजस्थानी परम्परा के सन्दर्भ में देखते हैं । परन्तु यह कथा पुराणों से नहीं भी लोक कथा के रूप में व्यापक रूप में ग्रहीत है । (पद्मावत भूमिका) । यह कथा प्रिय मित्र अंशों में विभिन्न-विभिन्न रूपों में प्रस्तावित है ।



पद्म रंग बेधा जग बासा । भँवर पर्यय गए जहाँ पासा ।

जैसे कम मर कन्या जेहि सरि पूजि न कोइ ।

धनि सो वैरा क्यन्ता जहाँ जगम बस होइ । ३१ । गु० ।

पद्मावती बारह वर्ष में संयोग के योग होती है । पद्मावती को पिता छठ छन्दों वाला ब्रह्म प्रसाद सक्षियों-सहित रहने के लिए देते हैं । वे सभी नर कामिकार्य हैं । अविवाहिता हैं और पद्मावती के पास इस रूप में हैं मानों कमलिन के निष्ठ कुमुदिनियों विरहित हैं—

सबै नरक पिय संग न सोई । कंचन पास बनू निगसहि बौई ।

पद्मावती के सम्पर्क में एक शुक है । वह महा पण्डित है । उसका नाम हीरामन है । वह वैद-शास्त्र-ज्ञाता है—

बैये वीरु पंडितहि बसि जोती । नैन रत्न मुख मालिक मोती ।

कंचन बरन सुभा बसि कोना । मानहु मिला सोहायहि सोना ।

एहि एक सँग बोळ पढ़हि सास्तर वेद ।

ब्रह्मा सीस डोलावहि सुगत जाग उस भेद ॥३२॥

पद्मावती नर मोहना हुई । उसके जंगों के सुबाण से जगत बड़ हो गया । अमर उस पर कुब्ज होन लगे राजा की सूचना मिलती है कि शुक पद्मावती को मंत्रणा है रहा है । राजाज्ञा होती है कि सुएं का बच कर दिया जाय । पद्मावती के आसह से बचिक धो छीट बाठा है परन्तु शुक पद्मावती से निदा लेने की अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहता है—

जेहि पर काक मँबारी नाचा । पंखी नार्ने बीठ नहि बाँचा ।

पद्मावती अनेक कमों में अनुनय विनय करती है परन्तु सुभा सोचता है—

सुभा न रही सुतक मित्र सबहि काल सो भाठ ।

एतुर यहै तु करिआ कबहु यो बौरे नाउ ॥

एक रिक्त किराी पर्व पर पत्थनी लक्षियों के साथ मान सरोवर में जल स्नाना में संलग्न है । अचरत देखकर शुक उड़ जाता है । पद्मावती इस घटना से विचित्र होती है । शुक एक जग में बस दिन व्यतीत करता है । उस जग में व्याप प्रवेश करता है । उसके पास दूरी है । पत्नी उसे देखकर आश्चर्य करते हैं—

एहि बन रहत यहै हम आठ । तरिवरि चउत न बैठा काठ ।  
 बाजु नु तरिवर बल मल नाही । आबहु एहि बन छाँड़ि पछाहीं ।  
 बं तो बड़े जोर बन ताका । पंडित सुमा भूषि मन बाका ॥  
 इस प्रकार केलि करता हुआ शुक बन्धी होता है । बितौर गढ़ का एक  
 ब्राह्मण व्यापारी विह्वलवद् व्यापार हेतु जाता है । व्याप शुरु को लेकर उसके  
 सम्मुख उपस्थित होता है । ब्राह्मण शुक से प्रस्न करता है—

कहु परबते को बुन तोहि पाही । गुन न छपाइब हिरदै माहीं ।  
 हम तुम्ह जासि बरामल दोऊ । बातिहि बाति पूँछ सब कोऊ ।  
 पंडित छु तो सुनाबहु भेयू । बिन पूँछे पाइब माहि भेयू ।

× × × ×

शुक उत्तर देता है—

तब गुन मोहि महा हो बेबा । अब पिअर हुँछ छूँ परेबा ।  
 अब पुन कसम जो बनि जवमाना । जासि मँजूसा पैंबे आना ।  
 पंडित होइ सो हाट न कहा । जहाँ बिकान भूषि वा फडा ॥७७॥

बह शुक का श्रम कर लेता है । इस समय रत्नसेन बितौर गढ़ का साफक है ।  
 शुक की प्रतिभा से प्रभावित होकर वह ब्राह्मण से शुक को प्राप्त कर लेता है ।  
 दस-बीस दिनों के पक्कावत राखा बापेट पर बाँधे हैं । उसकी पटरानी नावमती  
 मृपार कर शुक से प्रस्न करती है—

सुजा बाग बहुत कतु कसि सोना । सिबल बीप तोर कस सोना ।  
 कौन चिस्टि तोरी बरामनी । बहुत ही कोनि कि बं पुमिनी ।  
 जो न कहसि सब सुमटा तोहि राजा के आन ।

है कोई एह अकठ मंह योरेँ बप समान ॥७८॥

पुनमावती के रूप का स्मरण कर शुक हैस पड़ता है । वह कहता है, जिस छोकर  
 में हँस नहीं आते, उसमें बहूनी हँस कहलाती है । शुक सिहल की नारियों का  
 परिचय देते हुए कहता है पुणों की सुपत्ति उनके शरीर में होती है अतः उनके  
 साम गुनहारी क्या समता ? के कज्जल बनीं हैं तथा रूप और माय्य से परितुर्ब है ।

पंडित न राखिब होइ कुमाकी । तौह के पाव जहाँ नहि साकी ।

बह बाप को शुक के मारने की आज्ञा देती है । परन्तु राजा की आज्ञा का

स्मरण कर पाय धुक को माखी नहीं है। राजा छोटकर धुक की जिज्ञासा करता है। रानी उत्तर देती है 'मैंने उससे सिंहल की पक्षिणी नारियों के विषय में जिज्ञासा की। इस सम्बन्ध में 'ऐ गामिन तुम्हारे बप का क्या ? वे यदि दिन हैं तो तू बेचिरी निघा है। बसन्त के सम्मुख करीस का क्या महत्त्व।' इस प्रकार का उत्तर धुक ने दिया। राजा खुश होता है। वह विषय का अनुमन करता है। पाय सुवा को सा देती है। धुक सत्य ब्रह्मा का वर्णन करता है। राजा के आग्रह पर धुक पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है। हीरामन जब कमल (पद्मावती) का वर्णन करता है राजा उसे मुनकर झमर-जल हो जाता है। धुक कहता है। 'उसका वर्णन मैं किस प्रकार करूँ उसका श्रु पार उसी को सोना देता है। रूप-वर्णन मुनकर राजा मूर्छित हो जाता है—

मुनछि राजा का मुखझाई। पागहुँ सहिर धुक के भाई।

पेम बाव दुस जान न कोई। जेहि काने जानै वे सोई ॥११२॥

राजा रत्न सेन राज का त्याग करता है। वह किंगरी धारण कर विप्रेयी बन जाता है। वह प्रभाव करता है। योगियों का श्रु गनाव बनता है। धुक कहता है 'बमुबा नहीं हो सकता है, जो मार्ग जानता है। पद रहित पक्षी कैसे उड़ सकता है।' दिन में वे यात्रा करते हैं। रात्रि में मृगारण्य में विषाम करते हैं। फिर वे समुद्र तट पर पहुँचते हैं। वहाँ का राजा राजपति रत्न सेन ये कहता है सिंहल द्वीप नहीं जा सकता है जो अपने प्राणों को हाथ में लेकर बसता है। सार, सीर, बधि उग्रधि मुरा बल और किस्किसा समुद्रों की पार करना सरल नहीं है। बोद्धिबल उग्रधि-के बध पर तिरो लगाते हैं।

किस्किसा समुद्र में पहुँचने पर धुक कहता है दूरी समुद्र में बाकर खरम विचलित हो जाता है। बोद्धि इस समुद्र में बहवत हो रहे हैं। नामसर को पार करने के पश्चात् वे सिंहल द्वीप पहुँचते हैं। हीरामन उड़कर पद्मावती के पास जाता है। राजा कीलाव (सिंहल मङ्ग के राज मन्दिर) के लिए प्रस्थान करता है। वहाँ बैठकर वह 'पद्मावती' का वाप करता है। धुक पद्मावती को रखने का सम्येष्ट देता है। हीरामन रत्नसेन के पाग लौटकर कहता है जब बसंत ऋतु जाती है और उसकी धी पंचमी होती है तब मधुकर जाता है।

तभी पुण्य सुपन्नित होता है। जो योगी इस प्रकार उद्योग करता है उसे ही योग समाप्ति पर सिद्धि मिलती है।

ब्रह्म के सबसे बड़ा श्रेय में पद्मावती सखियों के साथ निवृत्त-पूजन के लिए शिव मन्दिर में जाती है। एतत्तेन पद्मावती को शेष कर मूर्ध्नि हो जाता है। पद्मावती के शीर्ष जाने पर राजा सकेत होकर देखता है न वसंत की पुत्रा वह नहीं न वह बालिका वह नहीं। राजा अपने ब्रह्मसूत्र को देखता है। उस पर चंदन की मिस्र के अनन्तर विद्योपनिषद् लिखा है। एतत्तेन शिव-उपासना कृता है। अनेक विष्णु-वाक्यान्ते के पश्चात् एतत्तेन की कामना पूरी होती है। पद्मावती के साथ एतत्तेन का विवाह होता है। पश्चात्तेन ब्रह्म गृह में एतत्तेन और पद्मावती को वास देते हैं।

नामवती विद्योपनिषद् में जीवन व्यतीत कर रही है। शिव के विद्योपनिषद् में वह 'प्रिय' 'प्रिय' पुकारती है। सखियों उसे सर्व प्रदान करती हुई कहती हैं—

बाली ब्रह्म यौवन के नेहा। एकदि नरी बरखा छिनु मेहा।

पुनि वसंत छिनु आन नखेली। सो रस सो मकुकर सो बेडी।

अनि अति नीरु करसि तू नारी। वहि हरिबर पुनि उठीहि सैमारी।

मिलहि को मिसुरि साजना यहि यहि मेट पदुन।

तपनि मिरासिरा मे सहहि अता ते पदुन ॥३४३॥

इस प्रकार 'ब्रह्मा', 'साधन', 'माही', 'कुमार', 'काविक', 'अग्रह', 'पुत्र' आदि माहों में नामवती की वेदना विविध रूप धारण करती है। शिव में एतत्तेन वही के माध्यम से नामवती का सम्बन्ध बनाता है। विहंगम सम्बन्ध लेकर उड़ जाता है। राजा उसे पुकारता है परन्तु विहंगम और दूर चला जाता है। एतत्तेन शिव से निरक्त हो उठता है। पद्मावती के साथ वह शिव के लिए प्रस्थान करता है। अनेक वाक्यान्ते के पश्चात् निरुत्तर यन्त्र पहुँचता है।

राज्य केतन राजा की सेवा में आते हैं। राजा उनसे अप्रसन्न होता है, उन्हें निर्वासित करता है। शिवी जाकर वे अन्तर्गत की धारण करते हैं। 'पद्मावती' की ओर वह अन्तर्गत का आकर्षित करते हैं। अन्तर्गत एतत्तेन पर आक्रमण करता है। आठ बगों तक तक बिना रहता है। अन्तर्गत उसे अन्त से बन्दी बनाता है।

गोरा बारक की प्रेम्णा से रक्तमय युक्त होता है। इस सन्दर्भ में भीषण रूप लेता है और गोरा बारक युद्ध में हूट होते हैं। रक्तमय भी मारा जाता है और पचावती तथा मासमती होती होती हैं। कवि अन्त में कथा का स्पष्टीकरण करता है।

तन भिन्नतर मन राजा कीन्हा । द्विय सिंगळ बुद्धि पक्षिणी चीन्हा ।  
 मुख सुखा भेद पंच रेखाया । बिनु मुख जयत की निरगुन पाया ॥  
 मासमती यह दुनिया-बंदा । बाँचा सोई न एहि चित बाँचा ।  
 रासक हूत सोई पैतानू । माया बसाउनी सुछतानू ॥  
 प्रेम-जन्मा एहि मोति बिचारहु । बुद्धि सेहु जो बुझै पायहु ॥  
 गुरकी भरबी, हिउई, माया बेटी बाहि ।  
 बेहि भई मारण प्रेम कर, सबे सराई ताहि ॥१०

#### पद्मावत की ऐतिहासिकता

जायसी ने 'पद्मावत' में कल्पना और इतिहास का मिश्रण किया है। असा सहीन रक्तमय ऐतिहासिक पुरुष है और सिद्धी, चितौड़ सिंह आदि ऐतिहासिक स्थान हैं। परन्तु जायसी ने अपने पात्रों अपनी घटनाओं और स्थानों का संकल्पन इतिहास से नहीं किया है। पक्षिणी की कथा गोराबारक का बहिर्द्वार बकाउरीन का चितौड़ मठ पर आक्रमण इन सभी तथ्यों का व्यापक प्रचार लोक जीवन में हो चुका था। विद्रिष्ट भटना या कथा में अनेक अनुकूलों लोक जीवन के माध्यम से संयुक्त होती रही हैं। इतिहास और कल्पना का जो मिश्रित स्वरूप लोक में प्रचलित रहा उसी का आधार जायसी ने अपने काव्य में ग्रहण किया। लोक-जीवन में प्रचलित पद्मावती की कथा के संकटन में बकाउरीन के आक्रमण की इतिहास-सम्पन्न घटना और राजपूत रमणियों के जोहर की अनेक कथाओं की एक गुंथ में गूँथ कर जायसी ने 'पद्मावत' की प्रबन्ध-रचना की है। परन्तु इतिहास के आधार पर पद्मावत का प्रणयन नहीं हुआ है। जायसी का प्रतिपाद्य है 'प्रेम की पीर'। इन प्रतिपाद्य की संश्लेषणीयता में ही 'पद्मावत' का इतिहास तत्त्व समाहित है। पूष्पीराम रासों में इतिहास और कल्पना के त्रिषु समन्वय का प्रस्तावना है, इससे मिला 'पद्मावत' की प्रस्तावना भूमि नहीं है। अन्तर इतना है कि 'पूष्पीराम रासों' एक से अधिक कवियों की सामूहिक प्रेरणा का फल है। 'पद्मावत' में लोकजीवन में प्रचलित 'इतिहास' और 'कल्पना' की व्यावस्था को एक कवि द्वारा परिवर्तित करने का प्रयत्न है।

अक्षरावट — 'अक्षरावट' की प्रति में दो हफ्ताभर अभी तक उपलब्ध है—

(१) भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित नायसी ग्रन्थावली में संकलित 'अक्षरावट' का पाठ ।

(२) डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित नायसी ग्रन्थावली में सम्पादित 'अक्षरावट' का पाठ ।

सम्पादक के समय डॉ० माता प्रसाद गुप्त को इसकी प्रति प्राप्त नहीं थी । परन्तु इन्होंने इसी बीच एक अन्य प्रति प्राप्त हुई, जिसे सम्पादक ने परिशिष्ट-अप में दिया है । प्रो० श्री हसन बस्करी ने 'अक्षरावट' की फारसी लिपि में उपलब्ध एक प्रति की बर्णना की है । इनके अनुसार इस प्रति का प्रतिनिधि-काल सत्रहवीं शती पाह्लवार्हों का समय है ।<sup>१</sup> नागरी प्रचारिणि समा काशी में अक्षरावट की एक प्रति नायरी लिपि में भी उपलब्ध है ।<sup>२</sup>

नायसी में इस दृष्टि के रचना काल का निर्दिष्ट का उल्लेख नहीं किया है । परन्तु कतिपय विचारकों की यह धारणा है कि यह 'पद्मावत' के पश्चात् की रचना है । 'जुबान की धानपी, बन्दिशों की बुस्ती फा देती है कि यह तम घामर नायसी के दौर बाहिर का नहीं था है । इसके यह कहना है कि 'अक्षरावट' पद्मावत के बाद उत्पन्न हुई है ।<sup>३</sup> इन काल काबाबार ग्रन्थ करते हुए अनेक निदान 'अक्षरावट' को 'पद्मावत' के पश्चात् की रचना मानते हैं । प्रोफेसर मैथिल हसन बस्करी ने अक्षरावट की रचना-अवधि का उल्लेख किया है । इनके अनुसार 'अक्षरावट' की दृष्टान्तिवित्तप्रति की पुष्पिका में क्रमांक ८, मुस्काद, १११ दिवरी का उल्लेख है । इनके अनुसार 'अक्षरावट' नायसी की प्रथम रचना है । नायसी में 'बाहिरि कलाम' में मिला भूकम्प की बर्णना की है यह उनके अन्त-समय की

१ देखिए—जॉर्ज ऑफ बिहार रिजर्च सोसाइटी धार ३८-१९२५—  
 ए म्यूजी डिस्टिक्ट काल्पुम जॉफ अक्की बर्त इन्फुजिग पद्मावत एण्ड अक्षरावट  
 जॉफ मलिक मुहम्मद नायसी ।

२ नायरी प्रचारिणि समा काशी दृष्टान्तिवित्त विभाग—अक्षरावट और  
 पछका की प्रति—पृ० २२३ मलिक मुहम्मद नायसी—संयम बस्ती मुल्लाका,  
 १९० ।

कटना नहीं है अपितु उनके कजि-जीवन के आरम्भ समय में यह कटना पटित हुई। अक्षरावट की पुणिका में लिखित १११ हि० तथा १११ में बटित मूकम्ब के सस्तेज में समाप्ता है। इस प्रकार अक्षरावट १११ हिबरी की रचना प्रमा पित होती है।<sup>१</sup>

‘अक्षरावट’ का प्रतिपाद्य विषय है सृष्टि की उत्पत्ति। धूम्र के मध्य करतार ने मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति प्रकट की। आदि बोसाई ने सृष्टि की रचना की। स्वर्ग फिदा और बरती माता रूप में प्रस्फुटित हुए। इसके पश्चात् इक्कीस सैतान) उत्पन्न हुआ। एक परमात्मतत्व संसार की विभिन्न योगियों में प्रकट हुआ। बार सत्तों से शरीर की स्थापना हुई। उसमें पञ्च भूतात्मक इन्द्रियाँ संस्थापित की गईं। शरीर में नव द्वार निर्मित हुए। इसके पश्चात् करतार ने इसमें द्वार पर कपाट लगा दिया। इस अवस्था तक आदम और करतार में अमिन्नता थी। सैतान की प्रेरणा से आदम ने जेहूँ का निम्ना। इस निषिद्ध भोजन के कारण आदम स्वर्ग निष्कासित हुए। आदम और होवा में विरोध हुआ। परन्तु ईस्वर की कृपा से उनका मिश्रण भी हुआ। उनसे सन्तान की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुर्क दोनों ही उसकी सन्तानें हैं। शरीर में ही स्वर्ग और नरक की स्थापना परम तत्व ने की।

अक्षरावट में सृष्टि-रचना का जो अप्रमत्त जायसी ने प्रस्तावित किया है, वह मूकम्ब इस्लामी धर्म ग्रन्थों के आधार पर है—

बयन हुता नहि नहि हुती हुनै कत नहि मूर।

ऐसइ अंककूप नह रचत मुहम्मद मूर। जायसी धन्दाबसी अक्षरावट।

ब्रह्म से ही सृष्टि जापुति है। जीव जीव रूप में ब्रह्म में ही अवस्थित था। जीव ब्रह्म से अभिन्न था परन्तु समय पाकर जीव और ब्रह्म में वियोग हुआ।

हुता जो एकहि संघ हौं तुम्ह काहे बीसुडा ?

बब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद ब्रह्म त जाई बधु। अक्षरावट सोरठा ३।

इस ग्रन्थ में जायसी ने जीव ब्रह्म और प्रकृति की अभिन्नता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जायसी के अनुसार ब्रह्म में समुद्र समायो है, जहाँ

मनुष्य पिंड के भीतर ही ग्रह और समस्त ब्रह्माण्ड है सभी सृष्टी कल्प सत्ता में विस्तीर्ण हो जाते हैं—

मुन्दरि समुद्र समान, यह जगज्ज कासों कहीं ?

जो हैरा हो हैरान, मुहम्मद मापु मापु मंह त बा० प्रभाषनी ।

सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं—(१) शरीरवर्त्म (काण्ड ), (२) शरीरवर्त ( बाह्य आत्मवर्तों से मन्त्र्य हीकर हृदय की सुखता द्वारा ईश्वर का प्यान ) (उपासना काण्ड ) (३) हकीकत ( भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का बोध ( ज्ञान काण्ड ), (४) मारिफत ( सिद्धावस्था ) । 'बखराबत' में जायसी ने इन अवस्थाओं का उल्लेख किया किया है—

कहो शरीरवर्त विसती पीक । समरित बखराब की जह्नीक ॥

तेहि के नाम कहा हो चार्ह । देखि समुद्र जल निज न डेरार्ह ॥

और

बौक बज़ाब सात खंड ऊँचा । चारि बसेरे बाह पर्वचा ।

आखिरी कदाम— जायसी ने 'आखिरी कदाम' की रचना १३९ हि०, सन् १३३२ ई० में किया । इसमें कवि 'साहेबख्त-कय' में बाबर की प्रशंसा करता है ।

बाबर साह खजनसि राजा । राजपाट जन कर्हू निजि साबा ।

मुकुट तुलैमा कर मोहि दीन्हा । बरक बुनी नगर बस दीन्हा ।

इन कृति की निर्मायकियों का उल्लेख जायसी ने इस प्रकार किया है—

नौ सै बरिख सतीस जो मय । सब एहि कथा क बासर छे ।

कविय बाबोजको के अनुसार यह कृति जायसी की कविय रचना है ।

परन्तु-रचना-विधि तथा साहेबख्त की प्रशंसा को सम्मुख रखते हुए यह 'पद्मावत' के पूर्व की रचना है । कस्तुर यह प्रत्य-सम्बन्धित कवि का 'कदाम' है ।

इस रचना में जायसी ईश्वर-स्तुति करते हैं, फिर भी सारी में अपने कर्म लेने का उल्लेख करते हैं, बाबर साह की प्रशंसा करते हैं और शेख बखराब की बन्दना करते हैं । जायस नगर का परिचय देने के पश्चात् कवि १३६ दिवरी में इस काव्य के प्रथम का उल्लेख करते हैं । इसके अनन्तर प्रथम का वर्णन



बटना नहीं है अपितु उनके कवि-जीवन के आरम्भ समय में यह कृता पटित हुई। अक्षरावट की पुस्तिका में लिखित १११ हि० तथा १११ में पटित मुहम्मद के इस्तेमाल में समाप्ता है। इस प्रकार अक्षरावट १११ हिबरी की रचना प्रमाणित होती है।<sup>१</sup>

‘अक्षरावट’ का प्रतिपाद्य विषय है सृष्टि की उत्पत्ति। धूम्र के मध्य करतार ने मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति प्रकट की। आदि गोसाई ने सृष्टि की रचना की। स्वर्ग पिता और भारती माता रूप में प्रस्तुति हुए। इसके पश्चात् इसलीस (सैतान) उत्पन्न हुआ। एक परमात्मवत्त्व संसार की विभिन्न योगियों में प्रकट हुआ। बार तत्वों में शरीर की स्थापना हुई। उसमें पञ्च भूतारमक इन्द्रियों संस्थापित की गईं। शरीर में नम्र द्वार निर्मित हुए। इसके पश्चात् करतार ने बसम द्वार पर कमाट लगा दिया। इस अवस्था तक आरम और करतार में अभिन्नता थी। सैतान की प्रेरणा से आरम ने वेहूँ खा लिया। इस निषिद्ध भोजन के कारण आरम स्वर्ग निष्काशित हुए। आरम और हीवा में वियोग हुआ। परन्तु ईश्वर की इत्ना से उनका मिलन भी हुआ। उनसे सन्तान की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुर्क दोनों ही उसकी सन्तानें हैं। शरीर में ही स्वर्ग और नरक की स्थापना परम तत्व ने की।

अक्षरावट में सृष्टि-रचना का जो लघुकर्म आयसी ने प्रस्तावित किया है, वह मुख्य-इस्लामी धर्म ग्रन्थों के आधार पर है—

बगन हुता नहि नहि हुती हुने पन्व नहि सूर।

ऐसइ अककून गइ रचत मुहम्मद गुर। आयसी सन्पावली अक्षरावट।

बड़ा है ही सृष्टि आपुरित है। बीच बीच रूप में बड़ा में ही अवस्थित था। बीच बड़ा है अभिन्न था परन्तु समय पाकर बीच और बड़ा में वियोग हुआ।

हुता जो एकहि संघ हो तुम्ह काहे बीछुड़ा ?

अब जिज्ञा उठे तरंग, मुहम्मद कहा म जाई कसु। अक्षरावट सोरठा १।

इस ग्रन्थ में आयसी ने बीच बड़ा और प्रकृति की अभिन्नता के त्रिखान्त का प्रतिपादन किया है। आयसी के अनुसार ब्रह्म में समुद्र समाया है, अर्थात्

मनुष्य मित्र के भीतर ही रह्य और उपसक्त ब्रह्माण्ड है, सभी उसी अनन्त सत्ता में विलीन हो जाते हैं—

मुन्दहि समुद्र समान, यह भवजल काहीं कहीं ?

ओ हेरा सो हेराम मुहम्मद आपहु बापु मंह ॥ बा० पन्नाबली ।

सूफी मत में साधना की चार अवस्थाओं वाली गई हैं—(१) तारीकत (कर्म-काण्ड), (२) तारीकत (बाह्य आह्वानों से अलग होकर हृदय की मृदुता द्वारा ईश्वर का ध्यान) (उपासना काण्ड), (३) हुकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा धर्म का बोध (ज्ञान काण्ड)) (४) बारीकत (सिद्धान्तस्था) । 'मकरावट' में बागसी ने इन अवस्थाओं का बल्लेक किया किया है—

कही तारीकत चित्ती पीक । उन्नति असरफ भी अहमीक ॥

तेहि के नाव बढ़ा हो गई । तेहि समुद्र जल बिठ न डेराई ॥

और

बाँक बढ़ाव सात बंड जैसा । बारी बसेरे बाद पहुँचा ।

आखिरी कलाम— बागसी ने 'आखिरी कलाम' की रचना २३६ हि०, सन् १२६२ ई० में किया । इसमें कवि 'साहेबखान-कम' में बाबर की प्रशंसा करता है ।

बाबर साह सखसि राजा । राजपाट उन कई दिवि साजा ।

मुकुट मुकिमा कर मोहि बीम्बा । कण्ठ हुनी बमर बस कोम्हा ।

इत कृति की निर्वाणसिद्धि का बल्लेक बागसी ने इस प्रकार किया है—

नौ है बरिष्ठ छरीछ भी भए । ठक एहि कमा क बाबर कहे ।

कवियन बाकीबकी के अनुसार यह कृति बागसी की अन्तिम रचना है । परन्तु-रचना-दिनि तथा साहेबखान की प्रशंसा को सम्मिलित रखते हुए यह 'पद्मावत' के पूर्ण की रचना है । वस्तुतः यह प्रथम-सम्पादित कवि का 'कलाम' है ।

इस रचना में बागसी ईश्वर-स्तुति करते हैं फिर नौ सदी में अपने जन्म देने का बल्लेक करते हैं बाबर साह की प्रशंसा करते हैं और खैबर असरफ की बखाना करते हैं । बाबर नगर का परिचय देने के पश्चात् कवि २३६ हिजरी में इस काव्य के प्रकाश का बल्लेक करते हैं । इसके उपरान्त प्रकाश का अर्थ

मटना नहीं है अणिगु उनके कवि-जीवन के आरम्भ समय में वह मटना पटित हुई। अकराबट की पुस्तिका में लिखित २११ हि० तथा २११ में पटित मूक्य के अस्केख में समामता है। इस प्रकार अकराबट २११ हिजरी की रचना प्रमा मिठ होती है।<sup>१</sup>

‘अकराबट’ का प्रतिपाद्य विषय है सृष्टि की उत्पत्ति। दूय के मध्य करतार ने मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति प्रकट की। आदि मोसार्ह ने सृष्टि की रचना की। स्वर्ग सिता और बरती माता कम में प्रस्कृष्टि हुए। इसके पश्चात् इबकीस (छैठान) करम्म हुआ। एक परमात्मतत्व संसार की विभिन्न योगियों में प्रकट हुआ। बार तलों से शरीर की स्थापना हुई। उसमें पञ्च कूटात्मक इन्द्रियों संस्थापित की गई। शरीर में कम द्वार मिथित हुए। इसके पश्चात् करतार ने बसम द्वार पर कपाट लगा दिया। इस अवस्था तक आदम और करतार में अभिन्नता थी। छैठान की प्रेरणा से आदम ने वेहूँ का किया। इस निषिद्ध मोहन के कारण आदम स्वर्ग निष्कासित हुए। आदम और हीवा में विभोग हुआ। परन्तु ईस्वर की कृपा से उनका मिलन भी हुआ। उनसे छम्ताम की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुर्क दोनों ही उसकी छम्तानें हैं। शरीर में ही स्वर्ग और बरक की स्थापना परम तत्व ने की।

अकराबट में सृष्टि रचना का जो सफ्यम जायसी ने प्रस्थापित किया है, वह मूलतः इस्लामी धर्म ग्रन्थों के आधार पर है—

गफल हुता नहि नहि हुती हुते चन्द नहि मुर।

ऐसइ अंधकूप मइ रचत मुहम्मद मुर। जायसी ग्रन्थावली अकराबट।

ब्रह्म से ही सृष्टि आपुरित है। जीव जीव रूप में ब्रह्म में ही अवस्थित था।

जीव ब्रह्म से अभिन्न था परन्तु समय वाक्यर जीव और ब्रह्म में विभोग हुआ।

हुता जो एकहि संव, हो तुम्ह काहे बीधुडा ?

अब मित्र उठें तरंग, मुहम्मद कहा न आई बधु। अकराबट खेल्ता ३।

इस ग्रन्थ में जायसी ने जीव ब्रह्म और प्रकृति की अभिन्नता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जायसी के अनुसार ब्रह्म में नमूत्र समाया है, जबीय

मनुष्य पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड है सभी वही अन्त सत्ता में विधीन हो जाते हैं—

बुद्धि समुद्रसमाग, बहु बचज्ज कासों कहीं ?

को हैरा लो हैरान मुहम्मद आपहु आपु मंह ऽ वा = सम्भावनी ।

सूची पत्र में साधना की चार अवस्थायें मानी गई हैं—(१) घरीमत्(कर्म-काण्ड), (२) घरीकत् (बाह्य ब्राह्मणों से अलग होकर हृदय की मुख्यता द्वारा ईश्वर का ध्यान) (उपासना काण्ड), (३) हकीकत् (अधि और उपासना के द्वारा सत्य का बोध (ज्ञान काण्ड)) (४) घारीकत् (सिद्धावस्था) । 'अबराहम' में जामली ने इन अवस्थाओं का उल्लेख किया किया है—

कही घरीमत् चित्तरी पीक । उचरित अचरक भी बंधपीक ऽ

तेहि के नाब बड़ा ही बार्ह । देहि समुद्र बर बिज न डेराई ऽ

और

बौक बड़ाव साठ संक ऊँचा । चारि बचेरे बाह प्युँचा ।

आखिरी कलाम—'आखिरी कलाम' की रचना ८३६ हि०, सन् १३३२ ई० में किया । इसमें कवि 'साहैयल-रस' में बाबर की प्रशंसा कया है ।

बाबर साह खनपति राजा । राजपाठ उन कहुँ बिनि जाना ।

मुमुक्षु बुजेना कर मोहि दीन्हा । मरक कुनी अवर बस कीन्हा ।

इस कृति की निर्माचलिकि का उल्लेख जामली ने इस प्रकार किया है—

नी है अरिष घरीम भी जए । तब दहि कया क बाबर कहुँ ।

कतिपय प्राक्लेशकों के अनुसार यह कृति जामली की अन्तिम रचना है । परन्तु-रचना तिथि तथा साहैयल की प्रशंसा को सम्मुख रखते हुए यह 'पद्मावत' के पूर्व की रचना है । अस्तु यह प्रथम-सम्पन्नित कवि का 'कलाम' है ।

इस रचना में जामली ईश्वर-स्तुति करते हैं, फिर नी घरी में अपने कर्म देने का उल्लेख करते हैं बाबर साह की प्रशंसा करते हैं और अवर अवरक की कम्ना करते हैं । जामल अवर का परिचय देने के पश्चात् कवि ८३६ हिमरी में इस काण्ड के प्रचपन का उल्लेख करते हैं । इसके अन्तर्गत प्रथम का वर्णन

सम्मुख आता है। मैकाइल अग्नि-वर्षी करता है। सम्पूर्ण पृथ्वी प्रज्वलित हो उठती है। चासीस दिनों तक यह स्थिति रहती। ज़िबराइल ईश्वर से नव निर्माण का निवेदन करता है। मैकाइल नामक फिरिस्ते को आज्ञा मिलती है। वह चरती पर बस बर्षा करता है। चासीस दिनों तक की जगदरुत बर्षा से पृथ्वी बल-मग्न हो जाती है। इसराइल 'सूर'-नाम से संसार को छड़ाता है। पृथ्वी और आकाश प्रज्वलित हो उठते हैं। बीसहो धुवन झूले के समान झुकने लगते हैं। इसराफ़ील की प्रथम फूँक से नदी भाँके समस्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में पर्वत और समुद्र एकाकार हो उठते हैं। अजरार्दिक ज़िबराइल मकाईल और इसराफ़ील इन सब का वचन करता है। अन्त में ईश्वर अजरार्दिक के भी प्राण के लेता है। चासीस बर्षों के एकान्त जीवन के पश्चात् ईश्वर पुनः इन फिरिस्ते को जीवन देता है। ज़िबराइल पृथ्वी पर आकर मुहम्मद को पुकारता है। ईश्वर की आज्ञा से सूर्य प्रकट होता है। छः महीने तक के जगदरुत प्रकाश में ईश्वर पारमियों को दम्पित करता है। कातमा बीबी हुसैन, हुसेन को सम्मुख प्रस्तुत कर न्याय की माँगता करती है। कौसर के बस में स्नान कर सभी पवित्र होते हैं। और सभी स्वर्गीय मदिरा से जीवन का अभिगन्धन करते हैं। काव्य के अन्त में आदमी स्वर्ग-वैभव को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

मिट पिरिट, मिट नव-नव नेहू।

मिट छठि जोगुल होइ सनेहू ॥

उहाँ न मिथु, न नीर कुछ रह न रहू महु रोप।

सब अकल मुहम्मद, सब कुछ माने मोय जा० ब० १।

माखिर कलाम की कथा 'इस्लामी मजहब' के हज (प्रत्य) की कथा है। इसकी कथा 'कुरान' पर आधारित है।

जिबरेला<sup>१</sup> ३—जिब रेला एक लघु प्रेम-कथा है। आरम्भ में कवि ने 'पद्मावत' के समान ही ईश्वर वन्दना की है।

१ जिबरेला के सम्पादन में दो हस्त लिखित प्रतियों का सम्बन्ध मिलता है—(१) साधार-ए-जंग संग्रहालय की प्रति। (२) अहमदाबाद की प्रति। जिबरेला को एक हस्त लिखित प्रति उस्मानियाँ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

आदि एक बरगो सो राजा ।

आकर सबे जयत यह साजा ।

×

×

×

कहाँ राज यह साकर, कनक छान मनिह पाट ।

राजा नबहि सबे ओहि, धरती लाह कलाट ।<sup>१</sup>

इसके पश्चात् कवि मुहम्मद तथा अपने चार मित्रों का वर्णन करता है ।

इसके पश्चात् चापसी बिजरेखा की कहानी प्रस्तुत करते हैं ।

सुनत कथा बस अंसित बानी ।

कहाँ बिजरेखा यह रानी ।

नगर कन्नपुर उत्तम ठाऊ ।

कन्नमानु राजा कर नाम ।

नगर कन्नप इन्द्र बस छाया ।

बसे मोमती तीर सुहावा । बिजरेखा—दृष्ट-७८ ।

चौकटी छट-स्वित कन्नपुर नगर के कन्नमानु राजा की छात श्री राक्ष्मिनी में स्मरेखा प्रभाव थी । उसकी पुत्री बिजरेखा की सचिकक्षा के समान उसका विकास हुआ । उस दर्प की लक्ष्म्या में उसका रूप-शीर्षक आकर्षण की समस्तता के साथ प्रस्तुति हुई ।—

बसए बरिह कर भई ओ दसा ।

पुन्वी चौह बरन परमसा ।

मनि पावे दीपक रस सेठा ।

मेबर मुर्ग सैत नए केसा ।

ओति सख ससि पाई बोरी ।

नयन देखाकई जेजन बोरी ।

भीह आरि जनु मफुक संहारी ।

बबलि बाग सारै जिय मारै ।

पलक बरन संहारी मारै ।

ऊपर-अपर बाहि संहारा ।

२ बिजरेखा—दृष्ट ६३ हिन्दी प्रचार पुस्तकालय-वाराणसी ।

इस प्रकार का उसका सौभाग्य था। मीनम होने पर उसका विवाह सिंघरे के राजासिंघदेव के कुम्हड़े कड़के से ही तपा हुआ। परन्तु जन्ममा और राहु के योग के कारण विवाह न हो सकेगा, ऐसी भोपणा ज्योतिषियों ने की। कम्लोज के राजा प्रस्थान सिंह ने तप किया। उन्हें एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। उसका नाम प्रीतम कुंवर रखा गया परन्तु जन्म के समय पण्डितों ने उस बाल्यामु बचाया था। मृत्यु के द्वाई भिन्न पूर्व माता पिता को समझा कर बोड़े पर काशी-गति के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। जम्नपुर नगर में सिंघरेखा के विवाह का उत्सव हो रहा था। मार्ग में प्रीतम कुंवर दूध की छाया में विधाय के लिए रुक गया। सिंघरेखा अपने पुत्र विवाह-हेतु उसी मार्ग से आ रहा था। वह वहीं रुक जाता है। प्रीतम कुंवर की निशा भंग होती है। सिंघरेखा से वह अपनी काशी-जति का उत्सव करता है। सिंघरेखा अपने कुम्हड़े बेटे की ओर से घर बनने का निवेदन करता है। प्रीतम कुंवर दूझा बनता है। विवाह होता है। धैर्य सन्निवृत्त हुई। प्रीतम कुंवर सिंघरेखा की ओर पीठ करके सोता है। निशा के उत्तरार्ध में प्रीतम कुंवर प्रस्थान करता है। प्रस्थान करने के पूर्व वह सिंघरेखा के अंजल-पट पर शक्ति करता—

हौं कनक राजा कर बेटा ।  
जो जिनि लिखा सो भाद न मेटा ।  
बीस बरिस जात हूत मोरी ।  
पूनी भाद को दैद महोरी ।  
सहज बला जात हौं काशी ।  
धुँचा भाद समय का राशी ।  
सिंघरेख कहूँ जान विवाहा ।  
ना जानइ तुम्ह कहूँ का जाहा ।

कामिह भोपहरी मीनर, मेहें काशी गति भोज ।

तुम कहूँ भयो इतना मुरल भो नहें इतना दोष ।

तारों के झुने के साथ सखियाँ सिंघरेखा के पास जाती हैं। सिंघरेखा के नाजिगित रूप को देखकर वे आश्चर्य भरती हैं। सिंघरेखा अंजल पर सिरों के पड़कर सती होने के लिए तयार होती है। ऊपर प्रीतम कुंवर मरने के

मिग छटार होता है । बहता है दान देता है । दान से प्रभुत्व होकर व्यास ने उसे मादिकर्षि कहा 'चिरजीव तुम होइ । आजीर्ण होकर रामकृष्ण सोइ । रामकृष्ण के चिरजीव होने की बात चारों ओर फैली । चिररत्न और प्रीतम कुमार का मिश्रण हुआ ।

इस प्रकार 'चिररत्न' मुझी प्राप्तावक काव्य वाक्या के अन्तर्गत एक प्रेम-काम्य है । और चिररत्न के बाद संयोग-मुक्त की जीवन धारण अनुभूति के अस्तित्व विज्ञान के माध्यम से कर्म बाल्या और ईश्वर के मिश्रण-स्वरूप की व्यवहारना करता है ।

यही धाम उपराज्य सोय माइ मुक्त घोषा ।

अवस ते मिले बिबोही जिन्हु किय होई विषोय ।

चिररत्ना १०१ ।

सृष्टि में ईश्वर जैसे ही व्याप्त है, जैसे काष्ठ में अग्नि और धुन में धी । जो वाक्य प्रवर के समान केवली के कानों से बाल्या हृदय प्रेम की पीर से मित्र का होता है वही ईश्वर रस की अनुभूति कर सकता है—

अमित काठ विष खीर लोक बा सो जानी को मन देइ मया ।

मैंबर मए अलकैठकि कौटा । सो रस पाई होइ गुर कौटा ।

चिररत्ना ९२ ।

'चिररत्न' ककक फैली की रक्ता है जिसमें ताप अक्षीतियों के परभाव एक दोहा का प्रथम है ।

कठरनामा :—'अहल्या' का सप्तावन डॉ० माधवराव गुप्त ने 'महरी बाईजी' नाम से रिया है । डॉ० गुप्त को इस ग्रन्थ की एक प्रति कान्तवैद्य विवेकानन्द आश्रम, कलकत्ता से प्राप्त हुई थी । इसके सप्तावन के सम्पर्क में उन्होंने लिखा है—'महरी बाईजी नाम मेरा दिया हुआ है । स्पष्ट माधवस्तैव कृति में नहीं है । केवल महरी गाने का अस्ति कृति में वहाँ वहाँ हुआ है, और इस कृति में केवल बाईस गीत हैं इसलिए यह नाम दे दिया गया है । सम्भव ही नहीं बाधा भी है कि नाम की जोड़ों में इस कृति का ठीक नाम बाध हो जायगा ।



इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहरानामा' है। इस ग्रन्थ की मूल मूल प्राप्त हस्तलिखितों में यही नाम मिलता है।

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट पुस्तकालय में है। इस प्रति के २५ पृष्ठ हैं इसमें रचना काल १६७ हि० संवत् है। इसकी एक प्रति बिहार के मनेर शरीफ जामकाह (सेयब हुसैन जस्कारी) से प्राप्त हुई है। इसकी एक प्रति बिरसा (सीतापुर) में उपलब्ध हुई है। इसमें १२ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १६ पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि नागरी है। इसका लिपिकांक १७७० है। इस प्रति के आरम्भ में अब कहरानामा लिख्येत् लिखा है। इसका उपसंहार इस रूप में हुआ है—

कहरानामा भाषा कीन्हा जो गाबे सो ठारिहै रे।

राम नाम पर मारण महिमा रामे पार उठारिहै रे॥

इस ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है—

सुनो भिन्ती मैं किरति बजानी, महरा अब महराई रे।

मयेठ केवट को नाब बलाने को लायेड गहराई रे।

कोई पुन जाह पन्थ सिर पुनहू जका बोर पुन बीचह रे।

तीर नीर छपलें में सोई, पाहिरे तो फल पांचह रे।

आयसी सम्भावनी ७११

जहाँसे संसार एक सागर के समान है। इसमें पर्यं नौका के समान है। नाव पर चढ़नेवाला पार उठछा है। नौका के प्रस्थान के पश्चात् जो नाविक को बुलावा है, वह मूर्ख है, कारण वह नौका लौटाता नहीं है। जहाँ में मरी का पाट मन को आकर्षित कर देता है। पवन-संचालित कहूँ मन को प्रकम्पित कर देती है। मोघ से, मन की दृष्टता से कहूँ के उद्वेग से पार बामा बा उठता है। इसके पश्चात् महरा महरा के विवाह के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के मिलन-स्वरूप का प्रतिकारमक वर्णन करता है।

कवि ने इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक विवाह की प्रस्तावना और उग्रता स्वस्थ विमान कहूँ वास्त में प्रचलित विवाह प्रथा के अप्रसुत विधान के माध्यम से किया है—

२—नागरी प्रचालिनी समा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का अपोद्ध नैवारिक

विवरण १८२६ २५ पृ० ४३१।

मा मिमृषार बयिकरा होतहि [ x ] पाक्षिष यहरा रे ।  
 हुमह बोलावहु बौक पुरावहु बो हंसि बोला महरा रे ।  
 हुमह सबका कोक मंजीरा महुवर बौसुरि बाजे रे ।  
 सख सोहावा गेहूँग गावा बर बर महुरी साजे रे ।  
 पूषा पापी बुलहिनि राती हुमह भा असबारा रे ।  
 बाजन बाजे किमठ छब साजे भा सन छत पछारा रे ।  
 मंजक बारा या बहकारा बजे गरज सब कैकी रे ।

पृष्ठ ७२० ।

इस प्रकार हुमह ठगर, कोक, मंजीर, बौसुरी हुमह बौक बाँहि  
 विवाह-सम्बन्धी सापेक्ष विधानों के माध्यम से कवि आत्मा और परमात्मा का  
 मिलन और परिचय की भूमिका प्रस्तुत करता है ।

‘कहरा’ या ‘कहरावाँ’ एक प्रकार का लोक गीत है जो कहरों में प्रचलित  
 है । निर्युक्त ‘बौलीसा’ बाँहि कपों के साथ कबीर ने भी ‘कहरावा’ का प्रयोग  
 किया है । सप्त साहित्य के अन्य कवियों ने भी इस विशेष विधा का प्रयोग  
 किया है । ‘कहरानामा’ इसी परम्परा के अन्तर्गत की रचना है । यह गेय है  
 जिसका येन सत्य ‘लोक पुनि’ पर आधारित है ।

मसला या मसला नामा —नागरी प्रचारिणी सभा में बागची कुल  
 ‘मसरावती’ की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । इसमें ‘मसला’ का तीन  
 स्थानों का एक हस्तलिखित संघ भी संलग्न है—

लिखा है सोलसवाय महुम हत बजरावती सत्य केर यह नाम जो मसला  
 जाने लिखत ।

इस रचना में कवि बह्मह से प्रेम करने का आग्रह करता है—

बह्म तन बह्म मिर्वा सो काई । मिहि का पाई मिहि की पाई ।  
 पात बहुत जो काई बजाई । छुल पछोरे छड़ि उड़ि जाई ।

+ + + +  
 भव पाई सो मेह कर केह न यह संयोग ।  
 कोमल से परि बतरी, पाई मेह ही जोय ।

१—नागरी प्रचारिणी सभा, —नागरी कुल बजरावती और मसलों की प्रतियों

इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहरानामा' है। इस ग्रन्थ की मूल मूल प्राप्त हस्तलिखितों में यही नाम मिलता है।

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट पुस्तकालय में है। इस प्रति के २१ पृष्ठ हैं। इसमें रचना काक ६६७ हि० अंकित है। इसकी एक प्रति बिहार के मनेर शरीफ जामकाह (सेयद हुसैन अस्कारी) से प्राप्त हुई है। इसकी एक प्रति बिसबाँ (सीतापुर) में उपलब्ध हुई है। इसमें १२ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में ३९ पंक्तियाँ हैं। इसकी छवि नायरी है। इसका मसिकाल १७७० ई। इस प्रति के आरम्भ में 'अब कहरानामा लिख्यो' लिखा है। इसका उपसंहार इस रूप में हुआ है—

कहरानामा भाषा कीन्हा को बाँँ सो ठाहि रे।

राम नाम पर मारण मझिमा रामे पार छटाहि रे२।

इस ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है—

सुनो मिली मी किरति बजानों, महरा बस महराई रे।

गयेठ कैवट को नाब बछाब को छानेठ पहराई रे।

कोई गुन जाइ पण सिर धूनहु बजा डोर कुन सीबइ रे।

तीर मीर उबळे में सोई, बाहिरें ती फल पांचइ रे।

बायसी ग्रन्थावली ७११

बपौत् संसार एक सागर के समान है। इसमें बर्म लौका के समान है। नाब पर बहनेवाला पार छटाया है। लौका के प्रस्थान के पश्चात् जो नाबिक को बुलाया है, वह मूर्ख है कारण वह लौका छोटाया नहीं है। बपौ में लरी का पाठ मन को आकर्षित कर देता है। पवन-संचालित झरों मन को प्रकम्पित कर देती हैं। मोम से, मल की दृष्टा से झरों के ज्वलन से पार जाया जा सकता है। इसके पश्चात् महरा महरा के विवाह के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के मिलन-स्वल्प का प्रतिकार्यक बचन करता है।

कवि ने इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक विवाह की प्रस्तावना और उग्रका स्वल्प विधान कहोर जाति में प्रचलित विवाह प्रथा के अप्रसुत विधान के माध्यम से किया है—

२—नायरी प्रचारिणी समा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का जयोरप नेबार्थिक

विवरण १९२६ २८ पृ० ४६१।

मा निमुसार भविष्य होठहि [ × ] पाकिष पहरा रे ।  
 दूल्हा बोलाबहु कोक पुराबहु ओ हँति बोला महारा रे ।  
 हुकूक ठबला भौंल मंजीरा महुवर बाँगुरि बाबे रे ।  
 सबब सोहाबा मेहरीन गामा घर घर महरी साबै रे ।  
 पुखा पाटी दुलहिनि राठी हुकूह भा बलबाघ रे ।  
 बाबल बाबे दिवस सब छान भा छन छन पछारा रे ।  
 मंदल चारा भा बाहकारा बल परब सब देखी रे ।

पृष्ठ ७०० ।

इस प्रकार हुकूक ठबर भौंल, मंजीर, बाँगुरी दूल्हा कोक आदि विवाह-सम्बन्धी सापेक्ष विधानों के माध्यम से कवि आत्मा और परमात्मा का मिलन और परिष्कार की भूमिका प्रस्थापित करता है ।

‘कहण’ का ‘कहरावो’ एक प्रकार का शोक वीर है का कहारों में प्रचलित है । निरङ्कुश ‘चौनीठा’ बादि कवियों के द्वारा कबीर ने भी ‘कहरावा’ का प्रयोग किया है । उक्त साहित्य के अन्य कवियों ने भी इस विशेष विधा का प्रयोग किया है । ‘कहणनामा’ इसी परम्परा के अन्तर्गत की रचना है । यह येम है, जिसका पद उक्त ‘मोक बुनि’ पर आधारित है ।

मसला या मसला नामा —नागरी प्रचारिणी सभा में जायसी हूत ‘बलपवती’ की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । इसमें ‘मसला’ का तीन श्रुतों का एक हस्तलिखित ग्रंथ भी संलग्न है—

किया है हीतकरान महमर हन बलरावती ग्रन्थ केर यह नाम बी मसला बाये लिखब ।

इस रचना में कवि कहता है प्रेम करने का आसक्त करता है—

मह उन बलह मियाँ सी काई । जिहि का माई तिहि की माई ।  
 बात बहुत जो काई बनवाई । भूख पछोरे उदि उकि काई ।

+ + + +  
 भव साईं ली मेह कब पेर न यह संघोष ।  
 कोरू ते पारि बसरी, भई ब्रह्म ही योग ।

१—नागरी प्रचारिणी सभा, —‘जायसी हूत बलरावती और मसलों की प्रतियाँ’

पृ०—२५ ।

इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहारानामा' है। इस ग्रन्थ की मूल मूल प्राप्त हस्तलिखितों में यही नाम मिलता है।

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट पुस्तकालय में है। इस प्रति के २५ पृष्ठ हैं इसमें रचना काष्ठ १९७ हि० बंदिष्ठ है। इसकी एक प्रति बिहार के मनेर शरीफ ज्ञानकाह ( संयुक्त हसन अल्कारी ) से प्राप्त हुई है। इसकी एक प्रति कियौरी ( सीतापुर ) में उपलब्ध हुई है। इसमें १२ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि नागरी है। इसका लिपिकाल १७७० है। इस प्रति के आरम्भ में अथ कहारानामा लिख्योत लिखा है। इसका उपसंहार इस रूप में हुआ है—

कहरानामा भाषा कीन्हा वो गावै सो पारिहै रे।

राम नाम पर मारय मक्षिमा रामे पार उत्तारिहै रे॥

इस ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है—

मुनो बिनती मैं किरति बखानी, मह्य बस महर्षि रे।

मयेठ केसट को नाम बखानै को साबेठ पहराई रे।

कोई मुन साह फल सिर कुल्लु बला और गुन बीचह रे।

दीर नीर छपसैं ने सोई, पाहिरैं तो फल पांचह रे।

जायसी ग्रन्थावली ७११

वर्षात् संसार एक सागर के समान है। इसमें गर्म मौका के समान है। नाव पर बहनेवाला पार छपछा है। मौका के प्रस्थान के पश्चात् जो नाविक को बुकाता है, वह मूर्ख है कारण वह मौका छोटाता नहीं है। वर्षा में नदी का पाट मन को आकर्षित कर लेता है। पवन-संचालित लहरें मन को प्रकम्पित कर देती हैं। यों ही, मन की दृष्टि से अहुरों के उद्वेग से पार जाना जा सकता है। इसके पश्चात् महारा महरी में विवाह के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के मिलन-स्वरूप का प्रतीकात्मक वर्णन करता है।

कवि ने इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक विवाह की प्रस्तावना और उसका स्वरूप विधान कह्योत आदि में प्रचलित विवाह प्रथा के अप्रस्तुत विधान के माध्यम से दिया है—

२—नागरी प्रचारिणी सभा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का अयोध्या प्रचारिक

विवरण १९२६ २५ पृ० ४३१।

भा विनुसार बविहरा होतहि [ × ] पाझिल यहरा रे ।  
 हुलह बोलाबहु बोक पुराबहु मो हँसि बोला यहरा रे ।  
 हुलह ठरबा भाँस मंजीरा, भहुर बोंसुरि बाजे रे ।  
 सहर सोहाबा मेहरीम गाबा घर घर यहरी खाँसी रे ।  
 पूजा पाती हुलहिनि राती हुलह भा बसबाय रे ।  
 बाबल बाजे किन्त सब छाजे भा सन सत पसारा रे ।  
 मंसल बारा भा बहुरा बले गल सब केही रे ।

पृष्ठ ७२० ।

इस प्रकार हुलह ठरब, भाँस, मंजीर, बांसुरी हुलह बोक आदि विवाह-सम्बन्धी सापेक्ष विधानों के माध्यम से कवि आत्मा और परमात्मा का मिलन और परिचय की भूमिका प्रस्थापित करता है ।

‘कहरा’ या ‘कहराँ’ एक प्रकार का बोक गीत है जो कहराँ में प्रचलित है । ‘विरहक’ ‘भोलीसा’ आदि कवियों के साथ कबीर ने भी ‘कहरा’ का प्रयोग किया है । सन्त साहित्य के अन्य कवियों ने भी इस विशेष विधा का प्रयोग किया है । ‘कहरानामा’ इसी परम्परा के अन्तर्गत की रचना है । यह गेय है जिसका गेय तत्त्व लोक धुनि पर आभासित है ।

मसछा या मसछा नामा —नामरी प्रचारिणी सभा में जायसी द्वारा ‘अक्षरावली’ की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । इसमें ‘मसछा का ठीन पृष्ठों का एक हस्तलिखित अंश भी संरक्षित है—

किया है सोवसराय महमद कृत अक्षरावली शब्द केर एह नाम बी मसछा जाने लिख<sup>१</sup> ।

इस रचना में कवि अल्लाह से प्रेम करने का आग्रह करता है—

यह तन मकहू मियाँ सो आई । जिहि का पारि तिहि की पारि ।  
 बाठ बहुत जो काहे बयारि । अल्ल पछोरे तदि तदि आई ।

+                      +                      +                      +  
 अब सारि सो नेह कब केव न यह संबोप ।  
 कोसह से परि अचरी, गई बोक ही बोग ।

१—नामरी प्रचारिणी सभा,—‘जायसी कृत अक्षरावली और मयकों की प्रतियों’

नियेम भाष के जीवन का कोई मूल्य नहीं है। यही इस कृति का प्रतिपाद्य विषय है। विषय की अपेक्षा भाषा की दृष्टि से इन कृति का विशेष महत्त्व है। १९ वीं शताब्दी में प्रचलित बबली भाषा में मुहावरों और छोटोछोटियों के अनुपम उदाहरण इस कृति में उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण—

- (१) बेहि घर सामु तनहि है, नहुअन कोन सिंगार।
- (२) पुष्प पाप एक रूप ना जानी बूझक बूझ पानीक पानी।
- (३) प्रीतम प्रेम कोइ कहै जाना जानक सेठ पवारहि जाना।
- (४) अंत न समझु करसि का बैठ बाजुहि बनिया कान्हिहि सेठ।
- (५) नितबै तोर कम मैं हेरा भाई अंब कि जाइ पबेरा।
- (६) सकल कछु नेकी के साचा जाना भाठ उड़ावा पाठा।

ससमान—इनकी रचना 'विभावली' है। उसमान गाजीपुर के निवासी थे सूफी-क़ादर-जारा के अन्तर्गत किन्ते गए प्रेमाख्यातक काव्यों के कवियों में अपने स्थान का परिचय दिया है। इन परम्परा का अनुसरण करते हुए ससमान ने भी अपने निवास स्थान गाजीपुर का परिचय इन पंक्तियों में दिया है—

गाजीपुर उत्तम स्थाना देवस्थान मासि अय जाना।  
मंगा मित्रि यमुना तह जाई, बीच मित्री योमती सोझाई।

×

×

×

ताली सुरकी बनि चरहि, जानहु समत मीर।  
सुख सुखवास नगर महं, पगल जाती तीर।

अपने निवास-स्थान के परिचय के पश्चात् कवि अपने परिवार का परिचय देता है। उनके पिता का नाम 'सैतहुसेन' था। इनके पाँच भाई थे—

कवि उसमान बसे तेहि पाऊँ सेत हुमेन तने जन नाऊँ।  
पाँचो भाइ पाँचो बुझि हीये एक इक भाँति हो पाचो लीये।  
सेत मजीब पई सिद्धि जाना, सायर सील ऊँच कर जाना।  
भानुदह बिबि मारग यहा जोग साच जो मोन होइ रहा।  
मेग फँसुछाह पीर अपारा, फने न काहु मई इमिबारा  
मेग हमन याएग यम जाहा गुन बिद्या बहै मुनी सराहा।

कवि उसमान जहाँगीर के समकालीन थे। अपने युग के सम्राट के रूप में उन्होंने जहाँगीर की प्रशंसा की है—

मुकद्दीन महोपाधि भारी धाकर जान नही मेंह सारी ।

आबद्धि अपनी और इराकी, रत मिमिरी कस्तुरी चटाफी ।

×

×

×

तबह साह बस रवि कमियारा, प्रीयम होइ रहा संसारा ।

मानु सौह बस बस ठहराई संमुख साह निगर न आई ।

‘बिजावली’ का कारण कवि उसमान ने दियरी १०२२ में किया था। इस काव्य के प्रथम में कवि को बपेठ परिभ्रम करना पड़ा था। कारण यह कि साम्प्र काव्य है और कला की संविद्वन्दीकता को धृष्ट-बद्ध करने की संकल्पता इस तत्व पर आधारित है कि कवि में स्वयं किछनी संविद्वन्दीकता है। कवि ने उसका वर्णन इस रूप में किया है—

उन सहस्र पाइस कम नही, उन हून बचन चारि एक कई ।

कहत करेब कोहू या पानी सोई जान पीर शिन्ह बानी ।

अने मुह के रूप में कवि ने सिद्ध साह निजाम का स्मरण किया है—

साह निजाम पीर सिबदाता निस्त तेज निम रवि परभराता ।

नार मोहि भीतर मस्वाना, ऊई अस्त कह सब कोइ जाना ।

×

×

×

×

मोहि नवा कै एक तिल, अवा न काबहि गहि माच ।

गुह मुख बचन मुनाम कै कवि मह कीम्ह सनाम ।

नैपाक के राजा बलीमर तथा राजी हीरा ने शिव की समस्या की। शिव की कृपा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मुजान रखा गया। मुजान गुप्त धाली या कुशाग्र बुद्धि का था। अल्प आयु में उसने अनेक विद्याओं का अभ्यास किया। वह एक कुशल अस्वागोही था। एक दिन भूमया के उपरान्त वह अपने अनुचरों के साथ बर लौट रहा था। मार्ग में अँधी आई। वह मार्ग भूल गया। वह एक देव-प्रभेत पर पहुँचा। देवगढ़ी में उसे नींद आ गई। देव अपने देव के राजा के पुत्र की रक्षा हेतु द्वार पर बैठ गया। इस मध्य देव के मित्र ने उसे सूचित किया कि बलिमर के राजा बिजसेन की प्यारह वर्षीय कन्या बिजावली की



वर्ष उत्सव मनाया जा रहा है। दोनों मित्रों ने वहाँ के लिए प्रस्थान किया। वे सोते हुए राजकुमार को भी अपने साथ ले गए। कुंवर की निद्रा सुसी। वह बिनाबकी पर मुन्ब हुआ है। उसने अपना बिज बनाया। बिज बनाकर वह पुनः सो गया। वेब उसे पुनः मझी में उठा लाये। कुंवर के बिज को देखकर बिनाबकी निकल हो उठी। मुबान घर लौटा। मुकुटि नामक ब्राह्मण के साथ वह पुनः उस वेब मझी पर पहुँचा वहाँ उसने एक अम्मसब की संस्थापना की। बिनाबकी के बूत कुंवर की खोज करते वहाँ पहुँचे। उनके साथ मुबान रप नगर जाया। दोनों द्विज मन्दिर में मिले।

बिनाबकी ने एक कुटीर का अपमान किया था। प्रतिशोध की भावना के कारण कुंवर को बन्धा कर उसने एक पर्वत की गुफा में बाँध दिया।

वहाँ उसे बबगर लिगल गया। राजकुमार के बिरह-दाप के न सह सकने के कारण बजबर ने उसे सगल दिया। एक बन मागुप की प्रेरणा से उसके नेत्र ठीक हो गए। इसके पश्चात् एक यज्ञ ने उसे परिवर्त किया। एक पत्नी उन दोनों को उत्पन्नात् उड़ा के गया। भय से ह्यापी ने उसे समुद्र में गिरा दिया। मुबान सागर में पहुँचा। वहाँ की राजकुमारी बेलाबती से उसने विवाह किया। वह उत्पन्नात् बिनाबकी के वेब में जाया। लोक भय से बिनाबकी के पिता ने राजकुंवर की हत्याका प्रयत्न किया। परन्तु राजकुंवर हत्यारों को पराजित कर, बिनाबकी से विवाह कर घर लौटा।

म्यामस ह्यौ ( ज्ञान कवि )—कवि ज्ञान का स्पष्ट परिचय अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। इस सम्बन्ध में विचार करते बाबो की बारना है कि वे शाहजहाँ के समकालीन थे। ज्ञान-रचित 'अक्षिफ ह्यौ की पैड़ी' नामक एक रचना की बचौ की जायी है। इसके रचयिता ज्ञान कवि माने जाते हैं। इस कृति की रचना कवि ने अपने पिता अक्षिफह्यौ की कीर्ति की स्मृति में की थी। इसमें नगर कोट के मुख का वर्णन है। डॉ० सरला शुक्ल ने इस ग्रन्थ से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं—

पहले बहदुर मुमरिजे जिम्ह मुमट उपजाया।  
 बोल तिसाबन कारी, रफने नहि काया।  
 मान सदै सारै नहीं, सो करणु माया।  
 सोई जिते जान कहि, जिस बोल सुनाया।'

बान कवि के ६० श्रवों का उत्सव मिश्रा है । २ इसमें २६ श्रव प्रेमास्मानक काव्यों की परम्परा में आते हैं । इनमें से 'कथा रत्नबागिनी', कथा कमलावती 'द्वन्द्व कृष्टि सामर', 'कथा कमलावती सूखी प्रेमास्मानक काव्यों के समर्थ की रचनाएँ हैं ।

कवि इस स्वरूप की रचनाओं में सूखी प्रेमास्मानक काव्यों की परम्परा के अनुसार निर्गुण कथना करता है । मुहम्मद साहब का स्वरूप करता है साहेबदत्त का नृपमान करता है —

सोऊह सै पचसैरे, बहौवीर के राव ।

ठीस मोसु में बाग कहि, पड़ सागरी सब साव ।

कथा कमलावती ।

मुन कबान बज सजपती को, बिरजीब बपता कोरी की ।

साहि बहौ साक्षि को साह, बहौवीर मूठ बगल पनाह ।

कथा पुरुष बरिपा ।

कथा तत्परमन में कवि औरंगजेब का उत्सव करता है—

बीसवार कम भजी मू गार, औरंगजेब साहि युधार ।

इस प्रकार वह स्पष्ट होता है कि बहौवीर, साहबबहौ एवं औरंगजेब के कसब तक कवि सीमित था । अर्थात् कवि बान का समय सगझनी सतावनी के उत्तरार्ध में लेकर अट्टाछवी सतावनी के पूर्वार्ध तक था । कवि बान ने अपनी निम्न निम्न रचनाओं के रचनाकाल का भी उत्सव किया है, जिससे उनके समय का परिचय मिलता है—

संजु सोऊह बी पच्चासी जगहन मास कथा प्रकासी ।

कथा कपतगरी ।

नाम बरुओ बरिपा पुरुष, मुनि रीफ बकि प्राण ।

सम सइस सैताबीस में कथा कपहरी बहू बाग ।

कथा पुरुष बरिपा ।

शेख मन्त्री—इनकी कृति 'ज्ञानबीप' है। ये बर्होपीर के समकासीन थे।  
'ज्ञानबीप' की रचना उन्होंने हि० सन् १०२९ में (सन् १६१६) में की थी।

मुरार बीनखिल पति बर्होपीर निरत नेम।

कुछ बीपक पुति कमल की साहेब सहित ससेम।

साहि ससेम खचपति खौमी बस के मार कंबस दस बोनी।

×

×

×

एक हजार सन रहे खीसा, राज मुझी पनहु बरोसा।

संगत् सीख्हा है फिहरा उकि बरत कीन्ह अनुसार।

कमि बीनपुर के अन्तर्गत बरखेमठ का निवासी था—

बखेमठ दोसर पुर बाना बाठतपुर सरकार सुबाना।

तहनां सेपनबी कमि कहीं बन्द असर पुन पिंगस मही।

बीर सिंघार बिछु किछु पाबा पूरत पर छै बोध मुसाबा।

'ज्ञान बीप' की कथा मेंमिसार मिथिक के राजा रायसिरोमधि से सम्बन्धित है। चंकर प्रसाद से उसे ज्ञान बीप पुत्र उत्तरण हुआ। बाकेट में वह अपना मार्ग भूल गया। छिड़नाथ योगी उसे योग में बीभित्त करने में असमर्थ रहा। फिर छिड़नाथ ने उसे संगीत में बीभित्त किया। वह बिचागवर के राजा की घमा में संगीत से मुग्ध हुआ। मुज्जानी राजा की पुत्री बैरपानी की सहेली थी। उसने ज्ञानबीप को देवयानी की ओर आकर्षित किया। मंत्र-बल से आकाश मार्ग से वह देवयानी के महक में प्रतिबिम्ब उतरता था। एक दिन राजा के साथ से बाह्य होकर वह चिरा। ज्ञान बीप बन्दी बनाया गया। उसे बच का ढण्ड मिला। मन्त्री ने इस ढण्ड से असहमति प्रकट की। राजा मुखदेव ने काट की पेटिका में बन्द कर उसे छत्तिया में प्रवाहित कर दिया। ज्ञानबीप मानराय की राजधानी भानपुर में बहता हुआ गया। राजा ने उसे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार किया। पुनः ज्ञानबीप और देवयानी का विवाह हुआ भागराय की मृत्यु पर ज्ञानबीप भानपुर गया। बैरपानी की बिरह पीड़ा से त्रिभुज होकर मुज्जानो ज्ञानबीप को खोज में निकली। बलस्पति रानी ने उनको सहायता की। मार्ग में ज्ञानदेव देवयानी के पास पहुँचा। उसे लेकर अपने स्वदेव के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में एक बनस्पति-मूर्ख जगन्नाथ के तट पर ब विनाम के लिए उतरे। वहाँ का

राजा सुन्दर सेन बैरवागी पर मुक्त हुआ । उसने छल किया । जामनी ने सुन्दर सेन पर आक्रमण कर बैरवागी को मुक्त किया । इस प्रकार यह कथा सुनायी है । उदाहरण के लिए इस कृति का एक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । यह अंश बिरह-वर्णन के स्वार्थ का है । निम्नलिखित के अन्तर्गत बाह्य भाषा की एक परिपाटी प्रेमात्मिका काव्यों में उपलब्ध होती है । प्रस्तुत अंश सामान्य भाव से सम्बन्धित है—

एहि सावन बिरहिन तन तावन बरसत बल दुख बीच जमानन ।  
 येनक येन मनोजक सेना, बंशुप चरित म्हाकृत मना ।

X

X

X

दुर्ग बरन बरसे चहुँ खोरा दुख मान बहि नाम हिबोरा ।  
 बिरहि निरह बहि बोले दयाया बोकहि बन भावहि उठि बामा ।  
 मरा न नाम वेदि बिषामी नैन मूढि चरितकुप सामी ।  
 कवन उवारे नायक बोझन हिया हने दुख सायक ॥  
 एह रुप बिसरे नायका नायक जेनहि निवेष्ट ।  
 भूख सने सिपार एह भई जो ओमिनी बैस ॥

कवि कासीम शाह—कासिम शाह की रचना 'हंसबहादुर' है । इस रचना में कवि ने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

है कलकठ सबक मर्मिपारा बरिवाबाद नगर उमिबारा ।  
 बरिवाबाद नाँव मन काँट, हमानुशाह मिया कर नाँव ।  
 सहराँ मोहि बनन बिधि दीन्हा, कासिम नाँव बात का दीना ।

कवि ने इस कृति की रचना हि० सं० ११४६ ( स० १७६३ ) में की थी ।

बाह्य से जनबाद को भाषा समझ कथा प्रेम कवि साधा ।

प्रायः समय के रूप में कवि दिल्ली मुल्तान मुहम्मद शाह का स्मरण किया है—

मुहम्मद शाह बेहली मुल्तान, कानी गुप्त वह कीन बजानु ।  
 छाँटे पाट पीर बरतावा भावहि खीष्ट अफत के राजा ।

सलोन नगर के पीर मुहम्मद और पीर अशरफ के प्रति सम्मान भाव व्यक्त करता है—

सुमिरौ नाम करीम सो पीरा, बैहि की भाव बडे बहि बीरा ।

×

×

×

तेहि ज्योति में दीपक बारा पीर मुहम्मद बय उबियारा ।

धर्मबल निरमल मुख, बल्लभ दुखारे पीर ।

स्निघ पर दीपक बुझ रहा अशरफ जोत क्षीर ॥

बल्लभ नगर के मुस्तान बुखानसाह को हुंस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । बुखानसाह की मृत्यु पर देश में अराजकता फैली । बाबक हुंस बन्धी बना लिया गया । उसकी माँ बन्धीसाह से बाबक हुंस को लेकर कम देश के साह के पास पहुँची । नील के साधक की रानी मुख्तार के गर्म से अबाहर नामक पुत्री हुई । अबाहर ने शरीर छट पर स्नान करनेवाली एक परी से मित्रता की । उसका नाम शरर था । एक दिन शरर उड़कर हुंस के निकट पहुँची । हुंस के मन में अबाहर के प्रति उसने आकर्षण उत्पन्न किया । इस घटना के उत्पादन के कारण शरर बन्दिनी बनी । हुंस अबाहर के मध्य व्यवधान उपस्थित हुआ । अबाहर का विवाह दिगीर के साथ ठीक हुआ । शरर दिगीर को सिवाह मध्य से उठा ले गई । उसके स्वाम पर हुंस को बिठा दिया । दोनों का विवाह हुआ । इसके पश्चात् परिशों ने हुंस के स्वाम पर दिगीर को बैठा दिया । अबाहर ने दिगीर के साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया । दिगीर बोमी बनकर निकल गया । हुंस अनेक बाधाओं के पश्चात् अबाहर से मिला । हुंस अबाहर के साथ घर की ओर प्रत्यावर्तित हुआ । मार्ग में दिगीर के प्रयास हैं उन्हें पुन विधोक्त हुआ । वह भ्रमण करते ओला साह के यहाँ पहुँचा । वहाँ उसकी पुत्री (दिगीर की बहन ) से उसका विवाह हुआ । शरर के प्रयास हैं उसे अबाहर भी मिल गई । अबाहर के गर्म से उसे हसीन नामक पुत्र हुआ, जो उसका उत्तराधिकारी हुआ ।

‘हुंस-अबाहर’ की कथा काव्यमय है । कथा के घटनास्थलों के रूप में बल्लभ पीर और कम प्रदेशों को कवि ने चुना है । परन्तु पात्रों के नाम तथा घटना-क्रम ग्रन्थ प्रेमसाहयानक काव्यों के समान भारतीय है । विप्रकर्म वर्णन के सन्दर्भ की कुछ पंक्तियाँ अनाहरण के लिए प्रस्तुत हैं—

मेन चुबे जस ताबन मोरी पित दिन नाउ को सोवै ।  
 सती कल संग करे किसोला राधा पहिरिमु भुके हियोला ।  
 मोर सिमार सो कानि गाहा, मही के बौह पड़ेत बीगाहा ।  
 पवन भुझावै भगहि मम निरह भकोरे बेम ।  
 गहन बड़े उत्तरे अवनि पित दिन घाम को लेव ।

बायसी के खान कवि कासीम शाह ने भी इस हठि के स्पष्ट-रस का स्पष्टीकरण दिया है—

कासिम कबा जो प्रेम बखानी, भुके सोई जो प्रेमी जानी ।  
 कौन अबाहिर रूप सोहाई कौन घर जो करत बकाई ।  
 कौन हूँत जो दरख्त कोमा, कौन शेष बेहि कैंबे दोमा ।  
 कौन पंख जो कठिन अपारा कौन घर जो अतरे पारा ।  
 कौन मीठ जिन संग त्रिब दीना कौन सी दुर्जन अति छक कीना ।  
 को क्षानी जिन बानि सुनावा, कौन पुख्त जिन सुन बिठ सावा ।  
 कौन दुष्ट बेहि दरम न भुझ कौन मेर बेहि खलहि भुझ ॥

नूर मुहम्मद — नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती' की रचना दि० ११२७ ( सं० १८६१, या सन् १७४४ ई० ) में की थी । कवि किसी 'सबरहृद' नामक स्थान का निवासी था । यह सबरहृद जौनपुर जिले में अब भी विद्यमान है ।

कवि अस्थान कीन्ह बेहि ठाँक, सो वह ठाँक ब्रह्महृद गाँक ।  
 बुरख सिधि बरखास समाना, बड़े गरीबूरी को पाना ।  
 ई मत जय यह पंक्ति रहता रेखु बहादा आनम कहना ।

इन्द्रावती पर

इन्द्रावती की रचना कवि ने तबब अवस्था में की थी । इसका उत्प्रेषण उसन इस प्रकार किया है—

ई कवि समय गई तनवाई छूँन अबही कवि तरिकाई ।  
 बाके हिएँ सरिक बुनि होई बहुतै नुक कहत ई सोई ।  
 बिनभय कविजन कह कर मोरी है मोरी बुनि पुनिया मोरी ।

इसके अतिरिक्त इनकी दूसरी कवि है 'अनुराग बौमुरी' । इस हठि का रचना काल है दि० ११७८ ( संवत् १८२१ )—

यह इम्प्राह्म से बठहतर, फेर सुनाएत बचन मनोहर ।

ऐसा निस्वात किया जाता है कि 'नन्दरत्न' नामक इनकी एक अन्य कृति भी है परन्तु यह कृति प्राप्य नहीं है । इन्द्रावती में कवि ने साहेब बख के रूप में 'मुहम्मद साह' की प्रशंसा की है—

कहो मुहम्मद साह बखानू है सुरज बिछी सुखतानू ।

सब काहू पर बाया बरई धरम सहित सुखतानी करई ।

'इन्द्रावती की कथा पूर्वार्ष तथा उत्तरार्ष की भावी में है । प्रथमार्ध प्रकाशित है उत्तरार्ष की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित पड़ी हुई है ।

कार्तिकर के राजकुमार ने स्वप्न में स्वर्ग में किसी सुन्दरी का सौन्दर्य देखा । राजकुमार ने अपने तपस्वी पुत्र नाथ को सब प्रवर्तक बनाया । वह अपने बाठ साधियों के साथ योगी होकर आगमपुर के लिए चल पड़ा । अनेक बाधाओं के पश्चात् वह आगमपुर पहुँचा । तब भन्विर में आकाशवाणी हुई, और राजकुमार राजकुमारी की कुसुमारी में गया । बाटिका में राजकुमारी ॥ उसका मित्रन हुआ । राजकुमार मूर्च्छित हो गया । राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए समुद्र से मोटी निकालना अनिवार्य था । इस प्रयास में वह बन्दी हुआ । उसके मन्त्री बुद्ध सेन ने उसे मुक्त कराया । राजकुमार को मोटी मिला और उन दोनों का विवाह हुआ ।

कवि ने इन्द्रावती के उत्तरार्ष में कथा का आरम्भ राजकुंवर और इन्द्रावती के संयोग मुस से किया है । राजकुंवर की प्रथम रानी सुन्दर कार्तिमन्जर में दृष्ट से दिन व्यतीत कर रही थी ।

राजकुंवर के प्रस्थान-समय सुन्दर रानी बर्धवती थी । समय से सुन्दर रानी के कार्तिकराम नामक एक पुत्र हुआ । रानी ने एक दिन पवन से राजकुंवर के पात सन्देश भेजा । राजकुंवर ने स्वदेश के लिए इन्द्रावती के साथ प्रस्थान किया । मार्ग में उन्पि की कन्या ने राजकुंवर के प्रेम की परीक्षा ली । वह अपनी परीक्षा में सफल हुआ ।

आखेट में विधाम-बेला में राजकुंवर ने वृक्ष के नीचे एक बुक से एक कथा सुनी । वत्स नामक कुंवर का प्रेमा नामक राजकुमारी से विवाह हुआ । वत्स

काष्ठ में ही मङ्गल की मूर्तु हुई, प्रेमा सती हो गई । रामर्षुवर इस कथा से  
काहत हुआ । इस आघात से उसकी मूर्तु हो गई । दोनों रामियों उसके साथ  
करी हो गई । इस कृति से एक भेद यहाँ प्रकट किया जाता है । यह उदाहरण  
प्लवङ्ग के अन्तर्गत पावस के उद्गीर्ण-स्वरूप का है—

प्लु पावस पानी छे आयेन सावन जो भावों भरि लाएन ।  
बावत कहु आयेन पानी छे, सावन भावों नीर बरिसे ।  
हरिबर नई नीर सी भुपी, पछिरेन प्यारी नीर सुमुखी ।  
कमलै कामिनि कामिनि कारी करे न निज संघ कामिनि प्यारी ।  
बड़ी बोलाल मन्हार बजावै, प्यारी प्यारी पारी पारै ।  
बग हिलोस को पदमिनी बारी मूलै मन्द हिलोस प्यारी ।  
बिछा एक न मार्गहि, मार्गहि अपन हठास ।  
जोप सुख हंसि खेक जो, बीति गएन बीमास ।

अनुराग बाँसुरी—मूर्तिपुर के जीव नामक राजा के अन्त-करण नामक  
पुत्र के संकल्प और विकल्प नामक दो मित्र थे । बाब ही साथ दुष्टि बड़कार  
एवं चित्त बादि भी उद्योग बलिष्ठ रूप में सम्पन्न थे । अन्त-करण महामोहनी  
के सौन्दर्य पर मूक था । परन्तु वह सर्वव्यापक नामक सुन्दरी पर भी आकर्षित  
हुआ । अन्त-करण का परिवार समूह पुत्र नामक सम्पादी से हुआ । उन्होंने छे  
सोह-दार्प में दीक्षित किया । सोह नगर के मार्ग प्रवर्तन-हेतु उन्होंने एक लोहे  
को उनके साथ कर दिया । नाम मार्ग का परिवार कर उद्योग दक्षिण मार्ग का  
अनुसरण किया । इन्द्रिष्ठपुर की कामुकी समभावनी नामक पत्नी के आकर्षण से  
अप्रवर्तित होते हुए सोह में नगर में प्रवेश किया । वहाँ सुमाकी मेरवा के अन्त-  
करण और योगता का विवाह हुआ ।

अन्त-करण पत्नी सहित स्वरेण गीत । इस काम्य शब्द का एक भेद  
उदाहरण के लिए यहाँ दिया जा रहा है—यह भेद वचन के उद्गीर्ण के  
रूप में है—

पूना बेक मुलच्छन काका बुन्दा मरा रक्त सी प्यासा ।  
कहा मेरे काका अनुरागी दीक्षित निज पियवि केहि कारी ।



कहि सनेह के बगव अपारा, साँखन तोहि हिरदय में डारा ।

बम्मा पीठ रंग अलि बेही, कही पीत किन कीन्हा तोही ।

कवि हुसेन अली—कवि हुसेन अली ने हि० सन् ११३८ में 'पुहुपावती' नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी—

हुसेन अली कवि छे बहु जाती करी कया किये बहु भाँठी ।

बासक ठाँठ कहीं हरि नाकेँ धरी सवानल कवि निनुनाकेँ ।

केना निवासी केयब नास कवि के काव्य-बुध दे—

केसवकाउ केना के वासी, काबिबेर दे बुद्धि प्रकासी ।

कवि ने इस रचना का प्रथम हि सन् ११३८ में किया था—

म्यारह से भरसि सनी, पुहुपावती कया सब अनी ।

काशी राज मानिकचन्द विजय वसहटा के दिन बाग दे रहा था । इसी सन्धर्भ में पद्मिनी और रत्नसेन की बर्णन बनी । एक ब्राह्मण ने कहा पद्मिनीयों केवल बम्बू द्वीप में होती है । इस मध्य एक भाटिन ने यह सूचना दी कि बम्बू द्वीप के क्यमर के मरेश पणसेन और रामी कौचिस्वा की पुत्री पुहुपावती पद्मिनी है । मानिक चन्द ने पुहुपावती के पास अपना चित्र भेजा । पुहुपावती मुग्ध हुई । इस कृति की प्रति अखिल है । जट कया के उपसंहार का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता । इस कृति का एक अंश लघुहरण के लिए यहाँ उद्धृत किया जाया है । मानिकचन्द का चित्र पुहुपावती को मिला है । इसी सन्धर्भ का वर्णन कवि यहाँ करता है—

पुहुपावति यह बधा जु देखी, अलि अलि चित्र मे मया बिसेपी ।

को बस अही जगज निरखई आहि बस चित्र बधा य कई ।

×

×

×

अलि अलि चित्र काम तन जागा, हूई मनु बिबरा बिबरन रंका ।

चित्रहि कहीं सु होई संजोयू, मिलै न मित्र मन होइ बियोयू ।

गहि कर मनुष सो पाँची जाना, तिय तन कठिन जानि उन ताना ।

प्रथमहि बाग सु मोह बलावा अस लायो मन जाउ बनावा ।

कवि शेषा निमार —कवि शेषा निमार ने 'सुमुख प्रसेधा' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । कवि ने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

सेलपूर बसि पाँव सुहावा सेख निवार बमम तंह पावा ।  
 कारिज ओर घनन अंबराई बमम बचाह नहूँ दिशि लाई ।  
 घन इबीमुल्लाह सोहाये सेख पर बिन्दु आय बघाये ।  
 पाठ साह अकबर मुसताना तेहिक राबकर करत बलागा ।  
 बमम देव सुबा होइ आए बीस बरस तहँ सोहाय ।  
 तेहि के सेख मोहम्मद बारा क्यबल्य छोधी बबतारा ।  
 तामु गुलाम मोहम्मद नाऊ सो मम पिता बी ताकर गाऊ ।  
 तेहि घर हों विपनी बीतारा बार बीस बस बी मुख बारा ।  
 'नेहर निवार' नामक ग्रन्थ में कवि ने लिखा है—

इन ग्रन्थों से केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि अकबर के समय कबी  
 मुल्ला दिल्ली से अवल आये। अवल में कबी के निकट सेख पुरा शाय में थे बसे।  
 सेख इबीमुल्ला नहूँ बीस वर्षों तक रहे। उनके पुत्र का नाम सेख मुहम्मद था,  
 सेख मुहम्मद के छपके सेख गुलाम मुहम्मद थे, इनके पुत्र सेख निवार हुए। सेख  
 वल पुरा बमम (बयोब्बा) और कबी के मन्त्र सिक्त था।  
 जिस समय सेख निवार ने इस ग्रन्थ का तारम्भ किया उस समय दिल्ली  
 पर शाह आकम का शासन था। कारिज साँ चहैले ने बाबसाह की बाँछें  
 फोड़कर उसे बन्धा कर लिया था। परन्तु सुबा बमम सुरक्षित था। वहाँ का  
 शासन आसफुद्दीन था।

आकमसाह हिन मुसताना तेहि के राज यह कथा बलागा ।

कारिज साँ सो बमम रहेला सो अपराध कीन्ह बड़ पेला ।

पाठसाह नहूँ बाँधर कीन्हा सुत अब नारि सगहि कुछ चीन्हा ।

नहूँ दिश अन्य भुग्य सन छावा कबल देव नहूँ हराव बलागा ।

बहिमा साज आसफुद्दीन तामु सहाय रहै निठ मौला ।  
 कवि ने अपने ग्रन्थ का प्रथम हिस्सा सन् १२०२ में किया था—

हियरी सन् बारह सेपाँचा, बरलेत मेम कथा यह सौँचा ।

बट्ठाएह से सेठासीसा सन् विक्रम सेन नरेठा ।

सतरह से बारह पुनि साका, पूर्ण भास नूषी ससि राका ।

सत्तावन बस बीते आठ ठब उपर यह कथा क बाठ ।

घात बिबस यह कीन समापत, दुर्मति नाम बहो यह संकप् ।

इस कृति से एक अंश उदाहरण स्वल्प यहाँ सहित है । विषय में वसन्त के वृषीप-रूप के वर्णन से यह अंश सिद्धा क्या है—

फूले फूल सिखी पुंवारहि, लागी बागि बनार के बाहि ।

मैं का करूँ कहीं अब बाढ़ें मोह कहीं नहीं बसत मंह ठाढ़ ।

टेसू फूल तो कीन्ह बंजोरा, लागी बागि जरूँ बहो भोरा ।

विषय भावना सहीमे हो जाती है—

बन बरबे बागिनि लोकाहीं नारी बंद के गोव सिद्धाहीं ।

हय कैहि के गिर भावें बाहीं पावत समय देह बस नाही ।

बर हमार सब भीबा पानी, सत राजा हूँ बहि जयराजी ।

प्रवासा अहमद—प्रवासा अहमद का जन्म सन् १५६० में हुआ था । इनका जेवाच-स्थान प्रतापगढ़ के अन्तर्गत बाबू नामक गाँव था । इनकी कृति 'नूरजहाँ' । इस प्रकार की भावना प्रवर्धित है कि मृत्यु के दो माह पूर्व इन्होंने 'नूरजहाँ' की रचना की थी । इनके पुत्र का नाम मोहम्मद अमीन था । 'नूरजहाँ' की रचना रचना इन्होंने बामसी के 'परमाक्त' और कासिम साह के 'हंस जवाहर' नामक कृतियों से मिली थी । इस कृति की रचना इन्होंने संवत् १६६२ में की थी ।

मलिक मोहम्मद गुरू न जाना । क्या परमिनी कीन्ह बखाना ।

मड़ बितीर भी सिबस बीपा । छियेज बलाम सो मेम सनीपा ।

ओ कासिम बस बरिया बाबी । छियेज हंस के कथा सो बावि ।

इस रचना की कथा ईरानगढ़ के मुकद्दाम मलिक साह से सम्बन्धित है । उनकी दरबारी नूरतान को सुरखेवसाह नामक पुत्र हुआ था । सुतम घाट के मुकद्दाम खबर साह की बुनी का नाम नूरजहाँ था । नूरजहाँ की सहेली मुमति थी । वह परो थी । मुमति सुरखेव को नूरजहाँ के पान बठा से पर । सुतन में सुरखेवसाह और नूरजहाँ का विवाह हुआ है । इसके पश्चात् सुरखेव नूरजहाँ को लेकर रुम आया । अपनी

अपनी गहकी पत्नी सुलझोन से मिलकर बहु बहुत प्रसन्न हुआ । कथा के उत्तरार्ध में कवि ने इसके कथक का स्पष्टीकरण भी किया गया है ।

देसेन मति कामा के मोही दूसर पाट बहर कहुँ नाहीं ।

काया माझि नखन पुर पाटा देसेन सरन दीप के बाटा ।

सब नदपति कामा के माही, दूसर ठाँउ लखी कहुँ नाहीं

गुणहों कामा के बोली कावा समुह दीप जहँ मोही ।

कवि नसीर—कवि महीर गाजीपुर के अमरिजाँ बंस के निवासी थे ।

पाबीपुर बिना बिहि ठाऊ । ताड़े बाँक अमनिया बाऊ ॥

बही लगन भूमि है मोरा । निज वरतत कहुँ कहुँ मोरा ।

इन्होंने 'प्रेम कथा' कृति की रचना की । इस ग्रन्थ की समाप्ति कवि ने द्वितीय सन् १३०३, सन् १३७४ के बीबीर (?) महिमे की बीबीसवीं शताब्दी की की —

द्वितीय शताब्दी की पैंतीसवाँ भाग बीबीर भाग बीबीसवाँ ।

संस्तुत उन्नीसवीं शताब्दी, भाग बीबीर भाग बीबीसवाँ ।

करके बहुत ही श्रष्ट कहेता, यहि निज कथा किमो मैं सेता ।

इस ग्रन्थ में बुद्ध-जुलैका की प्रेम-कथा सम्पादित है । इस कृति का एक अंश जयपुर में है वहीं उद्धृत किया जा रहा है । मूल की मूल के अनुसार जुलैका की कथा इस अंश में वर्णित है—

जाय बकल एक माटी दाहा, जाय गिरी वह क्यूँ दाहा ।

फूल गुलाब जो रहे कपोता गोक किहिस बस संसुक फेका ।

दक्षिणेश्वरी हिन्दू की प्रेमास्वात्मिक रचनाओं

दक्षिणेश्वरी हिन्दू की प्रेमास्वात्मिक रचनाओं उत्तरी भारत के प्रेमास्वात्मिक कान्धों से मिली हैं । काव्य रूप जाया-सैली एवं अन्य प्रयोग इन सभी दृष्टियों से इन की सभी की रचनाओं में मिलता है । परन्तु उद्देश्य की दृष्टि से इनमें अन्तर नहीं है । दक्षिणेश्वरी परम्परा की प्रमुख अस्मितात्मिक कृति 'कथम राम व परम' है । इनके संपन्न निवासी थे । इनका समय ई० सन् १४२७ के बाद माना गया है । निवासी अहमद शाह साकिर बहमनी का समकालीन था । कहा जाता है कि यह कृति 'अजयन शक्ति-चर्य' (पाकिस्तान) में प्रसिद्ध है । नसीरुद्दीन हाफमी

(पद्म में उर्दू मसख १९१२ ई०—मुईसल खयब उर्दू बाजरा छाहोर पृ० १३),  
 ने इस रचना का परिचय देते हुए कहा है कि इसकी रचना-सीसी सूफियों की  
 मसनवी सीसी की है। इसमें भी परमेश्वर की स्तुति की गई है। परन्तु इसका  
 छन्द फारसी का अहूर है। रचना अपूर्ण है अतः इसकी सम्प्रदाय पर विचार  
 करना सम्भव नहीं है। उदाहरण—

कि तू सोच मेरा गुनाई कबय । पद्म राव तुम पाँव केरा पद्म ॥

वहाँ तू बरे पाँव हो सर बर । बायस सार कील कतराई कर ।

इसिल्ली उर्दू के सूफी मेमाखानक काव्य । पृ० १२४ ।

इस परम्परा की दूसरी कृति है 'कुतुब मुस्तरी'। इसके लेखक है मुस्ता  
 बख्शी। वे गोल्डकुष्ठा के इब्नाहीम छाह के बरदार-कवि थे। 'कुतुबमुस्तरी' की  
 रचना इन्होंने हि० १०१८ अर्थात् सम १९१० ई० में की थी—

तमाम इसकिया बीस बारामने । सम एक हवार ठोर बठारा मने ।

कुतुब मुस्तरी इस्लामी प्रकाशन समिति—ईदराबाद पृ ५ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है, 'सैकुल मुस्तक ब मरी उक बमाक'। इसके  
 रचयिता बमासी हैं। वे गोल्डकुष्ठा के निवासी और बख्शी के समकालीन थे।  
 इस कृति की रचना कवि ने १०२७ हि० या १९१७-१९ ई० के मध्य की थी।  
 इसकी कथा का सम्बन्ध मिश्र देश से है। इसकी कथा का संघटन बामसी तथा  
 अन्य कवियों की रचनाओं के कथा-संघटन से मिलन नहीं है। 'मुगाकरी' या  
 'मयुमाकरी' की कथा के समान एक राजकुमारी की सहायता में नाकक को  
 नासिका की प्राप्ति होती है। समुद्र-भावा अकमान-खषन तथा अन्य बहोकि  
 घटनाओं के समावेश के माध्यम से इसकी कथा भूमि निर्मित है।

'बमासी' के नाम से 'अन्दा और जोरक' नाम की भी एक कृति उपलब्ध  
 हुई है। इस प्रकार की कारना व्यक्त की गई है कि यह कृति किसी फारसी  
 इतिहास का क्वातर है। (देखिए—बजल में उर्दू पृ० ७८)। परन्तु यह निर्यय  
 विचारपूर्ण है। 'दक्किली के बघ और पघ (सम्पादक श्री राम समी पृ०  
 २५६ २६ १९३४ ई०) में इसके अंश संकलित हैं। इसके आधार पर यह  
 संकेत मिलता है कि इसकी कथा मुहम्मदाब्द की कथा के अनुरूप ही है। मुस्ता

की रचना की इसकी अतः रोमान में विस्तारवत् प्रस्तुति है ।

इस परम्परा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति 'चन्दर बदन व महियार' है। इसके रचयिता मुकामी थे। वे बीजापुर निवासी थे और इबाहीम खासिख पाह के समकालीन थे। यह विश्वास किया जाता है कि कवि ने इस काव्य की रचना सन् १६२७ में की थी। इस कृति में मुकामी ने यवासी का स्मरण अपने युग के रूप में किया है। इस कृति पर विचार करते हुए मुहम्मद अकबरखान सिद्दीकी ने कहा है 'रचना का मकसद यह है कि इस्लाम की अवगत कादिर करना है। (देखिए—चन्दरबदन व महियार कथा-सम्पादक अकबरखान सिद्दीकी-मूकिका) महियार नामक एक युवक चन्दर बदन के राजा की कन्या पर आसक्त होता है। परन्तु राजकन्या उसे अस्वीकार करती है। चन्दर बदन अपने प्राय त्यागता है। राजकुमारी इससे विधुष्य होती है। वह भी अपने प्राय त्यागती है। इस कथा का आधार ग्रहण कर 'आसिखी' नामक कवि ने एक फारसी मसनवी की रचना की थी (हमिदनी का पद्य व पद्य पृ० ४६०) परन्तु यह कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

गुलछने इस्क' इस नाम की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है। इसके रचयिता कवि सुवरणी हैं। इस कृति की रचना इन्होंने सन् १६२८ ई० में की थी। इसमें मनोहर और मधुमाकली की प्रेम-कथा वर्णित है। डॉ० एहतिषाम हुसैन ने अपने ठहूँ साहित्य के इतिहास में इस कृति पर विचार किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि यह कृति पूर्णतः ईराण की मसनवी शैली पर लिखी गई है। अन्य रचनाओं में इमनिशास हज 'फुलबदन' हाजमी हज 'यूनुस बुनेखा' तथा ठहई हज किस्ते बहराम व गुलबदन' महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

सूफी का अर्थ सुफी का अर्थ यह प्रस्तावित किया गया है कि उन्नी बरस धारण करके एकान्त जीवन व्यतीत करने वाले और साधना करने वाले साधकों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस्लाम की प्रथम दो पलायनियों में सन्नास व्यतीत करने वाले साधक स्वयं उन का आचरण धारण

१—फिदाब-मन्न-मुना—लेखक—गस बक-सरीब—येस हैस्टिख इत्यादिको-  
वीडिया मोठ रसिमम एण्ड एक्सिस बास्मूम १२ से चहत।

(दक्कन में उर्दू मसलख १६१२ ई०—मुईउल अयब उर्दू बाबरा काहीर पृ० ३१), ने इस रचना का परिचय देते हुए कहा है कि इसकी रचना-शैली सुफियों की मसगबी कबी की है। इसमें भी परमेश्वर की स्तुति की गई है। परन्तु इसका ध्वन्य फारसी का बहुर है। रचना अपूर्ण है अतः इसकी समझता पर विचार करना सम्भव नहीं है। सराहूरज—

किं तु सोच मेरा मुसाई कबम । पदम राख तुज पाँव केरा पवम ॥

जहाँ तू बरे पाँव हो सर बरु । जायस तार कीछ कठराई करु ।

इन्किलामी उर्दू के सुफी प्रेमोप्यानक काव्य । पृ० १२४ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है 'कुतुब मुस्तरी'। इसके लेखक हैं मुहम्मद बख्शी । ये मोलकुष्का के इक्बालीम शाह के दरबार-कवि थे। 'कुतुबमुस्तरी' की रचना इन्होंने हि० १०१५ अर्थात् सन् १६१० ई० में की थी—

समान इसकिया बीस बारामने । सन एक हजार ठीर अठारा मने ।

कुतुब मुस्तरी इन्किलामी प्रकाशन समिति—ईशराबाद पृ० ३ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है, 'सेकुल मुहक व यदी उल बमाज'। इसके रचयिता बख्शी हैं। ये मोलकुष्का के निवासी और बख्शी के समकालीन थे। इस कृति की रचना कवि ने १०२७ हि० या १६१७-१८ ई० के मध्य की थी। इसकी कथा का सम्बन्ध निम्न वैद्य से है। इसकी कथा का संवर्धन जायसी तथा अन्य कवियों की रचनाओं के कथा-संवर्धन से मिल गयी है। 'मुसाबती' या 'मधुसाबती' की कथा के समान एक राजकुमारी की सहायता से नायक को नामिका की प्राप्ति होती है। उम्र-माया जन्मान-उच्छन्न तथा अन्य जलौकिक घटनाओं के समावेश के माध्यम से इसकी कथा भूमि निमित्त है।

'बख्शी' के नाम के 'कथा और कौरक' नाम की भी एक कृति उपलब्ध हुई है। इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गई है कि यह कृति किसी फारसी कृति का कपास्रर है। (देखिए—दक्कन में उर्दू पृ० ७८)। परन्तु यह निर्वय विवादपूर्ण है। 'दक्किलामी के पद्य और पद्य' (सम्पादक भी राम धर्मा पृ० २८६ १६ १६१४ ई०) में इसके अंग संकलित हैं। इसके आधार पर यह संकेत मिलता है कि इसकी कथा मुहम्मद की कथा के अनुकूल ही है। मुहम्मद की रचना ही इसकी मूल प्रेरणा में विद्यमान लगती है।

इस परम्परा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति 'बन्दर बदन व महियार' है। इसके रचयिता मुक़ीमी थे। वे बीजापुर निवासी थे और इब्राहीम खानिखाने के समकालीन थे। यह विश्वास किया जाता है कि कवि ने इस काव्य की रचना सन् १९२७ में की थी। इस कृति में मुक़ीमी ने पदासी का स्मरण अपने गुरु के रूप में किया है। इस कृति पर विचार करते हुए मुहम्मद अकबरखान सिद्दीकी ने कहा है 'रचना का मकसद मजहबे इस्लाम की अजमत बाहिर करना है। (देखिए—बन्दरबदन व महियार कथा-सम्पादक अकबरखान सिद्दीकी मूनिफा)। महियार नामक एक मुक़द बन्दर बदन के राजा की कन्या पर आसक्त होता है। परन्तु राजकुमारी उसे ख़त्मीकार करती है। बन्दर बदन अपने प्राय होता है। राजकुमारी इससे विमुख होती है। वह भी अपने प्राय त्यागती है। इस कथा का आधार ग्रन्थ कर 'आसिखी' नामक कवि ने एक फारसी मसगवी की रचना की थी (इस्लामी का पद्य व पद्य पृ० ४२०) परन्तु यह कृति जमी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

गुलशने इल्क' इस वर्ष की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है। इसके रचयिता कवि मुसररी हैं। इस कृति की रचना इन्होंने सन् १९२८ ई० में की थी। इसमें मजहूर और मयुमाखती की प्रेम-कथा वर्णित है। डॉ० एडविंसान हुसेन ने अपने छद्म साहित्य के इतिहास में इस कृति पर विचार किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि यह कृति पूर्णतः ईरान की मसगवी शैली पर लिखी गई है। अन्य रचनाओं में इस्लामिवाद कुछ 'मूकबदन' हाशमी कुछ 'यूसुफ बुनेला तथा ठवई इल' किस्से बहराम व गुलबदन' महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

सूफ़ी धर्म का वर्ष 'ऊन' माना गया है। इस सम्बन्ध में सूफ़ी का अर्थ यह प्रस्तावित किया गया है कि ऊनी नका धारण करके एकान्त जीवन व्यतीत करने वाले और साधना करने वाले साधकों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस्लाम की प्रथम दो सताभिरवी में सम्पाद व्यतीत करने वाले साधक स्वयं ऊन का आवरण धारण

१—फ़िदाब-अल-मुमा—कैलक—नव अल-धरीज—जेम्स हेस्टिंग्स इत्यादिकलो-पीठिया डॉ० रेजिना एण्ड एनिस बास्पूम १२ से उद्धृत।



(ककम में उर्दू मसलख १९५२ ई०—गुईलन अयम उर्दू भाषरा आहोर पू० ११),  
 ने इस रचना का परिचय देते हुए कहा है कि इसकी रचना-सेमी सूक्तियों की  
 मसमबी ढकी की है। इसमें भी परमेश्वर की स्तुति की गई है। परन्तु इसका  
 छन्द फारसी का बहर है। रचना अपूर्ण है अतः इसकी समझता पर विचार  
 करना सम्भव नहीं है। सहाहरण—

कि तू सोच मेरा गुसाई कदम । पदम राव शुभ पाँव केरा पदम ॥

जहाँ तू बर पाँव हो सर बक । जायस सार कील कतराई कक ।

दक्कनी उर्दू के मुफ्ती मेवाक्यामक काव्य । पृ० १२४ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है 'कुतुब मुस्तरी'। इसके लेखक हैं मुहम्मद  
 बबही । ये गोल्कुम्भा के इलाहीम साह के दरबार-कवि थे। 'कुतुबमुस्तरी' की  
 रचना इन्होंने हि० १०१८ अर्थात् सन् १६१० ई० में की थी—

वसाम इसकिया बीस बारामने । सन एक हबार ठीर अठारा मने ।

कुतुब मुस्तरी दक्कनी प्रकाशन समिति—ईसराबाद पृ० ५ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है 'सेकुल मुलुक व यदी उल अमाक'। इसके  
 रचयिता गवासी हैं। ये गोल्कुम्भा के निवासी और बबही के समकालीन थे।  
 इस कृति की रचना कवि ने १०२७ हि० या १६१७-१८ ई० के मध्य की थी।  
 इसकी कथा का सम्बन्ध निम्न वेस से है। इसकी कथा का संकलन आम्सी तथा  
 अन्य कवियों की रचनाओं के कथा-संकलन से भिन्न नहीं है। 'मुगावती' या  
 मधुमावती की कथा के समान एक राजकुमारी की सहायता से नायक को  
 नासिका की प्राप्ति होती है। समुद्र-यात्रा अस्मान-उपवन तथा अन्य अलौकिक  
 घटनाओं के समावेश के माध्यम से इसकी कथा त्रुति निमित्त है।

गवासी' के नाम से 'अन्दा और कौरक' नाम की भी एक कृति उपलब्ध  
 हुई है। इस प्रकार की पारना व्यक्त की गई है कि यह कृति किसी फारसी  
 कृति का रूपान्तर है। (देखिए—दक्कन में उर्दू पृ० ७८)। परन्तु यह निर्विषय  
 विचारपूर्ण है। 'दक्कनी के गद्य और पद्य' (सम्पादक श्री राम दायी पृ०  
 २८६ ८६ १९५४ ई०) में इसके बंध संकल्पित हैं। इसके आधार पर यह  
 संकेत मिलता है कि इसकी कथा मुहम्मदाक की कथा के अनुरूप ही है। मुहम्मद  
 आक की रचना ही इसकी मूल प्रेरणा में विद्यमान लगती है।

इस परम्परा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति 'चन्दर बदन व महियार' है। इसके रचयिता मुकौमी थे। वे बीजापुर निवासी थे, और इबाहीन आदिल शाह के समकालीन थे। यह विश्वास किया जाता है कि कवि ने इस काम्य की रचना सन् १६२७ में की थी। इस कृति में मुकौमी ने मराठी का स्तर अपने युग के रूप में किया है। इस कृति पर विचार करते हुए मुहम्मद अकबरकी सिद्दीकी ने कहा है 'रचना का मकसद मजहूले इस्लाम की आज्ञात बाहिर करना है। (देखिए—चन्दरबदन व महियार कथा-सम्पादक अकबरकी सिद्दीकी मुमिना)। महियार नामक एक मुकक चन्दर बदन के राजा की कथा पर आधारित होता है। परन्तु राजकन्या उसे अस्वीकार करती है। चन्दर बदन अपने प्राय त्यागता है। राजकुमारी इससे विजुल्य होती है। वह भी अपने प्राय त्यागती है। इस कथा का आधार ग्रन्थ 'आदिघी' नामक कवि ने एक कारस मसनवी की रचना की थी (दक्खिनी का पद्य व पद्य पृ० ४६०) परन्तु यह कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

युक्तयने इतक' इस वर्ष की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है। इसके रचयिता कवि गुलामी हैं। इस कृति की रचना इन्होंने सन् १६२८ ई० में की थी। इसमें मनोहर और मनुमाखती की प्रेम-कथा वर्णित है। डॉ० एडविशान हुसेन ने अपने उर्दू साहित्य के इतिहास में इस कृति पर विचार किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि यह कृति पूर्णतः ईरान की मसनवी शैली पर लिखी गई है। अन्य रचनाओं में इमनिसात कृत 'युक्तयन' हास्यी कृत 'युक्त बुद्धि' तथा तबई इन किस्से बहाम व युक्तयन' महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

सूफ़ी धर्म का अर्थ 'ऊन' माना गया है। इस सम्बन्ध में सूफ़ी का अर्थ यह प्रस्तावित किया गया है कि ऊनी वस्त्र धारण करके एकान्त जीवन व्यतीत करने वाले और साधना करने वाले साधकों के लिए इस धर्म का प्रयोग होता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में सम्पादित व्यतीत करने वाले साधक स्वयं ऊन का आवरण धारण ?—फिदाव-अक-मुमा—देखिए—नय अक-शरीफ—वेम्स हेस्टिंग्स इत्यादिको

करते थे। इसलिये ऐसे शास्त्रों को सूफी कहा गया।<sup>१</sup> कतिपय विद्वानों ने सूफी शब्द का सम्बन्ध सफा से स्थापित किया है जिसका अर्थ है पवित्र। एक अन्य प्रस्तावना के अनुसार मुहम्मद के समय मरीने की मस्जिद के सम्मुख मुक्त (चबूतरे) पर बैठकर शायना करने वालों को सूफी कहते थे। इसी सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि सूफी शब्द का सम्बन्ध 'सफे-जम्बल' से है। 'सफे जम्बल' का अर्थ होता है बाराकना में निष्ठ शास्त्रों की अधिम पंक्ति।<sup>२</sup> 'जम्बल' एक वायावर जाति थी। सूफी शब्द का सम्बन्ध इस 'सफा' शब्द से स्थापित किया जाता है। कुछ विचारकों की यह धारणा है कि ग्रीक शब्द 'सोफिस्ता', से 'सूफी' शब्द विकसित हुआ है, जो ज्ञान का पर्यायवाची है। इन मध्यम मान्यताओं से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। परन्तु इनसे यह संकेत मिलता है कि विद्वानों के एक विशेष वर्ग या सम्प्रदाय के लिये ही 'सूफी' का प्रयोग किया गया होगा। इस वर्ग के व्यक्ति सफेद रंग का परिधान धारण करते थे। इस मत का समर्थन एक अन्य आधार से भी ही जाता कि फारसी रहस्यवाहियों को 'परीना पोश' कहा जाता था।

**सूफी मत और लक्ष्यबुद्धि**

इस्लामी धर्म के अन्तर्गत रहस्यवाहियों के लिये ही काब-क्रम से 'सूफी' संज्ञा का प्रयोग होने लगा था। इस्लाम धर्म के अनुरार रहस्यवादी भावना को ही लक्ष्यबुद्धि की संज्ञा मिली। इस प्रकार सूफी धर्म के स्वरूप से सम्बन्धित समय-समय पर जो विचार प्रस्तावित किए गए उनमें एक क्यता नहीं है। विभिन्न विचारों का संश्लेष यहाँ दिया जा रहा है—

[ क ] सफा सूफी अपवित्रता का परित्याग कर शायना की उच्च भूमि का आचार ग्रहण करता है।—कहफ़ बल महमूद-सैयद-अल-हजिरी-अनुवादक ए० निकसगन पृ० ३३।

[ घ ] ईश्वर के सत्य का साक्षात्कार और जीवन में रहते हुए जीवन से मुक्त हो जाना ही सूफी धर्म है।—संत मास्फ़-जल-दरफी।

१—ई० बी० साउथ मिट्टेरी हिस्ट्री आफ़ परसिया १६०६ पृ० ४१६।

२—मास्फ़ सादत बोफ़ इस्लामिक कल्चर—जिल्द २ अंक ४ पृ० ३०४।

इस प्रकार अनेक कर्मों में सूफी साधक की परिभाषा और सूफी कर्म के स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि सूफी ऐसे साधक को कहते हैं जो परमात्मा के संस्पर्श से अपने हृदय को पवित्र करते हैं। इन परिभाषाओं से सूफी कर्म तथा सूफी साधक की आन्तरिकता और निश्चिष्टता का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। धामी<sup>१</sup> ने इस कर्म तथा इस सम्प्रदाय के साधक की एक स्पष्ट व्याख्या देने का प्रयत्न किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि 'सूफी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अलहादिम ( ई० ७७७ ) के नाम के साथ हुआ। ८१४ ई० में कूता में इस्लामी ख़ुस्रवानियों के एक विशिष्ट सम्प्रदाय के साधकों के लिए 'सूफी' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार पारसी काल में इस शब्द का प्रयोग केवल इराक के ख़ुस्रवानियों के लिए होने लगा था। तत्पश्चात् इसकाय कर्म के अन्तर्गत के सय्यद ख़ुस्रवानों के लिए इस शब्द का प्रयोग सड़ कर्म में होने लगा।

#### सूफी मत का इतिहास

सूफी सम्प्रदाय का सम्मान धामी विचार धारा से भी स्थापित किया जाता है। धामी विचार धारा ने इस्लाम को एक विशिष्ट सम्बन्ध में प्रभावित किया जिसका प्रमुख सूफी साधना के रूप में हुआ। धामी वाक्य में ईश्वर के सम्बन्धों का निरूपण शम्सुद्दीन मेव और मिर्ज़ा के माध्यम से किया जाता था। ऐसा स्पष्ट होता है कि सूफियों ने अपनी साधना में इन अतीकों का प्रयोग धामी साधना के आधार पर ही किया है।

सूफी साधना में 'इश्क़ात' की अवस्था एक विशेष स्थिति मानी गई है। इस स्थिति का कुछ अंश भी धामी संस्कार समता है। सूफियों में उपलब्ध बादक नाम, ख़ुस्र, शाल और इलहाम आदि अवस्थाओं के पूर्व रूप धामी साधना-प्रवर्तियों में मिल जाते हैं।<sup>२</sup>

१—अफ़ातुस सं०।

२ इसका मतलब यही चाहिए कि यह धारणा है कि सफ़ु आदमियों का मूल रूप इस्लाम में ही निहित मिलता है। बाबोलाह में मुहम्मद ने अपनी प्रेयसी बायदा से प्रेम किया—'तुम कौन हो ?' बायेदा—'मैं बायेदा हूँ (अर्थात् बायदा)' मुहम्मद—'बायेदा कौन है ?' बायेदा—'अफ़ातुस तिलीकी की पुत्री हूँ', मुहम्मद—'अफ़ातुस तिलीकी कौन है ?' 'मुहम्मद के सपूर' 'मुहम्मद कौन है—' इस सम्बन्ध में सूफियों में उपलब्ध 'इलहाउल (अर्थात् मूल मही है) का नाम निहित है।—देखिए—बायसी के नरवर्ती हिन्दी सूफी कवि और वाक्य। पृ० २

भारतमिक सूफी सन्तों में इब्राहीम बीन अबम ( मृ० ७८१ ई० ) फुजायल मिन अजाय ( मृ० ८०१ ई० ) रबिया अल अरामिया ( मृ० ८०२ ई० ) के नाम सम्मुख आते हैं । इनमें रबिया ने सूफीमत में प्रेम भावना की स्थापना की थी । एक प्रकार से इन्होंने सूफी सम्प्रदाय में याचुर्य भाव का समावेश किया । अपने विकास के आरम्भिक चरण में सूफी साधना इस्लाम की मान्यताओं से अनुस्यूत नहीं रही, परन्तु कार्यक्रम से वह इस्लामी चर्यों को स्वीकृत करने लगी थी । सूफी साधक इस्लामी चिन्तन भारत के निकटतम जाने का का प्रयास करने लगे । इस प्रकार भारत में प्रवेश करने के पूर्व सूफी चिन्तन द्वारा निम्न भावों में विभक्त हो गई थी —

(१) उमर कैय्याम—( मृ० ११८० ) ।

(२) सनाई—( ११८८ ई० ) ।

(३) निजामी—१२१० ई० ।

(४) अल्लार—( १२८७ ई० ) ।

(५) कमी—( मृ० १३३० ई० ) ।

(६) सादी—( मृ० ११४६ ई० ) ।

(७) चकरी—( मृ० ११७७ ई० ) ।

(८) हाफिज—( मृ० १४४७ ई० ) ।

(९) बामी—( मृ० १५४६ ) ।

इन रचनाकारों ने काव्य के माध्यम से सूफी-साधना-चर्यों का प्रस्तावन किया है । इनमें प्रेम और विरह के शौकिक चिन्तों द्वारा आध्यात्मिक मिशन और प्रेम की प्रस्तावना की गई । भारत में जाने के पूर्व सूफी चर्म और दर्शन तथा काव्य की यही रूप रेखा रही ।

भारत में सूफी मत

भारत में सूफी चर्म का प्रवेश मुसलमानों के आगमन के साथ हुआ । कार्यक्रम से सेल इस्माइल (१००२ ई०) नजर धाह (१०३६ ई०) साह गुलान कमी ( १०३२ ई० ), अगुल्लाह ( १०६२ ई० ) दादा गन्धकन ( १०७२ ई० ) आदि सूफी दरवेश भारत में चर्म प्रचार-हेतु आए । इसी परम्परा के सूफी सन्तों में हुस्निरी का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है । भारत में सूफी मत

का कम-बख्त इतिहास मुर्शिदाबाद निर्याती ( १११० ) के आगमन के पश्चात् ही मिलता है। ईसा की ठेरहवीं-बीसवीं शताब्दी तक सूफी सामना एक विशिष्ट सामना पद्धति के रूप में भारत में स्थापित हो चुकी थी।

अकबरुलमिली ने अपने कृतक अस 'महमूद' नामक ग्रन्थ में बारह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है परन्तु हमारे देश में केवल चार सम्प्रदाय ही प्रमुख रूप से विकसित हो सके —

(१) निस्तिया (२) सुहरावर्दी (३) कादरिया (४) नबस बन्दिया। इनके अतिरिक्त छतारी और मचारी सम्प्रदायों के भी उल्लेख मिलते हैं।

(१) निस्तिया सम्प्रदाय — इस सम्प्रदाय के संस्थापक रब्बाबा इसाक निस्ती माने गए हैं। हमारे देश में इनके विचारों का प्रसार रब्बाबा मुर्शिदाबाद निस्ती ( ११४२ ई० १२३६ ई० ) ने किया। इनके शिष्यों में शेखफरीदुद्दीन सकरवंज निजामुद्दीन जीलिया जसी अहमद सागर और शेख सलीम अलि प्रसिद्ध हुए। निजामुद्दीन जीलिया जीलियापन्थ के संस्थापक थे। निस्तिया सम्प्रदाय के अक्षरक बहायीर के प्रति मत्कि मुहम्मद बामसी विशेष रूप से आस्थावान थे।

(२) सुहरावर्दी सम्प्रदाय — इस सम्प्रदाय के संस्थापक शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे। इन्होंने अपने सम्प्रदाय की स्थापना बयबाद में की थी। हमारे देश में इसकी संस्थापना बहाउद्दीन जाकरिया ( मृत्युकाळ १२६७ ई० ) ने की थी। यह शाखा निम्नलिखित प्रशाखाओं में विभक्त मिलती है।

[क] बकाली शाखा — इस शाखा के प्रवर्तक सैयद बकालुद्दीन सुलतपोष साहमीर थे। इनका प्रमुख केन्द्र सिन्ध पश्ता।

[ख] फज्जुने-बहामियाँ — सैयद बकालुद्दीन के तीन बहमद कबीर थे ( मृ० १३६४ ई० )। वे मज्जुने बहामियाँ के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने इस शाखा का प्रवर्तन किया।

[ग] मीराम शाही — सुलतपोष बहमद कबीर के बंशज मीरान मुहम्मद शाह ने मीराम शाही शाखा का प्रवर्तन किया।

[घ] इस्माइल शाही — जाकरिया की चौदहवीं पीढ़ी के हाफिज मुहम्मद इस्माइल ( मृत्यु वर्ष १७६० ) ने इस्माइल शाही शाखा का प्रवर्तन किया।

[४] कादरी सम्प्रदाय—जकरिया की बाठनी पीढ़ी में दोस्त साह ने दोस्त साही साखा का प्रवर्तन किया ।

(१) दोस्त साही—इस साखा के प्रवर्तक अब्दुल कादिर बस भिलानी थे । (१०७८-११९९) । भारत वर्ष में इसका संस्थापन इनने तीन सौ वर्ष पश्चात् हुआ । हमारे देश में इसके संस्थापक समय मुहम्मद मेस बाबा पीर थे । भारत में ये सन् १४२८ में आए थे । इनका प्रमुख केन्द्र सिन्धु का, यहीं इनकी मृत्यु सन् १५१७ में हुई । भिलानी की सबहबी पीढ़ी में साह कुमैस ने इसकी एक प्रशाखा 'कुमेसिमा' की स्थापना की थी । इसका प्रचार बंशाल में हुआ । इसकी अन्य उपशाखाओं में 'मुकीम साही' और पश्चिम भारत में प्रचलित 'हामी मुहम्मद नौ साही' साखामें हैं । इनके अतिरिक्त 'मियाखेज' नाम से भी एक साखा मिलती है । इसके संस्थापक मिया मीर (सन् १५५०-१६१५) थे । इनके शिष्य लखे मियाँ थे । जिनकी साखना और जिनके व्यक्तिगत को विधेय स्थापति मिली ।

(४) नकराबन्दी सम्प्रदाय —इस सम्प्रदाय के संस्थापक ल्हाबा बहाउद्दीन नक्सबन्द माने जाते हैं (मृत्यु सं० १४४९ ईरान में) । इनकी पीढ़ी में ल्हाबा बाकी मिल्का बेरंब (मृ० सं १५९०) ने लखनवन्दिया सम्प्रदाय की संस्थापना भारत में की थी । कतिपय सन्तों के अनुसार भारत में इस साखा के प्रवर्तक ल्हाबा बाकी मिल्काह बेरंब थे । जहाँबीर के समय इस सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था । भारत में इस सम्प्रदाय को प्रचार को महमद कास्की द्वारा विधेय रूप में प्रति मिली ।

इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त छत्तारी सम्प्रदाय और मरारी सम्प्रदाय के नाम से भी दो विशिष्ट सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है ।

छत्तारी सम्प्रदाय—हमारे देश में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक छारस के अब्दुल्का छतारी थे । इनकी मृत्यु सालना में १४०६ ई० में हुई मानी जाती है । मुहम्मद बीस इसी सम्प्रदाय के साधक थे जो हुंमायूँ के गुरु थे । इस परम्परा में बहाउद्दीन (बौनपुरी) भीर तैयब जहाँ कीबर आदि साधक भी जाते हैं ।

मरारी सम्प्रदाय—भारत में इस सम्प्रदाय की संस्थापना साह मरारी बन्दीवहीन ने की थी । जामसी का सम्बन्ध साह मरार से भी स्थापित किया जाता है ।

## ऐसास्वामिक काव्य में दर्शन

शुद्धी काव्य में परम सत्य के जिस स्वरूप की कल्पना की गई है उसमें वह सत्य है उसके आकार नहीं है और वह सत्त्वों में परिबद्ध नहीं हो सकता है । उसके अस्तित्व की अनुमति हम कर सकते हैं । इस प्रकार वह स्वयं ब्रह्म है, परन्तु ब्रह्म ब्रह्म के प्रत्येक सत्य में विद्यमान है । वह व्यक्त ब्रह्म नहीं करता है, उसके पिता नहीं हैं, और न उसकी माता है । समय सृष्टि उसकी ही धर्मना है । ऐसे ही आदि 'पुस्त' का वर्णन आद्यवी 'अध्यात्म' में करते हैं—

अस्य ब्रह्म अक्षर्य सौ करता । वह सब सौ सब ओहि सौ करता ।  
परम वृत्त सौ करन विवापी । बरनी बीहू बीहू नहि पापी ।  
बना न काहु न कोई ओहो बना । जहें सगि सब ताका सिरबना ।

+

x

+

हूत पहिलेई ओअब है सोई । पुनि सो रहिहि रहिहि नहि कोई ।  
अंतर को होई सो बातर बन्या । दिन बूई बार मरद कर बन्या ।

अध्यात्म पु० ३

ऐसा कदा कुरावो में बर्णित है—

एहि विधि बीहूत करहु विवागु । अस पुराण नहि सिखा बखानु ।

उस कदा में ओज नहीं है, फिर भी वह बीहूत है । उसके कर नहीं है परन्तु जिना कर के ही उसने सृष्टि की रचना की है । उसका कोई स्वान नहीं है, परन्तु ऐसा कोई स्वान भी नहीं है, बहो वह न हो । उसका कोई रूप नहीं है उसकी कोई रेखा नहीं है परन्तु उसका नाम अति निर्मल है

ना ओहि ठाँव न ओहि निज ठाँव । स्मरेख निज निरमल नाँव—दा३ ।

ज्ञान की दृष्टि जिसके पास है, उसके लिए वह निरमल है ज्ञान-हीन के लिए वह बहुत दूर है—

निर्मलैय कहैं निजरे अंध मुख नहें दूरि दा३

'अध्यात्म' में कावली उस वरम सदा के उस रूप का स्मरण करते हैं जो नहीं है, वाचक है और बहाराक है—

सुन करता नक सिरबन द्वारा, हूया करता सब लंकारा ।

अध्यात्म



उत्तमान सस परम सक्ति की कल्पना एक चित्रकार के रूप में करते हैं। सृष्टि उस चित्रकार का चित्र है उस कर्ता ने नारी और पुरुष-संमुख बस के ऊपर चित्र बनाया। उसने अनेक प्रकार के रूपों और वर्णों की सर्चना की परन्तु वह स्वयं अरूप और अवर्ण है—

बाहि बखानौ सोई चितेरा। यह जग चित्र कीन्ह बेहि केरा।

कीन्हसि चित्र पुरुष औ नारी। को बस पे बस तकै लंकारी।<sup>१</sup>

+

×

×

कीन्हसि रूप बरन बहूँ तारि। आपु बखान अरुप बीसार्।

चित्रावली पृ० १

इस प्रकार कवियों ने जिस परम सत्ता की कल्पना की है वह एक है। सृष्टि के वैविध्य में वह भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। सृष्टि के समग्र प्रसार में वही एक मोसाइ, वही एक ओंकार परिक्याप्त है। वह अकल्प निरंजन है परन्तु विविध रूपों में प्रकट है—

एक अनेक भाव परमेसा। एक रूप का धेन यह मेसा।

तीन लोक बहूँ सगि तारि। जोग के अनुरूप रूप बीसार्।

×

×

×

अकल्प निरंजन करता एक रूप यह मेसा।

×

×

×

एक बहूँ दूसर कोइ नाहीं तेहि सब सृष्टि रूप मुख बाही।

संज्ञा-सचुमावली ४

इस प्रकार ईश्वर के स्वस्व-वर्णन में समस्त सूफी कवियों में एक रूपता है। सभी कवियों ने उसके केवलस्व की कल्पना की है। इस 'केवलस्व' के लिए इस्लाम में 'तौहीद' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'तौहीद' के सैद्धांतिक पक्ष को ग्रहण कर सूफी कवियों ने स्वतन्त्र रूप से विद्यामय ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया है। परन्तु इस प्रकार का प्रयास केवल धार्मिक गुरुमंदिर जायसी की कृति 'अक्षयवट' में मिलता है। इस कृति में उस परम तत्व के अस्तित्व का वर्णन

१ इस्लाम धर्म में यह प्रस्तावना मिलती है कि यह पृथ्वी जल के ऊपर ही स्थित है।

क्रिया क्या है। अपने आदि या मूल रूप में वह सूक्ष्म था, उसका अस्तित्व ऐसे परिवार में था जो सूक्ष्म था। वह स्वयं अपना अस्तित्व था —

आपु अस्त पहिले हुत जाहीं नाब न ठाब न मूरति छाहीं ।

पूर पुरान पाप महि पुन्य, मुपुत ते मुपुत मुग्न ते सुग्न ।

बिना तरेह अरम बचाना, हुता आपु यह आपु समाया ।

अक्षरावट—पृ० ३०४ ।

परम सत्ता से उज्ज्वल ग्रहण करके ही रवि, सवि और नमन प्रकाशवन्त हैं। समग्र सृष्टि उसके प्रकाश से ही आलोकित है। आगसी ने परम सत्ता के इसी रूप का वर्णन करते हुए कहा है—

रवि सवि मखत विपदि जोहि जोती । एतन पदारथ मानिक मोती ।

जहाँ जठ विहंसि सुभाबहि हंची । तहँ तहँ छिटीक ओत परमसी ।

पद्मबावट ।

सूक्ष्मों ने इस अथर्व को सब परोक्ष के प्रतिबिम्ब के रूप में ग्रहण किया है। अमूर्त ब्रह्म कभी-कभी अपने मूर्त रूप को देखना चाहता है। ऐसी स्थिति में सृष्टि और समग्र सृष्टि का प्रसार वह वर्णन के रूप में कर लेता है—

आपुहि आपु जो देखै कहा । आपुनि प्रभुत आपु से कहा ॥

सबे अथर्व वर्णन के कैसा । आपुहि हरण आपुहि देखा ।

×

×

×

आपुहि पुहुन कूक बन कूले । आपुहि बंजर बास रस भूके ।

आपुहि बट-बट महँ मुख बहे । आपुहि आपने रूप संवारे ।

हिन्दी सूखी काव्यों में आत्मा और परमात्मा के मध्य की ईंट याबना के परस्पर का आग्रह छिछटा है। परमात्मा और आत्मा एक है। परमात्मा और अमर्त एक है, इस प्रकार की याबना का प्रसार इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। इनके अनुसार परम प्रकाश से मुहम्मद का गुरु प्रकट हुआ। मूर के पोषण के लिए ही समग्र सृष्टि की रचना हुई। इस विश्वास को ही व्यक्त करते हुए आगसी ने लिखा है—

संवरो आदि एक कलाक । जेई बिज बीन्ह कीन्ह संघार ।

कीन्हेसि प्रथम जोति परमासू । कीन्हेसि तेहि निरीत कबिलासू ।

पद्मबावट १

इन कवियों ने सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम व्यक्त किया है, उसके अनुसार सर्वप्रथम अग्नि फिर वायु, फिर पवन और जल इन सबके बाद पृथ्वी प्रकट हुई।

कीन्हेसि अग्नि पवन जल रोहा । कीन्हेसि बहुत ह रम उरोहा ।

कीन्हेसि परती संग पतार । कीन्हेसि बरग बरग जवतार ।

पद्यावत—११ ।

मुस्लिमों ने मुहम्मद को मूर का पयाँप भी माना है। इस्लाम का आधार सहज करते हुए वे यह प्रकट करते हैं कि यदि वह मूर या मुहम्मद न होता तो सृष्टि सम्भव नहीं थी—

होत न जो तज्जकर जकतारा । होत न सरम ओमतों पतारा ।

न बेकूठ गरक कसु होतै । न ससि भाग भकक कसु रोतै ।

नसीर येमवरपन ।

सृष्टि-रचना की बलवती अनुप्रेरणा के कारण ही मुहम्मद का जन्म हुआ। ईश्वर ने प्रथम मुहम्मद की ज्योति का निर्माण किया उसी की प्रीति में उसने सृष्टि की रचना की। यदि इस प्रकार के निर्मल पुरुष का जन्म नहीं होता तो सृष्टि अन्वकार पूर्ण रहती—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाकें मुहम्मद पुच्छें करा ।

प्रथम बोसि बिभि रोहि कै साबी । बी रोहि प्रीति सिस्टि उपराबी ।

बीपक सिस्टि जगत कहै बीना । मा निरमल बस मारग बीन्हा ।

बी न होत बस पुरुष जवारा । मुक्ति न परत पन्थ उजियारा ।

पद्यावत—८ ।

सूफी धर्म में आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना 'फना' कहा गया है। उनमें पूर्णतः विलीन हो जाने को 'बका' कहा गया है। इन दोनों की उपलब्धि के लिए साधना अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में किए गए प्रयास को मार्ग कहा गया है। साधक सात्त्विक है अर्थात् प्रेम-मार्ग का पबिक है। इस मार्ग की चार अवस्थायें मानी गई हैं—

[ क ] शरीरगत—धर्म शक्तों के विभिन्न निषेध का पूर्ण परिपालन ।

[ घ ] तरीकत—बाह्य क्रियाओं और आह्वानों से मुक्त रह कर हृदय की गति का अभ्यास करना और ईश्वर की ओर उन्मुख होना ।

४ ] हुकीकृत—मस्ति और साधना के सम्बन्ध से तत्त्व का सम्यक् बोध बिना के पश्चात् साधक तत्त्व दृष्टि-सम्पन्न हो जाता है और ब्रिजक जाता भी हो जाता है ।

[ ५ ] मारिफत—सिद्धावस्था—इस अवस्था में साधक साध्य में खीन हो जाता है ।

सूफी कवियों ने अपने प्रेमास्वानक काव्यों में प्रेम प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासों में साधना की इन चार अवस्थाओं का स्पष्ट निरूपण किया है । प्रेमी के मार्ग में कठिनाइयों के निरूपण वाले सिद्धान्त का भी आचार इनकी रचनाओं में मिल जाता है । रक्तैन 'पद्यावती' की प्राप्ति का प्रयास करता है । इस प्रयास में वह सिंहक रंग की यात्रा करता है । यात्रा में उसे विभिन्न आश्रम मिलते हैं । सिंहक-यात्रा में रक्तैन को सात समुद्र पार करने पड़ते हैं । इन समुद्रों को आदमी ने मार्ग में पड़ने वाले आश्रमों के रूप में चित्रित किया है—

मातेक काव बल्ल ठेहि बाटी । अउरे बाद समुद्र के बाटी ।

बदस्त रक्तैन के समुद्र समुद्रों के पार करने की कठिनाइयों का वर्णन करता है—

पै दोसाह सौ एक बिनासी । बारह कठिन बाद केहि आँसी ।

सात समुद्र असुम्ह अपारा । बारहि मगर मन्ध परिवारा ।

×

×

×

विषय दीन बाद तो कीई । हाम बिहै निठ आपन होई ।

कार और दान अवधि सुरा जब पुनि लिखिआ बकूत ।

को बहि बाँचहि समुद्र ये तापों है काकर बल्ल भूत । १४१।१२२ ।

इस अवस्था को शरीरकृत का प्रतीक माना गया है । रक्तैन आदता है कि अपने विश्व प्रेम-एवम् को स्वीकार किया है उसमें खेद नहीं है। वह और (सीर) समुद्र में प्रवेश करता है । वस्तुतः यह अवस्था लीकृत की है जिसमें साधक परम तत्त्व के पुणों के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है और शारीरिक आक्रमण उसके प्रयोगन बनते हैं ।

सीर समुद्र का बरतों नीर । सैत्र सका नियत बल खीर ।

भक्तिक मुहम्मद आगसी ने पशुमावत की कथा के सम्बन्ध में शुक को पुनः स्मृति में ही प्रस्तावित किया है। शुक की प्रेरणा से ही रज्जुखेल नाममती की ओर आकर्षित होता है—

तन पितर मग राखा कीन्हा । हिय सिहक बुनि परमिनि चिन्हा ।  
गुन सुखा जेहि पन्थ बेखावा । बिन गुर बगव को निरगुन पावा ।  
आगसी उन्नावकी ।

नूर मुहम्मद की 'अनुराग बाँसुरी' में भी शुक ही अनुभा बताया है कारण यह पत्र आता है—

अगुवा अपठ सुवा उपरेछी, अगुवाई को दीपक सिन्धी ।  
अगुवा सोह पन्थ को जाना अगुवा उल्लिख न किये मुछाना ।  
अनुराग बाँसुरी ।

सूफी प्रेमालम्बानक काव्यों में योग-साधना

सूफी काव्यकारों ने अपने काव्य-भावकों को साधक-स्व में प्रस्तावित किया है। नामक प्रेम के प्रति जब आकर्षित होता है तब वह साधक की भूमिका ग्रहण करता है। और इस सम्बन्ध में वह नाथ योगी का वैध ग्रहण करता है। 'पशुमावत' में रज्जुखेल नाममती के सांसारिक पाश का परित्याग कर सिहक की यात्रा के लिए जब उत्तर होता है तब वह नाथयोगी की भूमिका ग्रहण करता है। सिद्धि प्राप्ति हेतु वह मोरख के नाम का स्मरण करता है। वह भिक्षुता गृहीत कर, खाद्य ग्रहण कर लेता है।<sup>१</sup>

१ भक्तिक सिन्धी बरकतगारी । बाँगीटा खास अगारी  
कंपा पहिरि डंड कर महा । सिद्ध होइ कई योग्य कहा ।  
मुंहा सबन कंठ जयमाता । कर उदयान कौंथ बयछाता ।  
पौंदरि पौंद कीन्ह सिर छाता । जगद लीन्ह भव के पता ।

पशुमावत—१२९।११२ ।

‘अबु माछटी’ का नायक मनोहर अबु माछटी के विधोय में बर का तय्यार करता है। इस बरबसर पर बड़े नायक सोयी का बेट पाराक करता है।<sup>१</sup> उसमान ‘बिनाबकी’ में मुबारम का रूप इती बेघ में प्रस्तावित करते हैं। आगसी मंगम अममान की रचनाओं में नायक योयियों के रूप का वर्णन उच्च उच्चों में मिलता है, परन्तु परबती कवियों में इस स्वरूप निर्माण के प्रति विशेष जाग्रह रही मिलता है।

सूफी कवियों ने काय-शाबना के उन्मर्ग का भी आचार ग्रहण किया है। इनकी कविताओं के क्या नायक सोयी का बेट पाराक करते हैं और शाबना की भूमिका में ही महा ज्योति या परम तत्व कभी नायिका की उपलब्धि का प्रयास करते हैं। आगसी के ‘पयाबत’ में विचल गड़ काया या तन का प्रयोग है। राजा रलसेन मन है पयाबती पाम ठल है। इस वरम तल की उपलब्धि हेतु काया-शाबना अव्यक्त हो जाती है। पयाबती विरम ज्योति है जलमा है जो आकाश में प्रकट होती है जो आकाश (बड़ा रंग) दिव लोक है। वह ज्योति दिव लोक में प्रकट होती है। आगसी ने रतम सेन को ‘यूस’ रूप में ग्रहण किया है। पयाबती इस उन्मर्ग में जन्मा है। इस प्रकार के प्रयोग छिछो नाचों और सन्तों की रचनाओं में मिलते हैं। इस प्रसंग पर विचार किया जा चुका है। एवसेन और पयाबती का मिलन वस्तुतः ‘रमि’ और ‘रयि’ का मिलन है। यह बहु स्थिति है, जिसमें ईश स्थिति समग्र होकर अईश की स्थिति जाती है जिसे ‘समरसता’ की अवस्था कहा गया है। एक सेन इती उन्मर्ग के अनुकूल कहा है—

बन हो मुक्क और बहु छाया। बन बिनु दीम रक्त बिनु काका।  
 किल करा बा ग्रैम बँकुर। और सति सरय, मितो होइ मूर।  
 छहो कर न्य का मुका। बहै-बहै रीठ कँकल बन पूका।  
 आगसी पयाबती ४ ३८।

एक सेन और पयाबती विवाह के पश्चात् होया पर मिलते हैं। यह संयोग

१—कठिन बिहू बुक काय बीमारी माँयो कजर हण बचारी।  
 बर हान मुक मम बहनि, सीन बचक धबिर उदराने ५  
 कँका पैककी बाकटा पदा बड़ाई बैस।  
 बस कछीटी बोंब के, पैयो कोरक बैस।—अबुमाछटी।

में सामरस्य भाव निहित है। सवि की सोलह कसायों रवि की कठाओं को जब आत्मसात कर लेती हैं तभी इस साधरस्य की अवस्था की सम्भावना होती है। पद्मावती रजसेन को अपने सौन्दर्य से विमुग्ध कर देती है अर्थात् सवि रवि को अपने में समाहित कर लेता है। इस पक्ष का आचार ग्रहण कर ही आसती में पद्मावती और रज सेन के मिश्रण की भूमिका का सम्पादन किया है—

मिथी गोहने सखी तराई । मैह चौद घुरख पहुँ आई ।  
 पारस कम चौद देखराई । देखत घुरख या मुखआई ॥  
 सोलह कका विस्ति सति कीन्ही । सल्लो कका घुरख कै लीन्ही ।  
 मा रवि अस तराई हँधी । सूर न रहा चौद परपसी ।

आसती प्रभावकी १३३ ।

कुम्हजिनी-साधना के प्रतीकों या पर्यायों के सम्पादन भी इस सन्दर्भ में सम्बन्धीय हैं। सिद्धों और उनके परवर्ती साधकों ने ईशा पिक्ता को यथा समुदा कहा है और इन्हें 'अन्न' और 'सूर्य' का पर्याय भी माना है। आसती तथा अन्य सूफी कवियों ने प्रेम निरूपण और उसकी उपलब्धि के सन्दर्भ में इन प्रतीकों का प्रयोग किया है—

भूप चाह ब्रह्म निय के रंगा बूनी मिथी रखु एक सङ्गा ।  
 तुम गंगा-जमुना हुई मारी सिखा मुहम्मद बोला ।  
 सेवा करहु मिलि बूनाई, सिखा मुहम्मद मोय ।

आसती प्रभावकी ।

परम तत्व के साध एकाकार होने के लिए आभाव-साधना नाड़ी-साधना और अन्न-भक्षण की विधा का सम्बन्ध मिलके पृष्ठों में किया गया है। सूफी कवियों ने इस साधना-विधा के माध्यम से सर्व-स्थिति की सम्भावना के प्रति विस्फोट प्रकट किया है। सिंहक गढ़ में नौ पारियाँ (आपाम-या-विधाम स्थल) हैं। सूर्य-सवि उस गढ़ को बसाकर बल्ले हैं। उसमें नौ पारियाँ हैं जो बरख से सज्जित हैं। उस गढ़ के नौ तल्लों में नव पीरियाँ हैं उनमें बरख के फिवाड़ लगे हैं। बार जामायों को पार कर ही साधक जग गढ़ में प्रवेश कर सकता है—

निशि यद् बौधि नमो ससि चक्र । नाहित बाधि होइ रय चक्र ।  
 वैवरी नवो बज्र कै धात्री । सहस्र सहस्र तहूँ बैठे पावो ।

X X X X

नवो रई नय वैवरी । भी तहूँ बज्र केवारी ।  
 बारि बसेरौ सो नई । सस सो नई को पार ।

पद्यावत—३३।४१ ।

इस प्रकार सिंहक यद् काया-यद् है । इसमें कड़ा और फिंगा नाभिवाँ सीर  
 और सीर की सधियाँ हैं । मुपुम्पा मोठी-कुण्ड है । चेतना कंचन-दूल है जो  
 पाताल (मूलाधार) से लेकर आकाश (सहस्रार) तक प्रसरित है । आग इस दूल  
 का पत्र है । बर-बरण के घब से ऊपर उठने वाला व्यक्ति ही इस पत्र को  
 प्राप्त कर सकता है—

मद पर नीर नीर दुर नवी । पानी भरहि बेबी दुरपवी ।

नीर कुण्ड एक मोठी चक्र । पानी बनिह्य कीच कपूर ।

X X X X

कंचन विरिह्य एक ऐहि पावा । बस कसपतइ इन्द्र कलिछावा ।

मूल पटार सरय भीहि सावा । अवर बेलि को पाव को वावा ।

X X X X

बहु घर पाये तपि कोकोइ । विरिह्य साइ नम बोजन होई । पद्यावत ३४ ।

इस प्रकार भी पीरियों को कवि ने शरीर के तब द्वार के रूप में या भी  
 चक्र के रूप में अंकित किया है । और पाँच कोटबाह वंश ज्ञानेन्द्रियों हैं । इसमें  
 द्वार शब्दार्थ है जिस पर अनन्य नाह अवस्थित रहता है ।

नवी वैवरी पर बसो बुबाक । ऐहि पर बाब राज परिबाक ।

बरी सो बेठि नमै बरिबारी । पहर-पहर सी बापनि बारी ।

इसो स्वर्ग में कवि जीवन की वाचस्पृष्टता का निरूपण भी करता है ।<sup>१</sup>

१—तुम्ह ऐहि बाब नई होइ कौन । बापहु किरै न विर होइ कौन ।

मरी को मरी पटै तुम्ह बाऊ । का निर्मित सोबहि र बडाऊ ।

पहरहि पहर मगर मिह होई । हिम मिहोना बाग न सोई ।

मुहमद जीवन बक जलन रहैट बरी के रोधि ।

बरी सो नाई ज्यों मरो बरी जलन या भीति ३४५



हठयोग में शून्य के साथ या परम तत्त्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने को भरण योग कहते हैं। कबीर ने इसे 'स्व' को 'पर' में समाविष्ट हो जाना कहा है। रत्नसेन का पद्मावती के साथ तादात्म्य स्थापित कर केना 'स्व' को 'पर' में समर्पित कर देने की भावना से मिल्न नहीं है। कबीर ने मुरति को 'निरति' में समाविष्ट होने की भावना का वर्णन किया है। 'रत्नसेन' का पद्मावती के साथ एकात्म-हो जाना इसी विधि की साधनात्मक अभ्युत्थान है।

वसवो दुमारे ताव का सेबा । उछटि बिस्टि जो काव सो देखा ।

बाह सो बाह सौस मन बन्दी । बस बंसि चीन्ह कान्ह कासिन्दी ।

मन को मारकर, गूट कर, सौस को अधिकार में करने के पश्चात् वह भाव का छोप होता है। जो जीवित रह कर मृतक हो जाता है उसके लिए संसार की नस्वरता का कोई अर्थ नहीं होता। ऐसी स्थिति में साधक स्वयं अपना धुब हो जाता है—

जियतहि जो रे मरे एक बारा

पुनि कठ मीचु को मार पारा ।

बापुहि गुह सो आपहु चेला

बापुहि सब सो आपु अकेला ।

पद्मावत १५१ ।

संकर से इस प्रकार का अनुबोधन प्राप्त करने के पश्चात् ही रत्नसेन अपने सहयोगियों के साथ सिमक गढ़ को घेर लिया है। जायसी तथा अन्य सूफी प्रेमा दयानन्द कवियों ने नाथ पन्थ में प्रचलित योग साधना का सम्भव प्रेम तत्व के साथ किया है। यह उनका बड़ा समर्थ प्रयोग है। प्रेम की तीव्रता काव्य में अप्रस्तुत विधान के रूप में निरन्तर विद्यमान रहनी है। इन रचनाकारों ने इसलिये जबका सूफी धर्म के अनुसार ईश्वर या ब्रह्म के स्वरूप के साथ सिद्धो-नाथों और सन्तों की चिन्तन-बारा में अनन्तर्य शून्य के स्वरूप को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। अतः अपने परम तत्त्व को शून्य में निहित देखने का प्रयास उन्होंने किया है। गुरु ने रत्नसेन को 'बाँह' और 'सूर्य' की कथा में ही वीक्षित किया था—

जगहुँ मारि मुल बंजित मेला । मुर होइ बापु कीन्ह यह चेला ।

सुख बाँह के कप्या नहा । प्रेमक गहन लाह बिज रहा ।

पद्मावत ७३।८३।

इस 'भुय' और 'बौह' की कथा ॥१॥ प्रेम-तत्व को माध्यम रूप में उसने ग्रहण किया है। प्रेम भावना के साथ योग-तत्त्व को संयोज की अनुप्रेरणा जामसी के के चरवर्ती कवियों में भी नियमित रूप में मिलती है। 'हंस जबाहिर' ( कासिम साह ) में यह स्पष्टीकरण मिलता है कि जबाहिर परम सिद्धि है इस साधक है। अपनी सिद्धि हेतु वह योग-साधना करता है।

जो तो बहुत जबाहिर कीन्हा । तू कर योग मुख जब कीन्हा ।

बहुं योग को योवाचारी, ठाढ़ किया जाँकों दूख भापी ।

हंस जबाहिर पृ० ११६ ।

'मकुमाळती' का नायक मनोहर ने योरख के मार्ग का अनुसरण कर मकुमाळती का दर्शन किया और उसमें अमरुद नाव प्रस्तुतित हुआ—

बरसन बाग हू सब कीन्हेसि, भग योरख जा बाग ।

कर बरसन स्यों केउराबी सहस बनाहू कंकरी बाबी ।

मकुमाळती ।

मुझे प्रेमास्नानक काव्यों में नायिका के निवास-स्वच्छ के लिए कवियों ने कमिलास (केसास) शब्द का प्रयोग किया है। केसास साधना की वह उच्चतम मूर्ति है, जहाँ पहुँच कर साधक परम तत्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर बैठा है। मूर्तियों का 'कमिलास' वस्तुतः योरखनाब या सन्तों का सहस्रार या बहुत रस है—

(१) सात बाज ऊपर कमिलामू, सहर्षी गारि सेब मुख बामू ।

बयाबत ।

(२) करत जो कीमुक खेल सब नखत सखी खुँ पाव ।

सबे सो मामिमि दुबहकी, यह माँक केसास ।

हंस जबाहिर पृ० ८२ ।

मन की साधना इस निम्न पारा की आधार सिद्धा है। पिछों की अन्तर मुझी साधना प्रवाही को योरखनाब ने अपने सन्मर्ग के अनुसार वस्तुस्थिति किया है। क्योंकि तथा अन्य सन्तों ने भी मन की साधना पर विश्वास प्रकट किया है। जायसी तथा अन्य मुझी कवियों ने भी मन की साधना के प्रति प्रबल आग्रह-प्राप्त व्यक्त किया है। मन की दृढ़ता ही साधना शक्ति है। मन की दृढ़ता से ही रज

ऐन ने मार्ग के बिरोधों के बीच अपना विकास किया और परम तत्व 'पद्मावती' के साथ तादात्म्य स्थापित किया। मन के इसी स्वस्व का परिचय प्रदान करते हुए एन ऐन ने यथपति से कहा—

यथपति यह मन सकती वह मन सीऊ । पे बेहि पैम क्यूँ तेहि बीऊ ।  
बौ पहिलें सिर बे पपु बरई । मुए केर भीचुहि का करई ।

अर्थात्, यह मन ही शक्ति है यह मन ही शिव है जिसे प्रेम होता है उसमें प्राप्त नहीं होते। जो अपना प्राण बेकर प्रेम-बंध पर बलसर होता है उसकी मृत्यु कुछ नहीं कर सकती है।

एनऐन ने मन की दृढ़ता का परिचय प्रत्येक आश्रम में दिया। केवल एन ऐन के शिष्यों (राजकुमारों) की यथोक्ति पर ईश्वर है मार्ग का परिचय देते हुए उसने कहा—

गरजे मैमन पंलि बौ बोलहि । बोलै समुद्र बहल बौ खोलहि ।  
तहाँ न बाँद न सुख बसुम्हा । कई सो बौ अस जयुमन बूम्हा ।

पद्याक्ष — १४८।१११ ।

इस अंश पर एनऐन ने अपने मन की दृढ़ता का परिचय दिया —  
बौ सत झिएँ ठी नैनन्ह दिया । समुद्र न करे पैठ भरनिया ।  
तहँ कनि हेरी समुद्र बँढीरी । कई कपि एत पवारन बोरी ।

सतत पतार लोजि अस काड़े बेर बरंध ।

सात सरन बहि बाबौ पनुमावती बहि पंध ।

अर्थात् उसके हृदय में शान्ति है नेहों में बीपक है। उस समय तक वह समुद्र में लोजता रहेगा जिस समय तक वह अपने लक्ष्य पर न पहुँचेगा। जिस प्रकार सत पाताल में (मलय अवतार में) विष्णु ने बेर-ग्रन्थ निकाला उसी प्रकार सत आकाश पर चढ़कर वह पद्मावती के मार्ग की ओर बलसर होगा। मन की दृढ़ता दर्शन के समान है जिसमें परम तत्व का स्वस्व अति स्पष्ट है। इस हृदय की दृढ़ता के कारण ही शिष्टों की अभीष्ट की उपलब्धि हो सकी थी। वह तत्व हमसे भिन्न नहीं है, वह इसी मन में समाया है—

मह बरपन तुम सेहू सन्धारी खेहि सम देखतु बरनु पिमारी ।  
 येही मुकुर सिखन कर गहा मन की इच्छा इहि मणि कहा ।  
 चौवह भुवन रहि मन माहीं सिल सधान कछु बाहर माहीं ।

विभागीय पृ. १०२।

विभावली पृ० १०२ ।  
प्रेम मार्गीय साधना  
पूर्वियों की साधना प्रेम मूलक है। उनके अनुसार परमात्मा प्रेम-स्वरूप  
है। वह दिव्य सौन्दर्य रूप भी है। सौन्दर्य प्रेम का प्रमुख उल्लेख है। अतः सौन्दर्य  
उदा प्रेम-उपासना के प्रति ये आस्थावान रहें हैं। 'बामो' ने इस प्रकार की  
प्रस्तावना की है कि ईश्वर परम सत्य है। उसका सौन्दर्य अपनी सम्पूर्णता के साथ  
समस्त सृष्टि में प्रतिभाषित है। प्रसिद्ध सूफी साधक ग़ज़ाली ने प्रेम के उत्साह  
की बर्णना की है। वे मुक्त बनाने वाली प्रेम भावना का विकास द्वितीय सूफी  
प्रेमाख्यात्मक कालों में मिलता है। द्वितीय सूफी प्रेमाख्यात्मक कालों में  
परम सत्य का सौन्दर्य—भक्ति, प्रेम और प्रकाश—इन सभी रूपों में वर्णित  
किया गया है। इन आख्यात्मक कालों में नायिकाएँ अलौकिक सौन्दर्य के  
पर्यायवाची रूप में ग्रहण की गई हैं। इनकी नायिकाएँ यथार्थ लौकिक हैं, परन्तु  
लौकिक में ही कवियों ने अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिस्थापना की है। इनमें  
'इम्नेवामी' और 'इम्नेवामी' के सौन्दर्यवाद का समावेश किया गया है। सूफी  
साधक बहुत ही स्थिति हृदय में भागते हैं। इस प्रकार इन आख्यात्मक कालों में  
लौकिक प्रेम अप्रस्तुत है। प्रस्तुत है अलौकिक प्रेम। इन रचनाओं में प्रेम का  
आरम्भ पुष्प अवस्था भिन बर्णन या साक्षात् वर्णन से होता है। 'अनुमानव'  
इस अवधारणा 'अनुराग बाँसुरी' नामि रचनाओं में प्रेम का आरम्भ पुष्प महिम  
से होता है। विभावली और 'रत्नावली' में प्रेम का आरम्भ पुष्प महिम  
है। 'फ़ज्जबती' 'कामलता' 'इत्रावती' और 'मुसुल बुलेखा' में स्वप्न-वर्णन  
की परम्परा का निर्वहण किया गया है। अनुमानवती में प्रत्यक्ष वर्णन की पद्धति  
का निर्माण मिलता है।

१—सौन्दर्यवाद के दोषक सूफी इम्ने-

१—सौन्दर्यवाद के दोषक सूची इन्वेसिगा से। प्रेमवाद के प्रवर्तक मंसूर इस्लाम  
 से। इसके अतिरिक्त एक अन्य धारा है, जिसके अनुसार ईश्वर मुरमा  
 प्रकाश है। एक अन्य धारा के अनुसार ईश्वर बुद्धि का पर्याय है।

इस प्रकार सुकियो ने प्रेम और रूप के पारस्परिक सम्बन्धों का निरूपण करते हुए अपने काव्यों में ससुकी महत्ता का संस्थापन किया है। इसकी प्रेम-व्यक्ति में बिछू एक अनिवार्य तत्व माना गया है। रूप और प्रेम के पदार्थ बिछू एक स्वानात्मिक बंध के रूप में प्रस्तुति होता है। यथा—

रूप पेम मिलि ओ सुख पावा दुगुण मिलि बिछा उपजावा ।  
 जहाँ प्रेम तहें बिछा जानहु बिछा बात जन सबु कर मानहु ।  
 जहि तन प्रेम आवि गुलनार्ह, बिछा पौन हाइ रे गुलनार्ह ।  
 रूप प्रेम बिछा वषत, मूक सुष्टि के धम्म ।  
 हौ तीनहु के भेद कहु, कबा करौ मारम्म ।

सुसमान निनाबती १३ १४ ।

प्रिय का सौख्य 'भनु' (महिरा) के समान है। इसे पाकर सावक 'दादका' होने की कल्पना करता है।

दे वर अपने हृत्त छो निमळ बेकि मुल तोर ।  
 बाइसि छो यतमोळ छे प्राण बियारा मोर ।  
 बिना कबन्धारि के निष्ट, भास न मन छों चात ।  
 दयावती होइ वीक्षिए, होलिक कानी प्रात ।

गूर मुहम्मद-दन्नाबती ।

परम ज्योति स्वल्प परमात्मा बीजक की ज्योति है। सावक उस ज्योति के साध पदार्थ के समान साधारण स्थापित करता है। सावक अपने अस्तित्व को उस परम में समर्पित करता है। इस प्रकार अपने अस्तित्व के मरण की जाबना उसकी साबना का उद्देश्य है। इस मरण के पहले सावक को अपनी विलीनियों को मारना पड़ता है। इस प्रकार सावक के सम्मुख मरण की दो अवस्थाएँ हैं। प्रथम अपनी विलीनियों के मरण की अवस्था द्वितीय उसके स्व के मरण की। इस स्थिति को 'बहा' की अवस्था कहते हैं।

'पद्मानव' में रज्जुस 'पद्मानवती' के रूप खोपस का परिचय प्राप्त कर उद्भिन् हो उठता है। शुक उससे कहता है यह प्रम कोई साधारण खेल नहीं है। इस प्रम के लिए प्राणों का उत्सर्ग अपेक्षित है। रज्जुस कहता है, प्रेम के इस स्वल्प से बड़ा परिचित है। यद्यपि प्रेम 'मरण योग' है परन्तु प्रीति-अविविध ध्येय

का संसार में जाना शक्य है। मुक्त प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का उल्लेख करता है—

जानहिं मर न देखि पथ भुटे, कीक रोमह को बिग न छूटे ।

अर्थात् प्रेम पथ की कठिनाइयों को वे ही जानते हैं जिन्होंने प्रेम-पथ पर अपना सर्व बलिदान कर दिया है। प्रायोगिक के बाद भी जो प्रेम का परि त्याग नहीं करते वे ही सफल हैं। प्रेम की साधना संसार के वैभव के परित्याग के बाद ही हो सकती है। प्रेम तो योग और तप की साधना है।

साधन सिद्धि न पाइव को छवि साध न लख ।

छोड़ जानहिं बापु रे, सीस जो करहिं छलख ।

प्रेम की कथा कहने से ही प्रेम उपलब्ध नहीं होता। साधना के क्रियात्मक स्वस्म के द्वारा ही प्रेम प्राप्ति सम्भव है—धूठ के सिद्ध यदि-जन्मन की जावसकता है, प्रेम के लिए साधना की क्रियात्मकता की—

का ना भोग कहानी कने, निकसे चित न जानु बनि नने ।

इसके लिए अपने स्व का समर्पण अनिवार्य है। प्रेम पूर्ण पर्वत है उस पर दूध बंफुति है। इस मूखी पर संसुर (प्रेम मार्गी) ही बढ़ सकता है। कंधा धारण करने से ही योग मार्ग का पात्री नहीं बना जा सकता है। शरीर में ही दण मार्ग है काम क्रोध, लुब्धा श्च और माया, वे पाँच भोर क्रियाशील रहते हैं। वस द्वारों को बन्द करना होवा पाँच भोरों को अपने नियंत्रण में करना होवा।

को छवि बाप हैपम न कोई। ती कहि हेतव भाव न छोई ।

प्रेम नहार कछि बिधि नका। सो पै नई सीस छो नका ।

पल भुतिह कर उठा अंकुश। भोर नई कि नई संभूक ।

गु राधा का पहिरसि कंवा। तीरे बटहि माह दस कंवा ।

काम क्रोध हिंसा मर माया। पाँचो भोर न छारहि करार ।

१२५१११ ।

इस बल्य से रखेन उह मित्र हो उठता है। उसकी स्थिति समाधिपूर्वक हो जाती है। उसके नेत्रों से मूँवा और मोटी मिरते हैं। मुक्त गुण की भूमिका में प्रेम निवारो बाधता है और क्षिप्त रूप में रखेन उस निवारो को प्रत्यक्ष कर लेता है। वह कीट-मृगी के बयान हो जाने के लिए उत्तरदा

रखता है । जिस प्रेम से वह बन्ध होता है उसकी प्राप्ति के लिए वह आकुल हो  
रखता है—

धुक बिरह चिनयी है मेका । जो मुछवाह सेई सो बेका ।  
बन के फनिग भू मि के करा, भँवर होउ जेहि कारण बरा ।  
धूक-धूक फिरि पुछीं जी पहुँचीं जोहि केत ।  
तन नेचखावर के मिलीं ज्यों मनुकर बिस बैत । १२५।११२।

रत्नसेन प्रेम-मय पर प्रस्थान के लिए तैयार है । ज्योतिषी भाष के प्रस्थान  
को बहुत मानता है । दिन ब्रूम नहीं है । रत्नसेन उतर बैठा है कि प्रेम पबिक  
दिन और बढ़ी नहीं देखता । जिसके शरीर में प्रेम का प्रवेश हो जाता है,  
उसमें रक्त और मांस नहीं रह जाता । प्रेमी तो पक्ष पर पक्षी के समान है ।  
जिस वन में उसे निधाम मिलता है, उसीमें वह निधाम करता है ।

मनक कहहि कक न गवन जानू । दिन लै बछहि फरै सिध जानू ।  
प्रम पंच दिन परी न देखा । तब देखै अब होइ धरेखा ।

× × × ×  
हौं रे पसेक पैखी जेहि वन मोर निवाहु ।  
सेकि क्या पैहि वन कई गुम्ह आपन बर बाहु । १२७।११४।

रत्नसेन कहता है प्रेम-मय अलग है । प्रेम समुद्र पार करने वाला 'हंस' के  
समान तिर जाता है । नुस्वर काया की मृत्यु को वहाँ फिन्ता नहीं । इस समुद्र के  
बल में ( भव सागर में ) मृत होकर अब वह स्मरों के साथ बहेगा तो कहर  
उसे कहीं से जाम वह समझ कर ही वह समुद्र में समर्पित हो रहा है ।

शिव मन्दिर में रत्नसेन पद्मावती को देखकर मूर्छित हो जाता है । पद्मा  
बती लौटकर पर आती है । पुनः धुक रत्नसेन का सन्देश लेकर पद्मावती के  
पास जाता है । पद्मावती को रत्नसेन का वचन मिला है । बिरह का पत्र तप्त  
है । पत्र के ताप से धुक-कण्ठ भी सास हो गया है । धुक कहता है—

अग्नि स्वोस सेन निरुसै ताती । तरिबर जरहि तहाँ का पाती ।  
जरि जरि हाइ भए सब जुना । तहाँ मासु का रक्त चिहूना ।  
रोइ रोइ गुमै नही सब बाता । रत के औनुह मा मुस राता ।

देखू कंठ बरिछाय सो येरा । सो कस बिरे परहू बस येरा ।

मोह देखि छाव कया बसि भारी । तपत भीम बल बहू न पारी ।

२३०। १८७ ।

शुक का उत्तर देतो हुई पद्मावती कहती है—शुक उसके बिलने की मेरी मानिवाया बसि प्रबल है । परन्तु वह प्रेम का भरो नहीं मानता । वह अपरिपक्व है । प्रीति के रंग में वह पूर्णतः रङ्गित नहीं है । उसका अन्तर प्रेम-मलमयिरी से सुवासित नहीं है । वह अन्तर के समान अशुद्ध हुआ है । शीघ्र पर वर्ण्य की गति की अनुमति उसे नहीं हुई है ।

कहेहि सुभा मोहो सुन बाता । बहूँ तो जानि मिली बस पाता ।

वै सो परम न जानै मोरा । जानै प्रीति को बरि कर मोरा ।

हो जानि हो बहूँ कोना । न जानहु प्रीति रंग बिर पौना ।

न जानहु होइ जेवर कर रंगू । न जानहु दीपक होइ प्रगू ।

२३१। १८८ ।

पद्मावती राजा सेन के वज्र का उत्तर देती है, प्रीति में कंचन और सोहामे का व्यवहार होना चाहिए । मध्य में तुम मूर्खित हो गए । शोक के मिस बाधन कर नि तुम्हें अवगत देना चाहूँ । तुम्हें ज्ञान कयाया । परन्तु तुम सोचें रहे । मित्र बाधन अवस्था में होता है । जब बरि तुम सूर्य के समान आकाश (सिद्धि डीर) पर आ सको तो तुमसे मिल सकती हूँ । अन्तर । बसि तु कवकी से प्रीति निर्वाह करना चाहता है तो कन्दकी से न कर । पर्वत बनकर बचरों से शीघ्र मान्य कर । तु निराधित वातक के समान मुझे पुकार । तु उस सारस के समान बन, जिसकी मोड़ी बिबुहू गई है, जकोर के समान अपनी दृष्टि पक्षि पर केन्द्रित कर ।

( २३४ २०१ ) ।

इस प्रकार प्रेम में आत्मसमर्पण अवस्थित है । राजा सेन सिविल गढ़ में अपने शिष्यों के साथ बसी बनाया जाता है । उसके शिष्य पृथक् पृथक् उत्तर होते हैं । परन्तु वह सेन बलिष्ठ करता है । वह उपदेश देता है कि प्रेम में धन्य-आनन्द की आवश्यकता नहीं । अहं के सम्मुख अतन्त्रता होने का उपदेश देता है । अस के समान प्रवर्धित हो जाने की कहता है । ऐसी स्थिति में अहं छोड़ कर पानी-पानी हो जाता है । अस के दो अग्नि की बुझ जाती है । प्रेम के द्वार पर प्रिय से बढ़ा



और कोई आकर्षण नहीं है। रत्न सेन सुखी पर चढ़ने जा रहा है। अधिक कहता है जिसे स्मरण करना चाहते हो कर जो। रत्न सेन उत्तर देता है मैं प्रत्येक सोस में उसी का स्मरण करता हूँ। काया में एक-एक बूँद पद्मावती का नाम स्मरण कर रही है।

कहेसि मोहि सँवरौ हर केरा। मुएँ मिअत जाहौं बेहि केरा।

× × × ×

रक्तक बूँद क्या बत जाहूँ। पद्मावति पद्मावति कहूँ। २६३। २२३

इस प्रकार आसानी तथा अन्य सुखी कवियों ने अर्द्धत की प्राप्ति के लिए मरण योग को स्वीकार किया है। संसार से विमुक्त होकर अर्द्धत की भूमिका में जानना ही मरण है। प्रेम-यंत्र पर अनेक बार मरण की अवस्था आती है। सिद्धि-अवस्था ही अर्द्धत अवस्था है, मरण-अवस्था है। इस स्थिति के रक्षण की निरन्तर अवस्था रहती है। असावधानी से पुनः अर्द्धत स्थिति या आती है। और सावक पुनः संसार के साथ सम्बन्ध हो जाता है। अपनी उपस्थिति वह उसी प्रकार जो देता है, जिस प्रकार रत्न सेन बिचौर लौटते समय (समुद्र में) पद्मावती को जो देता है—

पद्मावति संसार रूप मनि कई सनि कहाँ दुहेत।

एत सब जाह समुँह मई खोएत ही का जियौ अकेला। ४१०।

रत्न सेन सावना की पूर्णता पर नहीं पहुँच सका था इस कारण ही समय समय पर पद्मावती से अलग होकर विमोच की अनुभूति करता है। पश्चित्त खड़ेन से कहता है मृग (संसार की माया के प्रति मृत) पुनः मरने की अभिलाषा नहीं करता है। मृग जब में (संसार में) डूबता नहीं है। वह तो निरन्तर अलभारा के साथ कहता जाता है और एक तट पर लग जाता है। बधिर्य मृत राम भी गारी बिछ में पीड़ित होकर तुम्हारे ही समान इसी समुद्र में जाएँगे। राम अपने रामत्व को छोड़कर ही सीता को प्राप्त कर सके थे। अतः मृत होकर ही पद्मावती को प्राप्त कर सकते हो। रत्न सेन इस सन्देश को ग्रहण करता है। वह उस तट पर पहुँचता है, जहाँ पद्मावती थी।

बी पर मया बी छोड़ति माया । बहुरि न करै मरन के दावा ।  
 बी पर मया न बुझे नीरा । बहुत बाद जाये पै तीरा ।  
 जहुँ एक बाहर मैं भेटा । बेह राम बहरन कर भेटा ।  
 बोहु मैदरी कर परा भिखोवा । एहि समुँह भेहु फिरि फिरि रोवा ।  
 पुनि बी राम बोह मा मरा । तब एक अरु मयल निजि तरा ।  
 तब मर होहु मूँहु अब भौबी । ताबीं टेकु तीर बेसाबी ।  
 बाहर अब प्रेमकर मनुषा सुगत बोधि मा बाट ।  
 निमिष एक खई सैमा, पनुसावति बेहि बाट । ४३६ । ४४६ ।

एतत्तम अनेक सन्तों में 'भरम' प्राप्त करता है परन्तु प्रत्येक अपतन्त्रि के पश्चात् उसका मन व्यथित होता है । अतः मन के बाले की समस्या उसके समुच्च निराश्वर विद्यमान रहती है ।

डॉक्टर माता प्रसाद पुत बायबी को प्रेम-रस को अधिकमूलक नहीं मानते हैं । इस प्रकार इनके अनुसार समस्त सुखी प्रमादमानक काव्य बौद्धिक प्रेम-मूलक है । इस प्रकार इनका विचार आन्तिमूलक है । यदि इनके निष्कर्ष को ग्रहण कर लें तो सुखी प्रेमावधानक काव्यों पर विद्ये-यत् समस्त बह्व्यो में परिवर्तन करना होगा । इस दृष्टि को सम्मुख रखते हुए इनके बह्व्य पर यहाँ विचार किया जा रहा है । डॉक्टर पुत के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं —

(क) बायबी की कथा प्रतीकात्मक नहीं है । जिस प्रेम का विकास उन्होंने रखते और पदुमावती के बीच किया है । वह बीच और ईश्वर के प्रेम का प्रतीकत्वक रूप नहीं है । वह विद्युत् रूप में नारी और पुरुष का प्रेम है जो परमेश्वर की प्रीति केन्द्र बसती-बैठे होते हैं ।

(ख) प्रेम नाम को बायबी विषय मानते हैं । अतः उनके अनुसार पुरुष और नारी का प्रेम भी विषय है यदि वह कुछ जोम नाम न हो क्योंकि वस्तुमें प्रेम पद की प्राप्ति के लिए बीचनोत्तर्य की मागना हो । इस प्रकार का प्रेम मनुष्य के जीवन को बौद्धिक बनाता है और उसे धार्मिक करता है ।

(ग) बीच और ईश्वर का प्रेम पुरुष और नारी के प्रेम से क्रिपित विषय है । जीवन में उनका कदाचित् और गहत्व है । किन्तु पुरुष और नारी की सहायता से बायबी ने उसकी और भी लंकेत नाम दिया है, वह परस्पर कृति में बायबी का वर्ण रहती है ।

(ब) पुष्प-गारी के प्रेम में काम के लिए भी विहित स्थान है, वह निषिद्ध नहीं है ऐसा वायसी का स्पष्ट मत है ।<sup>१</sup>

इन के अनुसार वायसी ने कौकिक प्रेम के आदर्शीकरण की भावना से 'पद्मावत' की रचना की है । अपने मन्त्रव्य के स्पष्टीकरण के लिए वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के एक मन्त्रव्य का सम्बर्ण ग्रहण करते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं । आचार्य शुक्ल ने इस ओर संकेत किया है कि वायसी के प्रेम का प्रारम्भ शोभ से होता है—मुण के मुख से पद्मावती की प्रशंसा सुनते ही शिवा उसे देखे रत्न सेन उसे प्राप्त करने बौद्ध पड़ता है । वह उसका कम शोभ है प्रेम नहीं ।<sup>२</sup> डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इसका समाधान इस रूप में देने का प्रयत्न किया है 'ऐसा नहीं कि वायसी ने इसका कोई समाधान दिया है किन्तु वह बहुत संक्षिप्त है, कि क्याचित इस लिए इतना संक्षिप्त है कि वे अपने प्रेम रस के रसिक और विद्व पाठकों से यह अपेक्षा करते थे कि उनके लिए यही पर्याप्त होना । सम्भव है कि जिन्होंने अपने काव्य का पाठक समझते थे उनके सामने यह समस्या उस प्रकार की रही थी न हो जिस प्रकार यह हमारे सामने है ।'<sup>३</sup>

रत्न सेन पद्मावती से विवाह के बाद प्रथम मिस्रन के वातावरण में कहता है—

अनु बनि तू सवि अर निशि माहीं ।  
हौं रिनजर तेहि की तू छाहीं ।  
बौरहि कहुँ ज्योति सो करा ।  
सुख की ज्योति बौर निरमरा ।  
पद्मावती भी इस कवन का समर्जन करती हैं कहती है—

हीरा दिपे जो सुख सरोसी ।  
गाहीं त कित पाहन कई बोटी ।

रवि परमासे कैवल बियासा ।  
गाहि त कित भयुकर कित बासा । ३१३।

इनके इन कवनों का स्पष्टीकरण तब होता है जब हम दम्पुल अरणी (मृत्यु सन् १२४०) के सिद्धान्तों पर विचार करते हैं । उसने 'पुष्पमुक्त हिकाम में

१—पद्मावत-डॉ० माता प्रसाद गुप्त भारती मण्डार-भूमिका पृष्ठ ४३ ।

२—वायसी पद्मावती भूमिका अन्तर्ग संस्करण पृ० ३१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

३—पद्मावत डॉ० गुप्त ४३ ।

सिखा है कहा है, 'जिस प्रकार ईश्वर की प्रतिष्ठाया के रूप में मनुष्य का निर्माण हुआ है, उसी प्रकार ईश्वर की प्रतिष्ठाया के रूप स्त्री की रचना हुई है। इसलिए पुरुष ईश्वर और स्त्री दोनों से प्रेम करता है। स्त्री का पुरुष से वही सम्बन्ध है जो मनुष्य का ईश्वर से है। अतः इस वर्ण में जब स्त्री से प्रेम किया जाता है तो वह प्रेम ईश्वरीय ही होता है। बायसी ने स्वर्गेन और पद्म-स्त्री के बातोबात में इस बात को 'सूर्य' और 'चन्द्र', 'धूम्र' और 'हीरा' तथा 'सूर्य' और 'कमल' के प्रतीकों को लेकर प्रस्तुत किया है। मनुष्य ने अपनी रचना 'मनु मातृसी' में इस प्रेम के रहस्य का ज्वलाटन और भी विस्तार के साथ किया है। प्रथम वर्णन में ही उनकी कथा का नाटक स्त्रीद्वारा मनुमातृसी से अपने इस प्रथम वर्णन-अर्पित प्रेम का रहस्य स्पष्ट करता है। वह इस प्रकार कहता है—

कहे कुंवर सुन येम विपारी । तोहि मोहि प्रीति पुन बिधि सारी ।

एहि जग जीवज मोहि तोहि लाहा । मैं बिज वै तोर पुन वैसाहा ।

मैं न जान तोरे पुन बुझारी । तोरे पुन सेठ मोहि जाहि बिहारी ।

बेहि मिल सिरेठ जास बिधि सोप । तेहि मिल मोहि बसेठ पुन ठौर ।

बर कामिनि तोहि प्रीति के नीक । मोहि माँटी या लालि सरीक ।

पुन बिज सेठ जागहुं तुम्हरी प्रीति के वीर ।

मोहि माँटी बिधि लालि के ती यह सिरेठ सरीर ॥११॥

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य-सौन्दर्य के सन्दर्भ में 'पद्यावत' की प्रेम-व्यक्ति पर विचार किया है। उन्होंने काव्य में शास्त्रप्रिय प्रेम-वर्णन प्रमाणी के सन्दर्भ की प्रह्लाद करते हुए कहा है कि पद्यावत का प्रेम वर्णन मुख-अवयव, स्वप्न-वर्णन और चित्र-वर्णन की कोटि का है। इसका यह तात्पर्य नहीं निकलता कि पद्यावत का प्रेम पूर्णतः कौमिक-कोटि का है। इसी सन्दर्भ में आचार्य यह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि बायसी के श्रुतार में मानसिक पक्ष प्रधान है शारीरिक शीघ्र है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य ने दो उक्तों के आधार पर अपना निष्कर्ष प्रदान किया है। प्रथम आचार्य शुक्ल, 'काव्य में लोक संयम की सामनावस्था' वाले सिद्धान्त के आधार पर इस प्रेम-विषय का मूल्यांकन करते हैं। उनका कथन है कि भारतीय प्रेम-व्यक्ति लोक-सम्बद्ध और व्यवहारगत थी। बायसी के

काव्य में प्रेम का यह लोक मंगलात्मक स्वरूप नहीं मिलता है। दूसरा, फारसी मसनवियों का प्रेम एकान्तिक, छोड़-बाह्य और भावशीलक होता है, उसमें जो घटमाये जाती है वे केवल प्रेम मार्ग की होती है। संसार के और व्यवहारों से उत्पन्न नहीं। साहस भीरता डढ़ता और मोरता भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है तो प्रेमोन्माद के रूप में लोक कतव्य के रूप में नहीं। अतः काव्य के लोक वर्गों स्वस्व के आधार पर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी के प्रेम-स्वस्व की वर्गी करते हैं। सुय-मनन से रज सेन में प्रेम जाग्रत होता है। इस प्रकार के प्रेम-आवरण की विद्या को सुकम्बी अस्वभाविक मानते हैं। अज्ञात के प्रति विज्ञाता हो सकती है प्रेम नहीं। इस भाव्यता के आधार पर 'काव्य में रहस्य बाव' की सम्भावनाओं का विश्लेषण शुक्ल जी ने किया है। 'पद्मावती' की प्रेम पद्धति के निरूपण के समय भी यही विचार उनके सम्मुख था। काव्य में वे वस्तु की सापेक्षता का होना अनिवार्य मानते हैं। काव्य का विषय प्रस्तुत हो सकता है, अप्रस्तुत नहीं। एक सेन ने पद्मावती को देखा नहीं। उसके विषय में पहले से भी उसने कुछ सुना नहीं। 'अतः तोते के मुँह में पहले ही पहले पद्मावती का वर्णन सुनते ही रत्नसेन का मूर्च्छित हो जाना पूर्ण विद्योपी हो जाना अस्वभाविक समझता है। सुनक जी यह उक्ति करना चाहते हैं कि तोते ने रत्नसेन के मन में पद्मावती के प्रति विज्ञाता जाग्रत की (और इसका वर्णन इसी रूप में होना चाहिये था।) उसके सारे प्रयास इस विज्ञाता की पूर्ति हेतु ही हुये। इस निष्कर्ष का स्पष्टीकरण शुक्ल जी के इस कथन से हो जाता है 'रत्नसेन में प्रेम कल्पन उसी समय दिखालाई पड़ता है जब वह सिव मन्दिर में पद्मावती की मूर्त्ति देख वेसुध हो जाता है। इस प्रेम की पूर्णता उस समय स्पष्ट होती है जब पार्वती मन्दिर का रूप धारण कर उसके सामने जाती है' और वह उनके रूप की ओर ध्यान न देकर कहता है—

मनेहि रंग अछरी तोर राता । मोहि दुखरे सो भाव न बाता ।<sup>१</sup>

वास्तविकता यह है कि सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों में लौकिक प्रेम अप्रस्तुत है, प्रस्तुत है अलौकिक प्रेम निरूपण। लौकिक पात्रों में लौकिक प्रेम की नैतिक-वृत्ता विद्यमान है। लोक सापेक्ष अप्रस्तुतों से लोक निरपेक्ष प्रस्तुत में साधारणीकरण की दायता है।

### सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्यों का काव्य मस

सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्यों में किसी राजकुमार और राजकुमारी की प्रेम-कथा वर्णित रहती है। इन राजकुमार और राजकुमारियों की प्रेम कथाओं को कवि माध्यम रूप में ग्रहण करते हैं। इनके माध्यम से सूफी प्रेम-भूतक सामना के निरूपण का प्रयास किया गया है। इस प्रकार इन रचनाओं में लौकिकता के माध्यम से ब्रह्मलोकता के निरूपण का प्रयास मिलता है। सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्यों के कवि एक निश्चित प्रकार की परिपाटी का प्रयोग करते हुए मिलते हैं। कवि भारत में नायक और नायिका के माता पिता का परिचय देते हैं। नायक और नायिका के बचपन की कथा कहते हैं। इनमें प्रेम का संवरण शुरू परी या किसी अन्य पात्र द्वारा नायक-नायिका के सम्मेलन की पुष्टिपूर्ति, मार्ग में कठिनाइयों का उद्घ और उनके पश्चात् नायक-नायिका का मिलन और उनका विवाह की योजना करते हैं। कथा संयोजन की इस स्पष्ट योजना को रचनाओं के उत्तरार्ध में प्रस्तावित कथा-भूमि में देखा जा सकता है।

प्रेमाख्यानात्मक काव्यों की मुख्य खविता प्रेम-भूतक है। अतः इनमें गुहार की प्रधानता है। इन कथाओं में कवि जीवन के व्यापक संस्पर्शों को ग्रहण करते हैं। अतः इनमें नायकाओं और अनुसूचियों के अप्रतिष्ठ रूप-विषय उभर कर आये हैं। कथा निरोधन और उसके विकास में कवि सम्पूर्ण रूप से जीवन की धृति ग्रहण करते हैं। कथा के मध्य स्वयं-स्वयं पर यदि वे इनमें निहित अध्यात्मिक तत्व की ओर संकेत न करें, तो हमें आभास न हो कि कवि का उद्देश्य आध्यात्मिक है। यमुमावती में रात्रि में नायक-नायिका में मिलन होता है। दोनों में प्रेमोदय होता है। विनोय होने पर नायक यतीहर और नायिका यमुमावती विनोय की कथा को सीकता बहुत कर वर्णित है। विरह-वेदना के मध्य यमुमावती की अवस्था का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

यमुमावती को खोजत आमी, विरह बसिनि नह सिख तन कापी ।  
 मेन बरग बार अनु छुटी केन पवति अनि बीर बाहूटी ।  
 बरहि दसन दुखत लोला, बसिनि चमक चमक अनि बोका ।  
 निरुक्ति केत रैन अधिमारी सहज जाव जायों छिट करी ।  
 रोबनि करति यमुमावति, विरह निबा अनु साथ ।  
 लोरहि मचल्य बरखा बरखा, अब बरखा बर काक—यमुमावती ।

नामसी ने अपने 'पद्मावती' को दो भागों में नियोजित किया है। प्रथम अंश में रत्नेन और पद्मावती की प्रेम-मूक कथा कल्पना पर ही आधारित है। उत्तरार्ध की कथा में बलात्कारी और पवित्री की ऐतिहासिक कथा का निबोधन किया गया है। इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों या इनकी अवस्था पर भावे विचार किया गया है। यहाँ भाव संवेदना पर ही विचार किया जा रहा है। 'पद्मावती' में शू नार भावना की प्रधानता है, और इस प्रकार कहा गया है कि शू पार उसका बंधी रह है। परन्तु रत्नेन की मृत्यु के प्रस्ताव नामसी और पद्मावती लती हो जाती हैं और इस प्रकार उसका अन्त दान्त में होता है। अतः इस सन्दर्भ के अनुसार इसका अंगी रह दान्त हो जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि नामसी की दृष्टि काव्य-शास्त्र के विधान की ओर नहीं है। कवि अपने कल्प की ओर ही केन्द्रित रहा है और प्रेम में निरुद्ध की समिवर्धता के सिद्धान्त के प्रतिपादन में वह शू नार के संयोग और विरोध, इन दोनों पक्षों की प्राचल्य उद्भावना में संवेष्ट रहा है। कवि ने एक निश्चित कर्म-दर्शन की प्रस्तावना की है। अपनी किन्तल चारा के प्रतिपादन हेतु कवि दार्शनिक निरोधन प्रयासी के विपरीत काव्य को माध्यम रूप में ग्रहण करता है। अतः वह काव्यात्मक अनुबन्धों का संगठन करता है। आख्यायिका की दृष्टिकोणता के निमित्त संरक्षण में ही कवि अपने काव्य का विकास करता है।

'पद्मावती' की मूक संवेदन की उद्भावना उस स्वतः पर होती है जहाँ बाह्य वर्ण की आयु में पद्मावती यौवना हो जाती है। पद्मावती स्त्री वादिका उन्मत्त हो जाती है, उसके अंग प्रत्यंग विकसित हो जाते हैं (१२)। पद्मावती का दिग्ग धुक पर संवेष्ट करता है, कारण वह बन्धुमा (मैत्रिका) का संवेष्ट मूर्ध (प्रेमी) तक अवश्य है आवेना। वह धुक के बल की आभा देता है। धुक तो बल जाता है। परन्तु जीवन की व्यापकता में वह जीवन के लक्ष्य स्वल्प को ग्रहण कर लेता है। इस सन्दर्भ में कवि जीवन-दर्शन का समिवेष्ट करता चलाता है। इसी सन्दर्भ में पद्मावती के उस अंग की ओर हमारा ध्यान जाता है, जहाँ कवि मान सरोवर में पद्मावती की अल-झीड़ा का वर्णन करता है। जब यौवनाओं के साथ अल झीड़ा के लिए उत्सुक उत्सहित पद्मावती की भावनाओं का अति समीप और सापेक्ष रूप कवि प्रस्तुत करता है। इस वर्णन में कवि लोक जीवन में प्राप्त प्रभा

के अनुकूल ही वर्णन करता है। फलतः इस वर्णन के साथ हमारा सहज में ही आश्वासन स्थापित हो जाता है। सरोवर में लीड़ा के समय पद्मावती की कुछ सहेलियों उससे कहती हैं—

दे रानी मन देखु निचारी। एहि नैतुर खना निन चारी।  
 जो छवि बहे पिता कर रामू। लेलि केहु बौं लेलहु भावू।  
 पुन सासुर हय गमनव काखी। किछ हय भित एहसरव पाखी।  
 किछ आवन पुनि अपने हाथी। भित निनि के लेखव एक साथी।  
 सासु लग्न कोकिन्ह बिठ केही। दास ससुर न आवे केही।  
 निठ विमार सब ऊपर सो पुनि करें बहूँ काह।

हउं मुख राखे की कुछ बहूँ कस जस निवाह। १०।

इस अंश में अनुसूतियों की पर्यायवाचा का वर्णन विशेष सौन्दर्य है। पिता-गृह में अनुकूल वातावरण है। निवाह होने पर जीवन पति-गृह की मर्पावालों से अनुसूतित होया। एक अनिश्चित त्रिपि के बीच वे सोचती हैं कि सास और मनरे काय से जीवन कठिन कर देंगी, मित्रुर सबसुर निता के घर लीटने नहीं देया और इन सब सम्भवताओं के पक्षानु विष के अनिश्चित व्यवहार की आशंका है। प्रिय पति का प्यार उन्हें निष्ठ सहेला या नहीं इस कौतूहल और जिज्ञासा में वे अनुकूल वातावरण के लिए अनुसूतित हैं। कवि आससी ने सांकेतिक रूप में इस लोक को 'नैतुर' और परलोक को 'सासुर' कहा है। प्रिय परम सत्य है।

इस प्रकार कवि मानसरोवर में पर्यायवाची और कसकी सहेलियों का अत्यन्त मोहक वर्णन करता है। सरोवर में वे सभी बहुरियों के समान अत्यन्त रही है। उनकी लीड़ा से सरोवर अलसित हो रहा है, अपनी सीमाएँ छोड़ रहा है। कारण उसके बल में अश्रमा तारों के साथ स्नान करने उतरा है। इस अन्तर्ग में कवि पर्यायवाची का लक्ष शिख वर्णन करता है। रूप-सौन्दर्य-वर्णन में कवि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का प्रयोग अप्रस्तुत विधान के रूप में करता है। यथा—

सरवर सीर पदमिनी माई। खोपा छोरि केव मोकराई।  
 ससि मुख जय मसै पिरि रानी। नाथन्ह भौंसि लीन्ह अरपानी।  
 मोनए मेघ परी बय छाहीं। ससि की सरल लीन्ह अनु राहों।  
 छवि पै निगहि भावु के बसा। से निनि नखत जौय परमसा।



भूषि बकोर बिस्ति ठहँ आवा । मेव बटा मेह चौद बैसावा ।  
मेन संजन बुझि केहि करेही । कुच नारंग मधुकर रस ऐही ॥६१॥

इस प्रकार के वर्णनों में कवि भारतीय साहित्य में उपलब्ध परम्परा-पूर्ण रूपमानों का प्रयोग करता है । ये प्रकृति-युक्ता उपमान हैं जो कम साम्य, मूल साम्य व्यापार साम्य और प्रभाव साम्य पर आधारित हैं ।<sup>१</sup> रूप-सौन्दर्य का वर्णन समस्त सूफी काव्यों में प्रायः एक रूप में पाया जाता है । रूप ही प्रेम की अनुभावना करता है । संभल की 'मधुमावती' उसमान की बिनावली' एवं अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में रूप-वर्णन की प्रवाची काव्य रूढ़ियों के अनुसार है—यथा—

निर कर्मन सखि दुइन जीलारा । भव सख्त तल मुहन उज्यारा ।  
बदन पसेन बूँद नहुँ पासा । कब पंचे अनु बौर बरासा ।  
मृद मय तिलक साहि पर बरा । जानहि बौर राहु बस पय ।  
मधुमावती ।

यह अति स्पष्ट है कि जायसी तथा अन्य प्रेमाख्यानक कवियों ने औपिक कथा के वर्णन में सन्दर्भ में ही औपिक कथा की ओर संकेत किया है । परन्तु इनमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत (बौद्धिक और औपिक) के मध्य परोक्ष संतुलन मिलता है । कथा विकास के सन्दर्भ में काव्यत्मक कथों के समानेष्ट से हम यह नहीं सोच पाते कि 'पद्मावत' में रतनसेन और पद्मावती अथवा 'मधुमावती' में

१ जायसी के पद्मावत में इस प्रकार के नव दिव्य वर्णन के आठ अस्वय मिलते हैं—

(क) सिंहस की बैस्याओं का नव दिव्य वर्णन (ख) योषन मार से भारित पद्मावती का नव दिव्य वर्णन (ग) नागचरोवर में सन्दर्भ में पद्मावती का नव दिव्य वर्णन (घ) रत्नसेन से हीरामन द्वारा पद्मावती का नव दिव्य वर्णन (ङ) समुद्र के सन्दर्भ में बलात्कृत पद्मावती का नव दिव्य वर्णन (च) नागपत्नी से पद्मावती का नव दिव्य वर्णन (ज) असाठहीन के सम्मुख राघव धैर्य द्वारा पद्मावती का नव दिव्य वर्णन ।

‘राजकुमार और मधुमावती’ की प्रेम कहानी के अतिरिक्त अन्य तत्त्व भी नियोजित हैं। ‘पद्मावती’ में कवि ने राजसेन-नागमती राजसेन-पद्मावती को आत्मन्वन मानकर संयोग और वियोग के रसारमक सम्बन्धों की सबल उपमावतियों की हैं। शृंगार के सम्बन्ध में हमारा ध्यान सर्वप्रथम संयोग शृंगार की ओर जाता है। संयोग शृंगार-वर्णन की दृष्टि परिपाटी भारतीय काव्य-परम्परा में मिछती है। ‘कुमार सम्भव’ ‘नेपथ महाकाव्य’ तथा ‘और पंचासिका’ आदि ग्रन्थों में शृंगार के अन्तर्गत सम्बन्धों के चित्र मिलते हैं। बहुतों प्रेमाख्यातक काव्यों में भी कवियों ने इस विधा को प्रथम दिया है। ‘डोसा माक रा हुआ’ क्षिणार्ध वार्ता ‘सत्यवस्तु सचरित्र’ ‘माधवानन्द काम कन्दला’ आदि कृतियों में संयोग-विषय के निरिक्त प्रयास मिलते हैं—

मदन नाम उन बाद न सदा । उठि सूरसी आँखल पहा ।  
छाट कर कंचुकी छलाई । पूकड़ इष्टि दीया बुझाई ।  
अगर प्रकार कुछ पहन न देह । कुनन न बग क्षिणार्ध देई ।  
क्षिणार्ध वार्ता नागरी प्र० स० १६२ १६ ।

नामती मंजल तथा अन्य सूत्री प्रवाच्यातक काव्यों के कवियों की रचनाओं में संयोग विषय इसी परम्परा के अन्तर्गत आता है। परन्तु इन कवियों ने लौकिक-विषय में अलौकिक संकेतों का निबोधन भी किया है। विवाह के पश्चात् राजसेन और नागमती मिलते हैं। उनके संयोग विषय में नागमती अपनी पूर्ण परम्परा का ही अनुसरण करते हैं। पद्मावती जबल मुह पर चढ़कर अपनी सहेली से राजसेन के विषय में विज्ञासा करती है। सहेली राजसेन को रिलतापी है। राजसेन के वर्णन के पश्चात् पद्मावती में एक नैसर्गिक उत्साह मात्र आगूत होता है। उसका वर्णन कवि इस रूप में करता है—

देखा और सुरज बस लाजा । बस्ती भाव मरन उन पाजा ।  
हुकरी लेन दरस मर मति । हुकरी अगर रीन रख पाते ।  
हुकरी बजल बोप रवि आई । हुकरी क्षिणार्ध कंचुकी न समाई ।  
हुकरी कुछ कसनी और टूटे । हुकरी मुन बल्य कर पूटे ।  
X  
X

आजु और बार माँ सुक । आजु क्षिणार्ध होइ सब चूक ।  
अप बग सब हुकरी केव कलहुँ न समाई ।  
ठावहि ठाँव विमोहा गद मुरझा पति बाद १२८० ।

विवाह के पश्चात् रत्नसेन की शोभा समित होती है। इस सन्दर्भ में बापती दर्शन के कवि नहीं अपितु भावनाओं और अनुभूतियों के कवि है। जब रम्यति के मानसिक भाव परस्पर मिलने की उत्सुकता और हृदय की रसपूर्ण स्थिति, इन सब को कवि ने अपने वर्णन में समीकृत कर दिया है। लोक-प्रचलित प्रथाओं का संछन्न से वर्णन अधिक सापेक्ष और तादात्म्यपूर्ण हो गया है। रत्नसेन पद्मावती से मिलने के लिए उत्सुक है। सखियाँ कहती हैं, यहाँ की प्रथा के अनुसार हम कुमारी का शृंगार करेंगी। उसके अंग पर लम्बी हुई हल्दी के अमर रंग चर्चित करेंगी। तब रात्रि में चन्द्र और सूर्य का साहचर्य होगा। इस वर्णन के मध्य कवि अपने दार्शनिक अभिप्रायों की ओर भी संकेत करता है। रत्नसेन पद्मावती से मिलने के लिए उत्सुक है। इस उत्सुकता के सन्दर्भ में कवि बाष्पात्मिक मित्र की उत्सुक भावनाओं की ओर भी संकेत करता है।

अस सप करत गए दिन भारी । चारि पहर बीते कुम भारी ।  
परी साँझ पुलि सखी सो जाई । जाँच सो रहै न उई छपई ।  
पूछेन्हि नृप कहौ र बेला । दिन ससिगर कस घुर अकेला ।

X

X

X

मेन कोठिया हिय समुंन नृप सो देखि नई जोडि ।  
मन भर जिवा न होइ परं हाथ न जाई सोडि । २६३।

‘मराजीवा होकर ही ‘मोती’ मिलने की बात यहाँ भी कही गई है। परन्तु इन संकेतों के पश्चात् कवि पुनः लौकिक भूमि पर आ जाता है। वर्णन की सरसता से वह हमें पुनः परिचित कर देता है। पद्मावती के मित्र-वर्ग पर उसकी सखियाँ इसका शृंगार करती हैं। तुलार अंजन रंजित नेत्र रंजन के समान हैं। कपोलों के त्रिज पद्म पर बेटे अमर के समान (२६८) हैं। मित्र की भूमिका में रत्नसेन और पद्मावती में बातचीत होती है। इस बातचीत में दाम्पत्य की अनुभावों और उत्सुकता के साथ-साथ दार्शनिक संकेत भी नियोजित हैं। पद्मावती कहती है—

बोली तोरि सपसी के कामा । लानी नई अंग मोहि छाया ।  
बार भित्तारी न मोहति भीटा । मोने जाइ सगल अङ्गि दीया ।

जयंत, मोयी तेरी काया तपस्वी की है। मेरे शोचन बंधों पर उसके संस्पर्श की छाया कष्ट पूर्ण होती। तुम मिथारी हो, द्वार पर मिथ्या स्त्री चाहिए, तुम स्वर्ग पर चढ़ कर मिथ्या सिमा चाहते हो। (१०४) रजतेन उत्तर देता है—

मेह तुम्हारे को दिए समाना। पित नर मोह न सुमिरेत आना।  
बस भावति कई मैत्र मित्रोरी। कहा विमोघ जलेक होइ बोरी।

X

X

X

एक बार भरि मिले बौ आई। दोहरि बार भरि कय आई।  
कल रोहि मोघु को मरि कैं भिया। या अन्तर मित्रि कै मनुषिया।  
मैत्र को पावे कैवल कई मनु भारति बहु भास।  
मैत्र होइ नेवछात्र कैत्र देख हस्तिनास। (१०५)

सुनावती और रजतेन के उत्तर प्रत्युत से भावावरण बलि सिम्ब बन जाता है। सुनावती पर सुख रजतेन उत्तरी प्रत्येक विज्ञाता का स्पष्टी करण करने का प्रयत्न करता है। वह जन्म और भावुक है। सुनावती को वह कर्मन रूप मानता है, ऐसा कर्मन को प्रत्येक मन में नहीं होता। और अपने को सुनावती से हीन भी नहीं मानता कारण वह कहता है कि प्रत्येक मन में बिह्व नहीं पाएल होता है—

बन बन मित्रि कैत्र नहि होई। उन तव बिह्वन कपल रोई।

X

+

+

बस अंजुन एवि रई मकासा। प्रीति को जानहुँ एकहि पासा। (१११)

X

X

X

सुनावती आत्मसमर्पण करती है यह गरी का आत्मसमर्पण है और इस धर्मन में अहित या समरसता की स्थिति है। वह कहती है—

कलि मोहिनी बहू हुरि तौही। को रोहि भिया सो काली मोही।  
बिनु जल मीन तपो तव बीज। जानिक चाहैं कहत पित पित।

X

X

X

ताली कर्मन मीतर बट को बस प्रीतिम पित।

मेवछात्रि कै जाके तन मन बीजन बीज। (११२)

मिथुन-राशि में एलसेन मिथुनमुख से सम्पादित है । पद्मावती कहती है—

पिठ जायसु मौजे पर सेठें बी माने नै नै सिर देठें ।

ये पिय बचन एक सुन मोरा । नाखि पियहु पिय बोखु बोरा । २७२।

परन्तु एलसेन प्रेमपत्र का यात्री है । वह स्पष्ट कहता है प्रेम-मुरा पीने नामे के लिए मृत्यु-भव का कोई तात्पर्य नहीं है ।

सुनि बनि येन सुरा के पिएँ । मरण बीजन सर रहै न हिएँ ।

बहै मद तहाँ कहों संभारा । कै सो कुमरिआ के भँठबारा । १२०

एलसेन और पद्मावती के मिथुन-मुख के सुन्दर में कवि जायसी ने पट्टाभु वर्णन की योजना की है । यह वर्णन संयोग गुरुवार के उद्दीप्त रूप में है ।

यह वर्णन बसन्त से आरम्भ होता है । बसन्त के उल्लास में पद्मावती अपने उल्लास का प्रतिबिम्ब देखती है ।

पिय संयोग बनि बोधन बारी । भैबर पुहुप सँव करहिं बमारी ।

होइ फागु मिछि बाँबरी बोरी । बिछु बराह बीन्ह बस होरी ।

इस प्रकार बसन्त में पद्मावती को जमिनव जीवन का सम्बन्ध मिलता है ।

संयोग में प्रकृति एलसेन और पद्मावती के हृदय को विकसित करती है ।

एलसेन और पद्मावती के संयोग-मुख सम्पादन में पट्टाभुएँ विशेष सहयोग देती हैं । परन्तु नागमती की स्थिति इससे भिन्न है । उसका जीवन विमोच में ही बीत रहा है । जायसी ने नागमती की बिछु-बेचना को व्यक्त करने की भावना से 'बाह्यमासा' का आयोजन किया है । विप्रकर्म वर्णन के सुन्दर में 'बाह्यमासा' अपभ्रंश काव्य की एक विशेष विधा है । अपभ्रंश में उपलब्ध विप्रकर्म भावना ११ पूर्ण काव्यों में 'बाह्यमासा' की निर्मित योजना मिलती है । इस सुन्दर की प्रमुख वृत्तियों में दिनचर्या सूरि वृत्त 'नेमिनाथ बरपई' एक असाधारण कवि का 'नेमिनाथ बाह्यमासा' समथर का 'नेमिनाथ फागु' राजसेखर सूरि का 'नेमिनाथ फागु' विशेष रचनाएँ हैं । 'नेमिनाथ बरपई' में नेमिनाथ के वैराग्य से सेने पर राजमती बियाव-पीड़िता है । उसकी व्याख्या के सुन्दर में कवि बाह्यमासा की योजना करता है । मया—

राजमती—बरसाहह बिहसिय बस राइ । नमनमिसु मत्तमानिसु बाइ ।

बुट्टिरि हियड़ा मानि बसंत । बिसाह राजत विकलउ कंत ।

सखी— सखी दुख बीसखिया मचह । संमति ममरत किम रस मनुई ।

बीस पंचखिर जोवनु होइ । छात्र पिपत्र विमलत सहु कोइ ।

राजमती—आबनि सरबनि कहुए धेहु । मज्जर विरहि रिमिज्जह देहु ।

विज्ज मज्जकहु रक्कसि जेव । नेमिहि निनु सहि सहियनि केव ।

सखी— सखी मज्जर समिधि मति नूरि । दुज्जल सल धन बंछित पुरि ।

बबर नेमि सज्जविन ठउ काइ । बज्ज बनेरा बरह समाइ ।

राजमती—बोकर राजुल सत रह बकनु । नरिय नेमि बर सम रमयु ।

बरह सैव यहुवक सविताउ । एणमि न उमाइ विपवर जाउ ।

हिन्दी काव्य में 'बाख्शासा' की परम्परा का धूस स्रोत जयजय काव्य है । जाबतौ तथा अन्य सूफी काव्यकर्ताओं ने इस परम्परा का अनुसरण किया है ।

'बाख्शासा' का अर्थ है विरहिमियों का विरहोद्दीपन । नागमती वितौर के रूप की ओर देखती है । और कहती है किसी शारी के अधिकार में जाकर ही मेरा 'नामर' मुझे धूस गया है ।

बारस बोरी किमि हरी, मारि जबर किमि सख ।

झुरि झुरि पौजरी बनि भई, बिरह के छापी अखि ।

प्रिय के स्निह्य में उसकी स्थिति पपीह के समान हो गई है । और उसकी अवस्था इस प्रकार की हो गई—

बिरह बान सल काव न बोली । रक्त पसीब धीय यह बोली ।

१४५)

'श्रद्धानन्द' में 'बाख्शासा' जसाद से आरम्भ होता है । कवि पहले प्रकृति के रूप का विधान करता है । प्रकृति के क्रियात्मक रूप का अंकन करता है, और इसके बरपाव क्रियोगिनी पर पड़े हुए प्रभावों की उद्भासना करता है । सावन में समस्त प्रकृति बपी से पूर्ण है । बरसी सुसज्जित है । केवल नागमती व्यक्ति है ।

सावन बरिह धेहु बति पानी । भरति बरह ही बिरह फुरानी ।

इस अन्तर् में कवि बर्नसाम्य और व्यापार साम्य के आधार पर अग्रस्तुत विधान के माध्यम से क्रियोगिनी की तीव्र आकृष्टता को मुखर करता है—

रक्त क बाँधु बरे नुई टूटी रेवि जली जनु कीर जली । १४५।

प्रकृति व्यापार तो उद्दीपन का कार्य करते ही हैं। साथ-साथ संयोग-श्रीड़ा की भूमिका से प्रतिपादित लोकोत्सव भी उद्दीपन का कार्य करते हैं—

ससिन्धु रक्षा पित संम हिडोका । हरियर भुई कुर्ताम तन बोसा ।

द्विय हिडोका बस बोले मोरा । बिछ भुत्ताये हि भकोप ।

नागमती की बिछ-अनुभूतियों में समष्टि की भावना व्यक्त है। सामान्य लोक में प्रचलित व्यञ्जना बिचा के अवलम्ब को ग्रहण करने के कारण भावों के साधारणीकरण की क्षमता अति व्यापक हो गई है। नागमती सावन में बस प्लावित पृथ्वी को बेसती है। प्रिय जिस वेश में है, वह अनन्त दूरी पर है। पहुँचने में वह असमर्थ है। अपनी असमर्थता को वह इस प्रकार व्यक्त करती है—

परजत समुह अयम बिच बनर बैहड़ बन बंस ।

किमि करि भेटौं कम्त ना मोहि पौब न पंच । ३४५

बायसी इस वर्षण में प्रत्येक ऋतु का संक्षिप्त चित्र अंकित करते हैं। प्रत्येक ऋतु में लोकपर्व और लोकोत्सव का वर्णन करते हैं और विरहिनी पर ऋतु के उद्दीपन पूर्ण प्रभावों का अंकन करते हैं—यथा—

चैत बसंता होई बमारी । मोहि देखे संसार उबारी ।

पंचम बिछ पंच सर मारे । रक्त रोह सगरी बन बारी ।

बूढ़ि उठै सब तरिवर पाता । जीवि मबीठ टैनु बन राता ।

मीरे भौब करे अब छागे । अबहुँ सँवरि करि जाठ समागे ।

सहस भाव फूझी बनचरी । मधुकर फिरे सँवरि मासरी ।

मौ कहूँ फूल मए बस काँट । विस्ति परत तन सापहि बाँटे ।

भर बीजन एहु नारैय साखा । सोबा बिछ अब बाइ न राखा ।

बिरनि पैसा जाब बस बाइ परतु मिय दूरि ।

मारि पराएँ हाथ है तुम्ह बिन पाव न छुटि । ३४६

मंमल की 'मधुमाद्यती' अथवा अन्य सूखी प्रेमाख्यानाक काव्यों में यह परम्परा अत्यन्त रूप में मिलती है—

चैत करह निसरे बन बारी । मसपती पहिरे नब सारी ।

बहुँ विस्ति भा मधुकर गुबारा । पालुरि फूल बालिह अनुसार ।

कुमुम सीस बारिह सेठ काटे । तकर नबे साखा मै बाड़े ।

कायुत होते जो तब पतझरे । ते सम गए नीत हरियारे ।  
 मोहि पतझर जो विनु छाड़ । सीम सघी मौल मक्ताई ।  
 दुख दे प्रीतम छाड़िया जननि दीन्ह मनबास ।  
 जो रवि माठो मैं तपा के मोहि सिर परयास ।

मधुमालती । ४१० ।

विरह के सम्पर्क के बंधन में कवि ने विकसता और मानसिक आघेय का प्रति नैसर्गिक रूप प्रस्तावित किया है । अपने वर्णनों में ये कवि अतिशयोक्ति की सीमा का भी संस्पर्श करते हैं परन्तु इनमें संवेदना की तीव्रता भी व्यक्त होती है, बचन-मृदुता ही नहीं । उदाहरण स्वरूप नायमती कवन में बारहमास व्यतीत करती है । उसका प्रत्येक फल एक वर्ष के समान व्यतीत होता है । परन्तु जिस प्रिय से मारी सीमाय पाती है, वह छोटकर नहीं आया । संझा होने पर वह संतप्त होकर उसका मार्ग देखती है । इस संघर्ष में नायमती की बेचना के साथ हमारी भावनाओं का साक्षात्त्व स्थापित हो जाता है । कवि विरह-वैरता की तीव्रता की व्यञ्जना के लिए उदात्त-रस-वस्तु-व्यञ्जना का सहारा लेता है । ऐसे सम्पर्क में मत्सर-बलाओं या दुःख भावनाओं को मूर्तित करने के लिए प्रकृति का प्रयोग अति सार्थक और संवेदनशील रूप में हुआ है । उदाहरण—

कुसुम कुसुम जब कोइलि रोई । रक्त ओंठुं पुंघुंची बन बोई ।  
 वे कर मुची लैन तन राती । की विराय बिरहा दुन्ना राती ।  
 महे महे ठाक होम वल्गामी । तहै तहै होई पुंघुचिन्ह के राती ।  
 गुंघ-गुंघ महे जानहूँ बीव । गुंघा गुंघ करहि पिठ पिठ ।  
 तेहि नु य हरे परास निरावे । सोइ बूझि उठे परमाते ।  
 राते बिय गए तेहि लोहू । परवर पाक फाट द्विय मोहू ।  
 देखिअ जहाँ सोइ होइ राता । जहाँ सी खन कई को माता ।

भा पावस ओहि देखरे ना हेरव बसव ।

मा कोइछ न पयौहरा, केहि मुनि जाबहि बंठ । ३५६ ।

इस वर्णन से भावनायें कल्पित हो उठती हैं । उनमें कोइछ के समाप्त करने से रक्त के अधु गिरे । ऐसा प्रतीत होता है पुंघुची को दी गई है । उठने पड़े होने से पुंघुचियों की रासि बन जाती है । अधु के कम रच में बी-



हैं, जिनसे प्रिय प्रिय सख्त निकल रहे हैं। कुल से बन्ध होकर पलायन पनहीन हो जाते हैं। उसके बधिर के कारण ही पलायन रक्तिम हो उठते हैं। फिर भी रत्नसे नहीं झोटा है। ऐसा लगता है कि उस देश में बर्षा नहीं होती है, न हेमस और न बसन्त। वहाँ कोरिड और पपीहे नहीं होते हैं, जिनसे सहीस होकर बा प्रिय झोटे।

कबा विकास की योजना इस वाक्यात्मक काम्यों में अति वैज्ञानिक है। कार्य-कारण के सम्बन्धों से परिवर्तन कटगार्य कबा-मार्ग परिवर्तित करती है। उदाहरण स्वल्प 'पद्मावती' में सिम्पल द्वीप से रत्न सेन बिचौर को झोटा है। पद्मावती के विद्योम की तीव्रता से रत्न सेन बिचौर झोटा है। और नाममती की स्मृति के सहेस से बहु सिम्पल से पुन बिचौर के लिए प्रत्यावर्तित होता है। परन्तु इस भावनात्मक परिवर्तन के लिए कवि अति स्पष्ट पुष्टिभूमि की रचना करता है। एक सिंहगम पद्मावती और रत्नसेन की माता सरस्वती का संश्लेष लेकर सिम्पल द्वीप जाता है। वह एक वृक्ष पर विधाम करता है। बासेट के सम से बक कर रत्नसेन उसी वृक्ष की छाया में विधाम करता है। पछी बापस में बाताबाप करते हैं। उनमें बिचौर से आया पछी भी है। तबसे के अन्य पछी सबसे प्रसन्न करते हैं 'बहो भीत काहें तुम स्वाभा। सुक उत्तर देता है—

कहेसि भीत मायेक बुद्ध भए, जम्मु दीप तहाँ हम भए।

नगर एक हम देखा मङ्ग पितरर ओहि नाउ।

सो बुल कहीं कहीं जमि हम बाबे पैडि ठार। ३६४।३१२।

पछी रत्नसेन के सिम्पल प्रस्वाग और नाममती के विद्योम की कबा करता है। रत्नसेन भाकुल होता है। 'स्वर्ग सन्देशी' सिंहगम से संश्लेष पाकर रत्नसेन बिचौर झोटा है। नाममती को बाह्य भासे या अन्य कृत्तियों के बाह्यभासे में भावना उपमान और वर्णन प्रवासी लोक जीवन के हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है 'नाममती के बिह्व वर्णन के अन्तर्गत वह प्रसिद्ध बाह्यभासा है, जिसमें वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वल्प, हिन्दू साम्प्रत्य-जीवन का अत्यन्त मर्यादापूर्ण माधुर्य अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विगुह माधुर्य हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुसार भाषा का अत्यन्त स्निग्ध, सरल, मृदुल और बहुविध प्रवाह देखने योग्य है।'

### सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों का काव्य रूप

अपभ्रंश-साहित्य में चरित्र काव्यों की एक स्पष्ट परम्परा मिलती है। इन चरित्र काव्यों में प्रबन्ध काव्य एवं आख्यात्मक काव्य इन दोनों के तत्व मिलते हैं। हिन्दी में उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य रचना-रत्न की दृष्टि से अपभ्रंश के इन चरित्र और आख्यात्मक काव्यों की परम्परा में आते हैं। अपभ्रंश रचनाओं के समान इन कृतियों में लोक गाथात्मक ध्वज भी मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप बायसी ने 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की कथा इतिहास की अपेक्षा लोक जीवन से ग्रहण की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह प्रस्तावना की थी कि 'पद्मावत' तथा अन्य सूफी काव्य-ग्रन्थों का प्रचयन फारसी की मसनवी शैली के अनुरूप हुआ है। शुक्लजी के इस प्रस्तावन के अनुसार ही उनके परवर्ती आलोचकों के 'पद्मावत' के रचना-रत्न को अमरावतीय कहा है। मसनवी शैली के प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कवि घटना के अनुसार काव्य को शीर्षकों में वर्गीकृत करते हैं। आरम्भ में ईश्वर की स्तुति होती है। कवि पैगम्बर का स्मरण करते हैं उसके पश्चात् पैगम्बर के मीराज का स्मरण करते हैं। चाहे वह अपने अपने युग की किसी श्रेष्ठ प्रतिमा की प्रशंसा करते हैं। कवि काव्य रचना के कारण का उल्लेख करते हैं। वे आत्म-निवेदन करते हैं, अपने मित्रों की कर्मा करते हैं तत्पश्चात् मूस कथा आरम्भ करते हैं।

भाषातीय चरित्र काव्यों में भी प्रायः इसी प्रकार की मिलती-जुलती प्रबन्ध कविता मिलती है। कवि ईश्वर-स्तुति यदि तीन प्रबन्ध काव्य है, तो जिन-स्तुति कथा है, वह आत्म वाताओं के मस का वर्णन कथा है फिर सज्जन प्रशंसा और दुर्जन-निन्दा कथा है, और अपने पुत्र के कवियों की प्रशंसा कथा है। आचार्य शुक्ल ने इन कृतियों को 'मसनवी शैली' के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए कहा है, 'इन प्रेम गाथा काव्यों के विषय में पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना चरित्र काव्यों की सर्वश्रेष्ठ शैली पर न होकर, फारसी की मसनवियों के रूप पर हुई है। जिनमें कथा सर्वो या अध्यायों में विस्तार के हित्ताव से विभक्त नहीं होती बराबर चलती है केवल स्वान-स्वान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षकों के रूप में दिया रहता है। इस अन्तर्भ में अस्तेनवीय यह है कि अनेक सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य शीर्षकों में विभक्त नहीं है। कथा अनाम्य

बसती रहती है। 'पद्मावत' अथवा 'अपुमावती' की कतिपय प्रतियों में सीपंक विभाजन की बिधा नहीं मिलती। यह परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों में भी मिलती है। यहाँ दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। एक प्रकार की ये रचनाएँ हैं, जिनमें सर्गों के विभाजन की बिधा मिलती है। उदाहरणस्वरूप, विमल सूरि की रचना 'पद्म चरित' 'उद्देश्यो' में विमल है। पुष्प हस्त हस्त गज कुमार चरित' सन्धियों में विमल है। हेमचन्द्र रचित 'कुमार पाल चरित' सर्गों में विमल है। मुनि कनकामर हस्त करकण्ड चरित' सन्धियों में विमल है। ये सन्धियाँ कदंबक में विभाजित हैं। प्रत्येक कदंबक के अन्त में एक पद्या का क्रम है।

दूसरे प्रकार की रचनाएँ सद्योतन सूरि हस्त 'कुलसामाज' और 'तटय सौख्य तथा श्रीकावद वहा' हैं। इनका विभाजन सर्गों में, या सन्धियों में नहीं हुआ है। इनकी बिधा कदंबक की है। इस प्रकार हिन्दी सूफी प्रेमाश्रयानक काव्यों में ईश्वर स्तुति, साहेब क प्रशंसा ही मसलबी सीखी हो पाई है। परन्तु काम्य रूप की दृष्टि से ये रचनाएँ भारतीय हैं। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने उक्त में विभाजित प्रतियों को प्रशंसित माना है। परन्तु हम इसका निर्णय नहीं कर सकते कि इनके कवियों ने अपनी कृतियों का विभाजन खण्डों में अथवा सर्गों में किया था या नहीं।

सूफी प्रेमाश्रयानक काव्यों की रचना बीरार्दी और दोहा के योग से हुई है। यह रचनातन्त्र कदंबक शैली का है। 'पद्मावत' में सात बीरार्दियों के युग्म के पश्चात् एक दोहे का पद्या नियोजित है। 'अपुमावती' में पौंच अर्थाश्रयों के बाद एक दोहे का पद्या नियोजित है। मुर मुहम्मद हस्त इब्राहिमी में सात अर्थाश्रयों के पश्चात् दोहे का पद्या है। हुसेन बखी हस्त 'मुहम्मदी' में छ अर्थाश्रयों के बाद एक दोहे का पद्या है।

अपभ्रंश के कदंबक-वद काव्य पञ्चदशिका या अष्टिक में है, और पद्या के लिए प्रबुद्ध की योजना मिलती है। यहाँ भी दोहे का पद्या मिलता है। 'मूलि बर पापु' इस छन्द की भार्गव रचना है। बीरार्दी के साथ दोहे के संयोग से निम्न कदंबक की बिधा पुनरुत्पन्न हुई 'पद्म चरित' में मिलती है। इस प्रकार का शैली के प्रकल्प के सीत पूर्वी अपभ्रंश में मिथों की रचनाओं में भी उत्पन्न हो पाये हैं—

बलि भी ! प्रमम महागुह पसिह । खरबी द्विपि पाणिहि निमिह ।  
 मन्तु मन्ते एति न होइ । पत्रिभ निमि की उष्टिल होइ ।  
 एतकल दरिद्रन पद अभाइ । केअ देसिह का गग पसाइ ।  
 बाब न आप बनिअद ताब न गिस्त करेइ ।  
 कर्बी क्षम्य मन्दाव निम, केच वि कूड पदइ ।

बोहा कोप ७ = ।

कबीर के नाम से प्रचलित रचनाओं में भी इस घेरी का प्रयोग मिलता है ।

### अव्योक्ति या समासोक्ति

बाबरी हूत 'पद्यावत' और अन्य सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों की आलोचना के सन्दर्भ में एक मूल उदाहरण दिया है—य कृतियाँ समासोक्तिमूक्त हैं<sup>१</sup> । अथवा अव्योक्ति मूक्त<sup>२</sup> । 'पद्यावत' के सन्दर्भ में एक प्रकार की यह धारणा मिलती है कि बाबरी ने अपनी मौखिक भावनाओं पर आध्यात्मिकता का आवरण बढ़ावे के लिए अपनी कथा के अन्त में एक अव्योक्ति दी है, और पद्यावत में सम्पूर्ण कोई निश्चित अव्योक्ति है, वह सम्यहपूर्ण है ।<sup>३</sup> इसी प्रकार 'पद्यावत' का काव्य अव्योक्ति माना जाता है । इसके अतिरिक्त 'पद्यावत' को समासोक्ति काव्य भी कहा

१ यहाँ प्रस्तुत के वर्णन द्वारा समान विशेषणों से अस्तित्व का बोध कराया जाय यहाँ समासोक्ति अर्थकार होता है ।

२ जब अस्तित्व वर्णन द्वारा प्रस्तुत वर्ण की व्यञ्जना की जाय यहाँ अव्योक्ति अर्थकार माना गया है ।

३ I doubt very much whether he (the poet) had any definite allegory present to his mind throughout the key which he gives us in the first stanza of the Envoy does not by any means fit the lock.  
 A. G. Sheriff Padumavti Introduction Page 8-1944

गया है ।<sup>१</sup> बाबाय रामचन्द्र सुक्त की आगसी छम्पाबसी में 'पपावत' के उस संहार-रूप में जो बंध है उसके कारण यह प्रश्न और भी स्पष्ट वस्तु की जपेबा रसता है—

मैं एहि अरब पंडितन बुझा । कहा कि हम्ह किछु और न सुझा ।  
 जोदह मुबन को तर उपराही । ते सब मानुस क भट माही ।  
 तन किततर मन राखा कीन्हा । हिय सिंपल बुधि परमिनि चीन्हा ।  
 गुरु मुखा देखि फन्य हेजाबा । बिन गुरु अगत को निरखुन पाबा ।  
 भावमती यह दुनियां धन्दा । बाबा सोई न एहि फित बंधा ।  
 राख बूछ सोई संतानु । माया बजावरी मुकदानु ।  
 प्रेम कथा एहि मौलि बिचारु । बुझि केहु को बूझै पावु ।

गुरकी अरबी हिंदुई मापा बेटी बाहि ।

बेहि महे भारय प्रेम कर सबे सपाई ताहि ।

इस अंश के अनुसार—पपावती परमात्मा, परम व्योमि है। एक्सेन जीवात्मा है। सिंहल हूय है हीरामन गुरु है। भावमती दुनिया धन्दा है। अमावसी माया है। राख बेतन संतान है। सात समुद्र माया के आधाम है। मानसरोवर ब्रह्म रंज है। 'पपावत' की सम्पूर्णता पर जब हम विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि कवि अप्रस्तुत और प्रस्तुत के साथ तात्काल्य स्थापित नहीं कर सका है। इस सत्य की ओर संकेत करते हुए बाबाय रामचन्द्र सुक्त ने कहा है यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रस्तुत वा प्रधान मान लें तो जहाँ दूसरे अर्थ निश्चित हैं वहाँ-वहाँ अन्योक्ति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्वयं अधिकतर कथा के अर्थ हैं और पढ़ते समय कथा अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती। अतः इन स्थलों के बाबायार्य के अप्रस्तु होने से ऐसी जगह समाप्तोक्ति ही माननी चाहिए<sup>२</sup> परन्तु पपावत में अन्योक्ति मूलक विधा का भी संरक्षण मिलता है।

१ डॉ० पीताम्बर बत बड़प्पास ने इस प्रश्न को एक अन्य रूप में सोचा है—  
 'हम तो नागमती की अवहेलना कर पपावती' प्राप्त के प्रयत्न को उसी दृष्टि से दराते हैं जिस दृष्टि से नागवपी मर्दर नाग को सिंहल जाकर परमिनी स्त्रियों के आस में पड़ जाने को। यह पत्रन है उत्पन्न नहीं। नागमती का प्रेम तितना दिव्य है उतना पपावती का नहीं।' द्वितीय अमिनन्दन ग्रन्थ—पपावती की कहानी और आगसी का अम्पात्मवाद पृ० १६२ ४०१ ।

२ आगसी छम्पाबसी—भूमिका २६ २७ ।

मैंने जो विवशता मानकर बिना पल गए सुनाय ।

यहाँ बैसि फिर पल्लुही जो रिठ सीने भाइ ।

यहाँ प्रस्तुत है बिरहिणी का बिरह वर्णन, बहुत-कमल अप्रस्तुत है । यह यह प्रभासी ज्योतिष मूलक है । मायमती को कवि ने दुर्गिणी बन्धा के रूप में प्रस्तावित किया है । इस सम्बन्ध में उनके द्वारा ज्योतिष का विधान नहीं हो सका है । एक ओर कवि उसे गोरखबन्धा कहता है दूसरी ओर आपसी मायवीय नारी के समान लक्ष्मण की मृत्यु के पश्चात् पद्मावती के साथ वह सती हो जाती है ।

गै० माताप्रसाद युग इस अंश को शक्ति मानकर समस्या का समाधान करते हैं । अपनी आयसी सम्भावनी के सम्पादन में केवल ने १९ प्रतिशत का उपयोग किया है । इनमें से केवल तीन प्रतिशत में यह अंश उपलब्ध हुआ है । परन्तु इन तीन प्रतिशतों की अप्रामाणिकता जब तक स्थापित हो जाए तब तक इस प्रकार के निर्णय से समस्या का समाधान नहीं होता । आपसी अपनी इस कृति को ज्योतिष मूलक नहीं कर सके हैं । इसके लिए निम्नलिखित सम्भावित कारण हो सकते हैं—

(१) काव्य के अर्थ विस्तार की ओर सचेष्ट रहने के कारण ज्योतिष पर वे केन्द्रित नहीं रह सके हैं ।

(२) पद्याक्त में मूखी भाषना के अतिरिक्त कवि ने इत्योव और बेवाम् वर्णन के साथ-साथ भी जोड़ दिया है । इन कारण भी ज्योतिष-क्रम अनिष्ट हुआ है ।

(३) पद्याक्त में अप्रस्तुत ( कथा और गद्यात्मकता ) प्रस्तुत ( वर्णन ) के अधिक ध्वनिपूर्ण है । इसका प्रभाव भी सम्भवतः ज्योतिष पर पड़ा है ।

समासोक्ति

इस प्रकार हमने देखा कि पद्याक्त पृथक् ज्योतिष मूलक काव्य नहीं है । इस कृति में वाच्यार्थ व्युत्पन्न दोनों का महत्व है । ऐसा भी कहा जाता है कि पद्याक्त में बार-बार की शक्तियों का प्रयोग हुआ है—

(क) प्रस्तुत की कथा अप्रस्तुत के प्रति जाग्रह पूर्ण होती—

गङ्ग पर मीर खीर हुआ मीठी । पानी गरहि जैसे हुए पत्नी ।  
ओर कुछ एक मोती बुर । पानी अक्षित कीच कपूर ।

(क) समासोक्ति मूलक अविध्यवित्तयौ—

ऐ रानी मन देखु विचारो । एहि नेहर रहना नित जारी ।  
ओ सहि मई पिता घर राजू । खेसि सेहु जो सेसहु जानू ।  
पुन सासुर हम बचनब काछी । किछ हम किछ यह सरवर पाली ।

(ग) लौकिक पक्ष का अविद्या मूलक वर्णन—जिसमें कोई दूसरा अर्थ नहीं है ।

(घ) केवल आध्यात्मिक पक्ष का अविद्यामूलक और उपदेष्टात्मक अर्थ जिसकी प्रस्तुत कथा में कोई उपयोक्ति या अर्थ नहीं है ।

इसको दुवार छार के सेधा । उछटि बिस्ति ओ साव सो देखा ।  
तू मन मायु मारि के स्वांछा । जो वै भरहि आपहु कारि नासा ।<sup>१</sup>

श्री० चम्पूनाथ सिंह पद्मावत को 'एसीगोरी' कहते हैं जिसे वे प्रतीक कथा का पर्याय भारी मानते हैं । 'पद्मावत' के पात्र तथा अनेक घटनायें प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं । अतः यह प्रतीकात्मक काव्य है । परन्तु 'पद्मावत' न तो एसीगोरी है और न तो सिम्वास्तिक काव्य । इसकी खोजी समासोक्ति की है । इस प्रकार की भावना भी व्यक्त मिलती है कि 'पद्मावत' का कुछ अंश ही समासोक्ति के अन्तर्गत आता है इसको अविकीर्ण कथा लौकिक ही रहे नहीं है । 'इस प्रकार पद्मावत के बहुत व्याख्ये खण्ड तथा ही प्रतीत होता है कि मानो यह कथा आत्मी आध्यात्मिक समासोक्ति रखती है व्याख्ये खण्ड तक तो कहीं-कहीं प्रेम की अनुभूति दिखती ही है । किन्तु हमारे पदवात् यह लौकिकता की ओर झुक पड़ती है ।<sup>२</sup> परन्तु पद्मावत के स्वप्न में समासोक्ति का क्या अर्थ है, ऐसा स्पष्ट है कि आलोचक इसे ग्रहण नहीं कर सके हैं ।

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वप्न विभाग—४७२ ।

२ मलिक मुद्गमर भाषणी—पृ० १०२ १०३ ।

हम यह नुस्खा पाते हैं कि आबसी एक भाषा कह रहे हैं । वहाँ यह भाषा ही प्रस्तुत है, और इस प्रस्तुत के माध्यम से ही आध्यात्मिक तत्त्व का बोध कराने का प्रयत्न किया गया है । यह आवश्यक नहीं है कि कवि प्रत्येक स्वयं पर समा-लोचि का स्पष्टीकरण करे । अतः समग्रता से सम्मिश्र होकर हम समस्या पर विचार नहीं कर सकते । डॉ० माता प्रसाद नृत भी कमल कुलभट्ट के मतान ही सोचते हैं, रचना में सम्मोचि बहुत कम आई है, और समालोचिनाँ अवश्य ही अधिक आई है, फिर भी सर्वत्र समालोचि मिलती है । ऐसी बात नहीं, रचना के उत्तरार्ध में बाधार्थ ही अधिक है और पूरी रचना में किसी सम्मोचि या समालोचि मात्रा का निर्वाह करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है । ऊपर डॉ० नृत के इस विचार की चर्चा की गई है । जिसमें उन्होंने उप-संहार वाक्य बंध को प्रशंसित माना है । इस चर्च में यह उल्लेखनीय है कि कवि यह आबसी किञ्चित् न भी हो तो 'पद्मावत' के समालोचि होने में कोई बाधा नहीं पहुँचती । यही बात 'पद्मावत' के उत्तरार्ध में समालोचि के होने की तो उत्तरार्ध में भी इस तत्त्व का संरक्षण सिद्ध है ।

अमावसीय पद्मावती के मन हरण के लिए ब्रह्मा उसे अपने निकट आने की प्रेरणा देने के लिए एक योगिनी को भेजता है । पद्मावती योगिनी से इस योग में ही बोध-आरम्भ का कारण पूछती है । योगिनी अपने विरह का वर्णन करती है—

तब बस तुम्हें जान न जोग । केहि कारण अत कीन्ह बियोग ।  
 कहेहि विरह बुझ जान न कोई । विरहिनि जान विरह केहि होई ।  
 अंत हमार गए परदेसा । तेहि कारण हम ओझिनी मेसा ।  
 काकर भिन्न बोधन को वेहा । को पित गए गए सब सेहा ।  
 फारि पटोर कीन्ह मैं कथा । जहँ पित मिले तेहुँ सो पंथा ।  
 किरा करी नहुँ चक पुकारा । कग परें सो सीत सँभारा ।

हिरदै भीतर पित बसै मिलै न पौछी काहि ।

तुम बसत सब काये पिय दिन दिखौ न जाहि । १०२। ४३९



अर्थात्, वियोग की पीड़ा केवल वियोगिनी ही अनुभव कर सकती है। मेरे प्रिय परवेश गए हैं। अतः मैंने योगिनी का रूप धारण कर लिया है। यदि प्रिय निकट नहीं है तो जीवन व्यर्थ है। मेरे हृदय में निवास करने वाला प्रिय नहीं मिलता है। उसके बिना यह संसार शून्य है। इस अंश में प्रस्तुत है वियोगिनी का वियोग-वर्णन। परन्तु आध्यात्मिक प्रेम और विरह की ओर भी इसमें संकेत है। इस प्रकार के अंश 'पद्मावत' के उत्तरार्ध में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। इन समासोक्तियों का मूल्योक्त 'पद्मावत' की कथा की समष्टि में ही सम्भव है। 'पद्मावत' में राजसेन और पद्मावती की कथा प्रस्तुत है, जो लौकिक है। इस प्रस्तुत में ही अप्रस्तुत की व्यवस्था होती है, अतः पद्मावत समासोक्ति है।

### सूक्ष्म प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ

इस ओर संकेत दिया जा चुका है कि अपभ्रंस चरित काव्यों अथवा प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कवि जब कथा में प्रस्तार देना चाहते हैं। अथवा इसे अभि-  
लापित विद्या की ओर मोड़ देना चाहते हैं तो निश्चित अभिप्रायों अथवा विषय परक विद्वांसों का प्रयोग करते हैं। ये काव्यकार ऐतिहासिक पात्रों का प्रयोग निम्नवरी पात्रों के रूप में करते हैं। इन दृष्टियों से 'लीलावद् कथा' 'करकण्ड चरित' 'सद्य बत्ससर्गसिन्धु' 'पद्मावत' 'मधुमावती' 'मिरजावती' 'मुद्राराक्षस' आदि कृतियों एक सन्दर्भ के अन्तर्गत आती हैं। पुस्तक के आरम्भिक वक्तव्य में उसका उल्लेख किया गया है। श्री हर्षदेव की 'रत्नावली' में विपल द्वीप की पद्मिनी का वर्णन मिलता है। 'लीलावद् कथा' कि नायिका विपल द्वीप की राजकन्या है। 'करकण्ड चरित' में करकण्ड विपल की राजकुमारी रतिवेदा से विवाह करते हैं। आगसी अपने 'पद्मावत' में इसी विपल द्वीप की पद्मिनी की कथा कहते हैं—

विपल द्वीप कथा अब गावों। औ सो पद्मिनी बरनि मुनावों।  
बरनक वरण भौति बिलोना। बहि बस रूप सो रौंसेह देता।  
यनि सो बीप जहूँ बीपक नारी। औ सो पद्मिनी बरनै सबतारी।

पद्मावत २२।१६

१. पारबात्य विद्वानों ने इन्हें 'मोटिक' कहा है। हिन्दी में इन्हें 'कथा परि-  
पान' अथवा 'कथाव्य' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'कथा  
नकद्वि' कहा है।

बावली ने सिवल द्वीप का नाम जोर बोवन से और अपने पूर्व की काब्य कृतियों से प्राप्त किया था । अतः द्वीप की भौगोलिक स्थिति और उसकी ऐतिहासिक संस्थापना का कोई अर्थ नहीं है । सिवल और लंका को हम एक ही मानते हैं । परन्तु बावली के सम्मुख उस सिवल द्वीप की कल्पना भी जो प्रकाश से भिन्न था—

जम्बू द्वीप कहीं उस भाहीं । पुनः न जम्बू द्वीप परिखाहीं ।

‘जम्बू द्वीप’ को मैं उसके समान नहीं कह सकता, लंका द्वीप उसकी परखाहीं के समान भी नहीं है । ‘अधुमाक्षी’ में वर्णित ‘अधुमाक्षर’ भी बावली के सिवल के समान ही समुद्र स्थिति स्थान है ।

‘अधुमाक्षर’ में कावा को विकसित करने के लिए शुक का प्रयोग किया गया है । ‘करकण्ड वरित’ में भी शुक का प्रयोग मिलता है । यह शुक निचापर और विज्ञान है । अधुमाक्षर का शुक भी पश्चिम और जानी है, वह मानवीय बुद्धि से अलंकृत है—वह अपना परिचय देता है—

अब पुनः कवच को बँधी जखमाना । जाति संयुता बेचै जाना ।

पंख होइ सो हाट न चड़ा । नहीं विकार भूमिमा पड़ा ।

दुर मारव देखी एहि हाटा । देख जगजै दहूँ कहि बँटा ।

रोषत रक्त मयल मुख राठा । तन ना पियर कहीं का बाठा ।

इस प्रकार की कवि का प्रयोग प्रेमाक्षयानक काव्यों में निम्न है । संभव की ‘अधुमाक्षी’ में अधुमाक्षी अपनी बाठा के छाप से पत्नी हो जाती है । मान बड़ के राजकुमार के अधिक उसे बाठ में फँसाकर राजकुमार से पाछ के करते हैं । तीन दिनों तक पत्नी और राजकुमार कुछ नहीं खाते हैं इस पर पत्नी प्रसन्न करवा—

मैं पत्नी बिट जीवन बी करि, यह कुछ सिमल बेसाहि ।

तैं तो राजकुमार सुख भोगी, कुछ कहि करण सहाहि ।

‘मैं कही हूँ, बीन जीव जीवन बेकर मैंने यह कुछ मोल किया है, किन्तु तुम तो राजकुमार हो, सुख भोग करने वाले हो, तुम्हारे कुछ का प्रयोजन क्या है ?

तुम तो राजकुमार सुख भोगो । मैं वैरागिनि पंखि बिरोही ।

कोन प्रीति अपनि मोरि जानी । तोनि निवस जाईहि जग पानी ।

पंखि बय जो देखतहु मोय । तो जेत किछु करतेहु सज जोरा ।

रूप राख हरलीन्हा । पंखि कीन्हु करतार ।

बी पुनि जाँगू न जानै, पहुँ का लिखा लिखार ।

राजकुमार प्रसन्न करता है—

बहुरि सप्त रें पुछेसि बाठा । नहु बापनि छठ बाठ निछठा ।

सप्त तेहि बी पुरज रहाही । पसु पंखी के मानस बाही ।

बी भा पंखि रूप निमि तोही । सप्त तेहि फुर भा कुन मोही ।

कौन नाच बी ठाठ कहीं तोर बाघ केहि देस ।

कौने पाप केहि बबरम जहसि पंखि के देस ।

पद्मावती ३६९ । ३१५

इस प्रकार पत्नी-सम्बन्धी कृद्धि और बाठी प्रजाती की कृद्धि का अनुसरण इस कृति में भी मिलता है

समुद्र-यात्रा से सम्बन्धित कथानक कृद्धि का प्रयोग अप्सरास काव्यों के समान प्रेमात्मक काव्यों में भी मिलता है। एवसेन समुद्र-यात्रा करता है। मधु मावती के लिए मनोहर भी समुद्र-यात्रा करता है। बोहित के बूटने से मनोहर अपने साथियों से अलग हो जाता है। 'विजावली' में कुँवर विजावली के साथ अपने देश लौटता है। समुद्र में भयंकर तूफान से इन्हें भी सर्वप करना पड़ता है। बसन्तोत्सव के समय पद्मावती के वर्णन से एवसेन मूर्छित हो जाता है। 'विजावली' में विजावली शिवरात्रि के दिन कुँवर को वर्णन-काय देती है वर्णन से कुँवर मूर्छित हो जाता है।

इस प्रकार परकाय प्रवेश छाप रूप-परिवर्तन आखेट के समय निर्जन वन में नायक का मार्ग भूलना सरोवर पर नायक का किसी सुन्दरी से मिलना प्रिया की होकर कामना पूर्ति का संकल्प—इन कथानक कृद्धियों का प्रयोग किसी न किसी रूप में सूक्ष्म प्रेमात्मक काव्यों में मिलता है।

'पद्मावत' में प्रयुक्त विशिष्ट कथानक कृद्धियों का निर्वेद्य इस प्रकार किया जा सकता है—

[क] विपन्न होप की परमिति ।

[ख] संदिग्ध बाहुक मुक्त ।

[ग] मोक्षा से समुद्र यात्रा ।

[ब] घिब मन्विर में राधा का उपस्था करना । बसन्त के दिन पद्मावती का दर्शन देना । रत्नसेन का मूर्छित होना ।

[क] पार्वती द्वारा रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा ।

[ख] सम्पर्क सेन और योगिनी का संघर्ष ।

[घ] नायक की रत्नसेन के पास पत्नी के माध्यम से संदेश भेजना ।

[च] बितौर मोटते समय रत्नसेन के मूर्छित का उच्छिष्ट होना ।

[ज] रावण भैरव की प्रेरणा से ब्रह्मावती का बितौर पर आक्रमण ।

[झ] नायक की और पद्मावती का रत्नसेन के साथ मिली होना । इन कथा रङ्गियों का प्रयोग नायक ने एक यात्रा के निर्वोध हेतु किया है—

जाति अन्त बस यात्रा अहं सिद्धि भाषा चौपाई कहै ।

### प्रबन्ध कल्पना और महाकाव्यत्व

प्रबन्ध-कल्पना की दृष्टि से सूफी प्रभावशालक काव्यों में प्रायः एक कथा है । इन कथाओं के कवि अपनी सम्पूर्ण नियोजना को तीन भागों में विभाजित करते हैं । आरम्भिक अंश में कवि कथा प्रस्तावना के स्वरूप में नायक और नायिका के मातृ-पिता का परिचय देते हैं । नायक और नायिका के जन्म की कथा कहते हैं । युवा होने पर नायक युव-यवण प्रत्यक्ष-दर्शन स्वप्न-दर्शन, बयबा चित्र दर्शन के माध्यम से नायिका का परिचय प्राप्त करता है । नायक नायिका से प्रेम करने लगता है, और उसकी प्राप्ति हेतु यह-त्याग करता है । द्वितीय अंश में नायक के सम्मुख उपस्थित मार्ग के संघर्ष विवृत मिलते हैं । तृतीय अंश में नायक और नायिका के मिलन के पश्चात्, नायिका के साथ उसके स्वयंसेवक लौटने की कथा वर्णित मिलती है । इन काव्यों में 'पद्यावत' की स्थिति कुछ भिन्न है । इसका मूर्त्यारूप महाकाव्य के रूप में किया जाता है ।

सूफी प्रभावशालक काव्यों विशेषकर 'पद्यावत' के महाकाव्य-स्वरूप पर जब हम विचार करते हैं, तो महाकाव्य की तीन विचारों सम्मुख आती हैं ।

(१) छात्रवीय शैली के महाकाव्य ।

(२) विकसनाशील शैली के महाकाव्य ।

(३) रोमांचक शैली के महाकाव्य ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में तथा 'पद्मावत' के शास्त्रीय निवेदन के सन्दर्भ में यह आग्रह प्रकट किया जाता है कि 'पद्मावत' शास्त्रीय पद्धति का महाकाव्य है। परन्तु यह आग्रह अतिशयता और सीढ़ पर आधारित है। महाकाव्य-सम्बन्धी माध्यमों काव्य-रूपों के परिवर्तन के साथ-साथ परि वर्तित होती रहती हैं। महाकाव्य के शास्त्रीय विधान के सन्दर्भ के प्रथम उच्च काव्यात्मक (माध्य) के अनुसार महाकाव्य में सर्वव्यवस्था अनिवार्य है। पद्मावत में सर्वव्यवस्था का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। यह अपभ्रंश की कड़क छेड़ी का काव्यकर्म है। महाकाव्य की दूसरी माध्यता है कि उसका नायक महान् हो और विजयी हो। 'पद्मावत' का नायक महान् है। परन्तु उसके व्यापारों में युव-जीवन की समीक्षित करने का प्रयास नहीं है और यह विजयी भी नहीं होता है। अन्तर्गत प्रपाठी की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए भाग्य ने कहा है 'अग्राम्यसम्बन्ध न साधकारसम्बन्ध' अर्थात् भाग्य ने महाकाव्य के लिए साम्य चरों के प्रयोग का सन्दर्भ नहीं किया है। साथ ही साथ उन्होंने महाकाव्य में अलंकरण के प्रति एक निश्चित आग्रह-भाव व्यक्त किया है। पद्मावत में साम्य चरों के न होने का कोई प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता क्योंकि 'पद्मावत' संस्कृत का काव्य नहीं है। साथ ही साथ इसमें अलंकरण के प्रयास भी नहीं मिलते हैं। जीवन के विविध रूपों और अवस्थाओं के चित्रण के प्रति भी इसमें व्यापक आग्रह नहीं मिलता है। नाटकीय कार्य अवस्थाओं और क्षणिकों के निमो जन के प्रयास भी यहाँ नहीं मिलते हैं। संपत्ति कमाने और प्रमाण की अनिवार्य इसमें अवश्य मिलती है।

इस प्रकार महाकाव्य में कथा की सर्वव्यवस्था और अन्तर्गत नाटकीय तत्वों के प्रति आग्रह की प्रेरणा प्रकट तथा उनके परचात् बनी रही। कथा के सम्बन्ध में उत्साह अनुत्साह रूपों के प्रति आग्रह व्यक्त किया गया और जीवन की समग्रता के समीकरण की अनिवार्य व्यवस्था बनाया। संस्कृत वर्णन, प्रकृति चित्रण, नगर और देश वर्णन प्रतिनायक और अन्तर्गत कुछ का वर्णन, नायक की विजय अनिवार्य तरह माने गए। महाकाव्य का कोई महसूस ही, अनुर्वर्त फल की शक्ति और समग्र रसों का समावेश का उन्में उपलब्ध हो। हेमचन्द्र ने काव्यानुपासम् में इस प्रकार की प्रस्तावना की है—

‘वयं’ प्रायः संस्कृत साहित्यग्रंथों ग्राम्यभाषा निबद्ध मिश्रभाषावृत्तसमावेशात् संव्यवस्थान्तरक बन्धे सत्त्वैविद्याद्वार्य वैविध्योपेतं महाकाव्यम् काव्यनुसारत आठमो मध्यायः । इस प्रकार हैमर्षद्व ने प्राकृत और अपभ्रंश महाकाव्यों का भी उल्लेख किया है । संस्कृत में सर्वव्याप्य साहित्य में आदशात्मक कव्य, अपभ्रंश में सन्धि-कव्य और ग्राम्य अपभ्रंश में अवसक्तकव्य बन्ध महाकाव्य होते हैं ।

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्य-सम्बन्धी भाव्यताओं के अनुसार ‘पद्मावत’ की विवेचना नहीं हो सकती । जहाँ तक सौर्भक्षता का सम्बन्ध है, इसके प्रति आग्रह शीघ्र होना बुराग्रह माना होगा । ‘पद्मावत’ की कथा मुख्यतः एक प्रेम-कथा है जिसमें कवि आध्यात्मिक सम्बन्धों का समावेश करता है । यह कथा लोक कथाओं के आधार पर लिखित है । ‘पद्मावत’ का कथानक सानुकूल और प्रवाह पूर्वक है । परन्तु सानुकूल और प्रवाहपूर्ण हो जाना से ही कोई कृति आत्मीय महाकाव्य-परम्परा की कृति नहीं हो जाती । कवि जब कथा के माध्यम से अपने व्यक्तित्व की ओर लक्षित होता है, तो रचना-समय की दृष्टि से उसे कथा संगठन और उसकी सत्यात्मकता का संरक्षण करना ही पड़ता है । आचार्यों ने परम्परा के अनुसार ‘पद्मावत’ में आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं के भी वर्णन किए हैं उदाहरण स्वरूप मगधति कथा या ‘ब्राह्मण कथा’ । इस दृष्टि से ‘पद्मावत’ की समग्र अवान्तर कथाओं की प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत मानना चाहिए । परन्तु ‘पद्मावत’ में प्रासंगिक कथाएँ नहीं हैं । प्रत्येक उपकथा का सामान्य सम्बन्ध रहस्य से है । कथा की प्रति प्रदान करने के लिए अनेक कथाओं का प्रयोग इस दृष्टि से विचारणीय है । इसके विपरीत ‘पद्मावत’ की सम्पूर्ण कथा व्यवस्था चार भागों में पूर्ण होती है । ‘पद्मावती के मुण्ड-वध’ में रहस्य प्रकट कर सिद्ध की जाया करता है । यह प्रथम भाग माना हो सकता है । समुद्र की राजा के परचाएँ वह सिद्ध हो जाती है और पद्मावती से विवाह करता है, वह कथा का द्वितीय भाग माना हो सकता है । रहस्य विस्तार होता है । वह तृतीय भाग है । रहस्य सत्यकेतन को निर्वाचित करता है । बलवर्धन के माकन्य और पद्मावती तथा नागवती के लीने हो जाने का सम्पर्क कथा का चतुर्थ भाग है । कथा के इन स्पष्ट भागों के कारण भी कहा गया है कि ‘पद्मावत’ में प्रासंगिक महाकाव्यों के लिए अनौचित्य बन्ध आचार्यों की

सन्धियों के नियोजन की स्पष्ट योजना उपलब्ध होती है। कार्य अवस्थाओं के अन्तर्गत रत्नसेन के पद्मावती के पुन अवलोकन एक के अर्थ में आरम्भ नामक कार्य अवस्था की स्थिति बतकाई गई है। रत्नसेन समुद्र यात्रा के पश्चात् सिंहल द्वीप पहुँचता है। इस अर्थ में प्रयत्न नामक कार्य अवस्था की प्रतिष्ठापना मिलती है। वसन्त के अनुसार पर पद्मावती और रत्नसेन के मिलन से प्राप्ताशा की सम्भावना बनती है। नायक मूर्च्छित होता है और फिर पद्मवती के अवरोधों से निवृत्तापि नामक कार्य अवस्था की सम्भावना निर्मित होती है। इसके पश्चात् रत्नसेन और पद्मावती के मिलन में फलागम की स्थिति मानी जाती है। इन्हीं कार्य अवस्थाओं में पंच सन्धियों का भी नियोजन स्वीकार किया गया है। परन्तु कथा यही समाप्त नहीं हो जाती। कथा इसके आगे भी प्रसरित है। इस समस्या के निदान की चेष्टा की गई है। पद्मावत में दो कथायें हैं। पहली कथा में नायक का अस्व पद्मावती को प्राप्त करता है और इसमें प्रारम्भ प्रयत्न प्राप्ताशा निवृत्तापि और फलागम नामक कार्य अवस्थायें एवं मुख्य प्रतिमुख आदि सन्धियाँ मिलती हैं। उत्तरार्ध की कथा को हम कार्य अवस्थाओं और सन्धियों की दृष्टि से विधिक पाते हैं।

इन समस्त प्रस्तावनाओं में हम एक सत्य को ब्रूत करते हैं कि 'पद्मावत' समासोक्तिमूढक काव्य है। इसमें बाध्यार्थ प्रस्तुत है व्यर्थार्थ अप्रस्तुत। बाध्यार्थ की दृष्टि से कथा की पूर्णता रत्नसेन की मृत्यु और बलाढ्यता की विजय तथा 'पद्मावती और नागवती के सती होने पर होती है। व्यर्थार्थ की दृष्टि से भी विचार करना अपेक्षित है। रत्नसेन और नागवती के प्रेम में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। प्रथम बार वसन्तीत्यय के अनुसार पर, फिर बितौर बड़ के निष्ठ प्रस्थान करते समय समुद्र में नौका के लक्षित होने पर। रत्नसेन दुनियों के बन्धे (नागवती) के परिव्यास के पश्चात् ही पद्मावती की ओर अग्रसार होता है। दुनियों यन्त्रा (नागवती) के सम्पर्क में आकर पुन पद्मावती से वंचित होता है। बलाढ्यता माया है। सायक और साध्य के मध्य माया है। रत्नसेन उस तन्त्र (पद्मावती) की प्राप्ति हेतु पुन प्रयास करता है। इस प्रयास में वह अन्तिम मरण की उपलब्धि करता है। यही उसका सम्पूर्ण शीतल मरण होता है। कथा के इस मर्म में कवि के सम्मुख बाध्यार्थ और

संसार्य, इन दोनों के निर्वाह की समस्या थी। रत्नसेन के साथ पद्मावती और मायमती दोनों लड़ी होती हैं। पद्मावती अपनी परम उपलब्धि के साथ शास्त्र बन जाती है, दुनिया के बह के इन में मायमती भी नरवर है। अन्तर्द्वीप यह जाता है। उसकी उपलब्धि का उन्मेष कवि इस रूप में करता है—

बोह बहगवन यह जगतार्थ। पाठसाहि यह छेका मर्द।  
 तब लवि सो बीमार होइ बीता। यण मनोप राम भी सीता।  
 भाइ साहि सब सुना बखारा। होइ या रास देवन जो बारा।  
 छार उठार लीहि एक मूठी। पीन्ही उड़ा विरिपनी मूठो।  
 बौ लवि ऊपर छार न परई। तब लवि नाहि जो तिला मरई।

पद्यावत—१२१२११।

बाबनी ने कथा निमोजन में कल्पना और इतिहास का सम्मेलन किया है। इस प्रकार उनकी कथा मिश्र है। परन्तु इन निर्माण में उनकी दृष्टि क्या है पान्थीय विचार की ओर रही है इसमें सन्देह है।

महाकाव्य की दूसरी परम्परा विक्रमशील है जिसकी चर्चा 'पुष्पीराज रातो' के उत्तर में हो चुकी है। इससे पन्नातु रोमांचक रीति के महाकाव्यों का उत्प्रेक्ष किया जाता है। इस प्रकार के महाकाव्य एक कवि की रचना होते हैं और इनमें विक्रमशील महाकाव्यों के युगों का भी पर्याप्त सम्बन्ध रहता है। इस प्रकार के काव्य अथवा साहित्य में उत्पन्न होते हैं। अब इन महाकाव्यों की विस्मयिनी साक्षीय महाकाव्य से किन्तु प्रकार की है। 'महिसयल कहा' (बन पाक), 'सुरेसच चरित' (मयनमि) 'वितासल कहा' (साधारण कवि) 'करकण्ड चरित' (कनकाधर) इस उत्तर में की विविष्ट कृतियाँ हैं। इनकी विस्मयिनी एक प्रकार की है। इनमें साहित्यिकता और बर्णन का सम्बन्ध मिलता है। 'करकण्ड चरित' या 'महिसयल कहा' और 'वयावत' तथा अन्य सुखी रोमाञ्चनामक काव्यों में एक निश्चित प्रकार की समानता मिलती है। 'महिसयल कहा' में जिन की कथना के पन्नातु कवि अपनी विनम्रता का प्रकाशन करता है। सम्बन्ध प्रसन्नता और दुर्जन प्रिया करता है। फिर कुछ बेगन देग और यमपुर नगर का वर्णन करता है। मुराक नामक राजा और यमनाक नामक राज बेटी के वर्णन से कथा का प्रारम्भ होता है। पूर्य मंद रोमाञ्चक छरों और निम्नवरी कथाओं से परिपूर्ण



है। मात्रा और अति प्राकृतिक वर्णनों से यह अंध पूर्ण है। उत्तरार्ध में मुठों का वर्णन है। रोमांचक तत्वों के साथ अन्य कथानक कथियों के प्रयोग इस भी रचना में मिलते हैं। इस सन्दर्भ की अन्य रचना 'करकण्ड चरित' को धीरे-धीरे। इसके प्रथम कड़वक में बिन पद्मना तथा सरस्वती बन्धना है, सज्जन प्रार्थना बुर्जन निन्दा कवि की निनम्रता प्रकाशन तथा पूर्व कवि-स्मरण है। इसके पश्चात् कथा आरम्भ होती है। कवि अंग देव का वर्णन करता है। चम्पामगरी का वर्णन करता है और करकण्ड और मदनान्धकी के विवाह की कथा कवि कहता है। विद्याधर मदनान्धकी का हरण करता है। करकण्ड सिंहल की यात्रा करते हैं। सिंहल की राजकन्या रतिवेगा से विवाह करते हैं। अन्त में करकण्ड संसार त्याग कर मुनि हो जाते हैं। 'पद्मावत' तथा अन्य सुफी प्रेमाख्यानक काव्यों के रचना-रत्न का उत्कृष्ट उल्लेख हो चुका है। इन दोनों विवाहों में विस्म की दृष्टि से अन्तर नहीं है। इन दोनों विवाहों में धर्म-कथा रोमांचक कथा और काव्य, इन तीनों तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है। इन प्रकार 'पद्मावत' 'मधुमावती' तथा अन्य सुफी प्रेमाख्यानक काव्यों के महाकाव्यत्व का निर्वीर्य अपभ्रंश महाकाव्यों के रचना-रत्न और भाव संवेदना के आधार पर ही अपेक्षित है। अनुबर्ण फल प्राप्ति के अन्तर्गत इसमें काम और मोक्ष के प्रति आग्रह मिलता है। अपभ्रंश के बिन काव्यों का वर्णन किया गया है उनमें फल-प्राप्ति के मुख के पश्चात् जागृत की गहरता के सत्य के उद्घाटन ॥१॥ किसी सबसे कठना की व्यवस्था मिलती है। 'पद्मावत' के बाष्पार्च का उद्देश्य तीन काव्यों से मिल नहीं लगता है—

कहाँ सो रतन डेलि असराबा । कहीं सुना अति बुनि उपराबा ।  
 कहीं बकाळील गुल्लानु । कहीं राणी बेई कीन्ह बखानु ।  
 कहीं सुख पद्मावति रानी । कीह न रहा बन रही कहानी ।  
 घलि सो पुरुष बस कीरति बासु । फूल मरै पै मरै न बासु ।  
 कैई न जगत जल बेबा, कैई न भीन बस मोल ।  
 जो यह पढ़ै कहानी, हम सेबरे बुद मोल ।

आलोचना के आधुनिक स्वरूप के अनुसार महाकाव्य ॥ कठिनय सामान्य लक्ष्य है। निम्नलिखित समावेश सर्वप्रथम और सर्वप्रथम के महाकाव्यों में उपलब्ध होता है। वे इस प्रकार हैं<sup>१</sup>।

(१) महद्गुरु महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रविधा ।

(२) युक्त, साम्प्रिय और महत्त्व ।

(३) महत्कार्य और युव-जीवन का समग्र चित्र ।

(४) सुसंबद्ध और जीवन्त कथामय ।

(५) महत्त्वपूर्ण नायक ।

(६) परिणामहीन सदातः खोली ।

(७) ठीक प्रभावप्रतिष्ठा और नम्र और रज्य जीवन ।

'सुमावत' तथा अन्य सूची आध्यात्मिक काव्यों का महद्गुरुत्व क्या हो सकता है, यह एक प्रश्न प्रस्तुत है। 'सुमावत' का अर्थ प्रेम-कहानी कहना है, और सूची जीवन का प्रतिपादन करना है तथा काम और मोक्ष-प्राप्ति के साधनों की प्रस्तावना करना है। ये एक अपने आप में मिलते नहीं हैं यह विचारणीय प्रश्न है। इस ओर ध्यान करते हुये आचार्य युक्त ने कहा है, 'अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का युक्त मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवन-व्यथाओं की सामने रखा जिसका अनुभव मात्र के रूप पर एक सामान्य प्रभाव दिखाता है। इन्होंने मुक्त होकर हिन्दुओं को कहानियों हिन्दुओं की ही बोली में पुरी सहजता से कहकर उनके जीवन की सर्वप्रधानी अवस्थाओं के साथ अपने सदातः प्रेम का पूर्ण सामंजस्य दिखाया। कबीर ने जिसका जितना प्रतीत होती हुई परेश सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का आभास नहीं मिला था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का हस्त सामने रखने की आवश्यकता बनी रही। यह बायबी द्वारा पूरी हुई।' परन्तु इन सत्ता के अतिरिक्त बायबी का 'महावत' एक ब्रेट कविता (A Great Poetry) है। यह विचारों की अनेकता मात्र मात्रों का काव्य है। प्रेम एक मात्र है। जीवन का एक नैतिक स्वभाव है। बायबी प्रेम सत्ता के वाक्य है। प्रेम-स्वरूप को कवि ने आध्यात्मिक काव्य के आकार की निरालता में व्यक्त किया है। और यह लोक जीवन के निकट का काव्य है। इस सत्ता के कारण ही इसकी कविता सुरक्षित रखी। प्रेम मार्ग में 'काव्य' के प्रति कवि विचार आत्मा मात्र व्यक्त करता है—

मुझपर भिन्नपी अर्थ की मुनि यहि सबन डेहाइ ।

बलि मिली की बलि दिया जहँ अस बागि समाह ॥२०२॥

परन्तु काम की साधना को कवि योग साधना में सम्मिलित मानता है—पंच पयनों को बाँबनेबासा योगी सही होता है, उसी प्रकार पंच बाबों को बाँबनेबासी कामिनी सही होती है—

बोवन तुरें हाथ गहि लीखै जहाँ बाइ तहें बाइ न लीखै ।

× × × ×

कहेसि पेम बौ उपना बारी । बौनु सत फल डोछ न मारी ।

× × ×

सती बौ करे पेम मिय छागी । बौ सत हिऐं सतिछ बानी ।

× × × ×

पवन बंध होइ जोगी बती । काम बंध सोइ कामिनी सती ।

‘पद्यामृत’ भाव-सौन्दर्य और भाव चेतना का काव्य है। अनुभूतियों का वैविध्य इसका विशेष सौन्दर्य है। प्रेम के अनेक सम्प्रेषपूर्ण बिन्दु इस काव्य में मिलोन्वित हैं। इस सन्दर्भ में शृङ्गार के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों की चर्चा की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त जीवन के व्यापक सन्दर्भ में उपलब्ध होनेवाले कल्प वास्तव्य और-आदि रसों का उद्भावन कवि ने नैसर्गिक रूप में किया है। कल्प रस के सन्दर्भ के दो स्थलों को यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—रत्नसेन योकी होकर सिपल के लिए प्रस्थान कर रहा है। नाममती रो रही है रत्नसेन का रतिवास रो रहा है—

रोवे नाममती रतिवासु । केइ तुम्ह कन्त बाब बन बासु ।

बब को हमहि करिहि भागिनी । हमहुँ साब होइब जोगिनी ।

कै हम काबहु अपने साया । कै अब मारि बबहु सैं हाया ।

× × × ×

मनेहि पनुमिनी रूप अमृता । हमते कोइ न मानरि क्या । १३१ ।

इस प्रकार का एक दूसरा सन्दर्भ है। रत्नसेन सिपल से बिछोर गढ़ के सिंग प्रस्थान कर रहा है। इस सन्दर्भ में विदा होते समय पद्यामती प्रियत्रनों के वियोग की व्यापा से रो सटती है। सखियों से माछा पिछा और भाई से बह बिदा होती है। कल्प सन्दर्भ का अति नैसर्गिक वर्णन वरि प्रस्तुत करता है—

रोबहि मातु पिता औ भाई । कोइ न टेक जौ कन बसाई ।

रोवे सब मेहर सिपला । से बजाइ के राजा बसा ।

छिरी सबी भेंटत तबि नीरा । भंत बंत सो मएत किरीरा ।

कोउ काहूँ कर नाहिँ निमाना । माया मोहूँ बीबा अदकाना ।

पद्यावत ३२७।३८४।

पद्यावत में बीर रस के सम्बन्ध सिमल पत्र के आकृषण और अल्लाहों के युद्ध के प्रवेश में है । इन प्रवेशों में बीर भावना का बलि उड़ीत रूप देखने का मिश्रण है । बीरा के युद्ध का एक अंग यही प्रस्तुत है—

धीरे रैस साव सब जूझा । जावन काल निगर भा बूझा ।

कोनि सिव सामुंह रन मैला । लाबन्ह सौं गहि मुरे बकेला ।

बई हौकि हस्तिन्ह की उटा । बैसेँ सिव बिडारी पग ।

बहिँ सिर देह कोनि कर वाक । सिई पोड़ा टूटे असवाक ।

×

×

×

×

बेति कायु सेंदुर छिरिबाब । बौचरि बेति भावि रन हाबे ।

हस्ती घोर आह बो बूका । उठै देह तिन्ह बहिर भयूका ।

पद्यावत ३३३।३३६।

पद्यावत के महाकाव्यत्व की ओर संकेत करते हुए आचार्य शुक्ल का यह निष्कर्ष है कि इस कृति का महत्त्व कार्य है पद्यावती का सती होना । परन्तु इसे हम एक दूसरे प्रकार से कह सकते हैं । पद्यावती की प्राप्ति हेतु रत्नसेन का बलिदान हो जाना ही इसका महत्त्व है । और अन्वयार्थ में माया से मुक्त होकर पद्यावती के साथ धरमरक्षा की स्थिति में जा जाना ही रत्नसेन की क्रियाओं का अन्वय है । इन कर्म के प्रतिपादन के लिये कवि ने भारतीय इतिहास की एक विचित्र तथा मधुर पन्था का आचार ग्रहण किया है । आचार्य शुक्ल ने इसके महत्त्व कार्य और ज्ञेय के सम्बन्ध में बिचार करते हुए यह कहा है कि अनुभावत एक प्रेम पावा मान है, अविम माया नहीं । 'वाम्नाय के अतिरिक्त मनुष्य की ओर भी प्रतिपादित ब्रह्म विस्तार के साथ समावेश है युद्ध सम्पत्ती कष्ट, मातृ स्नेह, स्वामिमति, बाधा क्लेशता, एक मीर सन्तोष है पर इनके होते हुए भी पद्यावत को हम मृगार प्रभाव काव्य ही कह सकते हैं । 'रामचरित' के समान मनुष्य जीवन की किन्न किन्न बहुल-सी परिस्थितियों और सम्बन्धों का स्वयं समन्वय नहीं है । (पद्यावती प्रत्यावली मूद्रिका—पृ० ३३ ३३ ।) शुभचर्चा

परन्तु काम की साधना को कबि योग साधना के समकक्ष मानता है—पंथ पवनो को बाँधनेवाला थोमी सती होता है, उसी प्रकार पंथ बाणों को बाँधनेवाली कामिनी सती होती है—

बोवन घुरे हाव नहि सीमे बहाँ बाइ तहँ बाइ न सीमे ।

× × × ×

कहेसि येम जी उपना बारी । बाँधु सत मन बोल न भारी ।

× × × ×

सती जी बरै येम निय छाबी । जी सत हिउँ छीतक जाबी ।

× × × ×

पवन बंध होइ जोबी जती । काम बंध सोइ कामिनी सती ।

‘पद्यावती’ भाव-सौन्दर्य और भाव चेतना का काव्य है । अनुभूतिमय का वैविध्य इसका विशेष सौन्दर्य है । प्रेम के अनेक अस्मैपपूर्ण बिन्दु इस काव्य में निमोदित हैं । इस सन्दर्भ में शृङ्गार के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों की बर्णना की जा चुकी है । इसके अतिरिक्त बीजल के व्यापक सन्दर्भ में उपलब्ध होनेवाले कव्य वास्तव्य और-आदि रसों का अनुभाव कवि ने नैसर्गिक रूप में किया है । कव्य रस के सन्दर्भ के दो स्वभावों को यहाँ उदाहरण स्वल्प प्रस्तुत किया जा रहा है—रक्तस्य योमी होकर सिक्क के लिए प्रस्थान कर रहा है । नागमती रो रही है रक्तस्य का रनिवास रो रहा है—

रोवे नागमती रनिवास । कैइ तुम्ह कल बज बन बानु ।

बज को हमहि करिहि नागिनी । हमहुँ साव होइव बोगिनी ।

कै हम लागहु अपने साथी । कै अब मारि जगहु से हाथी ।

× × × ×

भलेहि पनुमिनी रूप अनूपा । हमते कोइ न जापरि क्या । १११ ।

इस प्रकार का एक दूसरा सन्दर्भ है । रक्तस्य सिक्क से बितोर मढ़ के लिए प्रस्थान कर रहता है । इस सन्दर्भ में बिदा होते समय पद्यावती प्रियवनों के वियोग की व्यापा से रो पड़ती है । सखियों से माता पिता और भाई से बह बिदा होती है । कव्य सन्दर्भ का अति नैसर्गिक वर्णन कवि प्रशुभ करता है—

रोबाई मातु पिता जी भाई । कोइ न टेक जी कर्त क्याई ।

रोवै सब गेहर सिपला । छै बजाइ के राजा जला ।



के इस बलव्य का अध्ययन करते हुए डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने यह कहा है कि यह कवय 'पद्मावत' के पूर्वांश तक के लिए ही सत्य है। इनकी यह चारणा है उत्तरार्ध में आने वाली परिस्थिति सम्बन्ध वैशिष्ट्य में 'रामचरित मानस' से कम नहीं है। इस प्रकार इन विशेष दृष्टिकोण के अनुसार 'पद्मावत' को वे राम चरित मानस के समकक्ष की रचना मानते हैं। अपने कथन के निष्कर्ष रूप में वे कहते हैं कि 'मानस' और 'पद्मावत', दोनों ही जीवन-भाषाएँ हैं एक सक्ति प्रधान जीवन-भाषा है, दूसरी प्रेम-ग्रधान।<sup>१</sup>

'पद्मावत' के रचनाकाल और भाव परिवेश में कवि जामसी की महती प्रतिभा का परिचय मिलता है। वस्तु-वर्णन और भाव निवेदन के माध्यम से कवि मानव की रागात्मिका वृत्तियों का उद्घाटन करता है।<sup>२</sup> प्रेम असाह, वैराग्य शोक, कल्या भक्ति आदि स्थायी भावों की व्यंजना से कवि 'पद्मावत' को जीवन-काव्य की गरिमा से नञ्जित करता है। 'पद्मावत' में ससक्त प्राक्वृत्ता है। कवि की विराट कल्पना में यह प्रेमभाषा जीवन भाषा के रूप में प्रस्तुति हुई है। यही कवि-प्रतिभा की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

### रहस्यवादा

जामसी तथा अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के कवियों ने परमात्मा को प्रियतम रूप में देखा है। जगत् के समस्त व्यापारों में वे सत् प्रियतम के रूप और उसके माधुर्य तथा उसकी छाया को देखते हैं। प्रकृति के समस्त गूढ मार और बँसव को पुरुष के समान की विकसिता का प्रतिरूप भी वे मानते हैं। वे भावनाएँ 'पद्मावत' में अधिक प्रबल रूप में व्यक्त मिलती हैं<sup>३</sup>। जामसी में प्रकृति मूलक रहस्यवाद मिलता है। प्राकृतिक-सौन्दर्य के द्वारा अहम् से इहम के सम्बन्ध स्थापन की भावना इस रहस्यवादी भावना की मुख्य अनुभावना है। प्रकृति के समस्त उत्तम परम सत्ता की प्रेरणा से नतिपाल हैं रूप-सौन्दर्य पारम्य करते हैं। इहम जगत् उसकी शर्मना है—

१—वैशिष्ट्य-पद्मावत भूमिका पृष्ठ ४६ २०।

२—वैशिष्ट्य-जामसी ग्रन्थावली की भूमिका-पृ० १९२ १९३।

साय साजि है बरती साजी । नल-नल सृष्टि उपगजी ।

साजे चौह मुख बी चारा । साजे बन कह समुद्र पहाग ।

बिपरेखा । पृष्ठ ६६ ।

सृष्टि के कल-कल में परम तत्व का प्रतिबिम्ब है । उग्र शक्ति के साधनात्मक स्थापित करने की भावना से ही हय बिन्दु की अनुभूति से कीर्ति है । नल बीजन प्रेम की कहानी के माध्यम से इसी आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना मुसी प्रेमास्पानक काव्यों में हुई है । बायसी न प्रकृति के माध्यम से प्रवेश सत्ता की ओर संकेत किया है । सिद्ध द्वीप की मुक्त छाया में आध्यात्मिक मुक्त की व्यञ्जना की गई है—

नल नलराठ कामु नहुँवासा । उठा भूमि हय कानि ब्रकासा ।

उमिरा सवे मलय मिरि काई । थड कम छाँह रैमि होइ काई ।

मलय सगीर छोहावन छाहीं । बेट काह साने तेहि भाहीं ।

×

×

×

×

पक्षि को नहुँवे तहि लै जानू । बुझ बिपरे मुख होइ बिसगामू ।

बेइ कह पाई छाँह बनूपा । किरि नहि बार नई यह भूपा ।

प्रकृति मानवीय चेतना के रूप में उस परम तत्व की सामना में ही स्थित है । नल शरीर-वर्त्म में कलि बायसी प्रकृति चेतना के इसी स्वरूप का अनुवादन करते हैं । अनुमावती विराट शक्ति है । शरीर का साधक-मन उसके रूप वर्त्म और संस्पर्श से मुक्त है—

कलवर रूप निनीहा छिरे छिरीर करेइ ।

भाव कुनइ मनु पावौ तेहि मिनु क्यूरै देइ । १६१।२३।

शरीर पदमावती के जग स्पर्श से निर्मल हो गया ।

कहा मानसर बाह लो पाई । पारत रूप इहो कानि काई ।

भा निरपक सिन्धु वावन परते । नाना रूप-रूप के बरते ।

मलय-सगीर बाह लन काई । भा सीतल वी तपनि बुम्भई ।

साधनात्मक रहस्यवाद के बौद्धिक पक्ष में प्रेम की भाव-संवेचना के योग से हरी के सुखी कवियों ने रहस्यवादी धारणा को रसात्मक रूप दिया है । इनकी कलाओं में रूप के प्रति प्रकृत आसक्ति भिन्नो है । सुखियों ने रूप-आसक्ति का



संकेत किया है। जायसी तथा अन्य कवियों में पद्मावती या धन्या नायिकाओं में रूप के वर्णन की पृष्ठि भूमि में यही तरह विद्यमान है।

अपनी रहस्य-साधना के लिए इन कवियों ने प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। पद्मावती मागमती रत्नसेन इत्यादि से सम्बन्धित प्रतीकों की जहाँ पीछे की जा चुकी है। मित्र नाथ और सप्त साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों का प्रयोग भी यहाँ मिलता है। 'पद्मावती' को सोलह कछावों से परिपूर्ण 'चन्द्रमा' की संज्ञा भी जायसी ने दी है। पद्मावती सूर्य भी हैं। जिसके स्पर्श से रत्नसेन स्वयं सूर्य और चन्द्रमा हो जाता है—

अब हौं सुवज चौद बहू छाया। अब बिनु मीन रह्य बिनु काया।

क्रिगि कराय भा प्रेम बैकुण्ठ। जो सखि सरय मिथौ होइ सुरू।

सूर्य और चन्द्रमा के इस सम्बन्ध की मूल प्रेरणा की जहाँ पीछे हो चुकी है। उस सम्बन्ध का प्रतिपादन भी इस रहस्यवाद में मिलता है। गंगा यमुना इका विपला आदि से सम्बन्धित प्रतीकों का प्रयोग भी इस सम्बन्ध में हुआ है।

भूर छाँह दुइ पियके रंभा। भूनी मिली रह्य एक संग।

तुम्ह रंगी जमुना दुइ नारी। छिप्ता मुहम्मद बोम।

रत्नसेन और पद्मावती के मिलन के मध्य कवि सूर्य और चन्द्रमा के सम स्वरूप के सिद्धान्त का स्थापन करवा है। यह समरसता की स्मिति है।

### कृष्ण भक्ति तथा काव्य का स्वल्प विश्लेषण

उत्तर भारत में ज्ञान-मार्ग, योग-मार्ग और भक्ति-मार्ग की धारामें स्वतन्त्र रूप में प्रवाहित होती रही हैं और समय-समय पर वे एक दूसरे को संस्पर्शित और प्रभावित भी करती रहो हैं। परन्तु इस प्रकार की भावना बिस्वास या चुकी है कि उत्तर भारत में भक्ति की धारा दक्षिण भारत से प्रवाहित हुई है। वास्तविकता ऐसी नहीं है। उत्तर भारत में मागध धर्म के रूप में भक्ति का अस्तित्व अति प्राचीन काल से ही मिलता है। परन्तु काल-क्रम से यह धारा अति नीच हो चुकी थी और उत्तर भारत की अपेक्षा इसका प्रसार दक्षिण भारत में अति व्यापक रूप में हुआ। आइए भक्तों के सामिल पीठों से यह स्पष्ट होता कि दक्षिण में ईसा की चौथी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक मागध भक्ति का प्राचाल्य रहा। दक्षिण भारत के आचार्य मुक्त, श्री रामानुजाचार्य श्री विष्णु स्वामी, श्री निम्बाकर्णधार्य और श्री मध्वाचार्य ने आइए भक्तों से बेधव भक्ति की प्रेरणा प्राप्त की और इन्होंने मागध भक्ति को उत्तर भारत में पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया। आइए भक्तों के गीत प्रबन्धों और 'कृष्णसूत्र' ग्रन्थों से भी इन्होंने प्रेरणा ग्रहण की।

इन आचार्यों ने शंकराचार्य के मामावाद का खण्डन किया और तब बगव की उत्पत्ति की स्थापना की। ब्रह्म के सगुण रूप के प्रति इनमें आग्रह मिलता है। विष्णु के निम्न निम्न अवतारों में केवल राम और कृष्ण तथा उनकी शक्तियों के रूप में सीता और राधा के प्रति ही इनमें आस्था और विश्वास के भाव मिलते हैं। श्री और ब्रह्म की उत्पत्ति-स्थापना के सम्बन्ध में इन आचार्यों ने विधिष्ठादित पुराणों ईताईत और अचिन्त्य भेदा-भेद के सिद्धांतों की स्थापना की। वेद पुराण संहिता उपनिषद् ब्राह्मण ब्रह्म-सूत्र और मागध पुराण के प्रमुख ग्रंथों का भी इन्होंने समन्वय किया। साथ ही साथ इतिहास और ओर विज्ञानों से भी वे प्रभावित होते रहे। वास्वीकिरामायण अध्यात्मरामायण, हरिवंश पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि पर निम्ने कवे मायों से

भी वे प्रभावित थे। नारद भक्ति सूत्र द्वाण्डित्य भक्ति सूत्र तथा नारायणीयोपाख्यान भी वैष्णव भक्ति आन्दोलन में विशेष सहयोगी रहे हैं।

बैदिक द्वाण्डित्य में कर्म ज्ञान और उपासना की ओर यन्-तन् संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग सिध्द भिन्न अर्थों में हुआ है। वहाँ विष्णु के लिए 'मृतस्य यर्मम्' का भी प्रयोग किया गया है। विश्व-मर्मों में विष्णु का वर्णन लोक रणर के रण में हुआ है। इस प्रकार वैष्णव भक्ति का आदि स्रोत वैदिक द्वाण्डित्य माना जाता है। वैष्णव भक्ति में नवधा भक्ति की कल्पना की गई है। इस प्रकार की भारवा व्यक्त मिलती है कि नवधा भक्ति का ऐतिहासिक उत्पत्ति ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों में मिलता है। उदाहरण—

यवय—या नातयस्य महतो महि क्वसोदु दुवीमिर्मुष्य चिरम्यस्य ।

ऋग्वेद १ १२९ २।

कीर्तन—विष्णोर्मु कं बीमोभि प्र बोधं यं पाणिबानि भिमये रजसि ।

ऋग्वेद १ १२ १ १।

स्मरण—प्रविष्णवे नृपमेतु मम विरिञ्चि उरुपायाय हृष्ये ।

ऋग्वेद १ १ १५४ ३।

ऋग्वेद में इन्द्र भक्तिके प्रधानरूप हैं। परन्तु वह भी स्पष्ट प्रकट होता है कि इन्द्र की प्रधानता के स्थान पर विष्णु की क्रमशः प्रधानता मिलने लगी थी। और विष्णु के प्रति इस प्रकार की भावना का विकास होता है कि जो समस्त ब्रह्माण्ड वषट् को व्याप्त करता है, वह विष्णु है। वैष्णव कर्म में विष्णु के लिए नारायण शब्द का भी प्रयोग होता है। ऋग्वेद में सृष्टि-रचना के सन्दर्भ में नारायण का प्रयोग मिलता है। 'महामारुत' में विष्णु के लिये नारायण का प्रयोग किया गया है। समुद्र-मन्थन में नारायण की प्रेरणा का उल्लेख मिलता है। द्वाण्डित्य भक्ति में विष्णु और नारायण के पर्याय नामों का उल्लेख मिलता है। महामारुत के शान्ति पर्व के अठारह अध्यायों में और मीमांसा पर्व में वर्णित नारायणीयोपाख्यान में वायुदेव-उपासना मिलती है। शान्ति पर्व में विष्णु और वायुदेव में अन्तर नहीं माना गया है।

परन्तु वैष्णव भक्ति या द्वाण्डित्य भक्ति का वास्तविक सम्बन्ध इन मंत्रों में स्थापित नहीं हो पाता है। वैदिक भक्ति का स्पष्ट सम्बन्ध पुराणों में ही स्थापित हो

पाता है। कृष्ण के जिस माधुर्य स्वरूप के दर्शन हम भारतीय साहित्य में करते हैं उसका आदि रूप हम पुराणों में ही देख पाते हैं। महाभारत में कृष्ण के ऐश्वर्य पूर्ण रूप को ही हम देखते हैं। महाभारत का ऐश्वर्यपूर्ण रूप पुराणों में माधुर्य में परिवर्तित हो उठता है। नवना मक्ति के जिस स्वरूप का विकास हम परवर्तीकाल में देखते हैं, उसका प्रति विकसित रूप भी पुराणों में उपलब्ध मिलता है। सत्य और वास्तव्य माधुर्य के साथ शृंगार की प्रसिद्धा पुराणों में मिलती है। शृंगार के माधुर्य प्रति माधुर्य का योग भी यहाँ हो पाता है। साध-ही-साध यहाँ भी कृष्ण की आध्यात्मिक सीढ़ियों के साथ भौतिक सीढ़ियों का योग भी मिल पाता है।

### कृष्ण-भावना का विकास

'शुभेद' में 'कृष्ण आभिरस' नामक श्रुति का वर्णन मिलता है। 'कृष्ण आभिरस' सोमपान करते हैं। वे सोमपान के लिए अश्विनी कुमारों को भी आमन्त्रित करते हुए मिलते हैं। यहाँ 'कृष्ण आभिरस' और विष्णु दो स्वतंत्र व्यक्ति हैं। एक संवर्ष में विष्णु जाह्नव होते हैं। 'कृष्ण आभिरस' विष्णु की जीवन-कामना के लिए 'अश्विनी कुमारों' का स्माय करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कृष्ण नामक एक अनुर (देवता) का भी वर्णन मिलता है। इन्द्र द्वारा इनकी पराजय का भी वर्णन इस संवर्ष में मिलता है। इन्द्र के कृष्णाशुर की गर्मगती स्त्रियों के रूप का भी वर्णन यहाँ मिलता है। 'सौदीप्य उपनिषद्' में कृष्ण की एक स्पष्ट व्यक्तित्व से आभूषित किया गया है। यहाँ उनका वर्णन देवकी-पुत्र के रूप में हुआ है। परन्तु आभिरस के साथ इनका सम्बन्ध यहाँ भी है, यहाँ कृष्ण और आभिरस, दो अलग व्यक्तियों के रूप में सम्मुख आते हैं। कृष्ण यहाँ आभिरस के शिष्य हैं। आभिरस उन्हें इस प्रकार की शिक्षा देते हुए मिलते हैं—

यज्ञेत्पु नोर आभिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्तयो नापाऽपिवा एव स  
बभूव सोऽन्तरेक्षाय मेतत्सर्वं प्रतिपद्ये तावन्तमस्य श्रुतमसि प्रायश्चित्प्रमदीति।

—देवकी पुत्र भी कृष्ण के शिष्य आभिरस और श्रुति ने शिक्षा दी कि जब मनुष्य का अन्तिम समय आये तो उसे तीन बातों का उच्चारण करना चाहिए—

(१) त्वं अक्षितमसि—तू जगत्पार है ।

(२) त्वं बभूवमसि—तू एक ब्रह्म है ।

(३) त्वं प्राप्संसिद्धमसि—तू प्राणियों का जीवन दाता है ।<sup>१</sup>

कृष्ण के व्यक्तित्व का ऐतिहासिक स्वरूप महाभारत में पुर्यदा संस्थापित मिलता है । यहाँ कृष्ण के अवतार रूप की भी कल्पना मिलती है । श्रीमद् कृष्ण को ब्रह्मक प्रकृति और उपासन कर्ता कहते हैं—

एव प्रकृतिरव्यक्ता कर्ताकैव उपासकः ।

प्राक् सर्वं भूतेभ्यः तस्मात्पूज्य समोऽभ्युतः ।<sup>२</sup>

एतत्प्राक् सर्वं एतत्प्राक् सर्वं यथा ।

एतत्प्राक् सर्वं यत् सर्वं वास्तव्यं महः ।<sup>३</sup>

इस सन्दर्भ में ह्याय व्यास आठवें कथाओं की ओर भी जाता है । 'वट आठवें' में बामुदेव कम्ह (कृष्ण) की कथा मिलती है । बामुदेव कम्ह कुबजबापीह, मुष्टिक, बामूर और कंस का विनाश करते हैं । 'महा उषस्य आठवें' में बामुदेव कम्ह का उल्लेख मिलता है । उन्होंने काम-वराविष्ट होकर बाष्पास भन्ना बामन्ती को मर्हिपी बनाया था<sup>४</sup> ।

गोपाक कृष्ण की भावना का विकास 'हरिवंश पुराण', 'बामु पुराण' और 'भावत पुराण' में हुआ मिलता है । इस प्रकार का विस्मय किन्ना जाता है कि 'हरिवंश पुराण' की रचना ईसा की तीसरी शताब्दी में हुई थी । 'हरिवंश पुराण' में एक स्वतन्त्र गोपाक कृष्ण अपने शिष्य 'वधुपाक' संज्ञा का प्रयोग करते हैं । इस ग्रन्थ में गोपाक कृष्ण के अवनिर्वाती होने का उल्लेख भी मिलता है । कृष्ण की गोवर्धन पूजा का प्रथम ऐतिहासिक उल्लेख भी इसी ग्रन्थ में मिलता

१ देखिये—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४२३ ।

२ महाभारत २.५.२३

३ महाभारत १.६.१२

४ हिन्दी साहित्य पृ० ३३३ ।

है। मोपाक कृष्ण का सम्बन्ध जामीर नाति से स्थापित किया जाता है। कृष्ण जामीर नाति के देवता थे और राधा जामीर नाति की देवी थी।<sup>१</sup>

‘हरिबंश पुराण’ में कृष्ण के व्यक्तित्व के दो रूप मिलते हैं—प्रथम के अन्तर्गत कृष्ण के वैभवविलास का वर्णन है। उसके अन्तर्गत उनके ऐश्वर्य पूर्ण रूप का विवरण है। कृष्ण के व्यक्तित्व का दूसरा रूप यह है, जिसमें उनके मायुर्य रूप का वर्णन मिलता है। यही कृष्ण की शृंगारकीलाबी का वर्णन है। कृष्ण और बलराम सोलह सहस्र स्त्रियों के साथ बच-कीड़ा करते हैं। महाभारत में कृष्ण जिसका नामुरेव पौंड्र राज पुत्रोत्तम और करबोर पुर के राजा शृपाळ को मारकर अपने नामुरेवत्व की संस्थापना करते हैं। महाभारत में कृष्ण दम्पुओं का बच करते हैं रुक्मिणी का हरण करते हैं। वे सुरसेन राजा को मुक्त करते हैं और काशी नगरी का उद्धार करते हैं। ‘हरिबंश’ तथा अन्य पुराणों में भी कृष्ण के ऐश्वर्य रूप का विवरण मिलता है। परन्तु द्वितीया तथा अन्य भारतीय मायाओं के सम्बन्धीन कवियों का ध्यान कृष्ण के इस व्यक्तित्व की ओर नहीं जाता है। इसके विपरीत मध्ययुगीन कव्य-काव्य के कवि ‘हरिबंश पुराण’ में कृष्ण-मोपी-कीला के शृंगारी बालाबल तथा ‘परिजात-जानमल’ के अन्तर्ग में उपलब्ध मान वेस्ताओं को सूत्र रूप में ग्रहण करते हैं।

‘मायवत’ में भी कृष्ण के जीवन की समग्रता मिलती है। यहाँ ऐश्वर्य और मायुर्य का संश्लेष मिलता है। आधुनिक अनुसन्धानों की प्रक्रिया के अन्तर्ग में भी कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-काव्य के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है। मद्रास में प्रथम छात्रावली ईश्वरी की पापात्र मूर्ति उपलब्ध हुई है। इसमें जवनाल विष्णु कृष्ण को रूप में लेकर नामुरेव यमुना पार कर रहे हैं। कामय पंचमी छात्रावली ईश्वरी

१ सर भच्छार की यह धारणा है कि जार्ज सीरिया से जाण्ड जाये थे।

Vaisnavism Saivism and other Religious system. 83

भाषाय हजारी प्रसाद द्विवेदी इस अन्तर्ग में कहते हैं ‘राधा जामीर नाति की प्रेम देवी रही होगी, जिसका सम्बन्धनाल कृष्ण से रहा होगा। भारव्य में बाल कृष्ण के साथ नामुरेव कृष्ण का एकीकरण हुआ होगा। इसीलिए जार्ज अन्वों में राधा का नामोल्लेख नहीं है। पीछे बालकृष्ण की प्रमानता होने पर इस बाळक देवता की सारी बातें जामीरों से ले ली गई होगी’ गुरुदासिय १९७

के उपलब्ध सिद्धा पट्ट में कासिया यमन का दृश्य अंकित है। इसी प्रकार पूर्ण बंगाल में पहाड़पुर नामक स्थान में उपलब्ध मूर्तियों में यमलार्जुन छद्मर का दृश्य अंकित है। राधा कृष्ण के मुख्य स्वयं से सम्बन्धित मूर्तियों में उपलब्ध हुई है।

### कृष्ण काव्य की परम्परा

काव्य में बोपाल कृष्ण की छीछाओं का प्रथम उल्लेख अस्वधोप (प्रथम छटाखी ईसवी) रचित 'बुद्ध चरित' में मिलता है। इस धर्म की दूसरी उल्लेख पूर्ण रचना है हार कृत 'गाहा सत सई' (ईसा की प्रथम छटाखी)। इस संग्रह के ऋषार और नीति सम्बन्धित मुक्तकों में कृष्ण राधा यक्षोदा और मोदियों से सम्बन्धित अनेक पाषाण मिलते हैं। एक सन्दर्भ में इस प्रकार की अति व्यक्ति मिलती है कि यक्षोदा छबियों से कहती है 'कृष्ण अब भी बाक्य हैं'। यक्षोदा के इस वचन को सुनकर ब्रज बधुरें हँस पड़ती हैं। कृष्ण और मोदियों अथवा कृष्ण और राधा के माध्यम में ऋषार भावना की अनेक पाषाण यहाँ उपलब्ध होती हैं परन्तु इनमें भक्ति भावना के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। एक वर्णन में वृत्त करती मोदिका कृष्ण के पार्श्व में जाती है और कृष्ण विचुम्बित हो उठती है और भाव की उत्पत्ति में स्वयं कृष्ण को चुम्बित करती है—

बाक्य सखाह नमिहेस पास परिसन्निधा गिउक मोदी।

सरिस मोदिका नमिहेस पास परिसन्निधा गिउक मोदी २।११।

पौचरी छटाखी के निष्ठ ब्रजिय भाग में वैष्णव भक्ति का उद्भावन मिलता है। इस उद्भावन में आइबारों ने विशेष योग दिया है<sup>१</sup>। ब्रजिय

आइबार अठ कवि थे और इनका निवास तामिल प्रदेश था। इनकी संख्या बारह थी। इनकी रचनाओं का संग्रह प्रबन्धम् नाम से हुआ है। इनका समय दूसरी छटाखी से लेकर बसरी छटाखी तक माना गया है। इन अठों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। (क) प्राचीन (१) बोयेक आइबार (२) भूतताइबार (३) वेय आइबार (४) तिक्कमिङ्गो आइबार (ख) मध्यकालीन (१) उटकोप या नम्म आइबार (२) मयूर कवि आइबार (३) कुस वेयर आइबार (४) पेरिय आइबार (५) आइबार (ग) अन्तिम (१) टोडरनिगाइ आइबार (२) निरप्पाय आइबार (३) तिरुमके आइबार। द्वितीय और तृतीय भाग की कृष्ण भक्ति—पृ० २४।

कृष्ण भक्ति साहित्य में कृष्ण की लीलाओं का गान मिलता है । वहाँ मन्मार्ई नामक गोपी का वर्णन मिलता है । यह गोपी राधा के समान के व्यक्तित्व की है और वह कृष्ण की प्रतीक भी है । 'बेणी संहार' नामक नाटक में राधा-कृष्ण की प्रेम सीका के तन्त्रों में मिलते हैं । बेनि कुणित राधा के अनुभव में कृष्ण की प्रतीक निम्नलिखित श्लोक में विवेक रूप से ध्यात देने योग्य है—

वाचिण्या पुसिन्ना कैलि कुणित मुखस्य रामे रामे ।

मन्दन्ति मधुवन्देना-धनसुयी द्विपो राविकाम् ।

सत्पादप्रतिमानिबेधित फन्सो बुनगे मोद एने ।

एतन्तोऽनुकमे प्रमत्त दमिता इष्टस्य पुष्पावुध ।

इस सतर्क में उल्लेख करने योग्य एक अन्य कृति प्राच्य महाकाव्य 'महाकाव्य' है । इस कृति के संस्कारकार के चार स्तोकों में कृष्ण की स्तुति की गई है । कृष्ण की बन्धना कर्मवृत्ति विषय यत्नोपा-युक्त गोपियों द्वारा गङ्गातट-युक्त किशोर रूप में की गई है । वहीं पलायनी की कृति 'कल्याणक' में किसी अज्ञात कवि का एक उद्धरण मिलता है जिसमें कृष्ण-राविका की बीताओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

तेषां गोप बभू विद्यत सुहृदवा राधा एव सावित्रा ।

सेनं नर कलिन्दराज समपातीरे दृष्टावेत्तमानम् ।

विन्दिते स्मरतक कल्प नविबिन्दते दोषयोगेभ्युता ।

ते जाने ब्राह्मी भवति विदितानी कल्पिप पम्पना ।

इस रचना के एक अन्य अंश में मधुरिपु (कृष्ण) के द्वारका-वसन के परभाव राधा कृष्ण के वस्त्र धारण करती है । मधुरिपु-रुट की लताओं का आबिन्दन करती है, उस कंठ से गान करती है । उससे प्रेरित होकर यमुना के जल धर सत्कण्ठ होकर कृष्ण कर बैठने हैं । इसी पद्यश्रृंखला में विविक्त रचित 'अध्यात्म' नामक ग्रन्थ में कृष्ण और राविका की कोढ़ाओं का उल्लेख मिलता है । इसी पलायनी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कबीर बचन समुच्चय' का उल्लेख विद्यापति की विवेचना के तन्त्रों में हो चुका है । इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण से सम्बन्धित चार श्लोकों का कृष्ण काव्य के विकास के सतर्क में विवेक महत्त्व है । बागहरी पदाश्री में हेमचन्द्र ने 'प्राच्य वेपथु' और अपभ्रंश व्याकरण में कृष्ण और राविका के सम्बन्ध



लोक जीवन में प्रचलित कविपद्य दोहों का संकलन किया है। बारहवीं सताब्दी में शारदायन ने 'भाषप्रकाशन' नामक ग्रन्थ में 'रामाराधा' नामक नाटक की बर्णना की है।

बिज सन्दर्भों के आधार पर कृष्ण-काव्य के विकास का रेखांकन किया गया है, जन्में बाइबार मक्तों के साहित्य के अतिरिक्त अन्य में भक्ति-भावना के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। साहित्य में भक्ति भावना का संस्पर्ष स्पष्ट रूप से ध्वज मग बारहवीं सताब्दी में मिलने लगता है। उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कृष्ण काव्य में भक्ति भावना को प्रस्तावित करने वाली प्रथम स्पष्ट कृति है लीला सुक कृत 'कृष्ण कर्णामृत'। इस कृति में भक्ति और गुरु पार का अनुपम योग मिलता है। इस परम्परा की एक अन्य रचना ईश्वर पुरी कृत 'श्रीकृष्ण लीलामृत' है। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' की बर्णना इसी सन्दर्भ में की जाती है। इस कृति को 'गीति माटय 'गीतिकाव्य' संगीत कवक' और 'यात्रा काव्य' आदि विभिन्न नामों से सम्मानित किया जाता है। 'गीत गोविन्द' एक सर्वांगीण काव्य है जिसका विभाजन 'सामोह बामोदर' 'मुक्कमबुसुदन' 'साकोस पुष्परीक' 'विमलमय छम्भी' 'सुप्रीति पीताम्बर' आदि धीरे-धीरे में हुआ है। 'गीत गोविन्द' के ही अनुकरण पर प्रकाशन सरस्वती का 'संगीत मायक', नामक काव्य ग्रन्थ उपलब्ध होता है। लीला सुक लिखमयल ठाकुर के 'कृष्ण कर्णामृत' नामक ग्रन्थ का उल्लेख यहाँ अवलोकित लगता है। परवर्ती कृष्ण काव्य बारा पर मुख्यतः पीढ़ीय वैष्णव साहित्य पर इस रचना का विशेष प्रभाव मिलता है।

द्वितीय के 'इष्ट भक्ति साहित्य' के मूल्यांकन में 'गीत गोविन्द' का सन्दर्भ ग्रहण किया जाता है। यह कहा जाता है कि इस काव्य में कृष्ण नामक और राधिका नायिका हैं। सधियों लीला सङ्गरी हैं। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी ही है इसमें सन्देह होता है। इस स्थल पर एक अन्य सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। जयदेव अपनी भावभूमि के एकमात्र प्रस्तावक नहीं थे। सैन राजाओं के संरक्षण में इस भावपारा का अवलम्ब ग्रहण करके काव्य रचना करने वाले काव्यकारों का एक वर्ग उपलब्ध होता है, जयदेव के अतिरिक्त इस वर्ग के प्रमुख कवियों में जगन्नाथपतिर धरण गोवर्धनाचार्य और बोपी के नाम कृष्ण-काव्य के विकास के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। 'तनुक्ति कर्णामृत' की बर्णना

एक नव्य दृष्टि से भी यहाँ आवश्यक है। इस संग्रह में ध्यान्, वास्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की सबसे योजना मिलती है। कृष्ण की कुमारकीला के पर भी यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं। 'समुक्ति कर्माभूत' में 'गोपी सन्देश' क्षीरक से कतिपय रचनायें मिलती हैं जिनमें गोपियों या राधा पक्षिक के माध्यम से कृष्ण के पास सन्देश भेजती हैं, 'योगधर्म परंत की कन्दारमें बभ्रुना तट की राध कीकायें, वनस्पतियों और सहचरण की स्मृति क्या नहीं आती है ?'

पान्थ द्वारवर्ती प्रयासि यत्र हे तदेवकी मन्दनो  
वक्तव्य स्मरबोह मंत्र विवक्षा गोप्योऽपि मायोऽभिज्ञता ।  
एतां केतक गर्मवृक्षिण्टकैस्तोष्य कृष्या विरत  
काकिणीतक भ्रमबोऽपि तरबो तामानि कितास्पदम् ।

इस प्रकार अवश्य से कवयम की कृताब्धी पूर्व से ही कृष्ण-राधा की एक मृदुलतावत् परम्परा मिलती है। कम गोस्वामी ने 'पद्यावली' में वैष्णव कविताओं का जो संकलन प्रस्तुत किया है, उसमें दक्षिण, उत्तर और विरमुक्त (विरमुक्त) आदि मंचलों से उपलब्ध रचनायें भी संयोजित हैं।

#### राधा का कर्म-विकास

वैदिक साहित्य में राधा के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। इस प्रकार का वक्तव्य मिलता है कि राधा आभीर जाति की ऐसी थी। इस प्रकार राधा की कल्पना अनार्य ऐसी के रूप में की गई है और आभीरों तथा आर्यों के सम्बन्ध संस्वाप्त के अवकाश ही राधा का प्रवेश आर्य संस्कृति में होता है। इस मत के विपरीत इस प्रकार की भावना भी प्रस्तावित की गई है कि सांख्य ने प्रकृति-पुरुष सम्बन्धी बिंदु विचार को व्यक्त किया था, उसीके आधार पर वैष्णव भक्ति के उत्पन्न में राधा-कृष्ण-भावना का विकास हुआ है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि पूर्ववर्ती सक्ति और शिव भावना वैष्णव-भक्ति के उत्पन्न में राधा-कृष्ण का रूप ग्रहण कर विकसित हुई। राधा भावना के आदि रूप का सम्बन्ध सक्तिवाद से स्थापित करते हुए डा० सवि भूषण दास मृत लिखते हैं 'भारतवर्ष सक्तिवाद का ही देश है। सृष्टि उत्पन्न का आत्मजन करके एक अलग आदिदेव की कल्पना दूसरे देशों में भी ऐसी आती है, और इस आदिदेवी में मातृत्व का आरोप करने

देवी कल्पना अग्यन भी कुछ-कुछ मिलती है । केवल इस विश्व प्रसूति एक विश्व सन्निध को भारत वर्ष ने अपने धर्म-जीवन में जिस प्रकार ग्रहण किया है, ऐसा संसार में दूसरी जगह नहीं दिखाई देता । श्री राधा का क्रम विकास पृ० १४ ।

आइयार भक्तों की रचनाओं में कृष्ण के साथ एक प्रमुख गोपी का भजन मिलता है । इस गोपी का नाम 'ताप्पिनाइ' है । इसके साथ-साथ तामिल नृत्य 'कुल्लुकुलु' का वर्णन भी मिलता है । यह 'रास' की कोटि का ही एक नृत्य है । इन सन्दर्भों में दक्षिण भक्तों में राधाकृष्ण की युगल उपासना और रासलीला का उत्प्रेक्ष मिलता है । प्यारुची सताम्बी में राजा भोज ने 'सरस्वती कण्ठा मरम' में एक प्राचीन कवि के श्लोक का सन्दर्भ दिया है कनकानि कास स्वच्छे राधापयोधर मण्डले । यहाँ भी राधा का संकेत मिलता है । जनकधन के 'वसन्तक' में भी राधा के नाम की खोज मिलती है और हेमचन्द्र के द्वितीय रामचन्द्र ने 'नान्य वर्णन' में मेरुका कवि द्वारा नाट्य रूप में राधा के विप्रलम्भ-स्वरूप की खोज की है । जयदेव की रचनाओं में उपलब्ध 'राधा कृष्ण' स्वरूप से हमारा पूर्ण रूप से परिचय है ।

वैष्णव भक्ति का सम्मान्य भागवत से है । इस ग्रन्थ में राधा की खोज नहीं है । भागवत पुराण के एक अंश के आधार पर यह भी कहा जाता है कि भागवत में राधा के नाम की खोज की गई है—

अनया सावितो मूल भयवान् हर हरिरीस्वर-  
यन्तो विहाय गोविन्ध प्रीतोयामनयव् रहा  
भागवत पुराण १०. १०. ३८ ।

यद्यपि इस अंश में राधा का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता है, परन्तु का गोस्वामी विरचनाच चन्द्रवर्ती तथा कृष्ण दास कविराज इस अंश में राधा के उल्लेख की सम्भावना स्वीकार करते हैं । भागवत पुराण के त्रितीय स्कन्ध के एक श्लोक में राधा नाम का संकेत मिलता है—

निरस्त साम्पादिसायने राधसा  
स्वयामनि ब्रह्मानि रस्यते नमः ।

इस सन्दर्भ में 'राधा' शब्द का प्रयोग विभूति के अर्थ में हुआ है । 'हरि च पुराण' में सर्वप्रथम नृन्दावन में श्रु गारपूर्ण वर्णन की काव्योक्ति मिलती है ।

परन्तु यहाँ रामाह्वय के युगल रूप का वर्णन नहीं मिलता है । 'विष्णु पुराण' में राससीमा के वर्णन के सम्बन्ध में राधा का उल्लेख नहीं मिलता है । परन्तु 'ब्रह्मवर्त पुराण', 'पद्म पुराण' और 'नारायण पुराण' में राधा का उल्लेख मिलता है । 'देवी मायम्बु' में राधा को प्राण की देवी और बुद्धि की देवी कहा गया है । इस प्रकार यहाँ राधा और बुद्धि में अन्तर नहीं माना गया है । तंत्रों में भी राधा का उल्लेख मिलता है । 'रात्रिकोपनिषद्' में राधा का वर्णन ब्राह्म्यात्मिक प्रतीक के रूप में हुआ है ।

साहित्य के सम्बन्ध में हमारा ध्यान बंगाल के प्रसिद्ध कवि 'बंशीदास' की ओर जाता है । बंशीदास के काव्य में राधा परकीया रूप में वर्णित है । कृष्ण से मिलने के लिए आशुर राधा की माकनानों का विषय ही इनके काव्य का मुख्य सौन्दर्य है । राधा के लिए रसेश्वरी रासबाहिनी रसिकेश्वरी, कृष्ण प्राणा पिङ्गा कृष्ण स्वस्मिणी परमानन्द कविनी कृष्णा और वृन्दावन विनोदिनी जाति नामों का प्रयोग उन्होंने अपने काव्य में किया है । बंशीदास की राधा के विषय में विचार करते हुए डा० छत्ति भूपण दास गुप्त ने लिखा है, 'बंशीदास की राधा एक विमुक्त बंगाली कवि की भावसिद्ध प्रतिमा है—बंगाली कवि के चित्त में घृत प्रेम प्रतिमा है । प्रेम की प्रतिमा इस राधा में हम देखते हैं कि बंगाली कवि बंदास छोड़कर वृन्दावन नहीं गये—वृन्दावन की भूमि दूर से जाकर जब घर बंगाली कवि की मनोभूमि में प्रतिष्ठित हुई है जिसके फलस्वरूप बंगाली कवि-मानस की प्रेम प्रतिमा ने अपने प्राकृत रूप के बन्धन से, दिव्य ज्योति से अप्राकृत महिमा प्राप्त की है । हमारे राधा प्रेम में प्राकृत कहीं भी लचीकृत नहीं हुई है, प्राकृत ही धीरे-धीरे दिव्य मूर्ति में अनुमासित हुई है—राधा का श्रम विकास-पृ० ११३ ।

राधा कव्य की 'बाम आया-सम्भूता' हैं । राधा कव्य की ह्लादिनी रमिता मानो गई है ।

राधा कृष्ण प्रणय विकसित ह्लादिनी रमिता रत्ना  
देहात्मनामयि मुनि पुरायेह भेद कटीती ।  
वैतथ्यारण्य प्रकट मधुगा पतन्युदय चक्षमात ।  
राधा भाव बुद्धिमुनिरिति गीमि कृष्ण स्वकाम् ।

अर्थात्, श्वाभाव्य की प्रथम विकृति ह्लादिनी धर्मित है, इसलिये दोनों एकान्त होते भी वेह भेद को प्राप्त हुए थे। अब हम दोनों ने ऐस्य काम किया है। राधा भाव धृति सुवर्णित चैतन्यारण्य सप्त कृष्ण स्वल्प को मैं प्रणाम करता हूँ। राधा का प्रथम विकास। गोपीय ब्रह्मणों की मुख्य वाचना यह है कि कृष्ण ने प्रेम रस के आस्वादन के लिए अवतार ग्रहण किया था। भूधार-हृरण कृष्ण का योग उद्देश्य था। अब इनके यहाँ माधुर्य रस की स्वीकृति एक स्वतन्त्र रस के रूप में हुई है। 'रूप बोत्वायी' ने 'मक्ति रत्नामृत सिन्धु' और 'चन्द्रमल नीलमणि' नामक ग्रन्थों में माधुर्य रस की व्याख्या की है। द्विती ब्रह्मण साहित्य में 'मक्ति रस' या 'माधुर्य रस' की इस प्रकार की साम्प्रदायिक व्याख्या नहीं मिलती है।

चैतन्य सम्प्रदाय के प्रेम विकास तथा 'मक्ति रत्नाकर' नामक ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि नृन्दावन में राधा की कृष्ण के साथ वपासना की प्रथा तोलहरी घाटाजी के पहले प्रचलित नहीं थी। ब्रजवास के निरामय की पत्नी 'जाह्नवी' ने ब्रज भास्कर नामक व्यक्ति द्वारा राधा-वपासना-निधि की संस्थापना की। परन्तु इस प्रकार की वाचना का कोई साधारण नहीं है।

गोपीय ब्रह्मणों ने राधा के परकीया स्वल्प की कल्पना की है। ब्रजसा साहित्य में उपलब्ध सहस्रिया ब्रह्मण काव्य-द्वारा में राधा की कल्पना एक मित्र रूप में मिलती है। सहस्रिया ब्रह्मण छिदों के प्रजा-वपास के स्थान पर राधा और कृष्ण की कल्पना करते हुए मिलते हैं। राधा कृष्ण के मित्र को वे छिदों के साम्राज्य का पर्यायवाची मानते हैं। यहाँ राधा-कृष्ण के युक्त तत्व को परम तत्व का पर्यायवाची माना गया है। प्रेम की स्थिति सहस्र समरस में है, यह सहस्र समरस ही ब्रह्माण्ड के समान है। नृन्दावन के समान इन्हीं पुनः बनपुर की कल्पना की है। इस बनपुर में राधा कृष्ण का नित्य विहार होता है। इस माधवारा में भी राधा या गोपियों की कल्पना परकीया रूप में की गई है। परन्तु इनका परकीया प्रेम गोपीय ब्रह्मणों के परकीया प्रेम से भिन्न प्रकार का है। गोपीय ब्रह्मण में परकीया होते हुए भी राधा दिव्य मुक्त से विभूति है। परन्तु सहस्रिया ब्रह्मणों ने परकीया के धार्मिक आकर्षण तक ही अपने को सीमित रखा है। अब इनके अनुसार परकीया का धर्म ही नृन्दावन है। नृन्दावन में

स्वान है। ठाकुरन जिर है, नाथिका मयन कुन है और शरीर रस शरीर है ।  
 शारीरिक रस से ही ये रागिका का जन्मान मानते हैं ।

मत्तम-सम्प्रदाय से सम्बन्धित वैष्णव शक्ति में राधा भाग का विकास स्वकीया रूप में हुआ है । इस सम्प्रदाय में राधालीला के सम्पर्क में कृष्ण परमात्मा और राधा और मोदी आत्मा के रूप में उद्घोष हैं । इस सत्य की ओर संकेत करते हुए डॉ॰ दीनदयाल नुन ने लिखा है कि निम्न मोलीक में रहने वाले रस रूप कृष्ण के रास की योगिकार्य मयदान की निष्ठ धारि हैं । एक से अनेक मयदान की दृष्टि रास द्वारा अनन्त अक्षर प्रहृ से उत्पन्न रूप अयत् और चित् रूप मोन वरता शक्ति की उत्पत्ति हुई × × सिद्ध रासिक राधा और कृष्ण का सम्बन्ध अन्न और चोदनी का है । मयदान की इन धारियों के बीच रस की सिद्ध धारि राधा स्वात्मिनी स्वक्या है । मयदान रस धारियों के बीच पुन रस धारि स्वक्य राधा के रस में रहते हैं । अष्टधाप और मत्तम सम्प्रदाय । ५०५ ६ ।

अष्टधाप के कवियों ने राधा तथा योगियों का वर्णन 'ब्रह्मवेरव' पुराण तथा 'मानव पुराण' के आधार पर किया है । इस सम्प्रदाय के कवियों ने राधा की शक्ति और कृष्ण को वृक्ष-रूप में चित्रित किया है । राधा और योगियों के प्रति अक्षर के पुराणों में दो प्रकार के भाव मिलते हैं । प्रथम आत्म विद्या-मित्री तथा सृष्टिकारिणी धारि रसा और द्वितीय काळा भाव से ईश्वर शक्ति एव-शक्ति-मिष्टा भक्ता । अष्ट धाप के कवियों ने इन दोनों भावों का मोन अपने काव्य में किया है । मोक्षीय धारों के परकीया भाव के विपरीत यही राधा तथा योगियों का वर्णन स्वकीय रूप में हुआ है । सुरदास ने तो राधा और कृष्ण के सम्पर्क विवाह को भी कल्पना की है—

बाकी व्यास वर्णित रास

है संवर्ध विवाह चित्त सुखी विविध निभास ।

द्वितीय प्रथम कुमारि यह अन्न मयरी हृदय निवास ।

मन मुख परिवेष, देवी पुन मन की भास ।

वचन रूप १३६ = १२६ ।

पञ्चभाषाई न कृष्ण की दो धारियों की कल्पना की है । प्रथम, बहिरंग इसके अन्तर्गत माया का विशेष स्थान है । द्वितीय, धारि अक्षर रस है । इसके

अन्तर्गत संपत्ति, सवति और ह्यारिणी शक्तियाँ हैं। ह्यारिणी शक्ति ही राधा है। राधा विद्योविनि रूप में अमर गीत में चित्रित की गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय में भी राधा स्वीकृत है। इस सम्प्रदाय में राधा की भक्ति माधुर्य भक्ति-समर्पित है। बम्बर दर्शन में राधा की 'ह्यारिणी शक्ति' को ही राधा कहा गया है। परन्तु राधावल्लभ सम्प्रदाय में इस प्रकार की भावना नहीं मिलती है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा स्वयं आत्म्य स्वरूप है। इस सम्प्रदाय में राधा उस अनारि शक्ति का निरूप स्वस्व है जो अखण्ड सृष्टि में व्याप्त होकर अपनी नित्य श्रीदा से आनन्द की सृष्टि करती है। राधा की कल्पना 'अवोगमनगोचर' रूप में की गई है परन्तु अवोगमनगोचर होते हुए भी राधा अनुभव की परिधि में आती है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा नित्य भाव है। उनका विहार नित्य है। राधा यही कृष्ण की उपासना है, इस सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ 'राधा सुधा निधि' में राधा की कल्पना निम्नांकित पंक्तियों के अनुसार की गई है—

यात्मावाम्बुहृदं रेणुकविका मूर्खानिवातुं नहि  
प्रार्थुः सदादयोप्यपिहृतिं पौष्येक भावायमा  
सामि प्रेम सुधा रसाम्बुधिनिति राधापि सा भारती,  
मूला काष्ठमति क्रमेण वसिष्ठा है ईदं पुष्पं गम ॥

राधासुधासिद्धि—सूक्त ७२।

### प्रेम-लक्षणा भक्ति और माधुर्य भाव

मध्य युगीन वैष्णव भक्त कवियों की भक्ति विधा को 'प्रेम-लक्षणा भक्ति' अथवा 'माधुर्य भाव लक्षणा भक्ति' कहा जाता है। इस भक्ति-स्वरूप का संकेत 'भावकृत पुराण' में मिलता है। भाङ्गार भक्तों ने भगवान् के पुनर्गान तथा उनकी लीला के वर्णन के जिस स्वरूप को अपनाया उसमें 'प्रेम-लक्षणा' अथवा 'मधुर भक्ति' के लक्षण निहित मिलते हैं। बलिय में भाङ्गार भक्तों के स्वधर्म की भक्ति अग्राह ने कृष्ण के प्रति जाना प्रेम विशेषण करते हुए कहा है 'जब मैं पूर्ण जीवन की प्राप्ति हो गई हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को अपने पति के रूप में नहीं ग्रहण कर सकती हूँ।

प्रेम लक्षणा भक्ति की पीठिका में शक्ति के रूप में स्त्री-पुरुष की भावना विद्यमान है। शक्ति सृष्टि विकास की मूल प्रेरणा है। जिन के साथ नारी की

कल्पना सक्ति-रूप में हुई, जिन्‍हू के साथ उसी तारी की कल्पना लक्ष्मी रूप में हुई श्या के साथ सरस्वती रूप में तारो की कल्पना हुई। राम के साथ तारी की कल्पना सीता-रूप में, और हज्ज के साथ उसकी कल्पना राधा रूप में की गई।

प्रेम-कसबा माधुर्य भाव का विकास संकराचार्य के दार्शनिक तथा बौद्धिक विचार की प्रतिक्रिया स्वयं हुआ लगता है। शांतिस्थ तथा भारद् ने अपने भक्ति-ग्रन्थों में प्रेम भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि वास्तव में प्रेम में स्वयं की कामना होती है, परन्तु ईश्वरोग्गुण प्रेम में इस सुख का परिणाम किया जाता है। प्रेम-कसबा का परिणाम देने हुए भारद् ने कहा है 'उस प्रेम का कोई दुःख नहीं होता उसमें कामना का संस्पर्श नहीं होता उसका विकास प्रति भव होता है उसका विच्छेद नहीं होता है। वह सुख है। उसकी कल्पना अनुभूति होती है।' 'भारद् भक्ति सुत्र' (१५)। मध्य युगीन वैष्णवी ने इसी भाव को ग्रहण किया है और अपनी मधुर भक्ति में वास्तव्य एक वास्तव भाव के साथ वास्तव्य या श्रृंगार भाव को भी युक्त किया है। बल्लभाचार्य माधुर्य के अन्तर्गत वास्तव्य को ओष्ठ मानते हैं। परन्तु बल्लभाचार्य के परमात्मा माधुर्य के अन्तर्गत कान्ता भाव का विकास मिलता है। विदुलनाथ कान्ता भाव के प्रति विशेष आग्रह प्रकट करते हुए मिलते हैं। विदुलनाथ के इस आग्रह का स्पष्ट प्रभाव अष्ट छाप के कविओं पर देखने को मिलता है। विदुलनाथ ने 'श्रृंगार रस भञ्जन' नामक ग्रन्थ में कान्ता भक्ति का उल्लेख किया है। वास्तविकता यह है कि अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में बल्लभाचार्य वास्तव्य भक्ति के प्रति आकर्षित रहे परन्तु अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में क्रिस्तोर कव्य की प्रवृत्ति छीलाओं की ओर वे आकर्षित लगते हैं। गौड़ीय वैष्णवी में मुकुन्द रूप गोस्वामी तथा चनाल गोस्वामी अपनी भक्ति की वास्तव्य भावना से विभूषित करने का प्रयास करते मिलते हैं। बल्लभाचार्य के परमात्मा हित हरिवंश प्रेममूल्क भक्ति का विस्तार करते मिलते हैं। निम्बार्क जगन्नाथ के अन्तर्गत हरिदास देवा चारों अपनी विशिष्ट रक्षा 'बल्लभाणी' में 'माधुर्य भक्ति' की सर्विस्तार व्याख्या करते हैं। स्वामी हरिदास तथा उनके शिष्य 'सखी सम्प्रदाय' का विकास माधुर्य भक्ति की भाव-धारा के अन्तर्गत करते हैं।

माधुर्य भक्ति में एक कल्पना होते हुए भी इस भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की धारणा में भूख बनार मिलता है। निम्बार्क मुन्दाकन की मिला सीता में राधा



तथा योगियों का वर्णन कास्ता-बाब के अन्तर्गत करते हैं। बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने राधा तथा योगियों के स्वकीया-स्वल्प को स्वीकार किया है। परन्तु अपनी मधुर भावना के अन्तर्गत वे परिजन समाज तथा वर्ग के बन्धनों की भी स्मृति कर देती हैं। इस प्रकार वे परकीया रूप धारण करती हुई लगती हैं। इसके अतिरिक्त वे मूढ रस की भी कल्पना करते हैं। मूढ रस से उनका तात्पर्य 'विभोग रस' से है। 'विभोग रस' के सम्बन्ध में वे पूर्वराग मान और प्रकाश की कल्पना भी करते हैं। परन्तु राधावल्लभी सम्प्रदाय में बिष्ट की कल्पना नहीं मिलती है। इसके विरुद्ध बहो विद्वंश लीला और नित्य मिलन की भावना स्पष्ट मिलती है। यहाँ परकीया भाव की कल्पना भी नहीं मिलती है। यहाँ राधा प्रेम का आलम्बन है। कृष्ण उनके आश्रय हैं। वे नित्य विहार में निष्ठ रहकर, परस्पर सुख में योगदान देते हैं। नित्य विहार में सहचरी रूप योग देती है, जिनमें अष्ट सखियों का विशेष महत्त्व है। वैष्णव सम्प्रदाय में भी अष्ट सखियों की कल्पना मिलती है। बल्लभ सम्प्रदाय में अष्ट सखाओं की भावना का विकास इसी परम्परा के अनुसार हुआ सम्यक् है। पोम्बामी हरिराव सखी भाव से अष्ट सखाओं की कल्पना करते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय में सखियों के अतिरिक्त परिचारिका भंडारियों का वर्णन मिलता है। अत्येक भंडारी के लिए यथेष्टी संज्ञा का प्रयोग किया गया है।

#### वैष्णव वर्ग के प्रमुख आचार्य

वैष्णव वर्ग के उत्थान और विकास के उत्पन्न में जिन आचार्यों का वर्णन किया जाता है उन्हें अध्ययन की नुविधा की दृष्टि से हम दो वर्गों में विभक्त करते हैं।

[ क ] रामानुजाचार्य निम्बार्क विष्णु स्वामी और मन्नाचार्य।

[ घ ] रामानन्द ओवल्लभाचार्य, श्री हृन्व चैतन्य, श्री ह्रिद हरिबंस तथा श्री स्वामी हरिराव।

इन आचार्यों का समय आर्युनी पलावरी और सोरहनी पलावरी के मध्य पड़ा है। रामानुजाचार्य के लिए श्री सम्प्रदाय, मन्नाचार्य के लिए ब्रह्म सम्प्रदाय, विष्णु स्वामी के लिए 'नर सम्प्रदाय' तथा निम्बार्क के लिए 'तनकादि सम्प्रदाय' आदि नामों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु हिन्दी में उपर्युक्त

कृष्ण भक्ति-साहित्य का साक्षात् सम्बन्ध द्वितीय वर्ग से है। प्रथम वर्ग से केवल परोक्ष रूप से ही हिन्दू के कृष्ण भक्ति का साहित्य सम्बन्धित है।

माधुर्य भाव की भक्ति के अन्तर्गत विरह का वर्णन किसी न किसी रूप में प्रत्येक सम्प्रदाय में मिलता है। बल्लभाचार्य 'अवतीर्ण रस' की कल्पना करते हैं। 'अवतीर्ण रस' से उनका तात्पर्य 'संयोग रस' अथवा 'संयोग मृगार' से है।

रामानुजाचार्य :—(सन् १०३७-११३७) इनका जन्म श्रीपरमबटूर में हुआ था। इन्हें योग का अवतार भी कहा गया है। रामानुज भी सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य हैं। इन्होंने संकराचार्य के 'अष्टौत बाब' का खण्डन किया है। इनके अनुसार ब्रह्म चैतन-अचैतन, सूर्य और स्युक्त सब में व्याप्त है। वह पुण्योत्तम है सपुत्र और सविधेय है। यक्षों पर अनुग्रह भाव से वह पाँच रूप धारण करता है, पर व्यूह, विषय अन्तर्मासिन् और अचायीवतार। इनके अनुसार भक्ति नाम से श्रेष्ठ है। भक्ति भक्ति से ही सम्भव है। जीव दास है, ब्रह्म स्वामी है। इनका शर्ण 'विशिष्टाष्टौत बाब' के नाम से विख्यात है। जिसके अनुसार ब्रह्म चित्, अचित् और अविनाशी है। चित् (जीव) अचित् (दस्य) ब्रह्म-निर्मित है, ब्रह्म के समान है परन्तु ब्रह्म से भिन्न है। ब्रह्म सृष्टि का कर्ता है, उपादान कारण भी है। प्रथम पर चित् और अचित् ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। मयबान् के प्रति आत्म समर्पण भाव के प्रति इन्होंने आग्रह प्रकट किया है। इस समर्पण भाव को 'प्रपत्ति' कहते हैं। इनकी विशिष्ट रचनाएँ हैं—'ब्रह्म सूर्यो का श्रीमाध्य,' 'वैशान्वसार,' 'वैशार्य सार,' और 'वैशान्व दीप'।

मध्वाचार्य —मध्वाचार्य का जन्म सन् १२३७ में हुआ था। इनकी मृत्यु १३३३ में मंगलोर के लिङ्गट पड़िप्पी उषीपी में हुई थी। इनके शर्ण को 'अष्टौत बाब' कहा गया है, जिसके अनुसार ब्रह्म समुल और सविधेय है। जीव अनु है और मयबान् का श्रेष्ठ है। चित्-रूप सपुत्र मयबान् स्वतंत्र पदार्थ है भक्ति के माध्यम से ही मुक्ति सम्भव है। इनकी रचनाओं में 'ब्रह्म सूर्य माध्य,' 'भीता माध्य' 'अष्टौपत्तिरद माध्य' तथा 'आश्रय तात्पर्य निर्णय' आदि प्रमुख हैं। मध्वाचार्य ने संकराचार्य के 'मायावाद' तथा 'अष्टौत बाब' का खण्डन किया है। राधा और कृष्ण के युक्त रूप की कल्पना इनके यहाँ नहीं मिलती है। ये कृष्ण के आश-रूप की उपासना के प्रति विस्वास प्रकट करते मिलते हैं। अपने सम्प्रदाय में ये बान् के अवतार माने जाते हैं।

विष्णु स्वामी — इस प्रकार की चारबा मिलती है कि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी शंकराचार्य के पूर्व हुए थे । परन्तु शंकराचार्य के दर्शन से मतभेद होने के कारण यह निष्कर्ष देने में संकोच नहीं होता कि इनका समय शंकराचार्य के बाद आता है । इनके जन्म के विषय से सम्बन्धित निश्चित सामग्री हमें उपलब्ध नहीं होती । यह अनुमान किया जाता है कि ये रामानुज और निम्बार्क के पश्चात् और मध्वाचार्य के पूर्व जीवित थे । कठिपय विद्वानों ने इनका समय सन् १३३२ के आस-पास स्वीकार किया है । इनके सम्प्रदाय को छत्र सम्प्रदाय भी कहा गया है । इनके दर्शन को 'बुद्धादित्तवाद' कहा गया है । कृष्ण के साथ राधा की उपासना के प्रति भी ये जाग्रह प्रकट करते हैं । इनके अनुसार ईश्वर सन्निवशानन्द स्वयम् हैं वे अपनी ज्ञातिनी सन्निध के द्वारा आस्तित्व हैं और माया उन्हीं के अधीन पड़ी है । विष्णु स्वामी को बल्लभाचार्य का पुत्र भी कहा गया है । 'बुद्धादित्तवाद' दर्शन के प्रतिपादन के लिए बाहरायन-कृत 'ब्रह्मसूत्र का भाष्य' इनकी विशेष कृति है ।

श्री निम्बार्काचार्य :—डॉक्टर मन्नाकर के अनुसार निम्बार्क का जन्म सन् १२६२ ई० में हुआ था । ये तेलुगु प्रदेश से आकर कृष्णावनभूमि में बस गये थे । इस प्रकार की चारबा मिलती है कि जयदेव निम्बार्क की सिष्य-परम्परा में आते हैं । इनके अनुसार जयदेव भक्त के अनुसार जीवब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी है । इस सिद्धान्त को भेदाभेद भी कहा गया है । कृष्ण परब्रह्म हैं वह वीप रहित हैं समस्त शक्तियों से उन्नत और अस्पर्श कर हैं । ब्रह्म असी है जीव अंत है । जीव बणु है, भक्तका है । भक्ति से ही मुक्ति सम्भव है । राधा यहाँ स्वकीया रूप में पड़ी है । 'ब्रह्मभेदार्त' तथा 'वर्म संहिता' के आधार पर राधा और कृष्ण के विवाह की भी कल्पना की गई है । निम्बार्क मूर्त्य के अवतार भी माने जाते हैं । 'वेदान्त पारिजात सौरभ' तथा 'ब्रह्मलोकी' इनके प्रभाव ग्रन्थ हैं । इनका किता 'सविधेय निर्विधेय श्री कृष्ण स्तवराज' नामक ग्रन्थ भी मिलता है । इनके सम्प्रदाय को 'सनक सम्प्रदाय' या 'हंस सम्प्रदाय' भी कहते हैं ।

अनु सम्प्रदाय —रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य द्वारा संस्थापित वैष्णव धर्म के विविध रूपों की सामूहिक अभिव्यक्ति के लिए 'अनु' सम्प्रदाय का प्रयोग होता है । 'अनु' सम्प्रदाय के साथ ही ब्रह्म स्व

विष्णु और सनकादिक आदि चार देवताओं को सम्मन्त्र किया जाता है। यद्यु-  
सम्प्रदाय के साथ इन चार देवताओं के नामों के सम्मन्त्र करने का प्रथम संकेत  
'पञ्चपुराण' में मिलता है—

सम्प्रदाय विहीमा ये भगवास्ते निष्कला मताः।

अथ कसौ भविष्यति चत्वारः सम्प्रदायिनः।

यी श्च सः सनक वैष्णवा जिति पावना

चत्वारस्ते कसौ देवि सम्प्रदाय प्रवर्तकाः क्षत्रिय पुराण।

एषा बहुम सम्प्रदाय सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ १६।

वैष्णव सम्प्रदाय के इन भाषाओं ने प्रस्थानत्रयी अर्थात् 'उपनिषद्,' 'गीता' और 'श्रुत सूत्र' पर भाष्य लिखे हैं। इस प्रकार की चारणा प्रचलित मिलती है कि  
भिन्न-भिन्न माम्मताओं को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने की भावना से 'प्रस्थान  
त्रयी' पर भाष्य प्रस्तुत करना आवश्यक अथ के रूप में स्वीकार किया गया। इन  
भाषाओं के पूर्व संकराचार्य का 'प्रस्थान त्रयी' पर भाष्य मिलता है। रामानुजा  
चार्य के भाष्य भी उपलब्ध होते हैं, परन्तु अन्य भाषाओं के 'प्रस्थान त्रयी' भाष्य  
पर नहीं मिलते हैं। निम्बार्क का केवल 'श्रुतसूत्र' पर 'पारिजात सीरस' नामक  
भाष्य उपलब्ध होता है। इस प्रकार 'प्रस्थान त्रयी' पर भाष्य लिखने की परम्परा  
का निर्वाह इन समस्त भाषाओं में एक रूप में उपलब्ध नहीं होता है।

रामानन्द :—रामानन्द रामानुजाचार्य के 'श्री सम्प्रदाय' के अन्तर्गत आते  
हैं। इस सम्प्रदाय को 'रामोपासना सम्प्रदाय' भी कहते हैं। यद्यपि श्री सम्प्रदाय  
का स्पष्ट शास्त्रीय विधान नहीं मिलता परन्तु इसके प्रमुख तत्वों में निश्चिन्ता  
हैत सिद्धान्त अष्टाक्षर मंत्र और ब्राह्मसागर सिद्धान्त प्रमुख हैं। रामानन्द ने ध्यान  
के लिए लयमय और सीता से युक्त राम के स्वरूप की प्रस्तावना की है। उन्होंने  
वैकुण्ठ के स्थान पर साकेत को परम धाम के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार  
रामानन्द राम को विष्णु के अवतार रूप की कल्पना करते हैं। रामानुजाचार्य  
में कर्म काण्ड के प्रति आग्रह मिलता है, परन्तु रामानन्द में कर्मकाण्ड के विप-  
रीत भक्ति-भावना की प्रधानता मिलती है। अतः इनमें सर्व साधारण के लिए  
भक्ति के स्वरूप का निर्धारण मिलता है।

श्री बल्लभाचार्य—श्री बल्लभाचार्य का जन्म ऐकगु प्रवेश में संवत् १५१५ में हुआ था। इनके पिता विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बल्लभाचार्य भैरव के समकालीन थे। बल्लभ अष्टि के अवतार माने जाते हैं। आधुनिक दृष्टि से इनका सिद्धान्त भूदाष्टय भाव का है। कृष्ण को उन्होंने ब्रह्म माना है तथा सगुणी स्त्री है, वैश्वानर उनकी कीड़ाभूमि है। ब्रह्म मामा में निहित नहीं होता। ब्रह्म के तीन रूप हैं परब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और व्यक्त ब्रह्म। इन्हें आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक भी कहा गया है। ब्रह्म अपनी सवित्री शक्ति द्वारा उग्र, सन्निता शक्ति द्वारा शिव और शक्तिनी शक्ति द्वारा ज्ञानेश्वर का अविर्भाव करता है। बल्लभाचार्य के अनुसार जीव के तीन स्वस्व होते हैं। (१) पुष्टि जीव जो स्वभाव के अनुग्रह पर ही अवलम्बित है, नित्य लीला में प्रवेश पाते हैं। (२) मयीका जीव जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं। (३) प्रवाह जीव जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में ही लगे रहते हैं। जीव निश्चय हैं उनकी कर्त्तव्य नहीं होती है। जीव भय है, बीजात्मा सादा है। वह व्यक्त रूप नहीं होता। उसका केवल आधिभौतिक और तिर्योग्य होता है। इनके सिद्धान्तों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(१) भक्ति के लिए भक्तान् का अनुग्रह (पौषण) अनिवार्य है।

(२) भक्ति ही मुक्ति का एकमात्र साधन है।

(३) राधा कृष्ण की आत्म-शक्ति है।

(४) श्रीकृष्ण का आत्म-रूप ही उपास्य है। इसके साथ मायुर्ग भाव से प्रेरित राधा कृष्ण का युक्त रूप भी उपास्य है।

(५) भक्ति दो प्रकार की है—(१) मयीका भक्ति (२) पुष्टि भक्ति। साधन-साधक्य भक्ति मयीका भक्ति है और साधननिर्लेप्य भक्ति पुष्टि भक्ति है, जो भक्तान् के अनुग्रह पर ही आधारित है। अपनी लीला के विकास के लिए भक्तान् सृष्टि की रचना करता है।

(६) पुष्टि के चार स्वस्व हैं—(क) प्रवाह पुष्टि—अर्थात् संसार के मध्य ही भक्ति करना। (ख) मयीका पुष्टि—संसार से अनाकर्षित रहकर कृष्ण का मुक्तमान करना। (ग) पुष्टि-पुष्टि—कृष्ण के अनुग्रह में प्राप्त भक्ति। (घ) मुष्टि पुष्टि केवल प्रेम-अनुग्रह के आधार पर कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करना।

बहुभाचार्य के प्रमुख ग्रन्थ हैं—(१) पूर्व मीमांसा भाष्य, (२) उत्तर मीमांसा या ब्रह्मसूत्र भाष्य । यह अनुभाष्य के नाम से भी प्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ में बहुभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद सिद्धान्त का स्वल्प विस्तार किया है । (३) टीमदुमायवत की सूक्ष्म टीका और सुभाषिणी टीका । (४) उत्तर धीप निबन्ध । 'अथ भाष्य' आचार्य बहुभाचार्य समाप्त न कर सका । अन्त के डेढ़ अध्याय की पूर्ति उनके पुत्र विष्णु नाथ ने की ।

**श्रीकृष्ण चैतन्य** —चैतन्य स्वामी के पूर्व गोकीर्ण बेंगल धर्म के स्वल्प संस्थापन का प्रयास बड़ गोस्वामी द्वारा किया है । चैतन्य हाथ इस भक्ति-मार्ग को विशेष प्रसार मिष्टा है । चैतन्य का जन्म सन् १४८२ में बंगाल में हुग्रा बा और ईश्वरपुरी नामक बेंगल भक्त से से दीक्षित हुए थे ।

इस प्रकार की भावना विकसित है कि चैतन्य से जिस भक्ति-मार्ग का प्रस्तुत होता है, वह भाष्य सम्प्रदाय की भक्ति भावना पर ही अवलम्बित है । परन्तु भाष्य की क्लृप्त-मार्ग और चैतन्य की चित्तन-मार्ग में अन्तर है । मध्वाचार्य के समान चैतन्य 'प्रम्यालनमी भाष्य' सिद्ध की ओर आकर्षित नहीं प्रतीत होते । भाष्य की धारणा है कि हरि ही सर्वोच्च तत्त्व हैं अथवा सत्य है अथवा का मेर वास्तविक है । जीव हरि के अनुचर हैं । हरि-सुख की अनुभूति ही मुक्ति है । भक्तका भक्ति ही मुक्ति का स्रोत सपाय है । वेद का अर्थ विष्णु है । आत्म के साक्ष्य प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान हैं ।

चैतन्य भाष्यकार को ही वेदान्त का भाष्य मानते हैं । बहुत सम्भव है इस कारण ही उनके नाम से 'प्रस्थानत्रयी' पर भाष्य नहीं किया है । परन्तु चैतन्य के अनुयायी के नाम से 'योगिन्य भाष्य' नामक रचना उपलब्ध होती है । चैतन्य के अनुसार श्री कृष्ण के क्षण और निर्गुण दो रूप हैं । कृष्ण ब्रह्म राम, आभय तत्त्व, पराकृति लीलामय, लीला पुरुषोत्तम और माधुर्य-मण्डित हैं । मध्वाचार्य की भक्ति भावना में इस प्रकार के भाव उपलब्ध नहीं होते हैं । 'मागवत' में उपलब्ध 'रास पञ्चाध्यायी' भावना का स्वल्प भाष्य में उपलब्ध नहीं होता है । चैतन्य में 'रास' एक महत्वपूर्ण अंश है । चैतन्य के अनुयायी रूप लनात्म और जीव गोस्वामी भक्ति-वत्ता का विशेषण रास-रास के अनुसार करते हैं । बंगाल में पीढ़ीय बेंगल भक्ति के स्वल्प का स्पष्ट विकास 'विद्या भूषण' के

‘मोक्षिन्ध भाष्य’ के पश्चात् ही हुआ समया है। रूप और सनातन मोस्वामी-कृत ‘मीसमनि’ और ‘हरि भक्ति रसामृत’ में सिद्धान्त निरूपण के प्रयत्न दृष्टिगोचर होते हैं। चेतन्य ने माधुर्य भाव की भक्ति के प्रति भावना प्रकट की है।

स्वामी हरिदास—हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक आसबीर माने जाते हैं। इलाही मृत्यु के पश्चात् हरिदासपुर निवासी हरिदास इस सम्प्रदाय को एक नवीन रूप देने का प्रयत्न करते हैं। हरिदास के सम्प्रदाय को ‘सखी सम्प्रदाय’ कहा जाता है। टट्टी संस्थान नाम से इस शाखा के एक स्वतन्त्र रूप का उल्लेख भी मिलता है। इस भक्ति चारा की मूल भावनार्थ इस प्रकार है—

(१) नित्य बिहारी भुवक मूर्ति का ध्यान।

(२) रसिक के रूप में सखी भाव से राधा-कृष्ण की कपासना। भागवत रसिक इस सम्प्रदाय का परिचय निम्नलिखित रूप में देते हैं—

बीज इस निक सोय नाम रूप भूत परिहरे।

रसिक कहावे सोय, ज्यों बक छोड़ै सर्कर।

दिया कहै सब कोय एक तुल पावक मिले।

तमहि नसावै सोय वस्तु मिले भगवत रसिक।

स्वामी हरिदास-कृत ‘केळिमास’ नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है। इसमें सिद्धान्त-सम्बन्धी पद संग्रहीत हैं। इस प्रकार की भावना प्रचलित है कि हरिदास का सखी सम्प्रदाय निम्बार्क की चिन्तन-चारा पर आधारित है। परन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय तथा हरिदासी सम्प्रदाय में ठाठिक भेद है निम्बार्क में दर्शन की प्रधानता है और सखी सम्प्रदाय रस-भक्ति प्रधान सम्प्रदाय है।

हित हरिचंदा और राधाबल्लभी सम्प्रदाय—मोस्वामी हित हरिचंदा राधाबल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। माधुर्य भाव की प्रेम छाया भक्ति के परम स्वरूप का विकास इनकी भक्ति-प्रवृत्ति में उपलब्ध होता है। इस भक्ति-परा का सम्बन्ध बंगाल की गौड़ीय भक्ति से नहीं है। गौड़ीय भक्ति में विप्रसम्भ एक अनि-वार्य भग माना गया है। यहाँ राधा के परकीया स्वरूप की संस्थापना मिलती है। परन्तु मोस्वामी हित हरिचंदा राधा के स्वकीया स्वरूप की वक्ष्यता करते हैं और अपनी भक्ति के सम्बन्ध में विप्रसम्भ तत्त्व को वे स्वीकार नहीं करते हैं। स्वकीया होते हुए भी राधा स्वतन्त्र है। राधा सुधानिधि’ नामक ग्रन्थ में अपने मठ का

प्रतिपादन करते हुए वे स्पष्ट रूप में कहते हैं कि राधा ही परम उपास्य और आराध्या हैं। कृष्ण राधा के अनुरूप हैं। 'राधा' के इस स्वरूप की उपासना के लिए वे 'रसोपासना' छन्द का प्रयोग करते हैं।

हिन्दुओं के मुख्य मन्त्र कवि—जीवनजी और रचनार्यों

बल्लभाचार्य सन् १४६२ में इस में आए और उन्होंने मोक्षार्जन संबंध पर श्री नायकी की मूर्ति की संस्थापना की। बल्लभाचार्य का स्थायी निवास-स्थान प्रयाग के निकट बड़े नायक स्थान था। २० वर्ष की आयु में उन्होंने काशी में अपना निवास किया था। सन् १५०९ में उन्होंने श्री नायकी की मूर्ति की संस्थापना नवीन स्थिति में की। अग्रन्तः-प्राचा में बल्लभाचार्य और चैतन्य का स्थान हुआ था। सन् १५१० में काशी में इनका स्वर्णवास हुआ।

विदुक्तनाथ—आचार्य बल्लभ की मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे पुत्र गोपीनाथ सम्प्रदाय के आचार्य नियुक्त हुए। उन्होंने मुबरात में पुष्टि मार्ग का प्रचार किया परन्तु इनका उद्धारभाग बलि दीप्त हो गया। अतः इनके छोटे भाई विदुक्तनाथ सम्प्रदाय के आचार्य नियुक्त किए गए। विदुक्तनाथ का जन्म सन् १५१५ में हुआ था। सन् १५३० में इनका नियुक्ति रूप के आचार्य रूप में हुआ। विदुक्तनाथ सन् १५६६ में जब आए और उन्होंने वैसे अपना निवास-स्थान बनाया। सन् १५७१ में अकबर ने सोनूख की मूर्ति इन्हें उपहार-रूप में दी। इनकी मृत्यु सन् १५८५ में हुई। विदुक्तनाथ ने अपने पिता के कल्पित ग्रन्थों की टीकाएँ लिखीं जिसमें 'अथ नाथ्य तथा 'ओ बुद्धिमानों' की टीकाएँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके अन्तर्गत ग्रन्थों में 'विदुक्तनाथ चरित्रनिर्णय' और 'शुद्धार रस सम्बन्ध' का विषय प्रसिद्ध ग्रन्थों हैं। उन्होंने अपने सम्प्रदाय का संयोजन बलि संप्रदाय रूप में किया और इसका प्रचार बलि अत्यन्त रूप में किया। उन्होंने पीलावडी के स्थिति में 'सिद्धा' की व्यवस्था की तथा सम्प्रदाय के प्रचार के सम्बन्ध में उन्होंने साहित्य और संनित के विकास में पण्डित योगदान दिया। उन्होंने अपने सम्प्रदाय के अन्तर्गत अष्टप्राय की संस्थापना की। अष्टप्राय की संस्थापना में आचार्य महान् प्रयत्न पुष्टि मार्ग को मूल अनुप्रेषण विद्यमान है। काय-रूप की दृष्टि से बल्लभ इतिहास-रूप से अष्ट प्राय के कविओं का विशेष उक्त प्रकार किया जाता है—कृष्णराज, मुद्राराज परमानन्दराज, कृष्ण दास, मन्त्रराज, चतुर्मुखदास दीव स्वायी और योगिन्य स्वायी। इनमें प्रथम बार बल्लभाचार्य के स्थिति में, और दोष बार विदुक्तनाथ के स्थिति में।

गोस्वामी गोकुल नाथ—(सन् १५५२-१५५०) योगेश नाथ विदुक्तनाथ के बड़े पुत्र थे। गोकुल नाथ आचार्य की 'बीराधी योगियों की वाणी' तथा विदुक्त-



नाम की 'शेरी बावन बीजवन की बाती' मौखिक रूप से भक्तों के मध्य प्रचलित थी। योक्तु नाब मे इन बातीओं का सम्पादन किया था।

गोस्वामी हरिराय — (सन् १३८०-१७१३ ई०), योक्तु नाब के परनाए बल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी हरिराय का नाम विद्यप आवर के साथ लिया जाता है। 'शौरसी' तथा 'शेरी बावन बीजवन की बाती' पर इन्होंने 'भाव प्रकाश' नाम से टीकायें लिखी हैं।

कुमनदास — कुमन दास का समय अनुमान से सन् १४६८-१५८२ ई० के मध्य माना जाता है। अष्टछाप के कवियों में कुमनदास ने सबसे पहले आचार्य बल्लभ से बीसा की थी। ये मोक्षार्णव पर्यंत के निवासी थे और जाति के क्षत्रिय थे। इस प्रकार की किशकृती है कि मान सिंह के अपूर्व दान-व्यवहार का इन्होंने विस्कार कर दिया था। भक्त को कहा सीकरी सों काम' बासा पर इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। कुमन दास के पदों में बल्लभ सम्प्रदाय की साम्प्रदायिक भावना पूर्ण रूप में उपलब्ध हो जाती है। इनके पदों 'दानकीका', 'रास', 'दीपमासिका', 'मोक्षार्णव पूजा', 'बसन्त', 'वमार' आदि शीर्षकों में विभक्त हैं। छीसा-सम्बन्धी पदों का विभाजन 'मासक चोरी', 'मुरली हरण', 'स्वामिनी स्वस्व वर्णन', 'मुदक स्वस्व वर्णन', 'मुष्टान्त', 'सन्निता' और 'विरह' आदि शीर्षकों में विभक्त हैं।

सूरदास — सूरदास के जन्म-समय और जन्म-स्थान के विषय में जो सामग्रियाँ और विचार अभी तक उपलब्ध हैं उनमें एक बपता नहीं है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय' में डॉक्टर बीनवयास गुप्त ने इस प्रकार का निर्णय किया है कि सूरदास का जन्म विष्णु के निकट मुड़मौब जिसे के अन्तर्गत सीही नामक ग्राम में हुआ था। बाती साहित्य के अन्तर्गत सूरदास की बीजनी से सम्बन्धित बातीओं में 'शौरसी बीजवन की बाती' का विशेष महत्व है। यह शब्दों रूपों में आज उपलब्ध है। प्रथम, मूल 'शौरसी बीजवन की बाती' द्वितीय गोस्वामी हरिराय द्वारा 'भाव प्रकाश की टीका' सहित 'शौरसी बीजवन की बाती'। इनमें प्रथम को अधिक प्रामाणिक माना जाता है। हरिराय ने 'भाव प्रकाशन' में लोक-जीवन में प्रचलित किशकृतियों का भी योग किया है। अतः मूल बाती में सूरदास हैं सम्बन्धित जो सूचनायें नहीं मिलती हैं उनकी पूर्ति 'भाव प्रकाशन' से हो जाती है। 'बल्लभ सम्प्रदाय' में इस प्रकार का विश्वास मिष्टा है कि सूरदास बल्लभाचार्य से कम रिन छोटे थे। बल्लभाचार्य का जन्म बेचापगुप्त १०, सन् १३९३ (सन् १४७८) को हुआ था। अतः इस कारण के अनुसार सूरदास का जन्म बेचाप गुप्त ३ संवत् १३९३ (सन् १४७८) में हुआ था। श्री हरिराय द्वारा 'भाव प्रकाश' से भी इस कारण का समर्थन होता है। 'भाव प्रकाश शौरसी बीजवन की बाती' के अनुसार सूरदास अपने जन्म-स्थान सीही

से भार मील के अन्तर पर अपने कुछ दिव्यों के साथ सन्धास-जीवन व्यतीत कर रहे थे। मूक 'बोरासी बेलकन की बातों' के अनुसार अपने दिव्यों के साथ मूर-दास आबरा और मयुरा के मध्य स्थित यऊनाट नामक स्थान पर सन्धास जीवन व्यतीत कर रहे थे। मूरदास और बहुमाचार्य का मिलन यऊनाट नामक स्थान पर ही हुआ था। इसका लक्ष्य इस प्रकार लिखा है। "तो यऊनाट ऊपर मूरदास ऐसे एक स्थानके दिन पाछे भी आचार्य की महाप्रभुन बापु बड़ेन तें सब हूँ पचाय्य हूँ × × × सो बानी बाप के मूरदास को सबर करी जो मूरदासकी बाप यहाँ की बहुमाचार्यकी पचारे हैं। सो जिनने काछी तें तब दक्षिण में पावाकाव कछन किमी है और अछि माग स्थापन किमी है।" मूर ने आचार्य के दर्शन किये। आचार्य ने मूरदास से कहा 'बो मूर ! कबु भगवत सब बरलन करो।' मूरदास ने विनय के दो पद सुनाये। विनय के पद पर आचार्य ने कहा 'बो मूर !' के ऐसे निर्विघात काहे को हैं। सो तासों कबु भगवत लीला बरलन करि।' इस पर मूर दास ने निवेदन किया 'मैं कबु भगवत लीला समुपेत नहीं हूँ। बहुमाचार्य ने कहा 'मूर की बयुनाजी में स्नान करि जाओ जो हम

१ (क) हरि, हौं सब पठितन की नायक ।

को करि सकैं बराबरि मेरी और नहीं कोउ नायक ।  
जो प्रभु अनामिल की बीनहूँ, सो पाटी लिखि पाऊँ ।  
तो विश्वास होइ मन मेरी औरो पठित बुलाऊँ ।  
बचन बाहूँ से बहो नौहि बे, पाऊँ सुख अति मारी ।  
सह मारन बीमुने बलाऊँ ती पुरी धोपारी ।  
पह मुनि अहाँ वहाँ तें विमिटें बाद होइ एक ठोर ।  
बन के तो बापुन से जायी बेर बहुत की और ।  
होइ होइ मनहि मावने किम् पाप जरि पेट ।  
ते सब पठित पाम-तर कायें बड़े हमारी घेंट ।  
बहुत बरोसी नामि मुम्हारो, सब कीन्हें भरि माँझी ।  
लीजै बेसि भिबेरि छुछही, मूर पठित की बाँझी ।  
केरि दूसरो पद मायी । सो पर—  
प्रभु, हौं सब पठितन की टीको ।  
और पठित सब दिवस बारि के हौं ती बनपट हीकी ।  
बनिक अनामिल पमिका तारी, और पुतना ही को ।  
मोहि छौड़ि तुम और बचारे मित्रे मूर क्यों की को ?  
कोउ न संसारन अब करिये को धरि कहत ही कीकी ।  
मरिगत लाव मूर पठितनि में, मोहूँ तें को नीकी ।

समुझाय देंगे।' सूरदास स्नान कर आए। आचार्य ने सूर को 'नाम सुनाया' और इसके पश्चात् 'समर्पन' करवाया। आचार्य ने 'दसम स्कन्ध' की अनुक्रमिका की भी उसे सुनाया। सूर को कैफ़र आचार्य बोधधर्म पर श्रीनाथजी के निष्ठ पढ़ने। वहाँ आचार्य की अनुमोक्षा से सूरदास ने कीर्तन-स्वल्प 'अब मैं गाव्यो बहूद मोपाब', 'कहाँ री, कलि चरन सरोवर, वहाँ न प्रेम बियोय' 'प्रब मयी महिर के पुत अब यह बात सुनी, और सोमित कर मन्नीठ छिए, आसि परो की रचना की।

'चौपसी बेष्मक न की बातों' में इसका उल्लेख नहीं मिलता कि सूर दास के जीवन में यह कटना कब बटित हुई। चिट्ठक्याप के छठे पुत्र मधुनाथजी ने संवत् १६१८ में 'श्री बल्लभ विज्जिबय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ के अनुसार बल्लभाचार्य अपने विवाह और सुतीर प्रवर्तिना के पश्चात् अठेक से अब आए और गऊनाट उत्तरे और उन्होंने सूरदास सारस्वत पर अनुग्रह किया। बल्लभाचार्य ने तीसरी प्रवर्तिना संवत् १५६७ में समाप्त की थी। उनका विवाह संवत् १५६०-६१ में हुआ था। इस प्रकार सूरदास बल्लभसम्प्रदाय में संवत् १५६७ में दीक्षित हुए लगते हैं। उस समय सूरदास की अवस्था लगभग ३२ वर्ष की थी।

सूरदास की बीवनी पर विचार करते समय विचारकों का ध्यान इस प्रकार की विज्ञासा प्रकट करता रहा है कि सूरदास की आसि क्या थी। मूल 'चौपसी बेष्मकन की बातों' में सूरदास की आसि का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु हरिराय-कृत 'माध प्रकाश' में सूरदास के सारस्वत ब्राह्मण होने का उल्लेख मिलता है 'अब भी आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सूरदासजी सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सीहो मौम हैं वहाँ रहते तिनकी बातों को माध कहते हैं'। हरिराय द्वारा प्रस्तावित मूलदास की इस बातों पर विश्वास नहीं किया जाता है। हरिराय ने 'माध प्रकाशन' की रचना संवत् १७५२ में की थी। इस प्रकार सूर की मृत्यु के ती बरों पश्चात् की इस कृति में लोक-प्रभुधृतियों का भी आचार ग्रहण किया गया है। इस संदर्भ में इस प्रकार की भावना व्यक्त की गई है कि सारस्वत ब्राह्मण कोई अन्य सूरदास थे और कासक्रम से इनका व्यक्तित्व हमारे सूरदास के व्यक्तित्व में समीकृत कर लिया गया। (देखिए 'सूरदास पु० सात' के पृष्ठ २०० नवेम्बर

वनी)। परन्तु इस प्रकार की कल्पना के लिए किसी प्रकार का स्पष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध किया गया है। सुरदास के नाम से प्रचलित 'साहित्य लहरी' का ११८ वीं पद भी इस विवेचना के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया जाया है। उससे कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

प्रथम ही अक्षर आयेते में प्रकट सदमुल कय  
 लहाराव विचारि लहारा राखु नाम अनुप  
 × × ×  
 पार पायन सुरज के किनु बहिरि अस्तुति कीन।  
 लामु बंध प्रसंस में श्री चम्प चार लकीन।  
 × × ×  
 मयो लसो नाम सुरज बंध भंड निकाम।  
 × × ×  
 रही सुरजचम्प हयते हीन मर बर डोक।  
 × × ×  
 परो कूब पुकार काहू सुनी ना संसार।  
 छावै दिन बाह महुपति कियो जाय उचार  
 नाम राखे मोर सुरजदास सुर सुरायाम।  
 × × ×  
 निम प्रथ कपास को है नाम पुर निकाम।  
 सुर है मन्दन नू को लियो मोल मुलाम।

इसके अनुसार सुरदास चम्पवरदाई के बंधन और लहारा महु थे। वस्तु निर्विवाद है कि यह पद सर्वप्रथम सरदार कवि द्वारा रचित 'साहित्य लहरी' की टीका में मिलता है। और वास्तविकता यह सक्ती है कि सरदास कवि ने इस पद की रचना स्वयं ही की थी। सरदार कवि के पूर्व इस रचना का उल्लेख किसी सम्बन्ध में नहीं मिलता। कृष्ण-बन्ध-सम्बन्धी पदों में यम-तम 'काही' और 'जमा' शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं।

मूल 'बीघरी बाघी' में सुरदास के माया पिता का उल्लेख नहीं मिलता। 'भाव प्रकाश' के अनुसार मन्नास ने सीही जाम के एक निर्वर्ण आहार के पर

जन्म किया था और सुरदास अपने पिता की बीबी सम्भाल थे। इसके अतिरिक्त यहाँ भी अन्य विशेष उत्केषणीय सूचना नहीं मिलती है। सुरदास के जन्म के पर्वों से उनके जीवन के विविष्ट सम्बन्धों का परिचय नहीं मिलता है। इन पर्वों में कवि अपने को 'पतितन को टीका' वा 'पतितन को नामक' ही कहता है। इन पर्वों में एक नक्षत्र हूयम के रोग्य भाग की अभिव्यक्ति है। इससे कवि की वांछि या उसके जन्म से सम्बन्धित निर्णय नहीं किया जा सकता है। सुरदास को साम्प्रत्य जीवन का सौभाग्य सम्भवतः नहीं मिला था। छोट-बीजन में यह विश्वास प्रबलित रहा है कि सुरदास किसी कम्बली पर बाधकित हुए थे। इसे अपराध मानकर इन्होंने अपने नेत्रों को लुप्त कर दिया था। वास्तविकता यह है कि यह घटना किसी मदनमोहन सुरदास जन्मा विश्वमंथक सुरदास के जीवन की है। परजर्ती काळ में इस घटना को सुरदास के जीवन के साथ सम्बद्ध करने का प्रयत्न आसह मिलने लगता है। कवि के व्यक्तित्व के विस्तार में हम आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रणाली का आचार ग्रहण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि सुरदास का हृदय मारी के सम्पर्क की कोमलतम अनुभूतियों से परिष्कृत था। इनके काव्य में साम्प्रत्य प्रेम और स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के सजीव चित्र मिलते हैं। जिनमें के बाह्य और आन्तरिक आकर्षणों का अत्यन्त नैसर्गिक विस्तारण सुर के काव्य में उपलब्ध है। यही कारण है कि हम सुरदास के साम्प्रत्य जीवन की कल्पना जन्मा मारी-वासिनि की कल्पना के लोभ का संवरण नहीं कर पाते हैं।

'बोरासी वार्ता' में सुरदास और अकबर के मिलन का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु इस घटना की निश्चित तिथि या निश्चित संवत् का उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है। यह अनुमान किया जाता है कि अकबर और सुरदास का मिलन सम्भवतः संवत् १५३९ में हुआ था (सुरदास ४०० अजेरवर बर्मा पृ० १)। 'आईन-ए-अकबरी और 'मुमिनात अमुल-कजल' में सुरदास की बर्मा एक वाक्य के रूप में है। यहाँ उनके पिता का नाम रामदास ग्रासेरी मोमन्दा (मोमन्दा) कहा गया है। परन्तु यह वाक्य अधिक स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखता है। मुमिनात के सुरदास और अकबर के दरबार के सुरदास दो स्वतन्त्र व्यक्ति थे।

‘गोसाईं चरित्र’ में बेबीसायब दास ने गोस्वामी तुलसी दास और सूरदास के मिलन का उल्लेख किया है। यह घटना सम्भवतः संवत् १६१६ की है। सूर दासने तुलसी दास की कविता सूरसागर की रिकामाया जा, इसका उल्लेख गोसाईं चरित्र में मिलता है। यथा—

सोछ्छै सोरस क्ये कामव विरि निग दास ।

सुनि एकांत प्रवेश बह बाएँ सूर सुवास ।

कवि सूर विद्याएत सामर को सुनि प्रेम कथा गट नापर को ।

इस वर्णन की प्रामाणिकता सन्देह है। गोसाईं दास ने ‘मल्ल दास’ में सूरदास का जो वर्णन किया है उससे उनकी जीवनी का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। उनके विवरण से केवल इतना ही परिचय मिलता है कि सूरदास की काव्य प्रतिभा अति उच्च कोटि की थी। इससे सूरदास के कवि-रूप का परिचय मिलता है।

सूर कवित सुन कौन कवि को नहिँ सिर बासन करे ।

उठि, बोक अनुप्रास बरन बसियसि अरि भारी ।

बचय प्रीति निर्वाह जय अमुमुष तुक पारी ।

प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हुअ हरि सीसा नासी ।

बनम करम तुम कम सने रखता परकासी ।

बिमल बुद्धि युग और की जो बह युग बकानि बरे ।

सूर कवित सुन कौन कवि को नहिँ सिर बासन करे ।

सूरदास मन्त्र थे। परन्तु वे ब्रह्मानन्द ने कविता श्राव को कल्पे हुए, इस का निर्बंध भी सम्भावित नहीं लगता है। मूक ‘बीरासी बार्ता’ में सूरदास के ब्रह्मा बन्ध होने का वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु गोस्वामी हरिराय ने ‘माधवकाव्य’ में सूरदास के ब्रह्मानन्द होने का उल्लेख किया है ‘सो सूरदास के ब्रह्मद ही सो मेर नाही है, और वेचन को आकार पड़ेका कसू नाही है। ऊपर भीह माय है।’ इस प्रकार उन्होंने सूरदास को निर्बिबाध रूप से ब्रह्मानन्द बतकाया है। सूरदास का संकल्प निर्बिबाध है परन्तु वे कब कल्पे हुए इस सम्बन्ध में मिश्रणों में मगमगे हैं।<sup>१</sup>

१. देखिए ‘सूर निर्बंध’ पृष्ठ ६१ ‘अष्ट छांद परिचय’-पृ० १२३ प्रमु-रमास नीतल ।

विद्वानों का यह भी कहना है कि बल्लभाचार्य से मिलन के समय सूरदास कदा हीन नहीं थे । इस निर्णय के लिए यह आधार ग्रहण किया जाता है कि 'सूरदास' ने बल्लभाचार्य का 'दर्शन' किया था । सूरदास के नोकुल और श्री माध भी के दर्शन के ही उल्लेख मिलते हैं । मृत्यु के पूर्व सूरदास ने विट्ठलनाथ के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की थी । परन्तु 'दर्शन' स्वयं के बोधार्थ से हम स्पष्ट निर्णय नहीं ले सकते । 'दर्शन' एक व्यापक अर्थ-पूर्ण शब्द है । अपने आत्मोन्मत्त स्वर्ग में दर्शन को 'मानस-दर्शन' के रूप में ही ग्रहण करना अधिक संभव होया ।

'गोरासी वैष्णव की बातों' के अनुसार सूरदास की मृत्यु पारसोली ग्राम में मोस्वामी विट्ठलनाथ के सम्मुख हुई थी । हरिराय ने 'भाव प्रकाश' में भी इस घटना का वर्णन किया है—'सो तब सूरदासजी अपने मन से यह विचार कर के परासीली जाये + + + तब श्री गोसाईंजी आप जाने जो भगवत इच्छा सूरदासजी को बुझाये की गई है । + × सो तब श्री गोसाईंजी आप श्री मुक्त सो सारे वैष्णव सो यह आज्ञा किये — जो पुष्टि मारण को बहाब' बात है सो आपको कहु सैनो होय सो भेट और वहाँ जायके सूरदास जी को देखो । इस प्रकार की स्पष्ट सूचना मिलती है कि विट्ठलनाथ के सम्पर्क में सूरदास सम्बत् १६३४ वि० तक रहे । विट्ठलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई । अतः सूरदास की मृत्यु संवत् १६३२ के पश्चात् और १६४२ के पूर्व ही हुई होगी । विचारकों की यह धारणा है कि सूरदास की मृत्यु संवत् १६४० वि० में हुई होगी । इस प्रकार सूरदास की आयु सो वर्ष से कुछ अधिक थी । सम्प्रदाय में प्रवेश करने के ७८ वर्ष और बल्लभाचार्य के निधन के २३ वर्ष पश्चात् ( बल्लभाचार्य का निधन संवत् १२८७ ई ) सूरदास का देहावसान हुआ ।

सूरदास की जीवनी से सम्बन्धित समस्त उल्लेख सामग्रियों से जो निष्कर्ष उत्पन्न होते हैं, उन्हें इस रूप में रत्न सकते हैं—

[क] सूरदास और बल्लभाचार्य का मिलन गऊ बाट पर हुआ था और यह मिलन संवत् १२६१ अथवा उसके लगभग समय बाद ही हुआ होगा ।

[ख] गोस्वामी विट्ठलनाथ के जीवन काल में ही सूरदास की मृत्यु हुई होगी । यह घटना संवत् १६३२ १६४१ के मध्य किसी समय घनी होगी । सूरदास के

निघन के समय मिट्टकनाथ के अतिरिक्त गुगुनबदाम कुंभन बास, गोविन्द स्थानी और रामबास तबधमान थे।

[४] सूरदास अपने थे, परन्तु वे अन्धगन्ध थे, इस विषयास का पंचन नहीं हो पाया है। सूरदास यादव और जाधु कवि थे। वे आरम्भ में वास्य-रोहि से प्रकट करते थे। वस्तुभाषार्थ के सम्पर्क से कुम्भ के वास्य-रूप की प्रकट उनमें स्फुटि हुई। मिट्टकनाथ के सम्पर्क से वे दासा-कुम्भ की मूल्य मूर्ति के उपासक हो गए। [५] सूरदास ने धायवत् के दारुण स्वरों पर पद-रचना की थी, जो काम क्रम से 'मुर सावर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अन्ध वास्य से सूरदास की जोकनी निषीर्ण में कोई सहायता नहीं मिलती और बास्य वास्यों पर ही हमें अवलम्बित रहना पड़ता है। लोक-जीवन सदैव से सूर के पदों के प्रति आकर्षित रहा है। इसका परिचय नीचे दिये दोहे से दिष्ट जाता है—

'सूर' सूर 'कुम्भी' लसी उकुम्भ कैसकरास।

अब के कवि लखोत सम बहै गई करत प्रकास।

तान तन के नाम से प्रसिद्ध इस दोहे से भी सूरदास के काव्य की व्यापकता तथा उसकी जोक प्रसिद्धि का परिचय मिल जाता है—

किन्ही सूर को घर लम्बो, किन्ही सूर की पीर।

किन्ही सूर को पद लम्बो तन मन बुनव लगीर।

सूरदास की रचनाएँ—सहाकवि सूरदास निम्नलिखित काव्य-कृतियों के रचयिता माने जाते हैं—

(१) सूर सागर (२) सूरसारानली (३) छाहिर्य कदरी (४) नापकत भापा (५) इष्टम स्तम्भ भापा (६) सूर सागर छार (७) सूर रामावन (८) मान लीला (९) दासा रस कैसि कौमुद (१०) गोवर्धन लीला (११) दल लीला, (१२) मेवर बीठ (१३) नावलीला (१४) व्याहृको, (१५) प्राण प्यारी (१६) इष्ट मूद के पद (१७) सूर कलक (१८) सूर लाली (१९) सूर पत्नीसी (२०) सेवा फल (२१) सूरदास के नियम के पद (२२) हरिवंश टीका (संस्कृत) (२३) एकादशी म्हात्म्य गण दयवन्दी या गण दयन (२४) राम नाम।



इन कृतियों में से सभी सूर दास की है, इस कथन पर विश्वास नहीं होता है। ये रचनाएँ एक से अधिक सूरदास की हैं। अष्ट छाप के सूरदास ॥ अतिरिक्त मायक सूरदास रामानन्दी सूरदास संकेत निवासी सूरदास, बभारस निवासी सूरदास और कन्ननऊ निवासी सूरदास ( नर दमन के कवि ) नामक व्यक्तियों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने इन रचनाकारों के स्वतन्त्र स्वयं के दृष्टान्त के बिना ही इन्हें अष्ट छाप के सूर दास की रचनाओं के रूप में स्वीकार कर लिया है। सूरदास के नाम से प्रचलित विविध कृतियों पर ही यहाँ विचार किया जा रहा है।

सूरसागर—पदों की संख्या की दृष्टि से सूरसागर की विभिन्न प्रतियों में एक कृता नहीं मिलती है। परन्तु इस प्रकार की चारणा विश्वास पा गई है कि सूरदास ने सवा छात्र पदों की रचना की है। 'सूर सागर' की रचना 'मायक के द्वापर स्कन्धों के आधार पर हुई लगती है। इसकी ओर सूरदास ने संकेत भी किया है—

भी मुख चारि क्लोक बए ब्रह्मा की समुद्राह ।  
ब्रह्मा नाख छो कहै नाख व्यास मुनाई ।  
व्यास कहै मुकुन्द छी द्वापर स्कन्ध बनाइ ।  
सूरदास सोई पद भाषा करि बाह । स्कन्ध १, पद २२५।

'सूर सागर' की उपलब्ध प्रतियों ने दो रूप मिलते हैं। प्रथम रूप उन प्रतियों का है, जिसका विभाजन द्वापर स्कन्धों में हुआ है। द्वितीय रूप उन प्रतियों का है, जिसका विभाजन स्कन्धों में नहीं हुआ है। प्रथम को द्वापरस्कन्धात्मक रूप और द्वितीय को संग्रहात्मक रूप कहा जा सकता है। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि अपने आदि या मूल रूप में यह एक संग्रहात्मक ग्रन्थ रहा है। इसे स्कन्धों में विभाजित करने का प्रयास बहुत बाद में किया गया है। 'सूरसागर' में उपलब्ध पदों के निम्न विभाग और भाषा-रूप में एक कृता नहीं मिलती है। इससे यह संकेत मिलता है कि सूरदास के मूल पदों के साथ अन्य कवियों के पद समय समय पर सम्मिश्रित होते रहे हैं, 'सूरसागर' के पदों के दो रूप मिलते हैं। एक रूप उन पदों का है जिसमें पदों का आकार सप्त है। ये पद पूर्णतः मुक्तक हैं। दूसरा

रूप उन पदों का है जो आकार में बड़े हैं। इन पदों में कदा-अथ है और वे वर्णनात्मक हैं।

इस प्रकार की भी बाराबा व्यक्त की गई है कि 'सूर सागर' के पद तीन आयामों में विभजे गए हैं। प्रथम आयाम के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनकी रचना सूरदास ने बल्कभाचार्य की शरण में आने के पूर्व की थी अर्थात् संवत् १५६७ के पूर्व ऐसे पद पद। इन पदों में अविकारा पद विनय-सम्बन्धी हैं। द्वितीय आयाम के अन्तर्गत वे पद आते हैं, जिनकी रचना सूरदास ने बल्कभाचार्य के सम्पर्क में की थी। इस सन्दर्भ में वे पद आते हैं जिन्हें क्रीडाविषयक पद कहते हैं। (१५६७-१५७७)। तृतीय आयाम के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनकी रचना बल्कभाचार्य की मृत्यु के पश्चात् सूरदास ने बिटठलनाथ के सम्पर्क में की थी।

'सूरसागर' दुर्गादे और उत्तरादे, इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। आरम्भ में कवि संयोजनारण के पद प्रस्तुत करता है और कहता है कि निर्गुण ब्रह्म अनुसूक्तियों में नहीं जा सकता है। वह अगम्य है। इस कारण ही कवि सयुक्त बीजा-पर भाग कर रहा है। प्रथम स्कन्ध में कृष्ण-अन्य बहारें, नाम करण यन्त्रप्रसन्न, बाह-हृदि-वर्णन, नासन चोरी दोहीहून और मोचारण आदि से सम्बन्धित पद हैं। इनके अविरल वृत्ता तृषावर्त और पञ्चदशुर-अथ हृषादि से सम्बन्धित पद निमोजित हैं। इन पदों एवं अलङ्कार से सम्बन्धित पदों में कृष्ण की अलौकिक लीलाओं का वर्णन किया गया है। इन सस्र पदों में कथोपा के वात्सल्य भाव के उद्घाटन की प्रेरणा विद्यमान है। प्रलय के अनुसार जिन भिन्न पदों में अमिताया औरसुम्न वर्ण उत्साह, अथर्व शोभ मासि रंका बिन्दा आदि भावों के सम्पर्क रूप मिलते हैं। इनके बाद राधा-कृष्ण के जीवन निरूपण करने वाले पद हैं।

वात्सल्य के बाद सूरदास श्रृंगार के अति प्रबल रूप का उद्घाटन करते हैं। वृत्त स्कन्ध के शुरूई को मुख्य संवेदना श्रृंगार-मूलक है। यहाँ भी कृष्ण के श्रृंगार-वर्णन से सम्बन्धित पद हैं। इनके अविरल मुरली-सुनि, राधा-कृष्ण मिलन और-हून रास पञ्चामास्यायी भी कृष्ण विवाह, पोकी-पीठ बह-हीड़ा रास-भाष लीला और राधा-भाग से सम्बन्धित पद हैं। और इन सब के पश्चात्

कृष्ण के मथुरा-गमन का वर्णन है। इसी सन्दर्भ में गोपी विरह तथा प्रेमर पीत की योजना भी गई है।

प्रेम-वर्णन के उत्तरार्ध पूर्वराग संयोग और वियोग भावनाओं से सम्बन्धित पद विशेष महत्व के हैं। पूर्वराग में राधा-कृष्ण की प्रेम कीकायें वर्णित हैं। 'सूर सामर' में विरह-वर्णन से सम्बन्धित दो विशेष स्वच्छ हैं : (१) अक्रूर के मथुरा-आगमन पर गोपियों की उक्षिप्ता और कृष्ण के मथुरा-गमन पर उगड़ी विरह व्यञ्जना से सम्बन्धित स्वच्छ। (२) अम्बर के आगमन पर 'प्रमर पीत' में गोपियों के विरह-दुर्ग-स्वच्छ। इस प्रकार प्रवास-अवस्था का विरह वर्णन प्रमर पीत में मिलता है। विरह की चारों अवस्थाओं—अनिसाया चिन्ता गुल-कल स्फुटि, उद्वेग, प्रकाश उन्माद व्याधि जड़ता मूर्च्छा और मरण से सम्बन्धित पद यहाँ स्पष्ट मिल जाते हैं। साथ ही नाच असीठन मस्मिता, सन्ताप पाण्डुता, कृशता, अशक्ति, अपूर्ण विरहता, तथा उन्मादता की भिन्न भिन्न स्थितियों को व्यक्त करने वाले पद भी यहाँ मिल जाते हैं।

सूरदास कुण्डोज में कृष्ण और गोपियों के मिलन की कल्पना भी करते हैं। यह सूरदास की मौलिक उद्भावना है। यह उद्भावना एक विशेष प्रयोजन से की गई है। इस प्रसंग के माध्यम से कवि सम्भवत राधा-नाचन की अभिमतता की ओर संकेत करता है।

'सूर सामर' के उल्लेख की कथा में बराहचंद्र के द्वारका आगमन के पद हैं, प्रद्युम्न-अगम, बाधामुर-वध सत्यभामा विवाह बीमामुर-वध सोनह सहस्र कुमारियों का उद्धार बाण-वध तथा बभ्रुवध विवाह, बलभद्र का ब्रह्म आगमन बलभद्र का विहार विद्यास नारद-बोध तथा बराहचंद्र-वध आदि सन्दर्भ क्रम से नियोजित हैं।

कुण्डोज में कृष्ण, दलिवली राधा तथा यशोदा के परस्पर मिलन के सन्दर्भ में देवरी के ६ पुत्रों के उद्धार की कथा भी वर्णित है। पुत्रः केर कृष्ण की स्तुति करते हैं। गुमरा-हरण अर्जुन-गुमरा-विवाह, बकामुर-वध तथा भृगु-परीक्षा आदि से सम्बन्धित आख्यानों के पद भी यहाँ संकलित हैं।

सूरसाराबली — 'सूर नाराबली' को 'सूर सागर' की भूमिका कहा जाता है। इस कृति में भाष्यवत् की कथा अति संक्षेप में वर्णित है। कनिष्ठ विचारक

इसे सूरदास की रचना नहीं मानते हैं। इन विचारकों में डॉ० ज्ञानेश्वर वगैरे का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है।<sup>१</sup> सूरदासकी में सूर दामर तथा नामवत की कथा का मिलन है। इसकी कथा स्कन्धों में विमिश्रित नहीं है। ब्रह्म सृष्टि का विस्तार करता चाहते हैं। प्रकृति के प्राण के क्रम से ब्रह्म के लिए अथ तार होते हैं। कवि स्वर्गमय मनु और धातुका का उल्लेख करता है। बाराह अथ तार, कनिक अथ तार, और सप्त द्वीप और नव खण्ड के वर्णन के बाद कवि काय-वर्णन करता है। हरि असुरों का संहार करते हैं और देवों को राज्य देते हैं। सृष्टि को काल में विलोकन मिलता है विद्यावर, पंचर्ष और अष्टरा कायु माते हैं। कवि रामा-वतार की कथा के साथ वास्मीकि-अवतार का वर्णन करता है। राम-कथा का संक्षेप प्रस्तुत कर कवि 'नामवत और 'सूरदास' के आधार पर कथाभारम्भ करता है। कवि राधा की विद्या-बीजा का ध्यान करता है। हनु के अन्तिम भाग में कर्मिणी के प्रेम के उत्तर के रूप में हनु शून्वावन राधा यथोक्त तथा राध सीताजी के वर्णन हैं। 'सूरदास' के दो स्कन्ध ( अथवा अष्टाङ्ग ) के आरम्भ में यह रचना प्रकाशित है। इसमें ११०७ श्लोक हैं। उदाहरण—

कर विष नेम सूर दामरवि उत्तर दक्षिण कात ।  
 मनवांछित फल सबही पावैं जिते बचय बंधन ।  
 बीन्सेकुलें नवै मन राखै छिन्ने परम मित साय ।  
 ताके हँस छुत हौं निधि मित आनन्द बनम निहाय ।  
 सरस संवसर सीसा पावै मुनक बरष चित आवैं ।  
 बर्मेनात बन्धी ज्ञान में सूर बहुरि नहि आवैं ।

सूरदासकी ।

१ देखिए सूरदास—डॉ० ज्ञानेश्वर वगैरे, डॉ० बीम दयाल गुप्त इसे सूरदास की रचना मानते हैं। अपनी भाष्यता के समर्थन में वे कहते हैं 'इस ग्रन्थ के आरम्भिक कथा का पर कुछ पाठ भेद से नहीं है जो सूरदास के आरम्भ में कथा के रूप में है। इस हनु के एक विचार बहुमत-सम्प्रदायी विचारों से साम्य रखते हैं विनय, आशि, अनन्त, अकालीन, अष्ट प्राण और बहुमत सम्प्रदाय-  
 भाग १ पृष्ठ २२१।

साहित्य स्रहरी—साहित्य स्रहरी एक रीति-काव्य है, जिसकी रचना दृष्टि कूट के पद्यों में हुई है। इस कृति के पद्य कृष्ण-सीता से सम्बन्धित हैं। 'सूर सागर' में कुछ दृष्टि कूट के पद्य मिलती हैं। सरदार कवि ने 'साहित्य स्रहरी' पर टीका की है। इस टीका से इस प्रकार की मायना बनती है कि 'साहित्य स्रहरी' के पद्य 'सूर सागर' से ही संकलित हैं। सूर-साहित्य पर विचार करने वाले जासोबकों ने इसी प्रकार का निर्णय लिया है। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। 'साहित्य स्रहरी' में जो पद्य मिलते हैं, वे सूरसागर के पद्यों से भिन्न हैं।<sup>१</sup> 'साहित्य स्रहरी' के रचना-काव्य का वर्णन कवि इस पद्य में करता है—

मुनि पुनि रत्न के रस सैल ।

दशम घीरीनंद की छिछि सुखक संवत पैल ।

मंद मंदन मास, जो तें हीन जितिया भार—

मंदमंदन जनम तैं हैं जान सुख साधार ।

जितिय रिच्छ, सुकर्म बोग विचार सूर मनीन ।

मंदमंदन बास हित साहित्य स्रहरी कीन ।

वर्षात् सम्बत् १६१७ मुखल सम्बत् के वैशाख मास की मध्यम तृतीया मुखरायी बुधवार, कृतिका मंजन, सुकर्म बोग में सूरदास ने मनीन विचार के रूप साहित्य स्रहरी की रचना कृष्ण भक्तों के लिये की।<sup>२</sup> इस कृति में जलकार नायिका मेघ, जाव भेद जाति काव्यांजो का वर्णन किया गया है।<sup>३</sup> सहाहरन—  
राखे किमो कीन गुमाव ।

पान्मति बैदन विभूषित मुख्य गुण पित जाव ।

१ साहित्य स्रहरी—सम्पादक प्रमुखपाठ मीठस साहित्य संस्थान मधुरा १९६१ ।

२ वही पृष्ठ २ ।

३ हिन्दी में सूरदास की 'साहित्य स्रहरी' के पूर्व रीति ग्रन्थ के रूप में कृपा-राम इष्ट बोहा-सोराठा में रचित हित तरंगिणी है। यह नायिका मेघ से सम्बन्धित ग्रन्थ है। कृपा राम कृष्ण हित तरंगिणी (संवत् १३६५ वि०) । सम्पादक मुयाकर पाण्डेय, विनय भाण्डी धनपटे बेम्बरत नागपुर । इससे अतिरिक्त मोहनकाठ मिय कृष्ण 'शृंगार सागर' नामक रचना भी मिलती है (संवत् १६१६) ।

मानसखासी सुधा यह तें ॥ निकसन पाव ।

रत्ननि चर गुन जानि दधि मुत बरन रिपु हित जाव ।

रत्ननिचर हित मन्त्र सो तन सरस बीपत जाव ।

सुरदास सुजान सुकिया बजट उपमा पाव ।

साहित्य सङ्ग्री पद १।१।

सुरदास ने इस पर में चतुर 'स्वकीया नायिका' और 'पूनीपमा बर्त्तकार का वर्णन किया है । ( बजट उपमापूर्ण उपमा सुजान सुकीया स्वकीया ) । इसी प्रकार बजात यौवना नायिका और कुन्तीपमा बर्त्तकार ( २४ ) अनन्वय अर्त्तकार और सुनीतो जात यौवना नायिका ( १।७ ) परिणाम अर्त्तकार और ज्येष्ठा कनिष्ठा नायिका ( ७।१६ ) कपकासिखयोकि अर्त्तकार और मुद्रिता नायिका और अन्वोप्य अर्त्तकार और सात्त्विक जायादि से पर हैं ।

नख दमन — क्षिप्ती साहित्य के इतिहास-लेखकों ने प्रायः एक स्वर से कहा है कि 'नख दमन' बजट ज्ञाप के सुरदास की रचना है । परन्तु 'नख दमन' के रचयिता एक अन्य सुरदास हैं जो कलकत्ता के निवासी थे । 'नख दमन' प्रेमा क्यामक काव्य-परम्परा की कृति है । इसकी भाषा अरबी है । इसके कर्ता सुरदास ने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

सुरदास निज नाऊँ बगान् । मोबरबन दास पिता कर मारै ।

कंदू मोत माझिलै तासू । कलानूर पुरखन कर बासू ।

तात हमार तहाँ सो जाया । पूरव सिधा कोऊ बिन जाया ।

नगर लखनऊ बड़ा सो बासू । शीर ठीर बैकुंठ समानू ।

मेरो बनम यहै ठा भयऊ । कलानूर कबहु नहि भयऊ ।

इस कृति में नख-दमनन्ती की कथा वर्णित है । यह ग्रन्थ कदंबक छोटी में लिखा गया है । इसकी कथा सर्गों में विभक्त नहीं है । आरम्भ में परमात्मा की स्तुति की गई है । सम सामायिक नाटक साहजहाँ नायकाह की प्रशंसा की गई है । इसके परचात गुरु और कवि परिचय दिया गया है । कवि यह स्वीकार करता है कि इस ग्रन्थ की कथा महा भारत से ली गई है ।

नख जिहि ठाऊ बँट मन मारै । इन्द्र जाय निकसे सँभवारै ।

देति इन्द्र नख धा पति करे । बादर कीन्ह सीस कर चरे ।

इस रचना में शृङ्गारोत्तियों के बाव एक दोहा के विराम का क्रम मिलता है ।

परमानन्ददास :— 'बीरासी बेज्जन की बातों' के अनुसार परमानन्द का जन्म कलौन्व में हुआ था । 'बातों' से इनके माता पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । 'बेज्जन की बातों' से इतनी सूचना मिलती है कि मकर स्नान के सम्बन्ध में परमानन्द प्रयाग पधारे थे । और इसी सम्बन्ध में अनेक पङ्क्तिकर उन्होंने बल्लभाचार्य के भी दर्शन किए । आचार्यजी ने परमानन्द को सबबल-कीला-मान करने का आज्ञा दिया । परमानन्द ने उस समय जिस पर का मान किया उसकी उचितता निरङ्कुश है । वह इस प्रकार है—

ब्रिय की छाव ब्रिय ही रही री ।  
 बहुति दुपास बेपन नहि पाए बिसम्पति कूँब बही री ।  
 एक दिन सो जु सखी इहि मारव बेचन जाति बही री ।  
 प्रीति केलि बाल मिस मोहून मेरी बाँह नही री ।  
 बिनु देखे सिनु जात कमल परि निरहा बनल बही री ।  
 परमानन्द स्वामी बिनु बरसन नैनन नदी बही री ।

अष्ट छाप, कौंकरोली पृ० ७१ ।

इसके पश्चात् आचार्य जी ने बालकीला के पर-बाल का अनुरोध किया । परमानन्द ने इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता व्यक्त की । इसके पश्चात् आचार्य जी ने परमानन्द को अपने मार्ग में दीक्षित किया । 'बल्लभ दिव्यिजय' के अनुसार आचार्य जी ने संवत् १५७६ में जयदीस-यात्रा समाप्त की थी । इस यात्रा के अन्त में ही उन्होंने अनेक से परमानन्द को दीक्षित किया । परमानन्द ने बल्लभाचार्य के साथ व्रज की यात्रा की । मार्ग में अपने ग्राम में उन्होंने आचार्य का उत्कार किया और उनके सम्मान में इस पर का मान किया—

हरि तोरी लीला की लुधि बाबे,  
 कमल नेन मन मोहिनी मूरति मन-मन बिभ बनाबे ।  
 एक बार जाहि निरत भया करि सो कैसे निरतारबे ।  
 मुख मुखरानि बँक बल्लोकनि बाल मनोहर भाबे ।  
 बबहुँक निबड़ तिमिर आलिनित बबहुँक रिक्त सर गाबे ।  
 बबहुँक संप्रय कवासि कवासि कहि संगहीन उठि पाबे ।  
 बबहुँक नैन मूर्ति अमरवति मनि माला पहिराबे ।

परमानन्द प्रभु स्वाम ध्यान करि ऐसे बिरह मगाने ।

हरि तेरी लीला की सुधि माने ।

अष्टछाप पृ० ७८ ।

‘बार्ता’ में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि बल्लभाचार्य इस पर से इतिष्ठ होकर तीन दिनों तक व्यान-मग्न रहे ।

बल्लभ सव्यराय में प्रचलित विश्वास के अनुसार परमानन्द आचार्य बल्लभ से १५ वर्ष छोटे थे । इस प्रकार परमानन्द का जन्म संवत् १५२० में हुआ था । परमानन्द के निधन-काल के विषय में हमें कुछ ज्ञात नहीं है । परन्तु इस प्रकार का विश्वास मिलता है कि इनकी मृत्यु संवत् १५४० के लगभग हुई थी । (देखिए अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय—प्रथम भाग पृ० २३०) । परमानन्द के पत्नी का संसद् ‘परमानन्द सागर’ के नाम से विख्यात है । इन पत्नी का विभाजन इस प्रकार है—‘मंथलाचरण’ ‘अन्नाष्टमी की बरवाई’ ‘अन्ध बहोत्सव’ ‘भी राधा भू की बरवाई’, ‘अभिचार’, ‘अमुरायमन’, ‘अमुरा प्रवेश’ ‘धोपिन के बिरह के पद’, ‘मगर पीत’ इत्यादि । ‘परमानन्द सागर’ से कदाचरथ स्वयम् एक पद यहाँ प्रस्तुत है—

सुनि राधा इक बात बनी ।

तु जिन हरे रीति बधियारी मेरे पाछे माठ बनी ।

यहाँ से बार्क मदन मोहन ने मैं देखी इक बंक बनी ।

सचन निहंज कुमुमनि रचि मृतक आनी बिरह सती ।

हरि की कृपा की मोहि मरोसो प्रेम बतुर भित करत बनी ।

‘परमानन्द स्वामी’ को मिलिके भिन्न उदै जैसे नैबन्ध कती ।

परमानन्द सागर-अभिचार पृ० १४८।४९७ ।

हृष्यदास अधिकारी —हृष्यदास अधिकारी गुजरात प्रदेश के निवासी थे । इनका जन्म गुजरात में राजनगर के एक विद्यार्थी गौड़ में हुआ था ।<sup>१</sup> हरिराम के ‘मान

१—परमानन्द सागर-सम्पादक डॉ० गोवर्धनभाब शृङ्खल भारत प्रकाशन मन्दिर लखीमपुर ।

२—अष्ट छाप । कोंकरोली पृ० ११७ ।



प्रकाश' के अनुसार इनका जन्म कुंमबी पटेल-कुल में हुआ था। बाताई के अनुसार ये शूद्र थे। 'भाव प्रकाश' से यह सूचना मिलती है कि कुल्य बास १३ वर्ष की अवस्था में घर का परिचय कर घर में आये। उस समय वहाँ चीनाब जी का गया मन्दिर निर्मित हो रहा था। 'बोबर्झनगाथ' जी के प्राकट्य की बाताई' के अनुसार मन्दिर का शिलान्यास संवत् १५६६ बैशाख शुक्ल ३ ( अक्षय सुतीरा ) को हुआ। बल्कम विम्बिबन' में भी मन्दिर के शिलान्यास और निर्माण तथा मन्दिर प्रवेश के दिव संवत् १५६६ का ही उल्लेख मिलता है। इस प्रकार कुल्य बास अधिकारी का जन्म-संवत् १५२३ माना जा सकता है। बीहड़्य बास अधिकारी की मृत्यु संवत् १९३१ १९३८ के मध्य मानी जाती है।

कुल्यबास की प्रामाणिक रचनाओं में उनके पर ही उपलब्ध होते हैं। इनके पर कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं जिसकी संख्या २४८ ६७६ तक मानी जाती है। डॉ० बीनरयास भुत ने 'अमर बीत' 'रासपञ्चाध्यायी' ( ३१ छन्द ) आदि कृषियों का उल्लेख किया है। प्रभुदयाल जीतल ने 'अमरबीत', 'प्रेम तत्त्व निरूपण' 'मछमास की टीका' 'वेष्णवन बरम' 'प्रेम रस राशि' 'हिंदोरा कीला' आदि रचनाओं का उल्लेख किया है। भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'युक्त मान चरित' 'अमर बीत' और 'प्रेम तत्त्व निरूपण आदि ग्रंथों का उल्लेख किया है। इनके कों की भाव भूमि राधाकुल्य की मधुर बीताये हैं। राधा-कुल्य की युक्त रसमय छीन्ना का मान बोधी-कुल्य प्रेम और पूर्ण राग की भावनाओं हैं। अनेक मधुर रूप इनके पदों में उपलब्ध होते हैं। निम्नलिखित पद में प्रेम की पूर्ण राग अवस्था का वर्णन किया गया है—

द्विष्टि बीरों माई नैन रंगीलो ।

से बलि सखी तैरे राइ जागो जहाँ गोबरबन छेले धवीलो ।

रसमय रसिक रसिकनि मोहन रसमय बचन रसास रसीलो ।

नवरंग लाल नवल गुन मुन्दर नवरंग मीति नव मेह नवीलो ।

नय सिध सीब मुमगता सीबा, सहज मुभाइ मुदेस मुठोलो ।

कुल्य बास प्रभु रसिक मुहुट मनि गुणग बलि रिपुदहन हटोलो ।

मन्द हास — 'मछमास' के अनुसार मन्दबास किसी रामपुर नामक ग्राम के निवासी थे। सम्भवत यह ग्राम गोरुल और महरा के मध्य अवस्थित था।

‘मठ मास’ के अनुसार मन्दास मुकुस से । ‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ के अनुसार ये एनौद्रिया से । मूस मुसाई चरित’ के अनुसार ये काम्यकुम्भ से । परन्तु अधिकार्य मठों का आग्रह है कि ये सनाढ्य ब्राह्मण से । मन्दास के माता पिता से सम्बन्धित हों कोई सूचना नहीं मिलती है । ‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ के अनुसार मन्दास गोस्वामी तुलसीदास के छोटे भाई से ।

मन्दास के दीदा मुस गोस्वामी बिठुलनाथ से । मन्दास ने बिठुलनाथ से संवत् १६१६ वि० में दीदा की थी । दीदा केने के उपरान्त के कुछ दिनों तक सूरदास के सम्पर्क में रहे । इस प्रकार का विश्वास मिलता है कि सूरदास ने ‘साहित्य बहुरी की रचना मन्दास के लिए ही की थी । मन्दास दीदा केने के पश्चात् पुनः गृहस्थी की ओर आकर्षित हुए थे । और ‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ से यह बात होता है कि बिठुलनाथ ने मन्दास को संवत् १६२४ में पुनः दीक्षित किया था ।

दीदा केने के समय मन्दास की आयु २३ या २६ वर्ष की मानी गई है । ( बट्ट छाप और बसन्त सम्प्रदाय पृ० २६१ ) । इस दृष्टि से इसका जन्म-संवत् १५९० विजयी है ।

‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ के अनुसार मन्दास की मृत्यु बकसर के सम्मुख हुई थी । बकसर की मृत्यु सं० १६६२ में हुई थी । बातों से इस प्रकार की सूचना मिलती है कि मन्दास की मृत्यु गोस्वामी बिठुलनाथ के सम्मुख हुई थी । बिठुलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई, अतः मन्दास की मृत्यु इसके कुछ पूर्व ही हुई होगी ।

डॉक्टर बीन बयान गुप्त ने मन्दास लिखित २८ ग्रन्थों की सूची दी है । देखिए, ‘बट्ट छाप और बसन्त सम्प्रदाय’ प्रथम खण्ड पृ० १२४ । परन्तु इनमें निम्नलिखित ग्रन्थ ही प्रामाणिक माने गए हैं—

- |                  |                   |
|------------------|-------------------|
| १ रास मंजरी      | ८ विरह मंजरी      |
| २ अनेकार्य मंजरी | ९ रूप मंजरी       |
| ३ राग मंजरी      | १० कर्मिणी मंजरी  |
| ४ दशम स्कन्ध     | ११ रास पंचाव्यासी |
| ५ अष्टम संगीत    | १२ मंजरी गीत      |

६ गोवर्धन लीला

१३ सिद्धान्त पंचाध्यायी

७ मुद्रामा चरित

१४ पद्मावती

इनमें से कतिपय रचनाओं के विषय में सम्यक् प्रकट किया गया है। श्री उमादत्त शर्मा के अनुसार गोवर्धन लीला स्वतन्त्र रचना नहीं है। (मन्त्रदास भाग १ भूमिका पृ० २ २१)। 'मुद्रामा चरित' की प्रामाणिकता पर सम्यक् प्रकट किया गया है। पद्मावती की प्रामाणिकता पर सम्यक् नहीं होता, परन्तु इसमें पदों की संख्या गिनी भी इसका निश्चय सम्भव नहीं हो सका है। श्री उमादत्त शर्मा ने मूल पाठ के रूप में केवल ३५ पदों का स्वीकार किया है। इस प्रकार विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार ३५ से लेकर ७०० पदों की संख्या का सम्भव मिलता है। डॉक्टर भीमव्यास गुप्त ने विषय के अनुसार मन्त्रदास के ग्रन्थों का वर्गीकरण चार भागों में अन्तर्गत किया है—

१ कृष्ण लीला के प्रसंगों से सम्बन्धित—रास पंचाध्यायी भँवर बीठ  
राम स्याई मोहदत्त लीला ब्रह्म सन्ध्या भाषा वसिष्ठी मंथन और पर।

२ कृष्ण भक्ति तथा कृष्ण चरित से सम्बन्धित—रूप मञ्जरी निरुद्ध मञ्जरी  
मुद्रामा चरित और पर।

३ कृष्ण भक्ति और कवि के आचार्यत्व के जोरक ग्रन्थ जयवा रस-रीति  
और भाषा ग्रन्थ—मान मञ्जरी अनेकाने मञ्जरी और रस मञ्जरी।

४ कृष्ण भक्ति के प्रकीर्णक विषयों से सम्बन्धित रचना—इस वर्ग के अन्तर्गत उनके सिद्धान्तात्मक ग्रन्थ और बुद्ध-बहिष्मा नाम-बहिष्मा विनय आदि के स्तुत पर हैं—सिद्धान्त पंचाध्यायी और पर। देखिए—'अष्ट छाप और ब्रह्म सम्प्रदाय' पृ० ३७४। विषय की दृष्टि से यह वर्गीकरण मन्त्रदास के कवि-व्यक्तित्व का स्पष्ट परिचय देता है। इनमें से कतिपय प्रमुख ग्रन्थों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

रास पंचाध्यायी—इस कृति का विषय है श्री कृष्ण की रास-लीला। यह गुंवार-रस का काव्य है। इस ग्रन्थ में पाँच अध्याय हैं। कृष्ण को परब्रह्म और मोक्षियों को आत्मा रूप में ग्रहण कर मन्त्रदास ने इस काव्य का प्रयोजन किया है। कृष्ण के वियोग में मोक्षिकाओं का रुदन और उनकी व्यग्रता के अंग के माध्यम से कवि ने ब्रह्म विद्योगिनी आत्माओं की भाव-रसा का अंग दिया

है। पञ्च के प्रथम अध्याय में शुकदेव की बल्लभा और उनके सौम्यता का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि वृन्दावन की प्रकृति और चारद-रवनी का वर्णन करता है। ऐसे ही आर्यभट्ट और उल्लास आगुन करने वाले बातावरण में कृष्ण की मुरली (योग माया) प्रतिष्पन्न होती है।

तब सीनी कर-कमल भोग-माया सी मुरली।  
अचटित-अटना अतुर बहुति अवरण मुर-मुरली।  
आकी बुनि तें निगम अगम प्रगटति बड़नापर।  
नाद ब्रह्म की बननि मोहिनी सब सुख सागर<sup>१</sup>।

उस क्षण से गोपियों सम्प्राप्ति होकर कृष्ण के निकट आती हैं। कृष्ण गोपियों को मारी-धर्म का उपदेश देते हैं। अपने यह एवं दाम्पत्य की मर्यादा में कौटुम्बिकता का आग्रह करते हैं। गोपियों कृष्ण-उपदेश नहीं मानती हैं। कृष्ण उनके साथ यमुना-कुम्भों में रास-झीड़ा आरम्भ करते हैं। गोपियों के अनिमान-मंग की भावना से वे अचानक दृष्टि से ओझस हो जाते हैं।

दूसरे अध्याय में गोपियों कृष्ण के लिए बिकल हैं, और इनकी बिकलता के सम्बन्ध में कवि उनका विरह-वर्णन करता है। गोपियों बिकलता में सबीब-निर्बीब में भेद नहीं कर पाती और कटा-बूझों से कृष्ण के विषय में पुछती फिछती हैं।

हे कदम्ब ! हे निम्ब ! अम्ब ! क्यों रहे मीन गहि,  
बट उत्तम हे सुरम और कहु तुम इत उत कहि।  
बसोक हे। हरि लोक, लोक मनि निमहि बटाबहु  
बहो पलस तुम सरस मरठ तिय अमिय पिबाबहु।

रास पञ्चाध्यायी द्वितीय अध्याय ६।

गोपियों राधा को लेकर यमुना तट पर आती हैं। तृतीय अध्याय में गोपियों कृष्ण की आज्ञा करती हैं। कृष्ण के इस निर्मम व्यवहार के लिए वे जयास्तम्भ होती हैं और फिर गोपियों आत्म विस्मृति की अवस्था में आ जाती हैं—

झिज बँठति छिन उठति छोटी तिहि रज माहीं  
धोरे जल ज्यों मीन बीन आसुर मरुताहों।

सम्पत् भय से भयस करण कर कमस तिहारे,  
कह पटि जेई नाथ तनक सिर छुवत हमारे ।

रास पंचाध्यायी पृ० १८० ६०।

अतुर्य अध्याय में कृष्ण प्रकट होते हैं और इस अध्याय कवि में कृष्ण-गोपियों के पुनर्मिलन का भावपूर्ण चित्र बंकिट करता है। पाँचवें अध्याय में गोपियों और कृष्ण के उन्मुक्त रास का वर्णन है। नृत्य के उद्भासित बातावरण में अनुराग के छत-छत भाव बाधित होते हैं। कवि शब्द चित्रों के योग से नृत्य का मूर्त चित्रण करता है। वर्णन में भावों के आवेग प्रस्फुटित होते प्रतीत होते हैं—

ताहि सौँबरो नेबर रीति हँसि केत मुचन भरि ।

बुवन करि मुख-सदन बदन ते रेत मोल भरि ।

जब मैं जो संगीत रीति सुर भर रीम्य विहि ।

सो बज तिम को सहज, नियम आवन पावत विहि ।

रास पंचाध्यायी—पंचम अध्याय २४ १२ ।

रास के पश्चात् जल-झीड़ा बारम्भ होती है। प्रातःकाळ सुमोदय के पूर्व गोपियाँ अपने-अपने गृह लौट जाती हैं।

‘रास पंचाध्यायी’ की प्रेरणा भूमि ‘भी मधुभाष्य’ है। भी मधुभाष्य के दसम स्कन्ध के २१ अध्याय से ३३ अध्याय में गोपी-कृष्ण की रासकीर्त्ता का वर्णन है। परन्तु इसकी रचना प्रक्रिया में कवि मधुरास की कतिपय तबीन उद्बुधभावनाएँ भी मिलती हैं। सरल रास में नृत्तात्म की प्रकृति का चित्रण भाववत् में नहीं मिलता है। ‘रास पंचाध्यायी’ में गोपिकायें और कृष्ण कान्दर्व पर मित्र्य प्राप्त करते विभिन्न किए गए हैं। भाववत् में यह प्रसंग नहीं मिलता है। इस प्रकार इस प्रसंग के माध्यम से कवि अपने काव्य में पूर्णरूप से ब्रह्मीक स्वस्व का सम्पादन करता है। द्वितीय अध्याय भाववत् के दशम स्कन्ध के ३३ वें अध्याय पर आधारित है। इस अंश में कवि मौलिक उद्बुधभावनाएँ नहीं कर सका है। तृतीय अध्याय दशम स्कन्ध के ३१ वें अध्याय पर आधारित है। चौथा अध्याय ३२ वें अध्याय पर आधारित है। इस अंश में प्रत्येक छन्द की प्रथम पंक्ति भाववत् की पंक्तियों का स्वरूप है। अन्तिम अध्याय दशम स्कन्ध के ३३ वें अध्याय पर अवलम्बित है। वस्तुतः यह एक अन्धोक्ति-मूलक रचना

है जिसमें शृंगारिकता, अप्रस्तुत है प्रस्तुत है बाध्यात्मिकता । इस सत्य की ओर कवि ने संकेत भी किया है—

निष्ट-निष्ट बट में जो अन्तर्गामी थाहि,  
विषय विदूषित इन्ही पकरि सके गहिं ठाहि ।

वृत्तम स्कन्ध—यह ग्रन्थ भाष्यवत् के दशम स्कन्ध के उन्तीस अध्यायों का बोझ-बोझाई-रोखी में अनुवाद है ।

विरह मञ्जरी—वस्तुतः यह ग्रन्थ काव्य-शास्त्र के सुन्दर की रचना है । परन्तु इस ग्रन्थ में अपने विषय की प्रस्तावना कवि ने कलात्मक रूप में किया है । इस प्रकार यह कृति कृष्ण-काव्य की परम्परा से खींचित नहीं हो पाती है । संयोग-मुख की अनुमृति में वियोग की भावी सम्भावना की कल्पना ब्रज भाषा में बाएत हो जाती है और वह पूर्णतः निप्रसन्न भाव से प्रसिद्ध हो जाती है । उसे भ्रम हो जाता है कि कृष्ण डारिका बने गए हैं । वह चन्द्रमा द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजने की कल्पना करती है । दायिक वियोग की काव्यमय अनुमृति में नायिका बाएत भावों में होने वाली विरह-पीड़ा की अनुमृति कर लेती है । यह वियोग-भाव की पीठिका पर बाएत भावों की परम्परा की कृति है । इस रचना में बाएत भाषा चैत से आरम्भ होता है । इस श्रुति में प्रकृति व्यापार उद्दीप्त का कार्य कर रहे हैं । वेठ की लफा विरह-दाप का पोषण कर रही है । बर्षों में बस की बूँदें विरहिणी पर बाण-बर्षों के समान प्रभाव डाल रही हैं । भावों में मेघ विरहिणी से होड़ के रहे हैं—

भावों अति दुःख-येन कहियो नन्द ! योनिव सों  
बन अकस्म के गैर होइत बरसत रैन दिन ।

‘विरह मञ्जरी’ में मन्दरास ने कृष्ण के विरह के चार रूपों की कल्पना की है ।

(१) प्रत्यक्ष, (२) पञ्चकान्तर (३) वनान्तर और (४) वेष्टान्तर । प्रथम के अन्तर्गत प्रिय के नैक्य में ही दायिक विरह की भ्रम-युक्त अनुमृति की कल्पना की गई है । द्वितीय के अन्तर्गत पञ्चमर के वियोग की कल्पना की गई है । कृष्ण विरहिणी अर्वाच के लिए वन में मोचाराय करते हैं । तृतीय अर्वाच के वियोग के

बनामर विधोय कहते हैं । और प्रिय के विशेष-गमन पर देशान्तर बिह की व्यवस्था आती है ।

इस सन्धर्म की अन्य कृतियों में 'रस मञ्जरी' 'स्यमञ्जरी मान मञ्जरी' और 'अनेकार्य मञ्जरी' नामक रचनायें आती हैं । 'बिरह मञ्जरी' के सामान ये रचनायें भी रीति-शास्त्र के सन्धर्म के अन्तर्गत आती हैं । रीति-काव्य-बारा के विकास की पूर्व पीछिका के रूप में इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व है ।

रस मञ्जरी—इस कृति का प्रतिपाद्य नायक-नायिका भेद है । और यह मानुसत की 'रस मञ्जरी' नामक ग्रन्थ पर आधारित है । रचनाकार ने कर्म के अनुसार नायिका के तीन भेद किये हैं—(१) स्वकीया (२) परकीया (३) सामान्या । इस ग्रन्थ का परिचय मध्य भाग में इस प्रकार दिया है—

रस मञ्जरी अनुसार है, मन्त्र सुमति अनुसार,  
वरणत वनिता भेद यहै प्रेम सार विस्तार ।

मुग्धा का भेद मोबाड़ा विमल लोका जात मीनता और लज्जात मीनता, के रूप में किया गया है । मध्य और प्रीक्षा का बीर अबीर, बीरपीर भेद किया गया है । मुग्धा मध्या प्रीक्षा के स्वतन्त्र रूप से नी-नी भेद किये गए हैं । उत्पत्त्या नामक-भेद प्रस्तुत किया गया है । नायक के चार भेद किये गये हैं—पृष्ठ, छठ दक्षिण और अनुकूल । फिर हाव भाव, हेला, रति और छुटी-भेद के स्थापन किये गये हैं ।

रूप मञ्जरी :—इस कृति के नायक कृष्ण हैं, नायिका रूप मञ्जरी है । इस कृति में कवि नादमान की भक्ति विधा का इस निकलन किया गया है । कृष्ण के नाम, गुण धारण और कीर्तन का विधान इस भक्ति-विधा की प्रमुखता है । और भी कृष्ण की मुरली का निकलन 'राज ब्रह्म' के रूप में यहाँ किया गया है ।

मान मञ्जरी—प्रस्तुत कृति अमर कोष पर आधारित है । कवि इसकी और संश्लेष भी करता है —

गुणिन नामा नामकी अमर कोष के भाव ।  
मानमञ्जरी के भाव पर मिले अब अब भाव ।

इस कृति का प्रतिपाद्य है राधा का मान वर्णन । इसके अनिरिक्त यह एक पर्यावाची सन्दर्भ भी है । एक दुनी मानिनी राधिका को मनाती है ।

मयने वर्णन में कवि प्रमुख शक्तों के पयौबाची रूपों को भी मुख्य छन्द के साथ रक्ता बद्धता है। सभी यानिनी राधा को समाने में बानी खसवा (उत्सव) का प्रयोग करती है। कृष्ण की आसुरता से प्रेरित होकर वह नृपमान् पूष के नाम (मयन) के लिए प्रस्थान करती है। कवि यानिनी रूप में राधिका का बह विवर्ण वर्णन भी करता है। इस कृति में मान-वर्णन कोप-ग्रन्थ और वक्ष्य-अभिप्राय के सुन्दर और समन्वित रूप मिल जाते हैं। और समग्रता की दृष्टि से यह एक अनि-सम्माना प्रधान काव्य है। उदाहरण हेतु इस ग्रन्थ के कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—

( मान )

बह्मकार, मय, वर्ण, पुनि वर्ण, स्मर अनिवार ।

मान राधिका कुंवरि को छबको करि कस्याम ।

( छबी )

बयसा, सुमुखी सबी पुनि हित सहचरी जाहि ।

बसी कुंवरि उपमान की कसी ममावन ताहि ।

( केस )

बलक सिरोरुह किङ्कर कष कुण्ठित कुटिल सुझार ।

कुन्तल क्वरि कटाट जनु कबहि गई बरार ।<sup>१</sup>

अनेकार्थ प्रसारी—इस कृति में कवि बहुधा सम्प्रदाय के अनुसार युद्धाहत चार को विवेचना करता है। कृष्ण अयस् के उपादान कारण और निमित्त कारण है। कृष्ण की नाम-अहिंसा वर्णन भी इस ग्रन्थ का एक पक्ष है। इस प्रकार इसमें कोप-ग्रन्थ की योजना में बलि-तत्त्व का समन्वित रूप मिलता है। कवि दोह-चौकी में एक शब्द के अनेक अर्थ देता है, और अन्त में अयस् शब्द को कृष्ण के नाम के साथ सम्प्रदाय करता है—

मधु बरत मधु भीत हुन मधु धरिरा मकरन्द ।

मधु बल मधु पै मधु सुभा 'मधु सुख मोचिन्' ।

सिद्धान्त पञ्चाध्यायी —इस कृति में मन्त्रदास ने रास पञ्चाध्यायी में वर्णित रास-कोड़ा की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है। रास वर्णन के

१ शत्रु भाषा के कृष्ण शक्ति काव्य में अतिप्रसन्नता दिखत पृ० ४१ ५० ।

२ देखिए—अष्ट शाय और अक्षय प्रसन्नता कीविल रूप —...



उत्पन्न में शू गार-वर्णन की असौमिकता की व्याख्या यहाँ तक के साम की गई है। यह ग्रन्थ १३८ छन्दों में समाप्त है। यह रोसा छन्द रचित है। इस ग्रन्थ से एक अंश यहाँ उदाहरण के लिए दिया जा रहा है—

सौंदर्य प्रिय कर परस पाइ सुखित भई यों।

परम हंस भागवत मिलत संसारी भन यों।

जैसे आगत स्वप्न मृपुति अवस्था में सुख।

तुरित अवस्था पाइ जाइ सब भुक्ति गइ तब।

विद्वान्त पञ्चाध्यायी

इस अंश में कवि 'रास' में निहित असौमिक तरंग की ओर संकेत करता है।

पदावली—नन्द दास के पदों की संख्या स्वयम् ८०० मानी गई है। इनकी पदावली के मुख्य विषय इस प्रकार हैं—गुरु-स्तुति, पद्मना-स्तुति लीला पर कृष्ण-भक्त बर्णाई पासना गोधारण, राधा-रूप-वर्णन रास बसन्त, मन्दार बपी तथा दीप नास्तिका आदि। इन पदों में रास बीजक के प्रति कवि ने विशेष आग्रह प्रकट किया है। इस कारण ही इनके विषय में 'और कवि मद्रिया नन्द दास जड़िया' की उक्ति प्रचलित है।

अँधर गीत—नन्द दास का 'अँधर गीत' सुरदास के समान भावबल पर आधारित है। नन्द दास का 'अँधर गीत' उदय के उपदेश से प्रारम्भ होता है—

उदय को उपदेश सुनो ब्रजनागरी। रूप लीख साबन्य सबै गुन जागरी।

मेव मुखा रस रूपिनि रूपबाबनि गुन गुन।

मुन्दर क्याम बिलासिनी मय ब्रम्बावम कुञ्ज। सुनो ब्रजनागरी।

यह ग्रन्थ उदय-गोपी के सम्भार-रूप में लिखा गया है। उदय निर्गुण का समीप होते हैं। गोपियों सगुण ब्रह्म पर आस्था रखती हैं। निर्गुण पर सगुण की ओर योग तथा ज्ञान पर प्रेम की विजय से यह काव्य समाप्त होता है। इस दृष्टि में दर्शन की प्रधानता है परन्तु गोपियों की भावना प्रदर्शन की दृष्टि में भाव कला के नैसर्गिक स्वरूप का विधान भी यहाँ मिलता है। विषय का चित्रण कवि रसात्मक और रमोत्साहक भाव में करता है।

चतुर्भुज दास—चतुर्भुज दास कुम्भन दास के पुत्र और बिष्टनाथ के शिष्य थे। इनके नाम से तीन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है—१ द्वायद यश (२) नदि

प्रठाप (१) द्विज को संगत । श्री गुरुमुख बास के पर तीन वर्गों में विभाजित किए जाते हैं ।

१ वर्षोत्सव के पर—इसके अन्तर्गत मंगला चरण बीप माछिका गोवर्धन पूजा और द्विहोला आदि दीर्घकों के पर आते हैं । (२) इनके पक्षों का दूसरा वर्ष नीला-सम्बन्धी पक्षों का है । इसके अन्तर्गत बगामनों बाळ-कीला, वन-मयन वैष्णव-मान स्वस्व-कर्मन मुषक-रघ-वर्धन सुष्ठान्त खण्डिता और उद्धव-सन्देश दीर्घक-पर आते हैं । (३) तीसरे वर्ष के अन्तर्गत प्रकीर्ण पर हैं । इसके अन्तर्गत 'मक्ति की प्रार्थना' और 'यमुना जी के पर' आते हैं ।

जीत स्वामी—इनका समय संवत् १३१० १३८३ ई०, १३९० १६४२ वि० माना जाता है । इनके पक्षों का विभाजन इस रूप में किया जाता है—  
(१) वर्षोत्सव-पर—मंगलाचरण राधाष्टमी बचाई, रास यो कीड़ा वसन्त बमार, और फाग आदि दीर्घकों के पर इसके अन्तर्गत आते हैं । (२) नीला पर बगामनों कलक, गुरुवार कीड़ा धाक भोजन परस्पर सम्मेलन खण्डिता आदि दीर्घकों के पर इसके अन्तर्गत आते हैं । (३) प्रकीर्ण पर—श्री महा प्रभुजी श्री गुदाश्री और श्री गिरराजजी आदि पर इसके अन्तर्गत आते हैं ।

गोविन्द स्वामी—गोविन्द स्वामी साम्राज्य ब्राह्मण थे । इनका समय सम १३०४ १३८३, सं० १३९१ १६४२ माना गया है । ये संगीतज्ञ कवि और वादक थे । इनके पक्षों का वर्गीकरण इस रूप में किया जाता है । (१) वर्षोत्सव—इसके अन्तर्गत मंगलाचरण बगामनों पाछना राधाष्टमी बामन जयन्ती वसन्त जल-कीड़ा स्वाम-यात्रा रव बपी और द्विहोला आदि दीर्घकों के पर आते हैं ।

(२) दूसरे वर्ष के अन्तर्गत बगामनों कलक मंगला और बाम-कीला आदि दीर्घकों के पर आते हैं ।

(३) इस वर्ष में प्रकीर्ण पर हैं—इसके अन्तर्गत ये दीर्घक हैं—गुड-मुपमा और श्री बह्मन गुरु-आमन ।

कृष्ण धक्ति के जन्म समयाधिक सम्प्रदायों में गोस्वामी द्विज हरिवंश और उनके राधाष्टमी सम्प्रदाय का भी योगदान अष्ट आप के कवियों के समान विशेष महत्व का है । इस सम्प्रदाय के भक्त कवियों में द्विज हरिवंश दामोदर दास ( सेवक जी ) हरिराम व्यास का उल्लेख ज्ञेय है ।

श्री हित हरिवंश—श्री हित हरिवंश का जन्म जब मण्डस प्रदेश में संवत् १५५६ में बेठाब मुसल एकावशी, सोमवार को हुआ था। इसकी मूल्य संवत् १६०६ में हुई थी। हितहरिवंश के नाम से दो ग्रन्थों का उल्लेख मिळता है। एक 'राधासुधानिधि' यह संस्कृत की रचना है। इसमें राधा की स्तुति की गई है। इसकी दूसरी कृति 'हित बीरासी' है। इस कृति में राधावल्लभ सम्प्रदाय की निवेचना पदों में की गई है। इस संग्रह के पद बेय हैं और राधा रागिनियों में परिवर्तित हैं। इनके अतिरिक्त सत्ताईस स्फुट पदों का एक संग्रह भी मिळता है। 'यमुनाष्टक' नाम ॥ यमुना-स्तुति से सम्बन्ध रखने वाला एक अन्य संग्रह का भी उल्लेख किया जाता है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ है 'हित बीरामी।' इसमें संकलित पदों की निम्नलिखित शर्तों में विभाजित किया गया है—

१—सुष्ठान्त समय वर्णन अर्थात् मंगला के १६ पद (२) सैय्या समय के १६ पद, (३) रास के १७ पद, (४) बन विहार के १ पद (५) स्नान शृंगार के ४ पद; (६) राजमौग (घोषा विहार) के २ पद; (७) बसन्त वर्णन के दो पद; (८) होरी-वर्णन के दो पद; (९) पूछ डोल-नृत्न का एक पद, (१०) मसार के चार पद और (११) संभ्रममान के षोडश पद। (देखिए—राधा बल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३०६)। इस ग्रन्थ में राधा-नृत्न के ज्ञेय और अविज्ञेय प्रेम का निगम है। यहाँ राधा-नृत्न के नित्य विहार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। राधा-नृत्न का प्रेम और उनका नित्य विहार दाम्पत्य-कोटि का है यहाँ कौटुम्बिक शृंगार के माध्यम से अकौटुम्बिक या आध्यात्मिक बरातन की ओर संवित किया गया है। कौटुम्बिक मान विरह की पीठिका पर निरुद्ध-सीमा के द्वारा अकौटुम्बिक भाव और गमानुभूति की कल्पना दम ग्रन्थ के पदों में उपलब्ध हो जाती है—

आज निम्न मंत्र में गोष्ठ गवय चिह्नोर मनीन चिह्नोरी।

मनि अनुराग अनुराग परगार गुनि अमूल भूतल पर ओरी।

×

×

×

×

हरि उर मुहुर चितोकि कान्ता बिघन बिहस भागवत ओरी।

चिह्नुर मुचाक प्रणो प्रपीपन निय प्रतिबिम्ब जनाय चिह्नोरी

मेति-मेति बचनान्मृत मुनि-मुनि कलितान्कि दैवत पुति चोरी ।

हित हरिवंश करत कर धूनन प्रणय कोप माकावलि तोरी ।

हित चौरासी पद सं० ७ ।

रतिकेति के समय राधिका की दृष्टि कृष्ण के बल-मुहुर पर पड़ती है । अपने प्रतिबिम्ब से उन्हें कृष्ण के हृदय में किसी अल्प रमणी के होने की संका होती है । राधिका मान करती है । कृष्ण उनके बिबुध का स्पर्श करके उन्हें वास्तविकता का बोध कराते हैं । हित हरिवंश अपनी उपास्या राधा के सौन्दर्य वर्णन में उनका मल-मिश्र-वर्णन भी करते हैं । 'हित चौरासी' में रास-वर्णन करने वाले पद मावना और इससे भी अधिक सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से अष्ट साधकियों के रास-वर्णन के पन्नों से मिले हैं । हित हरिवंश ने 'रास' को नित्य बिहार' का पर्यायवाची माना है । इस प्रकार राधा-कृष्ण का नित्य बिहार ही इस वर्ग के चिन्तन का मुख्य वर्तन और काम्य का प्रतिपाद है ।

दोऊ कम बीजन बटके वातन ।

सकन बूझ के डारे बाके, अम्बार छपटे वातन ।

कलित कलित रूप रस भीबी बूँद बचावत वातन ।

हित हरिवंश परस्पर प्रीतन मिळवत रविरस वातन ।

छूट बाबी ।

'हित चौरासी' के अग्न बनेक टीकायें भी मिलती हैं, जिनमें 'हित बरणीबर की टीका' ( १६ वीं खती ) 'पोस्वामी मुसकाक की की टीका' 'बुमलदास की टीका' और 'मिनदास की टीका' प्रमुख हैं । श्री बळदेव उपाध्याय ने इनके नाम से तीन अल्प ग्रन्थों का उल्लेख किया है (१) आधास्तन (२) बनुस्तोत्री (३) राधास्तन (माधवत सम्प्रदाय, बळदेव उपाध्याय, पृ० ४२६) । आचार्य हजारी प्रसाद त्रिवेदी, 'धुमावन छतक', तथा 'हित मुधा सागर' नामक दो अल्प ग्रन्थों की रचना करते हैं ।

दामोदरदास ( सेवक जी ) —सेवक जी के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलती है । हित हरिवंश के परचाव् राधावल्लभ सम्प्रदाय में इनका स्थान छीर्य पर है । इनका जन्म संवत् १२७७ और मृत्यु सम्बत् १६१० माना जाता है । ये मोड़वाना (मध्यप्रदेश) के मूल निवासी थे और हुन्नावन में बस गये थे ।

भारत हो कत प्रेमहि काजनि ।

करत प्रेम पर नेम न बिसरत करत फिरत निबि कुल के काजनि ।

पूरत प्रेम गगत गोपिन को सब कृत पबत बक्षतमई भाजनि ।

दिवके प्रेम भगन मोहल भए तबि के बखिस कोक के राजनि ।

× × × ×

एही रिप कुनी कंत पति पयो सतिता सागरहि समाजनि ।

प्रेम परे निकरे न बबभुब भुरसीवर बरकरति निवाजनि ।

श्री प्रवदासजी—इसका जन्म संवत् १६१० के आसपास माना जाता है । इनका मृत्यु-संवत् १७४० माना जाता है । इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं 'रसानन्द सीका' 'रहस्य मंत्ररी सीका' । इनके नाम से बयासीस ग्रन्थों का संग्रह 'प्यास सीका' कहा जाता है । इस ग्रन्थों में निरय बिहार सीका का वर्णन किया गया है । इसमें प्रेम-संन्यास भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, और इस ग्रन्थ में संयोग श्रुतार के अनुपम रूप भी प्रस्तुत मिलते हैं । निर्दुःख-सीका और श्रुतार-वर्णन से सम्बन्धित एक पर यहाँ दिया जाता है—

कृति-कृति रहे सब कुल पुस्तकारी में के ।

रीति रीति छवि भाइ पादनि में परी है ।

साङ्गिणी भवेकी बसवती गुण सहज हो ।

निरति निर्दुःख से अनूप मोति खरी है ।

मल छिप भूषण कावध्य ही के जन भवे ।

वीर सी धुवत मुकुमार ताहू बरी है ।

हित प्रुब भुक्ति हेरत बिकाइ रहैं ।

बापिनी की बुक्ति भव हीन हरी है ।

भजन श्रुतार सन कोला ।

वाचाजी श्री मृन्दाजन दासजी—आचार्य रामचन्द्र गुप्त न इनका जन्मकाल संवत् १७६१ दिया है । निध बन्धु विनोद में इनका जन्म संवत् १७४४ माना गया है । यह अन्य ग्रन्थों के अनुसार इनका जन्म संवत् १७६४ है । राधा बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में आचार की दृष्टि से और निरय-वैविध्य की दृष्टि से इनकी रचनायें अति व्यापक हैं । राधावल्लभीय ग्रन्थ-सूची 'साहित्य

एलासखी' में इनके १५० छन्दों का उल्लेख मिलता है। इनमें 'साइसावर' 'ब्रह्म प्रेमानन्द सावर', 'बुधसुख स्नेह पत्रिका' 'भारति पत्रिका' आदि विशेष रचनाएँ हैं। 'साइसावर' एक प्रकार का संग्रह-ग्रन्थ है। इसके पद भिन्न-भिन्न समय पर लिखे गए लगभग हैं। यह ग्रन्थ दस प्रकरणों में इस रूप में विभाजित है—(१) राधा-नाक-विनोद। (२) कृष्ण-बास विनोद। (३) कृष्ण-सयाई (४) कृष्ण-अर्पि अनुमति-शिखा। (५) विवाह-संगम। (६) काङ्क्षी वू को मोलाचार। (७) नाक वू को महिमानी को बरवाने बाइसी—यी कृष्ण विनोद (८) राधा छवि मुझाम (९) अनुमति मोद प्रकाश (१०) राधा काइ सुहाय। (राधा बल्लभ सम्प्रदाय। सिद्धान्त और साहित्य पृ० ५२६)। राधा के रूप-विनय से सम्बन्धित 'साइसावर' से एक पद उदाहरण-म्बक्य वहाँ दिया जा रहा है—

पिय सब उर भर नीक कीइत सुबुवाई कै।  
नाति मृषा सर पैछु पुनि पुनि बाइ कै।  
ठा सिक्क बिबसी रेख महा कम्पनी कबी।  
प्रीतन मन अविसर्य सिद्धी मानी रबी।  
रवि मामो सिद्धी सबनी करत मोतुन हार है।  
विरि कमक पै नम पाति अनुपम करति यनहु बिहार है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि

श्री भट्ट :—यी भट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय के एक थापा प्रथम के कवि हैं। 'कृष्ण सणापति स्तोत्र' नामक १०० पदों की इनकी एक रचना का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ को 'नाति बाबी' या 'बुधसुख स्नेह' भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की मूलक-मूर्ति की उपासना विधि का प्रतिपादन किया गया है।

हरि व्यासजी—निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत इन्होंने रचित सम्प्रदाय के नाम से एक उपन्यास का प्रवर्तन किया। हिन्दी में इनकी रचना 'बुधसुख स्नेह' नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'महाबाबी' नाम के भी इनकी एक रचना मिलती है। इस ग्रन्थ का विभाजन—१ सेवा, २ उत्सव, ३ मूर्त, ४० तहस ५ सिद्धान्त इन रूपों में हुआ है—प्रथम में राधा-कृष्ण के अष्टमास का वर्णन है। 'उत्सव' में निम्न विहार का विनय है। राधा और कृष्ण के बुधसुख

मारत हो कत प्रेमहि काबनि ।

करत प्रेम पर नेम ॥ बिसरत करत फिरत निधि कुल के काबनि ।

पूरन प्रेम कनत बोझि को सब कृत तबत बसतमई भाबनि ।

सिगके प्रेम मगन मोहन भए तबि के बसिछ लोक के राबनि ।

× × × ×

एही रिप तुनी कंत पति क्यौं सछिटा सामरहि समाबनि ।

प्रेम परे निकरे न चबमुच मुरलीवर बरकरति निबाबनि ।

श्री भुवदासजी—इनका जन्म संवत् १६३० के आसपास माना जाता है । इनका मृत्यु-संवत् १७४० माना जाता है । इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं 'रसानन्द सीता' 'छन्द मंचरी सीता' । इनके नाम से बयासीस ग्रन्थों का संग्रह 'व्यास जीका' कहा जाता है । इन ग्रन्थों में 'निरव निहार सीता' का वर्णन किया गया है । इसमें प्रेम-श्रद्धा का प्रतिपादन किया गया है, और इस ग्रन्थ में संयोग श्रृंगार के अनुपम रूप भी प्रस्तुत मिलते हैं । निर्कुण्ड-सीता और श्रृंगार-वर्णन से सम्बन्धित एक पद यहाँ दिया जाता है—

कुलि-कुलि रहे सब कूल कुलमारी में के ।

रीन्दि रीन्दि छवि जाइ पाइनि में परी है ।

छाड़िली गलेली अछलेली मुख सहज ही ।

निद्रति निर्दुन्द ते अनूप भीति सरी है ।

नन छिप्य मूपस साबध्य ही के जन भवे ।

दीठ सौं छुवत गुङ्गुमार ताहू बरी है ।

हित धूम मुकनि हेयत बिकाइ रहै ।

बामिनी की वृत्ति नव हीरन हरी है ।

भजन श्रृंगार सत कोला ।

साधुजी श्री धुन्दावन दासजी—साधारण रामचन्द्र गुप्त ने इनका जन्मसंवत् १७६२ दिया है । 'विष बन्धु मिनीर' में इनका जन्म संवत् १७४४ माना गया है । एक जन्म ग्रन्थ के अनुसार इनका जन्म संवत् १७६४ है । राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में आचार की दृष्टि से और नियम-वर्धन की दृष्टि से इनकी रचनायें अति व्यापक हैं । राधावल्लभीय ग्रन्थ-धुंधी 'साहित्य

रत्नावली' में इनके १३८ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें 'साङ्ख्यसार' 'ब्रज प्रेमानन्द सागर', 'बुधस स्नेह पत्रिका' 'आरति पत्रिका' आदि विशेष रचनाएँ हैं। 'साङ्ख्यसार' एक प्रकार का संग्रह-ग्रन्थ है। इसके बर मूल-मूल समय पर बिबे पण समये हैं। यह ग्रन्थ बर प्रकारों में इस रूप में विभाजित है—(१) राधा-वास विनोद। (२) कृष्ण-वास-विनोद। (३) कृष्ण-समाई (४) कृष्ण प्रति अनुमति-सिद्धा। (५) विवाह-मंगल। (६) आदिनी जू की शोभाचार। (७) भाव जू की महिमाओं की बरसाने बाइबी—भी ब्रज विनोद (८) राधा धनि सुहाय, (९) अनुमति मोद प्रकाश (१०) राधा काङ् मुहाय। ( राधा ब्रज सम्प्रदाय। सिद्धान्त और साहित्य पृ० ३२६ )। राधा के रूप विषय से सम्बन्धित 'साङ्ख्य सागर' के एक पं स्याहरण-स्वरूप यहाँ दिया जा रहा है—

विषय मन हर हर जोक कीकृत सुचुपाई है।  
नामि मुखा सर वैठ्यु पुनि-पुनि बाइ है।  
ता हिक निवली रेल महुा कननी बाबी।  
प्रीतम मन अविलम्ब सिद्धी मानी रबी।  
रवि मामो सिद्धी सबनी करत मोतुन हार है।  
गिरि कनक पे बर पांति अनुपम करति मनुहु बिहार है।

निम्बालक सम्प्रदाय के कवि

भी महुः—भी महु निम्बालक सम्प्रदाय के ब्रज भाषा प्रथम के कवि हैं। 'कृष्ण सरलापति स्तोत्र' नामक १०० पदों की इनकी एक रचना का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ को 'आरति वाणी' या 'बुधस पत्रक' भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की 'बुधस-मूर्ति' की उपासना विधि का प्रतिपादन किया गया है।

हरि व्यासजी—निम्बालक सम्प्रदाय के अन्तर्गत इन्होंने रचित सम्प्रदाय के नाम से एक उपनाम का प्रवर्तन किया। हिन्दी में इनकी रचना 'बुधस पत्रक' नाम से प्रसिद्ध है। इससे अतिरिक्त 'महावाणी' नाम से भी इनकी एक रचना मिलती है। इस ग्रन्थ का विभाजन—१ सेवा, २ उत्तर, ३ मुरत ४० सहस्र ५ सिद्धान्त इन रूपों में हुआ है—प्रथम में राधा-कृष्ण के अष्टनाम का वर्णन है। 'उत्तर' में मित्य बिहार का विवरण है। राधा और कृष्ण के बुधस रूप



का वर्णन 'मुरत मुर' में है। सिद्धांत में श्री कृष्ण ह्लादिनी शक्ति राधा के साथ नित्य बिहार में संलग्न निश्चित है।

परशुराम सेवा—परशुराम हरिबास के शिष्य थे। इनके नाम से १३ ग्रन्थों का सम्बन्ध मिलता है जिनमें 'नाव बीजा' 'हरि लीला' और 'निब बप बीजा' और 'निर्वाण प्रमुख' हैं।

स्वामी हरिदास सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास—ये सच्ची सम्प्रदाय के संस्थापक हैं। इनका कविता काल संवत् १६ • १६४४ के मध्य पड़ा है। ये कुच्छल नायक थे। व्याचार्य शुक्ल ने इनके नाम से 'हरिदास जी को ग्रन्थ' स्वामी हरिदास जी को पद' तथा 'हरिदास जी की बागी' नामक रचनाओं का उल्लेख किया है। इनकी रचनाओं में राधा-कृष्ण के नित्य बिहार, मधु शिशु मान, दान होखी रास धादि विषयों के वर्णन हैं।

विद्वल विपुलदेव—ये हरिदासी सम्प्रदाय के अत्यंत विद्वान् व्यक्ति हैं। इनकी रचनायें 'राग कल्पद्रुम' में उपलब्ध होती हैं। इनके पदों के मुख्य विषय हैं—'राधा-कृष्ण का नित्य बिहार 'भूला' मान' 'दान' और 'नोक-झोंक' इत्यादि।

भक्ति का स्वल्प

बैष्णव भक्ति के माध्यम से पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में समस्त भारतवर्ष में कृष्ण-काव्य का एक अनि मोड़ और स्मिन्धु नग विकसित हुआ। काव्य भक्ति के अनुसामगुण मयों की भूमिका पर जीवन की रागात्मक वृत्तियों को संस्थापन भूमि बना। दक्षिण भारत के आड़वार भक्तों के 'तामिल-प्रबन्धम्' और हिन्दी कृष्ण-काव्य में भक्तिपूर्ण अनुभूतियों संबंधों और अधिपत्यना प्रभासी में उपलब्ध एक रूपका इन प्रकार के चिन्तन को प्रेरणा देती है। पौड़ीय वैष्णव भक्ति में उपलब्ध मधुर भक्ति की रमपूर्ण आरमाभिव्यक्ति हिन्दो कृष्ण-काव्य की रचनी अनुभूतियों से कम भावनापूर्ण नहीं है। विद्यापति की मूल अनुपेक्षा शृङ्गार-मूक भी। पौड़ीय वैष्णवों ने भक्ति की आस्थापन गंगा के तटों का प्रयत्न किया है। उन्होंने भक्तों को भी श्रेणियों में विभाजित किया है। भक्तों की श्रवणों के अनुसार भक्ति के क्षेत्र में भी उन्होंने श्रेणी

विभाजन किया है। रीतिभेद के अनुसार इन्होंने भक्ति के भेद और उपभेदों की प्रस्तावना की है। साधन भक्ति के अनुसार इन्होंने भक्ति के 'बेबी' और 'रागानुभाव' स्वरूपों की कल्पना की है। योद्धीय ब्रह्मण्ड ह्य गोस्वामी ने 'भक्त रत्नामृत सिन्धु' और 'उत्प्रेषण मीलन मणि' नामक ग्रन्थों में भक्ति की स्थापना एक स्वतन्त्र रस के रूप में की है। 'भक्ति रस' के स्वरूप विवेचन की चेष्टा हृदय राम कविराज हृद 'चैतन्य चरितामृत' में मिलती है। इस ग्रन्थ के अनुसार कण्व-रति का उदय साधन भक्ति में होता है। कण्व भक्ति-रस के स्वादी भाव हैं मान प्रथम राम अनुराग भाव और मद्धामाव आदि। बंदी-स्वर विभाव उद्दीपन है। कण्व आत्मभक्त हैं। स्मित गीत और हृदय आत्मभक्त हैं। यहाँ भक्ति रस के पाँच कर्णों का वर्णिकरण किया गया है। वे हैं घांत मुख्य वास्तव्य और भू गार। कण्व पति हैं उत्प्रेषण हैं गोपिकायें नामिका मुख्यतः परकीया नामिका हैं। इन नामिकाओं के भेद हैं बीरा मधीरा घोर भोर उत्तम, मध्यमा और कनिष्ठा।

द्वितीय कण्व भक्ति-काव्य में भक्ति रस को एक स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु योद्धीय ब्रह्मण्ड मन्त्रों के अनुसार अष्ट साधन के कवि भक्ति-रस की वास्तवीय व्याख्या नहीं करते हैं। गुरुदास कवि 'साहित्य कवरी' और मन्त्रदास हृद 'मान मंजरी' तथा 'रस मंजरी' आदि कृतिषु में इस प्रकार के मौखिक प्रयास मिलते हैं।

बल्लभाचार्य ने पुष्टि मायीय भक्ति का विधान किया है। सगुण ब्रह्म की उपासना का विधान करते हुए बल्लभाचार्य ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की अग्रहेक्षणा नहीं की है। परन्तु निर्गुण ब्रह्म ज्ञान का विषय है, सगुण ब्रह्म अनुभूति का विषय है। उसके साथ ही रागात्मक सम्बन्ध सम्भव है। गुरुदास तथा अष्टसाधन के अन्य कविषु ने इस विचार को अति आस्था के साथ ग्रहण किया है। निर्गुण उपासना की कठिनाइयों की ओर संकेत करते हुए ही गुरुदास ने 'मूर सागर' के आरम्भ में इस प्रकार कहा है—

अविषय पति कष्ट कष्ट न आवे ।  
 कर्णों कुंठे गीते कल को रस भा गीत ही आवे ।  
 परम स्वाध तब ही नु निरन्तर भक्ति होय उपशाने ।  
 मन बाधो की अवयव अयोधर को जाने सो पार्वी ।

बप रेख गुण जाति जगति बिनु निराकम्ब मन चक्रे घावे ।

सब बिधि अगम बिचारे ताते सूर समुन सीसा फर पावे ।

सूर सागर—प्रथम स्कन्ध ।

बह्मभाषार्थ में जिस 'पुष्टि मार्गीय भक्ति का प्रतिपादन किया उसके लिए भगवान् का अनुग्रह अपेक्षित है । भगवान् जबतक भक्त पर प्रमित होकर भक्ति की पुष्टि नहीं करता, जबतक भक्त के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है । निम्नलिखित पद में सूरदास इसी भाव को व्यक्त करते हैं—

जापर बीना भाव करें ।

सोइ कुम्भीन बड़ो सुम्बर सोइ बिहि पर हुवा करें ।

कौन बिभीषण रंक निछावर हरि हंस छब दिए ।

राजा कौन बड़ो रावन तैं गर्बहि लख करें ।

रंक कौन सुषामा हूँ तैं आप समान करें ।

×

×

×

मह मति मति जानै नहि कोऊ किहि रस रसिक करें ।

सूरदास जगबन्ध भजन बिनु फिर फिर पठर करें ।

सूर सागर—प्रथम स्कन्ध ३५ ।

बह्मभूतप्रदाय में भगवद्भक्ति का विधान मिलता है । इस भक्ति भाव धारा का उद्गार 'धीमनुभागवत' है जहाँ भक्ति के भव में ही निपा इस रूप में वर्णित मिलती है—

भक्त्यं कीर्तनं विष्णो स्मरणं वाच संवनम् ।

अर्चनं बन्धनं सारव्यात्म निवेदनम् ।

इति भगवत्पिता विष्णोर्भक्तिर्येनैव सदाया ।

त्रिमये भगवत्पिता तन्मयेऽपीतमुत्तमम् ।

भावस्त-सप्तम स्कन्ध ।

अर्पण भक्त्यं कीर्तन स्मरण वादीयन अर्चन बन्धन दास्य साय और आत्म निवेदन मत्पा भक्ति के तात्त्व हैं । इनमें भक्त्यं कीर्तन और स्मरण भगवान् के नाम और लीला में सम्मग्य रहने वाली क्रियाएँ हैं । वाद-दीयन अर्चन और बन्धन का सम्बन्ध भगवान् के स्वरूप से है । दास्य साय और आत्म निवेदन से भाव है । ये भाव भगवान् को भक्ति दिए जाते हैं । बह्मभाषार्थ के अनुसार

भक्तों का साध्य है भक्तबान की प्रेमावस्था की प्राप्ति । इस साध्य-हेतु मन्त्रा  
भक्ति साधन है । इस भाव भक्ति भावों के साथ ब्रह्मसाधार्य न वास्तव्य तथा  
मयुर भावों का भी बोध किया । इस प्रकार मन्त्रा भक्ति के अतिरिक्त ब्रह्म-  
सम्प्रदाय में भक्ति की दसवीं विधा का भी विधान किया गया । यह विधान  
प्रेम कल्याण भक्ति का है । सूरदास ने मन्त्रा-भक्ति के साथ प्रेमसम्प्रदाय भक्ति  
का भी उल्लेख किया है—

मन्त्रा कीर्तन स्थाय पाव रत सरजन बंन दास ।

सख्य और मात्स्य निवेदन, प्रेम कल्याण दास ।

सूर साराबली सुरसागर ।

परमानन्द ने भी इसका भक्ति का वर्णन इसी रूप में किया है ।

ठाते दसवा भक्ति भली ।

जिन जिन कीनी जिनके मन्त्रे नेहु न जान्य बली ।

मन्त्र परीक्षत तरे राजरिधि कीर्तन कर मुक्त वै ।

× × × ×

बलि आत्म समर्पन करि हरि राख अपने पास ।

अतिरक्त प्रेम भयो पार्श्व को बलि परमानन्द दास ।

परमानन्द सागर ।

अवयव १—भक्ति के इस विधान में मन्त्रा का नाम गुप्त और उनकी  
सोचा के अवयव का विधान किया गया है । सूरदास ने भक्ति के इस विधान  
की ओर संकेत करते हुये कहा है—

(क) ओ यह सोला सुने मुनारै, सो हरि भक्ति पाई मुक्त पावे ।

(ख) ओ पर स्तुति सुने-मुनारै, सूर सा आत्म भक्ति को पावे ।

सूर सागर नवम स्कन्ध ।

‘रास पञ्चावली’ के अपसंहार में नन्द दास ने इसी भक्ति विधा के प्रति  
वास्ता व्यक्त की है—

ओ यह स्तीला चित्त है सुनै मुनारै ।

प्रेम भक्ति सो पावे अज भय क मिय भाव ॥

भगवन् कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि ।

ध्यान सार हरि ध्यान सार, भुक्ति गुणी पुनि ॥

मन्य वास छन्दावली—रास पञ्चाध्यायी पृ० २४ ।

कीर्तन —‘आयवत’ में कीर्तन-भक्ति का विधान मिलता है । ‘निरोप छटाव जन्म में कीर्तन-भक्ति के महत्त्व का वर्णन करते हुए बल्सभाचार्य ने कहा है कि भगवान के गुणवान से भक्त में ईश्वरीय गुण आते हैं ।

अष्टछाप के कवियों ने अपने कदों की रचना कीर्तन-रूप में ही की है । ये कवि पायक भी थे । अतः इनके समस्त यह विविध राग-रागिणियों के अनुसार लिखे गये हैं । कीर्तन की महिमा का वर्णन ‘सूरदास’ ने इन पंक्तियों में किया है—

ओ सुख होत गुणकहि पाए ।

छो नहि होत भव तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाये ।

×                      ×                      +                      ×

बड़ी बट बुन्दावन समुना नग बैकुण्ठ को जाए ।

सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भगवत आए ।

सूर सानर ३६१ ।

स्मरण —ईश्वर के नाम, गुण लीला आदि का स्मरण करना और उसमें एकात्म भाव से लीन रहने की विधा को स्मरण-भक्ति कहते हैं । स्मरण-भक्ति का सम्बन्ध मानसिक प्रवृत्ति है । अष्टछाप के समस्त कवियों ने स्मरण भक्ति की महिमा का गान किया है । सूरदास ने इस भक्ति-विषय के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा है—

हरि हरि हरि गुनियो सब कोई हरि गुमिरत सब सुख होई ।

हरि समान द्वितीय नहि कोई, हरि अलग रातो बिड कोई ॥

सूरसानर, छि० स्मृ० ।

स्मरण भक्ति के सन्दर्भ में परमानन्द के पदों का साम्प्रदायिक दृष्टिकोण में विशेष महत्त्व है । इन पदों में कृष्ण की कन-आसक्ति का भक्ति समस्त और स्नेहित और मिश्र वर्णन है । परमानन्द के हरि तेरी लीला की मुचि आये दीर्घक पर का उत्प्रेरक परमानन्द की जीवनी के मर्म में दिया गया है । ‘बीरासी बागी’

में भी इस पद की महिमा का वर्णन मिलता है। इस पद के प्रभाव से आचार्य बसन्त हरि-स्मरण में तिरोहित हो उठे थे। उन्हें मुझीं आसई थी। स्मरण बसन्त प्रायः गिरह की अवस्था होती है। इस गिरह की अनुभूति में यक्ष योय-मुख की अनुभूति करता है।

अवस्था कीर्तन तथा स्मरण भक्ति में भगवान के नाम की ही प्रधानता मानी जाती है। भक्तों ने नाम-संकीर्तन को अपनी भक्ति-पद्धति में विरूप स्थान दिया है। श्री कल्मीकर कुछ 'अपवन्नाम महिमा' नाम संकीर्तन के महात्म्य पर एक विरोध कृति है। कृष्ण-भक्त कवियों पर इस कवि का परोक्ष प्रभाव इन्डि मोहर होता है। अष्टछाप के कवियों ने नाम कीर्तन की महिमा में अनेक पदों की रचना की है।

पाद सेवन — पादसेवन भक्ति के सम्बन्ध में आचार्य बसन्त ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है—

सेवकानो तथा लोके व्यवहार, प्रसिध्दति ।

तथा काम सन्त्योषीं कृपता ततः ॥

सिद्धान्त पद्धत्य ।

इस सत्य के अनुसार भगवान और भक्त का सम्बन्ध सेवा और सेवक का है। अतः भगवान के नीतिकारणों के रूप में अष्टछाप के कवियों ने 'पीताम्' की के कारणों की बन्दना की है। साथ ही साथ भगवान के अनीतिक कारणों की बन्दना और सेवा से भक्त अपने मानसिक अवस्था में करते मिलते हैं। सूरदास के कृष्ण के कारणों की बन्दना संकर, छाया और सेवा आदि करते हैं। उनके कारणों के पावन स्पर्श से रंगा भी पावन हुई है। सूर ऐसे कृष्ण के कारणों की बन्दना करते हैं जिसकी कृपा से पंगु पर्वत पार कर जाते हैं वृष को शायी का चरान मिल जाता है।

चरन कमल बखी हरि पाई ।

बाकी हुआ पंगु गिरि लंबे अंधे को सब बखु दरबाई ।

बहिरो सुने मुक पुनि बोले रंक बसे तिर छत्र बराई ।

सूरदास स्वाधी वरनाम, बार-बार बन्दो तोहि पाई ।

अष्टछाप के कवियों ने बल्कमाचार्य और उनके पुत्र बिट्ठलनाथ के पदों की सेवा भगवान के चरणों के रूप में की है—

हम तो किट्ठक नाथ उपासी ।

एसा सेठ्ठ की बल्कम गन्दन बाइ करौ कहा कासी ।

इन्हे छोड़ जो बीरे ध्याये सो कहिये असुरासी ।

छीत स्वामी गिरधरम की किट्ठक बानी भिगम प्रकासी ।

छीतस्वामी पर ४२ ।

अष्टछाप और बल्कम सम्प्रदाय पृ० १८२ ।

अर्चन — भगवान के अर्चावतार की कल्पना में इस विश्वास को विकास मिला है कि मन्दिर की मूर्ति में सव्मुख और अष्टभुजों में भगवान विराजते हैं । इन्हें भगवान की प्रतिमूर्ति मानकर भक्त इन्हें अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का अर्पण करता है । अर्चन की दो विधायें मानी गई हैं । (क) बाह्य या स्वरूप अर्चना इसके सिद्ध सोलह प्रकार के उपचार माने गये हैं, जिनमें अष्टन अर्पण पाद घूँघूरी नीचे और ताम्बूल आदि के विविध विधान मिलते हैं (ख) मानसिक अर्चन या समर्पण । इसमें बाह्य उपचारों की आवश्यकता नहीं पड़ती है । सूरदास ने 'सूरसागर' में अम्बरीष की कथा के अन्तर्ग में अर्चन भक्ति के विधान और उसके महत्त्व का निर्वहण किया है । सूरदास ने एक अन्य पर में भगवान के भक्त गीराबल-अर्चन के अन्तर्ग में अर्चन भक्ति के अति प्रभावपूर्ण स्वरूप का विवरण किया है । इन्होंने भगवान के गीराबल के अति स्वरूप का विधान किया है, उसमें रवि राशि, गगन अग्नि नारक सनकादि प्रजापति देवता मनुष्य असुर सभी एक पात्र मान लेते हैं । अर्चनाभक्ति की इतनी जीवन्त और जीवन-सापेक्ष कल्पना अन्य किसी अन्तर्ग में उपलब्ध नहीं होती ।

हरि जू की भारती बनी ।

अति विचित्र रचना रची राखी परति न गिरा यनी ।

कण्ठ काय आसन अनुप भक्ति डोही रोप फनी ।

मही सराब सप्त सागर भुव बाढी दोल फनी ।

रवि राशि ज्योति जगत परि पूरण हरत निमिर रजनी ।

उड़त पक्ष उड़गन नय अन्तर अज्जन पाटा फनी ।

मारदादि वनकादि प्रभापति सुखर बनुर अनी ।  
 काठ कर्म गुण अण्ण अण्ण कछु प्रमु इच्छा रखनी ।  
 यह प्रताप दीपक, सु निरन्तर लोक सकल भजनी ।  
 आके उचित नखत नागा विधि बति अथनी-अथनी ।  
 मूर बाध सब प्रकट ध्यान में अति विविध सजनी ।

मुरसागर द्वितीय स्कन्ध ।

परमानन्द दान मन्त्रदाम तथा अष्ट छाप के भक्त कवियों ने अर्चन सम्बन्धी  
 गीतों की रचना की है ।

चन्दन—भक्त भयबान् के महात्म्य को हृदय में धारण करता है, उनकी  
 स्तुति करता है उनके सम्मुख नत अस्तक होता है । भक्ति के इस विधान को  
 'चन्दन-भक्ति' कहते हैं । अष्टछाप के भक्त कवियों के विभिन्न स्तुति और  
 प्रार्थना भाव से सम्बन्धित पदों में चन्दन भक्ति की प्रधानता निकली है । निम्न  
 लिखित पद में मुरदाम अपनी प्रार्थना में चन्दन की वन्दना करते हैं ।

हुवा जब कीजिए बलि बाढें,

× × ×

तुन हुमानु कलामिनि केसव अथम उबारन मार ।

× × ×

सूर पतित पावन पर अंगुन क्यों पछिहर बाढें ।

मुरसागर प्रथम स्कन्ध ।

दास्य सत्त्व और आत्म निवेदन भाव है । इनका आत्म-समर्पण होता है ।  
 बल्लभाचार्य ने भक्ति का स्थाई भाव स्नेह अथवा प्रीति माना है । इस प्रीति की  
 अभिव्यक्ति चार प्रकार होती है—

(क) परमेश्वर को स्वामी मानकर सत्त्व प्रीति करना इसे दास्य भक्ति  
 कहते हैं ।

(ख) परमत्मा को पिता मान कर सत्त्व प्रीति की कल्पना की गई है ।  
 इसे सत्त्व प्रीति कहते हैं ।

(ग) परमेश्वर को बाळक पुत्र और जिनु मान कर आत्मसत्त्व प्रीति की  
 कल्पना की गई है । इस भक्ति को आत्मसत्त्व-भक्ति कहा गया है ।



(घ) परमेश्वर को प्रति मान कर माधुर्य या मृगार प्रेम की कल्पना की गई है। इसे माधुर्य भक्ति कहा गया है। देखिये—अष्ट छाप और बल्कल सम्प्रदाय मात्र २ पृष्ठ ५६८।

वात्स्य, वात्सल्य सत्य तथा मधुर इस प्रकार की भक्ति के स्थायी भाव हैं।

वात्स्य भक्ति से प्रभावित भक्त अपने प्रभु को ब्याकुल प्रभु, पिता और पुत्र के रूप में ग्रहण करता है। भक्त भगवान् के चरणों में आत्मनमर्पण करता है। और अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। 'कुम्भापय' नामक ग्रन्थ में बल्कलभाचार्य वात्स्य भाव की भक्ति का स्वल्प विधान करते हुए आत्मधोष के प्रकाशन भगवान् के प्रति विनय, और दैव्य भाव निष्कण्य का विधान भी करते हैं। अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में वात्स्य भक्ति में सम्बन्धित पदों में इन सब भावों का प्रकाशन भक्ति के अनिवार्य तत्व के रूप में मिलता है। गुरुदास ने अनेक पदों में दैव्य भाव का प्रकाशन किया है आत्म निवेदन के भावों का प्रकाशन किया है। भगवान् की चरण में आकर अपने उद्धार की कामना की है—

जब के नाथ मोहि उबारि

मगन हो भव बन्धुनिधि में कृपा मिश्रु मुरारि।

नीर बलि गंभीर माया सोम सहुरि तरंग।

क्रिय जात अगाध जल में गहरे प्राहु वर्णव।

• • • • •

घण्टी बीच बिहास बिहस गुनी कफा मूल।

स्वाम भुज गहि काढ़ि सीजे सूर बज के वृत्त।

गुरुदास और परमानन्द दास के अनिरुद्ध अग्य भक्त कवियों की रचनाओं में दैव्य या वात्स्य भाव में सम्बन्धित पद मध्य भाषा में ही मिलते हैं।

महस्य भक्ति—भगवान् की उपासना भक्त सरास भाव में भी करते हैं। न्यु सार्ध में कृष्ण की बात लीलाओं को अंकित करने वाले पर उपसर्ग होते हैं। मोचरण के समय गोप कृष्ण के नाच कीड़ा करते हैं। बानी मधुर लीलाओं में कृष्ण अपने गोप सखाओं को नाच रगने हैं। गोप सखाओं के साथ कृष्ण नृत्य करते हैं। घान बाने हैं और बड़ी बजाने हैं। गुरुदासके एक पद में गोप सखाओं

सावक्रीका कछे हुण कृष्ण बठ जाते हैं । इस पर एक सच्चा कहता है कि  
टीका में न कोई स्वामी है और न सेवक । सेव में सभी समान हैं । सबको  
उमान रूप से सेव सेवना चाहिए—

सेवत में को काको बासेयी ।

हरि हारे बीते दीयामा बरबस ही कथ करत रिसैयी ।

जाति पाँति हमसे कछु नाहीं न बसत मुन्दारी छाहिमों ॥

अति अधिकार बनावत माते अधिक मुन्दारे हैं बखु पारवी ।

कछि करे छासो को सेवै रई पीडि बहाँ उहाँ सब अंमों ॥

सुरदास प्रभु सेकोई चाहत दौड दयो करि गन्य दीईया ।

सूर सागर दसम स्कन्ध ।

सत्य भाव की भक्ति का आधार रूप 'मुदामा हरि' संज्ञक प्रसंग में  
लिखता है । इस लक्ष्य में कृष्ण का विषय एक आधार विषय के रूप में कवि ने  
दिखा है—

हरि ते देखे बसबीर,

अपके बाक सच्चा मुदामा भक्ति बसत सब जिन धरीर ।

पोंडे हुते प्रयंक परम दधि नमिमी बसर दोकावत दीर ।

जठि महुकाइ बगवने जीने निष्ठत मैन भरि जापु नीर ।

सूर सागर पद ४०४६ ।

बीर— ऐसी श्रुति की बलि बाळ ।

विहासन छवि चले निम्न को मुग्न मुदामा नाळ ।

सूर सागर-पद ४०४८ ।

वात्सल्य भक्ति—वत्समाचार्य ने वात्सल्य भाव की भक्ति को सर्वोपरि  
माना है । इस भक्ति-भाव में भक्त के मन की भावनाओं पूर्णतः निष्कार्य भाव में  
बगवान् की ओर आकर्षित होती हैं । यहाँ वात्सल्य भक्ति का विधान लिखता है ।  
'भारत भक्ति सूत्र' में प्रेय-व्यवस्था भक्ति की धारण व्यवस्थाओं का वर्णन लिखता  
है । इनमें एक आत्मिक-वात्सल्य आत्मिक भी है । रूप गोस्वामी ने 'गी हृत्त्रिभक्ति  
रहस्यमृत सिन्धु' में वात्सल्य भाव की भक्ति का विवरण एक स्वतंत्र रखके अपने  
दिखा है । अष्टावक्र के कवि भी वात्सल्य भाव की भक्ति में अनुप्रेरित हैं । इन

कवियों में सूरदास और परमानन्द दास की रचनाओं में वात्सल्य भाव के पर  
ब्रह्म कवियों के पदों से आकार में व्यापक हैं भावना की दृष्टि से अधिक गंभीर  
और प्रभावपूर्ण हैं । सूरदास ने गन्ध और यशोदा के वात्सल्य हृदय के विधान में  
जीवन के रागात्मक अनुभवों का अति रसपूर्ण विधान किया है । वात्सल्य हृदय  
का उद्घाटन इन सन्धियों में सूरदास करते हैं—प्रथम कृष्ण की बाल लीलाओं के  
वर्णन में, द्वितीय कृष्ण के ब्रियोप में यशोदा बिरह-वर्णन के सन्दर्भ में । माता  
यशोदा धिनु कृष्ण को सोरी गाकर सुकाती हैं । कृष्ण का चपला देखाकर आनन्द  
विह्वल हो उठती हैं । इन सन्धियों में मातृ हृदय की भावनायें अति प्राकृतिक  
रूप में सम्पुष्ट आई हैं ।—

लासन हौ तेरे मुख बारी ।

बाल बोपाल लमी हन नैननि रोम बसाई तुम्हारी ।

सट छटकनि मोहन नृसि बिंदुका सिक्क भास मुखकारी ।

मनहुँ कमल अलि छावक पंगति उठति मधुप छबिस्यारी ।

× × × ×

सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी ।

सूर सिन्धु की ब्रूँ बई मिलि नति वति दृष्टि हमारी ।

कृष्ण मधुर चले गए हैं । माता यशोदा का हृदय ब्रियोप-पूरित हो उठता  
है । नयनील देखकर उनका हृदय प्रवित हो उठता है । कृष्ण की बाल-लीलाओं  
की स्मृति में उनका मन मग्न हो उठता है—

वदपि मन समुदावत जोग

मूल होत नयनील देखि मेरे मोहन के मुख जोग ।

निशिबासर छतिवौं ले साँझ बाधक लीला पाऊँ ।

× × × ×

बिरह नही बय को हृदय हरि ब्रियोप क्यों सहि ।

सूरदास प्रभु कमल नैन किनु कौनो बिधि हन रहि ।

सूरदास दशम स्कन्ध ।

वात्सल्य भक्ति के अन्तर्गत परमानन्द दास ने बाल और नृमर रूपों तथा  
लीलाओं का वर्णन किया है । नन्द्याग के सीमा-सम्बन्धी तथों में वात्सल्य  
की प्रवीण अनुभावना नहीं हो सकी है । वात्सल्य के अन्तर्गत विप्रलम्भ

का वर्णन निम्नलिखित पर में हुआ है ।

घोपाल बिनु कैसे रहियो ।

बुसर ब्रज उठाइ गीत छे सास कौन सों कहियो ।

वो मनुषुपी बिषस कामठ है सोच सुन तन कहियो ।

‘परमा मन्त्र स्वायी’ की छवि के सरन कौन की कहियो ।

परमाणम सागर, पर. ८० ।

मधुर भक्ति — ब्रष्ट छाव के कवियों का साम्य है मधुर भक्ति । भक्ति क ब्रह्म स्वरूप प्रेमभक्ति के उपादान-स्वरूप है । इन कवियों ने गोपी भाव से कृष्ण के नैक्य की अनुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया है । गोपी भाव से इन्होंने संवीर और वियोग, इन दोनों प्रकार के भावों का प्रकाशन किया है । ब्रष्टछाव के कवियों ने मधुर भक्ति के चर्म में स्वकीया-भाव का ही प्रकाशन किया है । परकीया भाव इनकी मधुर भक्ति का भाग्य नहीं था । इस प्रकार कोक-जीवन में जो भ्रम रह है, वही भक्ति के क्षेत्र में मधुर रह है । गोपिकाओं के दो रूप इस चर्म में देखने को मिलते हैं । प्रथम कुमारी गोपियों का रूप है, जिनका प्रेम स्वकीया-कौटि का है । दूसरा रूप विवाहिता गोपिकाओं का है, जिनका प्रेम परकीया-भाव का है । परन्तु इन सब कवियों ने स्वकीया भाव के प्रति ही विशेष आस्था व्यक्त की है । गोपियाँ उदय के सन्देश का जो प्रत्युत्तर देती हैं, उस से सम्बलित पत्तों में स्वकीया-भाव की ही ध्वनि निकलती है ।

हय बलि दोहुन भाव बराब्यो ।

मन मम बच हरि सौ घर पति ब्रह्म प्रेम बीच तप साब्यो ।

मातु पिता दित प्रीति निरम पय तनि कुछ सुख भ्रम नाब्यो ।

मन अपमान परम पछोपी सुस्मरि बिचि मन राब्यो ।

माधुर्य भाव की भक्ति में इस प्रकार की भावना मिलती है कि गोपियों ने कृष्ण को बीमार्य अवस्था में ही पति के रूप में धरण कर लिया था । मुरदास मन्दास आदि न राधा को कृष्ण की परिणीता के रूप में चित्रित किया है—

समनी बानस जर न समार्क ।

बरसाने ब्रजमान लयन लिख पठई है कन पाठे ।

बोरी नुमरो बेनु बिबिध रंग घोमित ठाढ़ ठाढ़ ।

भूयन् भन्नि वन पार गच्छिने सो वन देख कुमाई ।

नय बास सास बिरधर की वृक्षहि पर बकि जाऊ ।

नन्ददास ।

लौकिक प्रेम में पूर्वराम की अवस्था का वर्णन मिलता है । अष्टछाप के कवियों ने गोपियों की पूर्वराम भावना का आधार ग्रहण कर भक्त में अवस्थित पूर्व-राय-अवस्था की आसक्ति के स्वस्व का वर्णन किया है । कियोर कुम्भ के रूप-सावध पर कुमारी गोपियों मुख्य हैं । और कुम्भ के सौन्दर्य के प्रति भक्त भी इसी रूप में आसक्त हैं । अष्टछाप के कवियों ने इस प्रकार की आसक्ति भावना की व्यञ्जना के लिए कवि व्यापक मात्रा में पूर्व राय-सम्बन्धी पदों की रचना की है । निम्नलिखित पद में गोपी की आसक्ति-भावना चित्रण में भक्त की मनोभूमि का परिचय मिलता है :—

मन मुख देख्यो मोहन नैन जान सौ ।

मूढ़ भाव की सैन अचानक तक ताक्यों झट्टी कमान सौ ।

प्रथम मात्र बक चरि निकट लै मुरसी सतक मुर बंधान सौ ।

पाछे बंक किते मधुरे हँसि पात किए उलटे सुठान सौ ।

दूर मुबार बिधा या तनु की घटत नहीं औपवी जान सौ ।

हैं है मुख तबही सर अंतर आसिदन पिरिबर सुवान सौ ।

सुरदासर ।

गोपी और कुम्भ के संयोग चित्रण में भक्तों ने ईश्वर के सान्निध्य और उसके अपने नैकस्व भाव का वर्णन किया है । उन्होंने गोपियों की अनुभूतियों पर अपने भावों का आरोपण किया है ।

मधुर भक्ति में बिरह-अवस्था एक आवश्यक स्थिति मानी गई है । बल्लभाचार्य ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए यह कहा है भक्ति के आध्यात्मिक साधन में बिरह एक अनिवार्य अंग है जिससे भक्त आत्मपरिष्कार करता है । अपने बिरह-वर्णनों में अष्टछाप के कवि बल्लभाचार्य के इसी सिद्धान्त से प्रभावित हैं । प्रेमभक्ति में बिरह सिद्धान्त प्रतिपादन में ये भक्त कवि 'नारद भक्ति-सूत्र' से भी पर्याप्त अंश में प्रभावित लगे हैं । यहाँ प्यारह प्रकार की आसक्तियों का वर्णन है । इन आसक्तियों में 'परम बिरहासक्ति' का भी वर्णन

है। प्रेम की तीव्रता बिह्व अवस्था में ही प्रिय के गच्छत्य के महत्त्व का बोध कराती है। बिह्व की इस महत्ता का वर्णन गूर की एक गोपी उद्धव से कराती है —

ऊपी बिह्वी प्रेम कर ।

ऊपी बिगु फुट पट बहुत न रंग की रंग न रसे परे ।

ऊपी बर बई बीज बंजुर मिरि ली सत फरनि करे ।

ऊपी पट अनक दहत तन अपनी पुनि पय अभी मरे ।

ऊपी रन गूर सई सर सम्युक्त ली रवि रणहुँ अरे ।

गूर पुपाक प्रेम पय बलि करि, नयो दुख मुकनि अरे ।

गूरसागर पद ६७०५ ।

शान्ता भक्ति :—शान्ता भक्तिका परिचय देते हुए डॉ० वीन द्वाब घुस ने कहा है कि भक्त संसार की अनिष्टता का परित्याग कर वासनाओं से ऊपर उठता है और बिच की शान्त अवस्था में परमानन्द की अनुभूति प्राप्त करता है,

यही शान्त भाव है। काव्य-धारण के अनुसार इसे शान्त रस कहते हैं। उत्सर्प उपदेश भक्ति आदि इसके उद्दीपन विभाग हैं। निर्विकलता, निरर्हकारिता इसके

संचारी भाव हैं। रोमाञ्च, प्रकम्प-हर्ष न शोचक बिह्व अनुभाव हैं। देखिए

अष्ट धाप और बह्मन सम्प्रदाय पृ० १५० । इस रस का स्थायी भाव निर्वेद है।

अष्ट धाप के कवियों की रचनाओं में वैराग्य, आत्मप्रबोध, निराग, आत्मनिवेदन भासि भाव व्यक्त मिलते हैं। इन पदों की मुख्य धारा शान्त रस की है। शान्ता-

भक्ति से सम्बन्धित गूर वास का एक पद दिया जा रहा है —

नमो-नमो हे कृपा निवास ।

बिचकत ह्मा कटाक्ष तुम्हारी, मिटि गयी तम-अज्ञान ।

मोह निरा को कैस रह्यो गहि, भयो निवैक बिह्वान ।

+ + +

मेरे बिय अब यही साक्षसा लीसा थी मयमान् ।

अबन करौ निरासासर हित ली गूर तुम्हारी आन ।

गूर सागर, पद ६७६ ।

‘नारद भक्ति सूत्र’ में भक्ति के बारह श्रेणियों का उल्लेख है। इन श्रेणियों के आधार पर ‘आसक्ति-भक्ति’ का विधान मिलता है। वे इस प्रकार हैं—  
 गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, धरम्यासक्ति,  
 कात्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, निवेदनासक्ति, उगमसासक्ति और परम विष्णुसक्ति  
 अष्टादश के कमियों ने इस प्रकार की आसक्तियों से सम्बन्धित कृत्यों की रचना  
 अति व्यापक मात्रा में की है। भक्ति की विवेचना के उद्देश्य में लिए गए  
 निम्न निम्न उदाहरणों में इन भक्ति-रूपों का स्पष्टीकरण हो जाता है।  
 पुनरावृत्ति के समय से यहाँ स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया जा रहा है।

### पुष्प काव्य में दर्शन

पुष्टिमार्ग के सम्बन्ध में रचित काव्य वर्णन की दृष्टि से ‘गुडाईठ बाबी’<sup>१</sup>  
 है। इस सम्प्रदाय को ब्रह्मवाणी या अविकृति परिणामवादी<sup>२</sup> भी कहा गया है।

‘अन भाष्य’ में ‘पुष्टि मार्गीय भक्ति पर विचार करते हुए ब्रह्मभाचार्य ने  
 कहा है कि पुष्टि मार्ग की उपलब्धि भगवान् के अनुग्रह से ही सम्भव है श्रीकृष्ण  
 का अनुग्रह ही पुष्टि है। अथवा ग्रन्थ ‘सिद्धान्त मुक्तावलि’ में भी ब्रह्मभाचार्य ने  
 इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसके लिए भगवान् की स्नेहपूर्वक सेवा  
 तथा प्रभु-भूमा अवेष्टित है। श्री हरिराय ने श्री पुष्टि मार्ग सदाचारि नामक  
 ग्रंथ में इस सिद्धान्त की विषय व्याख्या की है। बल्लभ सम्प्रदाय में प्रस्थान

१ यहाँ गुड का अर्थ है माया के सम्बन्ध से रहित। माया के सम्बन्ध से  
 रहित ब्रह्म ही वषट् का कारण है, नहीं कार्य भी है। मायासक्तियुक्त ब्रह्म  
 कारण और कार्य नहीं है।

माया सम्बन्धरहितं गुडमित्युच्यते कुर्वे

कार्य कारण एवं हि गुड ब्रह्म न मामिहम् ।

गुडाईठ मार्तण्ड श्री विरपरजी ।

२ अथवा ब्रह्म का विचार-रहित परिणाम है। दूध का परिणाम दही सविकारी  
 है। वह फिर दूध नहीं हो सकता है। अष्टादश और अन्तम-सम्प्रदाय भाग  
 २ अध्याय पंचम पृ० ३६३ से अज्ञान ।





बल्लभाचार्य की प्रसिद्ध रचना है 'तत्त्वदीप निबन्ध ।' इस ग्रन्थ में इस तथ्य का निर्योधन मिलता है कि ब्रह्म की इच्छा एक से अनेक होने को हुई । परस्परव्यप उक्त एक ब्रह्म से अव्यभिचित जीवों का प्रसङ्ग उत्पन्न हुआ । ब्रह्म अंघी है जीव अंघ है । सूरदास ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया है । ब्रह्म अपने चित् अंघ से अनेक जीव-रूप में स्थित है । जीव इस संसार में अपने वास्तव स्वरूप को विस्मृत कर देता है । जीव की यह विस्मृति अवस्था है । निम्नलिखित पद में सूर ने जीव के इन आत्मविस्मृत अवस्था का वर्णन किया है :

अपुनपी आपुन ही मिसर्यो ।

जैसे स्वान काँच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भ्रुति मरयो ।

क्यों सपने में रंक मृग मयो तस्कर भरि पकड़यो ।

ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब बेसि के आपुन कूय पड़्यो ।

बैसे बज्र कलि फटिक सिता में बसुनि बाय अर्यो ।

मर्कट मूठ छौड़ि गहि बीनी पर पर द्वार छिर्यो ।

सूरदास ममिनी को सुबटा कहि कौने बकर्यो ।

सूर सागर—द्वितीय स्कन्ध ।

जीव माया के आचरण में है । जीव माया में ही अपना प्रतिबिम्ब देखता है जैसे ही जैसे स्वान काँच के मन्दिर में अपना प्रतिबिम्ब देखकर भ्रम में पड़ता है । माया का भ्रम स्वप्न में सोये हुए मनुष्य के भ्रम के समान है । बल्लभाचार्य ने जीव की दो अवस्थाओं की कल्पना की है बड़ जीव और बूढ़ जीव । प्रथम संसार में निम्न रहता है, द्वितीय रुचार में अस्मि रहता है—

जीव को मुग दुम तनु संग होई ।

जोर बिजोर तनु संग सोई ।

देह अमिमानी जीवहि माने ।

जानी जीव अस्मि करि माने ।

सूर सागर पष्ठ स्कन्ध ।

जगन् का स्वरूप — बल्लभाचार्य ने 'तत्त्वदीप निबन्ध' तथा अणुमाप्य नामक ग्रन्थों में जगत्-मायामी विचार का प्रतिपादन किया है । इन रचनाओं

में इन्होंने स्पष्ट किया है कि जीव का प्रकटन ब्रह्म के बिम्ब अंश से, और सत् अंश से ब्रह्म जगत् का विकास हुआ है। जगत् नागोक्तपात्मक है परन्तु जगत् के प्रत्येक रूप में ब्रह्म का सत् अंश ही परिष्कृत है। ब्रह्म जगत् की व्युत्पत्ति का हेतु है। अष्ट छाप के कवियों ने अपने दार्शनिक सिद्धांतों के निरूपण में ब्रह्म की विचार धारा का ही प्रतिपादन किया है। ब्रह्ममाचार्य ने संसार और जगत् की उत्पत्ति-विकल्पात्मकता की है। इनके अनुसार संसार का उत्पादन कारण अविद्या माया है। निमित्त कारण अविद्या माया में परिवर्द्ध जीव है। इस प्रकार संसार जगत् है। इसके विपरीत जगत् सत्य और नित्य है।

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।

मिथ्या है यह देह कबो कबों दूरि भिखारा।

तुम जाने दिन जीव उत्पत्ति प्रलय समाधि।

धरम मोहि प्रभु राखिबे जगत् कमल की छाँहि।

सूर सागर, प्रथम स्कन्ध।

माया—‘तत्त्व जीव मिथ्या’ में ब्रह्ममाचार्य ने माया के दो रूपों की वर्णना की है, प्रथम अविद्या माया, द्वितीय, विद्या माया। अविद्या माया सत्य पर आवरण डालती है और जहाँ भाव का आवरण कर पारमेश्वर का बोध कराती है। रज्जु में सर्प की प्रतीति जिस प्रकार होती है, उसी प्रकार माया के कारण असत्य का भाग होता है। माया व्यामोहिका है। वह जीव को प्रति व्यामोह उत्पन्न करती है। ब्रह्ममाचार्य माया के पाँच भेदों का उल्लेख करते हैं— अव्यकरण, अभ्यास, प्राणाभ्यास, इन्द्रियाभ्यास, बेहाभ्यास, अज्ञान स्वस्वभावात्। भक्त माया के इन विविध स्वरूपों का विनाश करता है। यह विनाश सत्त्वानु के अनुसार पर अवलम्बित है। ब्रह्ममाचार्य ने माया के दो स्वरूपों की वर्णना की है। सत्य और भ्रम। संकराचार्य ने माया को भ्रम-स्वरूप माना है। प्रथम कोटि की माया सत्ति-स्वरूप है। यह माया ब्रह्म की सत्ति है ब्रह्म के अनुसार सृष्टि का प्रसार आबिर्भाव और विरोधाभास कराती है। अविद्या माया जीव के ज्ञान का विनाश करती है। जीव संसार में भ्रमिष्ठ होता है। विद्या माया सत्ता का प्रसार करती है। संकराचार्य ने जीव-जगत्, दोनों को जगत्पूर्व माना है। अविद्या के नाश से इन दोनों का नाश होता है। ब्रह्ममाचार्य के

अनुसार अविद्या के नाश के परचाह ही अष्ट छाप के कवियों ने अविद्या माया का ही विषय अति व्यापक रूप में किया है। विद्या माया का विषय यही ब्रह्म माना में हुआ है। सूरदास ने अविद्या माया का वर्णन इस रूप में किया है—

महा मोहिनी मोह आत्मा मन करि बर्बाहि भगवै ।  
 ज्यों बूटी पर बंधू मोरि कै कै पर पुष्प दिखावै ।  
 माया मटिलि कटुट कर कीने कौटिक नाच गवावै ।  
 दर दर लोभ जावि सै होइति नागा स्वाम करारै ।

सूर सागर प्रथम स्कन्ध ।

परन्तु विद्या माया अविकल और अवर्धनीय है। उसकी शक्ति का परिचय गुरुदास ने इस प्रकार दिया है।

बागर है सागर बरि राधे बहु विधि नीर भरै ।  
 पाहन बीच कमल बिछसाही बल में बलिनि बरै ।  
 राजा रंक रंक है राजा सै सिर छन बरै ।  
 धुर पतित हरिनाथ तक में जो प्रभु नेहु बरै ।

सूर सागर प्रथम स्कन्ध ।

यम प्रकार अष्ट छाप के कवियों ने माया के दो रूपों का वर्णन किया है एक, रूप की शक्ति माया दूसरी उस माया का जो मनुष्य को परिग्रहित करती है।

माझ —शक्ति के उत्पन्न में मोह की चार अवस्थाओं की वस्तु की गई है। शब्दोक्त १ गमीप्य २ साक्य ३ और नायुग्य ४ ब्रह्मवाचार्थ की महामाया है कि पुष्पिभक्ति का उद्देश्य मुक्ति अवस्थाओं से ऊपर उठकर भगवान् की लोच-सीता में आनन्द लेना है। भगवान् की नित्यसीता का मैत्र्यमयी और वियोग दोनों रसों से सम्मिश्र है। मुक्ति की चार अवस्थाएँ वेदमयी, गीता की हैं। अतः इन मुक्तियों की अपणा विरहात्मिक के प्रति अष्टछाप के रसि आस्थावान रहें हैं। अतः पूर्ण पुण्योगम लोच है। वहीं पहुँचकर पुनः

१ भगवान् के नित्य नाम में निवासा २ भगवान् की नित्य गमीप्या ३ भगवान् का सा रूप ४ भगवान् के निग्रह में समागता ।

सू की आनन्द-लीलाओं का आनन्द विग्रह से अनुभव करना ब्रह्मसंसारोक्त का परम उद्देश्य है ।

इस प्रकार सुरदास ने संपूर्ण कृष्ण की उपासना से मुक्ति की चार ब्रह्म-लीलाओं की उपलब्धि की सम्भावना का उल्लेख किया । लीला भूमि के ईश्वर के सम्मुख बैकुण्ठ की वे उपाशा करते हैं । ब्रजनिवास के सम्मुख बैकुण्ठ सुख-व्याप्त है—

ओ सुख हीन पुनर्हि जाए ।  
 सो मुख होत न रूप तप कौनै कोटिक तीरव न्हाए ।  
 दिऐ सैत नहि चारि पदारव चरन कमल बिस तारै ।  
 लीनि लोक नून सम करि सखत, नन्दनन्दन दर भारै ।  
 बंसीनद कुम्हारन अनुना तबि बैकुण्ठ न आवै ।  
 सुरदास हरि की सुमिल करि, कहुनि न घब बल आवै ।

सूरदासर १४ १४८ ।

इस ओर संकेत किया गया है कि बहुभार्या के अनुसार परमेश्वर की लीला के सामीप्य से ही मोक्ष सम्भव है । मोक्ष की विना चार अवस्थाओं की कल्पना की गई है, उनमें संयोग-सुख की ही सम्भावना है । परन्तु उसके लीला-रस की अनुभूति बिना ही अत्रिक स्वाधी है । इस प्रकार विद्यावृत्ति में चारों प्रकार की मुक्ति सम्भव है । सूर की मोनियों इसी विद्यावृत्ति की ओर चक्षुष का ध्यान आकर्षित करती हैं—

ओ सुखे नैकु दिहारी ।  
 हम अवलनि को विसवन आए, मुखी लाग दिहारी ।  
 निरगुन कही कहा कहित है, तुम निरगुन अविहारी ।  
 केवत मुकन भ्याम मुखर की, मुक्ति कही हम चारी ।  
 हम छाकाप्य, सकल सामुखी, रहित समीप तवाई ।  
 सो तबि कहुत और की और तुम अलि बड़े कवाई ।  
 × × × ×  
 तुम ब्रह्मन कहुहि उपदेशत, जान रूप हमही ।  
 निजि निज ध्यान सूर प्रभु की अलि देखत त्रि तिहरी ।  
 सूरदासर, ४३, १८ ।

रासलीला—कृष्ण-लीला ने अन्तर्गत रास एक प्रधान अंग है। रास कृष्ण की लीला है जिसके माध्यम से उसका अभिर्भाव और तिरोभाव होता है। रास लीला में कृष्ण परब्रह्म हैं राधा और गोपियाँ कृष्ण से ही विकसित लीलाभासा हैं। यह रास समग्र सृष्टि में व्याप्त है। यह धिक्काभावनमन्त्रिण्यम् है। इस प्रकार अष्ट छाप के कवियों ने सम्मुख रास का एक विशेष दार्शनिक अर्थ या। कृष्ण अप्राकृत हैं। गोपियाँ अप्राकृत हैं। इस रास के तीन रूप हैं—नित्य रास अवतरित या नैमित्तिक रास, और अनुकरणात्मक रास। अनुकरणात्मक रास के दो रूप माने गए हैं—मानसिक या भावार्थक और वैद्यात्मक। नित्य रास की कल्पना में भगवान् का स्वल्प विधान आनन्द प्रसारिणी समितियों के साथ होता है। इस सम्बन्ध के रास-स्वरूप को अनादि और अनन्त कहा गया है।

कृष्ण ने अपनी समितियों के साथ अवतार लेकर संसार में जो रास किया वह अवतरित रास है। भक्त अपनी भावनाओं में भगवान् के रास का जो मानसिक अनुमूर्ति करता है वह अनुकरणात्मक रास है। भक्त बन जब स्वयं रास की भूमिका में अवतरित होते हैं तो यह अनुकरणात्मक वैदिक रास है। रास की अनुमूर्ति केवल मधुर जन्म से होती है।

अष्ट छाप के कवियों ने अपने रास-वर्णन में बहुभाचार्य के रास रामान्दी इन्हीं आधारों को ग्रहण किया है। सूरदास अथवा गन्धदास ने अपने पदों में जिस रास का वर्णन किया है वह नित्य है कृष्ण नित्य हैं गोपियाँ नित्य हैं—

नित्य धाम नृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रजवाम।  
नित्य रास अस नित्य बिहार। नित्य भान राखिताभिमार।  
कृष्ण रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुवन येई सार।  
नित्य कुञ्ज-गुण नित्य द्विद्वार। नित्यहि त्रिनिज समीर अक्षर।  
मदा नमस्त रहत जहै बास। सदा हर्य जहै नहि उबास।

सूरदास पद० १४११।

गन्धदास ने 'राग वशाब्धायी' में राग के इसी स्वरूप का वर्णन किया है।

कृष्ण-नाम में गोपियों का चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक, ईश्वर की प्रतिबिम्बित प्रति के रूप में दूधरे कान्ता भाव से ईश्वर को भक्ति करने

वाली मान्य प्रकृति के रूप में । राधा आदि रस धर्मिण हैं, वे मन्त्रि में विद्या हैं ।  
कृष्ण राधा के अधिकार में रहते हैं । राधा प्रकृति है, कृष्ण पुरुष हैं ।

मुरली कृष्ण की भाषा-ध्वनि है । माया के दो रूपों की बर्णों ऊपर की गई  
है । प्रथम स्वस्व है 'योग' या 'विद्या' का । द्वितीय स्वस्व है 'प्रेम' या 'अविद्या'  
का । मुरली योग रूपा है इसे 'योग भाषा' भी कहा गया है । यह प्रकृति का  
अवयव से वास्तविकता करवाती है । इस प्रकार मुरली योग-भाषा रूपा है ।  
शूरदास मुरली के इसी स्वस्व का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मेरे सार्वर जब मुरली बजत बरी ।

सुनि सिब-समाधि तरी ।

ग्रह गच्छत छच्छत न रास ।

बाह्य बंधे पुलि पास ।

जब पाके बचल ठरे । सुनि बाग्य अमर बरे ।

सुनि येनु बुनि पाके रहित । तुन दखहु नहि नहति ।

शूरदास, पद १२४१ ।

### कृष्ण-काव्य का भाव प्रकृ

हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य में अन्तराश्रयता और अनुभूतियों के दो रूप सम्मुख  
आते हैं, उनमें भावनाओं के संस्थित रूप-विधान की अनुपेक्षा निश्चयान मिलती  
है । कृष्ण काव्य एक साम्प्रदायिक काव्य है जिसमें बहुम संप्रदाय की भक्ति-  
भावना और दर्शन रसालस संस्कारों से जागरित है । व्यष्टिवाद के कवियों ने रस  
विक कष्टों से भक्ति-भावना के साक्षर स्वस्व का सूर्यविधान किया है । इस  
प्रकार इसकी रचनाओं में काव्य दर्शन और भक्ति का महिमा-अन्विष्ट संभव  
मिलता है ।

कृष्ण-भक्ति-काव्य का मुख्य विषय है श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का  
पान करना । शूरदास ने भाववत-रूपा के माध्यम से श्री कृष्ण की लीलाओं का  
पान किया है । इसी प्रकार की भाव-योजना समस्त कवियों की रचनाओं में  
मिलती है । कृष्ण के अलौकिक तथा उदात्त आध्यात्मिक स्वस्व के अनुपात  
साध्यात्मिक अनुभूतियों के प्रकाशन, एवं भावनाओं की रसपूर्ण योजना का  
अपूर्व संभव इस वर्ग के काव्य की विशेष विभूति है ।

सूरदास तथा अन्य कवियों के काव्य में भावनाओं के वैभवपूर्ण विधान के सम्बन्ध में प्रथम आकर्षित करने वाला तब उनका वास्तव्य वर्णन है। इस प्रकरण में सूरदास का कवि मनोविज्ञान के कवि हैं। कृष्ण की वास-कीर्तियों का भक्ति भावपूर्ण वर्णन सूरदास के काव्य की विशेषता गरिमा है। अपनी सीता की मिला मिलन परिभूमियों में कृष्ण सहज मानव-गुण सम्पन्न लगते हैं, परन्तु उनका व्यक्तित्व धार्मिक चेतना और भावना से सज्जित भी नहीं है। कवि कृष्ण की वास-सुख और वास-कीर्तियों का वर्णन करता है। सूरदास वास्तव्य रूप में कृष्ण के रूप सौन्दर्य का संक्षिप्त विधान करते हैं। कृष्ण ब्रह्मसूत्रित नन्द के कलक बौद्ध में घुटनों के बल बल रहे हैं। मुक्त पर लट्टे फैली हैं, कण्ठ छतरपी कुम्हरी पहन हैं। लट्टे मुक्त-कमल पर अमर-पत्तियों के समान हैं। छतरपी कुम्हरी इन्द्र मनुष के समान है। स्वामहोठों में ब्रह्म की वस्तु-पत्तियों बाहकों में विद्युत के समान लगती हैं (पृष्ठ १०३)। इस प्रकार वास्तव्य का सम्पूर्ण चित्रविधान इस वर्णन में ही जाता है। मणिमय कनक-आँगन में किष्काकारी मारते शिशु कण्ठ घुटनों के बल बल रहे हैं। मणिमय आँगन में उनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। कृष्ण अपने प्रतिबिम्ब को ही पकड़ने के लिए पीड़ित हैं। इनकी स्वच्छ वस्तु-पत्तियों मणिमय कनक-आँगन में प्रतिबिम्बित हैं। कृष्ण की वास-कीर्तियों से उत्कृष्ट हो पड़ोवा इस सुललाह के लिए नन्द को बुलाती हैं। उनका वस्तुतः हृदय भाग्य-मुरित हो जाता है और उनके स्तनों में ब्रह्म उतर आता है (११०)। हरि अपने आँगन में जा रहे हैं वास-गुलन क्रीड़ा कर रहे हैं—

हरि अपने आँगन कसु गावत ।

तनक-तनक बरसत सौ भावत मनही मनहि रिझावत ।

बाँह छठाई काजरी-प्योरी मैयलि टेरि बुझावत ।

कबहुँक बाबा मय पुकारत कबहुँक बर में भावत ।

भागल तनक आपने कर से तनक बदन में भावत ।

नबहुँ विने प्रतिबिम्ब दाम्न में लौनी किए लगावत ।

दुरि देखात अनुमति यह सीता हरय अनन्द बड़ावत ।

सर दयान के वासवतित निज निहरी देखात भावत ।

गुरदास, दयान-दाम्न ।

यशोदा कृष्ण को पालने में मुग्धा रही है। लोरी गा रही है—

पसना प्यास भुसावधि बननी ।

कटिबनुराय परस्पर बाबधि, प्रफुल्लित मगल होय मंद चरनी ॥

उमंगि-उमंगि प्रभु मुखा पसारत, हरि बसोमति अंकम धरनी ।

श्रुदास प्रभु मुनित यशोदा पूरन गई पुरावन करनी । ६४ ।

एक क्षण पर में इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि यशोदा कृष्ण को पालने पर लोरी गाकर मुग्धा रही है। लोरी के प्रभाव से चित्त निश्चित होने लगा है। मैं मीन हो जाती है। चित्त जाय पड़ता है। बननी पुन लोरी गाने लगती है

कणई एकक हरि मूँह केत है कणहुं अपर धरकावे ।

खोखत जान मोन झू के रहि, करि-करि सेन बतानै ॥

इहि अन्तर बाकुसाई ठठे हरि बसुनधि मधुर नावै ।

जो मुल सूर अपर-मुनि दुरकाय, सो मंद घाँघनि पावै ॥

वसन्त स्कन्ध ॥४५॥

इस प्रकार कवि ने कृष्ण की बाक-झीड़ाओं के प्रति बीड़न-व्यापी स्वल्प का रूप बिधान किया है। इन वर्णनों में यशोदा के वात्सल्य की ही प्रधानता है। माता यशोदा अपने चित्त के बड़े होठ की कामना करते हैं। चित्त की तुलनी बोली पर उनका मन रीझ जाता है। अपनी बाक-झीड़ के रूप ही कृष्ण पुत्रवा तुषारवर्त और खट्टासुर वारि का वच करते हैं। इस प्रकार कृष्ण की अलौकिक सीढियों बाक-झीड़ा के बंध के रूप में वर्णित हैं। कृष्ण के ये व्यापार आरोपित नहीं लगते हैं। उदाहरण स्वरूप तुषारवर्त-वध के वर्णन को ले। इस अंश में वात्सल्य रस के वर्णन में ही अलौकिक घटना घटती है। यशोदा अमितावा कर रही है कि क्या मेरा चित्त 'बुटान' समिया। अनी इस प्रकार वे सोच ही रही थी कि तुषारवर्त-वध की अलौकिक घटना घटती है—

धनुमन्ति मम अभिकास करे ।

कब मेरी लाल कुटुरबलि रहे कब जाली बग टव जरे ।

×

×

×

×



इहि अन्तर अंबबाइ उठ्यो इक, गरबत पगन सहित बहरे ।

मुरदास ब्रज लोग सुनत बुनि, जो कहैं तहें सब बलिहि डरे ।

सुरसागर ७६ ।

इस प्रकार के वर्णन-सम्बन्धों में सुरदास अनिवार्य रूप से संकेत करते हैं कि कृष्ण परब्रह्म हैं । उनकी बाल-लीलाओं में उनके अलौकिक व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं—

कर यहि पन अँपुठा मुख मेसत ।

प्रभु पीछे पाछने अकेसे हरपि हरपि अपने रंग खेसत ।

उन ब्रज बासिनि बात न जानी समुझै सूर दण्ड पगु वेसत ।

ब्रज बासियों को कभी-कभी इस सत्य का आभास मिन्न भी जाता है कि कृष्ण अलौकिक हैं । परन्तु यद्यपि इसकी कल्पना भी नहीं कर पाती हैं कि कृष्ण अलौकिक व्यक्ति हैं । कृष्ण की अलौकिक लीलाओं को वे आकस्मिक घटनाओं मानती हैं । उन्हें अपने बाह्य के सामर्थ्य पर आश्चर्य होता है । परन्तु, अन्त में पुनः की मंगल-कामना से आपूरित मन पश्चात्ताप करता है यदि कहीं बाह्य का अर्मगत हो जाता तब—

अमुमति मुनि मन चिन्तित गई ।

मैं बरबसि बन जात क्यूँदा काँची करे गई ।

वहाँ-वहाँ ठै उबर्यो मोहन, नैकु न छऊ डरात ।

बापुन वहाँ तनक सौ ब्रज में मुनो बहुत भै पात ।

मेरी कच्ची मुनो जो कबलनि कहति यद्योवा सीमत ।

सूर-ब्रजाम कहाँ न नहि खेहो यह कहि मन-मन रीमत ।

सुरसागर दशम स्कन्ध ४३४ ।

कृष्ण की बाल लीलाओं के मध्य कासी ( नाग ) वध की घटना का उल्लेख मिलता है । इस अंत में मुरदास नाग की भयंकरता की अपेक्षा कृष्ण के शूर के सौम्य-स्वरूप का ही चित्र विधान करते हैं । कृष्ण की रास लीला के मध्य में नाग की अनुभूतियों के विषय सौम्य विधान की रचना कवि करता है उनमें भिन्न विधान दश अंत की व्यक्तियों की वा नहीं हैं । नाग की वध करना शूर-सौम्य में ही समाप्त हो उठती है—

फन फन प्रति निरतत नख नखन ।

बल भीतर पुन बाग रहे कहुँ मिट्यो नहीं तन बरन ।

उहै काह्नी कटि पीताम्बर सीत मुकुट भति सोहत ।

मावो गिरि पर मोर अमलित, देखत दब-बन मोहत ।

बँधर कहे अमर लक्ष्मी संत जै जे बुनि तिहुँ लोक ।

सुर स्याम काली पर निरतत बाबत हैं ब्रज लोक ।

सूरदासर, १६३ ।

बट्ट ज्ञाप के कमि कृष्ण के बाळ-सीता-वर्णन के सन्दर्भ में 'बधि-कीला और 'बाजन बोरी' के बरों में कृष्ण की बाळ-काँड़ा के अति सुमधुर, मीठक और स्निग्ध वर्णन करते हैं । कृष्ण बाळ-सखानों के साथ बधि-माखन की बोरी करते हैं । यह व्यापार उनकी बाळ-सीता का प्रमुख संग है । एक पक्ष में इस प्रकार का वर्णन दिखाता है कि कीड़ा करते स्वाम एक आत्मिन के घर में प्रवेश करते हैं । घर सुना है । कृष्ण माखन खाते हैं दुग्ध मिला देते हैं पात्र छोड़ देते हैं । इस बीच आत्मिन बा बाटी है । कृष्ण को पकड़कर यशोदा के पास लपकान्न देती है—

स्वाम पर आत्मिन घर सुनो ।

माखन खाइ डारि सब मोरस, बाळन करि सोव हठि दूनो ।

×

×

×

बाइ गई आत्मिन तिहि बीसर निकसत हरि करि पावो ।

देखत पर बाळन सब पूटे दही दूध डरकावो ।

दोव मुख बेरि मोह करि कीन्हे, गई महरि के बाये ।

सूरदास अब बसै नील झौं, पति गहि है ब्रज त्याये । सूरदासर ।

कृष्ण माँ यशोदा से कहते हैं कि हम घर इस प्रकार का सेवाराधन ब्यापपूर्ण है । माखन की बोरी सखानों ने की है, अपनी बोरी छिपाने के लिए उन्होंने मेरे ( कृष्ण ) मुख में माखन लगा दिया है । कृष्ण माता से प्रमाण में कहते हैं पात्र अर्धे 'सीसे' पर है । मैं अपने गह्वर कर से उसे कैसे पा सकता हूँ—

देखत सुही सीसे पर माखन अर्धे घर लटकवायो ।

सुही निरखि नाहीं कर अपने में कैसे करि पावो । सूरदासर ।

इस प्रकार के अनेक पक्ष सूरदास की रचनाओं में उपलब्ध हो जाते हैं। कतिपय पक्षों में इस प्रकार का भाव व्यक्त मिलता है कि गोपियों कल्प के लक्ष्मी व्यासी हैं, उनके मन में यह समझाया मान करती है कि कल्प उनके घर भासन चोरी करने जावे जिससे वे उनके कल्प-सीन्धव का पालन कर सकें। भासन चोरी के समय गोपियों कल्प को क्षिप कर देवती हैं उनके वर्चन-मुख हैं। आप्लावित हो उठती हैं। कल्प और गोपियों के पारस्परिक सम्बन्धों के सुवर्ण में सूरदास अनुभूतियों के विविध रूपों का विश्लेषण करते हैं और भावों के आवेग में प्रवाह पूर्व रूपों का वर्णन करते हैं। इन वर्णनों में रघुलक्ष्मी वृत्तियों का चित्रण सहज रूप में हुआ है। कल्प के व्यवहारों से गोपियों की मूर्च्छा भी है और मधोका को उपासना भी होती है। परन्तु इन उपासनाओं में प्रेम भावना ही ध्वनित मिलती है—

बुनहु महरि अपने सुत के पुन कहा कहीं किहि भौंसि बनाई ।  
 बोली प्यारि हार सहि सोरही इन बातनि कहीं कोन बड़ाई ॥  
 भासन साह खवायो धावन जो उबरयो सो रियो कृपाई ।  
 बुनहु सूर चोरी सहि जीनी नव कैसे सहि बात दिखाई ॥

सूरदासर वचन स्कन्ध पद २२१ ।

वस्तुतः इस बंध में गोपी के हृदय की प्रेम भावना की व्यञ्जना वर्चन का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार के अनेक बंध मिलते हैं जिनमें गोपियों के उपासना में उनके प्रिय विलक्षण रूप का प्रतिबिम्ब मिलता है। मार्ग चक्रे हुए कल्प गोपियों को संग करते हैं। मन में प्रेम-अनुभूति से वे पुलकित होती हैं। अपनी मन से वे उपासना देती हैं।

देखो नाई वा बाळक की बात ।

बन उपवन सतिता-सर मोह, देखत स्वामय गात ।

मारम अछत कनीसि करत है हृद करि मायन रात ।

पीताम्बर बह सिर से झीझत, बचक से मुमुकात ।

सूरदासर वचन स्कन्ध २२६ ।

गृधर की भूमिका में राधा-कल्प मिलन के वर्चन-स्वप्न विशेष मोहक है। कल्प मीठा कर रहे हैं। हाथ में मीठा चक्रोरी है। इस प्रकार मीठा करते

करते हुए बमुना-घट पर पहुँचते हैं। प्रथम बार राधा-कृष्ण का परिचय होता है—

गए स्वाम रनि उनया कँ उट जंम लसति बंजन की खोरी ।

बीनक ही देखी तँहू राधा नैन बिछारु धाल किए रोरी ॥

X X X X

संग करिजनी भक्ति इति भावति, दिन बोरी अति छवि लग योरी ।

दूर स्थाय देखत ही रीते, नैन नैन मिलि परी छयोरी ॥

सूरसागर बसम स्कन्ध ।

कृष्ण राबिका से पूछते हैं, तुम्हें कभी स्वप्न में नहीं देखा है। राबिका उत्तर देती है—

काहे को हम स्वप्न तन भावति, खेसत रहत भावनी योरी ।

कृष्ण कहते हैं—

तुम्हरो कदा चोरि हम खेहो, खेसत बसो संग मिलि योरी ।

राधा और कृष्ण की प्रथम-मीकाओं का कारण इस प्रकार से होता है। राधा-कृष्ण का प्रेम क्रमशः प्रेम और मधुर भाव से परिचित हो जाता है। उनमें प्रथम की बाहुल्यता जात होती है। राबिका की यह स्थिति है कि बिना कृष्ण-वर्णन के पक्ष भर वह नहीं सकती। परिवार तथा शोक-मयीरा का सम्बन्ध उसके हृदये बसहीन है। मर्माका के सम्य हो वह माने निकलती है। पाप दुष्टाने के बहाने वह घर से निकलती है। कृष्ण राबिका का मन हर ले गए हैं। विष्णु-प्राप से संसर्गित भावनायें बाहुल्य हैं। दूर ने राबिका की बाहुल्यता का वर्णन इस रूप में किया है—

उठी प्रात ही राबिका, बोझनी कर काई ।

महुरि मुठा छौं तब कह्यो, कह्यो बकि कतुराई ।

बरिक दुष्टान बालि ही, तुम्हरी येनकाई ।

तुम ठकुराएन पर रही, योही कैरी काई ।

X X X X

बाइ गई प्याह के प्रातहि गई काई ।

ता कारण में बाति हो अति काय बंकाई ।

सूरसागर ७१३ ।

राजा अपनी भावनाओं में ही केन्द्रित हैं। उसे वस्तुस्थिति का भी विस्मरण हो जाता है। वह रीठे पात्र को ही विनोसी है—

रीति माठ विनोसी, बित्त बहौं कम्हाई।

अनके मन की काह कझी, ज्यों दृष्टि कम्हाई।

छेया मोई रूपन सौ नैवा बिसराई। पद ७१६।

संयोग भूदार में मुरली-अर्चन के प्रसंग में गोपियों के प्रणयी भाव का विचित्र और उल्टी पार्थिव अनुभूति की व्यञ्जना कृष्ण भक्ति काव्य के भाव पद्य का एक अन्य सम्प्रेक्षणीय अंग है। मुरली कृष्ण के 'अबर रस' का पान करती है। जिस अबरामृत-पान के सिधे गोपियाँ साक्षात्कृत रहती हैं, वह मुरली को सहज प्राप्त है। वह गोपियों के सिधे ईप्सी का सन्दर्भ है। गोपियों में अनुरक्त रहते हुए भी कृष्ण मुरली के साथ अधिक सम्पर्कित रहते हैं। कृष्ण के मुरली में अनुरक्त रहने के कारण गोपियों का आनन्द अतिरिक्त रहता है। गोपियाँ मुरली को अपनी भाव से देखती हैं। 'मुरली हम कँह सीत भई'। बचन ब्रजटा के माध्यम से मुरली के कुस पर वे आरोप करती हैं। मुरली अपने अंग प्राप्त गुणों के अनुसार ही तो व्यवहार करती है। मुरली का पिता अक्षर समग्र पृथ्वी को जल-प्लावित करता है परन्तु पपीहे को तृप्ति रखा है। पृथ्वी सब को जग्न देती है, फिर भी कुँवारी रहती है। इन गुणों से जाग्रति मुरली गोपियों के चित्रण का कारण बनती है।

गुनगु सखी माके कुल धर्म।

तंसोइ पिता, मातु तँही भव देसी माके कर्म।

मे बरसव धरनी सम्पूर्ण सर सरिता अथपाह।

जातक सदा निराक रहत है एक बूँद की चाह।

पली जगम देव सबही को आपुनि सदा कुँवारी।

उपजत फिर ताही में निगसत छोहन बहु मइवारी।

ता कुल में यह कन्या उपजी माके मुनि मुनाई।

मूर गुन गुन होइ तुम्हारे, मैं कहि के मूर पाई।

मुरली कुम्ह और गोपियों के मध्य व्यवधान बनती है, परन्तु गोपिमाँ अपने नेत्रों के कारण विवश हैं। इसके कारण ही वे परवश हुई हैं। कुम्ह-स्व प्रियासिद्ध नेत्रों को प्रताड़ना देती हैं, वे आक्रोश प्रकट करती हैं। परन्तु इस आक्रोश और प्रताड़ना में उनकी प्रमथ-आकुलता, विह्वलता, और विवशता ही व्यञ्जित है।

स्वाम रस रंघीके नेत्र ।

बोए कुटल नहीं यह कीछेहुँ, निळे पवित्रि हूँ मिन ।

पद २२२१

इस प्रकार उनके नेत्र स्वाम-रस में रक्षित हैं, जोभी के समान उनके साथ साथ ही रहते हैं।

अष्ट छाप के कवियों ने कुम्ह के बोधारण प्रसंग में शीत-पदों का अति व्यापक रूप प्रस्तुत किया है। कुम्ह आशीर वाक्क हैं। अपने आशीर-सुखाओं के साथ वे बोधारण करते हैं। अन्त-प्राप्ति में शीका के समय परस्पर लड़ते हैं। कुम्ह आदु में सम्मिलित सबसे छोटे हैं। अन्य सुखा शीका में रह हैं। वाकों के घेरने का काम कुम्ह की ही करना पड़ता है। कुम्ह यद्योना से उपासम्म देते हैं—

मैमा हौं न करछही पारि ।

सिनरो आल बिरावत मोसों मेरो पाँच विपारि ।

कुम्ह और भीषामा के बीच अधिक स्थानी है। कुम्ह बीच में हार बाते हैं और कटते हैं। अन्य सुखाओं को कुम्ह का यह आनन्द आनन्द नहीं समता। व कहते हैं—

केकट में को काको बोसैमा ।

हरि हारे जीते भीषामा बरवस ही किन कछ रिसेमा ।

×

×

×

×

अति अधिकार बनावत बाते अधिक तुम्हारी हैं कबु मैमा ।

कमो-कमी राधिका और कुम्ह के प्रसंग को लेकर बोध-वाक कुम्ह के साथ साथ-परिहास भी करते हैं। उनके विमोह में अन्य भाव लपट निहित मिलता है। एक प्रसंग में इस प्रकार के भाव का निर्मीलन मिलता है कि बोधारण के

समय सभी पाये बिहार गई हैं । एक सला ड्रुम पर चढ़ कर गायों को 'टिंकर' एकत्र करने का आदेश देता है,—

ड्रुम बहि काहे न टेरत कागहा पइयां बुरि नई ।

×                      ×                      ✓                      ×

माजी जात सबन के भाये, ज वृषमान गई ।

'वृषमान' के द्वारा ब्रह्म का स्वर अति प्रयोजन पूर्ण है । इस प्रकार के वर्णन से सबनेक स्त्रियों में सुरदास की रचनाओं में मिलते हैं । अन्य प्रसंगों में व्यास बास कृष्ण को घेड़ते हैं कि अन्य तो गौर वर्ण के हैं यद्यपि गौर वर्ण हैं ।<sup>१</sup> कृष्ण इसपर कुपित होकर माता यशोदा के पास पहुँचते हैं । मा पुत्र की रोप-मुद्रा पर विह्वल हो उठती है । माता अपने पोषण की संवेदन्य साधक कहती हैं, 'मैं तुम्हारी माता हूँ तुम मेरे पुत्र हो । कृष्ण-बलराम पोषण के समय भ्रमण करते हैं । बलराम बड़े हैं परन्तु बासकों में इस छोटे-बड़े का भ्रम कहीं रहता है—

कनक कटोरा प्राप्त हूँ बचि पूत सुमिठाई ।

सेधत जात विराबहि, कण्ठ दोउ माई ।

जलत पालत पुटिया यहै, बरबत ई माई ।

महा कीठ माने नहीं कसु स्मर बड़ाई ।

सुरदासर : वचन स्कन्ध १६२ ।

राधा-कृष्ण, तथा गोपी-कृष्ण की श्रृंगार-सीमा के वर्णन में सुरदास तथा अष्ट छाप के अन्य कवियों ने मान सीता, बान-सीता पन-बट सीता, रासलीला

१ । मैया मोहि दाऊ बहुत सिन्धायी ।

मोसो कहत मोल को कीन्हो तू जमुपति कब आवी ।

कहा करौ इहि रिधि के मारे सेतन ही नहि जात ।

पुनि-पुनि कहत कोल है माता को है तेरो तात ।

गोरे नन्द, जगोश गोरी, तू कत स्यामस जात ।

बुटरी बं दे व्यास नचावन हँसन गये मुसकात ।

तू मोही को मारन सींगी बाऊहि बहूँ न सीमो ।

आदि प्रसंगों को लेकर रचामायों की हैं। गोविणों कल्प के कम-आधुन्य पर निमोहित हैं, कल्प और गोविणों के इस आकर्षण पूर्व को सम्बन्ध को ग्रहण कर कवि कल्प राधिका तथा गोविणों की मीठा का विधान करते हैं। कल्प के पनकट प्रस्ताव के वर्णन के साथ-साथ कुछ-विहार, यमुना-स्नान जल-केसि, पीठ-मर्दन द्विदोषा रास-नृत्य आदि भावों से आपुरित पदों की संख्या भाषा में अधिक है। युक्तियों के मध्य बेटी राधिका के सम्मुख कल्प आ जाते हैं। युक्तियों की स्यादा को वह धँस भी नहीं करती और संकेत से ही कल्प से वार्तालाप कर लेती हैं—

स्वाम बचानक आइ गए री।

मैं बेटी मुझसे कम सजनी हैकल ही मेरे मन गए रो।

तब एक बुद्धि करी है ऐसी, बेटी सो कर परस कियो री।

आपु हँसै कह पाय यसकि हुरि बन्ध्यामो बाग सिम्यो री।

लेकर कमल बरार परसामी, देखि हरपि पुनि हृदय पर्यो री।

बरन छए होत नैन लयाए, मैं अपने मुख बँक बर्यो री।

पद २४६७।

प्रेम बंधन श्रृंगार-वर्णन के प्रसंग में प्रथम समास्य-सम्बन्धी पद मिलते हैं। इसके अतिरिक्त विपरीत रति सुरतिबन्ध और श्रृंगार-समा-सम्बन्धी पदों में संयोग-सुख के विभिन्न नाम वर्णित मिलते हैं। उदाहरण स्वयं एक पद में इस प्रकार का भाग-व्यक्त है कि एक गोपी स्वाम के लिए प्रतीलाकुल है। समस्त रति लक्ष्मी प्रतीक्षा में व्यतीत कर बी है, कल्प अपने बचन का पावन नहीं करते हैं। कल्प प्रातः समय जाँटती है। उनके शरीर पर रति-चिह्न स्पष्ट है। गोपी कुछ कष्टी नहीं है। केवल वर्णन उनके सम्मुख रक्त देती है, और व्यथ करती है—

क्यों मोहन वर्णन नहि देखत।

क्यों बली पद-जलनि करोबत क्यों हय उन नहि देखत।

क्यों ठाढ़े बैठत क्यों गाहीं बड़ा परी हय चुक।

पीताम्बर नहि कहा बैठिनी, रौं कहीं हँ मुर।



सहरि गयी सर तैं उपरीना, नर न-विनु गुन बाळ ।

सुर देखि कटपटी पाय पर, जावक ५ छवि काळ ।

सुर सामर, ११०२ ।

द्वितीय-कृष्ण-मक्ति-काव्य में विद्योद-शृंगार का स्वस्वमिन्यास उस की सधै  
उन अनुभावना पर आधारित है । सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से कृष्ण और  
राविका तथा गोपियों के विद्योद-वर्णन के माध्यम से कवि बहुत और नीच के  
मन्य के विरोग-स्वल्प का निरूपण करते हैं । परन्तु सिद्धान्त की बौद्धिकता इनकी  
रचनाओं में प्रसार नहीं हो सकी है । इनकी रचनाओं में बाव पक्ष और अनुमृति  
की प्रधानता है । सिद्धान्त निरूपण केवल सांकेतिक रूप में विद्यमान है ।

कृष्ण मक्ति काव्य में विप्रसन्न शृंगार की उद्भावना कृष्ण के अपुरा-मन  
के आधार पर हुई है । कृष्ण बळूर के साथ अपुरा कहे जाते हैं । उद्यम के द्वारा  
वे यक्षोदा और गोपियों तथा अन्य ब्रजवासियों के लिए सन्देश भेजते हैं ।  
कृष्ण यक्षोदा के बल्लभ हृदय की पीड़ा जानते हैं । यक्षोदा की पीड़ा से परिक्रिष्ट  
कृष्ण उनके लिए एक अवलम्बपूर्ण सन्देश भेजते हैं—

काहो कान्हू मुनि अनुमति मिया ।

जावहिये किन बारि पाँच में हम इस पर दोह भैया ।

मुरली बेल बिपाज हमारी कन्हूँ कबेर सबैरी ।

मति से जाइ बुराह राविका, कसुक खिलौनो मेरी ।

जा दिन तैं हम तुम सो बिछुरे काहु न बह्यो कन्हैया ।

प्रात न किमो कौतुक कन्हूँ, सोझ न पय पियो पैया ।

सुर सामर ४०२१ ।

माता यक्षोदा के हृदय को इस सन्देश से घेर्य और निदराह मिलेया ।  
राविका कुछ खिलौना बुरा न के बाव, इस ओर संकेत करके कृष्ण यक्षोदा के  
मन में विरहान भावना दृढ़ करते हैं । अष्ट छाप के कवियों में सूरदास परमानन्द  
तथा बुम्भन दासने विरह का आत्मनिष्ठ वर्णन किया है । अन्य दास के विरह  
वर्णन में इस आत्मनिष्ठ स्वल्प और संवेदनशीलता के दर्शन नहीं होते हैं ।  
विरह-अनुमृति के लिए प्रेम की चार अवस्थाओं स्वीकार की गई हैं—पूर्वप्राप्त  
मान प्रभाव तथा वरणा । पूर्वप्राप्त, और मान संयोग की विटिका में राविका

विशेष के माध्यम से प्रस्तावित हैं। प्रवास तथा कल्याण का निजस कृत्य के मन्त्रा प्रस्ताव के पश्चात् अंकित मिलता है। परन्तु विशेष का कल्याण-रूप नहीं स्वीकार नहीं किया गया है। यहाँ विरह की पूर्ण वेदनापूर्ण स्थिति आनन्द-पूर्ण मानी गई है। आनन्द की यह अवस्था मोक्ष से भेद्य है। सुरास ने विरह वर्णन को मुख्य हो सन्दर्भों में प्रस्तावित किया है। प्रथम सन्दर्भ के अन्तर्गत दोषी परस्पर अपनी विरह-व्यञ्जना करती हैं। द्वितीय के अन्तर्गत उद्यम-योपी संवाद कल्याण प्रसर कीट की योजना मिलती है। सुरास ने कल्याण का आचार ग्रहण किया है। परन्तु अन्य कविओं ने कल्याण का आचार नहीं ग्रहण किया है। अतः इनके वर्णनों में विरह की कल्याणता नहीं है। कृत्य के विशेष में दोषियों अपने विरही मन की पीड़ा की परस्पर व्यञ्जना करती हैं। प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य में गोपियों को अपनी भावनाओं और मनो वस्तुओं प्रतिबिम्बित मिलती हैं। कोकिल की आवाज विशेष में उद्गीर्णन का कार्य करती है। रात्रि का कोकिल को हाव से उड़ाकर दूर भगाना चाहती है। परन्तु कृत्य के कारण उसके हाव के अन्त आकाश की ओर उड़कर जाते हैं। रात्रि की किरण उस काटी है मन्त्र सगीर की सीतलता उसे दब करती है—

कर कंकन कोकिला उदासति निव मुक्तनाम निव ।

सति संका निवि आनन्द के मय, मल्ल बनाव निव ।

विधि-विधि सीत सगीरहि चोकट, अन्त जोट निव ।

मृग मय मन्त्र परति तन उल्लास, अनु निव विचर निव ।

विरहिविधों के माध-संघर्ष का अति प्रवाहपूर्ण रूप कृत्य अन्त कविओं के विप्रसन्न-मिलन में उपलब्ध होता है। निव विशेष में रात्रि की काकिमा नागिन के समान है। और इस काकिमा को ग्रह कर रात्रि अन्त मन में जा जाता है तो विरह की पीड़ा विपाक हो जाती है। यह पीड़ा नागिन के दर्शन के समान कम्पती है।

पिवाविनु आनिनि कासी रात ।

जो कपु नागिन वसति मुन्दैरा, उस उकटी हुई रात ।

पोपियों के मेज-कूटन-बर्तान के लिए हठ करते हैं। कूटन के आगम की विधि में दाकन निकालने में वे काग उड़ाती हैं। काग उड़ाते-उड़ाते उनकी बांहें पक जाती हैं। यही उनके जीवन का मर्म है—

अँखिया करत हैं मति भारि ।

मुखर स्वास पाहुने के मिस मिस म बाहु बलि भारि ।

बौह बकी आमसहि उड़ावत जब देखे अनुहारि ।

मूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सकै न पस पसारि ।

मुस्तावर ३२४३।

विरहिणी पोपियाँ समुमा में अपनी विरह-अवस्था का प्रतिबिम्ब देखती हैं। समुमा की अवस्था का वर्णन कर उसमें अपने स्वप्न का संक्षिप्त रूप विधान करती हैं—

बैसियत कालिन्दी अति कारी ।

जहाँ पक्षि कहिये उन हरि सौ भई विरह पुर भारी ।

जिरि प्रजक ते विरति बरनि बसि तरंग तरक उन भारी ।

तट बाव छपचार बुर बस-पूर प्रस्येन पनारी ।

निमि रिल जकई निमजु रदति है भई मानों अनुहारि ।

मूरदास प्रभु जो समुमा मति सो मति भई हमारी ।

पोपियों के मनोभावों और उनकी अनुभूतियों की विविधताओं के अनेक रूप विधान इन कवियों की रचनाओं में अतिग मिश्रित है। पोपियाँ अपने मील-भक्तों में अलग नहीं लगाती अपने कुन्तक नहीं समाती और प्रेम-रूपा में प्रिय की स्मृति में केन्द्रित उनकी भावनाएँ उन्हें अति कातर बना रही हैं ( ३८८५ )। श्रुत्ये पोपियों के लिए बेरिनि हो गई है। मिम मिम श्रुतियों में प्रवृत्ति-व्यापार उनके लिए सर्वोत्तम कार्य कर रहे हैं। समूरी तट जियरी पर कढ़ कर नृत्यकर अपनी के आगमन को मूषणा विरहिणियों को देनी है—

निगिनि गिर जाई गोर मयापो ।

विरहिनि नाकपान ग रदियो मति पावन दस भायो ।

प्रकृति में अपनी की एक अवधि होती है परन्तु क्याम व प्रवास से गोपियों के नेत्र प्रसिद्ध करवाते हैं, उनके जीवन में पावस निरन्तर निरन्तर है । अत्रमा गोपियों को वस करवा है—

मार्द रो चन्द लालो बुझ देत ।

कहाँ भी देखे कहीं मनमोह, कहीं सुख की रेन ।

छारे निरख पई री सब निशि नेक न कागे नेन ।

परवान्म पमु रिम बिछुरे ते पल न परल निर बँन ।

परममन्त्र साधर पद १३७ ।

इस प्रकार के अव्यक्त भावपूर्ण संदर्भों के दर्शन सूरदास तथा इनके सम्बन्ध के बहिरंग कवियों की रचनाओं में उपलब्ध हो जाते हैं । विरह-व्यथा की व्यंजना के लिए प्रभाव-साम्य मूलक अलंकार के विभिन्न प्रयोगों से कवि विरह व्यथा के अति भूतमान रूप का संक्षिप्त विधान करते हैं । एक पद में कृष्ण की प्रीति को बहिरंग क कष्ट-व्यवहार के समान गोपियों स्वीकार करती हैं । कृष्ण के विरह से विरह गोपियों विषय और दुःखी है । उनकी अवस्था वस करती के समान है जिसे बहिरंग पहले कष्ट कम चुवाता है, फिर उसके मने पर घुरी फेर कर उसका नष्ट करता है । कृष्ण का प्रेम 'कष्ट-कम' है उसका नियोग 'मने की घुरी है ।'—

प्रीति कर बीन्ही घर घुरी ।

जैसे बहिरंग चुवाई कष्ट कम पाछे करत घुरी ।

मुरली बधुर नैप काँपो करि मोर नन्द कल्पवारी ।

बेक बिलोकनि सपी लोम बस सकी न देख पसारि ।

सरफत छाँड़ि गए सनुवन को, गुरुरि न कोन्ही छार ।

सूरदास प्रभु संग कल्पवृक्ष, गुरुरि न बेठी डार ।

सूरसागर ३१८५ ।

गोपियों इस प्रकार पीन और विषय हैं । अपनी विरह-व्यथा के विरह के लिए गोपियों ने विरह-व्यथा में अव्यक्त अनेक उपमाओं का सर्वस्व ग्रहण किया है । प्रीति, कुरंग परेवा और परीहा—इन सब की विरह-व्यथा में गोपियों

सौ भावनाओं का साधारण्य पा कैसी है । इनमें गोपियों अपनी व्यवस्था का  
राम्य पा ऐसी है—

प्रीति तो मरिबोझ न बिचारै ।

निरखि पतंग ज्योति पावक ज्यो जग न आप सेंमारै ।

प्रीति कुरंग भाव मन मोहित बबिक निकट ह्वै मारै ।

प्रीति परेवा सकल गयन तैं गिरत न आपु सेंमारै ।

सावन भास पपीहा बोकल, पिय-पिय करिबु पुकारै ।

सूरदास प्रभु बरसत कारन ऐसी भांति बिचारै ।

सूरदास ३२६० ।

इस बंध में गोपियों ने अपना साम्य व्यंग द्वारा प्रकट किया है । प्रीति  
मृत्यु-मग से प्रभावित नहीं होती । प्रीति ही पतंग को चक्री होती है जिससे  
नर्मम होकर वह दीपक-ज्योति में समापित हो उठता । नाद-मेघ के कारण  
कुरंग बबिक द्वारा खला जाता है । प्रीति के कारण ही परेवा आकाश से पृथ्वी  
पर गिरता है, प्रीति की विचलता में ही पपीहा सम्पूर्ण सावन भास 'पी' 'पी'  
की रट करता है ।

विरह-भावना के प्रकाशन में अतिशयोक्ति का संस्पर्ध इन कवियों की  
भावनाओं में निहित है । परन्तु इसके अन्तर्गत की वचन विरचिता में गोपियों  
के भावों के अति आनुक स्वल्प का मूर्त विधान होता है । एक पद में एक गोपी  
वचन के उद्दीपन-मूर्त प्रभाव से आकुल होकर कहती है—

धरि कर अनु को ज्योहि मार ।

ऐसी भांति बुलाइ मुकुर मैं अति बल खंड-खंड करि डारि । ३३२६ ।

भावों के आनुक परिवेष्ट में गोपी बीना लेकर भाग करती है । धरि में  
रिपि मृग बीना के स्वर से मुग्ध हो जाता है रिपर होकर वह भीत मुगठा है  
इस प्रकार धरि मन में स्वरित हो जाता है जो गोपियों में उद्दीपन आवृत  
करता है । अतः मन शान्त करने के हम प्रभाव से भी गोपियों पीड़ा प्राप्त  
करती है ।

दूर करहि बीना करि धरिबो ।

रग बासो नादिन मृग मोहै, नादिन होत जन्म को डरिबो ।

राबिका की पीड़ा के प्रकाशन के लिए विविध प्रकार की अभिव्यञ्जना विधाओं का प्रयोग देखने को मिलता है। पीड़ा से राबिका अपने निवास से बाहर नहीं निकलती। सौन्दर्य में उसके विभिन्न प्रतिद्वन्द्वियों के लिए यह उल्लास का बरसुर है। इस आघात-पूर्ण वर्णन में कवि अप्रस्तुत प्रशंसा से राबिका और बोसियों का सौन्दर्य निरूपण करते हैं, साथ ही साथ उनके विरह विरग्न स्वरूप का संक्षिप्त रूप विधान भी करते हैं—

तब से इन सबहिन धनु पायो ।

जब से हरि संसि तुम्हारी सुनत पाँचरो भायो ।

पूले व्याक बुरे से प्रकटे, पवन पेट भरि खापी ।

छोटे मृगसि चौक बरन के हुयो बु बिय बिसरामी । ४१४१ ।

शाहीन शास्त्र के अन्तर्गत विरह में विधोषिणी की एकाग्र अवस्थाओं के चित्रण का विधान मिलता है। अष्ट छाप के कवियों ने विरह की अन्तिम अवस्था मरण का चित्रण नहीं किया है, कारण, प्रेमसम्पन्ना भक्ति में मोक्ष अवस्था मरण की अपेक्षा विरह की तीव्रता को विरोध महसूस दिया गया है। अतः इस अवस्था का केवल संकेत ही मिलता है।

विरह की प्रथम अवस्था है अधिकाया। शिव-वर्णन-अधिकाया की भावना विरहिणी में जागृतता धारण करती है—

ऐसे समय को हरि बु आवहि ।

निरखि निरखि यह रूप मनोहर, नैन बाहुत मुक पावहि ।

कबहुक रंग बु हिलयित खेलहि, कबहुक कृष्ण मुखावहि ।

बिछुरे प्राण रहस नहीं बट मै, सो पुनि जानि बिसावहि ।

अबकै बल्लभ जाग दूरन प्रभु, सब पहिने छठि ध्यावै ।

गुरसापर, पद ४००५

बोसियों शिव मित्र की कालसा करती है, चिन्ता करती है। इस अवस्था को चिन्ता की संज्ञा दी गई है—

रेनि पपीहा बोस्यो री मारि ।

नीद बई चिन्ता चित बाढ़ी, नुरखि स्वाम की मारि ।

सावन मास बैलि बरपा मरु, हौं जानि छठि भारि ।

मरवत गगन बामिनि दमकत तामें बीज सड़ाई ।

बिरहिन विकल दास परमानन्द बरनि परी मुरझाई ।

परमानन्द सागर ।

बिम्बा के पश्चात् की स्थिति है स्मरण । इस स्थिति में बिरहिणी प्रिय की स्मृति से प्रसिपल परिपुर्ण रहती है । यह काव्यनिक संयोग की भावना के बसीमूल हो जाती है । सुरदास तथा परमानन्द दास की रचनाओं में इस बिरह रसा से सम्बन्धित अनेक पद उपलब्ध हो जाते हैं—

मोहन बहु क्यों प्रीति बिसारी ।

कहत मुनत समुझत जर अंतर कुछ छावत है भारी ।

×

×

×

हम पर कठिन हृदय अब किनो छाछ बोधरण बारी ।

परमानन्द बलबीर बिना हम मरत बिरह की बारी ।

परमानन्द सागर ।

मरो मन इतनी मूरक रही ।

मे बतियाँ सुतियाँ लिखि राखी मे नन्दलोक कहौ ।

सुरदास ४०११ ।

प्रिय की स्मृति में बियोगिनी गोपियाँ उनके गुणों का स्मरण करती हैं । अपने साथ किए गए प्रेम-व्यवहार की बर्णना करती हैं । यह सुम-कवन की स्थिति है ।

एक छीम कुंवलि में मारि ।

नाना कुगुम के करने कर, दिए मोहि सौ मुरलिन न बारी ।

×

×

×

बहु बहु प्रीति रीतो मोहन की कहैं अब सौ एत निठुराई ।

अब बलबीर मूर प्रभु सति री मधुबन बनि अब रति बितराई ।

पद ४००२ ।

प्रिय बियोग में संयोग-गुण की स्मृतियाँ उद्दीपन-कार्य करती हैं । यह रसा उद्भवन की स्थिति है । मुरदास और परमानन्द दास ने इन अवस्था से सम्बन्धित अनेक भावपूर्ण पद लिखे हैं—

कहाँ लौ मानो अपनी चुक ।

बिनु मोपास सखी ये खतियाँ हूँ न बर्य ह टुक ।

हृदय जात है बाबानल ज्यों कठिन बिरह की हूक ।

पद ३४३८ ।

बिरह की तीव्रता में बिरहिनी अपनी व्याथा का वर्णन करती हैं और इस सम्बन्ध में वे प्रलाप की स्थिति में पहुँच जाती हैं—

सखि बिछी करी कसुन सपाठ ।

मार मारत बख्यो बिरहिनी, निरि पायो बाढ ।

हुतासन-भुज जात उन्मत्त बख्यो हरि निस बाढ । २७०३ ।

बिरह व्याथा से बिरहिनी सम्पाद की स्थिति में पहुँचती है—

सखि करि कनु लै नवधि मारि ।

तब तो पे कसुनै न छिरैई बख बलि पुर नई तनु बारि ।

उठि हक्काइ लाइ भन्विर नई सखि सनमुख दायन बिस्तारि ।

ऐसी नैति मुसाइ मुकुर में बलि बक बँड-बँड करि मारि ।

सूरसागर ३२७१ ।

बिरह की तीव्रता से ककुता की स्थिति आती है ।

देखी मैं लोचन चुबत अचेत ।

मनहु कमल सखि जास ईसकी मुक्ता गनि-गनि देत ।

कहुँ कंकल कहुँ विनि मुखिका कहूँ ठाढ़ कहूँ नेत ।

बैठति लड़ी विष की पुतरी समुझाई सी कैत । ४७३२ ।

बिरह में बिगड़ी सारीरिक कलेश पाता है, वह इन्ध हो जाता है । यह स्थिति व्याधि की है—

मिउबत हूँ अपुनन विन जात ।

नैकलि नीव परत लहि सखनी मुनि-मुनि बासिन मन बकुलात ।

×

×

×

अनुनि नैन तप्त दरशन की हरद तमान देखियत मात ।

मुरझास स्वाधी के बिछुरे देखी यह हमारी पात ३५२६ ।

विमोग में मूर्च्छित हो जाना मूर्च्छावस्था है—



सोचति मति पछताति रात्रिका मूर्च्छित भरनि बही ।

सुरदास प्रभु के निधुरे ते विधा न जात सही ।

बिरह की अन्तिम अवस्था है मरण । अष्ट छाप के कवियों ने मरण अवस्था का बेहस उल्लेख मात्र किया है । मरण-अवस्था का विवरण यहाँ नहीं मिलता है —

प्राण हमारे घात होत हैं तुम्हरे भाँये हौंसी ।

मा जीवम तैं मरन भसी है, करवत नैह कानी ।

×

×

×

कै हरि हमकी जानि मिलावहु नै नै चमियै साथे ।

मूर स्याम बिनु प्राण लखत हैं बोध तुम्हारे भावे ।

सुरदासर १४७२ ।

### अमर गीत

अमर गीत उपासम्भ काव्य है । इसकी मुख्य संकेतना शृंगार रस के विप्रसम्भ पदा से है । वस्तुतः इसकी काव्य विधा व्यंग्योक्ति मूलक है । इसमें अमर को लक्ष्य नर उदय और कृष्ण के प्रति मोहियों उपासम्भ और बिरह-वैरना व्यक्त करती हैं । अष्ट छाप के कवियों ने मुख्यतः सुरदास और नन्द दास ने इस काव्य विधा की प्रेरणा श्री कृष्ण प्राप्त की है । भागवत में उदय आनन्द का सम्बोध नहीं है । यहाँ उदय की कृष्ण का मुख्य सम्बोध लेकर मोहल आते हैं । कृष्ण का सम्बोध लेकर वे नन्द यशोदा तथा गोपगोपिकाओं का शोक निवारण करते हैं । परन्तु इन अल्पक कवियों ने इससे मिल प्रकार की उद्भावना की है । इनकी रचनाओं में उदय विमुख ज्ञान मार्गी हैं । कृष्ण इन्हें मोहियों के समूह से प्रेम अश्रयण भक्ति में दीक्षित होने के लिए प्रेरित हैं । इस प्रकार मोहियों की प्रिय लक्षणा भक्ति की विषय होती है और उदय का ज्ञान पराश्रित होता है । भागवत के दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय में उदय कृष्ण का सम्बोध लेकर श्रम में आते हैं नन्द यशोदा को कृष्ण का सम्बोध देते हैं । सैतामी नन्द अध्याय में उदय और मोहियों का परस्पर संवाद है । कृष्ण सम्बोध से मोहियों विरक्त होती है । कृष्ण-सीता का स्मरण नर आनन्द विभोर हो चली है । इस

मध्य एक गोपी के चरण पर एक अमर गुन गुनाने लगता है। इस अमर के च्याप से गोपियों कृष्ण को उपासमान देती हैं। भाववश में कृष्ण भात्म मित्रह का उपदेश नहीं देते हैं। कृष्ण गोपियों को आदेश देते हैं कि वे सुख मन में कृष्ण का स्मरण करें।

परन्तु मूरदास की कल्पना इससे कुछ निम्न प्रकार की है। मूर के काव्य में कृष्ण-आवना में ब्रजवासियों के उपास सम्बन्ध हैं। उन्हें बंसीबट, ममूना, राधा और गोस्वियों तथा रास का स्मरण आता है। कृष्ण के निम्न उद्धव बर्तित ज्ञान के प्रचारक हैं। मरु कृष्ण अपनी मन के बाध निरु पर प्रकट करें—

संघ निजी कहीं काछो बात ।

यह तो कष्ट धोय की बातें जानें रस भरिजात ।

कष्ट कथा प्रियु मातु कोन के पुरुष गारि कह भाव ।

×

×

×

ये बात कहिये किहि जाते यह सुनि हरि पक्षिजात ।

मूर बात प्रभु ब्रज की महिमा कहि किंसि बरत न पात । ४०३३ ।

उद्धव प्रेम-कमला शक्ति में निश्वास नहीं करते। अतः अपने सन्देश के माध्यम से कृष्ण उन्हें ब्रज भेजते हैं। कृष्ण उद्धव के सम्मुख अपनी भावनाओं प्रकट करते हैं। ब्रज की स्मृति से वे प्रेरित हो उठते हैं। राविका उनके मागत-अन्धिर की आराधना है और बलकी स्मृति कृष्ण को आर्म्भित करती है। माता मयोरवा का प्रेम उन्हें ब्रज की ओर की प्रेरणा दे रहा है। उद्धव धीमे धिमा से कृष्ण की ओर विपुल करने का प्रयत्न करते हैं। कृष्ण गोपियों में अचल, अस्मितायी रेख-रूप-गुण से परे ब्रह्म के प्रति आकर्षण स्थापित करने का आग्रह पर उद्धव को ब्रज भेजते हैं।

उद्धव कृष्ण-अन्धिर केकर ब्रज के शिखे प्रस्थान करते हैं। ब्रज में पहुँच होते हैं। गोपियों का हृदय आसापूर्ण हो जाता है। उद्धव के रस को सर्व प्रथम राविका देखती है। उन्हें निश्वास होता है कि कृष्ण जा रहे हैं। यह मूलतः समग्र ब्रज-अन्धिर में फैल जाती है। यथा,

राजेहि सबी बठावत री ।

बैसोई रज कागत मोंको, उठही ते कोठ आवन री ।

अदि आयो अकूर जाहि पर स्वयंन ज्ञन तन भावति री ।

बैसिये ध्वजा पताका बैसोई बर-बर सदा सुनावत री ।

कोऊ कहै स्वाम कहति को एहिं सब तटनी हरपावत री ।

मूर स्वाम बेहि पम बारे तैहि मारग बरसावत री । ४०७१ ।

परन्तु जब उन्हें जात होता है कि इस्लाम नहीं, बल्कि, उनके मित्र आए हैं तो उनकी दसा चिन्तनीय हो जाती है । मोमियाँ स्तब्ध हो जाती हैं वे मूर्छित हो जाती हैं । इसका वर्णन सूरदास ने इस प्रकार किया है—

बबहिं कह्यो मे स्वाम नहीं ।

परी मुरखि बरनी बज्जाला, जो बहै रही सुतही । ४०७२ ।

यद्योश भी मूर्छित हो जाती हैं । इस पर मोमियाँ अपनी मूँछों को छेदी हैं । उन्हें यद्योश की चिन्ता हो जाती है । उद्यम मोमियों को इस्लाम का सम्येस सुनाते हैं ।

मोपी मुगहु हरि सविष ।

कह्यो पुरन बड़ा ब्यावहु, त्रिपुल मिथ्या सेव ।

मैं कह्यो सो सत्य मानहु सगुन बाणहु नासि ।

× × × ×

मातु फिनु कोऊ नाहि नारी अमत मिथ्या साह ।

मूर मुग कुच नाहि बाके भयो टाकी बाद । ४३०३ ।

मोमियाँ उद्यम के इस सम्येस से आहत होती हैं । वे स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि इस सम्येस में उनके लिए कोई आकर्षण नहीं है । वे इस्लाम की कथा सुनने के लिए उन्मुक्त हैं । वे मन्दबोध-वासी योपाल की कथा में रुचि रखती हैं । परन्तु उद्यम अपने मत पर दृढ़ हैं । वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

यह सम्येस कह्यो हैं मायो करि बिचार त्रिय सावन सापो ।

नदा मिथ्या गुपन नारी मुम्य सहज मैं अमत मुरारी ४४१३० ।

परन्तु मोमियाँ इसे उद्यम का प्रयाप समझती हैं । त्रिज अपरों ने इस्लाम ने मुसली की मयूर छवि का प्रमाण दिया, उन्हीं अपरों ने योपाल योग सम्येस

मेजोंमें इस पर वे निश्वास नहीं करती हैं। घोषियों अपने भावों को जनक कर्णों में व्यक्त करती हैं। उनके बगल का एक-एक तन्तु, उनकी अनुसृतियों का एक-एक स्वर उद्यम के उन्मेष का प्रतिकार करता है। और इस प्रसंग में उद्यम की अज्ञानता पर वे व्यथ भी करती हैं। ऐसे सन्तर्भ में वे विरोध मूलक विपक्ष उचितियों के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया का प्रकाशन करती हैं—

कहूँ बबला कहूँ भिठा विपत्तार मछ करो पहिचान । ३२२१ ।

वे कहती हैं सत्तम्य (अवस्था) के लिए विपत्तार (बन्ध) रूप बारन की घोषणा मर्दावा के प्रतिकूल है। इसका बोध भी उद्यम को नहीं है। इसी प्रकार विरोध कर्ण और अपस्तुत घोषणा के द्वारा वे वस्तुनिष्ठि के स्पष्टीकरण का प्रयत्न करती हैं। उनके लिए बोध की प्रस्तावना करना बेसह ही है जैसे कर्ण मिथीगा को कर्ण-आनुषण देना, बबला बन्धे को कायस लवणा —

बूबी बुबी भांगरी काबर, बकटी पहिर बेतरि ।

मुबली पाटी पारे बाई कोबी लार्न केतरि । ३२५० ।

घोषियों को उद्यम पर सम्यह होता है। उद्यम ने विश्व बंध का विविध-करणों और आनुषणों से मृगार किया था, उसी बंध पर भस्म कवाने का आदेश देने, इस पर उन्हें निश्वास नहीं होता है। फिर भी वे योग बारन करने के बिने ठहर हैं, यदि ब्रह्म की उपलब्धि हो जाय। वे यह भी कहती हैं कि योग-आर्य भेष्ठ है, परन्तु ब्रह्म और योग के अधिकारी जनों के लिए—

ऊँची कौन माहि अधिकारी ।

सं ग बाहु यह योग बाणो कत तुय होत बुझारी ।

बहु तो वेद-अनियत कत है, क्हापुष्य कतबारी ।

इस अर्थोर्ति अवस्था अन्ध-बाधित, नाहित परत लोभारी ।

घोषियों तो अहीरति हैं। उनका काम तो बधि बेकला, माखन निकालना है। समुत्तरज्जु से उन्होंने हृत्प-लोह-मन्गीत की उपलब्धि की है।

इस प्रसंग में वे कुम्भा वर भी कीप प्रकट करती हैं। कुम्भा कृत्य की परामी बन बैठी है। वे उद्यम से कहती हैं वे कृत्य और कुम्भा के मूमन स्वल्प को देखना चाहती हैं। उन्हें कृत्य की बुद्धि वर दया वा रही है। राधा के रोमर्य की उल्लास कर उन्होंने कुम्भा को सम्मान दिया है। वे व्यथ करती

है कि तुलसी बाबू रामबानन्द के सिष्य थे वे रामबानन्द के शिष्याओं के अनु-  
यायी तथा महाकवि थे । परन्तु रामबानन्द रामानन्द के गुरु थे । ऐसी स्थिति  
में 'महोदय पुराण' की प्रामाणिकता संदिग्ध है ।

श्रीस्वामी तुलसी दास के जीवन-काल का परिचय 'दो सौ बावन बप्पवन की  
बातों से भी मिलता है । इसके संकलनकर्ता श्रीकृष्णदास का समय सं० १६०८ और  
१६८३ के मध्य माना गया है । इस ग्रन्थ में मन्दास की एक बातों में श्रीस्वामी  
तुलसीदास का उल्लेख मिलता है ।—'सो वे मन्दास पूर्ब रहते सो वे दोय  
बाई हते । सो बड़े बाई तुलसी बाबू हते सो वे मन्दास पड़े बहुत हते मन्दास  
तुलसीदास के छोटे भाई हते सो मिले पाच समाधा देसन को तथा पाग मुनो  
की लोक हते सो मन्दास भी के बड़े बाई तुलसी दास हते । सो काशीजी  
सुं मन्दास की कू मिलने के दिवस ब्रज में आए । सो यबुरा में ब्रजके श्री यमुना  
जी के दर्शन करे । पाछे मन्दासजी सबर काढ़ की गिरिराज की पय उहाँ तुलसी  
दासकी मन्दास भी के मिले । इस ग्रन्थ से यह ज्ञात होता है कि मन्दास  
तुलसी दास के छोटे भाई थे । तुलसीदास ने ब्रज की भाषा ही सी । तुलसी  
के भाषण पर हृष्य-मूर्ति राम-मूर्ति के रूप में परिवर्तित हो गई ।"

'मूल मोठाई बरिठ' में तुलसी बाबू का विस्तृत जीवन-परिचय मिलता है ।  
इसके लेखक केपी माधव दास हैं । मूल मोठाई बरिठ में श्रीस्वामी तुलसी दास  
का जन्म काल इस रूप में दिया हुआ है—

कन्हू सो बन्धन विरै काकिन्दी के तीर ।

धामन धुलका ससनी तुलसी बरेठ क्षीर ।

१ 'दो सौ बावन बप्पवन की बातों' डॉ० बीरेन्द्र वर्मा इस ग्रन्थ की प्रामाणिक-  
पता पर संदेह करते हैं । इन्हीं के आधार पर डॉ० माता प्रसाद गुप्त भी इस ग्रन्थ  
की प्रामाणिकता पर संदेह करते हैं ।

२ इस प्रसंग में इस प्रकार की घाबला व्यक्त मिलती है कि तुलसी ने कृष्ण  
मुनि को प्रणाम करना स्वीकार नहीं दिया । इस पर मन्दास ने निवेदन दिया

रहौ रहौ धनि आज की भले बनो हो नाव ।

तुलसी मरकठ ठब बड़े अनुल दास तेहु दास ।

सौभाग्यं चरितं मे भवत्यीत्यमं वा तिलकं चरितं दमं वा मे प्रस्तावितं ॥—

ਜਿਹੜੇ ਗੁਣਾਂ ਨੂੰ ਭਾਗੀ ਭਾਗੀ ਦੇਣ ਦੇ ਲਾਭ ।

ਗਾਇਨ ਵਾਸਤਵ ਨੀਤ ਹਰਿ ਸਾਜੀ ਜਾਗੀ ਹਰਿ ।

—

कोशमो गुणानि विन मरमो वादिह भाग ।

विष्णो वः, वि० न० वि० वेणी भाष्ये ५।

सन् १९४० में पाकान्ताका श्री ४ नम्बर को कानून से कानून दंड के तहत वारंशदाता गणनीय दान से दान प्राप्त किया। कानून दान में सन् १९४० में निम्न दान करने के लिए दानगी स्थापित की। दान के अतिरिक्त दान मोनार कानून से कानून के कानून दान स्थापित दानगी दान की दान निम्न और दानदान के दान से दान दान निम्न है—

(੧) ਉਸਦੇ ਹੁਸ਼ੀਰੀ ਉਘਾੜ ਦਿਓ ।

(२) गुरुजी भक्त वाच सुधी मुनिना रचिनापुन राख हूँ मुनिना ।

ਤਿਨ੍ਹੇ ਧਾ ਭਾਜ਼ ਮਾਲ ਪਰੇ ਕਰ ਕਰੇ ਕੇ ਭੋਰ ਨਿਧਾਨੁ ਕਰੇ ।

कृष्ण गङ्गास्य जलस्य ज्ञान-मयस्य जलविद्यया विना तस्मिन् सुखं लब्धं नश्यति।

अर्वाङ्ग गणेश्वर प्रभू गिरिजी को छोड़ कर बाकी रजिस्ट्रार के राज दूरी की धर्म धर्मि हनुमन् की रजिस्ट्रार दूरी में १२ बाग के परमाणु १२३४ में आरम्भ हुआ धर्मिहार, नारायण रजिस्ट्रार में गोस्वामी तुलसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अविश्रित जन्म में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में जन्म स्थान पर मंगल तथा अष्टम स्थान में धर्मि थे । इन सन्धि थे तुलसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । अर्वाङ्ग के अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का जन्म धारण गुस्सा तुलसी की धर्मिहार के नारायण हुआ था । परन्तु रजिस्ट्रारों ने इन प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इनके अनुसार मंगला के आधार पर गोस्वामी जी के जन्म-समय पर अविश्रित जन्म नहीं था । ऐसी गिरिजी में 'मूल मोहार्द्र चरित्र' में प्रस्तावित गोस्वामीजी की जन्म तिथि विद्वत्मयी नहीं लगती है । वैष्णवाचार्य ने तुलसी बाग के जीवन की जन्म महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—

यसोपवीत—याच शुक्ला पद्ममी शुक्रवार ११६१ वि० सं० । पन्त्रह से एकसठ माघ सुदी । तिथि पंचमी और अंगुवार उभी । सरजू छट विघ्न बन्ध बिये, दिन बालक कहुँ उपदेश बिये ।

इसके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला नवोदधी शुक्रवार ११८३ वि० ( २४ मई १५२६ ) को हुआ ।<sup>१</sup> गोस्वामी जी की पत्नी का निम्न आधाड़ कुल्य दसमी, बुधवार वि० संवत् ११०७ को हुआ ।<sup>२</sup> गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् ११३३ मार्गशीर्ष सुदी २, मंगलवार को की थी<sup>३</sup> । गोस्वामी जी का निधन संवत् १६८० यावन कुल्य ३, शनिवार को हुआ ।<sup>४</sup> उमर जो तिथियाँ अस्तावित हैं उनमें हैं यलगा के अनुसार कैलाश प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ यलगा के प्रतिकूल पड़ती हैं । इन तिथियों के आधार पर 'मूक घोड़ाई चरित' की प्रामाणिकता संदिग्ध लगती है ।

'मूक घोड़ाई चरित' के अनुसार गोस्वामी जी स्रवन्त ज्योत्से के बड़े दिन इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । और फिजाने इनका परिस्वाग कर दिया । बालक तुलसी को नरहयानन्द का धामीय मिला । आठ वर्ष बाद माघ की बाद में तुलसी नरहयानन्द के साथ सुकर सेन जाये—

कहत कथा इतिहास बहु आए सुकर-सेन ।

संजम सरजू बाबरा सन्त जनन बुद्ध बैठ ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में सेव सनातन के निकट पन्त्रह वर्षों तक चारों वेद, छ. शास्त्रों का अध्ययन किया—

१ पन्त्रह से बार तिरासि बिये । सुम बैठ सुखी मुख तरसि वै ।

अधिराठ सगे बु फिरी मेवरी । बुझा बुझही की वरी मेवरी । शृष्ट ८ ।

२ सव पन्त्रह बुद्ध नवांसि सरे । सुबसाइ कबी दसमीहु बरे ।

बुध बासर भय सो भय भरी । उपवेशि सती तनु त्याग करी ।

३ तैवीस को संवत् औ मंगसर । सुभ छीस गुराम बिबाहिहि पर ।

कुल ज्यो बोपान समास भयो । सपु ग्रन्थ भयो सुप्रबन्ध भयो ।

४ संवत् सोरह सौ बड़ी बड़ी संम के तीर ।

ठावन स्वामा तीन सनि बुलसी तयो पारीर ।

‘मोसदां चरित’ में तुलसी दास की विपिन विधि का वर्णन है—

संवन सोनहु से अमो बनी वीर के तोर ।

धावप दामा तीर छनि तुलसी नामो धीर ।

धीर—

सोरहसों सलाखि छिन नयनो काजिह माग ।

बिरायो दहि छिन वाग द्दि बेदी मापर दास ।

अर्थात् १६८० में धावप दामा तीर छनिवार की बानी में अमो वीर के लट पर मोस्वामी तुलसी दास ने धीर दाम दिया । बेदी मापर दास ने संवन १६८० में छिन पाठ करने के लिए दमकी रचना की । इसके अतिरिक्त दूसरे ‘मोसदां चरित’ में बाबा बेदी मापर दास मोस्वामी तुलसी दास की जन्म तिथि और जन्मस्थान के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

(१) सरप हुठसी जन्माट छिने ।

(२) तुलसी सन पात्र मुखी मुनिरा रजिमापुर रात्र दुह दुतिना ।

छिनके घर छात्र मास परे बह बर्फ के ओर छिमांगु बरे ।

दुस सतस बटस माजु-सनन अविधीरिउ छनि तुलर सोम समन ।

अर्थात्, सरकार प्रदेय स्थित पनेही ग्राम बाड़ी रजिमापुर के रात्र दुह की वर्ष पत्री हुठसी की दशम पुणि में १२ मास के परबाद् १५१४ में धावप दुस छनिवार, सारंकाछ रजिमापुर में मोस्वामी तुलसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अविहित नाम में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में सप्तम स्थान पर मंगल तथा अष्टम स्थान में छनि थे । इस सन्दर्भ से तुलसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । अन्यकार के अनुसार मोस्वामी तुलसी दास का जन्म धावप गुस्ता सतसी को छनिवार के सारंकाछ हुआ था । परन्तु विचारकों ने इस प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इनके अनुसार मरना के आधार पर मोस्वामी जी के जन्म-समय पर अविहित नाम नहीं था । ऐसी स्थिति में ‘मूस मोसदां चरित’ में अस्तावित मोस्वामीजी की जन्म तिथि विश्वसनीय नहीं लगती है । श्रीमोसदां चरित ने तुलसी दास के जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—



अजोपवीत—माघ शुक्ला पञ्चमी दुकवार १५११ वि० सं० । पन्त्रह स  
एकसठ माघ सुदी । तिथि पंचमी और मंगुवार उदी । सरजू तट विप्रन बध्य किये,  
विज वास्तक कहुँ उपदेख किये ।

इन्के अनुसार पोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला नवोदसी दु-  
वार १५८१ वि० ( १४ मई १५२९ ) को हुआ ।<sup>१</sup> पोस्वामी जी की पत्नी का  
निधन बापाई इल्ल वसमी, बुधवार वि० संवत् १९०७ को हुआ ।<sup>२</sup> पोस्वामी  
जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् १६३३ मार्गशीर्ष सुदी १, संवत्वार  
को की थी<sup>३</sup> । पोस्वामी जी का निधन संवत् १६८०, माघ शुक्ल ३, शनिवार  
को हुआ ।<sup>४</sup> ऊपर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं, उनमें से वचना के अनुसार केवल  
प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ वचना के प्रतिकूल पड़ती हैं ।  
इन तिथियों के आधार पर मूल गोसाईं चरित की प्रमात्रिकता संदिग्ध  
नगरी है ।

'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार पोस्वामी जी सपत्न बन्ने थे । बन्ने के दोपे  
दिन इनकी माता का स्वर्णवास हो गया । और पितान इनका परिग्राम कर  
दिया । बालक तुलसी को मछलीमन का सामीप्य मिला । आठ वर्ष बाद मास  
की बाध में तुलसी मछलीमन के साथ सूकर सेन आये—

कहत कथा इतिहास बहु भाए सुकर-सेन ।

संमम सरजू धारण सत बनन तुलसि देख ।

इसके पश्चात् पोस्वामीजी ने काशी में सेप समाप्तन के निकट पन्त्रह वर्षों  
तक चारों बेंद, छ. घासों का अध्ययन किया—

१ पन्त्रह से पार तिरासि किये । तुल बंठ सुदी बुध तरसि वै ।

बनिरात कये बु फिरी मैवरी । बुकहा बुकही की परी मैवरी । पृष्ठ ८ ।

२ दठ पन्त्रह जुल बसासि सरे । तुलसाइ गरी दसमीहु परे ।

तुल बासर बन्ध सो बन्ध परी । उपदेसि सती तनु त्याग करी ।

३ पैंतीस को संवत् औ नवसर । तुल घोस गुराम निवाहिहि पर ।

जुठ जण्ड तोपान समास गयो । सदु शब्द बन्धो सुप्रबन्ध गयो ।

४ संवत् सोरह सी असो, असी रीय के सीर ।

सम्पन स्पामा तीब सनि तुलसी तज्यो घरीर ।

‘गोसाईं बरित’ में तुलसी दास की निम्न लिखित श्रम का प्रस्ताव है—

सबल सोलह मे अमी अमी मंग के तार ।

धावण रूपमा तीज दानि तलानी तम्यो दासीर ।

और—

भोगहसो मरतामि मित्र नरमो नाशिक माम ।

निरन्धो यदि मित्र पाठ द्विज बेनी माधव दाम ।

अर्थात् १६८० में धारण रूपमा तीज दानिहार को वासी में अमी रंग के छट पर मोस्वामी तुलसी दाम में दासीर रूपमा दिया । बेनी माधव दास ने संवत् १६८० में मित्र पाठ करने के लिए इनकी रचना की । इनके अनिर्दिष्ट मूल ‘गोसाईं बरित’ में बाबा बेनी माधव दास मोस्वामी तुलसी दास की जन्म तिथि और जन्मस्थान के विषय में इस प्रकार लिखे हैं—

(१) उदय हुसरी उपाट द्विजे ।

(२) मुहुरी सत पात्र भुषी मुनिपा रजियापुर राज मुद मुतिपा ।

लिनके पर ह्याय मास परे अब कर्क के ओष हिमांशु चरे ।

मुल सत्यम अष्टम भानु-रमय अनिबीजित धनि सुन्दर सांभ समय ।

अर्थात्, सरकार प्रेषित निम्न वनेजी ग्राम वासी रजियापुर के राज मुद की पूर्व पत्नी हुसरी की बलिष्ठ कुति में १२ मास के पदवात् १५६४ में धारण मुल दानिहार, सार्यकाठ रजियापुर में मोस्वामी तुलसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अनिजित नखन में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में सत्यम स्थान पर संमल तथा अष्टम स्थान में धनि थे । इस सम्बन्ध में तुलसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । ग्रन्थकार के अनुसार मोस्वामी तुलसी दास का जन्म धारण मुलता सप्तमी को दानिहार के सार्यकाठ हुआ था । परन्तु विचारकों ने इस प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इनके अनुसार गणना के आधार पर मोस्वामी जी के जन्म-समय पर अनिजित नखन नहीं था । ऐसी स्थिति में ‘मूल गोसाईं बरित’ में प्रस्तावित मोस्वामीजी की जन्म तिथि विश्वसनीय नहीं लगती है । बेनीमाधवदास ने तुलसी दास के जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—

यज्ञोपवीत—माघ शुक्ला पञ्चमी शुक्रवार १३९१ वि० सं० । पन्द्रह से एकसठ मास सुदी । तिथि पंचमी और मंगुवार उषी । सरजू तट विप्रन बन्ध क्रिये, द्विज बालक कर्तुं उपदेश दिये ।

इसके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला बमोदसी शुक्रवार १३८३ वि० ( २४ मई १५२६ ) को हुआ ।<sup>१</sup> गोस्वामी जी की पत्नी का निधन जापाह हृष्य दशमी, बुधवार वि० संवत् १६०७ को हुआ ।<sup>२</sup> गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् १६३३ मार्गशीर्ष सुदी ३, मंगलवार को की थी<sup>३</sup> । गोस्वामी जी का निधन संवत् १६८० भाद्रपद कृष्ण ३ शनिवार को हुआ ।<sup>४</sup> ऊपर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं उनमें से यचना के अनुसार केवल प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ यचना के प्रतिकूल पड़ती हैं । इन तिथियों के आधार पर 'मूक मोसाई चरित' की प्रमायिकता सर्विध्व्य लपटी है ।

'मूक मोसाई चरित' के अनुसार गोस्वामी जी सदाय बन्धे थे । जग्न के बोधे मिल इनकी याता का स्वर्णवास हो गया । और पिताने इसका परिधाम कर लिया । बालक तुलसी को मछुर्वाग्निभ का सामीप्य मिला । बाठ वर्ष पार मास की बाबु में तुलसी मछुर्वाग्निभ के साथ सूकर लेख भाये—

कहत कथा इतिहास बहु भाए सूकर-बेध ।

संयम सरयु बाधरा सन्ध जगन सुख देठ ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में शेष सनातन के मित्र पन्द्रह वर्षों तक चारों देह, ज्ञान धामों का अध्ययन किया—

१ पन्द्रह से पार विरासि मिलै । सुम बैठ सुदी सुब तेरसि पै ।

बहिरास सने बु झिरी मेवरी । दुसहा दुसही की परी मेवरी । पृष्ठ ८ ।

२ एत पन्द्रह बुद्ध पचासि घरे । सुमसाह बही दशमीहु परे ।

सुब नासर बन्ध सो भय्य बरी । उपदेशि सरी तनु स्थाय करी ।

३ तेवीस की संवत् की मयसर । सुम छीस सुराम विवाहिहि पर ।

जुठ ज्येष्ठ सोपान समास जयो । सह ग्रन्थ बयो सुप्रबन्ध जयो ।

४ संवत् सोरह सी बही बही बंन के तीर ।

भावन स्वामा तीज तनि तुलसी ठग्यो घरीर ।

‘गोसाईं चरित’ में तुळसी दास की निम्न तिथि इस रूप में प्रस्तुत है—

संवत् सोम्वत् से बसी, बसी वंग के तोर ।

धामन स्वामा तीन धनि तुळसी तम्यो धरीर ।

और—

सोम्वत् सोम्वत् सित नवमी कातिक मास ।

विरच्यो बहि नित पाठ हित बेनी माधव दास ।

वर्षाद १६८० में धामन स्वामा तीन धनिवार की काशी में बसी गंग के तट पर गोस्वामी तुळसी दास ने शरीर त्याग किया । बेनी माधव दास ने संवत् १६८० में नित्य पाठ करने के लिए इसकी रचना की । इसके अतिरिक्त मूल ‘गोसाईं चरित’ में बाबा बेनी माधव दास गोस्वामी तुळसी दास की जन्म तिथि और जन्मस्थान के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

(१) उपर तुळसी सबघाट हिते ।

(२) मुकुटी सत पात्र सुधी मुखिया रजियापुर राज गुरु मुखिया ।

सिनके घर हावस मास परे बर कले के बीच हिमांशु बरे ।

कुछ सप्तम अष्टम भानु-तम्य अनिबीक्षित धनि सुखर सांभ सम्य ।

वर्षाद, सरकार प्रदेश स्थित पटेबी ग्राम वासी रजियापुर के राज गुरु की बर्न पत्नी तुळसी की दक्षिण कुंज में १२ मास के पश्चात् १५१४ में धामन दुम्न धनिवार, सारंगकाक रजियापुर में गोस्वामी तुळसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अशुभित मंगल में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में सप्तम स्थान पर मंगल तथा अष्टम स्थान में धनि थे । इस सम्बन्ध से तुळसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । ग्रन्थकार के अनुसार गोस्वामी तुळसी दास का जन्म धामन तुळसी सप्तमी की धनिवार के सारंगकाक हुआ था । परन्तु विचारकों ने इस प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इनके अनुसार गजना के आधार पर गोस्वामी जी के जन्म-समय पर अशुभित मंगल नहीं था । ऐसी स्थिति में ‘मूल गोसाईं चरित’ में प्रस्तावित गोस्वामीजी की जन्म तिथि निश्चयनीय नहीं समझी है । बेनीमाधवदास ने तुळसी दास के जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—

यसोपनीत—माय शुक्ला पद्मिनी गुरुवार १२६१ वि० सं० । पत्रह से एकसठ माय सुदी । तिथि पंचमी और अंगुवार उरी । सरजू तट विप्रन बम्प क्रिये छिन्न बाळक कई उपदेश क्रिये ।

इसके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी गुरुवार १६८६ वि० ( २४ मई १५२६ ) को हुआ ।<sup>१</sup> गोस्वामी जी की पत्नी का निधन आषाढ़ कृष्ण दशमी, बुधवार वि० संवत् १६०७ को हुआ ।<sup>२</sup> गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् १६६३ मार्गशीर्ष सुदी ३, मंगलवार को की थी<sup>३</sup> । गोस्वामी जी का निधन संवत् १६८०, धावन कृष्ण ३, शनिवार को हुआ ।<sup>४</sup> ऊपर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं, उनमें से कलमा के अनुसार केवल प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ यथना के प्रतिष्मृत पड़ती हैं । इन तिथियों के आधार पर 'मूक गोसाईं चरित' की प्रकाशिकता संदिग्ध लगती है ।

'मूक गोसाईं चरित' के अनुसार गोस्वामी जी सवन्त बम्पे से । बम्पे के जोसे मिन इनकी माता का स्वर्भाव हो गया । और पियाने इनका परिग्राम कर दिया । बाळक तुलसी को गरुडमौन्य का सामीप्य मिला । आठ वर्ष चार मास की आयु में तुलसी गरुडमौन्य के साथ सूकर सेव भाये—

कहत कथा इतिहास बहु भाए सुकर-सेव ।

संभस सरजू बाबा सन्त जगन सुख वैत ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में वेप सनातन के निकट पत्रह वर्षों तक चारों वैद, छः शास्त्रों का अध्ययन किया—

१ पत्रह से चार तिरासि मिये । सुभ जेठ सुदी गुरु ठेरसि वै ।

बविरात जमे जू फिरी मँबरी । दुलहा दुलही की परी मँबरी । वृष्ट ८ ।

२ एव पत्रह जुक्त मनासि सरे । भुमसाइ बरी बसमीहु परे ।

जुक्त बाहर अन्य छे अन्य बरी । उपवेशि छती तनु त्याग करी ।

३ पेंतीस को संवत् जी मगसर । सुभ चौस मुराय विवाहिहि पर ।

पुठ ज्येष्ठ सोपान लमास भयो । सजु सग्न बन्धो सुपकन्य भयो ।

४ संवत् सोरह छै बसी बसी गंग के तीर ।

सावन त्यामा तीज सनि तुलसी लख्यो शरीर ।

विचरत, विहरत मुचित मन जाए काशी नाम ।

परम बुर सुस्थान पर, जाम कीन्द् विधाम ।

x                      x                      x                      x

उह्यो हते सेपं क्षणात्तम नू नपु ह्य वरं न युवा मन नू ।

✕                      ✕                      ✕                      ✕

किनि रीकि पण बटु पै जबही गुठ स्वाभि सौ सुन्दर बात कही ।

✕                      ✕                      ✕                      ✕

बट्ट पन्नाह वर्ष उहाँ रहिकें पनि धारण सबै गहि के गहि के ।

‘मूख बोझाई’ बरिष्ठ में संकल्पित बनेक बटगार्ये स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखती हैं। इन्हीं बटगार्यों के कारण इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया गया है। उदाहरण स्वरूप राजाबल्लभ के श्री हितहरिवंश जी और गोस्वामी जी से सम्बन्धित एक विधेय सम्बर्धन का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। संवत् १६०६ वि० में गोस्वामी तुलसीदास बिजनूर में निवास करते थे। सुन्दाबल हितहरिवंश ने अपने विषय प्रियादास और नवस दास को समुदायक, ‘राजा सुजानिबि’ और ‘राधिका उग्र महागिबि’ नामक ग्रंथों के साथ गोस्वामी जी के पास भेजा। तुलसीदास से इन्होंने निम्न प्रवेष्ट के आशीर्वाद की कामता की।

मुनि विनयी मुनि मान एव मस्तु इति भाषेत् ।

तनु तन्नि भय सनाथ, नित्य कुल प्रवेश करि ।

इसके अनुसार द्विहरिबंध का निगम-संवत् १९०६ में हुआ। परन्तु द्विहरिबंध के संवत् १९२२ तक जीवित रहने के प्रमाण मिलते हैं।

इसका उत्प्रेषण किया गया है कि तुळसी के सम्पुत्र मन्तरास के माइत से श्रीकृष्ण की मूर्ति धनुर्धर राम के रूप में परिवर्तित हो गई। और मन्तरास तुळसी रास के छोटे भाई ने। परन्तु मोघाई ग्रंथ में उन्हें तुळसीरास का गुरु-भाई कहा गया है—

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढ़े बिन शेष समावन छीर पड़े ।

सन्दास समाख्य से । इस प्रकार चार्त्तसाहिब में उपलब्ध मन्दरास और तुलसीदास-सम्बन्धित सूचनायें 'गोसाईं चरित' की सूचनाओं से कुछ भिन्न प्रकार की हैं । इस दृष्टि से भी गोसाईं चरित की सूचनायें सम्बिम्ब मानी गई हैं ।

'गोसाईं चरित' के अनुसार संवत् १६१६ में सुरदास गोस्वामी जी से मिलने आए थे—

छोछू से छोछू सरी कामबनिरि हिमचास  
सुधि एकात्म प्रवेश मई आए मूर सुरदास ।  
पछू योकुल नाथ जी कृष्ण रंग में बोरि ।  
कनि मूर सिखायेत सागर को सुधि प्रेम कवा नटनावर को ।  
दिन सात रहे सत संव जये पर कंठ रहे जब जान को ।  
पहि बौह गोसाईं प्रबोध किया, पुनि योकुल नाथ को कब दिए ।

इस चन्दर्म से यह स्पष्ट होता है कि संवत् १६१६ में योकुलनाथ ने सुरदास को प्रेम-रस में रमिष्ठ कर तुलसीदास के पास भेजा । इस कवन की प्रामाणिकता पर इस कारण सन्देह किया जाता है संवत् १६१६ में सुरदास की आयु ७६ वर्ष की थी योकुलनाथ की आयु आठ वर्ष की थी । और योकुलनाथ के जन्म के पूर्व ही कृष्ण भक्ति चारा में सुरदास दीक्षित हो चुके थे । इस बल्ल्यायु वात्सल्य की अनुप्रेरणा से सुरदास तुलसी से मिलने गए हों, यह सम्भावित नहीं लगता है ।

सन्त तुलसीसाहिब द्वारा रचवाले कुछ 'बटयामायन' में तुलसी दास का

१. इस कृति का सर्वप्रथम प्रकाशन मुली देवी प्रसाद साहब तथा राज बहादुर वात्सिलर प्रसाद 'जबम' ने १९११ ई० में प्रकाश के बटवेडियर प्रेस से किया । आभ्यन्तर छात्र के आचार पर इसकी रचना का आरम्भ इन्हींने मंगलवार, माघपक्ष पुक्ता एकादशी संवत् १६१८ को किया—

संवत् सोलह से बटूठारा । खडी मोक्ष रचनिम्नी सारा ।

मादों मुदी मंगल एकादशी । आरम्भ किया प्रथम मन भासा । पृष्ठ ४१७ ।

परन्तु तुलसी साहब ने (गोस्वामी तुलसी दास के रूप में) इसे कृत रत्ना, कारण कापी में इस कृति का विरोध हुआ । अतः तुलसी के रूप में पुनः जन्म प्राप्य कर तुलसी साहब ने इसका प्रकाशन किया । इस पुस्तक में पिंड और ब्रह्माण्ड विद्वत्प्रेम मयमो-वादि की बर्णना है । अतः इसकी मूल-भावना तुलसीदास की भक्ति भावना के विपरीत है । इसका सम्बन्ध गोस्वामी जी के पुनः जन्म से स्थापित किया जाता है । अतः इस सम्बन्ध में इस कृति पर विचार करना उचित नहीं है ।

जीवन हुए प्रस्तुत किया गया है। हमका समय सं० १८२० के १८०० के मध्य-  
माना गया है। इस कृति में उन्होंने अपनी जीवनी भी है और वे अपने को  
तुलसीदास का प्रतिबन्धी मानते हैं। उदाहरण के लिए इस रचना की कतिपय  
पंक्तियाँ यहाँ भी आ रही हैं—

राधापुर जमुना के तीरा । बहै तुलसी का भया शरीरा ।  
विधि बुद्धेक जख बोहि देसा । चिन्तोटा बीच इस कोसा ।  
संबत् पन्द्रह सै नावासी । मारौ मुदी मंकक एकावसी ।  
भया जन्म सोइ कहाँ बुझाई । नाक बुद्धि सुधि बुधि बरसाई ।

× × × ×  
सम्पत सोका सै बसी नबी बसन के तीर ।  
सावन मुकला ससमी तुलसी तन्वो शरीर ।

‘बट रामायण’ में तुलसीदास के पूर्ण जन्म की घटनाएँ वर्णित हैं। इसके  
अतिरिक्त इस कृति में प्रस्तावित तिथियाँ भी बधुत हैं तथा इसमें ऐतिहासिक  
व्यक्तिगत भी हैं। अतः इस कृति के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी  
का निर्धारण सम्भव नहीं है।

हमर की पंक्तियों में उन व्याचारों के स्वल्प विस्मरण का प्रयास किया गया  
है जिसकी सहायता से गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी के स्वल्प निर्णय की  
शेष्टा की जाती है। आगे की पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी के  
स्पष्ट विस्मरण का प्रयास किया जा रहा है।

तुलसीदास की जन्म तिथि और संबत्—‘मूक गोसाईं चरित’ के  
रचयिता बेनीमाधन दास के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास की जन्म तिथि संबत्  
पन्द्रह सै चउवन सावन शुक्ला सप्तमी है। इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी  
के जन्म के विषय में निम्नलिखित वक्तव्य मिलता है—

तिनके घर डाहस मास परे ।  
बब करक के बीच हिमांशु चरे ।  
मुस सप्तम अष्टम भागुलपय ।  
जमिनीमिठ छनि गुनार सौम समय ।



इसके अनुसार गोस्वामी जी बारह मास तक वर्ग में रहे। इसका कथन गोस्वामी जी के कथन से ही हो जाता है। तुलसीदास ने विनम्रपत्रिका में लिखा है—

वर्ग-वास बस मास पाकि सिधु मास रूप हिय कीन्हों ॥ १७१॥

इसके अतिरिक्त विधियों का विस्तार मग भी नष्ट नहीं है। ( देखिए डॉ० माता प्रसाद पूत, तुलसीदास पृष्ठ १३३ )। 'मानस-मर्मक' में सिक्कापत्र पाठक गोस्वामी जी का जन्म-काळ-संवत् १३३४ मानते हैं।

४                      ३                      ३                      १  
मन ऊपर सर बालि बालिसे सर पर दीन्हें एक।  
तुलसी प्रकटे राखत राम जगम की टेक।

मानस मर्मक—अज्ञानविकास प्रेस १९३१।

इस प्रस्तावना को विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। इस सम्बन्ध में उन्हें यह विचार आता है कि 'मानस' की रचना गोस्वामी जी ने संवत् १६३१ में आरम्भ की थी। जब उस समय उनकी आयु सत्तरहत्तर वर्ष की थी। गोस्वामी जी ने वास्तविक कृत 'उपायधर्म' उत्तर काण्ड की प्रतिलिपि संवत् १६४१ में की थी। उस समय उनकी आयु सत्तासी वर्ष की थी और 'पञ्चाक्षर नामा' के सौर्ध की पंक्तिमें गोस्वामीजी ने संवत् १६३२ में लिखी। उस समय गोस्वामी जी की आयु ११२ वर्ष की रही होगी। इन तथ्यों को सम्मुख रखते हुए डॉ० माता प्रसाद मुत निर्णय लेते हैं, "किन्तु इनमें से एक बात भी सम्भव नहीं मान पड़ती है। इसलिए संवत् १६३४ में कवि के जन्म की परम्परा ठीक नहीं मान पड़ती है।" परन्तु अवलम्बनाओं के सम्भावित कारणों की जहाँ डॉ० मुत तथा इस विचारधारा के जग्य विज्ञान नहीं करते हैं।

१ वास्तविक राधादास के उत्तर काण्ड की एक प्रति काशी राम संग्रहालय में सुरक्षित है। यह संवत् १६४१ की है। इस पर तुलसीदास का हस्ताक्षर भी इस प्रकार है 'तुलसी दासेन'।

२ इस प्रकार की भावना व्यक्त मिलती है कि डोबरमग और तुलसीदास में मित्रता थी। डोबर मग की मृत्यु के बाद उनके परिवार में सम्पत्ति के किए संघर्ष हुआ, जिसके निवारण हेतु पञ्चनामा लिखा गया। इसमें दो बरसों और एक दोहा तुलसीदास का लिखा हुआ माना जाता है।—

स्वर्गीय जगन्नाथजी बर्मों ने 'राम मुक्तावली' नामक ग्रन्थ के आचार पर गोस्वामीजी का जन्म संवत् १३९० माना है। परन्तु 'राममुक्तावली' की प्रामाणिकता सन्देह है। राममुक्तावली की पंक्ति इस प्रकार है—

एक सग मो सग कह्यो पाँच बीस अब बीस।

परन्तु सैबी, बिचार और छन्द-योजना के आचार पर यह गोस्वामी तुलसीदास की रचना नहीं लगती है। देखिए—भाटा प्रसाद गुप्त, तुलसीदास-ग्रन्थ १०८।  
कों० गुप्त का यह प्रस्ताव है 'पाँच बीस अब बीस' का अर्थ ४३ केना चाहिए। इस प्रकार तुलसी का जन्म-संवत् १३४३ में हुआ माना जाना चाहिए।

पाश्चात्य विचारकों में बिल्सन और टासी ने तुलसीदास के जन्मकास का निर्धारण 'रामचरित मानस' की रचना सिद्धि के आचार पर किया है। इन विद्वानों की यह धारणा है कि गोस्वामीजी ने मानस का प्रथम ३१ वर्ष की अवस्था में आरम्भ किया। इस प्रकार इनके अनुसार तुलसी का जन्म संवत् १६०० में हुआ। परन्तु इस मत को अस्वीकार करते हुए विद्वानों ने यह कहा है कि ३१ वर्ष की अवस्था में 'मानस' ऐसे ग्रंथ की रचना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं प्रतीत होता है। परन्तु इस प्रकार के सम्भावना-पूर्ण निष्कर्षों से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। वास्तविकता यह है कि इस प्रकार के निर्णय-क्षेप हमारे पास स्पष्ट प्रमाण नहीं है। कुम्भवास कविवार कृत 'भौतम-चरित्रिका' के अनुसार तुलसी का जन्म संवत् १६०० में हुआ था। परन्तु 'भौतम-चरित्रिका' की प्रामाणिकता अभी तक स्थापित नहीं हो सकी है। इस रचना में 'संस्कृत छोड़के से जसी जसी जग के तीर' का अस्सेव मिलता है। कतिपय प्रतियों में 'जसी जग के तीर' अंकित मिलता है, इसके

पश्चात्त नामा इस प्रकार है —

द्विष्यर नामि संवत्ते द्विषत्वापयति नाधितान् ॥

द्विर्दराति न चाविम्यो रामो द्विर्नव धापते ॥१॥

तुलसी जान्यो बसरपहि, बरगु न सत्य समान।

रामु तजो जेहि साहिबिनु, राम पछिहर मान ॥२॥

बर्मो जयति नाचार्मस्तत्य जयति मानुषम्।

रामप्रतिपत्ति कोचो बिजुबैवति मासुरे। गोस्वामी तुलसी।

अनुसार निम्न के समय गोस्वामीजी की आयु ८० वर्ष की थी। इस प्रस्ताव के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-सम्बत संवत् १६०० ही स्वीकार करना पड़ेगा।

‘सिबसिंह सेंगर सिबसिंह सरोज’ में सम्बत् १३८६ गोस्वामी तुलसीदास की जन्मतिथि मानते हैं ‘यह महाराज सम्बत १३८६ के समयग उत्पन्न हुये थे।’ ( सिबसिंह सरोज-पृष्ठ ४२० )। इनका प्रस्तावित सम्बत भी स्वीकार नहीं किया गया है। कारण ‘मूल दोसाई’ की सूचना के सन्दर्भ में इन्होंने गोस्वामीजी का जन्म सम्बत् १३५४ माना है। इस प्रकार सिबसिंह ने स्वयं दो बिन्न भिन्न तिथियों की प्रस्तावना की है और अपनी कृतियि प्रस्तावना के सन्दर्भ में वे ‘कमलग’ राज के प्रयोग से अपने निर्राण को कन्येह पूर्व बना देते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की जन्म तिथि के प्रस्तावकों के एक वर्ग के अनुसार इनका जन्म संवत् १३८६ में हुआ था। इनमें प्रमुख हैं रामयुक्तम द्विवेदी ( तुलसी प्रत्यावकी भाग ३ )। सर कार्लसिमर्सन के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का जन्म वर्ष १६, मंगलवार सम्बत् १३८८ में हुआ था। ( *Indian Antiquary* 1933 Page 264 )। अपनी कृति ‘गोस्वामी तुलसीदासजी’ में प्रिन्सल्लम सह्याय संवत् १३८६ की तिथि स्वीकार करते हैं। ‘चटराभाषक’ में भी यही सम्बत् प्रस्तावित है। निम्न बन्धु किशोर’ में भी यही सम्बत् स्वीकार किया गया है। डॉ० माध्याप्रसाद गुप्त ने इस सम्बत् को इन सत्रों में स्वीकार किया है ‘यह तिथि यगन्ना से कुछ अंतराती है, और किसी परम्परागत शास्त्र का भी इतने अधिक प्राचीन उत्पन्न नहीं मिलता, और इस तिथि को मानने में कोई असम्भावना भी नहीं दिखलाई पड़ती इसलिए इस तिथि को हम कवि की जन्म तिथि के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।’ तुलसीदास पृष्ठ ११० १११। इस प्रकार अधिकारी मिश्र सम्बत् १३८६ आश्विन ११ मंगलवार की तिथि को ही स्वीकार करते हैं। संवत् १३५४ १३६०, सम्बत १६६० १६१० सम्बत् १३८३ को मोठा संवत् १३८६ की तिथि बनना से भी कुछ अंतराती है। अतः इसे हम गोस्वामीजी की जन्म तिथि के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार की भावना व्यक्त मिलती है कि राजापुर में 'रामचरित मानस' के बयोध्या काण्ड की एक प्रति उपलब्ध है, जो तुलसीदास लिखित कही जाती है। परन्तु इस मठ के समर्पन हेतु हमारे पास प्रमाण नहीं हैं। इन विचारवाजों के अतिरिक्त राजापुर के पक्ष में कतिपय अन्य तर्क दिए गए हैं। उदाहरण स्वरूप यह कहा जाता है कि राजापुर के उपाध्याय (सरयूपारीय) ब्राह्मणों का एक बंस है। इस बंस के लोगों का यह कथन है कि वे गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य श्री गणपति उपाध्याय के शिष्य हैं। परन्तु इस कथन को यदि स्वीकार भी कर लिया जाय तो इससे यह सिद्ध नहीं हो पाता कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान राजापुर था। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन में राजापुर का विशेष महत्व था। इस भावना से पूर्ण विचार व्यक्त किए जाते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास राजापुर के संस्थापक थे। यह इनकी साक्ष्या-श्रुति थी। जनश्रुतियों के अतिरिक्त इम्पीरियल गेझेटियर (Imperial Gazetteer of India Vol XXI. According to tradition the town was founded by Tulasidas the celebrated author of Ramayan)। इसके अतिरिक्त 'स्टेटिस्टिकल डिमिग्रेशन ऐन्ड हिस्टोरिकल एकाउंट ऑफ़ द गार्ग बेस्टरन प्राविन्स ऑफ़ इन्डिया (१८७४) इम्पीरियल गेझेटियर ऑफ़ इन्डिया, तथा इस प्रकार के अन्य साधनों से यही सूचना मिलती है कि राजापुर की स्थापना गोस्वामी तुलसीदास ने की थी।

राम बहोरी शुक्ल ने राजापुर में उपलब्ध दो सन्तों का वर्णन किया है। वे राजापुर के उच्च सरयूपारीय ब्राह्मण परिवार से उपलब्ध हुये हैं, जो अपने को गोस्वामी तुलसी दास के शिष्य गणपति उपाध्याय की वंशपरम्परा में मानता है। इनमें से एक सनय पन्ना के राजा हिनूपति की है। दूसरी सनय कारसी जिले में है। परन्तु इन सन्तों की प्रामाणिकता पर संशय प्रकट किया गया है। इस विषय में कथनीय यह है कि इन से गोस्वामी जी के जन्मस्थान का परिचय नहीं मिलता। इनसे यही संकेत मिलता है कि अकबर के समय गोस्वामी तुलसी दास ने राजापुर की स्थापना की थी। राजापुर गोस्वामी जी का जन्मस्थान था इस प्रकार की सूचना इन से नहीं मिलती है।

निर्बर्तन ने जनश्रुति के आधार पर तारी को तुलसी का जन्मस्थान माना है। तारी राबानपुर के निकट एक छोटा सा ग्राम है। परन्तु इस मायमता के प्रति पावन हेतु अपेक्षित प्रमाण नहीं मिले गए हैं।

डॉस्विट बुचानन के अनुसार योस्वामी तुलसी दास काशी के निवासी थे। रत्नजीकाम्य शास्त्री ने इनके मत का समर्थन करते हुए इस पर अधिक विस्तार से विचार किया है। अपने मत प्रतिपादन के लिए विज्ञान विचारक तुलसीदास के काम से निम्नलिखित शब्द उद्धृत करते हैं—

मियो तुलुन बनम धरोर सुन्दर हेतु जो एक चारि के।  
जो पाइ पंडित परम पर पाकठ पुरारि मुरारि को त  
यह मरत शब्द समीप सुरसरि पक बखी संमति मसी।  
तेरी कुमति कायर कल्प बह्नी बह्ति निरपक कसी ॥

जिनम पत्रिका, १३५।

इस शब्द में 'परम पर पाकठ पुरारि मुरारि' का अर्थ काशी किया गया है। अपनी योस्वाजी के पोषण के लिए शास्त्री जी किन्निरवा काण्ड के निम्नलिखित शब्द का आधार भी ग्रहण करते हैं —

भुक्ति बन्म मझि जानि जानि जानि बन हानि कर।  
जहँ कच संयु लजानि सो काशी सेह्य कस न न

'मोल और (मिरे) बन्म की भूमि जान की धाम और बापों का संहार करने वाली जो काशीपुरी है जहाँ सिन और पार्वती निवास करती हैं, उसकी सेवा अवश्य करनी चाहिए।' परन्तु तथ्य यह है कि काशी योस्वामी जी की जन्मभूमि नहीं है। काशी में योस्वामी जी ने विद्या-अध्ययन किया था और यहाँ उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ था।<sup>१</sup>

योस्वामी तुलसी का सम्मान अयोध्या से भी स्थापित किया जाता है। इस सम्मान-स्थापन के प्रतीक में यह भी कहा जाता है कि योस्वामी जी का जन्म अयोध्या में हुआ था। पण्डित जगन्नाथ पाण्डेय ने इस सम्मान में जिन शब्दों का

१ निरूप कृष्ण के लिए देखा—योस्वामी तुलसी दास अस्तित्व दर्शन  
के साहित्य—डॉ० रामदत्त झाझाज पृ० १३५—१४२।

संस्कृत किया है उन्हें वे बाह्य सादर और आभ्यन्तर सादर इन दो वर्गों में विभाजित करते हैं। प्रथम के अन्तर्गत जननिधि कवि की उस रचना की प्रस्तावना करते हैं जिसमें इस प्रकार का भाव व्यक्त है कि मोक्षामी जी का जन्म बयोध्या में हुआ था —

जन्म भय तुलसीदास भुसाई । सिया राम इन बाई बाई ।

× × × ×

कोसल देस उवावर कीली । सबहिन को जन्मभूत रस बीनी ।

—जननिधि जन्मावली हरिप्रद संग्रह—पृ० २७३-७६ ।

कोसल देस उवावर कीली' का अर्थ यह नहीं है कि तुलसी का जन्म बयोध्या में हुआ था। वस्तुतः इसका अर्थ हो सकता है कि 'कोसल' की कथा को मोक्षामीजी ने व्यापक रूप में प्रसार दिया। अन्य साधक के अन्तर्गत पाण्डेयजी ने मोक्षामी तुलसीदास की रचनाओं में से कतिपय बंधों के उदाहरण दिये हैं—

(i) निम्न इच्छा प्रभु अवतरत सुर मोंहि मो खिज लागि ।

सगुन उवासक संगतई रहहि मोक्ष सब त्यागि ॥

रामचरित मानस ।

(ii) मरत राम रिपुबल जपन के चरित छरित जन्मबैसा ।

तुलसी तब के से जगहुँ जानिजे रघुवर नगर करैया ।

गीतावली बाजकपाठ ९ ।

इन बंधों से इस प्रकार की जगति गूढ़ी निकलती है कि तुलसी दास बयोध्या को अपनी जन्मभूमि मानते हैं। 'रामचरित मानस' से निम्नलिखित बंध का उदाहरण देते हुए पाण्डेयजी यह संस्थापित करने का प्रयत्न करते हैं कि रामचन्द्र के माध्यम से मोक्षामी तुलसी दास अपनी जन्मभूमि बयोध्या के प्रति सम्मान-भाव व्यक्त करते हैं।

मुनु कपीस जैसल जकेसा । पावन पुरी बधिर यह बैसा ।

अवधि सब बेकुष्ठ बखाना । बैर पुरान विरिठ जगुजाना ।

अबध पुरी सम प्रिय नहि सोऊ । बह प्रसंग जाने कौठ कोऊ ।

वास्तविकता यह है कि रामके माध्यम से मोक्षामी जी मातृभूमि की स्तुति कर उसके प्रति आस्था भाव व्यक्त करना चाहते हैं। इस बंध से यह

बर्त नहीं प्रहृत किया जा सकता है कि इसमें तुलसी दास अपनी जन्मभूमि जयोध्या का स्तवन करते हैं ।

एक अन्य मानना के अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का जन्म स्थान रामपुर माना गया है । यह रामपुर ग्राम सूकर क्षेत्र के निकट अवस्थित था । गोस्वामी जी के पूर्वज यहीं के निवासी थे, और मन्व दास का जन्म इसी स्थान पर हुआ था । मानसदास ने मन्वदास के प्रसंग में इसकी चर्चा भी की है—

लीला पर यह रीति जन्म रचना में भावर ।  
 तारत त्रिभि नृप त्रिभि मक्ति रस भाग उभावर ।  
 प्रभुर पयकळो तुलस रामपुर ग्राम निवासी ।  
 सकल सुकुल संवर्धित मष्टपर रेनु उपारी ।  
 बन्ध हास भवज सुख परम प्रेम पथ में पैय ।  
 श्री मन्व दास भाग्य मिथि रसिक सुप्रमुक्ति,  
 रचये ।

इस प्रसंग में संपन्न सामग्रियों के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रामपुर सोरो के समर्पण एक ग्राम था । अतः इस निष्कर्ष ने सोरो सामग्री की प्रमाधिकता के सम्बन्ध को छति दिया है, जिसकी चर्चा यहाँ की जा रही है ।

सोरो सामग्री —गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध सोरो (सूकर क्षेत्र) से किसी न किसी प्रकार रहा है । और अति प्रबल सब्यों में इस विचार का प्रतिपादन किया गया है कि गोस्वामी जी सोरो के निवासी थे । सोरो उनका जन्मस्थान था । गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में इस सूकर क्षेत्र का उल्लेख भी किया है—

मैं पुनि निज मुख धन सुनी कथा सो सुकर क्षेत्र ।

तमुनी नहीं तसि वाक्यन तब अति खेद भवित ।

रायचरित मानस दोहा ३७ ।

‘सूकर क्षेत्र’ की भौगोलिक स्थिति पर भी मत-भेदान्तर उपस्थित किए गए हैं । गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध सोरो से अति जटिल रूप में स्थापित किया जाता है । इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के मत प्रस्तावित किए गए हैं ।

(क) प्रथम वर्ग सोरों को गोस्वामी जी का जन्म-स्नान मानते हुए उसे एटा के अन्तर्गत अवस्थित मानने के पक्ष में है ।

(ख) द्वितीय वर्ग भी प्रथम वर्ग के अनुसार ही सोरों को गोस्वामी जी का जन्म-स्नान तो मानता है परन्तु वह इसकी अवस्थिति जलमय प्राग के अन्तर्गत बोंड़ा के अन्तर्गत मानता है ।

(ग) तृतीय वर्ग सोरों को गोस्वामी जी का छिछा-स्नान या बीछा-स्नान मानता है ।

एटा के अन्तर्गत अवस्थित सुकर क्षेत्र की अपेक्षा अबोध्या के लिफ्ट सरयू-बाबरा के संगम पर स्थिति (बोंड़ा बिका में) 'सुकर क्षेत्र' की तुलसी की जन्म भूमि अबका बिद्याभूमि के रूप में ग्रहण किए जाने का भी आवश्यक दिखता है । जहाँ तक मुझे विदित है बोंड़ा बिकान्तर्गत सोरों का सर्व प्रथम उल्लेख 'अयोध्या माहात्म्य' में हुआ है । इस ग्रन्थ के आधार पर ही वह प्रस्तावित किया गया है कि तुलसीदास के सम्बन्ध में जिस सोरो की चर्चा की जाती है वह सरयू-बाबरा के संगम पर स्थित है । 'मोछाई' चरित' से जिस 'सुकर क्षेत्र' का परिचय मिलता वह भी सरयू बाबरा के संगम पर स्थित माना गया है—

'कहत कथा इतिहास यह आए सुकर क्षेत्र

संगम सरयू-बाबरा संग जलमय सुख क्षेत्र ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वाम सुन्दरदास हूँती मत के पोषक हैं ।' डा०

१ एडमिन् प्रीम्स ने इस प्रकार कहा है कि गोस्वामी तुलसी दास अपने मूल के ग्राम सुकर क्षेत्र में निवास करते थे । प्राचीन काल में यह सुकर क्षेत्र के नाम से विख्यात था और परवर्ती काल में यह सोरों के रूप में विख्यात हुआ । एक० एम० घाउस ने इसकी व्युत्पत्ति सुकर ग्राम से प्रस्तावित की है । सुकर ग्राम > सुकर पौन > सुबराबे > सोरों — Prologue to the Ramayan by Tuladās — Journal of Asiatic Society of Bengal VOIXLV 1876 Footnote 2 ये अपनी व्युत्पत्ति इस प्रकार देते हैं— 'पसका=पशु+का=पशु (बाराह) का+(क्षेत्र)—बाराह क्षेत्र । इन्होंने एक अन्य व्युत्पत्ति दी है—पशुक = पसका = पशु इन इति (पशु प्रदान) = कुरिगत पशु ।



जगदली प्रसार सिंह ने 'सूकर खेत' से सम्बन्धित एक पवीम प्रस्तावना की है। ये इसे ब्रह्म और बाबरा के संगम पर स्थित हो मानते हैं। यह स्थान 'सका प्राय' का विशेष परवर्तीकाक में सूकर खेत के रूप में ग्रहण किया गया। परन्तु इस प्रकार की व्युत्पत्ति का कोई अर्थ नहीं है। जिस सूकर खेत का सम्बन्ध तुलसी दास से स्थापित किया जाता है वह एटा जिला के अन्तर्गत है, इस मत के समर्थन में अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक प्रमाण लिए गए हैं। सूकर क्षेत्र का वर्णन बाराह पुराण ब्रह्म पुराण, हरिवंश पुराण, बर्ष संहिता आदि ग्रन्थों में मिलता है। इन ग्रन्थों अन्यत्र भी सूकर दास वंश-उत्पत्ति माना गया है। इन ग्रन्थों के आधार पर यह निष्कर्ष किया गया है कि 'सूकर खेत' एटा के अन्तर्गत था।

इस विस्लेषण के सम्मर्प में उन ग्रन्थों का परिचय प्रदान किया जा रहा है, जिनके आधार पर सोरों की प्रस्तावना मौलामी जी के सम्म-स्वान-रूप में की गई है। मौलामी जी से सम्बन्धित जो सामग्री उपलब्ध हुई है उनका विवरण इस प्रकार है—

(क) 'रामचरित मानस' के बाढ काण्ड की एक प्रति की पुष्पिका। इस का लिपिकार संवत् १६४३ माना गया है।

(ख) मानस के अरण्यकाण्ड की एक प्रति की पुष्पिका जो बापड़ मूलक ४ संवत् १६४३ की लिखित गाली गई है।

(ग) कवि कृष्ण दास रचित 'सूकर क्षेत्र साहाय्य भाषा' की दो प्रतियाँ, जो संवत् १६७० की मानी जाती हैं।

(घ) मुठ्ठीबर जगुर्बेदी-भूटा रत्नावली की एक प्रति, जिसका रचना-काल संवत् १८२२ बताया गया है। (ङ) 'रत्नावली लघु बोद्धा संग्रह' की दो प्रतियाँ (च) बोद्धा रत्नावली की एक प्रति। (छ) सोरों में तुलसी दास के स्थाय का अन्वेषण (ज) तुलसी दास के भाई मन्त्र दास के उत्तराधिकारी, (झ) सोरों में स्थित बरनिह जो का मन्दिर। (ञ) सोरों में बरनिह चौबरी के उत्तराधिकारी। देखिए-माया प्रसाद-मुत्त-तुलसीदास पृ० ८०।

सोरों प्रांत इन सामग्रियों की प्रमाधिकता के प्रति बौ० माया प्रसाद गुप्त ने अमनोप-भाव प्रकट किया है। उन्होंने यह कहने का स्पष्ट प्रयास किया है कि

इन सामग्रियों से सोरों-सम्बन्धी चारण का पोषण नहीं हो पाता है । 'राम चरित मानस' के जिस बाणकाण्ड का उल्लेख ऊपर किया गया है वह गोस्वामी जी के अक्षर (कवि) स्वर्गीय मुरली दास जी शुक्ल (सोरों बासी) की प्रति कही जाती है । इस का सिफिकाक संवत् १९६३ है और यह गोस्वामी जी की हस्त लिपि की प्रतिमिति है इसकी पुष्पिका पर डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने बाधेप किया है ।<sup>१</sup> डॉ० गुप्त ने इस अक्ष को इसलिये संक्षिप्त माना है दूसरी और तीसरी पंक्ति के मध्य एक बिंदु रेखा है । इससे यह संकेत मिलता है कि पुस्तक मही समाप्त हो जाती है । इसके पश्चात् की पंक्ति किसी अन्य व्यक्ति ने संयुक्त की है, और फिर इसे बिंदित कर दिया है । 'राम चरित मानस' के 'बाण काण्ड' की इस प्रति को देखने का सीमांत मुझे नहीं मिला है । अतः इस में मेरा व्यक्तिगत निर्णय सम्भव नहीं है । परन्तु डॉ० राम वल्लभ मारवाड ने सम्पूर्ण रामायणी के निरीक्षण के पश्चात् बरि दफ्ता के साथ डॉ० गुप्त के निष्कर्षों को तथ्य-रहित कहा है । उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं—(१) पुष्पिका की दूसरी और तीसरी पंक्ति के मध्य की बिंदु रेखा की जगह की गई है वह दो विषयों की सूचना हेतु है । (अर्थात् काण्ड की समाप्ति और प्रतिमिति के विवरण के पारंपरिक की) । इसके अतिरिक्त डॉ० माता प्रसाद गुप्त की स्वीकृति से ही इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है । यदि काण्ड की समाप्ति रेखा के पूर्व की हुई है तो भी यह प्रति संवत् १९४३ ( सं० १२०८ ) की सिद्धी हुई सिद्ध होती है ।

(२) डॉ० गुप्त का यह निर्णय है कि 'अंतिम पंक्ति की सिद्धावट सेव प्रति और पुष्पिका की सिद्धावट से पूरा-पूरा मेल नहीं खाती । इस बाणकाण्ड के समस्त पृष्ठों के निरीक्षण के पश्चात् डॉ० मारवाड इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सम्पूर्ण हस्त एक ही सिद्धावट में है ।

---

१—पुष्पिका इस प्रकार है—इति श्री राम चरित मानसे सकल कवि कमुप दिव्य से विमल । अ सम्पादित नाम १ सोपान समाप्त सं० १९४३ माके १२०८ बासी मन्त्रदास पुत्र कृष्ण दास हेतु किरी रघुनाथ दास ने कासीपुरी में—देलिए—डॉ० माता प्रसाद गुप्त—गुरुजी राम पृष्ठ ८० के सम्मुख का छोटी विष ।

(३) पुष्पिका की दूसरी पंक्ति में '५' और '४' तथा साके' और १५०८ के बीच स्थान रिक्त है। स्वाभाविक केसन बिना के अनुसार ऐसा नहीं होना चाहिए। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी प्रकार लिखा गया है। केसन की यह केसन बिना सम्यगी है।

(२) 'राम चरित मानस' के अरण्य काण्ड की प्रति पर भी डॉ० गुप्त ने संकामें प्रकट की हैं।<sup>१</sup> डॉ० गुप्त ने दो कारणों से संकामें प्रकट की हैं—

(क) पुष्पिका 'इति' से ॥३९॥ तक पहले साक स्वाही के सिन्धी गई थी। बाब में कासी स्वाही फेरी गई है। 'पी' तुलसी दास से 'इति' तक की निम्नांकित प्रति की निम्नांकित से मिल सपती है। 'क', 'इ', '२' '५', और 'ई' में अन्तर दृष्टिमोचर होता है।

(ख) पुष्पिका के अन्त में जो संकट दिया गया है उसमें '१६४४' अन्व बसरो की अपेक्षा बढ़ा है। इस प्रकार की संका उत्पन्न होती है कि पूर्व के संकों को नष्ट करने के पश्चात् यह लिखा गया है। परन्तु इस प्रकार के निर्वारण में कल्पना और अनुमान के अतिरिक्त किसी दृढ़ आधार का अवलम्ब नहीं ग्रहण किया गया है।

'सूकर सेन माहात्म्य भाषा' संवत् १८७० की मिति रचना है।<sup>२</sup> अतः इस की प्राचीनता का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता है और इसके आधार पर किसी प्रकार का निर्णय भी सम्भव नहीं है।

परन्तु डॉ० रामचन्द्र भारद्वाज डॉ० गुप्त द्वारा प्रस्तावित प्रति से भी एक प्राचीन प्रति का उल्लेख करते हैं जिसकी प्रतिलिपि मुरसीवर कटुबंदी ने संवत् १८०६ में की थी। परन्तु विद्वान केसन ने अपने मत की संस्थापना के लिए इस प्रति से भी प्राचीनतर प्रति होने का उल्लेख किया है। उनकी यह धारणा है कि

१ 'इति' की पंथामने सकल कलि कल्प निर्घसने विमल वैराग्य ज्ञेयसिन्धी पठ सुख संवाहे रामकन चरित वर्तनो नाम सुदीपो सोपान अरण्य कोट समस्त। ॥३९॥ की तुलसी दास पुत्र की माथा तों उनके भ्राता तुल कल्प दास सोरों सेन निवासी हते निजिसे कसियन दास कासी मध्ये संवत् १६४४ आषाढ़ सुद ४ बुध इति ॥ २ संवत् १८७० मिति कातिक वरी ११ एकादशी बुध वासरे क्रिस्तम् विभवहाय कायम्ब सोरों मध्ये।

मुरलीधर की प्रति किसी प्राचीनतर प्रति पर आधारित है। परन्तु उस प्राचीनतर प्रति के अस्तित्व का उपमान प्रतिपादन संभव नहीं कर सके हैं। डॉ० माधवान् डॉ० माधवाप्रसाद मुत्त की संस्थापनाओं के अध्ययन के प्रति ही अधिक आग्रही हैं। वत-कभी-कभी वे तथ्य के संस्थापना की अपेक्षा प्रतिक्रियापूर्ण हो उठे हैं।<sup>१</sup>

सोरो से उपलब्ध चौथी सामग्री है 'रत्नावली'। इसके लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी हैं। इसकी पुष्पिका में इसकी रचना तिथि संवत् १८६४ लिखित है।<sup>२</sup> इसमें मुरलीधर हठ तीन क्षण्य उपलब्ध होते हैं। ये तीन क्षण्य 'सुकर क्षेत्र माहात्म्य' में भी उपलब्ध हो जाते हैं। प्रस्तुत इति बहुत प्राचीन नहीं है। इसकी रचना सैद्धी बति आधुनिक है वत आलोच्य समर्थन में इसकी उपयोगिता का कोई महत्त्व नहीं है।

'बोहा रत्नावली' गोस्वामी जी की पत्नी रत्नावली की रचना मानी गई है। गोस्वामीजी के जीवन-स्वरूप के स्मृतीकरण की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। डॉ० माधवाप्रसाद मुत्त ने इसकी एक प्रति का धन्यवाद किया है। यह प्रमु बयास समी के 'रत्नावली संस्मरण' में संलग्न है। इसमें ८० दोहे हैं। डॉ० मुत्त इसकी प्रमाणिकता पर इस कारण संदेह प्रकट करते हैं कि इसकी कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। डॉ० माधवान् न इसकी दो प्रतियों का उपयोग किया है। डॉ० बीनबयास मुत्त भी इसकी दो प्रतियों की बर्ण करते हैं और इसकी प्रमाणिकता पर विश्वास प्रकट करते हैं। 'रत्नावली के बोहा संग्रहों में से एक में १११ दोहे हैं और दूसरे में २०१ दोहे हैं। इन्होंने तुम्सी बास के जीवन पर नया प्रकाश डाला है।<sup>३</sup> 'मैंने बोभारा सोरो जाकर इन ग्रन्थों का अवलोकन किया है। मुझे ग्रन्थ प्रमाणिक जान पड़ते हैं।<sup>४</sup> इन दोहों से गोस्वामी तुम्सी बास के विषय में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं—

बैठ बारही कर गह्वो खोरहि गमन कराय ।

सत्ताइस जानत करी नाथ रतन बसहाय ।

१, देखिए गोस्वामी तुम्सी बास—व्यक्तित्व, वर्णन और साहित्य, २३० ।

२ इति श्री रत्नावली संपूर्णम् लिखितम् श्री मुरलीधर चतुर्वेदी जिव्येन राम बल्लभ मिश्रेन सोरो मध्ये संवत् १८४६ ॥ ३ हिन्दुस्तानी १९४० ४ हिन्दुस्तानी जनवरी १९४१

सागर कर रस ससि छन संवत् भो बुल बाय ।

प्रिय विधोय बननी मरन करन न भुख्यो बाय ।

अनौद बारह वर्ष की आयु में रत्नावली के साथ पोस्वामीजी का विवाह हुआ। सोनहू वर्ष की आयु में हिरायमन तथा संधारस वर्ष की अवस्था में तुलसी ने रत्नावली का स्नान किया। और इसी समय रत्नावली की माता का स्वर्णवास भी हुआ। यह घटना संवत् १६२७ की है। सागर ६ कर २, छ ६ और ससि १, मर्वाह संवत् १६२७। डॉ० पाख्ताब ने इसके पाठान्तर की ओर संकेत करती हुए निम्नलिखित पाठ स्वीकार किया है—

बाबर प रस ससि छन संवत् भो बुलबाह ।

प्रिय विधोय बननी मरन करन न भुख्यो बाह ।

इनके अनुसार बाबा ४ प० आकाश और सम्पूर्ण का वर्ष हुआ १६०४। इस प्रकार हिरायमन और रत्नावली-स्नान के मध्य पन्द्रह वर्षों का अन्तर पड़ता है। इन पन्द्रह वर्षों के मध्य की वज्जारों का कोई परिष्कृत सौरी-सामग्री से नहीं मिलता है। इस सल की ओर डॉ० बाबाप्रसाद मुख ने संकेत किया है। डॉ० मुख ने मोस्वामी जी की कृतियों (अन्तर्द्वय) के आधार पर इस काक-मर्वाह की निरिष्ट घटनाओं की ओर संकेत किया है। डॉ० मुख के इस सर्वम के विस्मयनों की ओर उनके आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया है। डॉ० मुख का यह निष्पत्ति है कि इन पन्द्रह वर्षों में पोस्वामी ने बार वर्षों का उपवास किया है। 'रायसका महर्ष' 'बान्नी मंगल' 'रामाज्ञाप्रस' और 'शराय संदीपनी'। इनमें से 'शेराय' पत्नी की प्रमात्रिकता पर संक्षेप प्रकट करते हुए डॉ० मुख ने इसका प्रयोग ने विस्मय में नहीं किया है।

'रामाज्ञाप्रस' की रचना पोस्वामी जी ने संवत् १६२७ के पूर्व काही में की। छोटे सामग्री में इस काही-यात्रा का कोई वर्णन नहीं मिलता है। बाबा की रचना के पूर्व पोस्वामी जी ने विकट-यात्रा की थी। इस भी संकेत सौरी-सामग्री में नहीं मिलता है।

सौरी के बीच बारबा मुहले में एक मुखमयान बाके बुद्धगरी का नाम है। इस प्रकार की शारदा अर्थ मिलती है कि इससे स्थान पर पहले

मोस्वामी जी का मकान था । यह घर इस समय एक कसाई के अधिकार में है । इस सम्बन्ध में एक अनभूति मिलती है —

तुलसी घर मरभट्ट में गल कटियन के पास ।

अपनी करी जाप सब दू बनो होय ज्यादा ।

इसका आभार ग्रहण कर डॉ० रामवत माछान्न और रामनरेश त्रिपाठी की यह धारणा है कि बुद्ध मही का मकान मोस्वामी जी का ही मकान था ।

डॉ० माता प्रसाद मुत इन सम्भावनाओं को बस्तीकार करते हैं । सम्मानार्थों के आभार पर लिखित निर्णय किया भी सम्भव नहीं है । परन्तु इतर हिन्दी के अधिकोश विद्वान इस पक्ष के पक्ष में हैं कि तुलसी दास का जन्म-स्थान सोरो था । मोस्वामी जी की समुदाय सोरो के पास ही रंगा पार थी । उसके अन्तर्वासेय भी वर्तमान मिलते हैं । सोरो के पक्ष में इस तथ्य को भी एक प्रबल प्रमाण के रूप में ग्रहण किया जाता है ।

सोरो में मोस्वामी तुलसीदास के पुत्र नरसिंह जी का मन्दिर है । इस आभार पर भी सोरो का समर्पण मोस्वामी जी की जन्मभूमि के रूप में किया जाता है । परन्तु यह मन्दिर नरसिंह जी का ही है इसका समर्पण नहीं हो पाता । डॉ० माता प्रसाद मुत का यह कथन है कि नरसिंह जी का मन्दिर न तो तुलसी के पुत्र नरसिंह जी का है न उनके वर्तमान उत्तराधिकारी वल्लभ रंजनाथ जी के उत्तराधिकारी हैं । ऐसी अवस्था में इस तथ्य को हम सोरो के पक्ष में प्रबल आभार के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते । इस प्रकार तुलसी दास के जन्म स्थान के रूप में राधापुर और सोरो इन दो स्थान की प्रस्तावना की गई है । परन्तु अभी तक बिना सामग्रियों के आभार पर हम विश्लेषण करते आए हैं, जिनमें कोई ऐसा तथ्य उपलब्ध नहीं हो सका है जिसके आभार पर हम लिखित प्रकार का निर्णय ले सकें । मोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' की रचना बिल भापा में की है यह अवश्य है विशेषकर राधापुर पक्ष की । बहुत सम्भव है यह तुलसी की मातृभाषा रही हो । यदि यह प्रमाणित हो सका तो राधापुर को मोस्वामी जी का जन्मस्थान मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

अन्तःसाक्ष के आधार पर मोस्वामी जी का जीवन वृत्त

इस प्रकार का विश्वास प्रचार था बुझा है कि तुलसी की माता का नाम तुलसी था। मोस्वामी जी ने इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं है। परन्तु उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र सूक्ष्म संकेत मिल जाते हैं जिनके आधार पर हम कुछ निर्णय लेने के लिए आग्रहपूर्ण होते हैं। 'भागवत' के भागवतार्णव में एक स्थल पर मोस्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है—

रामहि प्रिय पावन तुलसी की

तुलसी दास हित दिये तुलसी की।

मधुरंहीन ज्ञानज्ञान के एक दोहे में भी इसका उल्लेख मिलता है कि मोस्वामी जी की माता का नाम तुलसी था—

‘मुरतिव नरतिव नारतिव, सब चाहति अस होन।

योह लिये तुलसी छिरी, तुलसी सो सुख होम।

मोस्वामी जी के पिता का नाम ब्रजराज है परन्तु अधिकतर आलोचक इनके पिता का नाम आत्माराम ठूठे मानते हैं।

मोस्वामी जी का वास्तविक नाम क्या था इस विषय पर भी आलोचकों के मत में एक कसता नहीं मिलती है। कतिपय विचारकों की यह धारणा है कि तुलसीदास का वास्तविक नाम रामबोका था। अरुनी रचनाओं में मोस्वामी जी ने अपने लिए ‘तुलसीदास’ का प्रयोग किया है, परन्तु ‘कवितावली’, ‘विमल पत्रिका’, और ‘दोहावली’ में उन्होंने यत्र-तत्र अपने लिए ‘रामबोका’ नाम का भी प्रयोग किया है।

( क ) राम को मुलाम नाम रामबोका राख्यो राम।

काम यह नाम ई हो कबहुं कहत हो।

विमल पत्रिका, पद ७६।

( क ) साहेबु मुकानु, दिग्विज्ञान को पण्य दियो

रामबोका नामु हो मुलामु राम साहि को।

कवितावली, पद १००, उत्तर कोट।

इससे यह संकेत मिलता है कि 'तुलसीदास' के अतिरिक्त इनका एक अन्य नाम रामबोधा भी था ।

इसी प्रकार गोस्वामीजी की जाति से सम्बन्धित निष्ठा की जाती है । गोस्वामीजी ब्राह्मण थे परन्तु वे छरमू पारी ने अपना कामबन्धन इसका निषीरण अभी तक नहीं हो सका है । कतिपय आलोचकों उन्हें 'बुद्ध' मानते हैं, और कतिपय उन्हें बृहन्न मानते हैं । तुलसी ने लिखा है—

मेरे जाति पौति न चहौ, काहुँ की जाति पौति ।

मेरे कोल काम को न ही, काहुँ के काम को ।

तथा

'भूत कही अवभूत कही, एवभूत कही बुलहा कही कोऊ ।

इन पंक्तियों का आधार ग्रहण कर कतिपय आलोचकों ने यह निर्णय लिया है कि गोस्वामी तुलसीदास ब्राह्मणवंश के नहीं थे । परन्तु तुलसीदास का जीवन व्यक्तिगत संघर्षों और सामाजिक संघर्षों के अभाव के मध्य विकसित हुआ । गोस्वामी जी ने इस प्रकार की अभिव्यक्ति जीवन के ऐसे ही किसी संघर्ष पूर्व अवस्था में ही की होगी । इसके अतिरिक्त इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने जाति और वर्ण-भेद भावना से ऊपर उठकर सामाजिक उत्थान का भी उद्देश्य दिया है ।

गोस्वामीजी का आरम्भिक जीवन अति संघर्षपूर्ण रहा है । इसका उत्कृष्ट कविने अनेक स्थलों पर लिखा है—

भायेते कल्लाट विकलाट द्वार द्वार बीच

आगत ही बार फल बार ही बनक को ।

कवि को माता पिता का स्नेह और भरण भी नहीं मिल सका था । इन्हें भ्रूत में जन्म होने के कारण माता पिता पुत्रोत्पन्न को सम्भवतः नहीं मना सके थे—

बामो भ्रूत भवन बचाकनो बचायो भुन ।

भयो परित्याग पाप जन्मी बनक को ।

जन्म के अल्प काल पश्चात् ही गोस्वामी जी के माता पिता का स्वर्गवास हो गया—



समय १६५५ अंकित है। इस पर कवि का हस्ताक्षर भी है और यह कवि की हस्त लिखित प्रति कही जाती है। परन्तु इस कृति में कवि ने स्वयं इसकी रचना-तिथि का उल्लेख इस रूप में किया है :—

समय सत्य सति नयन गन बबधि बबिफनयन ।

होई सुख सुख बागु बस पीठि प्रतीति प्रबान ।

इसके अनुसार यह ग्रन्थ संवत् १६२१ में लिखा गया था।

पार्वती मंगल —कवि ने इस कृति की रचना तिथि का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु कवि के जीवन-काल की एक प्रति (संवत् १६३२ की) उपलब्ध हुई है। अतः यह रचना सं० १६३२ के पूर्व की है। डॉ० बाठा प्रसाद गुप्त ने 'बानकी मंगल' की कथा का विस्तारण 'रामाज्ञा प्रसन्न' और 'राम चरित मानस' की कथाओं के सम्पर्क में करने के पश्चात् इस प्रकार का निर्णय लिया है कि यह कृति 'रामाज्ञाप्रसन्न' और 'मानस' की रचना तिथियों के मध्य की रचना है। (देखिए, तुलसी दास पृ० २२६)। इस रचना के श्री दो पाठ-मेघ मिलते हैं। प्रथम, नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति और दूसरी, डॉ० मरानी शंकर वासिक की प्रति। परन्तु दोनों प्रतियों में समता नहीं है। परन्तु सभा की प्रति 'बानस' के अधिक निकट है। अतः डॉ० गुप्त इसे ही अधिक प्रामाणिक मानते हैं।

रामचरित मानस —'रामचरित मानस' में तोस्वामीजी ने इसकी रचना तिथि का उल्लेख इस प्रकार किया है—

संवत् घोरह छै इकतीस। करळै कथा हरिप्रद धरि सीधा ।

नौमी मोमवार मकुमावा । सबन पुरी यह कथि प्रकासा ।

वेहि दिन राम बनम धुति पावहि । तीरव सकल तहाँ बसि आवहि ।

अर्थात्, वैशाख शुक्ल नवमी मंगल, संवत् १६३१ में तोस्वामीजी ने 'रामचरित मानस' का प्रणयन आरम्भ किया। बेनीमाधव दास के अनुसार तोस्वामी तुमसीदास ने 'मानस' की साम्यांश संवत् १६३६ में की। मानस की सबसे प्राचीन प्रति बबोष्पा की है। इस में केवल 'बालकाण्ड' है। इसमें सं० १६६१ (प्रतिष्ठा तिथि) अंकित है। अन्य महत्वपूर्ण प्रतियों में सं० १७०६ १७२२ १७६२ की

प्रतिमों हैं। ये काशी में हैं। इनके अतिरिक्त 'मामसकी' अनेक हस्तलिखित प्रतिमों उपलब्ध हैं। परन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्देह है। अतः उनपर विचार करना अपेक्षित नहीं है। 'मानस' की विवेचना तुलसी दास के 'काम्य-पत्र' के अन्तर्गत की गई है।

पार्वती मंगल —प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय है शिव-पार्वती विवाह। इसकी कथा 'कुमारसंभव' पर आधारित कथनी है। इसकी रचना कवि ने सं० १६९३ वि० (सन् १२८१) काल्पन मंगल शुक्ल पंचमी पुष्कार की की थी।

गीतावली—इस कृति की रचना शिव के सम्बन्ध में अन्तःसाध्य से कोई सहायता नहीं मिलती है। 'यूग दोसई चरित' के अनुसार डॉ० स्वामिन्दर दास ने इस प्रकार का निर्वच किया है कि 'गीतावली' का कथा भाग और सीता-वट विषयक कविता सं० १६२८ और १६३१ के मध्य लिखा गया है। सेव अंश की रचना संवत् १६६६ में हुई। 'गीतावली' की प्रतिमों के दो पाठ मिलते हैं। एक पाठ 'पद्मावली रामायण' नाम से उपलब्ध होता है। दूसरा पाठ 'गीतावली' नाम से उपलब्ध है। 'पद्मावली रामायण' की एक ही प्रति उपलब्ध है। यह प्रति अति प्राचीन है। संवत् १६६६ की 'विनय पत्रिका' की एक प्रीति के घाम इसकी प्रति संकलन मिलती है। अतः इसका रचना-समय सं० १६६६ माना जा सकता है। 'पद्मावली रामायण' की यह प्रति खण्डित है। केवल 'सुन्दर काण्ड' और 'उत्तरकाण्ड' ही पूर्ण रूप में उपलब्ध हैं। परन्तु 'पद्मावली रामायण' और 'गीतावली' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि 'पद्मावली रामायण' 'गीतावली' से पूर्व की रचना है।

'गीतावली' में राम-कथा पदों में लिखित है। ये पद किसी ऋत से नहीं रचे गए हैं। यह सात काण्डों में विभक्त है, और इसमें पदों की संख्या १२८ है।

१ बाह्यकाण्ड (१०८ पद) २ अयोध्याकाण्ड (८२ पद) ३ भरणीकाण्ड (१० पद) ४ किष्किन्ध्याकाण्ड (२ पद) ५ सुन्दरकाण्ड (४१ पद) ६ संकाकाण्ड (२३ पद) ७ उत्तरकाण्ड (३८ पद)। बाह्यकाण्ड में राम के बाह्यचरित का वर्णन है। इसमें राम के स्व-सीमार्ग और सीत-सीमार्ग-वर्णन के प्रति कवि विशेष रूप से धारणित है।

'गीतावली' के अयोध्याकाण्ड में 'मानस' के अयोध्या कांड का-सा विस्तार नहीं

है। वस्तुतः इस में कथा और वस्तु-निर्माण की ओर कवि की दृष्टि नहीं है।

इस काण्ड के अनेक शीत 'पूरवापर' में उपलब्ध शीतों के समान भाग है। माता कौसल्या के विमोघपूर्ण बाळस्व वर्णन के शीत यद्योहा के विमोघपूर्ण बाळस्व पाद-पूर्ण पदों के समान ही हैं—

राखी एक बार छिरि जाती।

ए बार बान्हि निकोकि भास्ने बहुरी बड़ पावो।

बे फ्य प्याई लोकि कर वंछन बार-बार चुप कारे।

क्यों बीबहि मेरे राम काहले। तै अब निष्ट निवारो।

मरत सी बुरी छार कहत हैं अति प्रिय बान्हि तिहारो।

तबनि रिगहि बीन होत आधरे मनहु कमल हिम मारे।

सुनहु पमिक ओ राम निरहि बन कहियो मातु सीरहो।

तुम्हरी मोहि ओर सबहि तैं इनको बड़े बदेष्टो।

'पादप' के अन्त्य काण्ड में अत्यन्त बल अनुसूया-प्रसंग विराज-मग्न वर्णनका प्रसंग कर रूपक-वचन आदि प्रसंगों का समावेश किया गया है। परन्तु 'मोक्षायकी' के अन्त्य कांड में इन प्रसंगों की ओर कवि तनिक भी आकर्षित नहीं है। नीच-सूचक प्रसंग यहाँ भी निमोचित हैं। अन्त्य मरण और कनक रत्न के अनेक वर्णन इस कांड में उपलब्ध होते हैं।

निष्क्रिया कांड में केवल दो पद हैं। काव्य-सीत्पूर्व की दृष्टि से सुन्दरकांड का इस उग्न में विशेष महत्त्व है। विमोघन इस कांड में राम की शरण में आते हैं। सीता का विमोघ-वर्णन, राम की पुत्र-सन्ना, अयोध्या-वास्तव्य-निर्वाह तथा संका-सूत्र इस कांड के अन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं। संका कांड में अंध-राज्य सम्बन्ध, अन्त्य-कालिक आदि का वर्णन है। इसमें कनक-रत्न की ही प्रधानता है। अन्त्य पदिक के बाद ही राम की निजय का वर्णन है। अन्त में माता कौसल्या की आधुर ममिकाया-वर्णन से यह कांड समाप्त होता है—

बैठी लगन मनावति माता।

कब ऐँहि मेरे बाक मुझस नर कहुँ काक छुरि बाता।

रूप मात की सोपी देहो छीने नीच मदेहो।

कब दिव बहूत निकोकि मग्न गरि राम कथन कर कहो।

प्रतियों हैं। ये काशी में हैं। इनके अतिरिक्त मागसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। परन्तु इनकी प्रामाणिकता शङ्कित है। अतः उनपर विचार करना अपेक्षित नहीं है। मागस' की विवेचना तुलसी दास के काव्य-पदा' के अन्तर्गत की गई है।

पार्वती मंगल —अस्तुत प्रबन्ध का विषय है शिव-पार्वती विवाह। इसकी कथा 'कुमारसंभव' पर आधारित लगती है। इसकी रचना कवि ने सं० १९९९ वि० (सन् १३८६) कात्थन मंगल शुक्ल पंचमी गुडवार को की थी।

गीतावली—इस कृति की रचना त्रिपि के सम्बन्ध में जन्म-साध्य से कोई सहायता नहीं मिलती है। 'मुख मोछाई' खरित' के अनुसार डॉ० स्वामिनन्दर दास ने इस प्रकार का निर्णय किया है कि कवितावली' का कथा भाग और छीटा-बट विषयक कवित सं० १९२८ और १९३१ के मध्य लिखा गया है। दोष बंस की रचना संवत् १९९२ में हुई। 'गीतावली' की प्रतियों के दो पाठ मिलते हैं। एक पाठ 'पदावली रामायण' नाम से उपलब्ध होता है। दूसरा पाठ 'गीतावली' नाम से उपलब्ध है। 'पदावली रामायण' की एक ही प्रति उपलब्ध है। यह प्रति अति प्राचीन है। संवत् १९९९ की दिनांक पत्रिका' की एक प्रति के साथ इसकी प्रति संलग्न मिलती है। अतः इसका रचना-समय सं० १९९९ माना जा सकता है। 'पदावली रामायण' की यह प्रति खरित है। केवल 'मुन्दर काण्ड' और उत्तरकाण्ड ही पूर्ण रूप में उपलब्ध हैं। परन्तु 'पदावली रामायण' और 'गीतावली' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि पदावली रामायण' 'गीतावली' से पूर्व की रचना है।

'गीतावली' में राम-कथा पदों में लिखित है। ये पर किसी क्रम से नहीं रहे मर हैं। यह सात काण्डों में विभक्त है और इसमें पदों की संख्या ३२८ है।

१ बाककाण्ड (१०८ पद) २ अयोध्याकाण्ड (८२ पद) ३ भरथकाण्ड (१७ पद)  
४ क्रिष्णकाण्ड (२५ पद) ५ मुन्दरकाण्ड (५१ पद) ६ लंकाकाण्ड (२३ पद), ७ उत्तरकाण्ड (३८ पद)। बाककाण्ड में राम के बाकचरित का वर्णन है। इसमें राम के स्व-सौन्दर्य और शीत-सौन्दर्य-वर्णन के प्रति कवि विशेष रूप से आकर्षित है। गीतावली के अयोध्याकाण्ड में 'मागस' के अयोध्या कांड का-सा विस्तार नहीं

है। वस्तुतः इस में कमा और गल्लु नियोजन की ओर कवि की दृष्टि नहीं है।

इस काण्ड के अनेक गीत 'सूरसागर' में उपलब्ध गीतों के समान भाव के हैं। माता कीर्तस्वा के नियोजपूर्ण वात्सल्य वर्णन के गीत यक्षोदा के नियोजपूर्ण वात्सल्य भाव-पूर्ण कर्तों के समान ही हैं—

राशो एक बार छिदि जायो ।

ए घर बाधि निशोकि जापने बहुतो बड़ जायो ।

जे घर प्याई पोखि कर रंजन बार-बार चुब कारे ।

क्यों भीबहि मेरे राम जाइस । ते अब निज निहारो ।

भरत सो सुनी सार कह्य है, कति प्रिय बाधि छिहारे ।

तबनि छिन्हि भीम होत भौंके मनहु कमल हिम मारे ।

सुगहु पयिक को राम मिलहि बन कहियो मातु ससिसो ।

पुछसी भौहि और समझि तें इनको बड़े जेसो ।

'भागवत' के अष्टम काण्ड में अथर्व-संज्ञ अनुमुखा-मर्षण विराम-वच सूर्यसत्ता प्रसंग, बार रूपम-वच भावि प्रसंगों का समावेश किया गया है। परन्तु 'बीसावसी' के अष्टम कांड में इन प्रसंगों की ओर कवि उनिज भी आकर्षित नहीं है। नीच-सर्वतो प्रसंग यहाँ भी नियोजित हैं। अथर्व वच और कल्प रस के अनेक उद्धर्न इस कांड में उपलब्ध होते हैं।

निर्मिच्छा कांड में केवल दो घर हैं। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दरकाव्य का इस छन्द में विशेष महत्त्व है। विभीषण इस कांड में राम की शरण में आते हैं। सीता का विमोच-वर्णन राम की मुठ-सत्ता, अशोक-बाटिका-विमर्ष तथा लंका-बहुल इस कांड के अन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। लंका कांड में अथर्व-राजन सम्वाद, कल्पम-शक्ति बाधिका वर्णन है। इसमें कल्प-रस की ही प्रधानता है। कल्पम शक्ति के बाध ही राम की विजय का वर्णन है। अन्त में माता कीर्तस्वा की आतुर अमिकाया-वर्णन से यह कांड समाप्त होता है—

बैठी समुल म्मावति माता ।

कब देखे मेरे बाक कुछ घर कहहु काक कुरि माता ।

इस मात की सोनी बेहो सीने बोध मझेहो ।

अब छिय सज्जत निशोकि गयन गरि राम कल्प कर जेहो ।

उत्तर काव्य की कथा 'वाल्मीकि रामायण' पर आधारित है। राम का राक्षसविधेय सीता-वनवास तथा छत्र-भुज-व्रज इसके प्रमुख अंग हैं। राम की सीमा और उनका सौन्दर्य-वर्णन भी यहाँ उपलब्ध हैं। राम का हिंदोला वर्णन इसी प्रसंग के अन्तर्गत आता है। यह कृति जयभाषा में है और यत्र-यत्र यह कृष्ण काव्य से प्रभावित भी लगती है।

**कृष्ण गीतावली** — कृष्ण गीतावली के रचना-काल का परिचय ग्रन्थ में स्पष्ट नहीं हो पाता है। डॉ० श्याम सुन्दर दास ने 'मूल गोटाई चरित' के आधार पर यह कहा है कि 'कृष्ण गीतावली' की रचना 'गीतावली' के साव संवत् १६१६ से १६२८ के मध्य में हुई है। रामनरेश बिपाठी इस ग्रन्थ की रचना-तिथि पर विचार करते हुए कहते हैं 'मेरा अनुमान है कि इसकी रचना संवत् १६२८ और १६३० के बीच में हुई होगी। उन दिनों वे 'ब्राम' काशी में रहते थे। और बहुत कुछ के मोसाईयों के सम्पर्क में रहते थे। सम्भवतः उनको प्रसन्न करने के लिए यह 'गीतावली' उन्हीं के अनुरोध से लिखी गई। (तुलसी दास और उनकी कविता पृ० ४०५)। परन्तु इस प्रकार के अनुमान का आधार क्या है इसका संकेत नहीं किया गया है। डॉ० माताप्रसाद मुखर्जी का यह विश्वास है कि इस कृति के विभिन्न निर्धारण इसके विषय निर्बाह और सीली के आधार पर ही सम्भव है। इन दृष्टियों से विचार करते हुए उन्होंने इसका रचना काल संवत् १६५५ के लगभग माना है।

इस रचना में केवल ६१ पर हैं जो कृष्ण चरित से सम्बन्ध रखते हैं। इस कृति में कृष्ण की बाक-बीला गोपी-उपासक, कृष्ण-वन्दन इन्द्र-कोप मधुरा-वसन, गोपी विरह, भ्रमर-गीत आदि विषयों से सम्बन्धित पर हैं। यह रचना 'सूरदासर' से प्रभावित लगती है।

**विनय पत्रिका** — 'गीतावली' के समान 'विनय पत्रिका' के भी दो पाठ उसकी प्रतियों में प्राप्त होते हैं, प्रथम पाठ 'रामगीतावली' के नाम से और द्वितीय 'विनय पत्रिका' के नाम से। 'रामगीतावली' की केवल एक ही प्रति उपलब्ध है। यह कवि के जीवन-काल संवत् १६६६ वि० की है। यह प्रति खण्डित है। इसके अन्तिम पृष्ठ पर पर संख्या १७५ है। रामनरेश बिपाठी इसका रचना काल संवत् १६४५ मानते हैं। परन्तु इस कृति की रचना तिथि का स्पष्ट परिचय

नहीं मिलता है। 'विनय पत्रिका' में पदों की संख्या २७१ है। परन्तु इसकी निम्न-लिखित प्रतियों में पदों की संख्या निम्न निम्न है। 'योसार्ई बरित' में 'विनय पत्रिका' का रचना-काष्ठ सं० १९३८ माना गया है। इस प्रकार काष्ठक्रम के अनुसार यह 'राम चरित मानस' के पश्चात् की कृति है। 'योसार्ई बरित' में इस प्रकार की भावना व्यक्त मिलती है कि कलियुग से पीड़ित होकर योग्यामीजी ने पीड़ा-मुक्ति की भावना से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था।

कलियुग विचारकों की यह भावना है कि 'विनय पत्रिका' एक संग्रह ग्रन्थ है। अपनी इस चारणा के लिए वे निम्नलिखित कारण देते हैं— (क) इसमें रचना-काष्ठ का मिश्रण नहीं है।

(ख) इसमें पदों के नियोजन में कोई कष्ट नहीं है। और इस प्रकार इन पदों में विचारों की श्रुतता नहीं है।

यह ग्रन्थ योति-काव्य की शैली में रचित है। इसके प्रणयन में संघीत का आभार ग्रहण किया गया है और इसमें विविध राग-रागिणियों का प्रयोग किया गया है, बड़ाहरण स्वल्प, केवारा गौड़ी, बिठावक रागकबी वदंत सन्निध आदि रागों के पर दृष्टव्य हैं।

'विनय पत्रिका' में कवि अपने आराध्य से प्रार्थना और आत्म निवेदन करता है। कदाचित् इसमें किसी कटना का वर्णन नहीं है और न इसमें प्रवन्धात्मकता है। इसका प्रमुख रस शान्त है। वास्तव और विनय भाव भक्ति के स्वस्व के अनुपम उदाहरण की 'विनय पत्रिका' के पदों में उपलब्ध हो जाते हैं। इसके पदों का वर्गीकरण डॉ० रामकुमार जमी ने प्रस्तुत रूप में किया है—

१ प्रार्थना या स्तुति ( नमो से राम तक )।

(अ) गुण वर्णन (१) कमालों द्वारा (२) कर्णों द्वारा।

(आ) रूप वर्णन—अलंकारों द्वारा।

२ स्मार्तों का वर्णन

[ अ ] चित्रकट्ट [ आ ] काशी।

३ मन के प्रति उपदेश ४ संसार की बखारता, ५ ज्ञान-वेदाध्य वर्णन, ६ भाव्य चरित चरित ( द्विती साहित्य का आत्मकानात्मक इतिहास पृ० ४१२ )।

वरने रामायण — 'वरने रामायण' के भी दो पाठ उपलब्ध होते हैं। एक

पाठ यह है जो मुद्रित प्रतियों में उपलब्ध है। दूसरा पाठ सं० १७१७ की एक हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध होता है। मुद्रित प्रति के प्रथम ब्याख्य बरने और अन्तिम व्याख्य बरने द्वितीय पाठ में उपलब्ध नहीं होते। इस प्रकार इस कृति के पाठ-निर्धारण की आवश्यकता है।

बेनी माधव दास ने इसका रचना-काळ संवत् १६९६ दिया है। राम नरेश त्रिपाठी इसे संवत् १६१० से १६४० की रचना मानते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'बरने रामायण' की रचना खीम के बरने के आधार पर है—

कवि खीम बरने रचे पठ्ये मुनिवर पास।

सहित छै सुन्दर ज्ञान में रचना किए प्रकाश।

खीम का जन्म संवत् १६१३ में हुआ था। अतः रामनरेश त्रिपाठी की प्रस्तावना ग्रहण करने योग्य नहीं है। डॉ० माताप्रसाद मुखर्जी इसका रचना-काळ संवत् १६९६ के समान मानते हैं। और यह प्रस्तावना उचित भी लगती है। इस ज्ञान में निम्नलिखित क्रम से सात काण्ड हैं—

बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, बरण्य काण्ड, किष्किन्ध्या काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड और उत्तर काण्ड। कविका वर्ण्य विषय है रामकथा। परन्तु यह कथा अति संक्षेपिक है। इसका ज्ञान बरने है। जिसमें १२, ७ के विराम से १६ माध्याये हैं। बरने एक संस्कृत ज्ञान है। कवि की मृत्यु के पश्चात् इसे संक्षेपित रूप से बरने का प्रकाश किया गया होगा इस प्रकार का संकेत मिलता है। उदाहरण :—

भयत कहत सब सब सुमिरहु राम।

तुलसी अब नहीं अपत समुक्ति पणाम।

जनम जनम अहं अहं तनु तुलसीहि बेहु।

तहैं तहैं राम निवाह्य नाम सनेहु।

बोहावली —गोस्वामीजी के अन्धकांस ग्रन्थों के समान बोहावली के रचना काल का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है। डॉ० माता प्रसाद मुखर्जी ने बोहावली के रचित्व बोही का आधार ग्रहण करते हुए इनके रचना-काळ की ओर संकेत किया है—



रतनम घटह पुमि हग घटह घटह सकस बस देह ।  
 हटे घटे बटि है कड़ा बी न बटे हरि नेह ।  
 भीष भीष लै बाह जो, राम रबावसु पाह ।  
 तो तुलसी तेरो मनो ननु अनमो नबाह ।

बोहा ५६३, १५५ ।

इस प्रकार ये कवि की बारा बरबर अवस्था की रचनाएँ हैं। अन्त में बोहे सं० १६५६ से १६७६ के मध्य ही रहे प्रतीत होते हैं। डॉ० स्वाम सुन्दर दास ने 'मूल मोसाई' चरित के आधार पर यह निर्णय किया था कि इस ग्रन्थ का संग्रह कवि ने संवत् १६४० में किया (मोस्वामी तुलसी दास) पृ० १२ परन्तु यह सम्भव नहीं लगता है। बोहावली की अनेक प्रतियाँ मिलती हैं जिनकी संख्या में समता नहीं है। एक प्रति में १७३ बोहे हैं तो एक अन्य प्रति में ४७८ बोहे हैं। वस्तुतः यह एक संकलन ग्रंथ है। इसमें 'रामाज्ञा प्रस' और 'मानस' के अनेक बोहे भी संकीर्ण मिलते हैं। इसमें नठि, नीति वीरान्न तथा आत्मचरित विषयक बोहे मिलते हैं।

कवितावली — 'मोसाई चरित' में 'कवितावली' का उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु वैसी याचक दास ने इस ग्रन्थ में यह उल्लेख किया है कि मोस्वामी जी ने कुछ कवियों की रचना भी की है—

सीता बट तर तीन दिन बसि सुकविता बनाव ।

बदि छोड़ावम विन्य नृप जूँचे कासी जाव ।

इससे यह संकेत मिलता है कि सीता बट के भीचे मोस्वामी जी ने इन कवियों को रचा। इस प्रकार ये कविता १६२८ १६३१ वि० के मध्य लिखे गए। वैसी याचक दास के अनुसार ये कविता गीतावली के बाद और 'मानस' के पूर्व लिखे गए हैं। कवितावली में 'भीष की कबीचरी' की चर्चा है। इस 'कबीचरी' का समय १६६२ १६७१ माना गया है। इस प्रकार यह एक संघट्ट ग्रंथ प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में 'छबीसी' तथा महाभारती के उल्लेख भी मिलते हैं। इनका समय क्रमशः १६५५ १६७६ और १६७३-१६८० के मध्य पड़ता है। इस प्रकार 'कवितावली' मोस्वामी जी की अन्तिम अवस्था की रचना प्रतीत होती है।

बाहुक' कवितावली की अधिकांश प्रतियों में एक संक्षिप्त उपन्यास या परिचिष्टि की मौज्जिद मिलता है। स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में इसको प्रति की अनुपस्थिति में एक समस्या उत्पन्न हो गई है। दूसरी बात यह है कि कवितावली के उत्तर काण्ड के अनेक अंश 'बाहुक' में भी उपलब्ध हो जाते हैं। इस कारण भी इसे स्वतंत्र ग्रन्थ मानने में संकोच होता है।

कवितावली में ३२१ छंद हैं जो सात काण्डों में विभक्त हैं, बालकाण्ड (२२ छन्द) अयोध्या काण्ड (२८ छन्द) अरण्य काण्ड (१ छन्द) किष्किन्ध्या काण्ड (१ छन्द), मुन्दर काण्ड (३२ छन्द) लंका काण्ड (५८ छन्द) उत्तर काण्ड (१८३ छन्द)। इसके बाद काण्ड के प्रथम सात सर्गों में राम के बाल-रूप का वर्णन है। इसके पश्चात् सीता स्वर्गवर अहिम्ना उद्धार, अनुप-मौन आदि घटनाएँ वर्णित हैं।

अयोध्या काण्ड में केचट और राम बभ्रू की भावनाओं का विवेक है। अरण्यकाण्ड में एक ही छन्द है। इसमें रामचन्द्र के हेम मृग के पीछे मायने का वर्णन है। मुन्दर काण्ड में भवानरु और रीरुर-नों से परिपूर्ण जीवन्त वनी उपलब्ध होते हैं। लंका-वह्न का वर्णन इसी काण्ड में में किया गया है। लंका काण्ड में मन्तेन्द्री रावण को उपदेश देती है। जंगल भी रावण को उपदेश देता है और इसके पश्चात् युद्ध का वर्णन है। और, रीरु और भवानरु रत्नों का यहाँ मुन्दर परिवारक मिलता है। उत्तर काण्ड में कवि ज्ञान और शक्ति की महिमा का वर्णन करता है। गोस्वामी जी की बीहरी के अनेक पदों का स्पष्टीकरण उत्तरकाण्ड के अनेक पदों से हो जाता है। कवि अपनी बाल्यावस्था और अपनी बख्ति का वर्णन भी करते हैं छन्द १९९ और १९७ में वे अपनी बाहु पोड़ा का भी उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें शिव, पार्वती काशी प्रयाग आदि से सम्बन्धित पद भी मिल जाते हैं। १७० वे छन्द में हनुमन्ती का वर्णन है १७३ १७६ छन्द में महामारी का वर्णन मिलता है और १७७ छंद में मीन की टानीचरी का वर्णन मिलता है। इसमें सर्वथा कवित्त छन्द और शूद्रना छन्दों के प्रयोग किए गए हैं। उदाहरण—

बर बंठ की पंक्ति कुंद कसी जबरामर-पस्त्र जोऊन की।

चपसा चमके बग बीच, अगे छवि मोतिन माल जमोऊन की।

दुपारि छटें लटकें मुख ऊपर मुँहक लोक कपोलन की ।

निषणावरि प्रात करे 'तुम्ही', बलि जाळें लसा ह्म बोला की ।

कवितानली बाळक्राव २ ।

बैराग्य संदीपनी — इस ग्रन्थ की रचना विभिन्न के विषय में लिखित प्रमाण मिलते हैं । 'चरित' के अनुसार इसकी रचना संवत् १६६२ में हुई । श्याम शर दास तथा पीताम्बरदास बख्खाळ इस संवत् १६४० की रचना मानते हैं ।

'बैराग्य संदीपनी' दोस्वामी की की आरम्भिक रचना है । सम्भवतः काक-ग्राम से यह 'रामचरित मानस' के पूर्व की कृति है । विषय निरौह और धैर्य, ह्म बोमो ही दृष्टियों से यह अप्रौढ़ कृति है । अतः डॉ० दूत के अनुसार ह्म इसे संवत् १६१४ की रचना मान सकते हैं ।

इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य बैराग्य भावना है, इसका उत्कृष्ट कवि ने इस प्रकार किया है—

तुम्ही बैद पुरान मन, पूजन दास्य विचार ।

मह विराग संदीपनी बलिख लान की वार ।

इस रचना में दोहा छोरठा और चौपाई छन्दों के प्रयोग हुए हैं ।

सदाहरम — कंचन कौचहि सम गने, कामिनि काठ पखाम ।

तुम्ही ऐसे छन्द जन पृथ्वी गह्य समान ।

कंचन को मृत्तिका करि मानत । कामिनि काष्ठ सिखा पद्धिमानत ।

तुम्ही भूक्ति गयो रस एहा । ते जन प्रकट राम की देहा ।

बैराग्य सं० २७२८ ।

परवर्ती राम साहित्य

बैराग्य दास—कैसव दास रीति काव्यपारा ने कवि और भाचार्य हैं । परन्तु अपनी विशिष्ट कृति 'रामचन्द्रिका' के कारण इनकी परिचयना रामकाव्य धारा के कवियों के अन्तर्गत की जाती है । 'रामचन्द्रिका' का प्रतिपाद्य 'राम चरित' है । परन्तु इनके इस काव्य की मुख्य अनुभावना भक्तिमूलक नहीं है ।

बठ गोस्वामी तुलसी दास की भावना के छन्दों में केसव दास के इस काव्य का मूल्यांकन बंशित नहीं है।

केसव दास ने रामचन्द्रिका में अपना परिचय इस रूप में दिया है—

सनाइ जाति है जगसिंह सुख स्वभाव ।  
हृन्मदत प्रसिद्ध है यहि मिथ मंहित राम ।  
यनेस सो सुख पाइयो बुधि काशिनाथ अगाध ।  
असेप सास्त्र बिचारि के बिन पाइयो मर साध ।

सुगीत सख ।

रूपयो तेहि कुछ मन्त्र मति छठ कवि केसव दास  
रामचन्द्र की चन्द्रिका जापा करी प्रकाम ।

रामचन्द्रिका, पृ० ७ ।

इसके अनुसार केसव दास सनाइ ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम श्री हृन्मदत और पिता का नाम काशी नाथ था। केसव दास का जन्म संवत् १६१२ में हुआ था। ये जोरछा नरेश के दरबारी कवि थे। केसवदास गोस्वामी तुलसी दास के समकालीन थे। बेबीमाधव दास ने 'भूष गोसाई' चरित' में केसव दास के विषय में इस प्रकार लिखा है—

कवि केसव दास बड़े रसिदा । बनस्याम गुरुकुल गन के बसिदा ।  
कवि जानु के बरसन हुतु मय । रहि बाहिर सुखल भेजि दिए ।  
सुनि के बु बुसाइ कहै इतनी । कवि प्राकृत केसव भावन हो ।  
किरिरो मर केसव सो सुनि के । निज तुच्छता बापुइ पै पुन के ।  
बब सेवक डेरैय ये कहि के । हौं भेदि हौं कामिह विमय यहि के ।

×            +            +            ×            ×

रवि राम सुचन्द्रिका रातिहि में । बुरे केसवजू आशिषाटिहि में ।  
सठसंग बसी रस रंग मची । बोर प्राकृत दिव्य विमूर्ति पची ।  
मिष्टि केसव की संकीच गयो । उर भीतर प्रीति को रीति रबो ।

भूष गोसाइ चरित ।

इस अंश से यह स्पष्ट मिलता है कि केसव दास ने प्रतिक्रिया-भावना में आकर 'राम चन्द्रिका' की रचना की। गोस्वामी तुलसी दास ने उन्हें प्राकृत

कवि कहा। गोस्वामी भी के इस कथन से प्रेरित होकर ही उन्होंने 'रामचन्द्रिका' की रचना भाषा में की। परन्तु इस ग्रन्थ के अनुसार वास्मीकि से अनुप्रेरित होकर केवल दास इस ग्रन्थ के प्रणयन की ओर आकर्षित हुये थे।

वास्मीकि मुनि स्वप्न में दीन्हों वरसन वाह।

केसव तिम सों भो कह्यो क्यों पार्ले चुल्ल साह ॥

वास्मीकि - मयस्वरुपिणी स्वप्न—मखो बुरो न तु मुने। कृपा कया कही मुने।

न रामदेव वाह है। न बैब सोय वाह है।

दीहा—मुनिपति वह उपदेश है जब ही भयो भरट्ट।

केसव दास उही करसी रामचन्द्र जु दष्ट।

वैभीमाचल दास ने गोस्वामी तुलसीदास और केसव दास के सम्मिलन का उत्प्रेषण जिस रूप में किया है वह किञ्चा प्रामाणिक है, इस पर हम स्पष्ट निर्णय नहीं ले सकते।

'मूल पोसाई करि' के अनुसार केसवदास ने 'रामचन्द्रिका' की रचना संवत् १६४३ में की। परन्तु केसवदास के अनुसार इस ग्रन्थ का प्रणयन कार्तिक शुक्ल सं० १६१८ में हुआ। केसव की 'रामचन्द्रिका' वास्मीकीय रामायण पर आधारित है। इसके अतिरिक्त 'प्रसन्नराम' और 'हनुमन्नाटक' के भी प्रभाव इस ग्रन्थ पर मिलते हैं। यह ग्रन्थ ३३ प्रकाशों में विभक्त है। वास्मीकि के राम महात्मन हैं, गोस्वामी तुलसी दास के राम पर बड़ा हैं। परन्तु केसव के इस काव्य में राम के व्यक्तित्व के इन दो रूपों में से किसी एक का भी प्रतिस्थापन नहीं मिलता है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में राम-वाम का वर्णन नहीं किया गया है। शररम के कुस-परिचय के पश्चात् दिव्यामित्र के बाधमन का वर्णन है। ताड़का और मुवाह की कथा का सांकेतिक उत्प्रेषण है। पुनः सीता स्वयंवर का विस्तृत वर्णन है। इस प्रकार ग्रन्थ में घटनाओं के वर्णन में संतुलन नहीं है। 'रामचन्द्रिका' में संवाद शैली का बलि सफल प्रयोग मिलता है। रामचन्द्रिका में केसव अपने आचार्यत्व संस्थापन के प्रति ही अधिक आग्रहीक हैं। सुन्दरी और अलंकारों के विविध रूप इस ग्रन्थ में उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण—

मोहें मुर भाव भाव प्रमुदित पयोधर

भूपल बराय ज्योति तड़ित रसाई है।

दूरि करी मुख मुख मुखमा लखी की मेन  
 ममल कमल बस बसति निकारी है ॥  
 केवल रास प्रवल करेनुका बमन हार ।  
 मुकुट सुहंसक सबर मुख दाई है ।  
 बम्बर बलित मति मोहि नील कंठ जू की ।  
 काकिका सी बरपा हरनि हिय आई है ।

इस बंस में कवि ने काकिका के अग्रस्तुत विमान के माध्वम से वर्ण का र्णन किया है ।

केवल वस्तुतः रीति बारा के कवि हैं । अतः इनके काव्य पर रीति काव्य के लक्षण विवेचना की गई है ।

अम्बदास—ये नामादास के बंधु थे । इनकी प्रमुख रचना 'सुंदरिणी नामावली' है । यह 'हितोपदेश उपाख्यान बाबरी' के नाम से भी प्रसिद्ध है । ये स्वामी तुलसी दास के समकालीन थे ।

इनका आविर्भाव काल संवत् १६७५ माना जाता है ।

नामा दास—नामादास अम्बदास के शिष्य थे । ये रामानन्द सम्प्रदाय के रक्षक थे । इन्होंने 'अष्टनाम' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । परन्तु इनकी प्रसिद्धि 'मल्ल मास' के कारण ही है । वस्तुतः 'मल्ल मास' का रचना-काल स० १६८० माना गया है । मध्य युगीन वैष्णव भक्ति के स्वल्प अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ एक अनिवार्य साधन है । नामादास ने इस ग्रन्थ में अपने पूर्ववर्ती और समकालीन दो सौ सन्तों का परिचय तीन सौ सोलह छन्दों में दिया है ।

सेनापति—सेनापति वस्तुतः रीति-बारा के कवि हैं । इनका जन्म संवत् १६४६ में हुआ था । इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'कवित रत्नाकर' जिसकी रचना उन्होंने संवत् १७०६ में की । कवित रत्नाकर में पाँच तरंग हैं जो इस प्रकार हैं—

प्रथम—स्वयं वर्णन ।

द्वितीय—शृङ्गार वर्णन ।

तृतीय—ज्ज्ञान वर्णन ।

चतुर्थ—रामायण वर्णन ।

पञ्चम—राम रसायन वर्णन ।

चतुर्थ और पञ्चम छंदों में राम-कथा और रामभक्ति ब्रह्माजी मुक्तक ग्रन्थ संकलित है ।

राम-कथा का संकलन उन्होंने ब्राह्मीकि रामायण से किया है । भक्ति सिद्धान्त के अनुसार छेलापनि पोस्वामी तुलसीदास के निष्कट पड़ते हैं ।

पोस्वामी तुलसीदास के पश्चात् राम-काव्य-परम्परा का स्पष्ट स्वल्प विकास देखने को नहीं मिलता है । भग-सत्र कतिपय रचनायें उपलब्ध हो जाती हैं परन्तु इनकी मूल्य मानना पोस्वामी तुलसीदास के समान भक्ति-मूढक नहीं करती है । अन्य रचनाकारों में प्याराराम पृथ्वीराज का उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में मिलता है । इनकी विशिष्ट कृति, 'दशरावजय' की खर्ची की जाती है । यह राम-भक्ति से सम्बन्धित रचना है । इसमें राम-स्तुति-सम्बन्धित १० दोहे हैं । इस ग्रन्थ की रचना-दिशि ज्ञात नहीं है । परन्तु इस प्रकार के संकेत मिलते हैं कि इस ग्रन्थ का प्रचयन संवत् १६२७ के लगभग हुआ था ।

ज्ञानचन्द बीहान की कृति 'रामायण महाभाष्य' इसी परम्परा के अन्तर्गत स्वीकार की गई है । इसकी रचना सं० १६६७ में हुई । इसमें राम-कथा संवाद पद्यों में प्रस्तुत की गई है । भावबलास चरण कृत 'गुन रामरातो' में रामचरित्र उल्लेख होता है । इस ग्रन्थ की रचना संवत् १६७३ में हुई थी । सं० १६८१ में उन्होंने 'ब्रह्मात्म रामायण' की रचना की । यह 'संस्कृत ब्रह्मात्म रामायण' पर अवलम्बित है ।

हृदय राम पंचाबी ने संवत् १६८० में 'हनुमन्नाटक' की रचना की । यह संस्कृत 'हनुमन्नाटक' पर आधारित है । यह कवित्त-समेय में लिखी गई कृति है । गद्यलिखित चरण ने 'अवतार चरित्र' नामक ग्रन्थ की रचना लगभग १६०० छन्दों में की । इस ग्रन्थ में राम के विभिन्न अवतारों का वर्णन है । इस ग्रन्थ की रचना दिशि के विषय में हम कुछ ज्ञात नहीं है । परन्तु कवि की मृत्यु सं० १७३१ ई० में हुई । भग- इसकी रचना इसी संवत् के कुछ पूर्व ही हुई होगी ।

अन्य कृतिकारों में बालकृष्ण नायक बाल गली की खर्ची की जाती है । इनकी कृति है 'ध्यान मञ्जरी' जिसकी रचना कवि ने संवत् १७२६ में की थी । इस में नवदम्पति के रूप में राम-सीता का सीमर्य वर्णित है । इनकी दूसरी रचना है नेहप्रकाशिका, जिसकी रचना कवि ने सं० १७४९ में की थी । इस

ग्रन्थ में सीता का वर्णन कवि ने राम की आध्यात्मिकी शक्ति के रूप में किया है। अष्टाध्याय के सन्दर्भ में कवि ने गण-व्यपत्ति के विधास-वर्णन के अतिरिक्त सीता के लक्ष्मिण का वर्णन भी किया है।

‘रामप्रियाधरण’ ने संवत् १७६० में ‘सीतायन’ नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें सीता की बाह्य-क्रीड़ाएँ विविध रूपों में वर्णित हैं। इस विधाका विकसित रूप प्रेम उन्नी कृत ‘सीता राम लक्ष्मिण’ नामक ग्रन्थ में उपलब्ध हो जाता है। इस ग्रन्थ में कवि ने सीता के ‘मन्द सिद्ध वर्णन’ के अतिरिक्त सीता की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन भी किया है।

महाराज विश्वनाथ सिंहः—इनका समय १७६० ई० माना जाता है। ‘आनन्द रघुनन्दन नाटक’ ‘संगीत रघुनन्दन’ तथा ‘आनन्द रामायण’ इस बारा की इनकी विशिष्ट कृतियाँ हैं। ‘आनन्द रघुनन्दन’ हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता है।

इस प्रकार काव्यक्रम से राम काव्य की मूल भावना में परिवर्तन मिलने लगता है। भक्ति-भावना के स्थान पर शृङ्गार-भावना के समावेश के कारण राम साहित्य के मूल स्वर में परिवर्तन होता है।

### दर्शन और भक्ति

गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति-बारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके काव्य में दर्शन और भक्ति का समन्वित स्वरूप मुखरित हुआ है। ‘रामचरित मानस’ के आरम्भिक बल्लभ में गोस्वामी जी ने अपनी वार्धनिक दृष्टि की ओर संकेत किया है—

नागापुराणनियमागमसम्मतं यत्

रामायणे निबधितं कविहृदयतोऽपि ।

स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ याचा

आपानिबन्ध भक्ति मञ्जुक मातमोक्षि । मानस ७ ।

तात्पर्य यह है कि गोस्वामी जी ने ‘पुराण नियम’ ‘आयम’ आदि साधनों से भी अपने दर्शन की मूर्धिका निर्मित की है। गोस्वामी जी के वार्धनिक चिंतन में विविध चिन्त-विधाओं का समन्वित रूप मिश्रता है। अतः भक्ति और दर्शन के



राममें में घोस्वामी जी तन्मयावारी से । इन्होंने बह्मिक साहित्याओं से प्रधान ग्रहण किया है । इनके काव्य में निम्नोक्त का प्रयोग वैदिक साहित्यके अर्थों में किया गया है जिसे वर्तमान के अनुसार—वेद और उपनिषद्, इन दो भाषों में विभक्त किया गया है । वैदिक साहित्य में बह्मिक के जिस स्वस्व के वर्णन होते हैं उसमें तीन तन्म के प्रति आग्रह व्यक्त मिलता है—स्तुति प्रार्थना और उपासना । 'गारुड' बह्मिक ग्रन्थ में जिन आग्रह आशक्तियों का वर्णन मिलता है उनमें पुनः महात्माशक्ति, पूजाशक्ति, कर्माशक्ति, वात्स्याशक्ति, तन्मयाशक्ति तथा लक्ष्म्याशक्ति के अनेक वैदिक मंत्रों में भी मिल जाते हैं । घोस्वामीजी ने इन आशक्तियों को ग्रहण किया है । इनकी अनेक पंक्तियों में वैदिक मंत्रों की छाया मिलती है । परन्तु घोस्वामी जी का प्रतिपाद है रामशक्ति, और राम-अवतार-कीका-गान उनका मुख्य हेतु है ।

घोस्वामीजी के प्रतिपाद हैं राम जो पर ब्रह्म है । इनका ब्रह्म निरूपण उपनिषदों से प्रभावित है । उपनिषद् का प्रतिपाद ब्रह्म है । वही ब्रह्म जो कश्चित् तन्म स्वस्व कहा गया है । वह निर्गुण और अप्रकृत है वह अनिर्वचनीय है वह 'नेति नेति' से उसका प्रतिपादन किया गया है । औपनिषदिक वर्तमान के मंत्रों को घोस्वामी जी ने ग्रहण किया है । उपनिषदों के कतिपय मंत्र अपने मूल रूप में घोस्वामीजी की अनेक पंक्तियों में उपलब्ध भी हो जाते हैं उदा०—

अपानि वाचो जगती प्रहीता परस्म्य चक्षुः स शृणोत्य कर्ष ।

तुलसी—जिन् पर चक्षुः, तुने जिन् कर्मा ।

तम जिन् परस तमम जिन् देवाः ।

मया गच्छ स्वस्वमाणाः समुद्रे अस्तं यन्मल्लिखितं नाम कल्पे विद्वान् । तथा विद्वान्मात्रा  
कपाद्वि मुक्त परात्परं पुनःपुनरिति विष्णुम् । सु० ल० १।८

घोस्वामीजी तुलसीदास—

सखिया बल बलमिति यहूँ पाई । होइ अचल बिमि निब हरि पाई ।

देखिए तुलसी वर्तन मीमांसा, १४०

तुलसीदास ने निर्गुण राम की लक्ष्मणीका का वर्णन किया है । राम ब्रह्म हैं परम पुण्य हैं । प्रकृति उनकी शक्ति है, सीता प्रकृति स्वस्व है । घोस्वामी जी ने 'भानु' में राम की ब्रह्मणा के साथ सीता का स्वयं भी वर्णन किया है—

उद्यमस्थितिसंहारकारिणी नरोत्तहारिणीम् ।

सर्वे श्रेयस्करीं सीता न तौ अहं राम बहुभाम ।

राम परमार्थ रूप हैं अलख और अनादि हैं वे बचन अगोचर हैं अविगत और अनिर्बचनीय हैं वे आनादीत और कल्पा हैं परे हैं । वे जन्मप्राप्ति व्यापक और विमुक्त हैं । इस राम के दो स्वरूप हैं—अगुण और सगुण । भक्त हेतु अगुण का निराकार राम साकार रूप धारण करते हैं—

समुनहिं अमुनहिं नहिं कसु मेदा । वाचहिं कुच पुराण कुच मेदा ।

अगुण बन्धन अलख अज बोई । मयत प्रेम बस सगुण सो होई ।

मानस-कथा की वर्णनात्मकता के उत्कर्ष में मोक्षामी श्री ने श्रोता और ब्रह्मा की विद्या का प्रयोग किया है । शास्त्रकाण्ड के आरम्भ में ब्रह्मात्मक याज्ञिक से प्रश्न करते हैं—

राम कथन प्रभु पूछ्यो तोही । कहिय कुम्हार कुपानिधि मोही ।

एक राम ब्रह्मेश कुमारा । तिन्ह कर बरित विरित संसारा ।

गारि निरह कुकु छहेउ अपारा । ममउ रोपु राज राबन मारा ।

प्रभु छोड़ राम कि मपर कीउ बाहि जपत निपुरारि ।

स्वयं नाम सर्वस्य तुम्ह, कह्यो विवेकु विचार । मानस ४६ ।

याज्ञिक इस प्रश्न का उत्तर सती मोह प्रसंग के माध्यम से देते हैं । कुम्हार शक्ति के आश्रय से अपने वास की ओर वाते समस्त संसार राम को सीता के विमोक्ष में पीड़ित देखते हैं । सती के मन में संका जाग्रत होती है—

इह सो व्यापक निरख अज सकल अनीह अनेद ।

सोकि बेह नर होइ नर बाहिन जानत बैद ।

संसार सती की संका का समाधान करते हुए कहते हैं कि जिस निर्गुण राम की कीर्ति का वर्णन नियम-आश्रय पुराण नेति' कह कर कहते हैं वे ही माया शक्ति हैं रघुकुल में उन्होंने ही गर-रूप में अवतार लिया है ।

परन्तु सती के मन की संका समुप्त नहीं होती है । वे राम की परीक्षा लेती हैं । राम सती के सम्मुख अपनी सीमा प्रकट करते हैं । इस चरित्र के वर्णन द्वारा मोक्षामी श्री राम के ब्रह्मत्व के स्वरूप का उद्घाटन करते हैं ।

मती दीख कोनूक मय जाता । माये राम सहित भी जाता ।  
 छिरि चितना पाछ प्रभु देता । सहित बन्धु सिय सुन्दर बैया ।

v

x

x

इसे सिख बिधि बिष्णु अनेका । अमिल प्रभाऊ एक ते एका ।

बंदत बरत करत प्रभु सेवा । विविधि वैप देखे सब देवा । बाळ० १४ ।

इस प्रकार सती की भंका-समाधान के द्वारा सोस्वामी जी हमारी संका का भी समाधान करते हैं । सोस्वामी जी ने राम के सगुण रूप का ही पान किया है परन्तु अपने वर्णन के माध्यम से राम के परम ब्रह्मत्व की ओर किसी न किसी रूप में वे संकेत करते हैं । इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ 'राम चरित मानस' में उपलब्ध होते हैं जिनमें सोस्वामी जी राम के निर्गुण स्वरूप का परिचय देते चकते हैं । उदाहरण स्वरूप, शिव और पार्वती के विवाह में पदचाप एक सन्दर्भ में पार्वती राम के ब्रह्मत्व के प्रति संका प्रकट करती हैं—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती । सागर बरूँ अर्पय भाराती ।

राम सो जगज गुरुति गुन छोई । की अब जगुन बसव मति छोई ।

जी अप जनय ठ ब्रह्म किमि नारि निरहँ मति भोरि ।

देखि चरित महिमा मुक्त जमति बुद्धि मति भोरि । बाळ० १०८ ।

पार्वती की संका का उत्तर देते हुए गकर कहते हैं, राम निराकार भी हैं और साकार भी । राम के निर्गुण और सगुण स्वरूप में कोई दार्शनिक अन्तर नहीं है, केवल वैप का अन्तर है । वास्तव अस्तित्व अव्यक्त है, बही प्रकट होने पर व्यक्त हो जाती है परन्तु दोनों एक रूप हैं । जल और उपल में दार्शनिक भेद नहीं है । इसी प्रकार निगुण और सगुण निराकार और साकार अव्यक्त और व्यक्त अस्तर्थात् भी और बहिर्यामी गुणातीत और गुणाभय ब्रह्म में अन्तर नहीं है । राम गुणातीत है, वे व्यक्त अव्यक्त और अविच्छिन्न हैं । वे कर्म बन्धन और मम से बगोचर और धान्योत्पत्ति हैं । निर्गुण अव्यक्त अनन्त और अनारि राम कोशिका के सम्पूर्ण सगुण रूप में प्रकट होते हैं ।

बहु बुद्ध कर जोरी वस्तुति तोरी देखि विधि करो अनन्ता ।

माया गुण जानातीत जगाना वैर पुगन मनन्ता ।

कम्प्या गुण सामर सभ गुण आगर बेहि माबहि धुनि मत्ता ।

सो मम हित सागी जन अनुरागी भयत प्रकट धीकम्ता ।

बाळ० १६२ ।

इस प्रकार गोस्वामी जी स्वस-स्वस पर संकेत करते हैं कि जिस राम का गुणदान दे कर रहे हैं वे मूलतः निर्गुण ब्रह्म ही हैं । बाळ काण्ड के एक विशेष वर्णन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है । कौसल्या बाळक राम को पासने में मुखाकर पूजा-उपासना के पश्चात् नैऋत चक्राकर जीवन-ग्रह में प्रवेश करती हैं । वहाँ वे बाळक राम को भोजन करते देखती हैं । पुनः वे पासने के निष्ठ जाती हैं वहाँ बाळक को निष्ठित पाती हैं—

वहाँ उहाँ कुछ बाळक देखा । मति भ्रम मोरि कि जान बिसेपा ।

देखि राम बननी अकुलानी । प्रभु हंसि भीन्ह मधुर मुमुकानी ।

देखराधा माठहि निब अप्पुन कय भजन ।

रोम रोम प्रति जाये कोटि-कोटि कृपा । बाळ० २०१ ।

माता कौसल्या जमयित रवि क्षति चतुरानन विरि सरिता, सिन्धु, महि और कानन के दर्शन करती हैं और विकस होकर वे विनय करती हैं—

बार-बार कौसल्या विनय करइ कर जोरि ।

अब जन कम्हूँ ज्वापे प्रभु मोहि माया तोरि । बाळ० २०२ ।

गोस्वामी तुलसी दास ने राम को परस्पर विरोधी गुणों से विभूषित किया है । भक्तियों में ब्रह्म के परस्पर विरोधी गुणों का वर्णन मिलता है । 'गीता' और 'महिम्नस्रोत' में भी ब्रह्म के परस्पर विरोधी गुणों का वर्णन किया गया है । वहाँ ब्रह्म को 'सर्वबास और 'सर्वबासी' कहा गया है । वह मावी है और माया रहित है, योगी है, और योगमग्न भी है—

सर्वप्रियगुणामासं सर्वप्रियविबर्जितम् ।

अत्यक्तं सर्वभूषणं निगुणं गुणमोक्ष च ।

अविमक्तम् च कूतोप विमक्तमिव च स्थितम् ।

भूत भर्तृ च तज्ज्येयं प्रतिष्णु प्रमविष्णु च । गीता, १३ १९ ।

गोस्वामी जी के राम में भी परस्पर विरोधी गुण हैं—

विनु पद चखइ मुगई विनु काना ।

कर विनु करम करइ बिधि नागा ॥

वानस रहित सकल रस धागी ।

बिनु बापी बकता बड़ बोपी ॥

सन बिनु परस नयन बिनु देसा ।

महद भाग बिनु बास बसेपा ॥ बाल० ११८ ।

राम अनाम हैं फिर भी उनक अनेक नाय हैं । वे निर्बीज हैं और निर्बीज-  
ज भी हैं । वे साधक हैं और साध्य भी हैं । वे कुलिश स भी कठोर हैं, और  
मुम से भी कोमल हैं—

कुलिशहु चाहि कठोर, बलि कोमल कुमुमहु चाहि ।

चित्त असेस राम कह समुझ परद कसु काहि । उत्तर० ११ (घ) ।

राम प्रत्येक कल्प में अवतार धारण करके अपनी बीका का विस्तार करते  
हैं । उनके अवतार-धारण करने के अनेक कारण हैं । जब-जब कर्म की हानि होती  
संवसार में जब-जब अकल्याणकारी शक्तियों की वृद्धि होती है तब-तब राम  
न्यून रूप धारण कर पुनः-बीजक का निर्माण करते हैं—

जब जब होइ वरम की हानी । बाहुनि बसुर अपय अधिमानी ।

तब-तब प्रभु बरि विविध तरीरा । हरहि कृपाविधि सज्जन पीरा ।

बाल० २२७ ।

रामचरित मानस<sup>१</sup> में गोस्वामी जी ने राम के अवतार-धारण करने के अन्य  
कारणों का भी उल्लेख किया है । भगवान् ने मनु-संतापना को बरदान दिया था ।  
मरुधि तारक ने मयभाग को दाय दिया था । कम निचय और प्रतापमानु को  
दाय-मुक्त करने हेतु भी भगवान् ने अवतार धारण किया था । इस प्रकार राम  
के अवतार-धारण के अनेक कारण हैं ।

तुलसी का दर्शन आपस-सम्पत् माना गया है । इसमें पंचरात्र<sup>२</sup> आगम

१ पंच राम आगम के अनुसार ब्रह्म सर्व व्याप्त पूर्ण और नित्य है । प्राकृत  
पुष्टि से स्थापित न होने के कारण वह निर्गुण है । उसका सम्बन्ध अप्राकृतिक  
पुष्टि से स्थापित होने के कारण वह सगुण है । ज्ञान शक्ति, ऐश्वर्य बल और  
और ऐव उसकी शक्तियों हैं । उसकी शक्ति का नाम प्रकृति है वह सृष्टा पाशक  
और संहरक है । जीव निष्णु का अर्थ है । ये मायामय गोस्वामी जी की  
रचनाओं में उपलब्ध हैं । यहाँ पर प्युह विमल अर्थात् और अन्तर्धामों के अनुसार  
इश्वर की पाँच अवस्थाओं की कल्पना की गई । गोस्वामी जी ने इन भावनाओं  
के बर्तीकार किया है ।

ब्रह्मविद्या ब्रह्मसूत्र रामानन्दसम्प्रदाय और सांख्ययोग के दर्शन से गोस्वामी भी प्रभावित हैं।

गोस्वामी जी के दर्शन को केवलब्रह्मविद्या कहा गया है। इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वस्व है। वह परमार्थतत्त्व है। उसकी परम शक्ति माया है। माया प्रकृति है। बीच ईश्वर के बीच हैं और मिल्य हैं। ज्ञान से मोक्ष मिलता है। तुलसी ने इन बातों को स्वीकार किया है, परन्तु शंकराचार्य की मान्यताओं को गोस्वामी जी ने पूर्णतः स्वीकार नहीं किया है। शंकराचार्य ने ब्रह्म के निरुक्त स्वस्व को ही स्वीकार किया है। परन्तु गोस्वामी जी उसके निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं। शंकराचार्य विश्व को असत्य मानते हैं गोस्वामी जी विश्व को सत्य मानते हैं। शंकराचार्य की यह मान्यता है कि अविद्या के कारण ब्रह्म और बीच में पारंपर्य का बोध है। गोस्वामी जी भी ब्रह्म और बीच के पारंपर्य को स्वीकार करते हैं। ब्रह्म और बीच का सम्बन्ध घटीर-घटीरी का है। भक्ति और कृपासना से मोक्ष की उपलब्धि होती है।

राम की माया

ब्रह्म ने स्वरूपक ब्रह्म का निर्माण माया के द्वारा किया है। माया ईश्वर से व्युत्पन्न है, वह मिथ्यात्मिका और अविर्बन्धनीय है। गोस्वामी जी के अनुसार माया ब्रह्म राम की शक्ति है। राम माया-शक्ति है। माया राम की व्यक्त और अव्यक्त शक्ति है। राम के निराकार और साकार रूपों के अनुसार सीता (माया) के भी अव्यक्त और व्यक्त दो रूप हैं। राम के अवतार बाल्य करने के साथ माया भी अवतार बाल्य कही है। राम की शक्ति माया के दो रूप हैं—विद्या और अविद्या। विद्या माया द्वारा राम सृष्टि की रचना करते हैं। विद्या माया के रूप में सीता अव्यक्तनी हैं। वे कीर्त्याहारिणी और सर्वभोगस्करी हैं—

यन्मायावद्वर्ति विद्वन्महिम्नं ब्रह्माविदेवाभूत् ।

यत्तत्त्वाद्यमप्यैव भाति तस्मै राज्ञी ह्याहेनम । बाळ० स्तो० ५ ।

सांख्यदर्शन में प्रतिपादित प्रकृति-गुण के विद्वान्त का स्पष्ट प्रमाण गोस्वामी जी की शिष्टतः धारा पर पड़ा है। सांख्य ने प्रकृति को अचेतन माना है। परन्तु गोस्वामी जी ने सांख्य के विपरीत प्रकृति की चेतन भी माना है। प्रकृति ही राम की विद्या माया है—

जमुनसिधितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणीम् ।

सर्वभयस्करी सीता गतोऽहं रामवल्लभाम् ।

परन्तु अविद्या माया मिथ्या में सत्य और सत्य में मिथ्या का बोध कराती । राम की अविद्या माया से कौसल्या ग्रसित होती है । सती के मन में इस विद्या माया के कारण ही भ्रम उत्पन्न होता है । यथा

एव संकर बेसेड चरि ज्ञाना । सती को कीन्ह करिछ छुड जाना ।

बहुरि राम भामहि छिब जावा । प्रेरि सतिहि बेहि भूँठ कहावा । वाक २६,  
राम की माया नारद को प्रवित करती है<sup>१</sup> । सीता की छाया या अविद्या  
या के माध्यम से ही राम रावण-वध का उपक्रम करते हैं । रावण अविद्या  
या का ही हरण करता है<sup>२</sup> ।

धनुष-ब्रम के अवसर पर आये हुए रावण और रावण इत्यादि सीता के अविद्या  
य पर ही विमुक्त हैं । परन्तु राम और सीता का सम्बन्ध अमिक्त है, सत्य और सत्य  
या अरु और सत्य में अमिक्तता है । इसी प्रकार राम और सीता अमिक्त हैं ।

दिया अरुष अछ बीचि एव कहिअस्त भिन्न न भिन्न ।

अन्धौ सीता राम पद भिनहि परम प्रिय भिन्न । वाक० १८ ।

मोक्षामी जी ने राम में विवेकों की कल्पना की है । राम जल के कटाई  
मती और संहती है । कटाई रूप में के कहा है मती-रूप में बिज्जु है और संहती  
रूप में छ है । राम और परम बिज्जु में अन्तर नहीं है । मोक्षामी जी ने छिब  
स्तवन भी किया है । राम के समान छिब भी जानमिराठीठ है । मरानी  
उनकी माया है । पुराणों के अनुसार राम बिज्जु है और बिज्जु छिब है । 'किन्तु  
पत्रिका' में इस प्रकार की भाषणा का स्पष्ट अनुमीलन किया गया है । 'मात्स' में  
मोक्षामी जी ने छिब और बिज्जु के अमिक्तत्व का प्रतिपादन किया गया है—

१ अरु हरि मामा बहुरि निवारि । नहि छैह रमा म राजकुमारी ।

एव मुनि अति समीठ हरि चरना । यहै पाहि प्रमत्तारिठ हरना । वाक, १३८ ।

२ मुनहु प्रिया नन रजिबर मुनीना । मैं कछु करनि सक्ति मर सीता ।

मुनहु पावक मुहुं करहु निवासा । औ लमि करो निवाचर गाथा ।

निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता । तैसई सीक कप मुनिनीता । अरण्य २४ ।

बैराग्य रूप में वर्णित है। ज्ञान की शक्ति शक्ति है जिसकी उपलब्धि बैराग्य से होती है—

शानुज सीय समेत प्रभु रागत परम कुण्डीर ।

भगति भ्यानु बैराग्य बनु सोहत भरे सरीर । राम० अयो १२१ ।

गोस्वामीजी ने नवधा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है। 'नवधा भक्ति' का स्वल्प-वितस्तेषां सिद्धौ पृष्ठों में किया गया है। नवधा भक्ति का यह स्वरूप भागवत प्रतिपादित है। 'छिन्नपुराण' 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' तथा 'आदिपुराण' आदि ग्रन्थों में 'भामयुक्त पुराण' की नवधा-भक्ति का अनुकरण किया गया है। रामा नन्द, ब्रह्मनाथार्य तथा कम्पयोस्वामी आदि की भक्ति-विद्या के निरूपण में 'भामयुक्त पुराण' ही मूल प्रेरणा है। इस विद्या को निम्नलिखित वर्णों में विभाजित किया जाता है।

(क) भवज कीर्तन स्मरण ।

(ख) पादसेवन, अर्चन बंदन ।

(ग) वास्य सक्रम आत्मनिवेशन ।

गोस्वामीजी ने राम के नाम रूप और गुण-भजन का उपाङ्गन किया है। राम कथा के भवज-फल का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है राम कथा समस्त अमिषापावों की पूर्ति करती है राम-कथा कश्मिस्त-नाशक और भक्तिदायक है। जयवान् के नाम के मान के प्रति आह्वान करते हुए गोस्वामी जी कीर्तन विधान करते हैं। नवधा भक्ति का तृतीय उखल स्मरण है। नाम-स्मरण का विधान गोस्वामीजी ने अनेक जगों में किया है। गोस्वामी जी ने पाद-सेवन की महिमा का वर्णन भी किया है—

सब बर भौंयहि एहु फल राग जग रति होत ।

तिन्हु के मन मंदिर बसहु सिय रनुमन होत ।

नवधा भक्ति का पौंचवीं अंग अर्चन है। यह प्रतिमा-गुह्य का समानार्थक है। 'भामयुक्त' में कथितस्मा राम की पूजा करती है। राम शिव की पूजा करते हैं। गोस्वामीजी ने 'जिनय पत्रिका' में 'जय विग्रह' का वर्णन किया है। नवधा भक्ति का छठा अंग बंदन है। गोस्वामीजी ने 'भामयुक्त' के प्रत्येक काण्ड में मंगल स्तोकों का विधान किया है, जिनमें सरस्वती, गणेश और राम की वन्दना की गई है।



मन्वान् स्वामी है । और भक्तसेवक है । इस प्रकार की भावना वास्तव भाव की भक्ति की प्रयुक्तता है ।

अथ अमिमान आह बनि भोरे । ये ऐवक रघुपति पति भोरे ।

नवमा भक्ति का आठवाँ अंश सकल भाव है । गोस्वामी जी ने भक्त और नवमान् के मध्य बिना सम्बन्धों की कल्पना की है जगमें सत्य भाव भी है । 'राम भक्ति मानस' में राम ने सुग्रीव के सम्मुख प्रतिज्ञा की—

तव सोच त्यागहु बस भोरे । सब बिधि पट्य काज मैं छोरे ।

इस अंश में सकल भाव को भक्ति का आकर्षण रूप व्यक्तित्व हो जाता है । 'विनय पत्रिका' में गोस्वामी जी ने तबसा भावना से आपूरित होकर राम को उपासना दिया है और नव-नव भक्ति कटु सुखों का प्रयोग करने में भी गोस्वामी जी ने संकोच नहीं किया है—

परम पुनीत संत कोयल जितु ठिगहि तुमहि बनि जाई ।

तो कत विम व्याध गनिकहि तारेहु कधु रखी समझै ।

विनय पत्रिका, १११।२ ।

नवमा भक्ति की अन्तिम बिधा आत्म निवेदन है । इसके अन्तर्गत भक्त नवमान् के प्रति आत्मसमर्पण आत्मनिवेदन और शरणावधि या प्रपत्ति करता है । गोस्वामीजी और उनके पादों में शरणावधि की भावना की प्रधानता मिलती है । 'विनय पत्रिका' में गोस्वामीजी ने आत्मनिवेदन और आत्मसमर्पण की भावना से आपूरित पदों की रचना की है—

ताहि सँ जायो सरल सखेरें ।

तुम सय ईस कृपाछु परम द्विष्ट पुनि न पाइहीं हैरें ।

यह बिब जानि रहौं सब तपि रघुबीर भरोसे छेरें ।

तुलसीदास यह विपत्ति जानुरो तुमहि सौ बने निवेरे । वि० १८७ ।

एतनु गोस्वामीजी ने नवमा भक्ति के जिस स्वरूप को ग्रहण किया है, वह 'मायकत पुराण' पर आधारित नहीं है । गोस्वामीजी का विधान 'अध्यात्म रामा नव' की नवमा भक्ति पर आधारित है । मानस' में राम शब्दों को नवमा भक्ति का उपाय है—

वैराग्य रूप में वर्णित है। ज्ञान की सधि भक्ति है जिसकी उपरान्त वैराग्य से होती है—

शानुष सीय समत प्रभु रागत परम कुलीर।

भक्ति ध्यानु वैराग्य धनु सोहत बरे सरीर। राम० अयो० १२१।

भोस्वामीजी ने नवधा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है। नवधा भक्ति का स्वरूप विस्लेषण सिस्के पृष्ठों में किया गया है। नवधा भक्ति का यह स्वरूप साम्प्रत प्रतिपादित है। 'शिवपुराण' 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' तथा 'आदिपुराण' आदि ग्रन्थों में 'भामन्द पुराण' की नवधा-भक्ति का अनुकरण किया गया है। रामा स्त्र, बहुमाचार्य तथा क्यभोस्वामी आदि की भक्ति-विद्या के निरूपण में 'भामन्द पुराण' ही मूल प्रेरणा है। इस विद्या को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है।

(क) भजन कीर्तन स्मरण।

(ख) पारसेवन, वर्णन ब्रजन।

(ग) वास्य सख्य आत्मनिवेशन।

भोस्वामीजी ने राम के नाम रूप और गुण-भजन का उपादन किया है। राम कथा के भजन-रूप का वर्णन करते हुए भोस्वामी जी ने कहा है 'राम कथा समस्त भक्तिपादों की पूर्ति करती है। राम-कथा कश्मिक-नाशक और भक्तिदायक है। भगवान् के नाम के वाग के प्रति जाग्रह करते हुए भोस्वामी जी कीर्तन विधान करते हैं। नवधा भक्ति का तृतीय उपादन स्मरण है। नाम-स्मरण का विधान भोस्वामीजी ने अनेक रूपों में किया है। भोस्वामी जी ने पार-सेवन की महिमा का वर्णन भी किया है—

सब बार भौमहि एकु पद राम चरन रति होइ।

सिन्धु के मग भँदिर बसहु सिम रघुमन्दन दोइ।

नवधा भक्ति का चौथवाँ और वर्णन है। यह प्रतिपाद-गुणन का समानार्थक है। 'भामन्द' में कीर्तन राम की पूजा करती हैं। राम सिध की पूजा करते हैं। भोस्वामीजी ने 'विनय पत्रिका' में 'अर्चो विग्रह' का वर्णन किया है। नवधा भक्ति का छठा अंग ब्रजन है। भोस्वामीजी ने 'भामन्द' के प्रत्येक काण्ड में मंगल श्लोकों का विधान किया है, किन्तु सरस्वती, बनेस और राम की वन्दना की गई है।

ममबान् स्वामी है । और भक्तसेवक है । इस प्रकार की भावना दास्य भाव की भक्ति की प्रमुखता है ।

अस भविमान बाहू बलि मोरें । मैं सेवक रघुपति पति मोरें ।

नवपा भक्ति का आठवाँ संव सत्य भाव है । भोस्वामी की ने भक्त और ममबान् के मध्य विभ सम्बन्धी की कल्पना की है उनमें सत्य भाव भी है । 'राम चरित मानस' में राम ने सुग्रीव के सम्मुख प्रतिज्ञा की—

तुहा सोच त्वाण्हु बल मोरें । तुह विनि कष्ट काज मैं तोरे ।

इस संव में सत्य भाव की भक्ति का मार्ग रूप व्यक्तित्व हो जाता है । 'विनय पत्रिका' में भोस्वामी की ने नवपा भावना से आपूरित होकर राम को त्वाण्हु बलि है और मम-तन बलि कट्टु छावों का प्रयोग करने में भी भोस्वामी की ने संकोच नहीं किया है—

पाम पुरीत संत कोमल भिनु सिबहि तुमहि बलि बार्द ।

तो कत विप्र व्याज भविबहि तारेहु कसु रही सगर्द ।

विनय पत्रिका, १११।२ ।

नवपा भक्ति की अंतिम विषा आत्म निवेदन है । इसके अन्तर्गत भक्त ममबान् के प्रति आत्मसमर्पण, आत्मनिवेदन और धरनामति या प्रार्थना करता है । भोस्वामीकी और उनके पावों में धरनामति की भावना की प्रधानता मिलती है । 'विनय पत्रिका' में भोस्वामीकी ने आत्मनिवेदन और आत्मसमर्पण की भावना से आपूरित पदों की रचना की है—

तार्हि से जायो जल जलें ।

तुम तम ईस हुवाहु परम द्रित पुनि न पाइही डेरें ।

मह विज बालि रहो खल तमि रघुबीर जरोसे तेरे ।

तुलसीदास बह विपति बाबुरो तुमहि हो गम निवेरे । वि० १५७ ।

परन्तु भोस्वामीकी ने नवपा भक्ति के विषय स्वरूप को ग्रहण किया है, वह 'मायवत पुराण' पर आधारित नहीं है । भोस्वामीकी का विषय 'व्यास रामा' का नवपा भक्ति पर आधारित है । 'मायवत' में राम स्वामी को नवपा भक्ति का उपदेश देते हैं—

नवचा भगति कह्यै तेहि पाहीं । रामचान सुनु यह मनु माहीं ।  
 प्रभव भवति सन्तनु कर संना । दूसरि रति मग कहा प्रसंगा ।  
 गुह फल पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।  
 चौवि भवति मग गुन मन करइ कष्ट तबि गान ।

यंत्र आप मग दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ।  
 छठ वम सीछ बिरति बहुकरमा । निरत निरन्तर सज्जन परमा ।  
 सातवै सम मोक्षियव सब लेखा । मोर्ते संत अधिक कर सेवा ।  
 आठव कबालाम संतोषा । सपनेहुं नहि देखइ पर बोपा ।  
 ग्यम सरक सब सग छम्ह हीना । मग भरोम हिमें हरप न दीना ।

अरण्य ३५ ३६ ।

इस प्रकार गोस्वामी जी द्वारा प्रतिपादित नवचा भक्ति का कार्यक्रम इस प्रकार है — सन्तो का साहचर्य, राम-कथा में प्रेम, गुह-फल-सेवा, राम-मुच-यान, राम रूप भजन, श्रेष्ठ कार्यों में रति, जबको राममय देखना, संतोष-नाम परमोपनिषद् की ओर में विमुक्त रहना, और छल-हीन भाव से मनवान् पर विस्वास कर सम भाव से जीवनवापन करना ।

नारायण तीर्थ ने सांख्यिक दृष्ट मति सूत्रों की व्याख्या की है । एक विद्वान् सन्दर्भ में इन्होंने कहा है कि निर्गुण भक्ति का पर्यायवाची 'बोझ्म' में होता है । काश्यप के अनुसार सगुण भक्ति का पर्यायवाची 'बासोझ्म' में होता है । सांख्य ने भक्ति के सगुण (मेव विषयक) और निर्गुण (अमेव विषय) दोनों में समन्वय स्थापित किया है । अपनी भक्ति-साधना में गोस्वामी जी सांख्यिक ने निकट हैं । गोस्वामी जी ने निर्गुण भक्ति को अनेक भक्ति और सगुण भक्ति को श्रेष्ठ भक्ति कहा है । गोस्वामी जी ने भक्ति को साध्य क्या और साधन क्या के अनुसार दो दृष्टियों से देखा है । साध्य क्या भक्ति के दो प्रकार माने गए हैं— ह्वाज्य और साधनज्य । प्रथम के अन्तर्गत भक्त कोई प्रयास नहीं करता इसमें मनवान् की ह्वा ही साधन है । द्वितीय के अन्तर्गत भक्त साधना करता है । गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति में इन दोनों

किया है ।

केहि जाचन मगो

५

।

तुसतिवास रनुनाच ह्वा

।

भक्ति की प्राप्ति राम-कृपा से ही होती है। राम-कृपा से ज्ञान उपलब्ध होता है, ज्ञान से प्रतीति होती है, और प्रतीति से प्रीति होती है, प्रीति से भक्ति बढ़ होती है—

राम कृपा बिनु सुगु कयराई । आनि न जाइ रामप्रभुताई ।

आने बिन न होइ परतीची । बिनु परतीत होइ नहि प्रीती ।

राम-कृपा प्राप्ति के लिए सीता की कृपा, गुद-कृपा और संकर-कृपा अपेक्षित हैं ।

भक्ति के लिए रायानुग या अविविहित साधन अपेक्षित है । इस में भक्त गुरुगुरु के साथ रायात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है । रामचरित मानस में वैसी भक्ति के साथ-साथ रायानुयामभित के वर्णन भी मिलते हैं—

बलनी जनक बंधु सुत दारा । तनु बन मयम मुखद बलिबारा ।

सब के ममता लाग बढोरी । मम पर मनहि बाधि कर डोरी ।

बस धरजन मम छर बस कैसैं । सोभी हृदय बसैं बनू कैसैं । 'मानस' ।

भक्ति और ज्ञान के वारत्परिक सम्बन्धों के निरूपण क समय में गोस्वामीजी ने भक्ति के प्रति ही विचार रूप से आग्रह भाव व्यक्त किया है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि भक्ति को गोस्वामीजी ने ज्ञान से प्येक रखा है । इसके विपरीत गोस्वामी जी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ज्ञान से प्रतीति प्रतीति से प्रीति और प्रीति से भक्ति उत्पन्न होती है । परन्तु ज्ञान का मार्ग कठिन है । बर्य ॥ बिरति, बिरति से मोक्ष मोक्ष से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष उपलब्ध होता है । अतः इन मार्ग की अपेक्षा भक्ति-मार्ग सरल है । इसके अतिरिक्त ज्ञान पुष्टि है । माया स्वीकृत्य है । अतः ज्ञान मायावशवर्ती हो सकता है । भक्ति और माया दोनों ही स्वीकृत्य हैं अतः भक्ति माया-वशवर्ती नहीं हो सकती है । वह हेतु भी ज्ञान की अपेक्षा गोस्वामी जी भक्ति की प्रधानता का प्रतिपादन करते हैं । परन्तु दोनों में अंतर नहीं है । क्या

भक्तिहि जानहि नहि कछु चेदा । उभय हृदि भव संभय लेदा ।

## नाम मर्ति

पोतामी पुष्पीरास ने राम के नाम-गुण-मान को अतिशेष्ठ कहा है। अपनी छठियों में इन्होंने राम-नाम-महिमा का प्रतिपादन किया है। 'मानस' 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' में इन्होंने राम नाम-महिमा की विशेषताओं का वर्णन किया है। राम की महिमा इतनी प्रबल है कि अपना गुणवान राम स्वयं नहीं कर सकते—

कहीं कहा छवि नाम बड़ाई। रामु न सकहि नाम गुन माई।

वाच० २६।

राम का समुक्त रूप नाम के आधीन है। नाम के ब्याप में रूप की कोई कल्पना नहीं बन पाती। नाम के उच्चारण से रूप का साक्षात्कार होता है। यथा

देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप जान नहि नाम सिद्धिना।

रूप विशेष नाम सिनु जाने। करतल गत न परहि पहिचाने।

सुमिरिअ नाम रूप सिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेपे। वाच० २१।

राम का नाम नामी राम से भी श्रेष्ठ है। नाम और नामी में भेद नहीं है। पोतामी जी की यह वारणा है कि नाम राम के निर्गुण और सगुण इन दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। साधक योग-समाधि में 'नाम-स्मरण' द्वारा ब्रह्मसुख का अनुभव करता है—

साधक नामु अपहि रूप छार्।

होहि सिद्ध अनिमित्त पाएँ ॥ वाच० १२२। १ २।

नाम निरूपण से निर्गुण ब्रह्म बोधव्य और सुख हो जाता है अतः नाम का प्रभाव निर्गुण राम से भी श्रेष्ठ है—

निरूपण ते एहि जाँति बड़ नाम प्रभाळ अपार।

कह्ये नामु बड़ राम ते निज विचार अनुहार। वाच० २३।

राम ने लोक कल्याण की भावना से अवतार धारण किया था। परन्तु तब रूप में उनका लोक-संग-व्यापार अति सीमित है। राम की अपेक्षा 'नाम' की उन्मत्तियों अति व्यापक हैं—

राम एक तापत दिव तारी। नाम कोटि लख कुमति सुचारी।

×

×

×

मंजैत राम भापु मम बापु । मम मम मंजैत नाम प्रभापु ।

X

X

X

राम सुकंठ विनीयम बोळ । राख सरल जान सब कोळ ॥

बाळ० २३ २४ ।

इस प्रकार रामनाम ब्रह्म राम से भी बड़ा है । निर्गुण मार्गीय अपने घट के भीतर नाम-स्मरण से ब्रह्म की अनुमति करते हैं और 'नाम' के माध्यम से समुप माहीं भक्त राम के साकार रूप की उपासना करते हैं—

हिये निर्गुण नयनहि समुप रचना नाम पुनाम ।

मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी कलित ललाम । दो ७ ।

काव्य मङ्ग

गोस्वामीजी ने अपने काव्य में राम का युध-दान किया है । उनके काव्य के प्रतिपाद्य हैं भक्ति और वर्णन परन्तु उनकी कविता में अष्ट काव्य के सम्पूर्ण तत्त्व विद्यमान हैं । काव्यतत्त्व उनकी भक्ति भावना और वर्णन के अनुगामी हैं । अतः हम उनके काव्य और वर्णन में विभावन रेखा वहीं खींच सकते हैं । 'मानस' के बारम्बार श्लोक में ही कवि ने काव्य के सर्वगुणीन और सर्वकालीन अक्षरों का निरूपण इस रूप में किया है—

वर्णनामवर्णनानां रसानां ध्वनिसामि ।

मंथनानां च कर्तारो बन्दि बाणीविनायकी ।

काव्य के लिए जोर उस और मंथन भावना अनिवार्य तत्त्व हैं । काव्य का मुख्य उद्देश्य उसमें निहित सिद्धान्त है । जिस काव्य में जीवन के प्रति यद्वा और विस्वास की भावना निहित रहती है वही गरिमा से मण्डित होता है । गोस्वामी जी की भक्ति और उनके वर्णन का बर्ण मंथन-विभाग है । अतः उनका काव्य उनकी भक्ति और वर्णन का पूरक वा पर्यायवाची है । 'मानस' में काव्य के सिद्धान्त के प्रति कवि ने अनेक स्थलों पर आग्रह और विभावन भाव-व्यक्त किया है ।—

कीरति भक्ति भूति भक्ति सोई ।

गुर सरि सम सब कह्ये हित होई ।

१ १४ ३ ।

गोस्वामी जी को राम की कथा इसलिए भी प्रिय है कि उसकी रसित करने की समझा उसमें है काव्य मङ्ग

## नाम मणि

गोस्वामी तुलसीदास ने राम के नाम-गुण-गान को अतिशेष्ठ कहा है। अपनी कृतियों में इन्होंने राम-नाम-महिमा का प्रतिपादन किया है। 'मानस' कवितावली' और 'विनय पत्रिका' में इन्होंने राम नाम-महिमा की विशेषताओं का वर्णन किया है। राम की महिमा इतनी प्रबल है कि उसका गुणगान राम स्वयं नहीं कर सकते—

क्यों कहा लगि नाथ बढ़ाई। रामु न सकहि नाम गुन धाई।

बाळ० २६।

राम का सगुण रूप नाम के आधीन है। नाम के अभाव में रूप की कोई कल्पना नहीं बन पाती। नाम के उच्चारण से रूप का साक्षात्कार होता है। यथा

देखिबहि रूप नाम आधीना। रूप जान नहि नाम सिहीना।

रूप बिसेव नाम बिनु जाने। करतक कत न परहि पहिचाने।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। जानत हृदयें सनेह बिसेये। बाळ० २१।

राम का नाम मायी राम से भी श्रेष्ठ है। नाम और मायी में भेद नहीं है। गोस्वामी जी की यह धारणा है कि नाथ राम के निर्गुण और समुच्च इन दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। साधक धोय-समाधि में 'नाम-स्मरण' द्वारा व्यङ्ग्य का अनुभव करेगा है—

साधक नामु अपहि क्य कारणे।

होहि सिद्ध जनिमायिक पायें ॥ बाळ० ॥ २२। १२।

नाम निरूपण से निर्गुण ब्रह्म बोधयोग्य और सुगम हो जाता है अतः नाम का प्रभाव निर्गुण राम से भी श्रेष्ठ है—

निरूपण सें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाळ अपार।

कइयें नामु बड़ राम सें निम्न बिचार अनुसार। बाळ० २३।

राम ने लोक कल्याण की भावना से अक्षर बारण किया था। परन्तु नर रूप में उनका लोक-संवाह-व्यापार अति सीमित है। राम की अपेक्षा 'नाम' की उत्तमधियो अति व्यापक है—

राम एक तावत तिय ठारी। नाम कोटि जख कुमति सुधारी।

×

×

×



मंजुत राम बालु मय बापू । मय मय मंजुत नाम प्रतापू ।

×

×

×

राम मुकुट विनीतय दौड । राखे सख बाज सख कोड ॥

बाल० २३, २४ ।

इस प्रकार रामनाम ब्रह्म राम से भी बड़ा है । निर्गुण मार्गों से अपने घर के भीतर नाम-स्मरण से ब्रह्म की अनुमति करते हैं और 'नाम' के माध्यम से समुद्र की भी मछल राम के साकार रूप की उपासना करते हैं—

हिये निर्गुण मयमहि समुद्र रहना नाम मुनाम ।

मनहुँ पुरट संपुट लसत मुहसी ललित ललाम । दो ७ ।

काव्य पक्ष

मोत्सामीजी ने अपने काव्य में राम का गुण-गान किया है । उनके काव्य के प्रतिपाद हैं भक्ति और दर्शन । परन्तु उनकी कविता में श्रेष्ठ काव्य के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं । काव्यलक्ष्य उनकी भक्ति भावना और दर्शन के अनुगामी हैं । अतः हम उनके काव्य और कविता में विचारण ऐसा नहीं कर सकते हैं । 'मानस' के आरम्भिक स्तोक में ही कवि ने काव्य के सर्वगुणों और सर्वकारीय लक्षणों का निरूपण इस रूप में किया है—

वर्णनामवर्णधारा रसानी रसमयनि ।

ममतानी च कर्तरी बन्ध बाणनिन्दन ।

और अर्थ के माध्यम से व्यञ्जित होता है। गोस्वामी भी ने सत्य और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध की व्यञ्जना के लिए उन्हें भक्ति और वर्तन के प्रति उदात्त मन्त्रों के समकक्ष का माना है—रवि और उसकी किरणें भिन्न प्रतीत होते हुए भी अमिन्न हैं, जल और बीज भिन्न प्रतीत होते हुए भी अमिन्न हैं। राम और सीता अमिन्न हैं बैसे ही सत्य और अर्थ अमिन्न हैं—

पिरा भरव बस बीजि सम कहिअत भिन्न न भिन्न । २१ १ १८

भाष्य कवियों के सम्मुख काव्य प्रयोग के विविध सूक्ष्म पक्ष हैं जिनमें यत्, अथ, कान्तासंमति उपरेस तथा कर्तुर्न्य प्राप्त प्रमुख हैं। गोस्वामी भी ने इन सब का समीकरण 'स्वात मुख' के अन्तर्गत कर दिया है—

स्वात मुखाय सुकसी रङ्गनाथ गाथा आपानिबन्धमतिमङ्गलमातनोति ।  
बासकान्त श्लोक ७ ।

परन्तु कवि के 'स्वात मुख' की भावना में 'विश्वमुख' की भावना अनिवार्य रूप में निहित है।

गोस्वामी भी राम-वृत्त को ही काव्य का प्रतिपाद्य मानते हैं। इस सन्दर्भ में कवि ने यह स्पष्ट कहा है कि साधारण प्रतिभा वाले कवि की भावी यदि राम-मुग्धता से परिपूर्ण है तो वह कवि प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त कर बैठा है, इसके विपरीत राम-गुण-गान से कृप्य ज्येष्ठ कवियों की भावी सम्मान-अकिता रह जाती है—

(ब) सब गुन रहित कुकवि हूत जाती । राम नाम बस अंकित जाती ।

सादर कहहि मुनिहि बुनि ताही । मनुकर सरिस संत गुन जाही ।

(ग) भक्ति विविध सुकवि हूत जोऊ । राम नाम बिनु सोह न सोऊ ।

बास० १० ।

गोस्वामी भी ने कविता के प्रतिपाद्य विषय के लिये केवल 'राम गुण गान' को ही अष्ट विषय माना है। इस प्रतिपादन पर यह संका जलाई गई है कि काव्य के लिए क्या अन्य कोई विषय या प्रतिपाद्य नहीं हो सकता है। वस्तुतः इस प्रकार की संका व्यक्त करने वाले आलोचक इस सत्य की अनदेखी कर जाते हैं कि उनका काव्य भक्तिमयी भाव का काव्य है। इसके अतिरिक्त उनके राम शिखर के पर्यायवाची हैं।

गोस्वामी जी भक्तिरस के कवि हैं। इनका काव्य भक्ति-भावना में  
आपूरित है। भक्तिरस काव्यशास्त्र में वर्णित मंत्र रत्नों से भरे हैं—

नव रस रूप रस जोय विरामा । ते सब जलकर जाइ उड़ाया ।

सुखी छाया नाम धून पाया । ते बिबिध बल बिहय धमाया ।

संत सना कहैं निशि जेबराई । अछा रिनु मर्यत सम मारै ।

मदति निरूपन बिबिध विधाना । हृषिक रति रस बेह बसाना ।

१ ६७ ५ ७ ।

मानस मान सरोवर है, काव्य के नव रस इसके जलधरा हैं। मंत्र-सभा  
जबराई है। रस, मम और नियम पूरा हैं, मान फल है और भक्ति रस उसका रस  
है। भक्ति रस का अनुपम प्रतिपादन जिनय पत्रिका का प्रतिपाद है। गोस्वामी  
की प्रसिद्ध कृति 'मुक्तावली' है। इस ग्रन्थ में भक्तिरस का व्यापक विस्लेषण  
किया गया है—'व्यासादिभिर्बोधितस्य विष्णु विष्णोर्विष्णु भक्तार्ता वा अरिहस्य  
नव रसात्मकस्य धनवादिना अनित्यकमलारो भक्ति रस — मुक्ता पृष्ठ १६७ ।  
अर्थात्, व्यास आदि ने विष्णु या विष्णु-अर्तों के नव रसात्मक अरिह का वर्णन  
किया है। उसके अन्तर्गत वे जो भाग्य होता है, वह भक्ति रस है। गोस्वामी जी  
के सम्मुख भक्ति रस का यही आदर्श था। 'भाग्य' के सप्त संज्ञान भक्ति रस  
के कार्य हैं। इस प्रसंग पर विचार करते हुए हमारा ध्यान मधुसूदन सरस्वती द्वारा  
'भक्ति रसायन' की ओर आकर्षित होता है। इन्होंने सोच रत्नों की रचना की  
है। इनमें से कुछ भक्ति रस केवल तीन हैं—विष्णु भक्ति रस ब्रह्मभक्ति रस  
और प्रेमानुभक्ति रस। गोस्वामी जी के काव्य में कुछ भक्ति रस के चार रूप  
उपलब्ध होते हैं—विष्णु भक्तिरस, शक्ति भक्तिरस, प्रेमानु भक्तिरस और ब्रह्मभक्ति  
भक्ति रस। प्रथम के अन्तर्गत भगवान् के महात्म से भगवान् के प्रति दार्शनिक  
रति भावना आवृत होती है। इसमें भगवान् की महिमा के प्रवण, कीर्तन और  
स्मरण का विधान होता है। शक्ति भक्ति के अन्तर्गत देव-अनिन्द्य के प्रवण  
तीर्थ-सेवा और करन आदि का विधान रहता है। प्रेमानु भक्ति में स्नेह-सेवक

१ ७ बार कुछ रस, रोमान्वासक, प्रीतिमयानक, वात्सल्यरस प्रेमानु,  
विष्णु भक्ति रस, दास्य बहुभूत मुठबीर, करण, बीमल, रवाबीर बर्ष  
बीर और धान्त ।

भाव की भक्ति का विधान रहता है। गोस्वामी जी की भक्ति ऐक्य और ऐक्य भाव की है। प्रेमान् भक्ति के तीन रूप हैं वास्य सख्य और वास्य-सख्योभयात्मक। गोस्वामी जी की भक्ति-विद्या में सख्यभाव की भक्ति के प्रति विशेष आग्रह नहीं मिलता है। उनके काव्य में वास्य प्रेमान् रस की ही आकर्षणा हुई है। वास्य सख्योभयात्मक भाव की भक्ति की व्यञ्जना गोस्वामी जी के काव्य में मिलती है। भरत सप्तम, मुग्धीश और विभीषण आदि की भक्ति इसी कोटि की है।

गोस्वामी जी के काव्य में भक्ति रस का चौथा रस वात्सल्य भक्तिरस है। इसके वर्णन 'गीतावली' 'कवितावली' और 'मानस' में होते हैं। राम के संयोग और वियोग के अवसरों पर कवि कोकसा के वात्सल्य का भक्ति मार्मिक वर्णन करते हैं। गोस्वामी की भक्ति में वात्सल्य सम्बन्धी आशय दो वर्गों में विभाजित किए जाते हैं। प्रथम मधनीय और द्वितीय अमृतजन। प्रथम के अन्तर्गत भवमान् की बाल-कीड़ाओं के वर्णन हैं—

कन्हूँ सखि भौंयत आरि करें कन्हूँ प्रतिविमि गिहारि करें ।  
कन्हूँ कछाक बबाइ के नाकत मातु सब मन मोह भरें ।  
कन्हूँ रतिमाई कहीं हठि के, पुलि केर छोई बेहि सामि करें ।  
अबनेस के बाकल आरि सबा तुलसी मन-मरिह में बिहरे ।

कवितावली बालकाण्ड ४ ।

दूसरे वर्ग में काकमुसुकि प्रतिलिपि रूप में आते हैं। ये राम के बाकस्म को बफा आराध्य मानकर भक्ति करते हैं—

जब जब राम मनुष्य तनु बरखीं । अथत हेतु सीखा बहु करखीं ।  
तब तब अबनपुरी में जाऊँ । बालभरित बिकोकि हरपाऊँ ।  
अगम मक्षोत्सव देखतें आई । बरध पाँच तहें रहीं कोमाई ।  
इष्टरेव भव बाकल रामा । सीमा अपुन कोलि सत काया ।

×

×

+

लरिकाई अहँ बहँ फिरहि तहँ तहँ संग छड़ाऊँ ।

पूछन परह बजिर नहँ सो छठाइ करि साजँ । उत्तर० ७२।२

राम की महीन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत एक महीन सत्य का अनुचाटन किया गया है। गोस्वामी जी को मधुर रस का कवि भी कहा गया है। इस सन्दर्भ में

निवेदन यह है कि मोस्वामी तुलसी दास का उद्देश्य शृंगार निरूपण नहीं है । कतिपय सौन्दर्यवादीयों की यह मान्यता है कि मोस्वामी जी के काव्य में 'रसिक साधना धारा' भी व्यक्तित्व हुई है ।<sup>१</sup> इस प्रकार का निम्न गीतावली के कतिपय पदों और कवित्तियों की साखी के आधार पर लिया गया है । 'गीतावली' के एक पद में 'कैतियह' का वर्णन है । इस पद के आधार पर ही डॉ० नमवती प्रसाद सिंह ने इस प्रकार का निर्वचन किया है ।

वैभे नमिष्ठ ललन लाल कोने ।

तैसिये ललित उरमिका परसपर ललन सुकोचन कोने ।

मुसमा सागर सिवार सार करि कमल रचे है तिहि सोने ।

कपटम-नरमिष्ठि न परत कहि विपकि रही मति मोने ।

सोमाधीन सनेह सोहावने समउ केसि यह गोने ।

वेहि सिपन के नयन मुकल पर, तुलसी दास हूँ के होने ।

गीतावली ।

मोस्वामीजी मयीरावादी कवि हैं । इस पद का सम्बन्ध उमिका और मन्मथ से है । इस अंश से भी अधिक शृंगारपूर्ण अंश 'कवितावली' में उपलब्ध होते हैं । परन्तु हम उन्हें यथार रस के अनुसंधान नहीं रख सकते । विद्वान विचारक ने मोस्वामीजी की रचनाओं में उत्तरी भाग का भी निषेध किया है । अपने मत की संस्थापना के लिए जन-जाति के प्रसंग में एक रसवी की प्रेमाकुल भावना के वर्णन का प्रयोग प्रकृत कर आलोचक ने इस प्रकार का निर्वचन किया है ।

सन्निहि मुखिस रई, प्रेम मयन गई ।

मुरसि बिछरि लई कपली जोड़ी ।

तुलसी रही है ठाड़ी नहीं सी काड़ी ।

न जाने कहाँ से आई लीन की कोड़ी ।

स्वामिनी सीता उसे अपनी हारा-हटि बैठी है और उसे हृदय से लगाती है—

सनेह ललित मुखि बचन ललक सिप

निजई ललित हिय ललित जोड़ी ।

१ डॉ० नमवती प्रसाद सिंह—राम मणि में रसिक सम्प्रदाय ।

तुलसी मनुष्य प्रभु कृपा की मूर्ति फिर  
हेरि के हरि हिये सिमो है पोही ।

अपनी विवेचना में डॉ० सिंह 'मानस' में आए हुए तापस प्रसंग की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं 'मानस' में उनका आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन वास्तव भाव का वा और भीतावली में उनकी आत्मविमोहिता एवं आत्मसमर्पण श्रृंगार भावना से प्रेरित है । प्रथम में इस अवसर पर वे इष्टदेव के चरणों पर गिरे थे किन्तु अपने दूसरे रूप में वे स्वामिनी के हृदय से उगे । ऐहिक सिद्धान्त के अनुसार सत्त्वियों का हीन सम्बन्ध आराध्य देव ( राम ) से नहीं होता वे सीता की बंधोबुमावा हैं । अतएव स्वयं को उन्हें ( सीता को ) समर्पित करके ही तत्सुख की अधिकारिणी होती है । अर्थात् स्त्री का सीता द्वारा आर्क्षित समर्पण इसी तत्त्व का स्मरण कराता है ।

कवनिधि के आधार पर भी गोस्वामी जी को ऐहिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है । इस सम्प्रदाय में गोस्वामी जी के 'मानस' का विशेष सम्मान है । परन्तु गोस्वामी जी ने मानस में जिस मयीया पुष्पोत्तम राम के वर्णन का निर्यास किया है ऐहिक सम्प्रदाय में उसके विपरीत राम का श्रृंगारिक वर्णन मिलता है । ऐहिक सम्प्रदाय और गोस्वामी जी—ये दोनों ही बेदीमति के प्रति आग्रहशील हैं । दोनों में रामचरित का वर्णन है । परन्तु दोनों में तात्त्विक अन्तर है । इस अन्तर की अवहेलना करके किसी प्रकार का निर्णय उपयोगी नहीं होगा । गोस्वामी जी ने तत्सुखी भाव से अपने वो सीता मानकर राम के साथ रमन-अधिकार का व्यवहार नहीं की है । गोस्वामी जी में तत्सुख भाव की व्यञ्जना नहीं मिलती है । गोस्वामी जी ने सीता को शगदम्बा और राम को अपत्य पिता के रूप में अंकित किया है । अतः ऐहिक भावना के सम्भावन की सम्भावना उनके काव्य में नहीं है ।

निम्ने पृष्ठों में जो विवेचनाएँ और निरीक्षण प्रस्तुत हैं उनके आधार पर सम्भवतः यही निष्कर्ष किया जा सकता है कि गोस्वामी तुलसी दास भक्त और चार्पनिक थे । अतः साहित्य-तत्त्व उनमें अति हीन और नगण्य रूप में ही विद्यमान हैं । परन्तु वस्तुस्थिति इन प्रकार की नहीं है । गोस्वामी जी की रचनाओं में

काव्य-सत्त्वों का अति उत्कृष्टात्मक रूप देखने की मिस्रता है। भक्ति उत्पन्न और साहित्य उत्पन्न से सम्मिलित उनकी रचनाओं केितना के स्रष्टा स्रष्टा स्रष्टा से आलोचकों की किरणें प्रसारित करती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इनकी कृतियों में 'मानस' विश्व साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। गोस्वामी जी ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। अतः गोस्वामी जी ने अनेक काव्य के सम्पूर्ण लक्षणों से इस कृति की विमूर्धित किया है। 'मानस' के आरम्भ के मंगला करण में कविने इसे प्रमाणित किया है। इस की प्रबन्धात्मकता में कवि के भावों के सरस एवं संवेदनात्मक स्वरूप का स्फुरण हुआ है। कवि के भाव-स्रोत में जीवन की समग्रता का जो प्रतिबिम्ब निर्मित हुआ उसके मूर्तिकरण के लिए भाषा, रस, शब्द और अलंकारों का समुचित प्रयोग यह प्रमाणित करता है कि गोस्वामी जी का कवि उनके भक्त रूप के समान ही उदात्त, चेतनापूर्ण और गौरवमय था। चोट कवि यही है जिसने अपनी संस्कृति के प्राचीन प्रकाश-स्तरों की अवधारणा अपने काव्य में धुलीन परिस्थितियों के आधार पर की है। 'मानस' में कवि के प्रवास इसी रूप की आभासिता पर संवर्णापीक हैं। इस कथन का पोषक मंगलाकरण के अन्त से हो जाता है—

माना पुराणनिमग्नमम सम्मर्त्यम्  
रामायणेनिर्यतम् स्वचिन्मयीम् ।  
स्वान्त मुखाय तुलसी रघुनाथगाना ।  
माया निबन्धमतिमनुज मातनोति ॥

माना पुराण निमग्नमम' हमारी संस्कृति और चेतना की विशिष्ट उपलब्धि है। कवि ने 'स्वान्त मुखाय' को विश्वकल्याण का समर्थक माना है। इस सत्य का उद्घाटन कवि के एक अन्य कथन से भी हो जाता है—

मणि मालिक मुकुटा अति वैसी । अक्षिणि पदसिर सोह न लेही ।  
गुन किरीट तस्की तनु पाई । अक्षि एक सोभा अधिकारी ।  
तेरेहि मुकनि कथित गुन रहदी । अपरहि अन्त अन्त पदि लखी ।

‘मानस’ में एक ओर कवि ने काव्यशास्त्रीय उपादानों का प्रयोग किया है, वहीं ओर कवि ने प्राकृत और अपभ्रंस काव्यों के कथा विधान और काव्य ज्ञान का अवलम्ब भी ग्रहण किया है। ‘मानस’ एक प्रबन्ध काव्य के साथ ही अपभ्रंस-परम्परा का चरित और कथा-काव्य भी है। इस ओर निम्नसे मैं संकेत किया गया है। गोस्वामी जी ने अपभ्रंस काव्य-रूप अर्थात् कसेडी में ही इस कृति की रचना की है। अपभ्रंस कवियों के अनुकूल गोस्वामी जी ने पूर्ण कवि-प्रसंसा की है और भास्व-कथुता का प्रकाशन किया है। कवि यद्यपि बाह्य, अर्थ व्यङ्ग्य, सूत्र नियोजन, प्रबन्ध-कौशल तथा य के गुण-दोषों से परिचित है परन्तु विद्याचार का परिचय देते हुए प्रति अपनी अज्ञानता का ही उल्लेख करते हैं। गोस्वामी जी के युग में उनके प्रति कवियों की संश्लिष्ट दृष्टि कैसी रही, इसका ज्ञान नहीं हो पाता परन्तु इस प्रकार के संकेत मिलते हैं कि उनके युग में संस्कृत साहित्य की स्थिति और अभिव्यञ्जना प्रभावता के प्रति जाग्रदृक् बढ़ रहा था। गोस्वामी ने इस कृत्रिमता से जलग्रहण और काव्य के नैसर्गिक विधान के प्रति जाग्रदृक् होने को ही योग्य माना है। इस प्रकार गोस्वामी जी के काव्य में क-संग्रह, अनुमृतिमो और काव्य-कला के समन्वित रूप उपलब्ध हो जाते हैं। गोस्वामी जी के अनुसार कविता विश्वमय की भाषा है। उनके राम विश्व के परम हैं—

मल्लि विविध मुकति कृत जोड ।

राम नाम विनु सोह न सोड ।

गोस्वामी जी के ‘मानस’ को कतिपय भाषाओं ने पुराण और महापुराण मी हा है। यदि हम इनकी इस भाषाता को स्वीकार कर लेंगे हैं तो हमें ‘मानस’ को काव्य के सन्धर्भ से जलग्रहण करना होगा। वस्तुतः इस भाषा का निर्माण गोस्वामी जी की ‘नागापुराण नियमाणम् संमतमवधू’ के आधार पर ही हुआ समता है। परन्तु गोस्वामी जी की भावभूमि इन बातों से समर्पित है इस प्रकार का संकेत गोस्वामी जी ने स्वयं दिया है। भाषाविद विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने हिन्दी साहित्य का अतीत नामक ग्रन्थ में इस भाषा का वर्णन किया है परन्तु उनकी भाषा की कथुता हमें प्रभावित नहीं कर पायी। सम्भवतः अपनी अधि-



व्यक्ति के माध्यम से विषय भी इस सत्य का समर्थन करते हैं कि सत्य सर्वत्र कटु होता है ।<sup>१</sup>

यह कहा गया है कि योस्वामीजी ने 'मायस' में पुराण खोली का अनुसार कर संवाद-खोली का माध्यम ग्रहण किया है । वस्तुतः यह खोली खोला और बछा की है, जिसकी बर्षा आदि काक की विवेचना के अन्तर्गत की जा चुकी है । खोला और बछा की निम्नलिखित परम्परा मानस में उपलब्ध होती है । बछा—वाक्यत्वक, काकमुसुंठि और छिन्न खोला—अष्टाक्ष, पक्ष और पार्षदी । इनके अतिरिक्त खोला और बछा की एक खोली परम्परा भी मानी जाती है जिसमें बछा स्वयं योस्वामीजी हैं और खोला उनके पाठक हैं ।

संवाद खोली की यह विधा अग्रजस्य में पूर्णतः विकसित हुई । हिन्दी की आदि काशीय कृतियों में खोला और बछा की इस परम्परा का सुख भोत रूपरस काव्य ही है । मेरी यह धारणा है कि योस्वामीजी ने पौराणिक और अग्रजस्य की छैलियों के समन्वित कर्मों को ग्रहण किया है । परन्तु विचारकों की यह निश्चयात्मक धारणा है कि मानस की संवाद-खोली और कथा विधा पौराणिक छैली की है । इनके अनुसार खोला-बछा के प्रसोक्तों के रूप में कथा कहने की खोली प्रत्येक पुराणों और पौराणिक खोली के महाकाव्यों में ही उपलब्ध होती है । रामायण की कथा सर्वप्रथम मारु ने महर्षि वाल्मीकि को सुनाई, बाल्मीकि ने कव-कुश को सुनाई, कव-कुश ने बलमेघ के अवसर पर इस कथा का वज्र मयोव्यावस्थियों के सम्मुख किया । मानस में खोला-बछा की विधा इस परम्परा के अनुसार ही लगती है ।

छन्दु कीन्तु यह वरिष्ठ गुहावा । बहुरि कृपाकर जगहि गुहावा ।

सोह छिन्न काव मुसुंठिहि बीन्हा । राम यवति बधिकारी बीन्हा ।

तेहि छन आगवसिक मुनि बाबा । छिन्तु पुनि अष्टाक्ष प्रति पाबा ।

१ 'जिसकी मति नामा पुराण नियमावली संमतपु की सामने रखकर यह कहती है कि यह पुराण है उसका लिए संस्कृत व्याकरण ( छप्प कीमरी का ही छद्म ) ब्रम्हास्य केवलि है । उम्हें अधिक नहीं तो किसी कोष में पुराण के पंच मन्त्रों को ही बैठ समझ केना चाहिये ।' हिन्दी साहित्य का इतिहास ५० पृ० ।

मैं पुनि निज गुरु सन सुनो कथा सो सुकर खेत ।

समुझी गहि तस बाधन तब कति रहैऊ भवेत ।

भागस, बास काण्ड, १० । (क)

### मानस का महाकाव्यत्व

ऊपर यह संकेत किया गया है कि 'रामचरित मानस' पुराण गद्दी है । पुराण की एक निश्चित परिभाषा प्रस्तुत की गई है । इस परिभाषा के अनुसार मानस पुराण नहीं है ।<sup>१</sup> 'मानस' अपभ्रंश के चरित-काव्य-परम्परा की रचना है जो धर्म और कथा के क्षेत्रों से परिपूर्ण है । गोस्वामीजी ने अपने इस काव्य को 'चरित' 'माहा' और कथा कहा है । आचार्य रामधु, विश्वनाथ और बंसी दास ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी है उनके अनुसार 'मानस महाकाव्य' नहीं है । भारतीय महाकाव्य की परम्परा में 'रामायण' और 'महाभारत' के पश्चात् अस्वघोष के 'बुद्ध चरित' की ओर हम आकर्षित होते हैं । 'रामायण' और 'महाभारत' में राम और रावण तथा कौरव और पाण्डवों के संघर्षों का सम्बन्ध मन की वृत्तियों से स्थापित किया जाता है जिसमें राम खेष्ट मनोभावों के प्रतीक और रावण विद्वत् मनोभावों के प्रतीक रूप में ग्रहण किए जाते हैं । परन्तु यह भ्राष्ट्र अधिक व्यापक नहीं समझा है । इस दृष्टि से अस्वघोष के 'बुद्ध चरित' की ओर हम आकर्षित होते हैं । यहाँ गौतम स्मर से संघर्षण है । वस्तुतः यहाँ मनुष्य की आत्मा अपनी वासनाओं से संघर्षण विधित की गई है । भाव फल की सूक्ष्मता के साथ इस कृति की खोज भी सूक्ष्म है ।

इसके पश्चात् कवि काकिलास के 'रघुवंश' की ओर हम आकर्षित होते हैं । चिन्मयी दृष्टि से और कथा-प्रस्ताव की दृष्टि से यह काव्य अपने पूर्व के महाकाव्यों से भिन्न प्रकार का है । और यहाँ कथा के यत्नात्मक स्वरूप के दर्शन हो

१ पुराणों के माध्यम से यह है—सर्ग प्रति सर्ग चरित्रों और देवताओं का बंध-वर्णन मन्वन्तरों का वर्णन राज्यवर्षों का वर्णन । यहाँ ज्ञान-कोप और धर्म की बातें भी रहती हैं । मानस में सर्व प्रतिवर्ग मन्वन्तर आदि के वर्णन नहीं हैं इससे काव्य के नायक का बंध-वर्णन भी नहीं है । इन दृष्टियों के अनुसार मानस पुराण नहीं है । देखा — हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास पृ० ४८४ ४८५ ।

माने है। इस कृति में कवि शैलीयत अलंकरण की ओर ही अधिक बाधहदीस है। द्विपदिशि की दृष्टि से यह एक निश्चित परम्परा का संस्थापन बरगी है। इस प्रकार परम्परी महाकाव्यों ने 'रघुवन्द' की द्विपयोजना और भावात्मक अनुपादों को अपना अपना आधार-स्तम्भ बनाया। इन संश्लिष्ट धीकत से हमारा तात्पर्य यह है कि 'बुद्धि चरित' 'रघुवन्द' और 'सिन्धुपाल बध' के माध्यम से द्विप प्रदान या रीति प्रधान महाकाव्यों की निश्चित छड़ी का विकास हुआ। यह परम्परा अपने रूप में विकसित होती रही है और इस प्रकार के महाकाव्यों के प्रचलन की परम्परा सम्मुख आई, जिसमें कथा, व्याकरण और अलंकार इन तीनों बिन्दुओं के नियोजन का प्रयास किया गया। इस रूप की एक निश्चित कृति है 'राजब बध'। इसके रचयिता हैं अष्टि।

इस परम्परा के विपरीत एक नवीन परम्परा का प्रस्तुत हुआ जिसका पूर्व विकसित रूप प्राकृत और अपभ्रंस महाकाव्यों में वद्वित हुआ। इसकी चर्चा आदिशास और प्रेमाश्वानक काव्य के सुरुर्ग में की गई है। इस परम्परा की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं 'पद्मचरित' 'सिन्धुवन्द', 'योद्धव' एवं 'कुमारपाल चरित'। मेरी अपनी निश्चित मान्यता है कि द्विप की दृष्टि से बोस्वामी जी का 'रामचरित मानस' इस द्वितीय परम्परा की रचना है। पुष्करवन्द के 'पद्मचरित' के आरम्भ में वैश्व-स्तुति ब्रह्म-निष्ठा सार्वत्र प्रशंसा आदि के वर्णन उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त पुष्करवन्द ने कवि-कर्म में अपनी बहुमर्त्यता का भी प्रकाशन किया है। पूर्व कवियों की श्रमता और उनके प्रति इत्युत्ता-आपन सम्बन्धी छन्द यहाँ भी उपलब्ध हैं। बोस्वामीजी की प्रथम रचना में ये तत्त्व उपलब्ध हो पाये हैं। 'रामचरित मानस' के रचना-तंत्र पर प्राकृत और अपभ्रंस महाकाव्यों के रचना छन्द के वदेष्ट प्रभाव उपलब्ध होते हैं। इन प्रभावों का संश्लिष्ट निवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है—

(क) शोक जीवन का स्पर्श—शोक-जीवन के स्पर्श की भाषना से ही बोस्वामी जी ने 'मानस' की रचना शोक भाषा में की है। 'मानस' के प्रचलन के समय बोस्वामीजी के सम्मुख भाषा का प्रश्न था। संस्कृत के माध्यम से अपने काव्य में प्रस्तावित शोक-मंगल का प्रसार वे शोक जीवन में नहीं कर सकते इस तथ्य से वे परिचित थे। भाषा की यह समस्या स्वयम्भू के सामुप्य की

निघापति के सम्मुख भी और पोस्वामीजी के सम्मुख भी थी। स्वयंभू ने बेसी ( लोक भाषा ) भाषा में 'गजम चरित' की रचना की—

बेसी भाषा समय-तदुज्ज्वल ।

कवि कुचक्र वन सह सिंहालय ।

निघापति ने भी इसी भाषा को ग्रहण करते हुए 'दिगिप्त बघना' में अपनी रचना की। पोस्वामीजी काव्य के लोक वर्गी स्वरूप के अनुसार भाषा के लोक वर्गी स्वरूप को स्वीकार करते हैं। इस भाषा से अनुप्रेरित होकर ही पोस्वामीजी ने कहा है— 'का भाषा का संस्कृत प्रेम बाहिए सौँच'। और 'भाषा बढ करज मैं सोई। मोरें मन प्रबोध बेहि होई।

मानस बाळ० ९१।

(क) दार्शनिक और पौराणिक उत्सवों के समावेश के साथ रोमांचक उत्सवों की परिकल्पना तथा अलौकिक और अतिमानवीय उत्सवों के प्रति आग्रह।

(ग) संमत्ताकरण तथा वस्तु निर्बंध के साथ आत्म विनय सम्पन्न प्रसंगों दुर्जन मित्रा तथा पूर्ववर्ती कवियों का अभिनयन।

(घ) प्रमुख रूप से शृंगार, वीर एवं शक्ति इन्हीं तीन रसों का विनिमोग और काव्य का प्यारवान घान्तरस में होना (ङ) पूर्वभक्त-वर्चन एवं अवान्तर कथाओं का संकलन (च) मोटा और बड़ा के रूप में कथा प्रस्तुत करने की विधा। (छ) संस्कृत महाकाव्यों की सर्व बढता के स्थान पर आस्थाओं सन्धियों एवं काव्यों में कथानक का विभाजन। पोस्वामीजी ने अपने महाकाव्य को 'चरित' संज्ञा से विभूषित किया है। अलौकिक और अतिमानवीय उत्सवों के रूप में 'राम चरित मानस' में अहिंसा उद्धार की कथा वर्तुर्भंग प्रसंग, नल-नील द्वारा समुद्र में पापाज-संवरण आदि बटनार्यो वर्णित हैं।

इस प्रकार 'रामचरित मानस' में अप्रत्यक्ष महाकाव्यों अथवा 'चरित काव्यों' की समस्त प्रवृत्त-कक्षियाँ उपलब्ध हो जाती हैं।

महाकाव्य की आधुनिकतम मान्यताओं के अनुसार श्रेष्ठ महाकाव्य के हेतु सुसंपादित कथानक उदात्त चरित्रांकन यथोचित रस व्यञ्जना महान् उद्देश्य और गरिमामयी उदात्त घंटी अथवा व्यापक अर्थवृत्ति अपेक्षित गुण हैं। 'मानस' की कथा उत्पाद नहीं बलितु प्रख्यात है। कवि ने इसकी कथा भाषा का संकलन संस्कृत

महाकाव्यों पुराणों और नाटकों के अतिरिक्त प्राकृत और अवप्रय के काव्यों में भी किया है। 'यामस' की परिभाषा के अनुसार यामस का कथानक संचालित है और रणनी के अनुसार इसकी कथा इतिहास-उद्गम है। इसके कथानक का विभाजन बार अयोध्या भरथ, किष्किन्धा मुरर संका एवं उत्तर काण्ठी में हुआ है। इनके लिए कवि ने 'सप्त भुवग योपान' ( बाण० ३९ १) संज्ञा का प्रयोग किया है। बार काण्ड कवेयर की दृष्टि से विस्तृत है। 'यामस' की कथा माटकीय बन्धितियों से परितुल्य है। इसका मुख्य कार्य है राक्षस-वध और राम का राज्याभिषेक।

महाकाव्य की भावना यह है। 'यामस' में सब रसों की परिध्याप्ति उपलब्ध हो जाती है। इसका सभी रस घात है। सीता की शृंगार भावना, भरत की कल्पा और इस प्रकार की समस्त विविष्ट पटनाओं का सम्पादन घात रस में होता है। अलि के सन्दर्भ में जो अलि रस है वही धोत्सामीत्री के काव्यात्मक अनुबन्धों में घात रस के रूप में व्यक्त हुआ है।

'माकस' की अरि-योजना अति व्यापक है। राम के गरल पर नारायण के व्यक्तित्व के आरोपण से राम के आरिजिक व्यापार की क्रिया-भूमि अति व्यापक हो गई है। उनके अरि का एक पक्ष गरल की भूमि का संस्पर्ण करता है और दूसरा नारायणत्व का। जनक की शठिका में सीता-दर्शन के पश्चात् राम के मन में उत्ति-मूक अनुराग भावना आवृत्त होती है। सीता के गुणों की अति उनमें अतीव भाव आवृत्त करती है और राम अपनी कावनाओं का प्रकाशन लक्ष्मण के सम्मुख करते हैं—

ठाठ जनक ठक्या यह सोई। अनुप जय बेहि कारण होई।

पुनन पौरि धरि की आई। करतु प्रकासु छिरइ फुलवाई।

बासु बितोकि बलीकिक सोभा। छहज पुनीत मोर अनु छोभा।

सो सहु कारण जान बिबाठा। फरकहि मुमर अथ मुनु छावा।

यामस २३१ १५।

भरथ काण्ड में राम सीता का पचार करते हैं। फिर सीताहरण की कथा से वे व्याकुल भी हो उठते हैं। इस प्रकार राम लौकिक संवेदनशीलता की अनोखी निरूपितियों में विचरण करते हैं। 'यामस' में राक्षस प्रतिनायक है। राक्षस का व्यक्तित्व भी अति प्रबल और भावपूर्ण है। वह अश्रुत रस का वाहक है, और उत्तर

असत्-तत्त्व इतना युग व्यापी हो उठता है कि उसके विपरीत राम को मत्त-तत्त्व के रूप में अक्षरतः ग्रहण करना पड़ता है । रावण के व्यक्तित्व का परिचय गोस्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में दिया है—

अथ्य वसागल होरुति अशनी । पर्यंत गर्भ खबहि मुर रमनी ।

रावण जावत सुनेहु सकोहा । देखहु तके येव निरि सोहा ।

बाल० ११० ।

गोस्वामी जी ने एकजलीय विषय नहीं किया है । जीवन में सत्-तत्त्व के समान ही अस्त् तत्त्व भी अस्तिव्यापी होते हैं । मनुष्यियों की कृतियों को वरमया में पराजित नहीं कर पाती है । राम और रावण के अरिष निर्माण में गोस्वामी जी ने इस मनोवैज्ञानिकता का संरक्षण मध्युर्ध्व रूप से किया है ।

‘मानस’ का उद्देश्य लोक-संमेल की याचना है । इस का उत्प्रेक्षक कवि ने ‘मानस’ के संयोजनपरम में ही कर दिया है । ‘उत्तरकाण्ड’ में रामराज्य की परिकल्पना में भी गोस्वामी जी ने परोक्ष रूप से अपने इस काव्य के महत् उद्देश्य का ही प्रकाशन किया है—

वैदिक शैविक भौतिक तापा । राम राज नहि काहुहि व्यापा ।

चारिड धरम अमं जय माही । पूरि रखा सपनेहुं जय माही ।

नहि रखि कोठ कुसी न बीना । नहि कोठ अबुध न सखन्नीना ।

मानस उत्तरकाण्ड २११३६ ।

गोस्वामी जी लोक-संमेल की याचना अवस्था और अस्वात्मिक सौन्दर्य के कवि हैं । राम जीवन में संघर्ष कर निजम प्राप्त करते हैं और फिर अपने राम राज्य का सुम्न करते हैं । इस प्रकार जीवन की सही याचना ही ‘मानस’ का उद्देश्य है ।

गोस्वामी जी के काव्य में युग-सापेक्षता

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य विशेषतः राम चरित मानस’ युग सापेक्ष काव्य है । उत्तर काण्ड का उत्तरार्ध मानस का उपसंहार है । इस उपसंहार में गोस्वामी जी की सामाजिक मायताओं का परिचय हमें मिलता है । कस्मिन् युग वर्चन के प्रसंग में कवि अपने युग का गमन चित्र प्रस्तुत करते हैं । राम राज्य की कल्पना में कवि ने एक मध्युर्ध्व संसिद्ध और परिजापूर्ण समाज की परिकल्पना

की है। मोस्वामी जी की सामाजिक नैतिक और बार्मिक मान्यताओं में उनके विचलित युग के प्रति प्रतिक्रियात्मक स्वर अभिव्यक्तित हैं। इस सत्य का अभ्यवगन यदि कास के सामाजिक और राजनैतिक विश्लेषण के अन्तर्गत किया गया है। (किसिए इस इतिहास का द्वितीय खण्ड—परिशिष्ट संख्या दो)।

कथा

मोस्वामी तुलसी के काव्य में अभिव्यक्तता-प्रणाली का प्रति संकेतन रूप उपलब्ध होता है। अभिव्यक्तता प्रणाली की दृष्टि से भी मोस्वामीजी अपने काव्य में सिम्पलिकि की संक्षिप्त विधा के सौन्दर्यपूर्ण और बेतुलसीस आदर्श प्रस्तुत करते हैं। मोस्वामीजी के काव्य विशेषकर मानस में भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। शृंगार के संयोग और वियोग पक्षों की अनुभावना 'मानस की वर्णनात्मकता में संवेदनीयता की छल-छल-बाराओं का स्वल्प विधान करती है। मोस्वामी जी बीरम के यथार्थ सम्बन्धों के अनुकूल राम को नायक के रूप में प्रस्तावित कर उन्हें आभ्यस्त प्रदान करते हैं। सीता की नायिका-रूप में संकेत कर उन्हें आत्ममग्न प्रदान करते हैं। शृंगार के प्रसंग तुलसी-काव्य में प्रति सीमित हैं, परन्तु अपनी सीमित परिधि में भी ये प्रसंग अनुसूति और प्रभाव की दृष्टि से गौरवपूर्ण हैं। जब हम शृंगार की कथा करते हैं, तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान 'मानस के सप्त प्रसंग पर जाता है जिसमें सीता के गुरुरो की पत्नि से राम रक्षित हो उठते हैं—

कंकन किंकन नूपुर धुनि सुनि । कल्ल सज्जन सन राम हृदय सुनि ।

मान्हू मदन कुन्तनी कीन्ही । मनसा बिल विजय कई कीन्ही ॥

अस कहि फिरि बितए ठैहि ओरा । सिम मुख ससि भए नयन बकोरा ।

भए सितोवन बाब अर्चन । मगहु-सफुनि निमि सवे विनयन ॥

देहि सीय सीमा मुख पावा । हृदय सराहत बधनुन जाना । कास० २३० ।

गुरुरो की पत्नि उद्दीपन विमान है नेनों की अपकृष्ट स्थिति अनुभाव है।

इस प्रकार मोस्वामी जी इस अंश में पूनीनुराव की अवस्था का विधान करते हैं।

शृंगार के प्रसंगों में अनिच्छापा स्मृति, मौलुग्य कठना एवं अस्तव्यता जाति जादों की निषेधना इन प्रकार के सम्बन्धों में विशेष रूप से दर्शनीय है।

विग्रहम्भ शृंगार के अत्यन्त स्थायी भाव रति के कलात्मक नियोजन के अनेक सुन्दर गोस्वामीजी के काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। इस अवसर पर हमारा ध्यान धरम्यकाण्ड के उस अंश की ओर अनायास ही आकर्षित हो जाता है जिसमें सीता के वियोग में रामचन्द्र बिराग करते हुए वर्णित किये गये हैं —

हे खग मृग हे मधुकर खेनी । तुम्ह देखी सीता भुक्कीनी ।  
 लंबन मुक कपोत मृग भीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥  
 कुन्दरसी बाकिम वामिनी । कमल सख ससि बहि मामिनी ।

×                      ×                      ×                      ×

सुनु जानकी तोहि बिनु जावू । हरे सख पाहू बनू रावू ।

मानस धरम्य काण्ड ३० ।

इस अंश में तथा इस प्रकार के अन्य सुन्दरों में स्मृति सम्पाद, आश्रय एवं अज्ञात आदि संवारी भावों का शुष्क स्थायी भाव के साथ भावनाओं के उत्कर्ष में योग-दान देता है। इसी प्रकार आश्रय में उद्योग दैव्य विद्या और सम्पाद आदि अवस्थाओं का चित्रण इनके काव्य में नैसर्गिक रूप में उपलब्ध हो जाता है।

गोस्वामी जी भावनाओं के कुशल चिह्नी हैं। परिस्थितियों के विशिष्ट सुन्दरों में पाशों के मनोगत अमूर्त भावों के लिये कवि जीवन सापेक्ष प्रस्तुतों का प्रयोग कर साधारणीकरण की महती वैष्टा के आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग पर विचार करते हुए हमारा ध्यान अनुप-मंग-मंग की ओर अनायास ही आकर्षित हो उठता है। सीता पिता के प्रण का स्मरण करती हैं और राम की ओर देखती हैं। राम अनुप-मंग कर सकेंगे इस प्रकार के अनिश्चित भाव से वे आतुरित हो उठती हैं। चित्त-अनुप सीता हैं जीवन का सबसे बड़ा प्रतिबन्ध है। पिता के प्रण से वे दुःख हो उठती हैं। उनका हृदय एक विशेष प्रकार के आरम-मंदान में भर जाता है। वे अपनी व्यथा वाणी में व्यक्त नहीं कर पातीं उनके सम्मुख मर्यादा का बन्धन है। कवि ने सीता की मन स्थिति का अंकन इस प्रकार किया है—



गिरा बसिनि मुख पंकज रोकी । प्रकट न काम निहा धवलकी ।  
 सोचन बल रहु सोचन कोना । जैसे परम कृपण कर छोना ।  
 सङ्गुची व्याकुलता यदि जानी । नरि चीरख प्रतीति घर जानी ।  
 प्रभु तब चितह प्रेम लग ठाना । कृपा निबान राम सब जाना ।

मानस० बास०, २१६।

मेस्वामी जी मयीरा के कवि हैं । उनके काव्य में रति-वर्णन भी अति  
 संयमित और यहाँ-रिक्त है, परन्तु उनके संयम और यहाँ-रिक्त में भी एक स्थिरता  
 मिलती है । 'बानकी मंगल' और 'कवितावली' में रति के आकर्षकपूर्ण वर्णन के  
 अनेक समर्थ उपलब्ध हो जाते हैं । राम और सीता के वात्सल्य स्नेह की उद्भावना  
 कवि उनके जीवन के विविध परिघाटों के समर्थ में करते हैं । इन अंशों में  
 कवि पाशों की अन्तःप्रकृति का पर्यवेक्षण भी करते हैं—

बल को नष्ट लम्बान है करिका परिलौ पिय छाँह बरीक हूँ ठाढ़े ।  
 पोंछि पसेठ बमारि करौ अठ पाँच पचारिहूँ भूमुरि ढाढ़े ।  
 तुलसी रघुबीर प्रिया भग जानि कै बँडि बिसम्य को कटक काढ़े ।  
 बानकी भाह को नह कसबो, पूलक्यो तनु बारि बिसोचन बाढ़े ।

कविता बयोध्या० १२ ।

'रामचरित मानस' के अन्तर्गत कसम रस के कतिपय विशिष्ट समर्थ उपलब्ध  
 होते हैं । कैकयी राजा वधरस से बरदान माँगती है । इस अवसर पर वधरस  
 की कसम का मूर्तत्व कवि स्वर्ण स्वर्ण और वैश्व आदि तात्त्विक अनुभावों  
 के द्वारा अंशित करते हैं । वधरस की अवस्था अति यवनीय हो उठती है—

बाद बीज रघुवंसमलि नरपति निष्ट भुवायु ।

सहनि परेव लखि सिबिभिदि मगहुँ कृद गबरानु ।

मानस बयोध्या० ११ ।

राम के निर्वाचन के समाचार से कौसल्या के मातृ-हृदय को बाधात लम्बता  
 है । उनमें प्रभु और भद्र का संसार होता है । मानस में लंका काण्ड में  
 लक्ष्मण भुवौ के प्रसंग में कवि ने राम की अर्थात्क पीड़ा की उद्भावना की है—

अर्चामि वह करि नहिँ आयत । राम बढाय भुज पर लायत ।

सम्पु न बुगिनि रैनि मीहिँ काह । नमु सन तब भुजुल भुवाऊ ॥

x

x

x

x

विप्रसन्न मृगार के अन्तर्गत स्थायी भाव रति के महात्म्य नियोजन के अनेक सम्बन्ध गोस्वामीजी के काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। इस बबसर पर हमारा ध्यान शरद्वकाश के उस अंश की ओर बनाया ही जाकर्षित हो जाता है जिसमें सीता के वियोग में रामचन्द्र बिराग करते हुए अंकित किये गये हैं —

है सब मृग है मण्डुरधनी । तुम्ह बेसी सीता मृगलैनी ।  
संजल सुक क्योस मृग मीना । मनुष निकर कोकिला प्रवीना ॥  
कुन्दकसी बाढ़िम मामिनी । कमल खण्ड ससि अहि मामिनी ।

×                      ×                      ×                      ×

तुनु बानकी सोहि बिनु जायू । इत्ये सकल पाइ अनु रायू ।

मानस शरद्व काव्य ३० ।

इस अंश में तथा इस प्रकार के अन्य सम्बन्धों में स्मृति सम्पाद, आवेग एवं बढ़ता जाति संवारी भावों का गुम्फन स्थायी भाव के साथ भावनाओं के उत्कर्ष में योग-बल होता है। इसी प्रकार आश्रय के उद्भव वैय्य विचार और उन्माद जाति अवस्थाओं का विग्रह इनके काव्य में नैसर्गिक रूप में उपलब्ध हो जाता है।

गोस्वामी जी भावनाओं के श्रुतसिद्धि सिद्धी हैं। परिस्थितियों के विशिष्ट सम्बन्धों में पात्रों के मनोगत अमूर्त भावों के लिये कवि जीवन सापेक्ष प्रस्तुतों का प्रयोग कर साधारणीकरण की महती क्लेश के आवर्धन प्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग पर विचार करते हुए हमारा ध्यान अनुप-मन-प्रसंग की ओर बनाया ही जाकर्षित हो उठता है। सीता पिता के प्रण का स्मरण करती हैं और राम की ओर देखती हैं। राम अनुप-मन कर सकेंगे इस प्रकार के अनिश्चित भाव से बेजापूरित हो उठती हैं। शिव-अनुप सीता के जीवन का सबसे बड़ा प्रतिपक्ष है। पिता के प्रण से बेचुक्क हो उठती हैं। उनका हृदय एक विशेष प्रकार के आत्म-वेदना में भर जाता है। वे अपनी व्यथा शायी में व्यक्त नहीं कर सकतीं उनके सम्मुख परीक्षा का पथ्य है। कवि ने सीता की मन स्थिति का अंकन इस प्रकार किया है—

विरा बलिनि मुख पंकज रोकी । प्रकट न जान सिता अबलोकी ।  
 सोचन करत रजु सोचन कोना । जैसे परम कृपन कर सीमा ।  
 सकृकी व्याकुलता बधि जागी । धरि बीरख प्रतीति डर जागी ।  
 प्रभु तक नितह प्रेम लग ठाना । कृपा निधान राम सब जाना ।  
 मानस० बाक०, २५२।

गोस्वामी जी मयादा के कवि हैं । उनके काव्य में रति-वर्णन भी बलि  
 संबन्धित और मयावित हैं परन्तु उनके संयम और मयादा में भी एक सिम्यता  
 निकली है । 'जानकी मंगल' और 'कवितावली' में रति के आकर्षणपूर्ण वर्णन के  
 अनेक सुन्दर उपलब्ध हो जाते हैं । राम और सीता के वाष्पय स्नेह की उद्भासना  
 कवि उनके जीवन के विविध परिपार्श्वों के सुन्दर में करते हैं । इन अंशों में  
 कवि पात्री की अन्तःप्रकृति का पर्यवेक्षण भी करते हैं—

जब को गए लखन हैं गरिका पतिही निय छाँह परीक झूँ ठाढ़े ।  
 पोंछि पसैत बघारि करी अब पाँव पछारिही भूमुरि डाढ़े ।  
 तुलसी रघुबीर प्रिमा मग जाति के बँटि बिलम्ब को कंटक काढ़े ।  
 जानकी नाह को नेह ककरो धुलक्यो तनु बारि बिलोचन बाढ़े ।  
 कविता अवोम्बा० १२ ।

'रामचरित मानस' के अन्तर्गत कम्ब १४ के कल्पित विचित्र सम्बन्ध उपलब्ध  
 होते हैं । कैकयी राजा वनारण से वनदाग भौगरी हैं । इस कवसर पर वनारण  
 की कम्ब का भूर्तक्य कवि स्तम्भ, स्वरमय और वैभव्य आदि साहित्यिक अनुभावी  
 के द्वारा बंकिट करते हैं । वनारण की अवस्था अति दयनीय हो उठती है—

जाइ बीक रघुवंसमनि नरपति निपट कुद्यानु ।  
 सहस्रि परेव लखि सिमिनिहि मगहुँ बूझ मजरानु ।  
 मानस, अवोम्बा० ३१ ।

राम के निर्वासन के समाचार से कौषल्या के मातृ-हृदय को आघात लगता  
 है । जगमें प्रलय और अंध का सेवार होमा है । मानस में लंका काण्ड में  
 लक्ष्मण-भुली के प्रसंग में कवि ने राम की न्यायिक पीड़ा की उद्भासना की है—  
 नरपति यह कवि बधि जावत । राम उठाय अनुज सर सायद ।  
 कान्हू न बुझिन देवि मोहि काळ । बंधु तारा तब मुहुस मुपाऊ ॥

बौ बनतहुँ बन बन्धु मिछोहू । पिता वचन भनतेसँ मरिहू ओहू ।

मामस लंका : ९१ ।

‘नीतावसी’ में राम नियोग में कौशल्या की व्यासा का वर्णन सम्मन की मूर्खी पर राम निराप का वर्णन और सीता निवासन का वर्णन विवेक रूप से बर्णों के योग्य है ।

भारतीय आचार्यों ने काव्य में रस बर्णों की कल्पना की है । इसके अन्तर्गत तीन रसों का समावेश किया गया है—शृंगार वीर और शान्त । ‘मामस’ का अर्थ रस शान्त है जिसकी स्पष्ट प्रतीति जन्ति-मूक्य प्रसंगों में होती है । मामस की स्तुतियों में मुख्य रूप से उत्तर काण्ड में इसका नियोजन मिलता है ।

रौरस के नियोजन ‘मामस’ के बाक काण्ड’ और बबोष्पा काण्ड में उपलब्ध होते हैं । वीर रस के संचारी भाव हैं मति धृति बर्ब तथा उग्रता । इस रस का नियोजन लंकाकाण्ड में हुआ है परन्तु बाककाण्ड में सम्मन-परशुराम-संवाद किष्किना काण्ड में बालि-बच प्रसंग और बबोष्पा-काण्ड में भरत के ससैन्य-अमन के ससैन्यों में इस रस का नियोजन मिलता है । अनुभूत रस में रोमांच स्वप्न स्वेद आदि अनुभावों के नियोजन मिलते हैं । पार्वती राम के स्मरण की परीक्षा लेती है । अनुभ-भंग के समय परशुराम राम की परीक्षा लेते हैं । इन प्रकरणों में अनुभूत रस के स्वरूप कित्ना क बलि सफल प्रयास उपलब्ध होते हैं ।

हास्य के अनेक प्रकरण कवि की रचनाओं मिलते हैं । गारु-मोह प्रकरण में सिव विवाह के वर्णन प्रसंग में बन यात्रा के ससैन्यों में राम-केवट-बाती के प्रकरण में और परशुराम-सम्मन संवाद के प्रकरण में हास्य के बलि चेतन प्रवाही वर्णन उपलब्ध होते हैं । इन प्रसंगों में हास्य के साधन व्यर्थ अनिवार्य रूप से नियोजित मिलता है । हास्य का एक प्रकरण कवितावली में उपलब्ध होता है—

विषय के बागी सदासी लोकोपकारी हुये जिनु मारि दुनारे ।

नीतय तोय तरी तुमसी सो कबा गुनि मे मुनि कृप तुनारे ।

होई मित्र सब अग्रमुखी पाने पर प्रमुख रज तिराने ।  
 कीन्हीं भरी अनुयायक जू कल्या कर कामन को अनुमाने ।  
 कवितावली ।

तपस्वी अपनी जीवन-संमिती बिना मन में चुकी रहे । एकान्त अभिन की नीरसता को दूर करने की भावना से अहिंसा उद्योग की कथा से परिचित मुनि शिखा-शब्द के साथ बैठे हैं । राम के पावन चरण-स्पर्श से शिखारें तारियों में परिवर्तित हो जावेगी । इस सम्भावित लाभ से वे प्रेरित हैं ।

महानर रस का स्वामी भाव भव है । इसमें रंग स्वेद वैभवं, रोमांच एवं स्वरमंथन अनुभाव होते हैं । भास, चिन्ता, शंका अनुप्रा इसके सूचक भाव हैं । 'मानस' के आलोक में शिव विशाख प्रसंग में इस रस का निबोधन किया है । 'अयोध्याकाण्ड' में कौन्सी-कोप तथा 'संका काण्ड' के अनेक प्रसंगों में इस रस का प्रस्तार किया है —

अपने हील वलान्न मैं । साहित प्रात करल गिरि मैं ।  
 भुजा निटव गिरि श्रुम समाना । रोमांचको कता अनुमाना ।  
 मुख नासिका मयन अब काना । गिरि कररा कोह अनुमाना ।

मानस संकाकाण्ड, १६ ।

अपने में रास का साक्षात्कार हुयी रूप में किया । इस प्रकार महानर रस की व्यञ्जना विधिष्ट प्रसंगों के अन्तर्गत हुई है । बीपस का स्वामी भाव अनुप्रा है । 'मानस' में इस रस की परिभाषा संका काण्ड में ही प्रमुख रूप में हुई है—

माना मोति पिचास पिछाची । भाव काटि मुनि बोलई नाची ।  
 विष्टा मूय कबिर कब हाड़ा । बरतहि कबहु उपल बहु पाड़ा ।  
 कपि पुरि कीन्हीति अविचारा । मूक न आपन हाथ पसारा ।

मानस संका २१ २ ३ ४ ।

इस सन्दर्भ में रास का सम्बन्ध है तथा मानस भाव है । कवि कब हाड़ा इत्यादि उद्दीप्त विभाव हैं । भुजा और अनुप्रा स्वामी भाव हैं ।

पौत्वाभीजी के काव्य में आत्यस्य का वर्णन अति परिमित मात्रा में हुआ है । तुलसी-काव्य में दसरथ और कीर्त्तिया के सन्दर्भ में ही इस रस का प्रस्तावन

मिथता है। राम बन बगन के समय माता कौसल्या के बत्सल हृदय को व्यक्त भावनाएँ राशि राशि बिखार पड़ती हैं। इस रस का नियोजन 'मानस' के दो कौनों में ही प्राप्त होता है। प्रथम मातृकाण्ड में और द्वितीय अयोध्या काण्ड में। उत्तर काण्ड में एक स्थल पर इस रस का नियोजन मिलता है। वात्सल्य के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों के प्रस्तावन कवि के काव्य में उपरज्य होते हैं। 'गीतावली' से वात्सल्य के विप्रकर्म से सम्बन्धित एक अंश वहीं उद्धृत किया जा रहा है—

बननी निरवधि बान बनहिमों ।

बार-बार छर नैननि कावलि धनुजू की कसित पनहिमों ।

कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जमावति कहि प्रिय बचन सचारे ।

छठहुँ तात बलि मानु बल पर धनुज सखा सब द्वारे ।

कबहुँ कहति यों बड़ी बार बह जाहु भूष पहुँ सैया ।

बंदु बोलि बॅह्य जो भावै गई निछावर सैया ।

कबहुँ समुद्रि बग गयन राम को रहि बकिबिन लिखी छी ।

पुन्यी वास बहु समय कहे ये जावति प्रीति सिखी छी ।

गीतावली अयोध्या ५२ ।

इस अंश का भाव-सौन्दर्य अति स्निग्धपूर्ण है। पुत्र-वियोग में पुत्र की वस्तुओं से मा कौसल्या की बत्सल भावनाएँ उद्गीत होती हैं और वे 'जमाव' की स्थिति में पूर्ण जाती है।

### अलंकार

दोस्वामीजी के काव्य में अलंकार के अति विराट् स्वरूप और उनके सम्बन्धित विभिन्न केना भूमियों के स्वरूप-संस्वान के दर्शन होते हैं। कवि के काव्य में अलंकार भावों की आवेगपूर्ण धारा के नैसर्गिक उत्स के साथ ही प्रकटित होते हुए उगते हैं। अलंकार के अन्तर्गत अनुप्रास वक्क पुनरुक्त्या मात्र, दोस्वा जैसे बहोक्ति आदि के सबसे प्रयोग वर्धनीय हैं। अलंकार क कविपद उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

स्तोत्रा — नृबन्धनर कोरंड केरत रुचिर कन वन गति बने ।

बनु रावमुनी तपाक कर बेंठी विमुक्त सुख आपने ॥

मानस लंका०, छन्द २।

इस संत में बर्न-साम्य के आचार पर तपाक, एक किन्तुओं और और बहूतियों के अप्रस्तुत विमान से राम के सौम्य निरूपण का जो विम्वरविमान होता है वह बड़ा मोहक है ।

रूपक—स्वयं अक्षर के अन्तर्गत निरूपण रूपक परम्परित रूपक और सांग रूपक तुलसीदास की अविष्यन्ता प्रथाकी में विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं ।  
निरूपण रूपक—

बगनी जनक बंश सुत बारा । तनु बनु भवन सुख परिवारा ।

सुख के ममता ठाग बटोरी । भय पर स्नहि बौंछि कर डोरी ।

मानस, सुन्दर० ४८ ४, १ ।

परम्परित रूपक—

कह युनि पुन रूपवीर कृपाळा ।

घोर मानस राज मरणा । करण्य ८१ ।

सांग रूपक—

नाम वाहुक निवस निधि ध्यान तुम्हार कपाट ।

बोचन निज पर जंघित बाहिं धान केहि बाट ।

मानस : सुन्दर० बोझा ३० ।

उदात्त—

मरति होहि न रावमय विधि हखिर पर पाइ ।

कबहुं कि कानी छीकन छीरिछिनु विगताइ ।

मानस अयो०, दो २३१ ।

छन्द धोखना—‘मानस’ के अनेक काण्ड का आरम्भ स्तोत्र से हुआ है । परन्तु ‘मानस’ की रचना कदाचक सोनी में हुई है । कदाचको के अन्तर्गत निर्मोचित वर्णालियों के लंका-क्रम में एकस्यता नहीं है । इसी प्रकार उसी की भाषा के क्रम में भी एकस्यता नहीं मिलती है । उदाहरण स्वयं विभक्ति छन्द में अथ-तथा १२ जायाओं के अन्त में ७४ = ६० मानसों का

प्रयोग मिलता है। संस्कृत छन्दों के अन्तर्गत कवि ने अनुष्टुप, धातु-  
बिहीन वसंतविक्रम इन्द्रवज्रा, मासिनी और माधरा मासि  
छन्दों का प्रयोग किया है। परन्तु मास में चौपाई बोहा एवं सोरठा  
मासि छन्दों के ही प्रयोग व्यापक रूप में हुये हैं। कदम्बों में चौपाई के  
फर्याद बोहा सोरठा और छन्द का वृत्ताक्रम नियोजित है। सामान्यतः ५, १, ७  
अर्धश्लोकों के फर्याद बोहा या सोरठा के बतने का नियोजन है किन्तु ऐसे भी  
सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं जहाँ कदम्बों में १६ १६ और १७ अर्धश्लोकों का  
विभाग मिलता है। 'मानस' में बोहा सोरठा इतिहासिका विमर्श चौपाई  
तोत्रर विरचित मासि छन्दों के प्रयोग हुये हैं।

शब्द शक्तिर्मा—काव्य के संदर्भ में पोस्वामी जी ने छन्द और वर्ण की  
अभिव्यक्ति पर विचार प्रकट किया है।

मिरा अरुण कक बीचि सम कक्षिमत मित्त न मित्त।

परन्तु कवि ने अतिरिक्त कक्षिमा एवं व्यंजना इन दोनों अक्षरशक्तियों का  
प्रयोग किया है। शब्द शक्तियों से इनके काव्य में अभिव्यक्ति की प्रेक्षणीयता की  
सम्भावना अति व्यापक हुई है।

गुण रूप रीति

(क) माधुर्य गुण—श्रु मार, कदम्ब एवं सान्द्र रसों के सन्दर्भों में कवि ने  
माधुर्य गुण का प्रयोग किया है। 'मानस' में 'वाटिका प्रसंग' में राम-कनकमन के  
सन्दर्भ में सीता विषय तथा कदम्ब-शक्ति के प्रसंगों में माधुर्य गुण का प्रयोग  
मिलता है—

कोक किकि नूपुर बुनि मुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुन।

मानई मथन दुमुनी बीगही। मलता बिस्व बिजय कई कीगही।

वाक्य २३०।

ओजगुण—इसका सम्बन्ध भाषायों में उत्तेजना का रीति से माना है।  
इस गुण का विन्यास और बीमत्स और रीति रसों में मिलता है। 'मानस' में  
बाह्यदृष्ट से अनुभव के प्रसंग का निम्नलिखित अर्थ विवेचन रूप से दर्शनीय है।  
यह अर्थ शिव-कनक भंग के संदर्भ में प्रस्तुत है।



मरे मुबल घोर कठोर रव रवि भावि ठमि मरिपु चले ।  
 निहर्गहि विग्न डोक महि बहि कोल-कूठम कलमले ।  
 मुर बमुर मुनि कर कान्ह बीन्हें सकल निहल निचारही ।  
 कोइह मनेठ राम तुलसी जयति वचन उचारही ।

मानस बाल०, २६१ ।

प्रसाद गुण—गोस्वामी तुलसीदास ने काव्य में प्रसाद गुण के प्राबल्य स्वयं उपलब्ध होते हैं—

एक बार जानी अम्हूबाए । करि छिवार पल्लों दीपाये ।  
 निज कुल हण्डेय भगवाना । पुत्रा हेतु कीन्ह अलना ।  
 करि पूजा नैवेद्य अनाया । जापु यहै यहै पाक बनाया ।

बाल० २०१ १ २ ३ ।

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में रीति और वृत्तियों को माधुर्य और प्रसाद, इन तीन गुणों के प्रसार में सहायक है । गौडीय रीति का विश्वास मानस में धिक् मिटाइ अनुगम आदि सम्बन्धों में हुआ है । लंका काण्ड के अन्तर्गत और, बीमल आदि रसों में यह वृत्ति संवर्धित है ।

गोस्वामीजी के काव्य मुख्यतः 'मानस' में अनुगम कदम एवं छाँट रसों में इस रीति का नियोजन मिलता है । पार्श्वी रीति का विन्यास प्रसाद गुण के साथ देखने को मिलता है ।

इस प्रकार गोस्वामी जी की कृतियों में काव्य-कला की सम्पूर्णता विद्यमान है । 'तुलसी लललई' में गोस्वामी जी ने अलंकार, रीति गुण और शेष के काव्य उपयोगी पद्यों की कमी की है ।

। अलंकार कवि रीति गुण भूषण दुपुन शोभि ।  
 आरिजाठ बरन विविध तुलसी विपल विनीत ।

पु० त० ४, ४७ ।

कोम अलंकृत सन्धि मति मंची बरन विचार ।  
 इरन भरन सुविमति अल कविहि अरय निरचार । ३० ६० ।  
 मग्न हून अण्यय अल सति विकल्प विचार । ३ ६० ।  
 यह तुलसी मति अनुदित दोहा अल अवार ३०, ४८ ।

इस प्रकार गोस्वामी जी ने स्पष्ट कहा है कि कवि को कोय, अर्ककार सन्नि प्रसाह, बर्च आदि पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए, जिससे निमित्तियों और भाषा-रूप के कारण काव्य के बर्च का उचित निर्धारण हो सके । अरुण अर्थात् अर्ककार, रस तथा प्रसाह गुण का जिससे सम्बन्ध नियमन हो सके और हरण अर्थात् अपसीकृता आदि का परित्याग सम्भव हो सके ।

गोस्वामी तुलसीदास की भाषा

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतिओं में ब्रजभाषा और अवधी का प्रयोग किया है । 'मीठाबली कविताबली' 'बोहाबली और विनय पत्रिका' की भाषा ब्रज है । 'मानस' की भाषा अवधी है । कतिपय आलोचकों ने इसे बैतवाही भी कहा है । मानस की भाषा लोक बोली के विपरीत साहित्यिक अवधी है । परन्तु 'रामकथा गहूँ' 'पार्वती मंजु' और 'बानकी मंजु' की भाषा लोक-जीवन के अधिक निकट की भाषा है । मानस में शहर भण्डार की व्यापकता पर हम मुग्ध होते हैं । राजस्थानो, बुन्देली, जोड़पुरी आदि भाषाओं के राज्य समूहों के अतिरिक्त अरबी और फारसी भाषाओं के सव्यों की एक व्यापक संख्या इनकी कृतिओं में विशेषकर मानस में, उपलब्ध है । विशेषी सख मूस भाषा की प्रकृति में समाविष्ट हो गए हैं । गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त सव्यों की स्वकृता की दृष्टि से इस प्रकार में विभाजित कर सकते हैं—

सरसम—बहुन् परस बर सेऽपि ह्यं मरन कलेवर गिरि वृत्ति इत्यादि ।

अर्धतस्तम—अपमन, कुम पछीत परमात विज्ञान, मरजाइ इत्यादि ।

अरबी-फारसी—साहिब, मनी जमात नाम बुझाम, मसीत विरमाती बहान साब परबाह, मुगार पीक पकीता, रैयत आदि ।

तदुक्त छन्द गोस्वामी जी के काव्य की ही नहीं अपितु प्रत्येक आधुनिक कार्य भाषा की मूल सम्पत्ति हैं । अतः उनकी सुनी यहाँ नहीं दी जा रही है ।

देराज—ऊनाट, बुक बुकी चुकुकारे इत्यादि ।

'रामचरित मानस' में भाषा पात्रों के अनुकूल स्वल्प बारण करती पछती है । इस दृष्टि की भाषा को दूसरी विशेषता यह है कि वह भावानुगामिनी है जिसके माध्यम से अभिप्रेतना का स्वाभाविक विधान सम्भव हो सका है । इस की भाषा की तृतीय विशेषता है इसकी रसगुणसम्पन्नता । इस प्रकार यहाँ भाषा

गुण-संस्तिष्ट-गङ्गा-योजना से विमूषित है जिसमें सांयुषातिक सीन्धर्म और  
ज-संयुक्त की अविति मिश्रणी है ।

रचना शैली—गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में छ रचना  
विधियों का प्रयोग किया है—१ कल्पय पद्यति । २ नीत पद्यति—‘गीतावली’  
‘विनय पत्रिका’ इस पद्यति की रचनायें हैं । ३ कवित्त-सवेया-पद्यति—  
‘निवाहला’ की रचना इसी विधा में है । ४ बोहा-पद्यति—मानस में बोहा भला  
कर्म में प्रयुक्त है । परन्तु ‘बोहामणी’ शूद्र बोहा-पद्यति की रचना है । ५  
‘मन्त्राति नामस’ की रचना प्रबन्ध-पद्यति में है, जिसमें कवि ने बीनाई-बोहे का  
प्रयोग किया है । ६ तुलसी-सजसई के कविम्य बोहों में कू लोको का प्रयोग  
किया है । उदाहरण —

भञ्जु तरनि अरि प्रावि कहूँ तुलसी वालनज भन्त ३,१४ । तरनि-अरि  
तरि के अरि के आदि अर्थात् राहु का ‘रा’, वालनज भन्त, अर्थात् ‘राम’ का  
स्तम्भ ? सम्पूर्ण का अर्थ हुआ राम ।



इस प्रकार योत्स्वामी जी ने स्पष्ट कहा है कि कवि को को' ध्वनि प्रवाह, वर्ण आवि पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए, जिस और भाषा-मध्य के कारण काव्य के वर्ण का उचित निर्धारण भरण अर्थात् अलंकार, रस तथा प्रसाद मूल का जिससे सम्यक् नियम और ह्रास अर्थात् अस्वीकृता भाषि का परिणाम सम्भव हो सके गोस्वामी तुलसीदास की भाषा

योत्स्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतियों में ब्रजभाषा और अवधी का किया है। 'बीठानधी कवितावली' 'बोहानमी' और विनय पत्रिका भाषा ब्रज है। 'मानस' की भाषा अवधी है। कतिपय आलोचकों ने इसे ब्रज भी कहा है 'मानस' की भाषा लोक बोधी के विपरीत साहित्यिक अवधी है। १ 'रामकृष्ण गह्यू' 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' की भाषा लोक-बोधी के अधिक निकट की भाषा है। 'मानस' में ध्वनि मन्दार की व्यापकता पर हम मुन्न होते हैं। रावस्वामी, कुवेसी लोकपुरी भाषि भाषाओं के राज्य समूहों के अतिरिक्त बरबी और आरसी भाषाओं के राज्य की एक व्यापक संख्या इनकी कृतियों में विशेषकर मानस में उपलब्ध है। विवेची ध्वनि मूल भाषा की प्रकृति में समाविष्ट हो गए हैं। योत्स्वामी जी द्वारा प्रयुक्त शब्दों को स्वीकृता की दृष्टि से इस प्रकार में विभाजित कर सकते हैं—

उत्तम—बहुम, परम बर पैसि इरं, मदन कौमार विरि वृत्ति इत्यादि।

अर्धोत्तम—अपम, पदुम पछीत परमात विनाय भरबाव इत्यादि।

अवधी-छारमी—साहिब, फनी जमात बाब गुलाम, मसीत निरमानी बहाग राज, परबाह, सुमार पीक पछीता, रियत आदि।

उत्तम ध्वनि योत्स्वामी जी के काव्य की ही नहीं बलितु प्रत्येक आधुनिक आर्य भाषा की मूल सम्पत्ति है। अतः उनकी सूची यहाँ नहीं दी जा रही है।

देशक—कषाट, चुक चुकी चुचुकारे इत्यादि।

'रामचरित मानस' में भाषा पात्रों के अनुकूल स्वल्प आरण करती चली है। इस दृष्टि की भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि यह भाषागुणमिनी है जिसके माध्यम से अभिव्यक्ति का स्वाभाविक विधान सम्भव हो सका है। इस की भाषा की तृतीय विशेषता है इसकी रसमूलसम्पन्नता। इस प्रकार यहाँ भाषा

रस-गुण-संविद्ध-ध्वनि-योजना से विभूषित है जिसमें सानुप्रासिक सौन्दर्य और ध्वनि-संघीय की बलवति मिलती है ।

रचना शैली—पौस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में छ रचना पद्यविधों का प्रयोग किया है—१ छन्द्य पद्यति । २ गीत पद्यति—'मीठाबली' और 'दिव्य पत्रिका' इस पद्यति की रचनायें हैं । ३ कवित्त-सर्वथा-पद्यति—'कवितावली' की रचना इसी विधा में है । ४ दोहा-पद्यति—बाणभट्ट में दोहा पद्य के रूप में प्रयुक्त है । परन्तु 'दोहावली' कुछ दोहा-पद्यति की रचना है । ५ रामचरित मानस की रचना प्रबन्ध-पद्यति में है, जिसमें कवि ने चौपाई-दोहे का प्रयोग किया है । ६ तुलसी-धनुषी के कविध्वनि दोहों में कुछ सौन्दर्य का प्रयोग मिलता है । उदाहरण —

अबहु तरनि करि जाहि कहैं तुलसी बालक-बन ३, १४ । तरनि करि  
तरनि के करि के जाहि बनीत राहु का 'रा', बालक बन्ध, बनीत 'काम' का  
बन्धन ? सन्मुख का लक्ष तुलसी राम ।





